



अष्टाध्यायी-प्रकाशिका

श्रीमत्पद-वाक्य-प्रमाणपारवारपारीण-आचार्य-श्रीब्रह्मदत्त
जिज्ञासु-महोदयानामन्तेवासिना व्याकरण-निरुक्ता-
चार्येण शास्त्रिणा वी० ए० इन्द्रप्रस्थीय-
पाणिनि - महाविद्यालयस्याचार्येण
देवप्रकाशपातञ्जलेन

व्याख्याता

सा च

“संस्कृत-व्याकरणशास्त्र का इतिहास”-आदि-नैकविद्य-
प्राचीन-प्रवन्धानां सम्पादयित्रा
श्रीधुधिष्ठिरमीमांसकेन
परिष्कृता

भूमिका-लेखकः

प्रो० डा० रघुवीरः एम० ए०, पी० एच० डी०,
डि० लिट् एट् फिल्

प्रकाशको वितरकरच
देवप्रकाशपातञ्जल शास्त्री वी०ए०
अध्यक्ष पाणिनिग्रन्थसन्धानमन्दिरस्य
१, जी० जवाहरनगर, देहली

सर्घेडविकारा प्रकाशकेन सुरक्षिता

मूल्यम् १॥॥)

मुद्रक—

जगदेवासिह शास्त्री 'सिद्धान्ती'

सम्राट् प्रेस

पहाडी वीरज, देहली

समर्पणम्

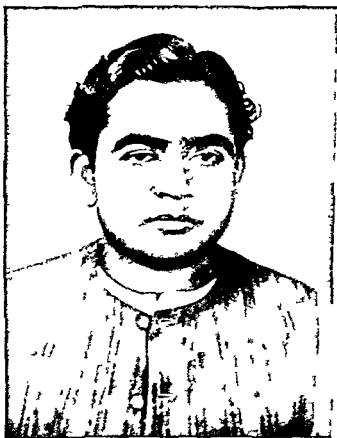
श्रोमिश्रान्वय-मञ्जुमौक्तिकमणि साहित्य-सेवा-व्रती
नानाशास्त्र-विचार-चारु-चतुरो गीर्वाण-वाङ्-नन्दन ।
धीरोदात्त-मना गुणैक-रसिकः सञ्छासनाधिष्ठित
सौम्य पाणिनिपद्धते प्रणयवान् श्रीसत्यदेवो बुध ।
बुद्धिसागर-सम्भूत—निष्कलङ्क-सुधाशवे ।
तस्मै श्री सत्यदेवाय ग्रन्थ एष समर्प्यते ॥

समर्पणम्

श्रीमतां विविधानवद्यविद्योतितान्त करणाना
सुहृद्वरथीसत्पदेवमिश्राणां
कर-कमलयो
अष्टाध्यायी-प्रकाशिकेयं
सादरं समर्प्यते

विजयादशमी
२०१२

तदीशुणमुग्धेन—
श्रीदेवप्रकाशपातञ्जलेन




श्रीमान पण्डितसत्यदेवमिथ

भूमिका

श्री देवप्रकाश पातञ्जल शास्त्री की नवीन कृति अष्टाध्यायी-प्रकाशिका मैंने देखी । इसमें १३, १४ सौ अष्टाध्यायी के सूत्र और उसकी सुन्दर व्याख्या है । अष्टाध्यायी का क्रम होने से विद्यार्थियों को वृत्ति रटने की आवश्यकता न पड़ेगी । उदाहरण की सिद्धियों को इस प्रकार से समझाया गया है कि विद्यार्थी अत्यन्त सुगमता से इसको समझ सकते हैं ।

सूत्रों को समझने में हिन्दी में अनुवाद तथा उसकी व्याख्या अत्यन्त सहायक है । सूत्रों के पहले स्थान-स्थान पर प्रकरण का भी निर्देश है । सूत्रों की व्याख्या में महाभाष्य न्यासादि से उद्धरण लिये गये हैं । ग्रन्थ सुन्दर है । इस ग्रन्थ का वही क्षेत्र है जो लघुकौमुदी का है । मुझे आशा है, पाठक इससे लाभ उठावेंगे ।

५. १०. २२



प्रो० डा० रघुवीर एम.ए., पी. एच. डी.
(लंदन) डी० लिट० एट० फिल०
[सदस्य राज्य समा, नयी देहली;
डाईरेक्टर, इंटरनेशनल एकेडेमी आफ
इण्डियन कल्चर, नागपुर]

• विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	अधिकारमूत्र) ।
पृष्ठभूमि	१	सप्तम व्याख्यान ६४
प्रस्तावना	१०	(प्रकरण तथा अनुवृत्ति, डित्कित्प्रकरण, इत्सज्ञाप्रकरण, भारतनेपद-परस्मैपद-प्रकरण, समास-प्रकरण, समास के भवान्तर भेद समास की सिद्धि, विभक्ति-प्रकरण) ।
व्याख्यानमाला		
प्रथम व्याख्यान	२०	अष्टम व्याख्यान ७७
(हिन्दी के शब्दों पर विचार, कारक और विभक्तियाँ, विभक्तियों के चिह्न) ।		(विकरण प्रकरण, चारों प्रकिया, वाच्य परिवर्तन के नियम, धातुओं के ६ प्रकार 'डित् लकार, टित् लकार', डित् लकार विकरण, तिङन्त के सिद्धि-प्रकार)
द्वितीय व्याख्यान	२६	नवम व्याख्यान ८४
(सञ्ज्ञित भाषा में कारक तथा विभक्तियों का स्वरूप, लिङ्ग पर विचार, अकारान्त पुलिङ्ग संज्ञा शब्द 'राम', प्रतिनिधि प्रातिपदिकों के रूप)		कृत्यप्रत्ययप्रकरणम्
तृतीय व्याख्यान	३६	(कृत्, कृत्य, कृत् तथा कृत्य सज्ञा का फल, उपपद, उपपद की पहचान, सूत्रार्थ की शैली, कृदन्त की सिद्धि, तिङन्त सिद्धि में विशेषता, लादशप्रकरण)
(क्रिया का विश्लेषण, भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान काल में धातुओं के रूप) ।		दशम व्याख्यान ८७
चतुर्थ व्याख्यान	४२	(स्त्रीप्रत्यय की विशेषता, स्त्री प्रत्यय की सिद्धि तद्धितप्रत्ययप्रकरणम् (तद्धित शब्द का अर्थ, तद्धित-प्रकरण के सूत्रों की अर्थशैली, तद्धित प्रत्यय की सिद्धि, समासान्तप्रकरणम्)
(अव्यय, शब्दों के तीन प्रकार)		एकादश व्याख्यान ९२
पञ्चम व्याख्यान	४४	(द्विवचन का अर्थ, द्विवचन का ज्ञान, तिङ् लकार में द्विवचन)
(सूत्रों के अङ्ग पदच्छेद, विभक्ति समास, अनुवृत्ति, अर्थ, उदाहरण, सिद्धि, सूत्रों के अव्यय की शैली)		संहितान्तर्यप्रकरणम्
षष्ठ व्याख्यान	५३	
(सूत्रों के प्रकार—संज्ञा, परिभाषा, विधि, निषेध, नियम अतिदेश, अपिभार, सज्ञामूत्र, परिभाषामूत्र, विधिगूत्र, निषेधमूत्र, नियममूत्र, अतिदेश मूत्र, (भाषातिदेश तथा स्थातिदेश)		

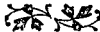
(एकादेश, परस्मै एकादेश, पूर्वभूप
एकादेश)
वृद्धिप्रकरणम् ६७
(सिद्धि वृद्धि परस्मैपदेषु, वृद्धि
लकार, इटप्रकरणम्, ग्रन्थ्यासप्रकरणम्)

द्वादश व्याख्यानम्
वर्णाच्चारपशिक्षा
सकेत-मूर्त्ति १००

प्रथमोऽध्याय	१—८३
सज्ञापरिभाषाप्रकरणम्	१
स्थानिवत्प्रकरणम्	२५
संज्ञापरिभाषाप्रकरणम्	३६
द्वित्वित्प्रकरणम्	४५
सज्ञापरिभाषाप्रकरणम्	४७
इत्सज्ञाप्रकरणम्	५२
धात्मनपदप्रकरणम्	५५
परस्मैपदप्रकरणम्	६२
नद्यादिसज्ञाप्रकरणम्	६४
कारकप्रकरणम्	७१
निपातसज्ञाप्रकरणम्	८०
सज्ञाप्रकरणम्	८३
द्वितीयोऽध्यायः	८७—१२०
समासप्रकरणम्	८७
विभक्तिप्रकरणम्	१०५
एकवद्भावप्रकरणम्	११८
बुक्लुङ्कारणम्	१२०
तृतीयोऽध्यायः	१२६-२१८
प्रत्ययाधिकारप्रकरणम्	१२६
सनादिप्रकरणम्	१२७

विकरणप्रकरणम्	१३२
वृत्प्रत्ययप्रकरणम्	१५२
वृत्प्रत्ययप्रकरणम्	१५३
लकारार्थनिर्णयप्रकरणम्	१६८
नादेशप्रकरणम्	२०८
चतुर्थोऽध्याय	२२३-२६७
स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम्	२२५
तद्धितप्रत्ययप्रकरणम्	२३७
अप्याधिकार	२४०
रक्ताद्यप्रकरणम्	२४७
चातुरार्थिकप्रकरणम्	२५२
शैषिकप्रकरणम्	२५४
[विकारार्थप्रत्यय, ठमाधि- कार, यदाधिकार., २६२-२७७	
पञ्चमोऽध्याय	२६७-३०२
ठयधिकार, तद्धितप्रत्यया, पूरणार्थप्रत्यया, मत्वर्थवि- प्रत्यया.]	२७७
प्राग्देशियप्रत्ययप्रकरणम्	२७८
स्वाधिकप्रत्यया.	२८४
समासान्तप्रकरणम्	२८६
षष्ठोऽध्याय	२०३-३७५
द्विवचनप्रकरणम्	३०३
सप्रसारणप्रकरणम्	३०६
घात्वादरादेशप्रकरणम्	३११
सहिताप्रकरणम्	३१४
स्वरप्रकरणम्	३२५
भलुक्प्रकरणम्	३२८
पुंवंद्भावप्रकरणम्	३३०
सुमागम प्रकरणम्	३३५

(भङ्गाधिकार	३४२-४७२	असिद्धप्रकरणम्	४७४
प्रत्यये विकारप्रकरणम्	३४२	विसर्गसत्त्वप्रकरणम्	४९४
भसजाधिकारप्रकरणम्	३६७	मूढन्यादेशप्रकरणम्	४९७
सप्तमोऽध्याय	३७६-४७२	एत्वप्रकरणम्	५००
प्रत्ययस्य विकारप्रकरणम्	३७६	सहिताकायप्रकरणम्	५०३
नुमागमप्रकरणम्	३८८	नामप्रकरणम्	५१०-५१३
प्रत्यये विकारप्रकरणम्	३९६	आख्यातप्रकरणम्	५१४-५४९
इटप्रकरणम्	४००	म्वादय	५१४
प्रत्यय विकारप्रकरणम्	४१९	अदादय	५२९
वृद्धिप्रकरणम्	४२८	जुहोत्यादय	५३४
प्रत्यय विकारप्रकरणम्	४३३	दिवादय	५३७
गुणप्रकरणम्	४४०	स्वादय	५४०
प्रत्यये विकारप्रकरणम्	४४६	तुदादय	५४५
अभ्यासप्रकरणम्	४६२	रुघादय	५४४
अष्टमोऽध्याय	४७३-५०९	तनादय	५४५
पदाधिकारप्रकरणम्	४७३	कयादय	५४७
		चुरादय	५४९
		सशोधन पत्रम्	५४९-५५२



पृष्ठभूमि

पाणिनीय अष्टाध्यायी और उसका उद्धार

संस्कृत वाङ्मय में व्याकरण शास्त्र अपना प्रमुख स्थान रखता है। इसका वाङ्मय अति विशाल है। इस समय विभिन्न आचार्यों के लिखे लगभग २० व्याकरण उपलब्ध हैं। उनके ऊपर टीका टिप्पणी के रूप में वे लिखे गए शतशः ग्रन्थ विद्यमान हैं। इन सब उपलब्ध व्याकरणां में पाणिनीय व्याकरण ही सब से श्रेष्ठ है इसमें किसी भी युद्धिमान् को विप्रतिपत्ति नहीं है।

आचार्य पाणिनि से पूर्व भी अनेक व्याकरण शास्त्र प्राचीन ऋषि मुनि तथा आचार्यों ने लिखे थे उन में दत्त का नाम स्वयं पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में लिखे हैं। पाणिनि ने प्राचीन कोई भी व्याकरण शास्त्र इन समय उपलब्ध नहीं। इसलिए उनके विषय में कुछ भी कहना कठिन है। हमने अपने 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास' नामक ग्रन्थ में पाणिनि से पूर्ववर्ती २३ आचार्यों का और उसमें उत्तरवर्ती १५ व्याकरणां का पूरा परिचय दिया है पाठक इस विषय के लिए उक्त ग्रन्थ का अवलोकन करें।

पाणिनि का कालः—पाणिनीय व्याकरण की रचना विक्रम से २८०० वर्ष पूर्व हुई थी। उन समय संस्कृत भाषा शिष्ट-वर्ग की यौन चाल की भाषा थी। उन काल में भाषा में उदात्तादि स्वरों का यथा स्थान व्यवहार होता था। इसलिए पाणिनि ने लोक और घेद दोनों में व्यवहृत उदात्तादि स्वरों का प्रतिपादन अत्यन्त विस्तार में किया है। यदि पाणिनि के काल में उदात्तादि स्वरों का यथायोग्य उच्चारण न होता तो वह अपने ग्रन्थ में इनको स्थान न देता और उमरा ग्रन्थ एक पनुर्थांश छोटा हो सकता था।

सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय को ईसा में लगभग १५०० वर्ष पूर्व के अल्प काल में समेटने वाले पारचान्य विद्वान् पाणिनि का काल ईसा

से ३ शताब्दी पूर्व से ६ शताब्दी पूर्व तक विभिन्न समय में स्वीकार करते हैं। हमने अपने “संस्कृत व्याकरण का इतिहास” ग्रन्थ में पारचात्य मत की सम्यक् आलोचना करके अनेक प्रमाणों के आधार पर पाणिनि का काल विक्रम से २२०० वर्ष पूर्व स्थापित किया है। पाणिनि, उसकी अष्टाध्यायी तथा उस पर वाल्मीकि, महाभाष्य तथा धृति आदि लिखने वाले लगभग १०० ग्रन्थकारों का वर्णन अपने उक्त ग्रन्थ में कर चुके हैं इसलिए इस विषय में यहाँ लिखना उचित नहीं समझते। पाठकों को चाहिये कि इस विषय के अथार्थ ज्ञान के लिए हमारा उक्त ग्रन्थ देखें।

पाणिनीय व्याकरण के पठन पाठन में विपर्यास

विक्रम १२ वीं शताब्दी पर्यन्त पाणिनीय व्याकरण का पठन पाठन उसे अपने अष्टाध्यायी के क्रमानुसार ही होता रहा। इतना ही नहीं, १२ शताब्दी से पूर्व संस्कृत व्याकरण पर जितने ग्रन्थ रचे गए उनकी रचना पाणिनीय अष्टाध्यायी के प्रकरणानुसार ही हुई। विक्रम की १२ वीं शताब्दी में सरलता की दृष्टि से प्रयोगसिद्धि-क्रमानुसारी अनेक छोटे-छोटे व्याकरणों की रचना होने लगी। उनके प्रचार के कारण पाणिनीय व्याकरण के पठन पाठन में शिथिलता आने लगी। इसलिए उस समय के पाणिनीय व्याकरणों ने उस शिथिलता को दूर करने तथा नवीन व्याकरणों के प्रचार को रोकने के लिए रूपावतार रूपमाला आदि आदि ग्रन्थों की रचना की, जिनमें प्रयोगसिद्धि के अनुसार पाणिनीय सूत्रों का सकलन किया। इस प्रयास से पाणिनीय व्याकरण के तात्कालिक हास को रोकने में कुछ सफलता मिली, और उस से प्रयोग सिद्धि-अनुसारी सूत्र सकलन की प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। इस कारण रामचन्द्राचार्य प्रक्रिया कौमुदी नामक बृहद् ग्रन्थ रचा जिस में अष्टाध्यायी के तीन सहस्र से ऊपर सूत्र सकलित किए गए। तदनन्तर भट्टोजि दीक्षित ने उत्तर भारत में श्रीर नारायण भट्ट ने दक्षिण भारत में एक काल में ही ऐसे ग्रन्थों का निर्माण किया जिनमें अष्टाध्यायी के समस्त सूत्रों का प्रयोगसिद्धि क्रम के अनुसार यथास्थान सन्निवेश कर दिया। व्याकरण शास्त्र का पठन पाठन दक्षिण भारत की अपेक्षा उत्तर भारत में अधिक होता रहा और अब भी होता है इस कारण भट्टोजि दीक्षित का निदान्त कौमुदी ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध हो गया और नारायण

भट्ट का प्रक्रिया-सर्वम्व विशेष ग्राति को प्राप्त न हो सता । वस्तुतः व्याकरण ज्ञान में नारायण भट्ट भट्टोजि दीक्षित ने कही चढ़ा चढ़ा था यह दोनों के ग्रन्थों का अनुशीलन करने में स्पष्ट ज्ञान होता है ।

इस प्रकार प्रक्रियानुमारी सूत्र संकलन में वृद्धि होने-होते जत्र पूर्णता को प्राप्त हो गया तत्र उसका दुर्गता की प्रतीति होने लगी । अतः उत्तर काल में वरदराज आदि ने लघु कौमुदी और मध्य कौमुदी की रचना की । इस प्रकार लगभग ४०० वर्षों में पाणिनीय व्याकरण का पठन पाठन पाणिनाय सूत्र क्रम को छोड़कर प्रक्रियानुमार संकलित ग्रन्थों के आधार पर हो रहा है ।

प्रक्रियानुमारी ग्रन्थों से हानि

प्रक्रियानुमारी ग्रन्थों के द्वारा पाणिनीय व्याकरण के अध्ययन में छात्रों की कठिनाई बहुत बढ़ गई । पाणिनि ने सूत्र के संक्षेप के लिए जो अनुवृत्ति का प्रसार अपने ग्रन्थ में वता था और जिसके द्वारा उत्तरोत्तर सूत्रार्थ स्वतः स्पष्ट होता जाता था । अष्टाध्यायी सूत्रों का प्रक्रियानुमार संकलन में अनुवृत्ति का बोध सर्वथा अममभय हो गया । अनुवृत्ति का ज्ञान न होने में सूत्रार्थ का बोध होना अत्यन्त कठिन हो गया । अतः छात्रों को सूत्र के साथ-साथ सूत्र में ५ : ६ गुनी वृत्ति की भी कष्टान्ध करना पड़ता है । इतना महान् परिश्रम करने पर भी अष्टाध्यायी सूत्रपाठ क्रम में सम्मन्य करने वाला पूर्वापर विप्रतिषेध तथा पूर्वानिष्ठम् का प्रसार उनके बुद्धि में घात हो गया ।

प्रक्रियानुमारी ग्रन्थों द्वारा पाणिनीय व्याकरण के अध्ययन में छात्रों को कितनी कठिनाई का सामना करना पड़ता है और अष्टाध्यायी के स्वाभाविक क्रमानुसार कितनी सरलता में व्याकरण ज्ञान का बोध हो जाता है, इसकी विवेचना हमने अपने संकलित व्याकरण ज्ञान का इतिहास ग्रन्थ के १६ वें अध्याय में विस्तार में की है । इन उमरा यां पुनः विष्ट पेशु करना उचित नहीं समझते ।

अष्टाध्यायी क्रम का पुनरुद्धार

विगत ३ : ४ गताब्दों में पाणिनीय व्याकरण का अध्यायन सिद्धान्त कौमुदी आदि प्रक्रियानुमार संकलित ग्रन्थों के अनुसार प्रस-

लित हो चुका था। और अष्टाध्यायी सूत्र पाठ क्रमानुसारी पठन पाठन सर्वथा लुप्त हो चुका था। ऐसे काल में विक्रम स० १६१० के लगभग पाणिनीय व्याकरण के अप्रतिभ विद्वान् मथुरा निवासी श्री दण्डी स्वामी विरजानन्द जी का अष्टाध्यायी सूत्र क्रम से व्याकरण पढ़ने की विशेषता और प्रक्रियानुसारी ग्रन्थों से होने वाली हानि की उपज्ञा हुई। उन्होंने ३४ शताब्दियों से विलुप्त अष्टाध्यायी क्रम का पुनरुद्धार किया और घोषणा की—“अष्टाध्यायीमहाभाष्ये व्याकरणस्य द्वे पुस्तके” अर्थात्—व्याकरण के अष्टाध्यायी और महाभाष्य ये दो ही ग्रन्थ हैं।

श्री दण्डी विरजानन्द ने स० १६१० से अपनी पाठशाला में अष्टाध्यायी और महाभाष्य का पठन पाठन प्रारम्भ किया। इस समय श्री स्वामी विरजानन्द जी की आयु लगभग ७० वर्ष की थी। सन् १६१७ में श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती मथुरा पहुँचे और श्री दण्डी स्वामी विरजानन्द जी से महाभाष्य के द्वारा पाणिनीय व्याकरण का अभूतपूर्व पाण्डित्य प्राप्त किया। तत्पश्चात् उन्होंने न केवल अष्टाध्यायी और महाभाष्य के पठन पाठन पर विशेष बल ही दिया अपितु सिद्धान्त कौमुदी आदि के पठन पाठन की हानियाँ भी दर्शा कर उसका घोर विरोध किया।

ऋषि दयानन्द सरस्वती ने अपने सत्यार्थ प्रकाश ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका और सस्कार विधि में पठन पाठन का विस्तार से प्रतिपादन किया।

ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों को पढ़ कर आर्य समाज के प्रारम्भिक मनीषियों ने गुरुकुलों में अष्टाध्यायी के पठन पाठन का उपक्रम किया, परन्तु अष्टाध्यायी में निष्ठावान् अध्यापकों के अभाव में वह क्रम उचित रूत से प्रचलित न हो सका। पौराणिक अध्यापक स्पष्टतया कहने लगे कि अष्टाध्यायी से पण्डित नहीं बन सकता। इसका प्रभाव शनैः शनैः आर्य व्यक्तियों पर भी पड़ने लगा। और अनेक व्यक्ति तथा गुरुकुल अष्टाध्यायी से विमुख होने लगे।

अष्टाध्यायी क्रम के पुनः प्रवर्तक

ऐसे भीषण समय में ऋषि दयानन्द सरस्वती के वचनों में परम

निष्ठावान् दो व्यक्तियों ने अष्टाध्यायी क्रम के पुनः प्रवर्तन का बीड़ा उठाया। इनके नाम हैं “श्री पूज्य प० गङ्गार देव जी” और “श्री पूज्य प० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु।” दैवयोग में इन दोनों का परम्पर महयोग हो गया और उन्होंने मिलकर स्वर्गाय स्वामी सर्वज्ञानन्द जी महाराज के साधुआश्रम (अलीगढ़) में स० १९७७ में त्रिरजानन्द आश्रम की (कुछ समय परचान यह आश्रम साधु आश्रम अलीगढ़ में हल्कर अमृत-सर काशी लाहौर आदि स्थानों में प्रतिष्ठित होता रहा) स्थापना की। उक्त दोनों महानुभावों के अथक परश्रम और परम श्रद्धा में न केवल अष्टाध्यायी के वास्तविक पठन पाठन क्रम का पट्टिनार ही हुआ अपितु ऋषि दयानन्द सरस्वती के लेख की “अष्टाध्यायी और महाभाष्य के द्वारा ही व्याकरण का पूर्ण विद्वान् हो सकता है” कि पूर्ण सकता प्रकट हो गई। यद्यपि स० १९८५ में किन्हीं परिस्थियों के कारण दोनों ग्रन्थ पृथक् हो गए, तथापि अष्टाध्यायी क्रम पुनः प्रतिष्ठित और उसे परिष्कृत करने में दोनों का परस्पर हाथ रहा यही करना ठीक होगा।

यद्यपि आर्य समाज के क्षेत्र में अन्य अनेक महानुभावों ने अष्टाध्यायी के पठन पाठन क्रम को प्रचलित करने का प्रयत्न किया, परन्तु जैसी पूर्ण सफलता इन दोनों को प्राप्त हुई वैसी अन्यो को उपलब्ध न हो सकी। अष्टाध्यायी के पठन पाठन वास्तविक शैली इन दोनों महानुभावों की शिष्य परम्परा में ही प्रतिष्ठित है, यह करना शरतुक्ति नहीं, नर्तक्या सत्य है।

अष्टाध्यायी और महाभाष्य के पठन पाठन में सफलता प्राप्त करने के परचान श्री पूज्य प० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु ने निरन्तर और दर्शन शास्त्रों के ऋषि दयानन्द सरस्वती के दृष्टि कोण में अध्यापन अध्यापन पर परिश्रम किया और उन्हें इन विषय में भी पर्याप्त सफलता मिली। सन् १९५७ में देश विभाजन के काल में लाहौर में अलान्टना पना। मारो परिस्थिया बदल गई, पुनरपि आप अत्र भी यथा साधन अपना साधना में धरमर लगे हुए हैं और उन्नी का यह फल है कि अष्टाध्यायी के सफल पठन पाठन क्रम को देख कर काशी के अनेक पौराणिक विद्वान् भी अष्टाध्यायी क्रम की सफलता को स्वोत्तर पर चुने हैं। उन्नी के मरण पर परिश्रम में काशी राजकीय महानुभावानुभव की परीक्षाओं में अष्टाध्यायी महाभाष्य क्रमानुसारी व्याकरणपरचयन की स्थान

प्राप्त हो चुका है और वेद सम्बन्धी परीक्षाओं में भी नैरुक्त प्रक्रिया का सन्निवेश हो चुका है।

श्री पूज्य शंकर देव जी भी आज तक अष्टाध्यायी महाभाष्य के पठन पाठन में संलग्न हैं और निष्काम भावना से ऋषि दयानन्द के आदेश का पालन कर रहे हैं।

आर्य समाज के विद्या क्षेत्र में और विशेष कर ऋषि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित पठन पाठन विधि को वास्तविक रूप में सफल करने में इन महानुभावों ने जो मुक्त सेवा की है, वह अपनी उपमा नहीं रखता। सत्य है, सफलता तभी प्राप्त होती है जब मनुष्य निष्काम भाव से सतत् श्रद्धापूर्वक किसी कार्य में लगा रहे। इसलिए वेद ने कहा है—“श्रद्धया सत्यमाप्यते” (यजुः)।

किञ्चिन्निवेदनम्

समस्त भारतीय प्राचीन वाङ्मय संस्कृत भाषा में निबद्ध है। उस वाङ्मय में सभी विषयों पर महान् ग्रन्थ-राशि विद्यमान है। प्रत्येक विषय का जितना वैज्ञानिक वर्णन प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में उपलब्ध होता है उतना संसार की किसी भी भाषा के ग्रन्थों में नहीं मिलता। संसार की किसी भी भाषा का वाङ्मय भारतीय आर्ष वाङ्मय जितना प्राचीन और प्रामाणिक नहीं है। उस में न केवल भारत का, अपितु संसार के अधिकांश भाग का अति प्राचीन इतिहास सुरक्षित है।

भारतीय प्राचीन संस्कृति और सत्य इतिहास का ज्ञान बनना प्रत्येक भारतीय या आवश्यक कर्तव्य है। इस के लिए जब तक मूल संस्कृत ग्रन्थ न पढ़े जाएं तब तक उन ग्रन्थों का वास्तविक अभिप्राय कदापि समझ में नहीं आ सकता। जो व्यक्ति अंग्रेजी अनुवादों को पढ़ कर भारतीय संस्कृति और इतिहास को जानने और जनाने का प्रयत्न करते हैं वे स्वयं भी धोखे में रहते हैं और दूसरों को भी धोखा देते हैं। इसलिए प्रत्येक भारतीय को चाहिए कि वह न्यूनातिन्यून इतनी संस्कृत अवश्य सीखे जिससे रामायण महाभारत गीता मनु-स्मृति आदि ग्रन्थों को समझने में समर्थ हो सके।

संस्कृत भाषा के अध्ययन का मार्ग

सम्प्रति संस्कृत के दो मार्ग विशेष रूप से आ रहे हैं एक है

कतिपय शताब्दियों में चल रही संस्कृतियों की परिपाटी, और दूसरी स्कूल कालेजों के अंग्रेजी माध्यम द्वारा संस्कृत में पढ़े हुए श्री० ए०, एम० ए०, पी एच डी०, डॉलिट् आदिकों की। पुरानी परंपरा के अनुसार कारी आदि स्थानों में जिस क्रम से संस्कृत पढ़ाई जाती है उसके अनुसार बारह वर्ष पढ़ कर भी छात्र को व्याकरण का बोध नहीं होता अन्य विषयों का तो कहना ही क्या। दूसरे मार्ग में न केवल व्याकरण की उपेक्षा की जाती है अपितु उसके प्रति घृणा उपद्रव करके संस्कृत ग्रन्थों के पाठ मात्र द्वारा संस्कृत सिखाने का प्रयत्न किया जाता है। उसका फल यह होता है कि एम० ए और पी० एच डी० आदि उत्तीर्ण करने पर भी संस्कृत भाषा के साधारण सन्धि के नियमों का भी बोध नहीं होता।

इन दोनों परिपाटियों में उभयत्र समान रूप से एक दोष और है और वह है बड़ी आयु के छात्रों को बिना समझे रटने के लिए प्रेरित करना। इसका यह फल होता है कि स्कूल और कालेजों में लड़के संस्कृत लेने से घबराते हैं।

उचित मार्ग

संस्कृत सीखने का उचित मार्ग यह है कि संस्कृत पढ़ाते हुए माथ माथ उसके व्याकरण के नियमों का भी शनैः शनैः यथा शक्ति उचित बोध कराया जाए। इसी लिए महामुनि पत्तञ्जलि ने “व्याकरण” नाम लक्षण करते हुए लिखा है—

लक्षणलक्षणं व्याकरणम्

अर्थान्—लक्षण और लक्षण = उदाहरण और नियम दोनों के समुदाय का नाम व्याकरण है।

लक्षणों का लक्षण = प्रयोगों के माथ समन्वय करके ज्ञान न कराया जायगा तब तक न व्याकरण का बोध होगा और न भाषा सा। इसी दृष्टि में भगवान् पाणिनि ने भी अष्टाध्यायी रूपी लक्षण ग्रन्थ के प्रथम में माथ माथ लक्षण रूप जाम्बवती विजय नामक महाराज्य की रचना भी की थी।

व्याकरण के नियमों के परिज्ञान के विषय में क्रमशः श्रुतता में

श्री पाणिनि के काल और उनके रचे अष्टाध्यायी, धातुशास्त्र, गणशास्त्र, जाम्बवती विजय महाराज्य आदि के विषय में हम अपने ‘संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, नामक ग्रन्थ में विस्तार में लिख चुके हैं।

सूक्ष्मता की ओर बढ़ना चाहिए। जब विद्यार्थी को न्यूनातिन्यून पञ्चतन्त्र समझने की योग्यता हो जाए तब उसे व्याकरण के सूक्ष्म नियम बताए जाएं, जिनके द्वारा संस्कृत सीखने वाले थोड़े प्रयत्न से अधिक से अधिक प्रयोगों की ऊहा करने में स्वयं समर्थ हो सके।

इस कार्य के लिए पुरानी परिपाटी से पढ़ाने वाले लघु कौमुदी का आश्रय लेते हैं, परन्तु वह छोटा सा ही ग्रन्थ इतना दोषपूर्ण है कि विद्यार्थी रटते रटते दो वर्ष में भी उसका पार नहीं पाते। अतः वह ग्रन्थ सुकुमार मति वालका तथा प्रौढ व्यक्तियों दोनों के लिए न केवल अहितकर ही है अपितु संस्कृत भाषा के प्रसार में महती बाधा स्वरूप है। उसकी अपेक्षा तो साहित्य ग्रन्थों के द्वारा संस्कृत का बोध प्राप्त कर लेना श्रेयस्कर है।

सरलतम मार्ग

संस्कृत भाषा सिखाने के लिए अध्यापक के लिए आवश्यक है कि वह पञ्चतन्त्र आदि ग्रन्थों को पढ़ाता हुआ साथ साथ व्याकरण के उन नियमों का भी बोध करावे जिनके द्वारा साधारण संस्कृत जानने वाला सरलता पूर्वक अधिक से अधिक शब्दराशि को स्वायत्त कर सके। व्याकरण के वे नियम चाहे अपने शब्दों में बताए जाएं या किसी व्याकरण ग्रन्थ के आश्रय से। भूमति उपलब्ध ममस्त व्याकरणा का अनुशीलन करके हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि व्याकरण के नियमों का बोध कराने के लिए पाणिनीय व्याकरण सर्वश्रेष्ठ है। परन्तु उसका बोध पाणिनीय क्रम अर्थात् अष्टाध्यायी के अपने क्रम के अनुसार ही कराया जाए तभी पढ़ने वाले छात्र के लिए हितकर होता है।

पाणिनि ने संस्कृत भाषा की अनन्त शब्दराशि का बोध केवल चार सहस्र सूत्रों द्वारा संपन्न करा दिया। इन सूत्रों द्वारा वैदिक तथा लौकिक सभी शब्दों का बोध हो जाता है। पाणिनि की शैली इतनी सरल सुबोध और वैज्ञानिक है कि उसके द्वारा साधारण संस्कृत जानने वाला व्यक्ति भी अल्प समय में इसे स्वायत्त करके शब्द शास्त्र का पारङ्गत हो जाता है।

अष्टाध्यायी का दो प्रकार का पठन पाठन

जो व्यक्ति संस्कृत भाषा का प्रकाण्ड परिद्धत बनना चाहता है विशेष कर वैदिक वाङ्मय का उसके लिए सम्पूर्ण अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य का अध्ययन करना परम आवश्यक है। यद्यपि साहित्य ग्रन्थों के

अध्ययन के लिए अष्टाध्यायी से भिन्न अन्य व्याकरण ग्रन्थों का भी आश्रय लिया जा सकता है, परन्तु वैदिक वाङ्मय का ज्ञान बिना अष्टाध्यायी के कदापि सम्भव नहीं है। वैदिक वाङ्मय में उदात्तादि स्वरों का ज्ञान हुए बिना उसका सूक्ष्म तात्पर्य प्रकट नहीं होता। ऋग्वेद स्वर शास्त्र का सूक्ष्म ज्ञान एक मात्र अष्टाध्यायी में निहित है। प्रातिशाख्य आदि भी स्वर की उतनी सूक्ष्म विवेचना नहीं करते जिमसे अर्थ ज्ञान में सहायता मिल सके।

सम्पूर्ण अष्टाध्यायी और महाभाष्य का सम्यक अध्ययन अष्टाध्यायी के क्रम से लगभग ४ वर्ष में बड़ी सरलता पूर्वक हो सकता है। अष्टाध्यायी के क्रम से ४ वर्ष में शास्त्रशास्त्र का जितना ज्ञान हो जाता है उतना लघुनीमुनी, सिद्धान्तनीमुनी और शंकर आदि ग्रन्थों के द्वारा १० वर्ष में भी नहीं होता। इसलिए जो व्यक्ति संस्कृत भाषा की अनन्त शास्त्र राशि को स्वायत्त करना चाहता है और विशेष करके वैदिक वाङ्मय के वास्तविक अभिप्राय तक पहुँचना चाहता है उसे पाणिनीय व्याकरण का ही अध्ययन करना चाहिए और वह भी भगवान् पाणिनि द्वारा रचित अष्टाध्यायी सूत्रपाठ के क्रम में ही। तभी वह अपने इष्ट लक्ष्य तक पहुँच सकता है, अन्यथा असम्भव है।

अष्टाध्यायी का मञ्जित मस्करण

आज कल के यह युगमाय युग में और विशेष कर उन व्यक्तियों के लिए जो आनोविना के लिए दिन रात सत्रप करते हुए संस्कृत मीखने के अभिलाषी हैं उनके लिए सम्पूर्ण अष्टाध्यायी का पठन-पाठन क्रम युक्त नहीं है। उनके लिए अष्टाध्यायी का एक मञ्जित मस्करण तैयार करना चाहिये। व्याकरण के प्रधान नियमों का बोध कराने के लिए सूत्र पाठ क्रम में ही सूत्रों का मस्करण करना चाहिए और इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि सूत्रार्थ समझने में प्रयत्न मग्य अतुष्टि का नाश न हो और सभी मुख्य-मुख्य विषय तथा सूत्र मस्कृत हो जायें।

ऋग्वेद व्याकरण शास्त्र अथर्ववेद शास्त्र परिद्धतम्न्य अनेक व्यक्ति वेदार्थ में स्वर की न केवल उपेक्षा करते हैं अपितु उसे वेदार्थ में बाधक मानते हैं। ऐसे व्यक्तियों को पहले स्वर शास्त्र का सम्यक् ज्ञान करके उनकी आलोचना करनी चाहिए। स्वर ज्ञान वेदार्थ में किना महायुक्त है इसके लिए देखो हमारा 'वैदिकशास्त्र' नामक लेख।

अष्टाध्यायी के संक्षिप्त संस्करण का प्रयास

मैंने सवत् १९६० में काशी में दर्शन शास्त्र का अध्ययन करते हुए अपने मित्र स्वर्गीय प० मुरारीलाल जी वैद्य को व्याकरण का बोध कराने के लिए अष्टाध्यायी के लगभग ७०० सूत्रों का सकलन किया था और उन्हें उसी के आधार पर सस्कृत का बोध भी कराने की चेष्टा की थी। उसमें सफलता मिलने से मेरी उसी समय से यह धारणा हो गई थी कि अष्टाध्यायी का भी एक संक्षिप्त संस्करण सरल व्याख्या सहित प्रकाशित करना चाहिए, जिससे उन व्यक्तियों को भी सस्कृत का सरलता से बोध हो जाए जो सम्पूर्ण व्याकरण पढ़ना नहीं चाहते या जिनके पास इतना समय नहीं है। परन्तु मैं चाहता हुआ भी अनेक बाधाओं के कारण अपने विचार को कार्यरूप में परिणत न कर सका।

इसके अनन्तर स० २००७ में श्री पूज्य गुरुवर्य प० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। इसके परीक्षण तथा प्रचार के लिए उन्होंने काशी में पाणिनि महाविद्यालय की स्थापना की। उसमें उन्हें बहुत सरलता मिली। श्री पूज्य गुरुवर्य से मैंने प्रार्थना की कि वे इसे लेख बद्ध करें, परन्तु अनेक कार्यों में व्यस्त रहने के कारण वे इसे लिखित रूप में परिणत न कर सके। स० २००६ में पाणिनि महाविद्यालय की शाखा सुलतानपुर (उत्तर प्रदेश) में खुली। उसमें प० देव प्रकाश जी ने हाईस्कूल की नवम दशम श्रेणी के छात्रों को अष्टाध्यायी के क्रम से व्याकरण पढ़ाया। छात्रों को दो वर्ष के काल में ही मैट्रिक के सभी विषयों को पढ़ते हुए काशी की मध्यमा के ममकञ्च व्याकरण आदि का बोध हो गया। यह एक नवीन परीक्षण था, जो कि पर्याप्त सफल रहा। तदनन्तर स० २०११ के प्रारम्भ में देहली में पाणिनि महाविद्यालय की स्थापना की गई। उसमें प्रौढ व्यक्तियों को पढ़ाने के लिए प० देव-प्रकाश पातञ्जल को ही नियुक्त किया गया।

प० देवप्रकाश पातञ्जल को पढ़ाते समय उपयुक्त ग्रन्थ का अनुभव स्वतन्त्रता था। अतः उन्होंने अपने अध्यापन के अनुभव के आधार पर महान् परिश्रम करके इस ग्रन्थ की रचना की।

प्रस्तुत ग्रन्थ

अष्टाध्यायी में से उपयोगी सूत्रों को छाटना और उनकी व्याख्या करना सरल कार्य नहीं है। इसमें दृष्टि भेद से प्रत्येक व्यक्ति का भिन्न-

भिन्न मत हो सकता है। फिर भी ५० देवप्रकाश पाठशाला ने जो महाने प्रयत्न किया वह प्रशंसनीय है। इसके लिए मैं उनका धन्यवाद करता हूँ कि उन्होंने संस्कृत सीखने वाले व्यक्तियों के लिए बहुत उपयोगी ग्रन्थ तैयार कर दिया है। इसके उपयोग में लाना और लाभ उठाना अभ्येताओं का काम है।

यह ग्रन्थ इस दृष्टि से नहीं लिखा गया है कि इसे पढ़कर कोई व्यक्ति व्याकरण शास्त्र का ग्रीढ़ परिचित रहेगा, अपितु इसकी रचना व्याकरण का व्यावहारिक प्रयोग ज्ञान कराने के लिए इसकी रचना की गई है।

५० देवप्रकाश जी ने ग्रन्थ लिखकर मुद्रण से पूर्व मुझे पूर्णतया देखने और परिष्कार करने के लिए आग्रह किया। मैं काशी में निरन्तर १॥ वर्ष रोगी रह कर चहा आया ही था, अभी रोग से आक्रान्त था, निर्मलता अधिष्ठ थी तथा नये स्थान पर नये कार्य का भार अधिक पडना स्वाभाविक था। इन सब परिस्थितियों में मेरे लिए ग्रन्थ के परिष्कार का भार उठाना सर्वथा असम्भव था, परन्तु मैं उनके आग्रह को टाल भी नहीं सकता था क्योंकि उन्होंने एक प्रकार से मेरे चिरकाल के विचार में मूर्तिरूप दिया था। अतः मैंने उपर्युक्त अत्यन्त विषम परिस्थितियों में भाजितना सहयोग दिया जा सकता था, देना उचित समझा।

मैंने इस सम्पूर्ण ग्रन्थ का सरसरी दृष्टि से देखा और अनेक-अनेक उचित मशौघन किए। कई सूत्रों पर अपने नए विचार टिप्पणियों में दर्शाए। जिन विषयों या श्र्लों पर मेरा तथा लेखक का मौलिक विचार भेद था उसे वैसा ही रहने दिया।

लेखक ने इस ग्रन्थ को दो दृष्टियों से लिखा है। एक है संस्कृत सीखने वाले ग्रीढ़ व्यक्तियों को व्याकरण के नियमों का बोध कराना और दूसरी संस्कृत की विविध परीक्षाओं में प्रचलित लघुसूत्रों के स्थान पर अष्टाध्यायी के क्रम में सरल ढंग में संस्कृत व्याकरण का ज्ञान करना। अतः यह ग्रन्थ दोनों ही प्रकार के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

यह अपने ढंग का प्रथम प्रयास है। आशा है जनता इसका समुचित स्वागत कर लाभ उठायेगी।

प्रस्तावना

अग्निमोडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतार रत्नधातमम् ॥ ऋ० १. १. १.

अष्टाध्यायी पढ़ने की अभिलाषा

जब मैं दूसरी या तीसरी श्रेणी में पढ़ता था। उस समय सनातन धर्म तथा आर्य समाज के विद्वानों में शास्त्रार्थ श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस सौभाग्य का विशेष कारण यह था कि मेरे पिताजी सनातन धर्म हरिकीर्तन समाज के मन्त्री थे तथा मेरे ज्येष्ठ भ्राता आर्यसमाज के मन्त्री थे। एक स्थान का शास्त्रार्थ मुझे स्मरण है। आर्यसमाज का उत्सव हो रहा था, उसमें मेरे पिताजी के प्रबन्ध से सनातन धर्म के अच्छे-बुरे विद्वान् वहाँ पर शास्त्रार्थ करने के लिये पधारे थे। मेरे पिता जी तथा भ्राता जी में भी सदा शास्त्रार्थ होता रहता है। इन अवसरों पर स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की भी चर्चा आया करती थी। मेरे बड़े भाई सदा कहा करते थे कि वेदों में यह प्रमाण आया है अतः सर्वथा मान्य है। वेद स्वतः प्रमाण है क्योंकि वह अपौरुषेय है। वेदों को छोड़कर अन्य ऋषि-महर्षि प्रणीत जितने ग्रन्थ हैं वे सभी परतः प्रमाण है। संस्कृत का ज्ञान अष्टाध्यायी से ही हो सकता है इत्यादि। इन बातों को सुनकर मेरे मन पर प्रभाव पड़ता था कि वेदों को पढ़ने के लिये अष्टाध्यायी ही पढ़नी चाहिये। यह भावना मेरे में तभी जागृत हुई जब मैं ८, ९ वर्ष का रहा होगा। १९३३ ई० में मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् मेरे ग्राम में एक संस्कृत टोल विद्यालय था, उसमें पढ़ने के लिये मुझ कहा गया। मैं वहाँ पढ़ने लगा। लघुकौमुदी पढाई जाती थी। संस्कृत के प्रधानाचार्य पूज्य प० रत्नेश्वरी पाण्डेय जी थे। उन्होंने लघुकौमुदी पढ़ाना प्रारम्भ किया। उस समय तक संस्कृत में कुछ भी नहीं जानता था। पण्डित जी अर्थ भी पढ़ाते थे और कण्ठस्थ करने के लिये कहते थे। अन्तु यह क्रम कुछ समय तक चला परन्तु रटते-रटते मेरी व्याकरण से अनिच्छा हो गई। जिस कारण अपने पिता जी से कहा कि मैं संस्कृत नहीं पढ़ूँगा।

वहाँ से पढ़ाई छोड़ने के पश्चात् मैं अपने जिले के नगर मोतीहारी (बिहार) के हाई स्कूल में पढ़ने लगा। वहाँ से जाने का सारा श्रेय स्वर्गीय

श्री बा० राममूरत सिंह जी को है। वहाँ आपने नेर पढ़ने की मांग द्यवस्था की। आप अत्यन्त ही सज्जन, मरल हृदय और मिलनसार थे। वहाँ मैंने हार्ट स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् प्रो० डा० विद्वनाथप्रसाद वर्मा (राजनीति विभाग) पटना कालेज, की प्रेरणा से मैं पटना आया। यहाँ अपने अध्ययनकाल में मुझे जिनमें प्रेरणा मिली है वे हैं बा० कामाध्या प्रसाद तथा प्रो० आद्यानरण शर्मा, पटना कालेज। इसके बीच में डा० वर्मा व माध पूज्य प० ब्रह्मानन्द जी से अष्टाध्यायी भी पढ़ता रहा। समय चल रहा था। देश में क्रांति की लहर दौड़ रही थी। विद्यार्थी वर्ग उसमें अछूता न था। अनेक विद्यार्थियों के माथ मेंने भी कालेज छोड़ दिया। यही गट थी कि देग स्वतन्त्र हो। जब तक तेग स्वतन्त्र न होगा मैं भी कालेज में नहीं पढूँगा, ऐसी मैंने प्रतिज्ञा की। लगभग ६ महीने तक कांग्रेस का कार्य करता रहा। यहाँ मेरे पूज्य बा० राममूरतसिंह जी ने फिर मार्ग प्रदर्शन किया और ससृष्ट अध्ययन की ओर आकृष्ट किया। उनकी आज्ञा मैंने मान ली और परम विद्वान् प० ब्रह्मानन्द जी से अष्टाध्यायी पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। हार्ट स्कूल में ससृष्ट भी मेरा विषय था अतः सूत्रों को समझने में विशेष कठिनाई नहीं होती थी। पठन-पाठन के विषय में पण्डित जी कहा करते थे कि या तो वे स्वयं अष्टाध्यायी पढ़ाते थे या रावी नदी के तट पर पूज्य प० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञानु।

अष्टाध्यायी का अध्ययनकाल

पूज्य पण्डित जी के पटना चले जाने पर मैंने अष्टाध्यायी पढ़ने के उद्देश्य से पत्रात्र जाने का निश्चय किया और १९४३ ई० में वहाँ पर किमी तरह पहुँच गया।

वहाँ पर पूज्य गुरुवर्य (श्रीमान् प० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञानु) के दर्शन हुए। उन्होंने कहा कि ससृष्ट पढ़ने के मार्ग बहुत ही कठिन हैं आप कालेज में पढ़कर वहीं प्रोफेसर हो सकते हैं, अतः यहाँ पढ़ने से क्या लाभ? मैंने कहा मैं तो निश्चय करके ही बिहार से यहाँ आया हूँ। वे बोले, यहाँ जो अष्टाध्यायी कण्ठस्थ करके आता है उसी से हम पढ़ने की बात करते हैं। मैंने कहा कि मैं अष्टाध्यायी कण्ठस्थ कर लूँगा। इत्यादि अनेक प्रकार की बातें हुईं और उन्होंने मुझे अपने आश्रम में स्थान दिया। आर्थिक सहायता के लिये आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, पंजाब का मैं आभारी हूँ विशेषकर महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज का, जिन्होंने लाहौर में सदा मेरी सहायता की। यहाँ आश्रम में पठन और पाठन की पद्धति चरितार्थ होती थी और आज भी है।

बड़े विद्यार्थी छोटे विद्यार्थी को पढ़ाते हैं और पूज्य गुरु जी बड़े विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं। अतः मुझे अष्टाध्यायी पढ़ाने वाले बड़े विद्यार्थी श्री ५० धर्मव्रत जी तथा श्री ५० वाचस्पति जी विभु (बुलन्दशहर) थे। महाभाष्य प्रारम्भ में पूज्य श्री गुरुजी ने पढ़ाया। तत्पश्चात् श्री ५० मुनीश्वर जी (देवरिया) तथा श्री ५० धर्मदेव जी (काशी) पढ़ाते रहे। तीन वर्ष तक यह क्रम चला। इस पढ़ाई पर गुरुजी का सदा निरीक्षण होता रहा वे पाठ भी सुनते रहते थे। तीन वर्ष अर्थात् १९४३-४६ तक मैंने अष्टाध्यायी और महाभाष्य की शिक्षा गुरु कृपा से प्राप्त की। इसके पश्चात् प्रतिष्ठित शास्त्रज्ञ श्री ५० युधिष्ठिर जी मीमांसक से मेरी निरुक्त की शिक्षा प्राप्त की। इसमें भी गुरु जी का पर्याप्त हाथ रहा। इन महानुभावों को जितनी भी कृतज्ञता प्रकट करूँ थोड़ी है।

अष्टाध्यायी का अध्यापन काल

सन् १९४६ के मध्य में आश्रम छोड़कर देवरिया चला आया। यहाँ पूज्य ५० इन्द्रदेव जी ने दर्शन शास्त्र का अध्ययन कराया। आप छात्रों के बड़े ही हितैषी तथा दर्शन शास्त्र के प्रतिभासम्पन्न विद्वान् हैं। वहाँ ही राधाकृष्ण मस्कन कालेज के आचार्य श्री ५० वामुदेव जी मिश्र से मुक्ताबली आदि नव्य-न्याय का भा अध्ययन करता रहा। परन्तु कारणवश १९४७ ई० में कलकत्ते जाना पड़ा जहाँ देश के स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात् कालेज में पुनः पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। परन्तु फिर १९५० ई० में पूज्य गुरुजी के पास बनारस चला आया।

आपने मुझे अष्टाध्यायी पढ़ाने के कार्य में लगाया। १९५२ ई० में मुलतानपुर पाणिनि महाविद्यालय में आचार्य पद पर मुझे भेजा गया। वहाँ दो वर्ष अष्टाध्यायी पढ़ाने का अवसर मिला। वहाँ पर मैंने ६ बँधे श्रेणी के छात्रों को तथा ६ बँधे श्रेणी के छात्रों को अष्टाध्यायी पढ़ाना प्रारम्भ किया। बोर्ड पर उनकी लिखकर बताना पड़ता था क्योंकि उस समय कोई हम लोगों की पढ़ति की पुस्तक नहीं थी। और न आज तक है। क्योंकि आज तक प्रथमा वृत्ति की सर्वाङ्गपूर्ण पुस्तक लिखी ही नहीं गई, ऐसी मेरी धारणा है। पढ़ने के समय में वाशिका से सहायता ली जाती थी और आज भी वाशिका से ही ली जाती है। ग्रन्थों के अभाव में नामिक, सन्धि विषय और आख्यातिक से सहायता लेकर छात्र मुलतानपुर में पढ़ते रहे। वहाँ से प्रौढ पाठशाला में पढ़ाने के लिये मुझे देहली भेजा गया। यहाँ भी गत दो वर्षों से पढ़ा रहा हूँ।

अध्यापन में अनेक अनुभव हुए हैं। सूत्रों की व्याख्या बोर्ड पर लिखने-

निखान में अध्यापक और छात्रों दोनों का जो कठिनाई पहनी है उन युक्त भोगी हो जानने हैं। यह गणित आदि के समान तो विषय नहीं है जो बाह्य पर टाँक ममभाषा जा सके। सूत्रों की व्याख्या आदि निखन-निखन छात्र भी कठिनाई का अनुभव करते हैं। जो 'कार्य' कुछ मन्त्राहो में समाप्त होना चाहिये उस पूर्ण करने में महीन लग जाते हैं। यह सब ध्यान विषय की धार्य पद्धति पर ममभाषने वाली पुस्तक के अभाव की बात है। जिना किमी पुस्तक के कठिनाईयाँ अनुभव होती हैं।

ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा

आज भारत स्वतन्त्र है तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी स्वीकृत हो चुकी है। भारतीय सभ्यता एवं सभ्यता का मूल श्रोत मस्कृत है इसमें किमी व्यक्ति को भी विप्रतिपत्ति नहीं है। गत दो सौ वर्षों से जो पाश्चात्य विद्वानों ने वैदिक सभ्यता पर आक्षेप उठाये हैं तथा कपानकलिन तथाकथित भारतीय भाषा को सभी भाषाओं की जननी है, धार्य की, जिसका सारा विश्व मानता है। देश में सभ्यता और सभ्यता की आवश्यकता है, क्योंकि कोई भी देश अपनी सभ्यता एवं सभ्यता को छोड़ निश्चय ही अस्तित्व का नहीं प्राप्त कर सकता। आज विशेष-विशेष शब्द चाहिये। जिसके निर्माणवाच व्याकरण की आवश्यकता है। मेरा विश्वास है कि जहाँ स य सारी भाषाएँ निकली हैं वहाँ स ही प्रचलित सभी भाषाओं के लब्ध उपलब्ध हो सकते हैं, दूसरा कोई भी उपलब्ध नहीं। और वह भाषा सभ्यता है। विश्वविद्यालय में पढ़ने से मेरा निश्चित विश्वास हो गया कि यूरोप का सारा आक्षेप भ्रान्ति पूर्ण ही नहीं अस्तित्व प्रदर्शक निर्मूल है। यह कहने में थोड़ी भी अत्युक्ति नहीं कि इस देश का तथा पश्चिम के देशों की विचारधारा की एक मात्र भित्ति अष्टाध्यायी है। आज अष्टाध्यायी की वह स्थिति हो चुकी है जिससे जिना इसकी सहायता लिये मानव सभ्यता भाषा सम्बन्धी कोई विचार ही नहीं कर सकता। देश के सामने भी प्रश्न है सभ्यता का प्रचार कैसे हो। आज सभ्यता अनिर्वास हो या नहीं लेकिन यह समय की पुकार है कि आगामी कुछ वर्षों में सभ्यता शिक्षा को अनिर्वास करनी पड़ेगी। इन सब बातों का ध्यान में रखते हुए समय के अनुसार अष्टाध्यायी का पुनरुद्धार आवश्यक है। उसकी प्राचीनता के कारण नहीं बल्कि इसलिये कि जिना इसके सभ्यता का प्रचार सम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इन्हीं कारणों से तथा सभ्यता व्याकरण को सुगम और सुवीच बनाने की बलवती इच्छा ने मुझे यह ग्रन्थ लिखने की प्रेरित किया जो अब अध्यापक सम्मुख है।

संस्कृत ज्ञान की दो धाराएँ

दो प्रकार की संस्कृत भाषा है। (१) वैदिक और (२) लौकिक। जहाँ तक लौकिक संस्कृत के ज्ञान का सम्बन्ध है वहाँ तक तो अंग्रेजी ढंग से लिखे गये व्याकरण से कुछ काम चल सकता है। क्योंकि साधारण ज्ञान लट्, लोट्, लड, विधिलिङ्, लृट् इन पाँच लकारों से हो जाता है। लेकिन जब अदादि और जुहोत्यादि गण के धातुओं के रूप चलाने पड़ते हैं तो समस्या जटिल हो जाती है जिसका समाधान इस पद्धति से सम्भव नहीं। वहाँ पर बिना सूत्र को दृष्टिकोण में रखे हुए रूप याद रखना अत्यन्त ही कठिन है। फिर भी सामान्य ज्ञान इस पद्धति से हो सकता है। लेकिन इस ज्ञान की इयत्ता पञ्चतन्त्र तक कठिनता से कही जा सकती है इसका पश्चान् अंग्रेजी पद्धति पर लिखे व्याकरण की कोई गति नहीं। जहाँ लौकिक साहित्य में महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, चम्पूकाव्य और गद्यकाव्यों को समझने की बात है वहाँ यह व्याकरण काम नहीं दे सकता। समासों को यथातथ्य समझने के लिये इन व्याकरणों से काम नहीं चल सकता है।

वैदिक साहित्य में तो इन व्याकरण के ग्रन्थों से काम चलना असम्भव है। वहाँ पर पदे-पदे धातु और प्रत्यय की समस्या बनी रहती है। वहाँ सूत्रात्मक व्याकरण सफल होगा, इन व्याख्यानरूपक व्याकरण से काम नहीं चल सकता।

हाँ एक स्वरूप है जिससे अंग्रेजी व्याकरण से भी काम चलाया जा सकता है। वह है लौकिक साहित्य के लिये काले महोदय का उच्चतर व्याकरण आदि। यदि अक्षर-अक्षर कण्ठाय हो जाय तो काम चल सकता है। पूर्ण पाण्डित्य फिर भी नहीं हो सकता। प्रचलित धारा में सिद्धान्तकौमुदी, सारस्वत चन्द्रिका इत्यादि ग्रन्थ हैं। इसके विषय में अधिक न कह कर इतना ही कहना उचित है कि जहाँ आज संस्कृत की अवनति के अनेक कारण वर्तमान हैं वहाँ सिद्धान्तकौमुदी का पठन पाठन भी एक अपरिहार्य कारण है। इसी सिद्धान्तकौमुदी के कारण भी लोग संस्कृत को रटन्त वाली भाषा समझते हैं। इसकी प्रतिक्रिया यहाँ तक हुई कि किसी प्रान्त में लघुत्रयी, बृहत्त्रयी ही पढ़ कर सन्तोष करने की भावना हो गई। कही शब्दरूप, धातुरूप ही रट कर काम चलाने की भावना हो गई। व्याकरण जो साधन था आज साध्य हो गया। आज भारत के संस्कृत विद्यालयों में पढ़ने वाले छात्रों की संख्या भी अल्प हो रही है इसकी कठिनता प्रत्यक्ष ही है क्योंकि इस बात को बड़े-बड़े विद्वान अनुभव कर रहे

हैं। क्योंकि लगभग सभी परीक्षाओं से फक्किवा का अर्थ निकाल दिया गया। इन उपर्युक्त बातों पर विचार करने से यह सिद्ध है कि आज की दोनों प्रक्रियाओं से संहृत का पढ़ना पढ़ाना असफल हो चुका है। जो विद्वान् १०, १५ वर्ष सिद्धान्त की मुद्दा में ही लगे रहते हैं उनकी बात यहाँ नहीं कही जा रही है। जो इतना समय लगावेगे उनका तो व्याकरण का ज्ञान होना ही चाहिये। उनमें भी अधिकांश को साधुवाच पर नियन्त्रण नहीं होता बल्कि कुछेक सूत्रों पर शास्त्रार्थ नटपन्याय का लेकर याद रहता है। अतः सर्व साधारण छात्रों के लिये वही मार्ग उपयुक्त है जिसे मार्ग से आज से ४८०० वर्ष पूर्व तक्षशिला में बैठ कर आचार्य पाणिनि अपनी अष्टाध्यायी पढ़ाया करने थे। उन्हीं की पद्धति से संहृत का उद्धार हो सकता है अन्यथा कदापि नहीं।

पाणिनि की शैली

आचार्य पाणिनि का अष्टाध्यायी ग्रन्थ प्रक्रिया ग्रन्थ नहीं अपितु प्रकरण ग्रन्थ है। आचार्य ने प्रक्रिया के अनुसार ग्रन्थ का प्रवचन नहीं किया बल्कि प्रत्येक प्रकरण के सूत्रों को यथा स्थान रखा है। अष्टाध्यायी में एक स्थान पर सुबन्त या तिङन्त के प्रकरण नहीं है जा व्याकरण का मुख्यांश है। इस समस्या को कैसे सुलझाया जाय यह प्रश्न उपस्थित है। आज पाणिनि भगवान् नहीं हैं परन्तु उनकी अष्टाध्यायी है। कारण से कार्य की उत्पत्ति होती ही है। अतः कारणशरीर से उभ कार्यशरीर का भी प्ररपक्ष हो गया। मेर पूज्य गुरुजी ने जिस पद्धति से मुझे पढ़ाया, उसी को मैं पाणिनि की शैली समझता हूँ क्योंकि इसी आर्य शैली से ही केवल ३ वर्ष में ही अष्टाध्यायी महामाध्य वेद द्वारा लौकिक तथा वैदिक शब्दों का पूर्ण ज्ञान बन सकता है, दूसरा कोई मार्ग अभी तक नहीं निकला।

अष्टाध्यायी-प्रकाशिका की शैली

प्रत्येक सूत्र का पदच्छेद विभक्ति, समास अनुवृत्ति, अर्थ, उदाहरण देकर आगे पीछे के सभी सूत्रों को लगा कर उदाहरणों को सिद्ध किया गया है। इस ग्रन्थ में उदाहरण अधिकतर काशिका से लिये गये हैं। समास के विग्रह में कहीं पर जाति पक्ष और कहीं पर व्यक्ति पक्ष का समाश्रयण किया गया है। कहीं-कहीं एक ही शब्द के विग्रह में इन दोनों पक्षों का आश्रय किया गया है। समास करने के समय अधिकतर तो प्रथमा विभक्ति में रूप खला कर विग्रह किया है और कहीं-कहीं समझने में दुर्बल न हो जाय इस विचार से प्रातिपदिक का ही रूप विग्रह में रहने दिया है। बड़े कोष्ठक में अनुवृत्ति लिख दी

गयी है। विभक्ति निरूपण में विभिन्न विभक्तियों के होने के कारण यत्र-तत्र निर्देश किये गये हैं।

व्याख्याओं की विशेषता

आजकल व्याकरण कठिन इसलिए भी हो गया है क्योंकि भूमिका रूप से उसके विषय में कुछ समझाया नहीं जाता और सूत्र प्रारम्भ कर दिया जाता है। अतएव इन बातों को ध्यान में रख कर ४ व्याख्यान सामान्य संस्कृत ज्ञान के निमित्त भेने लिखे हैं। उन व्याख्यानों को पढ़ने के पश्चात् ही पाचवाँ व्याख्यान पढ़ना चाहिये। पंचम से अन्त तक के सभी व्याख्यान पूर्ण रीति सं समझकर आगे पढ़ना चाहिये। जो बात समझ में न आवे उसे व्याख्यान में ही खोजना चाहिए। आवश्यकतानुसार सब कुछ लिखन का प्रयत्न किया गया है। मैंने छात्रों को पढ़ाकर कठिनाइयों के अनुभव के पश्चात् ही बातें लिखी हैं।

सम्भव है, इन व्याख्यानों को समझा और कुछ कुछ याद करने में समय लग जाय। जब व्याख्यानों को समझ लिया जायगा तो शेष अष्टाध्यायी प्रकाशिका अष्टम अध्याय तक केवल एक घण्टा प्रतिदिन परिश्रम करने से ५ मास में याद हो सकता है। शेष नाम और व्याख्यात प्रकरण न्यूनातिन्यून १५ दिन में समाप्त हो सकते हैं। एक वर्ष के समय में तो विद्यार्थी सूत्र भी कण्ठस्थ करके पढ़ सकते हैं। सूत्रों का कण्ठस्थीकरण रामलाल कपूर ट्रस्ट अमृतसर द्वारा प्रकाशित अष्टाध्यायी से चिह्न लगाकर ही करना चाहिए। अष्टाध्यायी के पठन पाठन क सरलतम उपायों पर मेरे पूज्य गुरुजी द्वारा प्रकाशित वेदवाणी के अङ्को से सग्रहीत पाठमाला भी संस्कृत बोध में अनुपम सहायक है। उन पाठमालाओं के पढ़ने से भी महान् लाभ होगा। इस प्रकार से अष्टाध्यायी प्रकाशिका से व्याकरण का व्यावहारिक पूर्ण ज्ञान प्रौढों को केवल ६ मास और छात्रों को एक वर्ष में हो जायेगा ऐसी मेरी धारणा है। इन व्याख्यानों में मैंने जैसे छात्रों को पढ़ाया है उसी भाषा का प्रयोग किया है। मेरा उद्देश्य भाषा को प्रशस्त करना नहीं अपितु समस्याओं को सुलभाना है।

कृतज्ञता प्रकाश

सर्वप्रथम प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद गुरुवर के चरण कमलों में अपनी श्रद्धा अर्पित करता हूँ जिनकी कृपा से मैं इस ग्रन्थ के लिखने में समर्थ हो सका। प० युधिष्ठिर जी भीमामक का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने अस्वस्थ रहते हुए भी ग्रन्थ का आद्योपान्त निरीक्षण करके उसका परिष्कार किया और यत्र तत्र आवश्यक टिप्पणियाँ देकर इस ग्रन्थको अत्यधिक उपादेय बनाया।

अपने अभिन्न हृदय प० सत्यदेव जी मिश्र को धन्यवाद देना क्या उचित होगा। वस्तुतः इस ग्रन्थ को लिखने की सारी प्रेरणा उन्हीं से मिली है और इसके प्रकाशन में भी उन्हीं जो सक्रिय सहायता दी है वह लिखी नहीं जा सकती। यह उन्हीं के प्रेम, उत्साह और परिश्रम का परिणाम है कि यह ग्रन्थ अपने इस रूप में आपके सम्मुख विद्यमान है। व्याख्यानो की भाषा उसमें परिवर्तन, परिवर्धन और अनेक लाभप्रद सुझाव भी मिश्र जी ने दिए हैं।

सहयोग के लिए श्री ठाकुरदास जी बाठपालिया, श्री मेलाराम जी प्रधान, प्रायं समाज, देवनगर, वैद्य श्री हजारीलालजी, श्री रणवीर जी वी० ए० सचालक दैनिक मिलाप, रायबहादुर श्री प० नारायण दास जी, मन्त्री लक्ष्मी-नारायण मन्दिर ट्रस्ट, श्री प० महेन्द्रका जी वी० ए०, बा० फूनासिंह जी तथा श्री मेलाराम जी प्रधान, प्रायं समाज, हनुमान रोड आदि महानुभावों का भी अनुगृहीत है।

कलाकार चित्रकार श्री धरणीधरचन्दोला जी को धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने भगवान् पाणिनि का चित्र चित्रित किया है चन्द्रमोहन शास्त्री व बा० नारायण सिंहजी का विशेष धन्यवाद है क्योंकि उन्होंने इस ग्रन्थ के छपने में प्रेस कार्य में बड़ी तत्परता से कार्य किया है। अन्त में अपनी धर्मपत्नी श्रीमती उर्मिला देवीजी को साधुवाद देता हूँ जिन्होंने ग्रन्थ के लिखने तथा प्रूफ देखने में सदा सहायता प्रदान की।

१ जी, जवाहर नगर

सञ्जीमण्डी, देहली

देवप्रकाश पाठशाला

प्रथम व्याख्यान

महामुनि पाणिनि प्रणीत अष्टाध्यायी के सूत्रों की व्याख्या प्रारम्भ करने के पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि विद्यार्थियों को भाषा के माध्यम द्वारा संस्कृत भाषा तथा उसके व्याकरण का प्रारम्भिक ज्ञान करा दिया जाय, जिसके द्वारा वे इस विषय में प्रवेश पा सकें और इस ग्रन्थ की लेखन पद्धति को समझ सकें। इससे उन्हें बहुत लाभ होगा। वे न केवल सूत्रों का अर्थ ही समझने लगेंगे बल्कि इन सूत्रों का 'शब्द-सिद्धि' में किस प्रकार प्रयोग किया जा जाता है, यह भी जान जायेंगे। इन प्रारम्भिक व्याख्यानों के अध्ययन से उन्हें संस्कृत का आवश्यक ज्ञान भी हो जायगा और विषय-प्रवेश उनके लिए सुलभ होगा। छात्रों की भाषा विषयक सभी कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए ही इन व्याख्यानों को लिखा गया है। आशा है संस्कृत पढ़ने के अभिलाषी छात्र धैर्य पूर्वक इसका अध्ययन करने के पश्चात् ही ग्रन्थ पढ़ना आरम्भ करेंगे, और संस्कृत के व्याकरण शास्त्र का ज्ञान लाभ करेंगे।

इस व्याख्यानमाला के प्रथम चार व्याख्यान सरल संस्कृत का पढ़ना, समझना, लिखना और बोलना सिखाते हैं, तथा शेष सभी अष्टाध्यायी अध्ययन का बोध कराते हैं। उनसे सूत्रों की व्याख्या, पद-च्छेद, विभक्ति, समासादि द्वारा अर्थ, उनका प्रयोग, अनुवृत्ति तथा शब्दानुशासन में उनका स्थान आदि आवश्यक बातों का ज्ञान होता है। अतएव, ग्रन्थ प्रारम्भ करने के पूर्व इन व्याख्यानों का समझना आवश्यक है अन्यथा अध्ययन में कठिनाई हो सकती है। वास्तव में ये व्याख्यान उन विद्यार्थियों के लिए लिखे गये हैं जिन्हें हिन्दी का ज्ञान है और जो संस्कृत पढ़ने के अभिलाषी हैं। इसके पश्चात् संस्कृत व्याकरण उनके लिए सरल हो जायगा, और रटना भी नहीं पड़ेगा ऐसी मेरी धारणा है।

हिन्दी के शब्दों पर विचार

समृद्ध पढ़ने में पूर्व यह आवश्यक है कि विद्यार्थियों को हिन्दी भाषा के व्याकरण का प्रबल ज्ञान हो। इसमें संस्कृत व्याकरण के समझने में आसानी होगी और उसके शब्दों का अर्थ लगाने में सुगमता। अतएव हम सक्षेप में हिन्दी व्याकरण की मुख्य बातें बताने की चेष्टा करेंगे।

हिन्दी के सभी शब्दों को हम मुख्यतः पाँच विभागों में विभाजित कर सकते हैं जो इस प्रकार हैं —

(१) सज्ञा (२) सर्वनाम (३) विशेषण (४) क्रिया और (५) अव्यय।

इनमें से प्रथम चार प्रकार के शब्द सविभार कहलाते हैं क्योंकि उनका रूप बहुधा बदलता रहता है। पाँचवें प्रकार के शब्द क्रिया विशेषण, सम्बन्धबोधक विस्मयादिनाधक आदि निर्विभार हैं, क्योंकि उनका रूप नहीं बदलता है अतः इनको अव्यय कहते हैं।

सज्ञा—किसी वस्तु या प्राणी के नाम को सज्ञा कहते हैं। जैसे—राम, मोहन, वेद, हिमालय, गङ्गा आदि।

सर्वनाम—जो शब्द किसी सज्ञा के बदले में आता है या प्रयोग किया जाता है उसे सर्वनाम कहते हैं। जैसे—राम अच्छा लड़का है। वह प्रतिदिन पाठशाला जाता है। यहाँ पिछले वाक्य में, 'वह' सर्वनाम पहले वाक्य के 'राम' पद के बदले में आया है।

विशेषण—जो शब्द किसी सज्ञा की विशेषता या उसके गुणों को प्रकट करते हैं उन्हें विशेषण कहते हैं। सज्ञा या भेद प्रकट करने के कारण उन्हें 'भेदक' भी कहते हैं। जैसे—'काला कुत्ता'। 'शाला' शब्द कुत्ते को अन्य कुत्तों से पृथक् कर देता है। यहाँ 'शाला' शब्द विशेषण या भेदक और 'कुत्ता', विशेष्य या भेद्य है।

क्रिया—जिसमें किसी काम का करना या होना पाया जाय उसे क्रिया कहते हैं। जैसे—मोहन पुस्तक पढ़ता है। श्याम हँसता है। इन वाक्यों में 'पढ़ता है', व 'हँसता है' में पढ़ने व हँसने कार्यों का करना या होना पाया जाता है। अतः ये शब्द क्रिया हैं।

अव्यय—उन शब्दों को कहते हैं जिनमें संज्ञा व त्वनाम की भाँति न तो कोई विकार होता है न कोई लिङ्ग, वचन और विभक्तियों का भेद। ये वाक्यों में विभिन्न अर्थों को बताने के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं। कुछ उदाहरण देखिये—

१. क्रिया विशेषण—अच्छा, धीरे-धीरे, अचानक, सहसा, तुरन्त, आदि।

२. समुच्चयार्थक—और, तथा, एवं, वर, परन्तु, अतः, अतएव, किन्तु, प्रत्युत, लेकिन आदि।

३. विकल्पार्थक—या, वा, अथवा आदि।

४. समयार्थक—आज, कल, परसो, फिर, अब, तब, अभी, जभी आदि।

५. स्थानार्थक—यहाँ, वहाँ, इधर, उधर।

इसी प्रकार अव्यय के अनेक भेद होते हैं जिनका स्थानाभाव से वर्णन करना संभव नहीं है। इस विषय में इतना जान लेना आवश्यक है कि इनका रूप नहीं बदलता और विभिन्न स्थानों में व्यवहार और प्रयोग के अनुसार इनका अर्थ समझ लेना चाहिए।

कारक और विभक्तियाँ—क्रिया की सिद्धि में जो सहायक हो उसे 'कारक' कहते हैं, अर्थात् संज्ञा और सर्वनाम शब्दों का क्रिया के साथ जो सम्बन्ध होता है उसे कारक कहते हैं। इनका रूप भी क्रिया से सम्बन्ध होने के कारण भिन्न भिन्न होता रहता है। जिस प्रकार की क्रिया से कारक का सम्बन्ध होता है उसका रूप भी वैसा ही होता है। ये कारक '६ प्रकार' के होते हैं—

१. कर्त्ता—कार्य के करने वाले को कर्त्ता कहते हैं जैसे—राम पढ़ता है। यहाँ पढ़ने का कार्य करने वाला राम 'कर्त्ता' है।

२. कर्म—कर्त्ता के इष्टतम (अत्यन्त चाहा हुआ) कारक को 'कर्म' कहते हैं। जैसे—राम आम खाता है। राम का अत्यन्त चाहा हुआ आम (इष्टतम) कारक है। अतएव इसको कर्म कहते हैं।

३. करण—जिसके द्वारा क्रिया की जाय उसे करण कहते हैं

जैसे—राम चाकू से कलम बनाना है। यहाँ कलम बनाने की क्रिया चाकू द्वारा हो रही है अतएव 'चाकू' कारक है।

४. सम्प्रदान—जिनके लिए दिया जाय अप्रान क्रिया के द्वारा जिनके अभिप्राय को भली प्रकार से सिद्ध किया जाय उसको सम्प्रदान कहते हैं। जैसे, उपाध्याय के लिए (को) गाय देता है। यहाँ उपाध्याय को 'गाय' दी जाती है अतः 'उपाध्याय' सम्प्रदान कारक है। सम्प्रदान का अर्थ है, "पूर्ण रूप या अच्छी तरह से देना"। इसमें दी हुई वस्तु के वापिस लेने की भावना निहित नहीं है। जैसे—भोहन घोड़ी को बखर देता है। यहाँ 'बखर' घोड़ी वापिस लेने की भावना में दिया गया। अतएव घोड़ी सम्प्रदान कारक नहीं होगा। धर्म कारक भी नहीं हो सकता क्योंकि कर्ता का इष्ट वस्त्र है घोड़ी नहीं। यहाँ कोई कारक नहीं है। फिर क्या है? संस्कृत भाषा के अनुसार रजरु (घोड़ी) शब्द में पष्ठी होती है यद् पष्ठी विभक्ति की व्याख्या के मन्व्य अताया जायगा।

५. अपादान—जिनमें कोई वस्तु अलग हो। दो वस्तुओं में से एक दूसरे में अयाय (पृथक्) होने पर निश्चल कारक को अपादान कारक कहते हैं। जैसे—वृत्त में पत्ते गिरते हैं। पत्तों के अलग होने पर वृत्त भी निश्चल रहा। अतः 'वृत्त' अपादान कारक है।

६ होते हैं । सम्बन्ध और सम्बोधन कारक नहीं है । किन्तु वाक्य में इनकी स्थिति आवश्यक होती है जैसा कि ऊपर कह चुके हैं । संस्कृत में कारक, सम्बन्ध और सम्बोधन के रूप में प्रयुक्त होने वाले जितने भी सज्ञा सर्वनाम आदि सज्ञक शब्द हैं उनके केवल सात विभाग होते हैं । प्रश्न उठता है कि इन ६ कारकों, सम्बन्ध और सम्बोधन के आठ विभाग होने चाहिए । किन्तु विभाग सात ही हैं । इनकी व्यवस्था इस प्रकार समझनी चाहिए कि जितने भी कर्ता कारक क शब्द हैं वे प्रथम विभाग में रखे जाते हैं । इसी प्रकार कर्म के द्वितीय, करण के तृतीय, सम्प्रदान के चतुर्थ, अपादान के पञ्चम और अधिकरण कारक के शब्द सप्तम विभाग में होते हैं । विभागों के अभाव के कारण 'सम्बोधन' को भी प्रथम विभाग ही में रखा जाता है । इसका यह अर्थ नहीं है कि सम्बोधन भी कर्ता कारक हो गया । इसको कारक न होते हुए भी प्रथम विभाग ही में रखा जाता है, ऐसा पाणिनि मुनि का निर्देश है । जो शब्द इन विभागों के अन्तर्गत नहीं आते उन्हें षष्ठ विभाग में समझना चाहिए । इसी नियम के अनुसार धोवी (रजक) के लिए वस्त्र देता है । इस वाक्य में धोवी शब्द किसी अन्य विभाग में न आने के कारण षष्ठ विभाग में रखा जाता है । इन्हीं विभागों को आचार्य पाणिनि के पारिभाषिक शब्दों में 'विभक्ति' के नाम से पुकारा जाता है । 'विभक्ति' शब्द स्त्रीलिङ्ग है अतः उमरा विशेषण 'प्रथम' भी प्रथमा' के रूप से आयेगा—यथा 'प्रथमा विभक्ति' द्वितीया विभक्ति, तृतीया विभक्ति, चतुर्थी विभक्ति, पञ्चमी विभक्ति, षष्ठी विभक्ति तथा सप्तमी विभक्ति । यही सात विभक्तियाँ हैं ।

विभक्तियों के चिह्न—यद्यपि उपर्युक्त परिभाषाओं तथा व्याख्या से इन विभागों के समझने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए तथापि साधारण ज्ञान के विद्यार्थियों के लिए इन्हें समझने में सुगमता हो इसलिए इन विभक्तियों के चिह्नों को लिखा जाता है जो इस प्रकार हैं—

कारक	विभक्ति	चिह्न	वाक्य में प्रयोग
कर्ता	प्रथमा	०, ने	१. राम जाता है २. रामने कहा ।
कर्म	द्वितीया	०, को	१. राम आम खाता है । २. राम श्याम को देखता है ।

करण	तृतीया	से	चाकू से कलम बनाता है ।
सम्प्रदान	चतुर्थी	को, के लिए	२. राम उपाध्याय को या के लिए गाय देता है ।
अपादान	पञ्चमी	से	वृज से पत्ता गिरता है ।
सम्बन्ध	षष्ठी	का, के, की, रा, रे, री, ना, ने, नी,	१. आपना आपके आपकी २. तुम्हारा तुम्हारे तुम्हारी ३. अपना अपने अपनी
अधिकरण	सप्तमी	में, पर,	१. सन्दूक में २. छत पर
सम्बोधन	प्रथमा	हे, अरे,	१. हे राम २. अरे भाई

विशेष स्पष्टीकरण के लिए इन चिह्नों के साथ बालक शब्द के रूप एक वचन व बहुवचन में दिये जाते हैं :—

कारक	विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	प्रथमा	बालक ने	बालकों ने
कर्म	द्वितीया	बालक को	बालकों को
करण	तृतीया	बालक से	बालकों से
सम्प्रदान	चतुर्थी	बालक केलिये	बालकों केलिये
अपादान	पञ्चमी	बालक से	बालकों से
सम्बन्ध	षष्ठी	बालक का, के, की	बालकों का, के, की
अधिकरण	सप्तमी	बालक में, पर	बालकों में, पर
सम्बोधन	प्रथमा	हे बालक	हे बालको

उपर्युक्त चिह्नों को ध्यान पूर्वक देखिये । आप देखेंगे कि चर तत्र 'बालक' शब्द में परिवर्तन हुआ है किन्तु चिह्न नहीं बदले । चिह्न जैसे थे वैसे ही हैं । जैसे—'बालक ने', बालकों ने' । यहाँ 'बालक' शब्द का 'बालकों' बन गया । इसके अतिरिक्त दोनों वचनों में चिह्न एक ही प्रकार के हैं । उनमें कोई परिवर्तन नहीं है । इससे प्रतीत होता है कि हिन्दी में सज्ञा तथा सर्वनाम आदि के वाचक शब्दों में ही परिवर्तन होता है चिह्नों में नहीं । यह बात ध्यान में रखने योग्य है ।

नोट :—कहीं-कहीं विशेष कारणों से कर्ता और कर्म में चिह्न नहीं लगते । जैसे—राम पढ़ता है । राम पुस्तक पढ़ता है । इन

वाक्यों में 'राम और 'पुस्तक' क्रमशः कर्ता और कर्म हैं किन्तु उनके चिह्न 'ने' और 'को' का प्रयोग नहीं हुआ है। ऐसा क्यों होता है यह व्यवहार से ही जानना चाहिए। विस्तार भय से यहाँ उनके कारणों पर विचार नहीं कर रहे हैं।

स्मरण संकेत :—

१. हिन्दी में ५ प्रकार के शब्द हैं। सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, और अव्यय।
२. क्रिया की सिद्धि में जो सहायक हो उसे कारक कहते हैं।
३. कारक ६ हैं। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, और अविकरण।
४. 'सम्बन्ध' और 'सम्बोधन' कारक नहीं हैं क्योंकि वे क्रिया की सिद्धि में सहायक नहीं होते।
५. विभक्तियाँ सात होती हैं।
६. हिन्दी में वचन भेद से केवल सज्ञा तथा सर्वनाम आदि शब्दों में ही परिवर्तन होता है, 'ने' 'को' आदि चिह्नों में नहीं।

द्वितीय व्याख्यान

मस्कृत भाषा में कारक तथा विभक्तियों का स्वरूप

प्रथम व्याख्यान में हम हिन्दी के कारक तथा विभक्तियों के स्वरूप की चर्चा कर चुके हैं। यहाँ संस्कृत के कारक तथा विभक्तियों के स्वरूप का सक्षेप से वर्णन करेंगे। संस्कृत भाषा के अध्ययन के लिए इनके स्वरूप और चिह्नों का सम्यक् प्रकार से समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसा करने से विद्यार्थियों को संस्कृत के अध्ययन में कोई कठिनाई नहीं होगी और भाषा अपने सरल रूप में उनके सम्मुख आयेगी। वास्तव में हिन्दी और संस्कृत के कारक तथा विभक्तियों के स्वरूप में परस्पर कोई भेद नहीं है। जो बातें हिन्दी में आवश्यक हैं वे ही न्यूनाधिक संस्कृत के लिए ठीक हैं। भेद केवल चिह्नों में है। दोनों भाषाओं के चिह्न पृथक् पृथक् हैं, और शब्दों के साथ उन्हें जोड़ने के नियम भी

भिन्न हैं। दृत्तरों वात जा ध्यान में रखने योग्य है वह यह है कि हिन्दी में केवल एकवचन और बहुवचन ही होते हैं, जब कि संस्कृत में तीन वचन होते हैं, एकवचन, द्विवचन और और बहुवचन। इस वचन, भेद के कारण भी चिह्नों के रूप में अन्तर हाता है। अस्तु इसका वर्णन यत्रास्थान आगे होगा। अत्र इम विषय के अन्य आवश्यक बातों को समझना चाहिए।

प्रातिपदिक—यह शब्द केवल संस्कृत व्याकरण ही में प्रयुक्त होता है, अन्यत्र नहीं। प्रातिपदिक उस मूल शब्द को कहते हैं जिसके परचान् या जिसमें विभक्ति के चिह्नों को जोड़ कर रूप चलाया जाता है। जैसे—‘राम ने’ इसमें प्रथमा विभक्ति का चिह्न ‘ने’ ‘राम’ के साथ जोड़ा गया है। अतः ‘राम’ शब्द प्रातिपदिक कहलायेगा। इसी प्रकार किसी भी विभक्ति रहित मूल शब्द को प्रातिपदिक कहते हैं।

अत्र संस्कृत के इन विभक्ति चिह्नों पर ध्यान दीजिये हिन्दी में चिह्न दोनों वचनों में एक ही समान रहते हैं। उनके रूप में कोई परिवर्तन नहीं होता। जैसे राम ने, रामों ने। यहाँ चिह्न ‘ने’ में कोई परिवर्तन न होकर मूल शब्द ही में परिवर्तन हुआ। इसके विपरीत संस्कृत में वचन भेद से ये विभक्तियाँ बदलती रहती हैं। तीनों वचनों में उनके भिन्न भिन्न रूप होते हैं। प्रातिपदिक शब्दों में प्रायः परिवर्तन नहीं होता। सुगमता के लिए दोनों भाषाओं के ये विभक्ति चिह्न नीचे दिये जाते हैं।

हिन्दी

संस्कृत

	एकवचन, बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	
प्र. वि —	ने	ने	सु	श्री	जस् ।
द्वि. वि —	को	को	अम्	श्रीट्	शस् ।
तृ. वि —	से	से	टा	भ्याम्	भिस् ।
च वि —	के लिए	के लिए	डे	भ्याम्	भ्यस् ।
प वि —	से	से	इसि	भ्याम्	भ्यस् ।
प वि —	का, के, की	का, के, की	इस्	ओम्	आम् ।
स वि —	में, पर	में, पर	चि	ओस्	सुप् ।
सम्बोधन—	हे, अरे	हे, अरे	सु	श्री	जम् ।

उपर्युक्त चिह्नों की ध्यान से परीक्षा करने पर ज्ञात होगा कि संस्कृत में प्रथमा विभक्ति के एकवचन और द्विवचन बहुवचन

में क्रमशः 'सु' औ, जस् चिह्नों का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार द्वितीया विभक्ति में अम् औट् शस् आदि चिह्नों का। अन्य शेष विभक्तियों में से भी इसी प्रकार जानना चाहिए। प्रातिपदिकों के साथ योग होने पर इन चिह्नों में यह परिवर्तन कदाँ और किस प्रकार में होता है, इसका निर्देश भगवान् पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में यथा स्थान कर दिया है। इन्हीं सूत्रों तथा नियमों को सरल और सुगोप्य बनाने के लिए ही प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की है, अस्तु। इन चिह्नों को हृदयगम्य कण्ठस्थ कर लेना चाहिए जिससे यथा स्थान इनके प्रयोग में सुविधा हो।

सभी विभक्तियों में इनके रूप निम्न प्रकार से चलेंगे —(प्रातिपदिक राम के साथ)

हिन्दी

संस्कृत

विभक्तियाँ	पञ्चम	बहुवचन	एक०	द्विवचन	बहु वचन
प्रथमा—रामने	रामों ने	राम सु	राम औ	राम जस्	
द्वितीया—राम को	रामों को	राम अम्	राम औट्	राम शस्	
तृतीया—राम से	रामों से	राम टा	राम भ्याम्	राम भिस्	
चतुर्थी—राम के लिए	रामों के लिए	राम डे	राम भ्याम्	राम भ्यस्	
पञ्चमी—राम से	रामों से	राम इति	राम भ्याम्	राम भ्यस्	
षष्ठी—राम का	रामों का	राम इस्	राम औस्	राम आम्	
सप्तमी—राम में	रामों में	राम डि	राम औस्	राम सुप्	
सम्बोधन—हे राम,	हे रामों	राम सु	राम औ	राम जस्	

इसी प्रकार किसी भी प्रातिपदिक के पश्चात् इन विभक्ति चिह्नों को जोड़ कर रूप चलाये जा सकते हैं। जिस प्रकार हिन्दी में 'ने' आदि चिह्न लगा कर रूप चलाते हैं उसी प्रकार संस्कृत में सु, औ, जस् आदि चिह्नों को महा आदि (प्रातिपदिकों या शब्दों) के साथ जोड़ कर सभी विभक्तियों में रूप चलाये जाते हैं। इनका अर्थ भी हिन्दी की भांति ही होता है। उसमें कोई भेद नहीं। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि आप संस्कृत में 'राम का' कहना चाहते हैं। 'का' षष्ठी विभक्ति का चिह्न, जिसका संस्कृत में समान वाची चिह्न 'इस्' है। अतः 'राम का' का संस्कृतानुवाद 'राम इस्' होगा। इसी प्रकार अन्य विभक्तियों में जानना चाहिए। जैसे—'राम में' का संस्कृतानुवाद 'राम

हि' 'रामों से' का 'राम सुप्', 'राम को' का 'राम अम्' 'रामों ने' का 'राम जस्' होगा। यहाँ करण और अपादान अर्थात् तृतीया और पञ्चमी विभक्तियों के चिह्नों के चुनाव में विद्यार्थी को कठिनाई हो सकती है क्योंकि दोनों का चिह्न 'से' ही है। इस विषय में यह लक्षण याद रखना चाहिए कि जिसके द्वारा क्रिया की जाय उसे करण, और जिससे अलग होना पाया जाय उसे अपादान कहते हैं। जैसे—राम 'चाहू से' क्लम बनाता है। यहाँ 'करण' और आकाश 'से' तारे टूटते हैं से 'अपादान' समझना चाहिए। 'करण' और 'अपादान' का यह भेद इसी लक्षण द्वारा ज्ञात करना चाहिए चिह्न द्वारा नहीं। इसकी व्याख्या कारक-प्रकरण प्रथम-व्याख्यान में भी की जा चुकी है।

लिङ्ग पर विचार—हिन्दी में लिङ्ग केवल दो प्रकार के होते हैं, स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिङ्ग। संस्कृत में लिङ्ग तीन प्रकार के होते हैं, स्त्रीलिङ्ग पुल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग। इनके उदाहरण देखिये—
स्त्रीलिङ्ग—रमा, लक्ष्मी, राधा, सीता, कमला आदि। पुल्लिङ्ग—राम, कृष्ण, दयानन्द, शंकर, जवाहर, आदि। नपुंसक लिङ्ग—फल, मधु, दधि, इत्यादि। इसी प्रकार अन्य वस्तुओं के लिंग भेद को व्यवहार से जानना चाहिए।

संस्कृत व्याकरण में एक विशेषता है। विशेष्य (सज्ञा) का जो लिङ्ग होता है वह वही लिङ्ग विशेषण का भी होता है। यह संस्कृत व्याकरण का नियम है। हिन्दी में इस नियम का सर्वथा पालन नहीं होता। जैसे—सुन्दर कविता। यहाँ कविता स्त्रीलिङ्ग है, अतः उसका विशेषण भी स्त्रीलिङ्ग होना चाहिए। किन्तु ऐसा नहीं है। संस्कृत में विशेष्य और विशेषण दोनों का समान लिङ्ग ही होता है यदि विशेष्य पुल्लिङ्ग है तो उसका विशेषण भी पुल्लिङ्ग ही होगा। इसी प्रकार अन्य लिङ्गों की व्यवस्था जाननी चाहिए। सभी प्रातिपदिकों के रूप इन्हीं तीन लिङ्गों के अनुसार सातों विभक्तियों में चलते हैं।

संस्कृत में हम १२ प्रातिपदिकों (सज्ञा सर्वनाम) को चुनते हैं जिनके रूप तीनों लिङ्ग और वचनों में यहाँ दिये जाते हैं। इन्हीं प्रातिपदिकों की भाँति अन्य प्रातिपदिकों के रूपों का हृदयङ्गम कर लेने के पश्चात् संस्कृत भाषा बहुत कुछ सरल हो जाती है।

जैसा पहले भी कहा जा चुका है, इस विषय में ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रातिपदिक के पश्चात् जो भी विभक्ति चिह्न जोड़े जाते हैं उनमें परिवर्तन होता रहता है। कभी-कभी विभक्ति का एक अक्षर लोप हो जाता है, और कभी-कभी सम्पूर्ण चिह्न। कहीं-कहीं एक विभक्ति के स्थान पर कोई अन्य शब्द प्रयोग में लाया जाता है। ऐसा क्यों होता है, इस परिवर्तन के सभी नियम सूत्रों द्वारा भगवान् पाणिनि ने अष्टाध्यायी में निर्देश किये हैं। इस लोप का ज्ञान इत्सज्ञा प्रकरण में होगा। किन्तु परिस्थितियों और स्थानों पर एक विभक्ति के स्थान पर दूसरे शब्द रखे जाते हैं इसका प्रकरण अष्टाध्यायी के सप्तम अध्याय के प्रथम पाद में किया गया है। इस समय केवल इतना समझ लीजिए कि उपर्युक्त बात होती है। अभी तो विभक्तियों के साथ प्रातिपदिकों का अर्थ जानना चाहिए जिससे साधारण संस्कृत का ज्ञान हो। व्याख्यानों की समाप्ति तक शब्द निर्माण का विषय भी आजायगा।

यहाँ विद्यार्थियों की विशेष जानकारी के लिए संस्कृत के १० चुने हुए तथा प्रतिनिधि प्रातिपदिकों का सिद्ध किया हुआ रूप दिया जाता है, जिसका अर्थ अवश्य याद कर लेना चाहिए। यदि एक प्रातिपदिक के रूप और रूपों का अर्थ याद या हृदयङ्गम कर लिया तो शेष सभी प्रातिपदिक आपको स्मरण हो जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं।

चुने हुए प्रातिपदिकों की सूची —

१. राम — अकारान्त पुँल्लिङ्ग	८. बालिका—आकारान्त स्त्रीलिङ्ग
२. तद् — वह सर्वनाम	९. फल — अकारान्त नपुंसक
३. यद् — जो	१०. मुनि — इकारान्त पुँल्लिङ्ग
४. किम् — कौन	११. साधु — उकारान्त पुँल्लिङ्ग
५. इदम् — यह	१२. नदी — ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग
६. युष्मद्— तुम	
७. अस्मद्— मैं	

अकारान्त पुँल्लिङ्ग मंज्ञा शब्द 'राम'

<u>विभक्ति</u>	<u>हिन्दी</u>	<u>संस्कृत,</u>	<u>सिद्ध रूप</u>
प्रथमा	राम ने	— राम सु	राम

	दा रामों ने — राम श्री	रामों
	बहुत रामों ने— राम जस्	रामाः
द्वितीय	रामको — राम अस्	रामम्
	दो रामों को —राम औट	रामौ
तृतीय	बहुत रामों को—राम शस्	रामान्
	राम से — राम टा	रामेण
	दो रामों से — राम भ्याम्	रामाभ्याम्
	बहुत रामों से— राम भिस्	रामैः
चतुर्थी	राम के लिये — राम डे	रामाय
	दो रामों के लिये—राम भ्याम्	रामाभ्याम्
	बहुत रामों के लिये—राम भ्यम्	रामेभ्यः
पञ्चमी	राम मे — राम दसि	रामात्
	दो रामों मे — राम भ्याम्	रामाभ्याम्
	बहुत रामों मे — राम भ्यस्	रामेभ्यः
षष्ठी	राम का के को — राम इम्	रामस्य
	दो रामों का के को— राम आम्	रामयोः
	बहुत रामों का के को—राम आम्	रामाणाम्
सप्तमी	राम में — राम डि	रामे
	दो रामों में — राम आम्	रामयोः
	बहुत रामों में — राम मुप्	रामेषु
अष्टम	हे राम — राम मु	हे राम
	हे दो रामों — राम औ	हे रामौ
	हे रामों — राम जम्	हे रामाः

अब प्रातिपदिकों का केवल संस्कृत रूप ही लिखा जायगा। इनका हिन्दी रूप प्रत्येक विभक्ति में राम की भांति ही जानना चाहिए। जैसे— 'राम ने' 'राम को' आदि। संस्कृत विभक्तियों का अर्थ हिन्दी के प्रकरण में घटा चुके हैं जैसे—संस्कृत विभक्ति 'मु' का हिन्दी अर्थ है 'ने' और 'अम्' का अर्थ है 'को'। इसी प्रकार अन्य विभक्तियों का अर्थ जानना चाहिए।

मर्यादा प्रातिपदिकों के विषय में एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि रूप चलाने समय उनका रूप बदल जाता है। नद् का बदल कर

केवल 'त' यद् का 'य' और किम् का केवल 'क' ही रह जाता है और उसी का रूप चलता है। इनके रूप तीनों वचनों में नीचे दिये जाते हैं।

तद् पुँल्लिङ्ग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र.—	सः	तौ	ते
द्वि.—	वम्	तौ	तान्
तृ.—	तेन	ताभ्याम्	तैः
च.—	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पं.—	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
प.—	तस्य	तयोः	तेषाम्
स.—	तस्मिन्	तयोः	तेषु

यद् पुँल्लिङ्ग

विभक्ति	एकव०	द्विवचन	बहुवचन
प्र.—	यः	यौ	ये
द्वि.—	यम्	यौ	यान्
तृ.—	येन	याभ्याम्	यैः
च.—	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
पं.—	यस्मान्	याभ्याम्	येभ्यः
प.—	यस्य	ययोः	येषाम्
स.—	यस्मिन्	ययोः	येषु

किम् पुँल्लिङ्ग

कः	कौ	के
कम्	कौ	कान्
केन	काभ्याम्	कैः
कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः
कस्य	कयोः	केषाम्
कस्मिन्	कयोः	केषु

इदम् पुँल्लिङ्ग

अयम्	इमौ	इमे
इमम्	इमौ	इमान्
अनेन	आभ्याम्	एभिः
अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
अस्य	अनयोः	एषाम्
अस्मिन्	अनयोः	एषु

इकारान्त पुँल्लिङ्ग 'मुनि' उकारान्त पुँल्लिङ्ग 'साधु'

१	मुनिः	मुनी	मुनयः	साधुः	साधू	साधवः
२	मुनिम्	मुनी	मुनीन्	साधुम्	"	साधून्
३	मुनिना	मुनिभ्याम्	मुनिभिः	साधुना	साधुभ्याम्	साधुभिः
४	मुनये	मुनिभ्याम्	मुनिभ्यः	साधये	"	साधुभ्यः
५	मुनेः	"	"	साधोः	"	"
६	मुनेः	मुन्योः	मुनीनाम्	साधोः	साध्वोः	साधूनाम्
७	मुनी	मुन्योः	मुनिषु	साधी	"	साधुषु
८	हे मुने	हे मुनी	हे मुनयः	हे साधो	हे साधू	हे साधवः

ये उदाहरण पुँल्लिङ्ग सज्ञा या सर्वनाम् प्रातिपदिकों के हैं जो उपर दिये गये हैं। इनमें प्रथम अकारान्त, उकारान्त अथवा उकारान्त का तात्पर्य अकार (अ) उकार (इ) अथवा उकार (उ) है अन्त में जिनके ऐसे शब्द में हैं। जैसे—राम, मुनि और साधु। इसी प्रकार स्त्रीलिङ्ग में आकारान्त ईकारान्त आदि शब्द होते हैं। जैसे—माता, नदी आदि।
अब स्त्रीलिङ्ग प्रतिनिधि प्रातिपदिकों के रूप दिये जाते हैं :—

आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द 'वालिका'

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वालिका	वालिके	वालिकाः
द्वितीया	वालिकाम्	"	"
तृतीया	वालिकया	वालिकाम्भ्याम्	वालिकाभिः
चतुर्थी	वालिकायै	"	वालिकाम्यः
पञ्चमी	वालिकाया	"	"
षष्ठी	"	वालिकया-	वालिकानाम्
सप्तमी	वालिकायाम्	"	वालिकामु
सम्बोधन	हे वालिके	हे वालिके	हे वालिका-

इसी प्रकार स्त्रीलिङ्ग सर्वनामों के रूप भी चलते हैं। उनमें तद् का 'ता', यद् का 'या' और किम् या 'का' हो जाता है और उनी में आगे रूप प्रत्यय किया जाता है। यथा—

तद् = 'ता'-स्त्रीलिङ्ग

यद् = 'या'-स्त्रीलिङ्ग

सा	ते	ताः	या	ये	याः
ताम्	"	"	याम्	"	"
तया	ताभ्याम्	ताभिः	याभ्याम्	याभ्याम्	याभिः
तस्यै	"	"	यस्यै	"	याभ्यः
तस्याः	"	ताभ्यः	यस्याः	"	"
तस्याः	तयोः	ताभ्याम्	याभ्याः	याभ्याम्	याभ्याम्
तस्याम्	"	तासु	याभ्याम्	"	यासु

‘ता’ का प्रथमा एकवचन में ‘सा’ हो जाता है जैसे पुँल्लिङ्ग ‘त’ का ‘स’ हो गया था ।

किम्=‘का’ स्त्रीलिङ्ग	इदम्-स्त्रीलिङ्ग शब्द
का के वाः	इयम् इमे इमाः
काम् ” ”	इमाम् ” ”
कया काभ्याम् काभिः	अनया आभ्याम् आभिः
कत्र्यै ” काभ्य.	अस्यै ” आभ्यः
कस्या. ” ”	अस्या. ” ”
कस्याः कयो. कासाम्	अस्या. अनयोः आसाम्
कस्याम् ” कासु	अस्याम् ” आसु

अथ नपुंसकलिङ्ग प्रातिपदिकों का रूप लिखते हैं । इनके रूप प्रथमा और द्वितीया विभक्तियों के अतिरिक्त अन्य सभी विभक्तियों में पुँल्लिङ्ग ‘राम’ के समान ही चलते हैं । अत एव यहाँ केवल प्रथमा और द्वितीया विभक्तियों ही में रूप लिखे जाते हैं जो निम्नप्रकार हैं । शेष विभक्तियों में पुँल्लिङ्ग शब्दों के समान ही जानने चाहिए :—

अकारान्त नपुंसकलिङ्ग फल

प्रथमा —	फलम्	फले	फलानि
द्वितीया —	फलम्	फले	फलानि

सर्वनाम नपुंसकलिङ्ग ‘तद्’

प्रथमा —	तत्	ते	तानि
द्वितीया —	”	”	”

‘किम्’ सर्वनाम नपुंसकलिङ्ग

प्रथमा —	किम्	के	कानि
द्वितीया —	”	”	”

‘इदम्’ सर्वनाम नपुंसकलिङ्ग

प्रथमा —	इदम्	इमे	इमानि
द्वितीया —	”	”	”

अथे 'युष्मद्' (तुम) और अस्मद् (मैं) इन दोनों प्रातिपदिकों के रूप दिये जाते हैं। इन सर्वनामों की विशेषता यह है कि इनके रूप सभी लिङ्गों में एक समान ही रहते हैं और उनमें कोई परिवर्तन लिङ्ग भेद के कारण नहीं होता।

युष्मद् (तुम)

प्र०	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वि०	त्वाम्	"	युष्मान्
तृ०	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
च०	तुभ्यम्	"	युष्मभ्याम्
पंच०	त्वन	"	युष्मत्
ष०	तव	युजयोः	युष्माकम्
स०	त्वयि	"	युष्मानु

अस्मद् (मैं)

प्र०	अहम्	अवाम्	वयम्
द्वि०	माम्	"	अस्मान्
तृ०	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
च०	मह्यम्	"	अस्मभ्यम्
पंच०	मन्	"	अस्मन्
ष०	मम	आवयोः	अस्माकम्
स०	मयि	"	अस्मानु

नोट:—उन रूपों को रट कर स्मरण नहीं करना चाहिए बल्कि मुँह और मन से विभक्तियों को प्रातिपदिकों के परचान् जोड़कर रखते और समझते जाइये। ऐसा बारम्बार करने से आपको न केवल ये रूप ही याद हो जायेंगे बल्कि आप विभक्तियों को भी पूर्ण रूप में याद कर सकेंगे। आगे चलकर अष्टाध्यायी के समझने में आपको मरलता होगी।

अभ्यास :—

(१) संस्कृत में अनुवाद कीजिए :—

१. राम का २. मोहन का ३. उसका ४. मेरा ५. तुम्हारा

६ जिसका ७ उसका ८ उसमें ९. तुम्हारे म १० इसमें ११. किनका
 १२ रामों का १३ मुनियों का आश्रम १४ साधुओं का मन्दिर १५.
 वह किसका पिता । १६ वे किसके फल । १७ विशालय के कोन बालक ।
 १८ हम लोगों के कर में पुस्तकें । १९ जिसका कार्य उसका फल ।

(२) हिन्दी म अनुवाद कीजिय —

१ रामस्य जनक । तय भ्राता । केषा बालक । मुनीना
 साधूना वा मन्दिरम् । बाटिकाया पुष्पाणि फलानि च । दयानन्दस्य
 वेदाध्ययनम् । शङ्कराचार्यस्य वेदान्ताध्ययनम् । गौतमस्य न्यायदर्शनम् ।
 कपिलस्य साख्यदर्शनम् । वाल्मीकिरवे रामायणम् । भारतस्य मुख्य-
 नगरम् ।

प्रश्न :—

१. विभक्तियों कितनी हैं तथा वे कौन-कौन हैं ?
- २ हिन्दी की विभक्तियों के चिह्नों का संस्कृत में क्या अनुवाद है ?
- ३ हिन्दी में शब्द परिवर्तन होता है या विभक्तियों में परिवर्तन होता है, संस्कृत की विभक्तियों से तुलना कीजिये ?
- ४ संस्कृत भाषा में विशेषण का लिङ्ग किसके अनुसार होता है ?

तृतीय व्याख्यान

क्रिया का विश्लेषण :—

इम व्याख्यान में हम क्रिया पर विचार करेंगे, और इस बात की चेष्टा करेंगे कि क्रिया, उसके रूप, और उससे सम्बन्धित अन्य विषयों को विद्यार्थी भली प्रकार समझ सक ।

क्रिया—जिससे किसी कार्य का करना या होना पाया जाय उसे क्रिया कहते हैं । इसकी परिभाषा प्रथम व्याख्यान में की जा चुकी है । क्रिया मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है । (१) सन्मर्क और अन्मर्क ।

सकर्मक—जिस क्रिया का कर्म के साथ सीधा सम्बन्ध हो या जिसका फल किसी वस्तु पर पड़े उसे सकर्मक क्रिया कहते हैं। जैसे—राम पुस्तक पढ़ता है। मोहन फल खाता है। यहाँ पढ़ता है, का सम्बन्ध पुस्तक और 'खाता है' का सम्बन्ध फल में है। अतः ये क्रियायें सकर्मक हैं।

अकर्मक—जहाँ क्रिया में ही कार्य की समाप्ति हो जाय, अर्थात् जिसका फल किसी वस्तु पर न पड़े अथवा जिसका कर्म न हो उसे अकर्मक क्रिया कहते हैं। जैसे—कृष्ण हसता है। राधा मोती है। यहाँ 'हसता है' 'मोती है' इन क्रियाओं में कार्य समाप्त हो जाता है और 'कर्म' की आवश्यकता नहीं है। अतः ये क्रियायें अकर्मक हैं।

इन क्रियाओं की मोटी पहिचान के लिए प्रत्येक वाक्य का क्रिया पर 'किसका' ऐसा प्रश्न कीजिये। उत्तर में यदि कोई वस्तु मिल जाय तो क्रिया सकर्मक है अन्यथा अकर्मक। जैसे—राम पुस्तक पढ़ता है। इसमें 'किसको' पढ़ता है इस प्रश्न का उत्तर 'पुस्तक को' मिल जाता है अतः 'पढ़ता है' यह क्रिया सकर्मक है। राधा मोती है, में 'किसको' का उत्तर नहीं मिलता। अतः यह अकर्मक है।

धातु + प्रत्यय = क्रिया।

संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में धातु और प्रत्यय के योग से क्रिया बनती है। धातु क्रिया के मूल रूप को कहते हैं अर्थात्-क्रियावाची शब्दों में से 'ना' को लोप कर देने पर जो बचता है उसको धातु कहते हैं। जैसे-करना, जाना, लड़ना, पढ़ना, डीङ्गना आदि हैं। इन शब्दों में 'कर' जा, लड़, पढ़, डीङ्ग आदि धातु हैं। धातु के परचान् क्रिया बनाने के लिए जो कुछ जोड़ा जाता है उसे प्रत्यय कहते हैं। जैसे—पढ़ना है, जाना है, राना है। इनमें 'ता' प्रत्यय है, और पढ़, जा, ग्या, आदि धातु। ये स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिङ्ग के भेद में भिन्न-भिन्न होते हैं। जैसे—यदि पुल्लिङ्ग में 'ता' प्रत्यय लगता है तो स्त्रीलिङ्ग में इसका रूप 'ती' होगा। इसी प्रकार काल-भेद में भी इनके रूप और परिवर्तित होते हैं। फल तीन हैं

भूतकाल—जो समय बीत चुका है उसे भूतकाल कहते हैं। जैसे-प्राचीन काल में महाभारत का युद्ध हुआ। मोहन गया।

वर्तमान काल—वीत रहे हुए समय को वर्तमान काल कहते हैं। जैसे—मैं पुस्तक पढ़ता हूँ। इस काल के प्रत्यय 'ता, ती आदि हैं।

भविष्यत् काल—आने वाले समय को भविष्यत् काल कहते हैं। जैसे—हम कलकत्ता जायेंगे।

'जाना' क्रियावाची शब्द में 'ना' को लोप कर दीजिए। 'जा' बच गया। अब तीनों कालों में इसका रूप चलेगा। जैसे—वर्तमानकाल का प्रत्यय 'ता' है। तो 'ता' जोड़ने से जाता है बन जायेगा। भूत काल का प्रत्यय 'या' है। यहाँ धातु का भी परिवर्तन हो जाता है। अर्थात् भूत काल में 'जा' धातु का 'ग' हो जायेगा और 'या' प्रत्यय जोड़कर 'गया' क्रिया बनती है। इसी प्रकार भविष्यत् काल में 'येगा' प्रत्यय जोड़ा जाता है। जैसे 'जा' धातु है उसके पश्चात् 'येगा' प्रत्यय जोड़ने से 'जायेगा' क्रिया बन गई। इसी प्रकार से धातु के पश्चात् तीनों कालों के प्रययों को जोड़-जोड़ कर रूप बनाये जाते हैं। यह तो हिन्दी की व्यवस्था हुई। संस्कृत व्याकरण में २००० दो हजार धातु हैं। और उन धातुओं का सग्रह पाणिनि भगवान् ने किया है। जहाँ पर धातुआ का सग्रह है उस पुस्तक को धातुपाठ कहते हैं। मैंने भी आवश्यक धातुओं का सकलन आख्यात-प्रकरण में कर दिया है। उन धातुआ को स्मरण नर लेना चाहिये। जैसे भू सत्तायाम्, ण्ध वृद्धी इत्यादि धातुएँ हैं। इसमें 'भू' धातु का अर्थ है 'होना'। डमी प्रकार सभी धातुओं का अर्थ सप्तमी विभक्ति में किया गया है।

अब इन धातुओं के पश्चात् तीनों कालों के भिन्न भिन्न प्रययों का जोड़कर क्रियायें बनाई जायेंगी। जैसे पठ=पढ़ना, खाद=खाना, गच्छ=जाना, घाव=दौड़ना, लिख=लिखना, वद=बोलना, हस=हसना, पच=पकाना इत्यादि धातु हैं। पहले वर्तमान काल के प्रत्ययों का लीजिये। प्रयय जोड़ने के पूर्व हमको ध्यान देना चाहिये कि जिस प्रकार हिन्दी में ता, ताँ इत्यादि प्रययों में स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिङ्ग का भेद है, वैसे संस्कृत में नहीं। संस्कृत प्रययों में स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिङ्ग का कोई भेद नहीं।

इस प्रकरण में 'पुरप' के भेद का भी समझ लीजिये। ये तीन प्रकार के होते हैं—

प्रथमपुरुष, मध्यमपुरुष और उत्तमपुरुष । सप्ताह में तीन ही पुरुष होते हैं । एक बोलने वाला, दूसरा सुनने वाला और तीसरा जिसके विषय में बात की जाय । बोलने वाले को उत्तम पुरुष, सुनने वाले को मध्यम पुरुष और जिसके विषय में बात की जाय उसको प्रथम पुरुष कहते हैं । हिन्दी में प्रथम पुरुष को अन्य पुरुष भी कहते हैं ।

मान लीजिये कि हमें 'पठ' धातु के रूप चलाने हैं । ये सभी पुरुषों में चलेंगे । जिस प्रकार प्रथम पुरुष के एकवचन, द्विवचन और बहुवचन में, उसी प्रकार मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष में भी चलेंगे । अर्थात् ६ प्रत्यय चाहिये जिनका धातु के पश्चात् जोड़कर सभी पुरुषों में रूप चलाये जा सकें । संस्कृत भाषा के वर्तमान काल के नव प्रत्यय ये हैं —

ति	त	अन्ति	पठति	पठत	पठन्ति
सि	थ	थ	पठसि	पठथ	पठथ
आमि	आव	आम	पठामि	पठाव	पठाम

प्रथम पुरुष स, तौ, ते के साथ पठ धातु । जैसे—स पठति = वह पढ़ता है । तौ पठत = वे दोनों पढ़ते हैं । ते पठन्ति = वे सब पढ़ते हैं ।

इसी प्रकार मध्यम पुरुष में—

त्व पठसि = तू पढ़ता है, युवाम पठथ = तुम दोनों पढ़ते हो । यूयम् पठथ = तुम सब पढ़ते हो । अहम् पठामि = मैं पढ़ता हूँ । आवाम् पठाव = हम दोनों पढ़ते हैं । वय पठाम = हम सब पढ़ते हैं ।

ऐसे ही लिखति, लिखत, लिखन्ति । लिखसि, लिखथ, लिखथ । लिखामि, लिखाव, लिखाम । इस प्रकार सभी धातुओं के पश्चात् वर्तमान काल में ति त अन्ति इत्यादि प्रत्यय जोड़कर क्रियाय बनायी जाती हैं ।

भूतकाल की क्रिया—भूतकाल में धातु के पहले 'अ' जोड़ा जाता है और पश्चात् में प्रत्यय भी जो वर्तमान काल से भिन्न हैं । जैसे—न्, ताम्, अन् (प्रथम पुरुष में), तम्, त (मध्यम पुरुष में) अम्, व, म (उत्तम पुरुष में) अत्र 'पठ' धातु लीजिये और वचन के भेद से एक एक प्रत्यय उस धातु के पश्चात् जोड़ते जाइये और धातु के रूप बनते जायेंगे ।

यथा —अपठत्, अपठताम्, अपठन् इति प्रथमपुरुषः
 अपठः, अपठतम्, अपठत इति मध्यमपुरुषः
 अपठम्, अपठाव, अपठाम इति उत्तमपुरुषः

सः अपठन् = उसने पढ़ा । तौ अपठताम् = उन दोनों ने पढ़ा ।
 ते अपठन् = उन लोगों ने पढ़ा । त्वम् अपठः = तू ने पढ़ा । युवाम् अपठतम् = तुम दोनों ने पढ़ा । यूयम् अपठत = तुम लोगों ने पढ़ा । अहम् अपठम् = मैंने पढ़ा । अत्राम् अपठाव = हम दोनों ने पढ़ा । वयम् अपठाम = हम लोगों ने पढ़ा । इसी प्रकार अन्य पञ्च गन्ध इत्यादि धातुओं का रूप भी चला लेना चाहिये ।

भविष्यत्काल की क्रियाएँ—

भविष्यत्काल में धातु के पश्चात् 'इष्यति' या 'ष्यति' प्रत्यय जोड़े जाते हैं । यह ष्यति और इष्यति का भेद क्यों ?

इसकी विस्तृत व्याख्या 'सेट्' 'अनिट्' धातुओं के प्रकरण में की गई है । जो अष्टाध्यायी के सप्तम अध्याय में है । साधारणतः हलन्त धातु से इष्यति और अजन्त धातु से ष्यति या ष्यति प्रत्यय होते हैं ।

अब प्रत्येक धातुओं के पश्चात् पुरुष और वचन के भेद से प्रत्यय जोड़े जायेंगे । इसका रूप वर्तमानकाल के जैसा ही चलता है जैसे :—

पठिष्यति	पठिष्यतः	पठिष्यन्ति
पठिष्यसि	पठिष्यथः	पठिष्यथ
पठिष्यामि	पठिष्यावः	पठिष्यामः ।

गमिष्यति, धाविष्यति, लेखिष्यति, वदिष्यति इत्यादि का रूप चला लेना चाहिए । अब ष्यति प्रत्यय का रूप चलाने है । आप इष्यति और ष्यति का भेद केवल 'पकार' से देख रहे हैं इसलिए इस शंका को दूर करने के लिए पत्वप्रकरण पर व्याख्यान पढ़ लीजिये ।

पच् के पश्चात् ष्यति जोड़ा जायेगा तो—पद्यति, पद्यतः, पद्यन्ति ।
 पद्यसि, पद्यथः, पद्यथ । पद्यामि, पद्यावः पद्यामः ।

इसी प्रकार पा=पीना धातु से—पास्यति, पास्यतः, पास्यन्ति ।
 पास्यसि, पास्यथः, पास्यथ । पास्यामि, पास्यावः, पास्यामः ।

उपर्युक्त उदाहरणों में से हमने भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान के केवल एक-एक प्रकार के प्रत्यय को लिया है । भूत, भविष्यत् या वर्तमान के

कितने भेद हैं तथा उनमें कौन और कितने प्रत्यय लगते हैं, उन बातों की यहाँ आवश्यकता नहीं है। उनका विस्तृत व्याख्यान “लकारार्थ निर्णय प्रकरण” में करगे यहाँ तो अभी प्रारम्भिक संस्कृत ज्ञान के लिए बातें बतायी जा रही हैं। इन बातों को जानने के पश्चात् अष्टाध्यायी पढ़ने में सुविधा प्राप्त होगा। इस सक्षिप्त व्याख्यान में संस्कृत साहित्य या संस्कृत के व्याकरण को पढ़ाने का लक्ष्य नहीं यहाँ तो संस्कृत में प्रवेश कराया जा रहा है। इसलिए इन ताना कालों में धातुओं के रूपों का साधारण ज्ञान होना चाहिये। साधारण ज्ञान के लिए याज्ञा देने के अर्थ में कौन प्रत्यय होगा, इसका विवेचन करना शेष है। जैसे तुम जाओ, तुम पढ़ो, इत्यादि।

याज्ञा देने के अर्थ में जो प्रत्यय प्रयोग में आते हैं वे उनके पठ धातु के साथ ये रूप हैं :—तु, ताम्, अन्तु। पठतु, पठताम्, पठन्तु। हि, तम्, त। पठ, पठतम्, पठत। आनि, आव, आम। पठानि, पठाव, पठाम।

इन रूपों में मध्यमपुरुष के अन्तचन में अकारान्त के पश्चात् ‘हि’ को लोप हो जाता है। यह विशेष बात है जो गढ़ रखनी चाहिए। अब सभी धातुओं का रूप बला लेना चाहिए। जैसे गच्छ का रूप गच्छतु, गच्छताम्, गच्छन्तु। गच्छ, गच्छतम्, गच्छत। गच्छानि, गच्छाव, गच्छाम।

स्मरण मंकेत—

- (१) क्रिया के दो भेद अकर्मक और सकर्मक।
- (२) ‘मिस्रो’ प्रश्न करने पर उत्तर मिले तो उसे सकर्मक क्रिया कहते हैं।
- (३) धातु + प्रत्यय = क्रिया।
- (४) हिन्दी में क्रियावाची शब्दों में से ‘ना’ के लोप कर देने पर जो वचता है, उसे धातु कहते हैं।
- (५) धातु के पश्चात् क्रिया बनाने के लिए जो कुछ जोड़ा जाता है, उसे प्रत्यय कहते हैं।
- (६) संस्कृत में पाणिनि मुनि के धातु पाठ में जो २००० क्रियावाची शब्द संगृहीत हैं, उन्हीं को धातु कहते हैं।

(७) संस्कृत में धातु के पश्चात् प्रत्ययों में लिङ्ग का कोई भेद नहीं होता ।

अभ्यास

- १—वर्तमान काल के कौन-कौन से प्रत्यय होते हैं ?
- २—लिख धातु का रूप वर्तमान के प्रत्ययों को जोड़कर लिखें तथा उसी प्रकार से पठ, गच्छ, धाव, इत्यादि धातुओं में वर्तमान, भूत, भविष्यत्, आहार्यक प्रत्ययों को जोड़कर दस दस रूपों को बोलें ।
- ३—भविष्यत् काल में पठ धातु का क्या रूप होता है ।
- ४—भूत काल में लिख धातु का रूप बोलें ।
- ५—आज्ञा देने के लिये क्तिन् क्तिन् प्रत्ययों का व्यवहार होता है, उन प्रत्ययों के साथ गच्छ का रूप बोलें ।
- ६—पठ, लिख, गच्छ, धाव इत्यादि धातुओं का रूप पाच पाच बार वर्तमानादि प्रत्ययों को जोड़ते हुए बोलिये ।

संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद —

रामस्य जनक गच्छति । स विद्यालये पठिष्यति । रमा पाठशालाया पठिष्यति । त्वं पठ । स अगच्छन् । ते कुत्र धावन्तु । मोहन ओदन खाति । तव पिता गृह गच्छति । तस्य अनुज अम्बईनगरे निवसति । धाव धाव । गच्छ गच्छ ।

हिन्दी से संस्कृत में अनुवाद —

राम का पिता जाता है । वह विद्यालय में पढ़ेगा । सीता पाठशाला में पढ़ेगी । तुम पढ़ो । मोहन भात खाता है । तुम्हारा छोटा भाई किस का पत्र लिखता है । जाओ जाओ । लिखो लिखो । उसका भाई कल कल शहर में रहता है । तुमने पत्र लिखा । उसने भात खा लिया ।

चतुर्थ व्याख्यान

गत व्याख्यानों में हम सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया आदि के विषय में विचार कर चुके हैं । प्रस्तुत व्याख्यान में सत्त्वे से अव्यय का वर्णन करेंगे ।

अत्रय्य शब्द का अर्थ है जो 'य' को प्राप्त न हो। व्यय शब्द का वास्तविक अर्थ है 'विशेष रूप में चलना' जैसे, 'स्पष्ट' एक हाथ से दूसरे हाथ में चले जाने पर व्यय को प्राप्त होता है। यह 'व्यय' शब्द वि उपसर्ग पूर्वक 'इण् गती' धातु में बनता है जिसका अर्थ है 'विशेष रूप से चलना'। जो नहीं चलता है अर्थात् जिसके रूप नहीं चलते हैं उसे व्याकरण में अत्रय्य कहते हैं। गत व्याख्यानों में हम अन्य प्रकार के सत्रा आदि शब्दों पर विवेचन कर चुके हैं जिनके रूप विभक्तियों में लिङ्ग और वचन भेद के अनुसार बदलते रहते हैं। कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनका किसी भी परिस्थिति में रूप नहीं बदलता है। जो सर्वथा एक ही समान रहते हैं। ऐसे शब्दों को व्याकरण में अत्रय्य कहते हैं। जैसे, यत्र, तत्र, सर्वत्र, यथा, तथा, अथवा, वा, आदि। इन शब्दों के रूप नहीं चलते। अतएव ये, या इमी प्रकार के अन्य सभी शब्द अत्रय्य कहलाते हैं। निम्न श्लोक में अत्रय्य के लक्षण को और भी स्पष्ट रूप में समझ लीजिये।

मन्त्र त्रिषु लिङ्गेषु मर्नामु च विभक्तिषु ।

वचनेषु च सर्वेषु यन्न ज्येति तदव्ययम् ॥

अर्थात् जो तीनों लिङ्गों (पुंल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग, और नपुंसकलिङ्ग), मातृ विभक्तियों (प्रथमा, द्वितीया आदि) तथा तीनों वचनों (एक वचन द्विवचन और बहुवचन) में जिसके रूप नहीं चलते या बदलते हैं ऐसे शब्द को अत्रय्य कहते हैं।

कुछ अत्रय्यों का विवरण—

यत्र=जहाँ, तत्र=वहाँ, सर्वत्र=सत्र जगह, तत्र=वहाँ, कुत्र=कहाँ, यत्र=जहाँ से, तत्र=वहाँ से, कुत्र=कहाँ से, यत्र=जत्र, तत्र=तत्र, कत्र=कर, सर्वत्र=सत्र, सत्र=सर्वत्र, कत्रा=करके, गत्रा=जाकर, हया=मारकर, पठितुम्=पढ़ने के लिये, गन्तुम्=जाने के लिये, स्व=स्व (आने वाला) ह्य=कल (गीता हुआ) अद्य=आज परश्य=परसों, सम्प्रति=इस समय, मान्प्रतम्=इस समय, इत्थानीम्=इस समय, अथुना=अत्र च=और, ण्य=ही, इव=समान, जैसा, यथा=जैसे, तथा=वैसा। इस प्रकार के बहुत अव्यय होते हैं।

शब्दों के तीन प्रकार

उपर्युक्त व्याख्यानों में हम देख चुके हैं कि हिन्दी में शब्द स्थूलतया

पांच प्रकार के होते हैं, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और अव्यय । इन्हीं को निरुक्तकार महामुनि यास्क ने ४ विभागों के अन्तर्गत रखा है । वे विभाग हैं, नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात । किन्तु महामुनि पाणिनि की अष्टाध्यायी में शब्दों के तीन ही विभाग हैं । नाम, आख्यात और अव्यय । उनके मत में उपसर्ग और निपात, अव्यय ही हैं ।

संस्कृत से हिन्दी में अनुवादः—

रामस्य जनकः कदा गृहं गमिष्यति । स कुत्र निवसति । मोहनस्य गृहे कुत्र पुस्तकानि सन्ति । अथ राम' नदि आगमिष्यति । तस्य भ्राता श्वः गृहं न गमिष्यति । स कथं परं न लिखति ।

हिन्दी से संस्कृत में अनुवादः—

तुम कहा रहते हो । उसका भाई कल कहाँ जायेगा । वह कल कहा गया । आज किसका व्याख्यान है । तुम फल कहा से (आनयसि) लाते हो । तुम्हारी बाटिका में पुष्प और फल है या नहीं ।

पञ्चम व्याख्यान

अभी तक हमने हिन्दी और संस्कृत के व्याकरणों की केवल मोटी बातों पर विचार किया है; और देखा है कि उनमें परस्पर कहाँ-कहाँ भिन्नता है । ये बातें व्याकरण के प्रारम्भिक ज्ञान और विषय प्रवेश के लिए आवश्यक थीं । इनको अच्छी तरह समझ लेने और स्मरण करने के पश्चात् अष्टाध्यायी के सूत्रों का समझना सुगम हो जायगा । अष्टाध्यायी में मय मिलकर लगभग चार सहस्र सूत्र हैं, जिनमें से हमने १३१६ सूत्रों को इस ग्रन्थ में व्याख्या के लिए चुना है । इस विषय में हमारा यह निश्चित मत है कि यदि इन सूत्रों को अच्छी प्रकार से समझ लिया जाय तो विद्यार्थी या अध्येता को वेद, उपनिषद्, गीता तथा अन्य साहित्यिक ग्रन्थ जैसे वाल्मीकि रामायण, महाभारत, भागवत् आदि के पठन-पाठन में व्याकरण सम्बन्धी कोई कठिनाई उपस्थित

नहीं होगी। अतः एव यह आवश्यक है कि इन व्याख्यानों में जो कुछ कहा जा रहा है उसे पूर्ण रूप में समझ लेना चाहिए।

सूत्र—प्राचीन काल में जब कि छापे की कला का आविष्कार नहीं हुआ था तब हमारे ऋषि मुनि अपने विचारों को या तो श्लोक बद्ध (रचिता में) करते थे या सूत्रों में कहते थे जिनमें छानों को उन्हें कण्ठस्थ करने में सरलता होती थी। अन्यन्त सक्षिप्त रूप से कहने को 'सूत्र' कहते हैं जैसे गागर में सागर भर दिया। सूत्र की परिभाषा विद्वानों ने इस प्रकार की है।

अल्पान्तरमसन्दिग्ध सारविद् विश्वतो मुखम्।

अन्तोभयनवग्य च सूत्र सूत्रविदो विदुः ॥

अर्थानु—जो थोड़े अक्षरों वाला हो, उसके अर्थ ज्ञान में मन्देह न हो, अनेक अर्थों को सूचित करने वाला हो, अनर्थक वर्ण समुदाय में रहित हो, और उसमें किसी भी अक्षर में गहनता न हो, ऐसे वचन को विद्वान् लोग 'सूत्र' कहते हैं। ऐसे ही सूत्रों में भगवान् पाणिनि ने समस्त व्याकरण शास्त्र का प्रवचन किया है।

इनमें से प्रत्येक सूत्र के ६ अङ्ग हैं जो इस प्रकार हैं —

(१) पदच्छेद (२) विभक्ति (३) समास (४) अर्थ (५) उदाहरणम् और (६) सिद्धि।

इन अङ्गों या विषयों पर अविचार होने से सभी सूत्र समझ में आ जायेंगे और कोई कठिनाई नहीं होगी। अब हम इन सत्र पर पृथक् पृथक् रूप में विचार करते हैं।

(१) पदच्छेदः

पदच्छेद का शाब्दिक अर्थ है पदों को अलग-अलग कर देना। एक सूत्र कई पदों को मिला कर बनता है। इन्हीं पदों को सन्धि विच्छेद आदि करके पृथक् पृथक् करने को पदच्छेद कहते हैं। ऐसा करने से सूत्र का अर्थ समझने या लगाने में सरलता होती है। अथ पद की परिभाषा —

पद—सुपन्त और तिङन्त शब्दों की पद सज्ञा होती है अर्थात् सुप् और तिङ् आदि विभक्तियाँ जिन शब्दों के अन्त में जुड़ी होती हैं

उनको 'पद' कहते हैं। सुप् और तिङ् ये कोन सी विभक्तियां हैं ? देखिये :—

सुप्—जैसा कि हम देख चुके हैं, संज्ञा, सर्वनाम आदि प्रातिपदिकों के पश्चात् सु, औ, जस् आदि २१ विभक्तियाँ जोड़ कर रूप चलाये जाते हैं। इन्हीं विभक्तियों में से प्रथम अक्षर (सु) और अन्तिम अक्षर (प्) लेकर 'सुप्' शब्द बनाया गया। अर्थात् सु औ, जस् आदि २१ विभक्तियों ही को 'सुप्' कहते हैं।

तिङ्—इसी प्रकार धातुओं के पश्चात् जोड़ी जाने वाली विभक्तियों को तिङ् कहते हैं। इन विभक्तियों का पहला अक्षर 'ति' और अन्तिम 'ङ्' है, जिनके योग से 'तिङ्' बना। अर्थात् क्रिया बनाने के लिए धातुओं के पश्चात् जोड़ी जाने वाली १८ विभक्तियों को 'तिङ्' कहते हैं, जो वे इस प्रकार हैं।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
परस्मैपद—	तिप्	तस्	भि
	सिप्	थस्	थ
	मिप्	वस्	मस्
आत्मनेपद—	त	आताम्	ऊ
	थास	आथाम	ध्वम्
	इद्	वहि	महिङ्

इन्हीं विभक्तियों से 'ति तः अन्ति' आदि प्रत्यय बने हैं जो धातुओं के पश्चात् जोड़े जाते हैं, और रूप चलाया जाता है।

परस्मैपदी तथा आत्मनेपदी धातुओं का वर्णन अन्यत्र किया जायेगा।

प्रत्याहार—प्रत्याहार का अर्थ है संक्षिप्त करना, अर्थात् किसी एक शब्द या अक्षर समूह के लिए एक सांकेतिक शब्द का प्रयोग करना। जैसे—सु, औ, जस् आदि विभक्तियों के लिए 'सुप्' और तिप्, तस्, भि आदि १८ विभक्तियों के लिए 'तिङ्' सांकेतिक शब्द को व्यवहार में लाना। सुप् और तिङ् संकेतों को प्रत्याहार कहेंगे। इसी प्रकार भगवान् पाणिनि ने प्रत्याहारों का प्रयोग किया है।

“अ इ उ ण्, ऋ लृक् इत्यादि प्रत्याहार सूत्र कहलाते हैं। इन

चौदह सूत्रों में ४० प्रयाहार करने हैं। जैसे अच्, अच्, हल्, अल्, आदि। अच् कहने से 'अ' से 'क' तक के सभी अक्षरों (अ, इ, उ, ए, लृ) का बोध समझना चाहिए। इसी प्रकार अच् से 'अ' से लेकर 'च्' तक के सभी स्वर, हल् में 'ह' से 'ल्' तक के सभी व्यञ्जन और अल् से 'अ' से लेकर 'ल्' तक के सभी अक्षरों को समझना चाहिए। अतः सुप्, तिङ्, अक्, अच्, हल्, अल्, आदि सभी प्रयाहार हैं और वे अपने-अपने अक्षर समूहों को प्रकट करते हैं। इन स्वरों को समझने के पश्चात् पदों की परिभाषा सरल हो जाती है। देखिये, सुप् और तिङ् प्रत्याहार में आने वाला कोई भी प्रत्यय जिसे प्रातिपदिक या धातु के अन्त में हो उस प्रत्यय अन्तर्गते शब्द को पद कहते हैं। जैसे, राम पठति आत्ति। राम के अन्त में जो () लगे हैं वह 'सु' का ही परिवर्तित रूप है और पठति के अन्त में तिप् 'ति' प्रत्यय का रूप ही है। अतः ये क्रमशः सुपन्त और तिङन्त पद हैं। ऐसे ही पदों का पृथक्-पृथक् करना 'पदच्छेद' कहलाता है। जैसे—राम गृह गच्छति। इस वाक्य में राम और गृह में क्रमशः सु और अम् तथा 'गच्छति' में 'ति' विभक्ति जुड़ी हुई है। अतः राम और गृहम्, सु, और जस् आदि विभक्तियों के कारण सुपन्त और गच्छति में 'तिप्' होने से तिङन्त है। इस ग्रन्थ में सभी सूत्रों का इसी प्रकार पदच्छेद कर दिया गया है।

(२) विभक्तिः

पदच्छेद के पश्चात् विभक्ति क्रम आपसे आप समझ में आ जाता है। पद के पृथक् हो जाने पर उसकी विभक्ति भी स्पष्ट हो जाती है। मान लीजिये कि किसी प्रातिपदिक के अन्त में 'सु' लगा है तो उसे प्रथमा का एकवचन कहेंगे। इस ग्रन्थ में इसका चिह्न १।१ है जो यथास्थान सूत्र पर लिखा रहेगा। अन्त में इम् लगे रहने पर वह पठती का एकवचन ६।१ होगा। इसी प्रकार सूत्रों के सभी पदों पर विभक्तियाँ लिख दी गई हैं। किसी भी सूत्र को देख लीजिये।

(३) समासः—अनेक पदों के एक पद हो जाने को समास कहते हैं। जैसे दशरथस्य पुत्र (दशरथ का पुत्र) इसमें दो पद हैं। दोनों को मिला कर दशरथपुत्र एक पद बन गया। इसी को समास कहते हैं।

पदों का 'डस्' और 'सु' का लोप हो गया और फिर एक दूसरा, 'सु' आकर दशरथपुत्र बना। अतः समास में कम से कम दो पदों का एक पद होना निश्चित ही पाया जाता है। इससे अधिक पद भी हो सकते हैं। तो इन दोनों पदों में 'दशरथ' शब्द का पूर्वपद और पुत्र शब्द का उत्तरपद कहेंगे। पूर्व का अर्थ पहल का और उत्तर का अर्थ पश्चात् का है। समास में कभी पूर्व पद प्रधान हो जाता है और कभी उत्तरपद। कभी कभी दोनों पद प्रधान हो जाते हैं और कभी दोनों पदों को छाँटकर एक तीसरा पद ही प्रधान हो जाता है। इसी कारण मुख्यतया समास चार प्रकार के होते हैं। (१) अव्ययीभाव (२) तत्पुरुष (३) बहुव्रीहि (४) द्वन्द्व। कर्मधारय इत्यादि अन्य जितने भेद हिन्दी या संस्कृत में होते हैं, वे सभी इन्हीं चार समासों के भेद हैं।

अव्ययीभावः—पूर्वपदार्थप्रधान अव्ययीभाव अर्थात् जिसमें पूर्वपद का अर्थ प्रधान है, उसे अव्ययीभाव समास कहते हैं। जैसे उपकृष्णम्। उपकृष्णम् में दो पद हैं उप और कृष्णस्य। उप अव्यय है और समीप अर्थ का बोधक है। अतः उपकृष्णम् का विग्रह हुआ कृष्णस्य समीपम्। समस्त पदों को विभक्ति के साथ अलग अलग करने को विग्रह कहते हैं। जैसे दशरथपुत्र यह समास किया हुआ शब्द है। अलग अलग करने पर दशरथस्य पुत्र होगा। विग्रह दो प्रकार का होता है। (१) लौकिक और (२) अलौकिक। लोक अर्थात् ससार में जो वाक्य रूप से बोलने योग्य हो उसको लौकिक विग्रह कहते हैं, तथा जो लोक में बोला न जाता हो, केवल व्याकरण का कार्य दर्शाने के लिए ही विग्रह किया जाता है उसको अलौकिक विग्रह कहते हैं। जैसे दशरथ डस् पुत्र म। ऐसा विग्रह लोक में बोला नहीं जाता। लेकिन व्याकरण में इसकी आवश्यकता पड़ती है, तो उपकृष्णम् यहाँ पर लौकिक विग्रह कृष्णस्य समीपम् हुआ और अलौकिक विग्रह कृष्ण डस् उप मु हुआ। दोनों पदों से मिलकर 'उपकृष्णम्' बना। यह कैसे बना इसका विवेचन समास प्रकरण में किया जाएगा। यहाँ पर तो दो पद मिलकर एक पद बन गया यही जानना चाहिये। अव्ययीभाव समास नपुंसक लिङ्ग और अव्ययसङ्ग होता है। इसलिये इसके रूप सब विभक्तियों में नहीं चलते। अनारान्त अव्ययीभाव से परे विभक्ति

को अर्थ हो जाता है। उपकृष्णम् का अर्थ है कृष्ण के समीप। यहाँ पर उप अव्यय की प्रधानता है न कि कृष्ण की, और उप पूर्वपद है इस लिये उपकृष्णम् में पूर्वपदार्थ की प्रधानता होने से अव्ययी भाव का लक्षण घट गया। पूर्वपदार्थप्रधान अन्ययीभाव इति।

तत्पुरुषः—उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुष। जिस समास में उत्तर-पदार्थ प्रधान होता है उसे तत्पुरुष समास कहते हैं। जैसे दशरथस्य पुत्र इति दशरथपुत्र। इस वाक्य में दशरथ के पुत्र का याव होता है अतः नहीं प्रधान है।

‘राजपुरुष’ पद का अर्थ है राजा का पुरुष। ‘राजपुरुषमा नय’ इस वाक्य का अर्थ है राजा के पुरुष को लाओ। इस वाक्य का सुनने वाला राजा को तो नहीं बल्कि राजा के पुरुष को ही लावेगा। अतः उत्तरपदार्थ प्रधान वाला समास तत्पुरुष समास होता है।

बहुव्रीहिः—अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहि। जिस समास में दोनों पदों की प्रधानता नहीं बल्कि अन्य ही पदार्थ प्रधान हो उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं। जैसे चित्रगु गच्छति। इस वाक्य का अर्थ है चितकवरी गायों वाला कोई व्यक्ति जाता है। अब इस समास पद में चित्र और गौ दो पद हैं। जिस व्यक्ति को चित्रगु कहा जा रहा है। वह तो स्वयं चितकवरी नहीं है और न वह गाय है परन्तु वह चितकवरी गाय वाला है। इससे यहाँ पर प्रधानता चित्र और गौ इन दोनों पदों की नहीं है। परन्तु इन दोनों चित्र और गौ पदों के अर्थ से भिन्न एक तीसरा पदार्थ जो कोई व्यक्ति है, उसकी प्रधानता है। इसलिये अन्य पदार्थ प्रधान वाला समास बहुव्रीहि समास होता है।

द्वन्द्वः—उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्व। जिस समास में दोनों पदों की प्रधानता होती है उसे द्वन्द्व समास कहते हैं। जैसे रामलक्ष्मणी गच्छत। इस वाक्य का अर्थ है राम और लक्ष्मण जाते हैं। यहाँ पर जाने वाले राम और लक्ष्मण दोनों ही प्रधान हैं। हिन्दी में भी ‘दाल भात’ ‘हाथ पैर’ इत्यादि उदाहरण हैं। दाल और भात दोनों ही प्रधान हैं।

पूर्वपदार्थप्रधानोऽन्ययीभाव आदि जो चारों समासों के लक्षण दिखलाए हैं वे सब मान्य लक्षण हैं। प्रायः करके तत्तत् समास में पूर्वादि पदों की प्रधानता होती है। कहीं कहीं पर इन लक्षणों का व्याघात भी

देखा जाता है यथा राजमाप , राजरोग । यहा तत्पुरुष समास होने से माप और रोग की प्रधानता होनी चाहिए परन्तु प्रधानता है राज की, क्योंकि विग्रह वाक्य मापाणा राजा और रोगाणा राजा में राजा की ही प्रधानता अभिप्रेत है । इसी प्रकार अन्य समासों में भी समझें ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में समासों के अवान्तर भेदों का भी निर्देश किया गया है । जैसे पृष्ठी तत्पुरुष, आदि । अवान्तर भेदों का विस्तृत वर्णन समास प्रकरण के व्याख्यान में देखिये । यहा समास के मुख्य भेदों का निरूपण कर दिया गया है जिससे विद्यार्थी सूत्रों में आये हुए समासों को समझ सकें ।

(४) अर्थः—अर्थ से तात्पर्य सूत्र के अर्थ से है । सूत्र का अर्थ जानना चाहिए अन्यथा उसे रटने से विशेष लाभ न होगा । सूत्रों के अर्थ लगाने के लिए 'अनुवृत्ति' का विशेष रूप से ज्ञान होना चाहिए । इसके बिना ठीक अर्थ नहीं लगाया जा सकता । यह 'अनुवृत्ति' ही अष्टाध्यायी क्रम की विशेषता है क्योंकि उपर के सूत्रों से भी कई पद आकर जिस सूत्र का अर्थ करना हो उसमें जुड़ जाते हैं । तभी उसका ठीक अर्थ लगता है अन्यथा नहीं । बार बार एक ही बात को न दुहरा कर उसे केवल एक ही बार कह दिया जाता है और उसकी अनुवृत्ति आगे चलती रहती है ।

ये अनुवृत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं, एक लम्बी और दुसरी छोटी । जिस पद या पदों की अनुवृत्ति अनेक सूत्रों में दूर तक जाती है उसे 'अधिकार' कहते हैं ।

वारम्बार उस पद को न कहकर एक ही बार कह दिया जाता है और जहाँ तक उस सूत्र या पद का अधिकार जाता है, वह अपने वाद के सभी सूत्रों में उपस्थिति होकर उस सूत्र का अङ्ग होता है । जैसे— प्रथम (३.१.१) परश्च (३.१.२) ये दोनों अधिकार सूत्र हैं । और इनका अधिकार पञ्चमाध्याय के अन्त तक जाता है । इसका अर्थ हुआ कि ये दोनों सूत्र पञ्चमाध्याय तक सभी सूत्रों में जाकर उसका अङ्ग बन जाते हैं । और तभी उस सूत्र का अर्थ होता है । तृतीयाध्याय में धातो (३.१.६१.) भी अधिकार सूत्र है । उसका अधिकार तृतीयाध्याय के अन्त तक जाता है ।

स्पष्ट करने के लिए मान लीजिये हमें 'वर्तमाने लट्' (३०१०३) सूत्र का अर्थ करना है। अर्थ करने से पूर्व हमें इसके सभी अधिकार सूत्रों को उपस्थित करना चाहिए। यहाँ 'प्रत्यय' (३.१.१) परश्च (३.१.२.) और धातो (३.१.६१.) इन तीनों सूत्रों का अधिकार आ रहा है अतः इन तीनों सूत्रों को 'वर्तमाने लट्' सूत्र के साथ जोड़ लीजिये। इस प्रकार सूत्र हो जायगा, "धातो, प्रत्यय, परश्च, वर्तमाने लट्"। किन्तु यह किमी क्रम में नहीं रखे गये। क्रम से रखने को अन्वय करना कहते हैं। अन्वय करने के पर्याप्त ही ठीक अर्थ निकलता है।

अन्वय की शैली—भगवान् पाणिनि ने अष्टाध्यायी के सूत्रों में अधिनाश रूप से चार विभक्तियों का ही प्रयोग किया है, प्रथमा, पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी। इन्हीं विभक्तियों की सूत्रों में प्रधानता है। इन्हीं सूत्रों में ये चारों विभक्तियाँ प्रयुक्त हुई हैं और इन्हीं में इन से न्यून। तृतीया, द्वितीया और केवल प्रथमा विभक्ति का भी किन्हीं-किन्हीं सूत्रों में प्रयोग मिलता है अस्तु। इन विभक्तियों को अन्वय रूप में रखने के लिए '५७६१' 'सख्या सूत्रों' को यादकर लीजिये। इनमें से प्रत्येक अङ्क अपनी २ विभक्ति का परिचायक है। ५ में पञ्चमी, ७ से सप्तमी, ६ से षष्ठी और १ अङ्क से प्रथमा विभक्ति का ग्रहण करना चाहिए। यदि किसी सूत्र में चारों विभक्तियाँ हो तो उन्हें इसी क्रम से रख लीजिये। सूत्र का अर्थ निकल आयेगा। जो विभक्ति न हो उसका स्थान रिक्त हो जायगा किन्तु अन्वय का क्रम यही रहेगा। अर्थात् पञ्चमी के पर्याप्त सप्तमी, फिर षष्ठी और अन्त में प्रथमा विभक्ति को रखना चाहिए। केवल एक विभक्ति रहने पर एक ही रहेगी। सूत्रों में प्रयुक्त विभक्तियाँ को क्रम से रखने का यही क्रम है जिससे सूत्रों का अर्थ लगाने में सरलता होती है।

अब हम अपने प्रकृत विषय पर आते हैं। 'वर्तमाने लट्' का अर्थ लगाने समय हमने देखा था कि उसका रूप कुछ इस प्रकार का हो गया था। "प्रत्यय, परश्च, धातो, वर्तमाने लट्"। इसमें षष्ठी विभक्ति वाला कोई पद नहीं है। इसलिए दिये हुए 'सख्या-सूत्र' के अनुसार विभक्तियों का क्रम ५७१ के समान रहेगा। अर्थात्, धातो ५१ वर्तमाने ७१ लट् ११ प्रत्यय ११ पर ११ च (अन्वयान् पदम्)।

तदनुसार “धातो वर्तमाने लट् प्रत्यय परश्च” यह सूत्र बना अथ इसका अर्थ हिन्दी में करने की चेष्टा करनी चाहिए ।

इन चार विभक्तियों की अर्थ-विधि :-

इन विभक्तियों के साधारण साहित्यिक अथवा व्याकरण के अनुसार जो अर्थ होते हैं उनका वर्णन हम गत व्याख्यानों में यथास्थान कर आये हैं । किन्तु इन चारों (५, ७, ६, १) विभक्तियों के अर्थ जो विशेषतया अष्टाध्यायी में ग्रहण किये जाते हैं इस प्रकार हैं —

विभक्ति	अर्थ
१ प्रथमा	— होता है या है ।
२. पञ्चमी	— उसके परचात् ।
३. पष्ठी	— के स्थान में या के
४ सप्तमी	— परे रहने पर या में ।

इन्हीं के अनुसार अब ‘वर्तमाने लट्’ सूत्र का अर्थ लगाइये । सूत्र का रूप इस प्रकार हो गया था, “धातो वर्तमाने लट् प्रत्यय परश्च” ।

धातो ५।१ = धातु के परचात् ।

वर्तमाने ७।१ = वर्तमान काल में ।

लट् प्रत्यय १।१ = लट् प्रत्यय होता है ।

पर १।१ च अव्यय० = और वह परे होता है ।

अर्थात् इस सूत्र का अर्थ हुआ कि धातु के परचात् वर्तमान में लट् प्रत्यय होता है और वह परे होता है । इसी प्रकार से अनुवृत्ति को लेकर सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में सूत्रों का अर्थ करना चाहिए । ‘रटना नहीं चाहिये । थोड़े दिनों के परचात् अनुवृत्ति आप से आप दिखाई देने लगती है । इस ग्रन्थ में अनुवृत्ति को लाकर अर्थ करने के पूर्व [] इस कोष्ठक में लिख दिया है । कोष्ठक में लाये गये पदों की विभक्तियों को जिस सूत्र से वे पद लाये गये हैं, उन सूत्रों पर अकित पदच्छेदादि से देख लेना चाहिये ।

५. उदाहरण—सूत्रों के पदच्छेद, विभक्ति, समास, अर्थ आदि समझ लेने के परचात् स्वाभाविक इच्छा उनके उदाहरण जानने की

होती है। ये उदाहरण प्रत्येक सूत्र के साथ ग्रन्थ में लिख दिये गये हैं।
बही पर देख लाजिये।

६. सिद्धि—उदाहरण का पता लग जाने के पश्चात् यह जानने की इच्छा उत्पन्न होती है कि यह उदाहरण किस प्रकार बना। इसके लिए आगे पीछे के सम्बन्धित सूत्रों के अनुसार किमी उदाहरण को सिद्ध करना पड़ता है। हमने सूत्रों को लगाकर उदाहरणों को सिद्ध किया है। प्रत्येक सूत्र किसी न किमी नियम या कार्य का निर्देश करता है जिसके अनुसार कार्य होता है। किम सूत्र में क्या कार्य हुआ इसका निर्देश भी ग्रन्थ में मली भाति कर दिया है और सम्बन्धित सूत्रों को टिप्पणी में लिख दिया जिससे विद्यार्थी को समझने में कठिनाई नहीं होगी।

इस प्रकार पदच्छेद, विभक्ति, समास, अर्थ, उदाहरण और सिद्धि पूर्वक जो अध्येता अष्टाध्यायी के समस्त सूत्रों का अध्ययन करेगा, वह लौकिक तथा वैदिक दोनों प्रकार के शब्दों का पूर्ण ज्ञाता होगा, ऐसा हमारा मत है। अतएव अध्ययन के समय किमी भी अङ्ग को नहीं छोड़ना चाहिए। धैर्य पूर्वक इन व्याख्यानों को पढ़कर अक्षरगत समझकर आगे बढ़ना चाहिए। विशेष कठिनाई होने पर लेखक के साथ पत्र व्यवहार से दूर कर लेना चाहिए। लेखक यथाशक्ति कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न करेगा। इससे अगले संस्करण में भी संशोधन किया जा सकेगा।

पष्ठ व्याख्यान

सूत्रों के प्रकार

इस व्याख्यान में हम अष्टाध्यायी में लिये गये सूत्रों और उनके प्रकार पर सक्षेप से विचार करेंगे। महामुनि पाणिनि ने अष्टाध्यायी में केवल मात्र प्रकार के सूत्रों का प्रवचन किया है, जो इस प्रकार है।

(१) महा, (२) परिभाषा, (३) विधि, (४) निषेध, (५) नियम

(६) अतिदेश और (७) अधिकार ।

अब इन सातों प्रकार के सूत्रों पर पृथक्-पृथक् विचार करते हैं । अष्टाध्यायी-अध्ययन के लिए इन सूत्रों को ठीक ठीक समझ लेना बहुत आवश्यक है ।

१. सज्ञासूत्र—अष्टाध्यायी के प्रथम अध्याय में केवल सज्ञासूत्र दिये हुए हैं, जिनका तात्पर्य अन्य अध्यायों में प्रयुक्त व्याकरण के शब्दों का विवेचन करना है इसीलिए उन्हें सज्ञासूत्र कहा गया है सज्ञा सम् उप-सर्गपूर्वक ज्ञा धातु से बना है जिसका अर्थ है अच्छी तरह से जानना । सज्ञा शब्द का अर्थ है—सम्यग् जानीयुर्यया सा सज्ञा अर्थात् जिसके द्वारा किसी वस्तु को अच्छे प्रकार से जाना जाय उसे सज्ञा कहते हैं । इसीलिए किसी वस्तु, ग्राम, शहर, मनुष्य, पशु आदि के नाम सज्ञा कहलाते हैं । 'नाम' से वह वस्तु, पशु या मनुष्य शीघ्र पहिचान लिया जाता है ।

अस्तु प्रथम अध्याय में केवल नामों का उल्लेख और परिभाषा दी गई है जिनका प्रयोग अगले ७ अध्यायों में किया गया है । जैसे—वृद्धि, गुण, सयोग, घु, घ, सम्प्रसारणम्, लोप, उपधा, पदम्, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, प्रातिपदिकम्, आत्मनेपदम्, परस्मैपदम्, लघु, गुरु, कर्म, कर्ता, निपात उपसर्गा, गति, विभक्ति, सहिता, अवसानम् आदि । इन सभी सज्ञाओं की व्याख्या भी साथ ही कर दी गई है । जैसे—पहला नाम 'वृद्धि' है । इसका सूत्र है, "वृद्धिरादैच्" । इसका अर्थ है 'आ', 'ऐ', 'औ' इन तीनों वर्णों का नाम वृद्धि है । व्याकरण की भाषा में कहा जायगा कि आ, ऐ, औ, इन वर्णों की वृद्धि सज्ञा है । इसी प्रकार सूत्रों में ही नाम और उनकी व्याख्या दी गई है । छात्रों को चाहिए कि वे इन नामों अर्थात् सज्ञाओं को प्रथम अध्याय में खूब समझ लें जिससे आगे अध्ययन में उन्हें कठिनाई न हो ।

२. परिभाषासूत्र—परिभाषा किसे कहते हैं । इस प्रश्न पर विचार करते हैं । परित् सर्वतो भाष्यन्ते नियमा याभिस्ता परिभाषा । जिससे सब प्रकार नियमों की स्थिरता की जाय उसे परिभाषा सूत्र कहते हैं । ये सज्ञा और परिभाषा सूत्र स्वयं कोई कार्य नहीं करते बल्कि अन्य विधि या निषेध सूत्रों की सहायता करते हैं । जैसे वृद्धिरेचि सूत्र है ।

वहा पर सूत्र का अर्थ है अवर्ण के पश्चात् णच् परे हो तो पूर्व और पर के स्थान में वृद्धि रूप ण्मादेश होता है। एकादेश का अर्थ है दोनों मिलकर एक हो जाना। उदाहरण स्वट्वा + ऐतिकायन यहाँ पर अवर्ण के पश्चात् ऐ है अतः ण्मादेश होगा। अत्र वृद्धि किसको कहते हैं, इस पर सज्ञा सूत्र वृद्धिरादैच् वहा पर पहुँच जायेगा। और बतायेगा कि आ, ऐ और औ को वृद्धि कहते हैं। अर्थात् किन किन वर्णों की वृद्धि सज्ञा है, इतना ही निर्देश करके सज्ञा सूत्र का काम ममाप्त हो जाता है। अतएव ज्ञात हुआ कि विधि सूत्र जो वृद्धिरेचि है उसकी सहायता करने में सज्ञा सूत्र वृद्धिरादैच् ने काम किया।

सज्ञा सूत्र की विशेषता यह है कि वह विधि सूत्रों का अङ्ग नहीं बनता। वह तो अलग रहते हुए परिचय मात्र कराता है। परन्तु परिभाषा सूत्र में यह बात नहीं। परिभाषा सूत्र जब किसी दूसरे विधिसूत्रों के साथ लगेगा तो वह उस सूत्र का अङ्ग बन जायेगा। और तब दोनों सूत्रों को मिलाकर एक सूत्र समझकर अर्थ करना चाहिये। जैसे इको गुणवृद्धी (१.१३) परिभाषा सूत्र है। इसका अर्थ है “गुण और वृद्धि शब्द से जहा गुण वृद्धि का विधान किया जाय वहा इक् ही के स्थान में होता है।” इक् प्रत्याहार है, और इ से लेकर क तक वर्णों का ग्रहण करता है। अच्छा तो अब गुण विधान करने वाले या वृद्धि विधान करने वाले सूत्रों को देखिये। मिदेर्गुण (७३८६) सूत्र से लेकर आगे गुण विधान करने वाले सूत्र हैं। ‘गुण’ किसे कहते हैं? अदेङ्गुण (१.१.२) सूत्र का अर्थ है अ, ए, और औ नी गुण सज्ञा होती है। गुण होने का अर्थ है कहीं पर अ हो जाना, कहीं पर ए हो जाना और कहीं पर औ हो जाना। अष्टाध्यायी के सभी सूत्रों में यह व्ययस्था जाननी चाहिये कि जहा भी गुण अर्थात् अ, ए, औ होता है वहा ऋ के स्थान में अ, इ के स्थान में ए और उ के स्थान में औ होता है। उसी प्रकार से वृद्धि होने के अर्थ है ऋ के स्थान में आ, इ के स्थान में ऐ और उ के स्थान में औ। कहने का तात्पर्य यह है कि गुण और वृद्धि जहा भी होती है वहा ऋ के स्थान में गुण ‘अ’, और वृद्धि ‘आ,’ ई के स्थान में गुण ‘ए’ और वृद्धि ‘ऐ’, उ के स्थान में गुण ‘औ’ और वृद्धि ‘औ’ होते हैं। गुण और वृद्धि कब होती है, इसका विस्तृत विचरण कृन् प्रत्ययों की सिद्धि के समय दिया जायेगा।

हा तो देखिये मिदेर्गुण सूत्र कहता है कि मिद् धातु को गुण हो जाय । अम प्ररन है कि मिद् में तो म्, इ और द् तीन अक्षर हैं किसके स्थान में गुण हो । एक और परिभाषा सूत्र है अलोऽन्त्यस्य (१.१ ४६) वह मिदेर्गुण. के पास पहुँच गया । वह परिभाषा सूत्र विधि सूत्र के पास भटिति (शीघ्र) पहुँचते है । तो अलोऽन्त्यस्य सूत्र भी पहुच कर मिदे-र्गुण ' के साथ लग गया अर्थात् परिभाषा सूत्र विधि सूत्र का अङ्ग होता है इस नियम के अनुसार वह मिदेर्गुण इस सूत्र का अङ्ग हो गया ।

अलोऽन्त्यस्य सूत्र का अर्थ अष्टाध्यायी प्रकाशिका में भी दिया है । पष्ठी निर्दिष्ट आदेश अन्तिम अल् अर्थात् अन्तिम अक्षर के स्थान में होता है । पष्ठी निर्दिष्ट का अर्थ है, पष्ठी विभक्ति से निर्देश अर्थात् अष्टाध्यायी के सूत्रों में पष्ठी विभक्ति से जहा पर कोई आदेश कहा गया है । आदेश उसको कहते है जो किसी को हटा कर स्वय हो जाए ।

आदेश तीन प्रकार का होता है लोप, सर्वादेश और वर्ण विकार । लोप का अर्थ किसी वस्तु का अदर्शन हो जाना । सूत्र भी है अदर्शन लोप ' (१.१.२६) जिसका दर्शन न हो उसको अदर्शन कहते हैं । पाणिनि किसी को अदर्शन कहते हैं उमका अर्थ यह है कि वस्तु की सत्ता नहीं समाप्त होती बल्कि वह वस्तु बहा नहीं रहती । अत 'लोप' भी आदेश है । जैसे रामस् शब्द में सकार को लोप हो जाय तो केवल राम शब्द रह जायेगा । सर्वादेश उस को कहते हैं जो किसी सम्पूर्ण स्थानी को हटा कर स्वय हो जाए जैसे 'अस्तेभू' । इस सूत्र का प्रयोजन आर्धधातुक प्रत्यय के विषय में अस् धातु से परे तव्य प्रत्यय लाना है इसलिए अस् पूरी धातु को हटा दिया जाय । यही लोप का अर्थ है ।

वर्ण विकार भी आदेश है । अ इ उ आदि स्वर और क् ख् आदि व्यञ्जन सभी वर्ण हैं । वर्ण विकार का अर्थ है वर्णों में परिवर्तन । जैसे इ (इकार) का परिवर्तन अथवा 'ऐ' भी हो सकता है या जो चाहें सो हो सकता है । पाणिनि की आज्ञा हो जाय तो इ के स्थान में उ भी हो सकता है । तो इसी इ के भिन्न भिन्न रूप होने को इ का विकार अर्थात् वर्ण का विकार कहेंगे । व्यञ्जन का भी

विकार होता है। जैसे 'वाक् अत्र' यहा पर सहिता के नियम से क् को ग् हो जायगा तभी तो वागात्र बनेगा। अतएव किसी भी स्वर या व्यञ्जनका बदल जाना वर्ण विकार कहलाता है। कहीं पर लोप होता है, कहीं पर सर्वदेश होता है और कहीं पर वर्णविकार होता है तो कहीं पर इसी प्रकार आगम होता है। आगम कहते हैं अ । जाने को। सो कहीं कहीं पर कोई वर्ण किसी के आदि में किसी के अन्त में, किसी के मध्य में आकर बैठ जाता है। जैसे घर पर आए सम्बन्धी या मित्र परिवार के अङ्ग बनते हैं वैसे ही जिसको आगम होता है उसका अगम बन जाते हैं।

आदेश का व्यवहार शत्रु के समान होता है। इसलिए जिसको आदेश किया जाता है। उसको वहा से भागना ही पडता है। जैसे अस् को भू आदेश कहा तो अस् को हटना होगा उसके स्थान पर भू बैठेगा। परन्तु आगम मित्रवत् होता है। जैसे मित्र के आने पर किसी को कोई फट्ट नहीं होता वैसे ही आगम भी किसी को हटाता नहीं जहा उचित जगह देखता है आदि अन्त या मध्य में स्वयं बैठ जाता है।

अष्टाध्यायी व्याकरण इसी प्रकार से शब्दों का अनुशासन करता है। इसी लिये महाभाष्यकार प्रतञ्जलि कहते हैं "लोपागमवर्णविकारो हि सम्यग्देशान् परिपालयिष्यतीति अभ्येय व्याकरणम्" अर्थात् लोप आगम और वर्ण विकार को अच्छी तरह से जानने वाला ही लौकिक तथा वैदिक शब्दों का जानकर वेदाध्ययन करने में समर्थ हो सकता है इसलिये व्याकरण पढना चाहिये।

अच्छा तो प्रसङ्गवश लोप आगम और वर्णविकार के सम्बन्ध में चर्चा की। पुन प्रसङ्ग पर आइये। पष्ठी विभक्ति से निर्देश किया गया जो आदेश अर्थात् लोप, आगम, वर्णविकार वह अन्तिम अक्षर के स्थान में होता है। अत्र मिद् को गुण होना है यहा पर इ के स्थान में गुण नहीं प्राप्त है क्योंकि मिदे यहा पर पष्ठी विभक्ति से गुण रूप आदेश का निर्देश किया गया है। इसलिये अलोऽन्त्यस्य परिभाषा सूत्र च्च मिदेर्गुण के साथ अङ्ग हो जायेगा तो मिदेर्गुण सूत्र का अर्थ होगा मिद् के अन्तिम अक्षर के स्थान में गुण होगा। यह अर्थ दोनों सूत्रों को मिलाने किया गया। तो यदि अन्तिम अक्षर द् के स्थान में गुण हो तो 'स्थानेऽन्तरतम' इस सूत्र में 'इ' के स्थान में 'ए' 'उ'

के स्थान में 'ओ' गुण होता है। स्थाऽन्तरत् सूत्र का अर्थ है किसी स्थान में होने वाला आदेश सदृशतम होता है। 'इ'का स्थान 'ए'से और 'उ' का स्थान 'ओ' से मिलता है। इसको वर्णोच्चारण नामक व्याख्यान में विस्तार पूर्वक देखिये। यहाँ तो 'इ' के स्थान में 'अ' गुण हो सकता है क्योंकि ऋ के स्थान में जिस प्रकार 'अ' गुण होता है उसी प्रकार 'इ' के स्थान में 'अ' हो सकता है।

अब आप पूछेंगे कि जब ऋ का स्थान और प्रयत्न अ के साथ मिलता ही नहीं तो स्थानेऽन्तरत् इम सूत्र से ऋ के स्थान में 'अ' गुण क्यों हो जाता है।

जब वहाँ ऋ का गुण हुआ तो अ, ए और ओ तीनों पहुँचे। इ का एकार के साथ स्थान प्रयत्न मिल गया बस ए हो गया। उसी प्रकार ए के स्थान में ओ स्थान प्रयत्न मिलने के कारण हो गया लेकिन ऋ का अ के साथ न स्थान मिलता है और न प्रयत्न। ये ही दोनों बच गये। स्थान प्रयत्न नहीं मिलते हुए भी ऋ के स्थान में अ गुण हो जाता है।

इसकी व्यवस्था महाभाष्यकार ने नष्टाश्वदग्धरथवन् न्याय के अनुसार की है। अर्थात् एका का घोड़ा मर गया और दूसरे का रथ टूट गया। दोनों ने मिलकर उंचे हुए घोड़े और रथ को जोड़ कर अपना कार्य किया। इसी न्याय के अनुसार ऋ के स्थान में स्थान प्रयत्न न मिलने पर भी 'अ' गुण हुआ। इसी प्रकार 'वृद्धि' की भी व्यवस्था समझना चाहिए।

इस विषय में एक बात याद रखिए कि जब और जहाँ भी अ गुण और आ वृद्धि होती है तो उरण् रपर (१-१-४६) गुण करने वाले सूत्र के पास अवश्य चला जाता है। यह सूत्र कहता है कि ऋ के स्थान में होता हुआ अण् अर्थात् अ इ, उ रपर हो जाता है। अर्थात् जब कभी भी ऋ के स्थान में गुण या और किसी प्रकार में अ, इ या उ होता हो तो उस अ, इ, और उ के पश्चात् रेफ आकर अवश्य मिल जाता है। जैसे क धातु का कहीं गुण कइ दिया। ऋ के स्थान में गुण ए और ओ होगा नहीं। होगा अ और अ गुण होते ही उरण् रपर, इम सूत्र से उस अ के पश्चात् 'ए' अवश्य जुड़ जायेगा। इसीलिए तो अंग्रेजी दग की पढ़ाई में अर् को गुण और आर् को वृद्धि कहते हैं। अब

देखिये जत्र ऋ का अर् स्थान और प्रथम न मिलते हुए अ गुण हो सकता है तो ढ् के साथ भी उसी तर्क से अ गुण हो सकता है किन्तु ऐसा होने से रूप गलत बन जायेगा । अतः अलोऽन्यस्य परिभाषा मिदेर्गुण में नहीं लगता । यहाँ पर इको गुण वृद्धी यह परिभाषा सूत्र लगेगा । यहाँ आप प्रश्न कर सकते हैं कि इन दोनों परिभाषाओं की जत्र मिदेर्गुण सूत्र में उपस्थिति है तो 'इको गुणवृद्धी' सूत्र ही क्यों लगेगा । 'अलोऽन्यस्य' सूत्र क्यों नहीं ?

इस विषय में याद रखिये कि 'अलोऽन्यस्य उत्सर्गसूत्र' और 'इको गुणवृद्धी अपवादसूत्र' है । सर्व साधारण नियम को 'उत्सर्ग' नियम और विशेष नियम को 'अपवाद' कन्ते हैं । अतः दोनों प्रकार के सूत्र अष्टाध्यायी में उपलब्ध हैं । दोनों प्रकार के सूत्र के उपस्थित होने पर सर्वदा अपवाद सूत्र ही को प्रधानता दी जाती है यह बात ध्यान में रखनी चाहिए ।

इसी नियम में 'अलोऽन्यस्य' नहीं लग कर उसका अपवाद 'इको गुणवृद्धी' ही सूत्र लगा । महाभाष्य में इसके आगे विचार भी किया है लेकिन उनमें जानने की आवश्यकता नहीं । अतः 'इको गुणवृद्धी' सूत्र के लगने पर मिदेर्गुण सूत्र का अर्थ हुआ कि मिद् के इक् के स्थान में गुण हो । यहाँ पर मिदेर्गुण सूत्र में गुण कह कर गुण का विधान किया जा रहा है । हा यह आप पूछ सकते हैं कि बिना गुण या वृद्धि रहे कैसे गुण या वृद्धि का विधान होता है । तो जानकारी के लिये यह जान लें कि गत्र सूत्र है द्विव औत् (७१ षष्ठ) । यहाँ द्विव के स्थान में औत्तर होता है । यहाँ पर भी 'अलोऽन्यस्य' और 'इको गुणवृद्धी' इन दोनों परिभाषाओं की उपस्थिति होता है लेकिन 'इको गुणवृद्धी' परिभाषा सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकती क्योंकि यह ठीक है कि औत्तर वृद्धिरात्रैच् इम सूत्र से वृद्धि सञ्जायाला है लेकिन यह औत्तर होना वृद्धि शब्द से नहीं कहा गया है यदि वृद्धि शब्द से विधान किया जाता तो इक् ही के स्थान में होता और वत्तर के स्थान में नहीं होता । परन्तु यहाँ वृद्धि शब्दमें वृद्धि का विधान नहीं किया गया इसलिए अलोऽन्यस्य सूत्र ही पहुँचेगा जिससे अग्निम वत्तर के स्थान में ही औत्तर आदेश होगा तो रूप बनेगा दि औ और फिर 'इको यणचि' से इ का य्, ढ् य् औ, यौ, बन जाता है ।

इसी प्रकार मिद् का गुण मिदेर्गुणः यहाँ पर गुण कह कर विधान किया गया है, अतएव इक् के स्थान में ही गुण होगा। तो इ के स्थान में 'स्थानेऽन्तरतमः' इस सूत्र से ए गुण होगा मिद् का मेद हो जायेगा। इसी वृद्धि करने वाले विधि सूत्रों में भी इसी प्रकार से समझना चाहिये। इस व्याख्यान को तीन चार बार पढ़कर तथा जिन जिन सूत्रों का उद्धरण दिया गया है, उनका अर्थ देखना चाहिये। इस व्याख्यान को समझने के पश्चात् अष्टाध्यायी के सूत्रों को एक बड़ी समरथा हल हो जाती है।

३. विधिसूत्र—

यो विधीयते स विधिर्विधानं वा अर्थात् जो विधान करता है उसको विधिसूत्र कहते हैं। समास, कृदन्त, तद्धित इत्यादि प्रकरणों में अनेक सूत्र विधान करने वाले हैं। लोप, आगम, वर्णविकार करने वाले भी अनेक सूत्र हैं। जैसे समास में अव्ययं विभक्ति० (२. १. १) द्वितीया श्रितातीत (२. १. २३) तृतीया तत्कृता० (२. १. २६) कृदन्त में तव्यत्तव्यानीयरः (३. १. ६६) अचो यत् (३. १. ६७) ऋहलोर्ण्यत् (३. १. १२४) यवुन्तृचौ (३. १. १३३) कमएवण् (३. २. १) तद्धित में नडादिभ्यः फक् (४. १. ६६) स्त्रीभ्यो ढक् (४. १. १२०) तेन रक्तं रागात् (४. २. १) इत्यादि। लोप आतो लोप इटि च (६. ४. ६४) श्नाभ्यस्तयोरातः (६. ४. ११२) अतो लोपः (६. ४. ४८) आगम-द्वस्वस्य पिति कृति तुक् (६. १. ६६) छे च (६. १. ७१) इदितो नुम्धातोः (७. १. ५८) आर्धधातुकस्येड्यवलादेः इत्यादि। विर्णविकार-मिदेर्गुणः (७. ३. ८२) नार्धधातुकार्धधातुरयोः (७. ३. ८४) पुगन्तलघु पधस्य च (७. ३. ८६) मृजेवृद्धिः (७. २. ११४) अचोऽब्धिः (७. २. १५) अत उपधायाः (७. २. ११६) तद्धितेष्वचामादे (७. २. ११७) किति च (७. २. ११८) सेहोपिन्च (३. ४. ८७) इत्यादि। अर्थात् इसी प्रकार के अनेक विधान करने वाले सूत्रों को विधि सूत्र कहते हैं।

४. निषेधसूत्र—

निषिध्यन्ते निवार्यन्ते कार्याणि यैस्ते निषेधाः। अर्थात् जिसमें द्वारा कार्यों के होने को मना किया जाय उसको निषेध सूत्र कहते हैं। है। यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या निषेध केवल विधान करने

वाले सूत्रों का होता है या सज्ञा, परिभाषा, नियम, अतिदेश और अधि-
कार इन सभी प्रकार के सूत्रों का निषेध होता है। निषेध सूत्र की अलग
सत्ता भी नहीं है इस श्लोक में देखिए—

सज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च ।

अतिदेशोऽधिकारश्च पङ्क्तिर्नियमसूत्रलक्षणम् ॥

इस श्लोक में निषेध सूत्र का नाम भी नहीं आया तो क्या
निषेध सूत्र की सत्ता अलग स्वीकरणीय है या नहीं? वस्तुतः पदार्थ
दो प्रकार के होते हैं (१) भाव और (२) अभाव। भाव का अर्थ होना
अभाव का अर्थ न होना है। तो अत्र दो प्रकार की सत्ता स्वीकार करते
हैं उस स्थिति में सभी वस्तुओं में दो पदलक्ष्ण हैं। जैसा जीने के विप-
रीत मरना। दुख सुख, हसना रोना, खाना न खाना, आना जाना।
इसी प्रकार भाव और अभाव सदा वर्तमान हैं। सूत्रों में भी किसी
किसी की सज्ञा है, किसी की सज्ञा नहीं है। जैसे तुल्यास्यप्रयत्न मव-
र्णम् (१.१.६) यहाँ पर मुख में होने वाले स्थान और प्रयत्न जिन वर्णों
के समान हैं उनसे सवर्ण सज्ञा होती है लेकिन नागमली (१.१.१०)
सूत्र कहता है कि अच् और हल् के स्थान और प्रयत्न समान होने पर
भी उन लोगों की परस्पर मवर्ण सज्ञा नहीं होती है। यहाँ मवर्ण सज्ञा
नहीं होती है। यहाँ मवर्ण सज्ञा करना और सर्वण सज्ञा का निषेध
करना, दोनों प्रकार की बात पायी जा रही है।

दूसरा उदाहरण लीजिये दाधा घ्यदाप् (१.१.१६) यहाँ पर दा और
धा धातु की घुमत्ता होती है लेकिन दाप् धातु का मना कर दिया।
अर्थात् दाप् धातु की घुमत्ता नहीं होती है। इसी प्रकार अनेक उदा-
हरण हैं।

परिभाषा सूत्र का भी निषेध है। जैसे कि पहले पतलाया
जा चुका है कि 'इमो गुणवृद्धी' (१.१.३) परिभाषा सूत्र है। "गुण और
वृद्धि शब्द से जहाँ पर गुण और वृद्धि का विधान किया जाय वहाँ पर
इक् ही के स्थान में होता है"। लेकिन इस परिभाषा सूत्र का निषेध
इमके आगे न धातुलोप आर्धधातुके (१.१.४) स्थिति च (१.१.४) के
दो सूत्र पढ़े हैं।

विधि सूत्र का तो निषेध होता ही है। जैसे सामान में पढ़ी
(२.२.८) यह विधान सूत्र है लेकिन इसके आगे न निर्द्धारणे (२.२.१०)

पूरणगुण० (० २.१७) इत्यादि ।

अष्टाध्यायी के सभी सूत्रों में जहाँ जहाँ पर 'न' लिखा है वे सभी सूत्र निषेध सूत्र हैं । नियम और अधिकार सूत्र का निषेध नहीं होता है । अतिदेश सूत्र का निषेध होता है ।

नियम सूत्र—नियम्यन्ते निश्चीयन्ते प्रयोगा यैस्ते नियमा अर्थात् प्रयोगों का जिसके द्वारा निश्चय किया जाय उसको नियम सूत्र कहते हैं । अष्टाध्यायी में नियम सूत्र अधिक नहीं है । महाभाष्यकार का प्रसिद्ध वचन है 'सिद्धे सति आरम्भो नियमार्थ' अर्थात् किसी सूत्र से उस प्रयोग के सिद्ध हो जाने पर जो फिर दूसरा सूत्र बनाया जाता है उसको नियम सूत्र कहते हैं । जैसे पाठशाला में प्रतिदिन छात्रों का दस बजे आने की आज्ञा है, ऐसा विधान है । फिर भी कई छात्र देर से आते हैं । किन्तु जब किसी अधिकारी को निरीक्षण के लिए आना हो तो अध्यापक छात्रों को उस दिन ठीक दस बजे आने की आज्ञा देता है । विधान होने पर भी विशेष अवसर पर आज्ञा देने की आवश्यकता पडी । इसी प्रकार सिद्ध रहने पर जो सूत्र बनाया जाता है उसको नियम सूत्र कहते हैं ।

नियम सूत्र के विषय में जानने के लिये (१) इत्सज्ञा प्रकरण और (२) इट् विधान प्रकरण का व्याख्यान पढ लेना चाहिये । विशेष रूप से यहाँ जानना चाहिये कि 'कृ' धातु के पश्चात् लिट् के मध्यम पुरुष एकवचन में इट् का आगम और निषेध कैसे होता है । कृ धातु के पश्चात् लिट् लकार के स्थान में तिप्, तस्, मि आदि ६ परस्मैपद प्रत्ययों के स्थान में परस्मैपदाना० (३४.८०) सूत्र से णल्, अतुस् आदि ६ प्रत्यय आदेश होते हैं । अतएव मध्यम पुरुष एकवचन में थल् प्रत्यय बलादि आर्धधातुक है । आर्धधातुकस्येड्वलादे (७०-३५) इस सूत्र से बलादि आर्धधातुक के होने से इट् प्राप्त होने पर ण्काच उपदेशऽनुदात्तान् इस सूत्र से इडागम का निषेध हो जाता है । अतएव इट् आगम का निषेध स्वयं सिद्ध है, फिर जो कृस्मृ० (७०.१३) सूत्र का बनाकर आचार्य ने 'कृ' धातु के पश्चात् लिट् को इडागम का मना किया उससे यह सूत्र नियम सूत्र हो गया । उससे नियम निकला कि इन धातुओं को छोड़ कर जो भी अनिट् धातु हैं उनके पश्चात् लिट् को इट् का आगम हो ही जाता है "ण्काच उपदेशेऽनुदात्तान्" इस सूत्र से

इडागम के नियम हैं। जाने पर सर्वत्र अनिट् धातु को लिट् में इट् का आगम इसी नियम सूत्र से होता है, इमी को प्रादिनियम कहे हैं।

(६) अतिदेश सूत्र—अतिदिश्यन्ते तुल्यतया विधीयन्ते कार्याणि यैस्ते अतिदेशा अर्थान् जिससे किसी की तुल्यता या समता लेकर कार्य करें वह अतिदेश कहलाता है। अतिदेश कार्यातिदेश और रूपातिदेश दो प्रकार का होता है।

कार्यातिदेश—कार्य करने के लिए किसी को किसी से समान मान लेना कार्यातिदेश कहलाता है। जैसे पौरोहित्य कर्म करने के लिये पुरोहित के समान पुरोहित के लड़के को मान लेना।

व्याकरण शास्त्र में स्थानी और आदेश इन दो शब्दों के अर्थों को जानने के परचान अतिदेश सूत्र का प्रयोजन स्पष्ट हो जाता है। किसी के स्थान पर आने वाले को आदेश और जिसका स्थान या उसका स्थानी कहते हैं। जैसे अस् धातु के स्थान में आर्घधातुरु के विषय में अस्तेर्भू (२. ४. ४०) सूत्र में भू आदेश हो जाता है। यहाँ पर भूवाच्यो धातव (१-३-१) में 'अस् भुवि' की धातु समा होती है लेकिन अस् के स्थान में भू आदेश की धातु मज्ञा नहीं होता। यह भू, भू सत्तायाम् धातु नहीं, यह तो अस् के स्थान में आदेश हुआ भू है। स्थानियदा० (१.१. ५५) डम सूत्र में अम् धातु के स्थान में भू के आदेश होने के कारण भू की भी धातु संज्ञा होती है क्योंकि धातु के स्थान में जो आदेश है, वह भी धातु है। अत्र कार्य करने के लिए भू को भी धातु मान लिया गया। कार्य करने के लिये भू को धातु माना गया अतएव यहा कार्यातिदेश हुआ।

रूपातिदेश—कार्य करने के लिए रूप की उपस्थिति मानना रूपातिदेश कहलाता है। यह रूप लोप आदि होने के कारण में नहीं रहता है। रूप के अभाव में कार्य होने में बाधा पड़ती है। बिना रूप के कार्य होना असम्भव है। अत्र लुप् लृप् रूप को आरोपित करके कार्य कर लिया जाता है। इससे विशेष व्याख्या द्विवचन प्रकरण में देरना चाहिये। जहाँ जहा पर वत् प्रत्यय की प्रातिपदिक के परचान लगाया गया है उन्हें अतिदेश सूत्र समझना चाहिये।

(७) अधिमार सूत्र—अधिक्रियन्ते पदार्था यैस्ते अधिमार

अर्थात् जिसके द्वारा पदार्थों का अधिकार किया जाता उसको अधिकार कहते हैं। प्रत्येक सूत्र में उस बात को चारम्बार न कहकर सबसे ऊपर ही उस बात को आचार्य ने लिख दिया है। जिस कारण उस सूत्र या शब्दों की अनुवृत्ति उसके पश्चात् सभी सूत्रों में जाती है। सचेप करने के लिए इस अधिकार सूत्र का आश्रय किया गया। किसी सूत्र का कोई अंश या वह सूत्र स्वयं अपने आगे कुछ सूत्रों में अर्थ बनाने के लिये लग जाता है अतएव उसे अनुवृत्ति को अधिकार कहते हैं।

कुछ ऐसे अधिकार हैं जिनके सज्ञा सूत्र हैं और कुछ अधिकार के सज्ञा सूत्र नहीं हैं। जैसे सहितायाम् (६.१.७२) अधिकार सूत्र का सज्ञा सूत्र है, पर सन्निकर्ष. सहिता (१.४.१०६) लेकिन प्रत्यय (३.१.१) परश्च (३.१.२) इसका कोई सज्ञा सूत्र नहीं है। जिन जिन अधिकारों के सज्ञा सूत्र हैं उन उन सभी सज्ञा सूत्रों पर ध्यान देना चाहिये। शब्द की सिद्धि के समय पहले सज्ञा सूत्र लगाकर तब अधिकार सूत्र लगाना चाहिये। सज्ञा सूत्र तथा अधिकार सूत्रों को लगाने के पश्चात् ही तथा उस अधिकार के किसी विधि नियमादि सूत्रों को लगाना चाहिये। जैसे नामि (६.४.३) उस सूत्र को वहीं लगाना है तो पहले यस्मात्प्रत्यय० (१.४.१३) सज्ञा सूत्र पुन. अङ्गस्य (६.४.२) यह अधिकार सूत्र, इन दोनों सूत्रों के पश्चात् ही नामि सूत्र को लगाना चाहिये। अष्टाध्यायी प्रभाशिका में सर्वत्र अधिकार सूत्र को बता दिया गया है।

सप्तम व्याख्यान

प्रकरण तथा अनुवृत्ति

महामुनि पाणिनि कृत् अष्टाध्यायी में जहाँ अनेक विशेषताये हैं वहाँ दो ऐसी विशेषता हैं जो अन्यत्र प्रक्रियानुमारी प्रण्यों में कहीं प्राप्त नहीं हो सकती वह है (१) अनुवृत्ति और (२) प्रकरण। इन दोनों विशेषताओं को सिद्धान्तकीमुदी आदि प्रक्रिया प्रण्यों में नष्ट कर दिया गया है।

अनुवृत्ति-क्रमबद्ध सूत्रों के होने से एक सूत्र से दूसरे सूत्र में अनुवृत्ति सरलता से ली जाती है। और कुछ दिनों तक अष्टाध्यायी के सूत्रों को पढ़ने के पश्चात् किस पद की अनुवृत्ति किस सूत्र से आती है यह बात बिना किसी प्रयास के आपम आप समझ आ जाती है। प्रक्रिया प्रन्थों में सूत्रों को इधर से उधर ले जाने के कारण सूत्रों की अनुवृत्ति का क्रम सर्वथा नष्ट हो जाता है। यही कारण है कि कौमुदी आदि प्रन्थों के पढ़ने वाले छात्रों को वृत्ति रटनी पड़ती है। बात ठीक भी है अनुवृत्ति नहीं आती तो वृत्ति तो रटनी ही पड़ती है। अत्र अनेक विद्वान् गृह भी कहने लगे हैं कि कौमुदी में भी वृत्ति रटने की कोई आवश्यकता नहीं। यह मत ठीक नहीं प्रतीत होता। बात निश्चित है कि छात्र को सूत्रों का अर्थ जानना चाहिए। चाहे वह अनुवृत्ति से जाने अथवा वृत्ति से। कौमुदी में तो अनुवृत्ति है नहीं और वह वृत्ति भी याद नहीं करता तो भला बताइये उमरों सूत्र का अर्थ कैसे स्मरण हो जाता है। और यदि सूत्रार्थ ही नहीं याद हुआ तो व्याकरण उसका क्या आयेगा। कौमुदी से व्याकरण पढ़ने वाले छात्रों को इसी लिए वृत्ति रटनी पड़ती है किन्तु अष्टाध्यायी क्रम से पढ़ने वाले छात्रों को ऐसा नहीं करना पड़ता।

प्रकरण-अष्टाध्यायी की दूसरी विशेषता 'प्रकरण' की है। अष्टाध्यायी के सूत्रों को प्रकरणबद्ध पाणिनि ने लिखा है। छात्रों की जानकारी के लिये इनने अष्टाध्यायी-प्रकाशिका में सभी आवश्यक प्रकरणों का नाम लिख दिया है। अष्टाध्यायी के पढ़ने वालों को चाहिए कि उन प्रकरणों को करठस्थ कर लें। और प्रकरणों में से सूत्र किस प्रकार लेकर किसी शब्द की सिद्ध में लगाये जाते हैं उनका ज्ञान कर लें। वम अष्टाध्यायी पर पूर्ण अधिकार हो जायेगा। अभा में प्रकरणों की विशेषता पर लिखूंगा। और प्रकरणों के पश्चात् कृन् आदि प्रथयों को लगाकर प्रातिपदिक की सिद्धि करूंगा।

यहां पर एक बात और ज्ञातव्य है कि पाणिनि ने जिन-जिन प्रकरणों को अभिप्रेत करके सूत्रों का निर्माण किया था वे सभी के सभी अभिप्राय कौमुदी में नष्ट कर दिये गये। जैसे कौमुदी में पञ्चमन्यि प्रकरण, सुबन्त प्रकरण, तिङन्त प्रकरण आदि। पाणिनि ने इन प्रकरणों के अनुसार सूत्रों का निर्माण नहीं किया। यदि कौमुदी गत आये हुए

प्रकरण के अनुसार ही सूत्र बनाना था तो क्या भगवान् पाणिनि अष्टाध्यायी की प्रक्रिया ग्रन्थ ही नहीं बनाते। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। वे जानते थे कि प्रक्रिया ग्रन्थ से व्याकरण बहुत ही दुरुह हो जायेगा। अतएव यह समझ लेना चाहिए कि कौमुदी में अष्टाध्यायी के प्रकरणों को तौड़कर दीक्षित जी ने अपने ढंग से प्रकरण बनाया। यही कारण है कि जैसा व्याकरण का साङ्गोपाङ्ग ज्ञान अष्टाध्यायी महाभाष्य से केवल तीन वर्ष में होता है, वैसा ज्ञान कौमुदी आदि अनार्ष ग्रन्थों से १० वर्ष में भी नहीं हो सकता। व्याकरण का पूर्ण ज्ञान बिना अष्टाध्यायी और महाभाष्य पढ़े कदापि नहीं हो सकता, यह सवर्था सत्य है। अष्टाध्यायी-प्रकाशिका के अन्तर्गत आये हुए जितने प्रकरण हैं, उनको विषयोपक्रमणिना से देख लेना चाहिये। अब हम एक एक प्रकरण को लेकर व्याख्यान करेंगे।

टिक्त्प्रकरणम्

टिक्त् प्रकरण के पहले प्रकाशिका में दो प्रकरण अर्थात् सहापरिभाषा और स्थानिवत् प्रकरण आ चुके हैं, उनका विस्तृत व्याख्यान 'सूत्रों के प्रसार' नामक व्याख्यान में कर चुके हैं। अब कम प्राप्त टिक्त् प्रकरण ही है।

इस प्रकरण का सर्व प्रथम सूत्र है "गाड्कुटादिभ्योऽव्णिण्डित् (१.०.१) इस सूत्र के चरित्र पर विचार करने से पता लगता है कि यह सूत्र सहा सूत्र है। क्योंकि अतिदेश सूत्र के अन्त में यत्=समान लिखा रहता है। यहाँ पर यत् शब्द का प्रयोग नहीं है। अन्य ग्रन्थकारों ने भी इसकी अतिदेश सूत्र ही माना है। यद्यपि प्राचीन परम्परा में इसको सहा सूत्र ही मानते हैं, फिर भी स्पष्टता के लिये भाष्यानुसार हमने अतिदेश सूत्र माना है और यत् जोड़कर इसका अर्थ किया है।

अतएव इस प्रकरण के सूत्रों का काम है, जो धर्म प्रत्यय में नहीं हैं, उस धर्म को उत्तम आरोपित कर देना। जैसे सार्वधातुकमपिन् (१.२.३) इन सूत्र का अर्थ है जिस प्रत्यय में पकार की इन् मज्ञा नहीं हुई है ऐसे सार्वधातुक प्रत्यय क्त्विन् होते हैं अर्थात् क्त्वि के समान होते हैं। जैसे कर्त्तरि शप् (३.१.) और दिवादिभ्य इयन् (३.१.) इन दो सूत्रों पर विचार कीजिए शप् प्रत्यय के शकार की इत्तज्ञा

लशक्यतद्धिते (१.३.८) तथा पकार की इत्सज्ञा हलन्तयम् (१.३.३) इस सूत्र से होती है। अत्र वचा हुआ जो 'अ' प्रत्यय है, वह शिन् भी है और पिन् भी है। उसी प्रकार श्यन् में इत्सज्ञा और लोप करने पर केवल 'य' वचता है, यह प्रत्यय नित् भी है और शिन् भी है। अत्र एक सूत्र है तिङ्शित्सार्वधातुम् (३.४.११३) आर्धधातुक शेष (३.४.११४) अर्थात् धातु के पश्चात् जितने प्रत्यय आते हैं उन प्रत्ययों में तिप् तसु आदि १८ प्रत्यय जो तिङ् प्रत्याहार के अन्तर्गत हैं, वे तथा शरार इत्सज्ञा वाले प्रत्यय को सार्वधातुक कहते हैं। अत्र शप् प्रत्यय तिङ् गिन् सार्व० सूत्र से नार्धधातुक है, वैसे ही श्यन् भी सार्वधातुक हुआ। सार्वधातुक होते हुए शप् पकार इत् वाला है और श्यन् पकार इत्सज्ञा वाला नहीं है। लेकिन सार्वधातुन्मपिन् सूत्र कहता है, जिस प्रत्यय के पकार की इत्सज्ञा नहीं हुई है ऐसे नार्धधातुक प्रत्यय ङित् के समान होते हैं, इससे शप् प्रत्यय ङित् के समान नहीं हुआ लेकिन श्यन् प्रत्यय ङित् वाला हो गया। इसमें यह तात्पर्य निकला कि जो प्रत्यय प्रत्यक्ष रूप से उच्चारण इन् वाले नहीं हैं उनमें भी ङित् धर्म वाला, या ङित् धर्म वाला बना देना ही इस प्रकरण का मुख्य लक्ष्य है।

इस प्रकरण से लाभ यह है कि जैसे विभिन्न प्रत्ययों में ककार और हकार की इत्सज्ञा की जाती है और हकार और ककार इत्सज्ञा करने से जो कार्य किया जात है, वे सभी कार्य इस प्रकरण के सूत्रों से द्विवन् और क्तिवन् कर देने से सिद्ध हो जायें। धातु के पश्चात् जब कोई प्रत्यय आता है तो धातु को जहाँ अनेक कार्य किये जाते हैं वहाँ गुण करना भी एक काम है। परन्तु ककार इत् वाले तथा हकार इत्वाले प्रत्ययों के परे रहने पर "क्विति च (१.१.५.) सूत्र से गुण का निषेध होता है। जैसे भू धातु से 'क्त' प्रत्यय आया। अत्र यहाँ पर लशक्यतद्धिते (१.३.८) सूत्र से ककार की इत्सज्ञा हो गई। अत्र जब गुण करने लगे तब 'क्विति च' (१.१.५) इस सूत्र से गुण का निषेध हो जायेगा। उसी प्रकार तुद् धातु के पश्चात् वर्तमान काल में तिप् प्रत्यय लाया गया जिससे "तुद् तिप्" और पुन "तुदादिभ्य ग" से 'श' प्रत्यय आया। अत एव "तुद् श तिप्" इस स्थिति में इत्सज्ञा और लोप करने के पश्चात् "तुद् अ ति" वचा। अत्र 'पुगन्तलघूपधस्य च (७.३.८४) सूत्र से गुण करना चाहते हैं तो यहाँ पर 'श' प्रत्यय

शित् होने से सार्वधातुकसंज्ञा वाला है और "सावधातुकमपित्" इस सूत्र से इसे डिन् धर्म वाला भी बना दिया गया, जिससे गुण का निषेध "क्विडति च" सूत्र ने कर दिया। इस प्रकरण का यही काम होता है कि जहा कहीं भी डित् और किन् को निमित्त मानकर सूत्रों में विधान किया गया है वहा वहा इन सूत्रों से जिन-जिन प्रत्ययों को डिन् और किन् बना दिया गया है, उन-उनका कार्य भी वैसे ही होगा जैसे प्रत्यक्त डित् किन् वाले प्रत्ययों का होता है।

इत्संज्ञाप्रकरणम्

अष्टाध्यायी क्रम में इत्संज्ञा प्रकरण अपना एक विशेष स्थान रखता है। यह बहुत महत्व पूर्ण है। उसे अष्टाध्यायी सूत्रों का प्राण समझना चाहिए। इस प्रकरण को बिना समझे व्याकरण के अनेक कार्य सम्पन्न नहीं हो सकते। प्रातिपदिक और त्रियाओ के साथ प्रत्यय, विभक्ति आदि जोड़ने का कार्य इन सूत्रों के बिना पूर्ण नहीं हो सकता। सु, श्री, जस् और तिप्, तस्, कि, आदि विभक्तियों का वास्तविक स्वरूप इनके बिना सिद्ध नहीं होता। इस प्रकरण के लगभग सभी सूत्र अष्टाध्यायी के प्रथम अध्याय तृतीय पाद के प्रारम्भ में दिए गए हैं। ये सभी सूत्र जैसे उम स्यागतकारिणी समिति के सदस्य हैं जो प्रत्यय विभक्ति, आदेश, आगम आदि का शब्दों में जोड़ने के लिए स्यागत करती हैं और उसके रूप को स्थिर करती हैं। इनमें जो भी स्वर या व्यञ्जन (अच् और हल्) सिद्ध रूप के लिए अनावश्यक हैं उनका लोप करती हैं और इस प्रकार उसे प्रातिपदिक आदि में जोड़ने का कार्य सम्पादन करती है।

इन् का अर्थ है जाना। 'इण् गतो' धातु से इन् शब्द बनता है जिसका अर्थ होता है, 'गति गच्छति इति इत्' अर्थात् जिसरी भी इन्, मज्ञा होगी अर्थात् जिसका नाम इन् रख दिया गया, उमरा लोप हो जायेगा। लोप पढ़ते हैं अदर्शन को क्यों कि आचार्य का सूत्र ही है "अदर्शन लोपः" (१.१.५६)। उदाहरण म्वरूप मुं, श्री, जस् को लीजिये यहा पर मुं में 'ऊं' उपदेशोऽजनुनासिक इन् (१-३-२) से इन् सज्ञा वाला हो गया। इन् संज्ञा होने पर 'तस्य लोपः' सूत्र से उसका लोप हो गया और अदर्शन लोपः सूत्र से उम 'उं' का अदर्शन हो गया। चती प्रथम 'जस्' में 'चुट्' से ज् की इत्संज्ञा और लोप हो

जाता है। सू की 'न विभक्तौ तुस्माः' में निषेध हो गया।

अब यहां पर विचारणीय बात है कि मु तो सूत्र में केवल 'सु' लिखा है, इसको अनुनासिक कैसे माना जाय। और दूसरी बात यह है कि उपदेश का क्या अर्थ है। इन दोनों बातों के लिए यह जानना चाहिए कि पाणिनि को जिस जिस अक्षर की इस ज्ञान करनी थी उसे उन्होंने अनुनासिक ही पढ़ा था परन्तु वह परम्परा सैंकड़ों वर्षों से लुप्त हो गई अर्थात् अनुनासिक चिह्न ग्रन्थों से लुप्त हो गए। अतः अब इसका ज्ञान परम्परा में ही होता है अतः आपको भी पढ़ते पढ़ते एक दो गड़बड़ में स्वयं पता लगने लग जायेगा कि यहां का अक्षर अनुनासिक है और यहाँ का नहीं। यह बात गुरु परम्परा से ज्ञात होगी। दूसरी बात उपदेश की है तो मूल में जितनी बातें आचार्य पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि ने कही हैं वे सभी उपदेश कहलाती हैं। अब इसी प्रकार से जहाँ जहाँ आवश्यकता पड़े इन् संज्ञा करनी चाहिये। आप को वाच शब्द का रूप ७ विभक्तियों में इ-संज्ञा करके घनाना चाहिये। उसके पश्चात् पूरा पूरा इत्संज्ञा के सूत्रों पर अधिकार हो जावेगा।

आत्मनेपद-परस्मैपदप्रकरणम्

आत्मनेपद और परस्मैपद का शाब्दिक अर्थ है जिस पद का प्रयोग अपने लिये किया जाये उसको आत्मनेपद और जिस पद का प्रयोग दूसरे के लिए किया जाय उसको परस्मैपद कहते हैं। आत्मन् शब्द से चतुर्थी के एकवचन में आत्मने शब्द घनता है उसी प्रकार 'पर' शब्द से चतुर्थी एकवचन में 'परस्मै' शब्द घनता है। मुप् और तिङ् को पद कहते ही हैं। इसलिये ऐमा अर्थ किया गया।

तिङ् प्रत्ययों में प्रारम्भ के नौ परस्मैपद हैं और उसके पश्चात् तद् जो नौ हैं, वे आत्मनेपद हैं। जब इनका इतना पता लग गया तो यह ज्ञान सरलता से हो जाना चाहिये कि जिन धातुओं के पश्चात् आत्मनेपद के प्रत्यय आते हैं, उन धातुओं को आत्मनेपदी धातु कहा जाता है और जिन धातुओं के पश्चात् परस्मैपद के प्रत्यय आते हैं, उन धातुओं को परस्मैपदी धातु कहा जाता है।

यहां पर चार पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान आवश्यक है। उदात्तः, अनुदात्तः उदात्तेत् और अनुदात्तेत्। धातुपाठ में जिन जिन धातुओं को उदात्तः पढ़ा गया है, उन इन धातुओं के पश्चात् प्रत्ययों को इत्

का आगम होता है, और जिनको 'अनुदात्त' पढ़ा गया है, उनके पश्चात् प्रत्ययों का इट् का आगम नहीं होता है। धातुओं को जहाँ उदात्तेत् नहा है, वे धातु परस्मैपदी हैं और जहाँ अनुदात्तेत् कहा है, वे सभी आत्मनेपदी हैं। कौन परस्मैपदी हैं, इस बात का ज्ञान धातु पाठ से ही करना चाहिये। विस्तार के भय से इसका विस्तृत व्याख्यान यहाँ नहीं हो सकता। इस ग्रन्थ को समझने के लिये इतना ही विषय आवश्यक है।

कुछ धातुएँ उभयपदी हैं उन से आत्मनेपद और परस्मैपद दोनों प्रकार के प्रत्यय होते हैं। जत्र कर्ता किसी क्रिया को अपने लिए करे अर्थात् क्रिया से निष्पन्न होने वाला फल उस के अपने लिए हो तो आत्मनेपद होता है दूसरे के प्रति फल होने से परस्मैपद। ऐसी धातुओं को पाणिनि ने स्वरितेत् और अित् पढ़ा है।

समासप्रकरणम्

समास प्रकरण पर व्याख्यान करने के पूर्व यथा प्राप्त दो प्रकरणों पर कुछ प्रकाश डालना चाहिये। नद्यादिसज्ञा तथा निपातप्रकरण। कुछ शब्द हैं जिनको नदी नाम से पुकारते हैं और नदी कहकर ही उनके सम्बन्ध में काम किया जाता है। सूत्र है आप्नद्या (७.३.११२) यहाँ पर नदी सज्ञा वाले सभी शब्दों का काम होगा। इसी प्रकार धि सज्ञा वाले शब्दों से घेडिति (७.३.११८) सूत्र से जिन जिन शब्दों की विसज्ञा हो जाती है, उन उन सभी का काम होता है।

निपात प्रकरण का महत्व यह है कि जिन जिन शब्दों की निपात सज्ञा होती है उन उन शब्दों की 'स्वरादिनिपातमव्ययम्' (१.१.३६) सूत्र से, अत्र्यय सज्ञा हो जाती है। और तत्र अत्र्यय मानकर जो काम प्राप्त है वे सभी काम निपात को भी हो जाते हैं।

समास—नमास, समाज, समष्टि इत्यादि का एक ही अर्थ है। जहाँ अनेक व्यक्ति एक साथ मिल जाते हैं वहाँ समाज कहा जाता है। जैसे मानवसमाज, आर्यसमाज, ब्राह्मणसमाज। उसी प्रकार समष्टि का भी अर्थ है विभिन्न व्यक्ति जहाँ एक साथ हो जाते हैं वहाँ ही समष्टि शब्द का प्रयोग किया जाता है। उसी प्रकार समास शब्द का भी प्रयोग है। समाज में व्यक्ति लेकिन समाज में पद रहने

ह। समास में केवल पदों की सत्ता रहती है। अनेक पदों के मिलने से समास होता है। अर्थात् (१) अनेक पदों का एक पद होना (२) अनेक विभक्तियों का एक विभक्ति होना, (३) अनेक स्वरों का एक स्वर होने की समास कहते हैं। इन बातों का उदाहरण इसी व्याख्यान में स्पष्ट हो जायेगा।

समास मुख्यरूप से चार प्रकार के होते हैं (१) अव्ययीभाव, (२) तत्पुरुष, (३) बहुव्रीहि तथा (४) द्वन्द्व ॥

इन समासों की परिभाषाओं पर पूर्व व्याख्यान में प्रकाश डाल चुके हैं। अब इनके अन्तर्गत विभाग (प्रकारों) पर व्याख्यान करेंगे। तत्पुरुष समास के ६ भेद हैं—द्वितीया तत्पुरुष, तृतीया तत्पुरुष, चतुर्थी तत्पुरुष, पञ्चमी तत्पुरुष, षष्ठी तत्पुरुष, सप्तमी तत्पुरुष, कर्मधारय, द्विगु तथा नञ् तत्पुरुष ॥

द्वन्द्व समास के २ भेद हैं—समाहार और इतरेतर ॥

अव्ययीभाव तथा बहुव्रीहि समास के कोई विरोध भेद नहीं।

इन समासगत अन्तर्गत विभागों तथा समासों पर विचार करने से पूर्व ध्यान देने योग्य कुछ बात इस प्रकार है—

समास के सूत्रों के अर्थ करने से पहले तीन पद पर सदा ध्यान रखना चाहिये। यदि इन तीन पदों का प्रत्यक्ष हो जाय तो समास के किसी भी सूत्र का अर्थ सरल हो सकता है। ये हैं—सुप् (२१०), सह सुपा (२१४)। सुप्, सह सुपा, सुप् प्रथमा का एक वचन। सह-अव्यय पदम्। सुपा-तृतीया का एक वचन ॥ इन तीनों पदों का समास के सूत्रों में अधिकार जाता है। इन तीनों पदों का अर्थ है “सुपा सह सुप् सम-स्यते” अर्थात् सुप्रन्त के साथ सुवन्त समास को प्राप्त होता है।

इस समास प्रकरण में प्रथमान्त तृतीयान्त और सप्तम्यन्त ये तीन प्रकार के पद आते हैं। अब एव सुप् का सम्बन्ध प्रथमान्त के साथ और सह सुपा का सम्बन्ध तृतीयान्त के साथ करा देना चाहिये। सप्तम्यन्त पद अर्थ द्योतन करने के लिये रखा गया है। अब इन तीनों पदों को लगाकर सूत्रका अर्थ (द्वितीया० २१३) का अर्थ हुआ द्वितीयान्त सुप्रन्त श्रितादि सुवन्तों के साथ समास के प्राप्त होता है। यहाँ पर एक बात और ध्यान देने के योग्य है। जिस समास का अधिकार हो वह भी

कहना पड़ता है। तो अब अर्थ हुआ। द्वितीयान्त सुवन्त श्रितादि सुवन्तों के साथ समास को प्राप्त होता है और वह तत्पुरुष सज्ञा वाला होता है अर्थात् उसकी तत्पुरुष सज्ञा होती है। एक बात और। पहले के व्याख्यान से आपको पता होगा कि सम्बन्धी पदों का ही समास होता है, अतएव 'समर्थ पदविधि' का अधिकार समस्त अष्टाध्यायी में जाता है। इसलिये अर्थ होगा "द्वितीयान्त समर्थ (सम्बन्धी) सुवन्त श्रितादि सुवन्तों के साथ समास को प्राप्त होता है, और उसकी तत्पुरुष सज्ञा होती है। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि सूत्र में तो द्वितीया पढ़ा गया और अर्थ में द्वितीयान्त कहा गया यह कैसे। तो यहाँ पर येनविधिस्तदन्तस्य (१ १ ७१) से अन्त का बोध होता है।

अब तत्पुरुष के भेदों को लीजिये। जब द्वितीयान्त सुवन्त समास को प्राप्त होता है, तब द्वितीया तत्पुरुष कहते हैं। उसी प्रकार तृतीयान्त, चतुर्थ्यन्त, पञ्चम्यन्त, षष्ठ्यन्त तथा सप्तम्यन्त जब सुवन्त के साथ समास को प्राप्त होता है तब तृतीया, चतुर्थी आदि तत्पुरुष कहते हैं। जैसे कष्ट श्रित। यहाँ पर कष्ट पद द्वितीयान्त है और श्रित-प्रथमान्त है। तो समास होने से एक पद हो जायेगा, अतएव कष्टश्रित बन गया। उन्नी प्रकार विस्मयम् आपन्न विस्मयापन्न, गृह गत गृह-गत, शरण प्राप्त शरणप्राप्त इत्यादि द्वितीया तत्पुरुष के उदाहरण हैं।

शङ्कुलया खण्ड शङ्कुलारण्ड, किरिणा काण किरिकाण (किर-किरी से एक आत्स का काना हो जाना) इत्यादि तृतीया तत्पुरुष हैं। यूपाय नरु यूपारु, कुण्डलाय हिरण्यम् कुण्डलहिरण्यम् इत्यादि चतुर्थी तत्पुरुष के उदाहरण। वृक्षेभ्यो भयम् वृक्षभयम्। चौरैभ्यो भयम् चौरभयम् इत्यादि पञ्चमी तत्पुरुष। राज्ञ पुरुष राजपुरुष, दशरथस्य पुत्र दशरथपुत्र इत्यादि षष्ठी तत्पुरुष। अक्षेपु धूर्त् अक्षधूर्त् इत्यादि सप्तमी तत्पुरुष के उदाहरण हुए ॥

कर्मधारय—सूत्र है तत्पुरुष समानाधिकरण कर्मधारय (१ २ ४२) सूत्र का अर्थ है एक अर्थान् एक अधिभरण है दो पदों का उसको समानाधिकरण कहते हैं। जैसे नीलोपलम्। इसमें नील और उपल शब्दों का समास हुआ। नील शब्द का अर्थ

है नील रङ्ग तथा उत्पल का अर्थ है कमल । अत्र देखिये नील से नीले रङ्ग का बोध होता है और उत्पल से कमल का बोध होता है । अर्थान् इन दोनों शब्दों का अधिभरण अलग अलग है । लेकिन एक ऐसा कमल भी होता है जो कमल तो होता ही है परन्तु साथ ही साथ 'नील' भी होता है । उस कमल को नीलोत्पल कहते हैं । नील और उत्पल इन दोनों का आधार एक ही पृथक् जो नीले रङ्ग का है, वह हो गया, अतएव इसमें कर्मधारय समास कहते हैं । इसी प्रकार रक्तोत्पलम् इत्यादि जानना चाहिये ।

नञ् समास—नञ् का व् इत्सञ्ज्ञा और लोप हो जाता है । यह 'न' जब सुबन्त के साथ समास को प्राप्त होता है, तब नञ् समास होता है, चूंकि यह तत्पुरुष के अधिकार में है, अतः नञ् तत्पुरुष समास हुआ । न प्राङ्मण, अत्राङ्मण, न ईश्वरवाद अनोश्वरवाद इत्यादि इसके उदाहरण हैं ।

द्विगुः—जिन तत्पुरुष समास का पूर्व पद सख्या वाची होता है, उनमें द्विगु समास कहते हैं । जैसे—अष्टानामध्यायाना समाहार. इति अष्टाध्यायी । यहा पर अष्ट और अध्याय दो पद हैं जिनमें पूर्व पद अष्ट सख्या वाला है, इसलिए इसका नाम द्विगु तत्पुरुष पड गया । सूत्र है सख्या पूर्वो द्विगु (२.१.५१)

द्वन्द्वममामः—जहा च (=और) का अर्थ होता है, वहा द्वन्द्व-समास होता है । अत्र च (और) शब्द के चार अर्थ हैं, समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतर और समाहार । जैसे—अन्वाचय में च का अर्थ है—किसी आश्रित घटना का किसी प्रधान घटना के साथ जांड़ना । जैसे—भिक्षा च चर गाञ्चानय (गाम् च आनय)=भिक्षा मागने जायो और (उसके साथ ही साथ) गाय भी लेते आना । वहा पर 'च' ने प्रधान घटना भिक्षा मागना के साथ आश्रित घटना गाय का लाना भी जोड़ दिया । अतः गाय मिलेगी तो ले आयेगा अन्यथा भिक्षा चरण करेगा ही ।

समुच्चय में—सादति च, खेलति च, पठति च, यहा पर 'च' से अनेक परस्पर अमशुद्ध क्रियाओं के समूह का बोध होता है ।

इतरेतर में—रामश्च लक्ष्मणश्च रामलक्ष्मणी (राम और लक्ष्मण)

यहा पर 'च' से परस्पर का सध्वन्ध द्योतन होता है ।

समाहार में—पाणी च पादौ च, पाणिपादम्=हाथ पैर की समाष्टि—यहा पर सामूहिक एकता का द्योतन होता है ।

अत एव उपर्युक्त चारों में जत्र च का अर्थ इतरेतर और समाहार होता है तत्र समास होता है । लेकिन समुच्यय और अन्वाचय में समास नहीं होता । क्यों नहीं होता इसका उत्तर है, सम्बन्धी पदों में समास होता है समुच्यय और अन्वाचय में कोई सम्बन्ध नहीं है, इसलिये समास नहीं होता ।

इतरेतर योग में जहा द्वन्द्व समास होता है वहाँ द्विवचन या बहुवचन होता है और जहा समाहार में द्वन्द्व होता है वहा एकवचन ही होता है इस प्रकार द्वन्द्व समास के दो भेद होते हैं ।

बहुव्रीहि समास के चार अवान्तर भेद हो सकते हैं । समानाधिकरण, व्यधिकरण, तुल्ययोग और व्यतिहार । तत्र समास में आने वाले पदों की एक ही प्रकार की विभक्तिया होती हैं तब तो वह बहुव्रीहि समानाधिकरण बहुव्रीहि होता है और जब भिन्न भिन्न विभक्तिया होती हैं, तब व्यधिकरण बहुव्रीहि कहा जाता है । जैसे—निगत भय यस्मात् स निर्गतभय (पुरुष) अर्थात् जिस पुरुष से भय चला गया है उस पुरुष को निर्गतभय कहा जाता है । पराजिता रिपवो येन स पराजितरिपु (राजा) अर्थात् पराजित हो गये शत्रु जिससे उस राजा को पराजितरिपु कहा जाता है । यहा पर 'निर्गत, सु भय सु' में प्रथमा का एक वचन है तथा 'पराजित जस् रिपु जस' यहा पर प्रथमा का बहुवचन है अर्थात् एक ही प्रकार की विभक्तिया विग्रह होने वाले पदों में हैं इसलिये इसको समानाधिकरण बहुव्रीहि कहते हैं । अत्र पुण्ये मति यस्य स पुण्यमति (सत्यदेव) । वनु पाणौ चस्य म धनुपाणि (रामभद्र) कुम्भात् जन्म यन्म स कुम्भजन्मा । यहा तीना समस्त पदों के विग्रह में आने वाले जो पद हैं उनमें भिन्न भिन्न विभक्तिया हैं जैसे पुण्ये ७।१ मति १।१॥ धनु १।१ पाणौ ७।१॥ कुम्भात् ५।१ जन्म १।१॥ अतान्व ये समास व्याधिकरण बहुव्रीहि हुए ॥ व्यतिहार और तुल्ययोग के लिये बहुव्रीहि समास में एक २ सूत्र है वहाँ देख लीजिये ।

इस प्रकार में आवश्यक बात यह भी जाननी चाहिये कि एक प्रकार का विशेष और समास होता है जिसको नित्य समास कहते

हैं। अर्थात् उन नियमनाम का अर्थ है कि उनका निरू होने पर अलग पदों में अर्थ करने की शक्ति नहीं होती। अर्थात् मन्मन् पद से निम्न प्रकार का अर्थ छा जाता है वह अर्थ विन्म में पाये हुए अलग पदों से नहीं छा जा सकता। निम्न मन्मन् से मन्मन् पद के अर्थ को बदलने के लिए दो में से एक पद अलग हो निकलता है। यथा प्राक्कडाराय ववागूः का निरू होगा प्राक्कडाराय वं ववागू ।

उसी प्रकार उपसर्ग का निरू होगा उपसर्ग मन्मन्। यहाँ वन का अर्थ सर्वात्र शब्द से व्यक्त किया गया ।

मनाम का प्रकरण लम्बा होता जा रहा है और बहुत सी बातें कहना चाहते हैं परन्तु विन्मर मन्म में इसे यही मनाम करते हैं ।

मनाम की निधि—

(१) मनी अत्रिदार सूत्रों को कहना जैसे समर्थः पदविधिः, प्राक्कडाराय मनामः, सह मुपा और जिम मनास का अधिकार हो। इन चार सूत्रों को मने प्रथम लगाना, उनके परचान् (२) विधाक सूत्र को कहना जैसे पद्यो (२.२.७) उनके परचान् लौकिक तथा अलौकिक विप्रह को धनाना जैसे दशरथस्य पुत्रः इति दशरथपुत्रः, अलौकिक विप्रह-दशरथ इम् पुत्र सु, उनके परचान्

(३) उपसर्जन संज्ञा करना—प्रथमनिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् (१.२. ११), और जिमका 'उपसर्जनम् पूर्वम्' इत्यादि सूत्रों से पूर्वप्रयोग होता हो उनका पूर्व प्रयोग करना। दशरथस्य पुत्रः यहाँ पर एक बात जाननी चाहिये कि सूत्रों में प्रथमा निर्दिष्ट देखा जाता है न कि उदाहरणों में। अधिकतर पाठक उदाहरण में देखने लगते हैं, सो ठीक नहीं। अतएव इस उदाहरण में 'पद्यो' सूत्र से समास होता है, उमलिये पद्यो सूत्र हो देखना चाहिये। इसमें पद्यो पद को प्रथमा विभक्ति से निर्देश किया गया है, अतः उसकी उपसर्जन संज्ञा होती है, और 'उपसर्जन पूर्वम्' से उसीका पूर्व में प्रयोग होता है। उपसर्जन पूर्वम् सूत्र का कार्य धनाने के लिये इत्त का विप्रह 'पुत्रः दशरथस्य = पुत्र + सु, दशरथ + इत्त' ऐसा भी धनाना अधिक युक्त रहता है। अतएव दशरथ इम् पुत्र सु इसके परचान्

४. कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा करके 'मुपो धातु-

प्रातिपदिकयो (२४. ७७) सूत्र से विभक्तियों का लुक् करना, जैसे दशरथपुत्र, अब इसके पश्चात्

५ सु विभक्ति लाना और सु विभक्ति आ जाय तव उसके पश्चात् वृद्धिरादैच् पर जो शालीय का उदाहरण दिया गया है, तथा सु को विसर्ग करने में जो-जो सूत्र लगाये गये हैं, उस क्रम से सूत्रों को लगाकर दशरथपुत्र की सिद्धि करना। वस, यही विधान सभी प्रकार के समासों में होता है। और जो जो विशेष विशेष सूत्र लगते हैं, उनको समास प्रकरण के अव्यय विभक्तिमयीप० (२१ ६) सूत्र के 'अधिस्रि' उदाहरण पर देखना चाहिये। उन सूत्रों के अर्थ तथा वे सूत्र क्या क्या काम करते हैं, उनका कार्य प्रदर्शन भी ज्ञात कर लेना चाहिये।

विभक्तिप्रकरणम्

प्रथम व्याख्यान में कारक तथा विभक्ति विषय पर प्रारम्भिक प्रमाश डाला गया था। अत्र कुछ विशेष विचार उपस्थित करते हैं। क्रिया की सिद्धि में जो महायक हो उसको कारक कहते हैं। इस प्रकार ही कारक की परिभाषा से राम गच्छति। राम सीता पश्यति। इत्यादि वाक्यों में कर्ता, कर्म इत्यादि की व्यवस्था होती है। परन्तु कुछ ऐसे पद भी हैं जिनके कारण से विभक्तियों के उपर प्रभाव पड़ता है। कारक होने के कारण से तो प्रथमा, द्वितीया, आदि विभक्ति होना तो स्वाभाविक ही है परन्तु कारक न होते हुए भी विभक्तियों पर प्रभाव पड़ना एक विचित्र बात है। जैसे रामेण सह मोहन गच्छति। यहा पर राम में तृतीया विभक्ति क्यों हुई, राम शब्द की वरण सज्ञा तो 'साधकतम करणम्' इन सूत्र से है नहीं, पुन तृतीया विभक्ति होने का कारण क्या है। इसी प्रकार गुरवे नम, स्वस्ति प्रजाभ्य इत्यादि विभक्ति प्रकरण के अनेक उदाहरणों में केवल उन उन पदा के समीप में होने के कारण से विभक्तिया की व्यवस्था होती है। इन्हे उपपद विभक्ति कहते हैं। उपपद का अर्थ है पदस्य समीपम् उपपदम् अर्थात् पद के समीप को उपपद कहते हैं। अतः विभक्तिया दो प्रकार की होती हैं, एक कारकविभक्ति और दूसरा उपपदविभक्ति। अर्थात् पदा के कारक होने के कारण से जो विभक्तियों की व्यवस्था होती है उभको कारक विभक्ति तथा पद के समीप होने के कारण से जहा विभक्तियों की व्यवस्था होती

हैं उसको उपपद विभक्ति कहते हैं ।

विभक्ति प्रकरण में जहाँ कहीं भा शब्दों के योग से विभक्ति का विधान किया गया है, सभी उपपद विभक्तियाँ हैं ऐसा जानना चाहिए ।

अष्टम व्याख्यान

विकरणप्रकरणम्

विकरण किसे कहते हैं तथा व्याकरण शास्त्र में उसका क्या महत्व है, इस विषय पर चर्चा करने से पहले प्रक्रिया शब्द का अर्थ तथा प्रयोजन जानना आवश्यक है । प्रक्रिया ढग को कहते हैं । विचित्र कामों को करने के कारण किसी व्यक्ति को विचित्र ढग का मनुष्य कहा जाता है उसी प्रकार २००० धातुओं का भी ढग होता है । अर्थात् सभी धातुओं की केवल चार ही प्रक्रिया होती है । (१) कर्तृप्रक्रिया, (२) कर्मप्रक्रिया (३) भावप्रक्रिया और (४) कर्मकर्तृप्रक्रिया । इन्हीं चारों प्रक्रियाओं में सभी धातुओं के रूप चलते हैं । सर्गक धातुओं का रूप कर्तृप्रक्रिया और कर्मप्रक्रिया में तथा कर्मकर्तृप्रक्रिया में चलते हैं और असर्गक धातुओं के रूप कर्तृप्रक्रिया और भावप्रक्रिया में चलते हैं । इन चारों प्रक्रियाओं को क्रमशः कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य, भाववाच्य और कर्मकर्तृवाच्य कहते हैं ।

कर्तृप्रक्रिया या कर्तृवाच्य—जिस वाक्य में क्रिया के द्वारा कर्ता कहा जाय, उस धातु को कर्तृवाच्य में कहा जायेगा तथा उभय रूप कर्तृप्रक्रिया में चलेगा । जैसे राम घेठ पठति = राम घेठ पढता है । यहाँ पर 'पठति' क्रिया के द्वारा राम कर्ता कहा जा रहा है । अतः यहाँ पर पठ धातु का रूप कर्तृवाच्य में वचन भेद से पठति, पठत, पठन्ति आदि चलेगा ।

कर्मवाच्य या कर्मप्रक्रिया—जिस वाक्य में क्रिया के द्वारा कर्म कहा जाय, उस धातु को कर्मवाच्य में कहा जायेगा तथा उस धातु

का रूप कर्मप्रक्रिया में चलेगा। जैसे रामेण पुस्तक पठ्यते=राम से पुस्तक पढ़ी जाती है। इसका कर्तृवाच्य था राम पुस्तक पठति=राम पुस्तक पढ़ता है। "रामेण पुस्तक पठ्यते" इस वाक्य में पुस्तक में प्रथमा का एकवचन है। लेकिन जब पठ धातु राम पुस्तक पठति इस वाक्य में कर्तृप्रक्रिया में था तब कर्त्ता राम' को कहता था लेकिन अब कर्मवाच्य में 'पुस्तक' को कहता है। चूंकि कर्तृप्रक्रिया में 'पुस्तक' कर्म था और धन्य वही कर्त्ता हो गया है इसलिये पठ्यते यह रूप कर्मप्रक्रिया में है। क्योंकि पहले का कर्म 'पुस्तक' अब कर्त्ता होकर क्रिया के द्वारा कहा जा रहा है।

भाववाच्य या भावप्रक्रिया—जिस वाक्य में क्रिया के द्वारा केवल भाव अर्थात् धातु के अर्थ का कथन हो उस धातु को भावप्रक्रिया में कहा जायेगा। जैसे कर्तृप्रक्रिया में राम हसति=राम हँसता है। यह वाच्य भाव प्रक्रिया में रामेण हस्यते=राम से हँसा जाता है। हस धातु अकर्मक है अतः एव कर्मवाच्य में इनका रूप नहीं हो सकता। यहाँ पर तो हस धातु के अर्थ का केवल कथन किया जा रहा है। इसी प्रकार अकर्मक धातुओं से भावप्रक्रिया में रूप चलते हैं।

कर्मकर्तृप्रक्रिया—जिस वाक्य में कर्म अर्थात् क्रिया इतनी मरलता से सिद्ध हो कि कर्त्ता के प्रयत्न की कोई आवश्यकता ही नहीं प्रतीत हो, यहाँ कर्म, कर्त्ता की तरह हो जाता है। चूंकि कर्म, कर्त्ता की तरह हो जाता है इसीलिये उसको कर्मकर्त्ता कहते हैं। उस धातु का रूप कर्म कर्तृप्रक्रिया में चलता है। कर्मकर्तृप्रक्रिया तथा कर्मप्रक्रिया के रूपों में साधारणतः कोई भेद नहीं होता। जैसे —

कर्तृवाच्य—धनीराम काष्ठ भिनत्ति=धनीराम लकड़ी को पाड़ता है।

कर्मवाच्य—धनीरामेण काष्ठ भिद्यते=धनीराम से लकड़ी पाड़ी जाती है।

कर्मकर्तृवाच्य—काष्ठ भिद्यते स्वयमेव=लकड़ी स्वयं पट रही है। इस प्रक्रिया में "स्वयमेव" का प्रयोग होता है। इन तीनों प्रक्रियाओं के वाक्यों पर ध्यान लीजिये।

कर्तृवाच्य में कर्त्ता धनीराम लकड़ी पाड़ रहा था, कर्मवाच्य में

चराराम से लकड़ी फाड़ी जा रही थी। लेकिन कर्मकर्तृवाच्य में लकड़ी के फटने में इतनी सरलता हो गई कि कहा जा रहा है कि लकड़ी धनी-पूज के द्वारा क्या, फाड़ी जा रही है बल्कि लकड़ी आप से आप फट रही है। यहाँ पर कर्त्ता धनीराम में प्रयत्न की आवश्यकता प्रतीत ही नहीं होती।

वाच्य परिवर्तन—कर्तृवाच्य के वाक्य को कर्मवाच्य या भाववाच्य तथा कर्मवाच्य या भाववाच्य के वाक्य को कर्तृवाच्य में कर देना ही वाच्य परिवर्तन है। वाच्य परिवर्तन करते समय क्रिया उभका कर्त्ता, कर्त्ता के विशेषण, कर्म और कर्म के विशेषण, इन सभी में परिवर्तन होता है।

वाच्य परिवर्तन के नियम (१)—कर्मवाच्य बनाने में प्रथमान्त कर्त्ता को तृतीयान्त और द्वितीयान्त कर्म को प्रथमान्त करना पड़ता है।

(२) कर्तृवाच्य में जो क्रिया कर्त्ता के अनुसार होती है वह कर्म के अनुसार बना देनी पड़ती है।

(३) क्रिया जिस काल या जिस लकार की होगी वाच्यान्तर में भी वह उसी काल और लकार की होगी।

(४) कर्त्ता और कर्म के अनुसार ही उसके लिंग तथा वचन में परिवर्तन होगा।

(५) भाव और कर्म वाच्य में धातु आत्मेनपदी हो जाता है। तथा उसका विकरण यत् होता है।

जैसे—कर्तृ० मुशीलः बालकः स्वकीयं पाठं पठति ॥ कर्म०—मुशीलेन बालकेन स्वकीयः पाठः पठ्यते। इसी प्रकार वाक्यों को बना कर अभ्यास करना चाहिए।

उपर्युक्त ४ प्रक्रियाओं में जिन धातुओं के रूप चलाये जाते हैं उनके प्रकार :—

प्रकृत्यन्तः सनन्तरश्च यदन्वो ष्यङ्लुगोप च।

एयन्तो एयन्तसनन्तरश्च षड्विधा धातुरुच्यते ॥ दुर्गाचार्यः ॥

स्याच्छ्रुद्धा प्रहतिर्यन्वा सनेन्ता षिचि सन्परा।

यदन्ता यङ्लुगन्ता च नातोऽन्या निष्प्रयोजना ॥ श्रीरसामी ॥

अर्थात् (१) शुद्ध प्रकृति (२ हजार धातु) (२) णिच् प्रत्ययान्त, (३) सन् प्रत्ययान्त, (४) णिजन्त से सनन्त, (५) यङ्प्रत्ययान्त और (६) यङ्लुगन्त ये ६ प्रकार के धातु होते हैं तथा इस प्रकार से भिन्न और कोई धातु या प्रकृति नहीं है और यदि हैं वे सभी प्रयोजन रहित हैं ।
सूत्र निर्देश पूर्वक इन प्रत्ययान्त धातुओं का विवरण :—

वर्तमान काल प्रथम पुरुष एक वचन के रूप—

पठ्=पठति=पढ़ाता है ।

पठ् णिच्=पाठयति=पढ़ाता है-हेतुमति च (३.१.१६)

पठ् सन्=पिपठिपति=पढ़ने की इच्छा करता है-धातो० (३.१.७)

पठ् णिच् सन्=पिपाठयिपति=पढ़ाने की इच्छा करता है—

धातो० (३.१.७)

पठ् यङ्=पापठ्यते=चारम्बार या अत्यधिक पढ़ता है—

धातो० (३.१.१३)

पठ् यङ्लुक्=पापठीति=चारम्बार या अत्यधिक पढ़ता है—

यङोऽचि च (२.४.६८)

यहाँ पर णिच् प्रत्यय के सम्बन्ध में एक वात ज्ञातव्य है । पढ़ धातु की प्रेरणार्थक क्रिया पढ़ाना और पढ़वाना दोनों होती है । अतएव पठ् पढ़ना, पठ् णिच् पढ़ाना, पठ् णिच् णिच् पढ़वाना । दो बार णिच् प्रत्यय किया जाता है ।

लकार—लकार का अर्थ है केवल ल् । लकार दस होते हैं । कुछ लकार वर्तमानादि कालों में तथा कुछ लकार वृत्तियों में उपदेश किये गये हैं । आज्ञा देना, निमन्त्रण करना आदि को वृत्ति कहते हैं । अइ-चण्, ऋलृक्, ऐ ओङ् इन तीन प्रत्याहारों से दस लकारों का ज्ञान होता है । इन अ, इ, उ, ऋ, ए और ओ को बीच में रखकर पहले ल् और बाद में ट् एवं ङ् रख देने से इन लकारों के नाम याद हो जाते हैं :—जैसे ल् अ ट् लट् । इसी प्रकार लिट्, लुट्, लृट्, लेट् और लोट् तथा ङ् जाड़कर लङ्, लिङ्, लुङ् तथा लृङ् ये ही दस लकार होते हैं । चूंकि इन दस लट् आदि में टकार आदि को इत्संज्ञा लोप करने पर केवल ल् बच जाता है इसलिए इनका लकार कहते हैं । लिङ् के विध्यादि लिङ् तथा आशिपि लिङ् ये दो भेद होते हैं ।

टित् लकार—लट् आदि ६ लकारों में टकार की इत्संज्ञा होती है अतएव इन ६ लकारों को टित् लकार कहते हैं ।

डित् लकार—लड् आदि ४ लकारों में डकार की इत्सङ्गा होती है, अतएव इन्हें डित् लकार कहते हैं। डित् और टित् का अर्थ है डकार और टकार जिसका लोप हुआ है।

विकरण—जिसके कारण से धातु में विकार होता है उसको विकरण कहते हैं। विकरण के कारण से ही धातुओं में गुण और वृद्धि रूप विकार होता है। विकरण ६ प्रकार के धातुओं के पश्चात् तथा तिप् तस् आदि १८ प्रत्ययों के पहले आते हैं।

लेट् का विकरण 'सिप्', लृट् तथा लृङ् का 'स्य', लुट् का 'तासि', लुङ् का 'सिच्', लिट् का विकरण नहीं होता। ६ प्रकार के धातुओं के पश्चात् इन लकारों के परे रहने पर ये विकरण होते हैं। क्योंकि इन विकरणों के साथ किसी गण का सम्बन्ध नहीं है। शेष लट्, लोट्, लङ् और विध्यादिलिङ् लकारों में गण भेद से विकरण भेद हो जाता है। विकरण भेद के कारण ही धातुओं का दस समूहों में विभाजन किया गया है.—

भ्वाद्यदादी जुहोत्यादि दिवादि स्वादिरेव च।

तुदादिश्च रुधादिश्च तनक्यादिचुरादय ॥

अर्थात् भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्रयादि और चुरादि ये दस गण हैं। दिवादिभ्य श्यन् (३१ ६६) इम सूत्र से कर्त्वाची सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहने पर शप् के स्थान में श्यन् आदेश होता है। इसी प्रकार सभी गण के सूत्रों को विकरणप्रकरण में देखना चाहिए। उस प्रकरण में अदादिगण, जुहोत्यादिगण तथा चुरादिगण के विकरणों का निर्देश नहीं है। अतएव अदिप्रभृतिभ्य शप् (२४ ७०) से अदादिगण के शप् विकरण का लुक् कहकर लोप कर लिया जाता है। उसी प्रकार जुहोत्यादिभ्य श्लु (२४ ७५) से शप् का श्लु कहकर लोप कर दिया जाता है। इन विकरणों के पश्चात् भ्वादिगण, णिजन्त, सनन्त, यञन्त इत्यादि धातुओं के पश्चात् कर्त्तरि शप् से लट् लोट् लङ् विध्यादिलिङ् म शप् विकरण होता है। क्योंकि कर्त्तरि शप् का किसी गण से सम्बन्ध नहीं। गणों से बचे हुए सभी धातुओं के पश्चात् शप् विकरण होता है। इस लिए भ्वादिभ्य शप् सूत्र न बनाकर आचार्य ने कर्त्तरि शप् बनाया। यङ्

लुगन्त में इन लकारों में शप् विकरण का अदिप्रभृ० (२. ४७२) से लुक् होता है। क्योंकि यडलुगन्त को अदादि के समान ही माना जाता है। इन चारों लकारों में सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहने पर इन भ्वादि तथा सनन्तादि धातुओं के पश्चात् विकरण शप् होता है और दिवादि आदि धातुओं के पश्चात् भी सार्वधातुक परे रहने पर श्यन् आदि विकरण होते हैं इसलिए आशिपि लिङ् तथा लिट् में विकरण नहीं होता क्योंकि लिडाशिपि (३४ ११६) लिट् च (३४ ११५) से इनकी आर्धधातुक सज्ञा होती है। लट्, लोट्, लङ् विध्यादिलिङ् के विकरण सार्वधातुक सज्ञक हैं, इसलिए इनको नार्धधातुकलकार तथा अन्य लकारों के विकरण आर्धधातुक सज्ञक हैं, इसलिये उनको आर्धधातुकलकार कहते हैं।

इन सभी लकारों में कुञ्ज का विधान तृतीयाध्याय के तृतीयपाद के लकारार्थनिर्णयप्रकरण में तथा कुञ्ज का विधान तृतीयाध्याय के द्वितीयपाद में किया गया है। अष्टाध्यायी-प्रकाशिका में इस सभी सूत्रों को देखना चाहिए।

तिङन्त के सिद्धिप्रकार—किसी भी धातु से किसी लकार में रूपों को सिद्ध करने के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए—

सिद्धि करने के लिए तिङन्त की सिद्धि को दो भागों में विभक्त करना चाहिए। (१) किसी धातु के पश्चात् तिप्, तस्, भि इत्यादि प्रत्यय का आना (२) तत्पश्चात् धातु + विकरण + प्रत्यय को जोड़कर उस तिङन्त की सिद्धि।

सिद्धि के प्रथम सण्ड में—

(१) परिचय—अर्थात् भूवादयो धातव (१३१) इस सूत्र से उस धातु का परिचय। जैसे—डुपचप् पाके की धातु सज्ञा हुई।

(२) स्वागत—धातु में लगे हुए अनुबन्धों की इसज्ञा करके, उसका लोप करना। जैसे—इसज्ञा लोप के पश्चात् डुपचप् का पच्।

(३) धातो (३.१.६१) का अधिकार, वतमाने लट् (३.२.१०३) इत्यादि लट् लिट् आदि विधि सूत्रों को लगाना, लट् आदि के अनुबन्धों का लोप, लस्य (३.४.७७) का अधिकार तथा तिप्, तस्, भि इत्यादि प्रत्ययों में से किसी एक का लकार के स्थान में आदेश करना। जैसे प तिप।

नोट—सन्, यङ्, शिच् आदि प्रत्यय हैं अन्त में जिन धातुओं के उनकी धातु सत्रा सनाद्यन्ता धातव (३.१.३२) से करनी ।

मिद्धि का द्वितीयखण्ड—

(४) विकरण को लाना । विकरण को लाने के लिये लकारों के अनुसार विकरणप्रकरण के किसी सूत्र का लगाना । जैसे पच् शप् तिप् ।

(५) सार्वधातुक लकारों में इट् का आगम नहीं होता लेकिन सार्वधातुकलकारों में सार्वधातुकविकरण को इट् का आगम होता है । जैसे भू लृट् । भू ल् । भू तिप् । भू स्य तिप् । भू इट् स्य तिप् ।

(६) धातु या विकरण का गुण या वृद्धि । जैसे—(धातु का गुण) भो इट् स्य तिप् । (विकरण का गुण)—कृ लट् । कृ ल् । कृ तिप् । (तनाविकृञ्च्य उ. (३.१.७१) कर् उ तिप् । कर् आं तिप् कर् अंति ।

(७) संहितानार्थप्रकरण, एधप्रकरण या मूर्द्धन्यादेशप्रकरण के किसी सूत्र से सन्धि, नकार के एकार का आदेश, मकार से पकार का आदेश करना । जैसे—भव् ड स्य ति । इत्सङ्गा लोप के लिये कोई निग्रम नहीं स्थागत तो कभी भो किया जा सकता है । यहा पर 'भो' का भव् इ प्य ति हुआ । यहा आदेशप्रयययो से मकार का पकार हो गया । सिद्धि के इन ७ सीद्धियों को स्मरण कर लेना चाहिये । इनका अभ्यास हो जाय इसलिये प्रमाशिसा में अदेव्गुण (११.३) सूत्र पर पचन्ति को मिद्धि, इमा गुणवृद्धौ (१.१.३) सूत्र पर तरति, नरति, अकार्पान् की मिद्धि देग लेना चाहिये । इन्ही तरीकों के आधार पर सभी तिहन्नों की मिद्धि का गई है । जो जो सूत्र लगे उन उन सूत्रों को ग्रन्थ में निहाल कर देखना चाहिये तथा उम उम सूत्र में किम किम सूत्र का अधिभार है या प्रनुवृत्ति, जानना चाहिये । उन नूत्रों के अर्थों पर भी उसी समय विचार कर लेना चाहिये । उम सूत्र ने क्या काम किया, इम प्रकार सूत्रों के स्मरण से तीन चार तिहन्नों की मिद्धि के परचाउ यही भी बठिनाई नहीं पडती ।

नवम व्याख्यान

कृतप्रत्ययप्रकरणम्

कृत्—धातु के पश्चात् कृत् और तिङ् ये दो ही प्रकार के प्रत्यय होते हैं। तिप्, तस्, मि इत्यादि १८ प्रत्ययों को तिङ् और इन १८ प्रत्ययों को छोड़कर अन्य शेष प्रत्ययों को कृत् कहते हैं। जैसे—तव्य, तव्यन्, अनीयर्, यत्, क्यप्, एबुल्, तृच्, घञ्, क्त, क्तवतु, शवृ, शानच्, क्त्वा इत्यादि प्रत्यय कृत प्रत्यय कहलाते हैं। आचार्य का सूत्र है कृदतिङ् (३.१.६३)

कृत्य—धातोः (३.१.६१) अधिकार सूत्र के पश्चात् एबुल्लुचौ (३.१.१३३) इस सूत्र तक तव्य, तव्यत्, अनीयर् आदि सभी प्रत्यय कृत्य कहलाते हैं। इन सूत्रों को निकालकर देखना चाहिये।

कृत् तथा कृत्य संज्ञा का फल—सभी कृत् प्रत्यय साधारणतः कर्त्ता में ही होते हैं। कभी-कभी अपादन, सम्प्रदान, करण, अधिकरण आदि कारकों में तथा केवल धातु के अर्थ को बताने के लिये भी ये कृत् प्रत्यय होते हैं। जैसे कृ धातु से तृच् प्रत्यय होकर कर्त् रूप बनता है। इसका प्रथमा एक वचन में कर्त्ता होता है जिसका अर्थ “करने वाला” है।

कृत्य प्रत्यय कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में आते हैं। जैसे रामेण वेद. पठितव्य.। रामेण उपनिषत् पठितव्या। रामेण पुस्तक पठितव्यम्। इन तीनों वाक्यों में पठ् धातु से ‘तव्य’ प्रत्यय कर्मवाच्य में हुआ है। जिसका अर्थ है राम से वेद पढ़ा जाना चाहिये। राम से उपनिषद् पढ़ी जानी चाहिये। राम से पुस्तक पढ़ी जानी चाहिये। कृत्य प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों का लिङ्ग और वचन कर्म के अनुसार परिवर्तित होते हैं। जो कि उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है। इसके विवेचन के लिये कर्त्तरि कृत् (३.४.६७) और तयोरेवकृत्य० (३.४.७०) सूत्रों को देखना चाहिये ॥

उपपद—धातु के पश्चात् कृत् प्रत्यय आते हैं। कभी-कभी केवल धातु से ही कृत् प्रत्यय आते हैं। तो जो भी मुबन्त पद धातु के पहले

आते हैं उनको उपपद कहते । जैसे—कृ+तृच् यहां पर बिना उपपद के ही कृ धातु से (कृन्) तृच् प्रत्यय हो गया । कुम्भम्+कृ+अण् यहां पर कुम्भम् (घड़ा) सुबन्त पद कृ धातु के पहले है, तब अण् प्रत्यय आया । अत एव यह कुम्भम् २।१ पद उपपद हुआ ।

उपपद की पहचान—‘धातोः’ अधिकार में पञ्चमी, सप्तमी और प्रथमा विभक्तियों का बाहुल्य है । धातुओं से पञ्चमी और प्रत्ययों के लिये प्रथमा विभक्ति का प्रयोग है । सप्तमी विभक्ति उपपद एवं अर्थ इन दोनों धातों के निर्देश के लिये आती है । जैसे कर्मण्यण् (३.२.१) अधिकरणे शैतेः (३.२.१५) इत्यादि सूत्रों में सप्तमी विभक्ति उपपद निर्देश के लिये है तथा कर्त्तरि कृन् (३.४.६७) तेषाम् कृत्य० (३.४.७०) इत्यादि सूत्रों में सप्तमी विभक्ति अर्थ निर्देश के लिये है ।

सुत्रार्थ की शैली—धातोः (३.१.६१) अधिकार के प्रकरण में ५७७१ क्रमाङ्क को याद रखना चाहिये । अमुक धातु से, अमुक के उपपद रहने पर, अमुक अर्थ में, अमुक प्रत्यय होता है । जैसे—कर्मण्यण् (३.२.१) का अर्थ होगा “धातु से कर्म के उपपद रहने में कर्त्ता अर्थ में अण् प्रत्यय होता है । कृन् प्रत्यय भी कर्त्तरि कृन् (३.४.६७) से कर्त्ता में ही होते हैं ।

कृदन्त की सिद्धि :—

कृन् प्रत्ययों को लाने के लिये तिङन्त की सिद्धि में निर्दिष्ट लट् आदि प्रत्ययों को लाने तक जितने कार्य किये गये हैं, वे सभी वहां भी करने चाहिये । ततः परधान्—

- (१) इट् का आगम या इट् का निषेध ।
- (२) गुण या वृद्धि या गुण या वृद्धि का निषेध ।
- (३) इयङ् या उयङ् का आदेश ।

अब यहाँ पर इट् का आगम आर्घधातुकस्येडधलादेशः (७. २. ३५) और निषेध एकाच उपदेशोऽनुदात्तान् (७. २. १०) से करना चाहिये ॥

सार्वधातुकार्घधातुकयोः (७. ३. ८४) तथा पुगन्तलृप्चस्य च (७. ३. ८६) इन दो सूत्रों से गुण का विधान करना चाहिए तथा अचञ्छिति (७. २. ११५) से वृद्धि का विधान करना चाहिये परन्तु गुण और वृद्धि

इन दोनों का निषेध किङ्कति च (१. १. ५) से हो जाता है। अचि शुधातु० (६. ४. ७७) से इयङ् अथवा उवङ् का आदेश होता है।

तिङन्त की सिद्धि में विशेषता—

जिस प्रकार कृदन्त की सिद्धि बतलाई गई उसी प्रकार तिङन्त की सिद्धि भी होती है। तिङन्त के लिए केवल एक लादेशप्रकरण विशेष ध्यान देने योग्य है अन्यथा कृदन्त और तिङन्त की सिद्धि में कोई भेद नहीं ॥

नमूना रूप में कृदन्त की सिद्धि के लिये अदेङ् गुण (१. २. २) सूत्र पर तरिता, चेता की सिद्धि, निष्ठा (३. २. १०२) सूत्र पर 'कृत' की सिद्धि देखनी चाहिये। कार्य प्रदर्शन पर पूर्ण ध्यान रखना आवश्यक है। किस किस प्रकार से इट् का आगम, गुण वृद्धि का विधान या निषेध किया गया है, इन बातों की सूक्ष्मता का ज्ञान करना आवश्यक है।

लादेशप्रकरणम्

लादेश प्रकरण के पहले लकारार्थनिर्णयप्रकरण आया है। लकार अर्थात् लट्, लिट्, इत्यादि प्रत्ययों का क्या अर्थ है इन बातों को बतलाने के लिये यह प्रकरण है। सूत्रों के अर्थ जानने से ही इन लकारों का अर्थ जाना जा सकता है। पहले भी मैं बतला चुका हूँ कि संस्कृत व्याकरण में कुछ लकार काल को बतलाते हैं और कुछ वृत्तियों को जैसे वर्तमाने लट् (३. २. १२३) सूत्र वर्तमान काल को बतलाता है, शोट् और विध्यादिलिङ् वृत्ति को बतलाते हैं। अकारादि क्रम से सभी लकारों का सूत्र याद कर लेना चाहिये।

लादेशप्रकरण में उन सूत्रों को रखा गया है जिनके द्वारा लकार के स्थान में होने वाले सभी परिवर्तन विधान किये जाते हैं। अतएव इस प्रकरण के सूत्रों से काम लेने के पहले लट् आदि प्रत्यय धातु के पश्चात् लाने चाहिये। पुन केवल लकार के स्थान में आत्मनेपद तथा परस्मैपद के नियम के अनुसार तिप् या 'त' आदि आदेश करना चाहिये। आदेश कर लेने के पश्चात् विकरण लाना चाहिये। तब आदेश हुये के स्थान में होने वाले परिवर्तन करने चाहिये। इस प्रकार

का क्रम सरलता के लिये बताया गया। जैसे एध् लट् । एध् ल् । एध् त । एध् शप् त । एध् अ त । इस स्थिति में टित् आत्मनेपदाना टेरे लगान चाहिये। इस सूत्र का अर्थ सूत्र पर देख लीजिये। सूत्र के द्वारा आत्मनेपद की 'टि' को एकार हो गया जिससे बना एध् अ ते । एधते । इस प्रकरण के सूत्रों का विनयोग करने का यही क्रम है। इन सूत्रों में टित् लकार और डित् लकार का अर्थ अच्छी तरह जानना चाहिये। टित् और डित् लकार का अर्थ विनरण के व्याख्यान में बताया चुके हैं।

दशम व्याख्यान

स्त्रीलिङ्गप्रकरणम्

किस शब्द का कौन सा लिङ्ग है, इस विषय पर महाभाष्यकार पतञ्जलि ने अत्यधिक विचार किया है। अन्त में उन्होंने निर्णय किया कि "लिङ्गमशिष्य लिङ्गाश्रयत्वाल्लोकस्य" अर्थात् शब्दों के लिङ्गों का निर्धारण नहीं किया जा सकता। ससार ही इस बात का प्रमाण है। लोक में जिस प्रकार बोला जाता है, उसीको प्रमाण मानना चाहिये। लोक में 'दारा' जिसका अर्थ स्त्री है, उसको पुल्लिङ्ग माना जाता है। अतएव यह निश्चय हुआ कि लिङ्ग के सम्बन्ध में कृत् इत्यादि प्रत्ययों के समान कोई ऐसा नियम नहीं जिससे गीत्र पता चल जाय कि अमुक शब्द स्त्रीलिङ्ग है या पुल्लिङ्ग। फिर महामुनि पाणिनि ने लिङ्गानुशासन में लिङ्गों का विवेचन किया है। यदि उन्हीं सूत्रों का अभ्यास कर लिया जाय तो यह समस्या बहुत कुछ सुलभ जाती है। इस लिङ्गानुशासन में किस शब्द का क्या लिङ्ग है, बताया गया है। यह नहीं बताया गया कि अमुक शब्द स्त्रीलिङ्ग या नपुंसक क्यों हुआ। इसके लिये तो परम्परा का ही आश्रय लेना पड़ेगा।

यहां पर एक प्रश्न उठता है कि आचार्य ने स्त्रीप्रत्यय का ही विधान क्यों किया। उनको नपुंसक और पुल्लिङ्ग का भी विधान

करना चाहिये था। इसका उत्तर यह है कि प्रातिपदिक मात्र ही नपुंसक या पुल्लिङ्ग होता है लेकिन स्त्रीलिङ्ग के लिये अविभक्त प्रातिपदिक के परचात् स्त्रीलिङ्ग का चातक प्रत्यय लगाया जाना है इसलिये स्त्री-प्रत्यय का प्रकरण आवश्यक था।

मुरयतया डीप्, डीप, डीन् तथा टाप, डाप् और चाप् ये ६ स्त्रीलिङ्ग के प्रत्यय हैं। इन्हीं ६ प्रत्ययों का 'ड्याप्प्रातिपदिकात्' सूत्र (४११) में निर्देश किया गया है। डीप, डीप्, डीन् म से नकार का इसज्ञा करने पर 'डी' वच जाता है और चाप्, टाप, डाप् म च, र ड् की इसज्ञा करने पर आप् वच जाता है। अब डी+आप् दोनों मिलकर ड्याप् वच गया। अतः सूत्र का अर्थ हुआ। डी आप् हे अन्त में जिसके और प्रातिपदिक से आगे कहे जाने वाले प्रत्यय होते हैं। अर्थात् ड्यन्त, आवन्त और प्रातिपदिक से आगे कहे जाने वाले प्रत्यय होते हैं। इससे यह ज्ञान हुआ कि प्रातिपदिक से ही स्त्री प्रत्यय होते हैं।

स्त्री प्रत्यय की सिद्धि

(१) अर्थवदधानुरप्रत्यय ० (१०४५) से प्रातिपदिक सज्ञा करना। जैसे—अज शब्द की इससे प्रातिपदिक सज्ञा होती है।

(२) ड्याप्प्रातिपदिकात् (४११) तथा स्त्रिया (४१३) का अधिकार करना।

(३) स्त्री प्रत्यय विधायक सूत्र। जैसे—अज प्रातिपदिक से अजाद्यतष्टाप् (४१४) प्रत्यय (३११) परश्च (३१०) से अज टाप हुआ।

(४) अङ्ग कार्य करना। यहाँ पर अक सवर्णे दीर्घ (६१६७) से दीर्घ एकादश होता है। अज+आ=अजा।

(५) सु औ जस् की उत्पत्ति। (४) विधान म यहाँ पर सहिता कार्य किया गया है लेकिन डीप्, डीप, डीन् प्रत्ययों में भसज्ञा करनी पडती है। जिसका सूत्र है यचि भम् (१४१८) पुन भस्य (६४१२६) का अधिकार करके यस्येति च (६४११८) से इवर्ण और अवर्ण का लोप करना होता है। इस प्रकार इन प्रकारों से स्त्रीप्रत्यय सिद्ध हो जाते हैं।

तद्धितप्रत्ययप्रकरणम्

तद्धित प्रत्यय का विधान आचार्य ने तद्धिता. (४ १.७६) सूत्र से लेकर ५ अध्याय पर्यन्त किया है। यह बहुत लम्बा प्रकरण है। हम ने अष्टाध्यायी-प्रकाशिका में तद्धित के सिद्धान्तों को मममाने के लिये तथा आवश्यक ज्ञान के लिये प्रमिद्ध-प्रमिद्ध सूत्र ले लिये हैं। सामान्य और आवश्यक ज्ञान के लिये ये चुने हुए सूत्र पर्याप्त हैं।

तद्धिता' शब्द का विग्रह है तस्मै हितम् तद्धित ते तद्धिता । यहा पर हित के योग में चतुर्थी विभक्ति है। वस्तुतः सभी विभक्तियों में इसका विग्रह करना चाहिये लेकिन हित के योग में चतुर्थी विभक्ति ही होती है। सभी विभक्तियों के साथ हित का समास करके एकारोप करने पर तद्धिता में बहुवचन उपन्न होता है। नहीं तो तद्धित सूत्र न देकर तद्धिता' दिया, इस बात का क्या उत्तर है। सभी विभक्तियों में विग्रह करने से प्रथमासमर्थ, द्वितीयासमर्थ, तृतीयासमर्थ इत्यादि अर्थ सम्भव हो सकता है। अन्यथा केवल चतुर्थी समर्थ प्रातिपदिक से ही तद्धित प्रत्यय होता है ऐसा अर्थ होना चाहिये था।

अभी उपर्युक्त पक्तियों में प्रथमा समर्थ शब्द का प्रयोग किया है उसका अर्थ इस प्रकार समझना चाहिये। तद्धित प्रत्यय इत्यन्त आरन्त और प्रातिपदिक से होते हैं, इसका अधिनार आ रहा है। यह भी निश्चय है कि तद्धित प्रत्यय किसी न किसी अर्थ में आते हैं। प्रत्यय का स्मार्थ हो या परार्थ, लेकिन उसका अर्थ अचरय रहता है।

एक सूत्र को लेकर समझना चाहिये। जैसे तन्वापयम् (५.१.६०) अत. इन् (४.१.६५) सूत्र का अर्थ है उम्ना अप्रय (मन्तान) इस अर्थ में इन् प्रत्यय होता है। उदाहरण दशरथिः। दशरथस्य अपर्य पुमान् दशरथिः। अथ यत् पर दशरथस्य और अपर्यम् ये दो मन्वन्ती पद हैं। क्योंकि पहले समास प्रकरण में ही यत्ता दिया गया है कि मन्वन्ती पदों का ही इस शब्दानुगामन नामक शास्त्र में विधान किया जाता है। जैसे यत् पर क्त जाय कि "राज्य दशरथस्य अपर्य मुदानस्य" तो अथ दशरथ का राज्य और मुदान का अपर्य यहा पर दशरथ और अपर्य में कोई मन्वन्ती ही नहीं। इसलिये 'समर्थ' शब्द का अर्थ है मन्वन्ती। अथ यत् पर दशरथस्य और अप-

त्यम् इन दोनों पदों में से किससे तद्धित प्रत्यय का विधान किया जाय उसके लिये सूत्र है “समार्थानां प्रथमाद् वा ।” सम्बन्धी पदों में से प्रथम पद से तद्धित प्रत्यय को विकल्प से उत्पत्ति होती है । कोई तद्धित प्रत्यय नहीं करना चाहता, उसके लिये वह स्वतन्त्र है । वह दशरथस्य अपत्यम् ही का व्यवहार करता है, वह भी ठीक है, इसलिये ‘वा’ शब्द का प्रयोग किया गया है । अत्र दशरथस्य अपत्यम् यहाँ पर प्रथम सम्बन्धी पद दशरथस्य है उससे तद्धित इब् प्रत्यय होता है । यहाँ पर एक प्रश्न उठता है कि प्रथम का अर्थ केवल लिखने की आनुपूर्वा से है या इसमें कोई और बात है । यदि आनुपूर्वा से ही है तो कोई यह भी कह सकता है कि अपत्यम् दशरथस्य यहाँ पर प्रथम सम्बन्धी पद अपत्यम् है अतएव अपत्य पद से ही तद्धित को उत्पत्ति होनी चाहिये । इस प्रश्न के उत्तर में प्रथम शब्द की व्याख्या यह समझनी चाहिये कि प्रथम शब्द आनुपूर्वा के लिये नहीं बल्कि प्रथम प्रकृति का द्योतन करता है । अर्थात् प्रथम प्रकृति दशरथ है न कि उसका अपत्य । पिता तो पुत्र से पहले ही उत्पन्न हुआ रहता है । अतएव प्रथम प्रकृति दशरथ है । चाहे दशरथस्य पद को पहले या बाद में रखे इसमें कोई अन्तर नहीं आता ।

इस तद्धित के प्रकरण में अर्थों के तथा प्रत्ययों के अधिकार है । प्राग्दीव्यतोऽण् (४ १ २३) यह प्रत्यय का अधिकार है । तथा तस्यापत्यम् यह अर्थ का अधिकार है । इसी प्रकार ४ और ५ अध्याय में व्यवस्था है । जब प्रत्यय का अधिकार चलता है, तब यह बात ध्यान देने की है कि जब किसी सूत्र में किसी प्रत्यय का विधान नहीं है तभी अधिकार से प्राप्त प्रत्यय जानना चाहिये और जहाँ किसी प्रत्यय का विधान है वहाँ पर अधिकार से प्राप्त प्रत्यय नहीं लगता । जैसे स्त्रीभ्यो ढक् (४ १-१२०) यहाँ पर अण् का भी अधिकार है और ढक् प्रत्यय का भी विधान किया है । अतएव यहाँ पर अधिकार प्राप्त प्रत्यय नहीं होता, ढक् ही होता है ।

तद्धितप्रकरण के सूत्रों की अर्थशैली—

सूत्रों में प्रथमा, द्वितीया, तृतीया विभक्ति से भी निर्देश किया गया है जैसे तदस्यास्त्यस्मिन्निति मनुष् (५.२ ६४), यहाँ पर तद् ११९,

तद्धीते तद्वेद (५.२.५६) तद् २।१, तेन रक्तु रागात् (५.२.१), तेन ३।१, तस्मै हितम् (५.१.५), तस्मै ४।१, पञ्चम्यात्सित् (५.३.७), पञ्चम्या ५।१, तस्यापयम् (५.१.६०) तस्य ६।१, तत्र तस्येन (५.१.१७६) तत्र (सप्तमी के अर्थ में) ट्यादि रराना में इन विभक्तियों के देने का समर्थ प्रातिपदिक में अर्थ करना ही अभिप्राय है। इयाप्प्रातिपदिकान् का अधिकार होने से सर्वत्र पञ्चमो विभक्ति होती है और कहीं कहीं पष्ठी विभक्ति भी। इसका कारण धातो (३.१.६१) सूत्र पर देखना चाहिये। अतएव सर्वत्र प्रकृति में पञ्चमी विभक्ति और प्रत्यय में प्रथमा विभक्ति होती है। अर्थ में प्रायः सप्तमी विभक्ति होती है और समर्थप्रातिपदिक में उपर्युक्त सातों प्रकार की विभक्तियाँ आती हैं। अत्र सूत्र का अर्थ हुआ अमुक प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से अमुक अर्थ में अमुक प्रत्यय होता है। अर्थात् इस प्रकरण के लिये ५.७१ याद रराना चाहिये। जैसे अत्र इन् (५.१.६५) का अर्थ हुआ अमारान्त प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में इन् प्रत्यय होता है इसी प्रकार प्रत्येक सूत्र में कम से कम तीनों विभक्तियों को देखना चाहिये। इनमें से कोई विभक्ति यदि सूत्र में न हो तो अनुवृत्ति से लाना चाहिये। या तो कहीं ऊपर के अधिकार सूत्र से अनुवृत्ति आती होगी या पाम के किसी सूत्र से ही।

तद्धित प्रत्यय की मिद्धि

(१) अर्थवद० (१.०.५५) में प्रातिपदिक सज्ञा करना। जैसे— दशरथ शब्द की इस सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा होती है।

(२) ऋयाप्प्रातिपदिकान् (२.१.१), तद्धिता (५.१.७६), समर्थानां प्रथमाद् वा (५.१.८०) तथा अर्थ और प्रत्यय विचारन सूत्रों का अधिकार करना।

(अर्थ का अधिकार) तस्यापयम् (२.१.६०), तथा प्रथय का प्राग्दीव्यतोऽण् (५.१.८३) है।

(३) प्रत्यय विधायक सूत्र। जैसे अत्र इन् (५.१.६५) में दशरथस्य इन्, प्रथय. (३.१.१), परस्य (३.१.२) इन दो सूत्रों को भी लगाना।

(४) सुपो धातुप्रातिपदिकयो (२.४.७६) सुप का लुक् करना।

(५) भसभा तथा वसना कार्य करना। इसके लिये अधिकार

सूत्रों के साथ यस्येति च (६.४.१४८) सूत्र लगाना । दशरथ् इ ।

(६) गुण या वृद्धि तथा अन्य अङ्ग सम्यन्धी कार्य । जैसे 'दशरथ् इ' में तद्धितेप्त्वचामादेः (७.२.११०) सूत्र से आदि अच की वृद्धि ।

इसकी सिद्धि के लिये वृद्धिरादैच् (१.१.१) सूत्र के शालीयः, ऐतिक्रयनः और श्रीपगवः, इन उदाहरणों को देखना चाहिये ॥

समासान्तप्रकरणम्

समासान्त का अर्थ है समास का अन्त अर्थात् समास हो जाने के पश्चान् इन प्रत्ययों का विधान किया जाता है । समास प्रकरण में इन सूत्रों को कदापि नहीं पढ़ना चाहिये । क्योंकि ये तद्धित प्रत्यय हैं और जो कार्य तद्धित के होते हैं उसी प्रकार इन प्रत्यय के भी कार्य होते हैं । समास समासप्रकरण से तथा समासान्त प्रत्यय इस प्रकार से पढ़ना चाहिये । यही प्रकरण की उपयोगिता है ।

एकादश व्याख्यान

द्विर्वचनप्रकरणम्

चङ् में “पच पच चङ्, श्लु में हु हु तिप् ॥ यह श्लु प्रत्यय नहीं बल्कि जुहोत्यादिगण के धातुओं के परचान् शप् का श्लु द्वारा लोप कर दिया जाता है। अत एव इसी श्लु के विषय में जुहोत्यादिगणीय सभी धातुओं का द्विर्वचन हो जाता है।

द्विर्वचन का काल—धातु के परचान् जब ये पाच प्रत्यय आ जाते हैं तब द्विर्वचन का प्रश्न उपस्थित होता है क्योंकि द्विर्वचन विधायक सूत्र है लिटि० (६१८), सन्यङ्गे (६१८) श्लौ (६१११) और चङि (६१११) परन्तु धातु के परचान् जब कोई प्रत्यय आ जाय तब सत्रसे प्रथम अङ्ग मन्वन्धी कार्य करना चाहिये। अङ्ग मन्वन्धी लोप, आगम, वर्णविकार ये तीन प्रकार के ही कार्य हो सकते हैं। इन कार्यों के करने के परचान् ही द्विर्वचन करना चाहिये।

लिट् लकार में द्विर्वचन—धातु के परचान् जब लिट् प्रत्यय आ जाय तब लादेश का कार्य करके अङ्ग मन्वन्धी कार्य होता है। जैसे हुकृञ् लिट्। कृ ल्। कृ तिप्। कृ णल्। कृ अ। इस स्थिति में अचो णिणिति (७०११५) सार्धधातुसार्धधातुकयो (७३८४) सूत्र का अपवाद है अतः उससे वृद्धि तथा उरण् स्पर (११५०) से स्पर होकर “कार् अ” हो गया। अतः यहाँ पर द्विर्वचन “कार् कार् अ” करना चाहिये। इसी प्रकार जब “कृ अतुम्” का रूप बनाने लगेंगे तो यहाँ पर इमा णिचि (६१७४) सूत्र से इरु के स्थान में यण् हो जायेगा जिससे “कृ अतुस्” हो जाता है। इस स्थिति में जब द्विर्वचन का काल आया तो द्विर्वचन हो ही नहीं सकता क्योंकि एजाचो द्वे प्रथमस्य (६११) सूत्र का द्विर्वचन प्रकरण के सूत्रों में अविचार है। अतः ‘कृ अतुम्’ म अच् है ही नहीं तो द्विर्वचन प्राप्त ही नहीं होता। इसलिये यहाँ पर द्विर्वचनञ्चि (११५८) सूत्र लगता है। सूत्रार्थ है द्विर्वचन निमित्त याला अजाटि प्रत्यय के परे रहने पर अच् का आदेश स्थानी के समान हो जाता है द्विर्वचन के ही करने में। अर्थात् जिस का आदेश हुआ हो उसीका रूप उपस्थित हो जाता है। ऐसा करने से “कृ अतुस्” का रूप “कृ अतुस्” हो गया। अत्र अच् मिलने से “कृ कृ अतुस्” द्विर्वचन होता है। इसी प्रकार पपतु, पपु की सिद्धि भी द्विर्वचनेञ्चि सूत्र पर देख लेना चाहिये। सन् यङ् इत्यादि अन्य प्रत्ययों में द्विर्वचन की विधि

सूत्रों के साथ यस्येति च (६४.१४८) सूत्र लगाना । दशरथ् इ ।

(६) गुण वा वृद्धि तथा अन्य अङ्ग सम्बन्धी कार्य । जैसे 'दशरथ् इ' में तद्धितेष्वचामादे (७०.११०) सूत्र से आदि अच की वृद्धि ।

इसकी सिद्धि के लिये वृद्धिरादैच् (१.१.१) सूत्र के शालीय, ऐतिहायन और औपगव, इन उदाहरणों को देखना चाहिये ॥

समासान्तप्रकरणम्

समासान्त का अर्थ है समास का अन्त अर्थान् नमास हो जाने के पश्चात् इन प्रत्ययों का विधान किया जाता है । समास प्रकरण में इन सूत्रों को कदापि नहीं पढ़ना चाहिये । क्योंकि ये तद्धित प्रत्यय हैं और जो कार्य तद्धित के होते हैं उसी प्रकार इन प्रत्यय के भी कार्य होते हैं । समास समासप्रकरण से तथा समासान्त प्रत्यय इस प्रकार से पढ़ना चाहिये । यही प्रकरण की उपयोगिता है ।

एकादश व्याख्यान

द्विर्वचनप्रकरणम्

यह प्रकरण तिङन्त से सम्बन्धित है । दो हजार धातुओं के पश्चात् लिट्, सन्, यङ्, श्लु और चङ् प्रत्यय जन आते हैं तब इस प्रकरण का कार्य उपस्थित होता है । इन पाच प्रत्ययों के परे रहने पर धातु का द्विर्वचन होता है । द्विर्वचन शब्द का अर्थ है दो बार बोलना । जैसे राम शब्द का द्विर्वचन हो जाय, यदि ऐसा विधान किया जाय तो 'राम' शब्द का 'राम राम' द्विर्वचन हो जायेगा । इस प्रकार इन प्रत्ययों के परे रहने पर सभी धातुओं का द्विर्वचन होता है । जैसे "हुपचप् पाके" धातु के पश्चात् परोक्षे लिट् (३०.१०५) से लिट् प्रत्यय आया । अत्र लिटि धातोरनभ्यासस्य (६१.८) से लिट् के परे रहने पर धातु का द्विर्वचन "पच् पच् लिट्" ऐसा होता है । इसी प्रकार पच् धातु का द्विर्वचन सन् में "पच् पच् सन्" यङ् में "पच् पच् यङ्" ।

षड् में “पच पच चक्, श्लु में हु हु तिप् ॥ यह श्लु प्रत्यय नहीं बल्कि जुहत्यादिगण के धातुओं के पश्चात् शप् का श्लु द्वारा लोप कर दिया जाता है। अन ग्व इसी श्लु के विषय में जुहोत्यादिगणीय सभी धातुओं का द्विवचन ही जाता है।

द्विवचन का काल—धातु के पश्चात् जत्र ये पाच प्रत्यय आ जाते हैं तब द्विवचन का प्रश्न उपरिष्ठ हाता है क्योंकि द्विवचन विधायक सूत्र है लिटि० (६१८), मन्वन्धो (६१८) श्लो (६१११) और चकि (६१११) परन्तु धातु के पश्चात् जत्र कोई प्रत्यय आ जाय तब सत्रमे प्रथम अङ्ग मन्वन्धो कार्य करना चाहिये। अङ्ग मन्वन्धो लोप, आगम, वर्गाविभार ये तीन प्रकार के ही कार्य हो सकते हैं। इन कार्यों के करने के पश्चात् ही द्विवचन करना चाहिये।

लिट् लकार में द्विवचन—धातु के पश्चात् जत्र लिट् प्रत्यय आ जाय तब लोप का कार्य करके अङ्ग मन्वन्धो कार्य हाता है। जैसे डुष्टच् लिट्। कृ ल्। कृ तिप्। कृ णल्। कृ अ। इम स्थिति म अचो ङिति (७० ११५) मार्धधातुमार्धधातुभ्यो (७३ ८४) सूत्र का अपवाद है अन उमसे वृद्धि तथा उरण रपर (११५०) से रपर हानर “कार् अ” हो गया। अन यहा पर द्विवचन “कार् कार् अ” करना चाहिये। इसी प्रकार जत्र “कृ अतुम्” का रूप बनाने लगेंगे तो यहा पर इमा यणचि (६१७४) सूत्र से इक के स्थान म यण् हो जायेगा जिस से “क्र अतुम्” हो जाता है। इम स्थिति म जत्र द्विवचन का काल आया तो द्विवचन हो ही नहीं सकता क्योंकि एमाचो द्वे प्रथमस्य (६११) सूत्र का द्विवचन प्रकरण के सूत्रों में अविभार है। अतः ‘क्र अतुम्’ म अत्र है ही नहीं तो द्विवचन प्राप्त ही नहीं होता। इमलिये यत्र पर द्विवचनञि (११५८) सूत्र लगता है। सूत्रार्थ है द्विवचन निमित्त वाला अजादि प्रत्यय के परे रहने पर अच का आदेश स्थानी के समान हो जाता है द्विवचन के ही करने म। अर्थान् जिम का आदेश हुआ हो उमीम रूप उपस्थित हो जाता है। ऐसा करने से “क्र अतुम्” का रूप “कृ अतुस्” हो गया। अन अच् मिलने से ‘कृ कृ अतुम्’ द्विवचन होता है। इसी प्रकार पपतु, पपु की सिद्धि भी द्विवचनेञ्चि सूत्र पर देख लेना चाहिये। सत्र यङ् इत्यादि अन्य प्रत्ययों में द्विवचन की विधि

को तत् तत् विधायक सूत्रों पर देखना चाहिये ।

संहिताकार्यप्रकरणम्

अत्यन्त निकट की संहिता सज्ञा होती है । यहा पर अत्यन्त निकट का तात्पर्य है अर्ध मात्रा काल का व्यवधान । जैसे दधि अत्र, यहा पर दधि का अन्तिम वर्ण इ और अत्र का आदि वर्ण अ, इन दोनों में अर्ध मात्रा काल का ही व्यवधान है । इस प्रकार से यहा पर संहिता है ।

सन्धि—संहिता प्रकरण में सन्धि होती है । सन्धि दो में ही सम्भव है अतः कभी दोनों परिवर्तित होकर एक तीसरा ही रूप धारण कर लेते हैं । कभी कभी दोनों में से एक हा का रूप परिवर्तित होता है ।

एकादेश—जहाँ पर पूर्व और पर इन दोनों का एक रूप होता है उसके तीन प्रकार हैं । कभी दोनों अपना रूप मिटा कर एक तीसरा रूप धारण कर लेते हैं । जैसे—आद् गुण (६१ ८४) इस सूत्र का अर्थ ग्रन्थ से देखिये । उदाहरण देव+इन्द्र है । यहा पर अ+इ की संहिता सज्ञा है अतः एव अ इ मिलकर गुण 'ए' होता है । इस 'ए' में अ अथवा इ का रूप नहीं बल्कि एक तीसरा रूप आ गया । इसी प्रकार गुण सन्धि में उसी सूत्र से अ+ई=ए, अ+उ=ओ, अ+ऋ=अर्, वृद्धि अ+ए, अ+ओ=औ, अ+ऐ=ऐ, अ+औ=औ, इत्का सूत्र वृद्धिरेचि (६१ ८५) देखना चाहिये ।

पररूप एकादेश—कभी कभी संहिता में पररूप एकादेश होता है । पररूप का अर्थ है जो पर का रूप होता है, वही रह जाता है अर्थात् पूर्व का रूप नहीं रहता । जैसे "पच+अन्ति" यहा पर अनो गुणे (६१ ८४) सूत्र से पररूप होता है । अर्थात् पच का अन्तिम अकार अन्ति के आदि अकार से मिलकर उसी का रूप धारण का लेता है । जब वह पर से मिलता है तो उसकी अपनी सत्ता समाप्त हो जाती है ।

पूर्वरूप एकादेश—इसी प्रकार पर जानर पूर्व से मिलता है और अपनी सत्ता समाप्त कर देता है । जैसे "राम अम्" यहा पर अमि पूर्व (६१ १०३) सूत्र से पूर्वरूप एकादेश होता है । अब अम् का 'अ' राम के अन्तिम अकार से मिलता है तो अपनी सत्ता खोकर मिलता है इसीलिये रामम् रूप होता है । इस प्रकरण के जितने सूत्र हैं वे सन्धि

के सूत्र कहलाते हैं। अतः इन सूत्रों का सर्वत्र काम पड़ता है। अत एव पाठनों को इस प्रकरण के सभी सूत्रों को कण्ठ कर लेना चाहिये तथा इनके अर्थ उदाहरणों का अभ्यास करना चाहिये।

वृद्धिप्रकरणम्

सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु

यह वृद्धि प्रकरण गुण प्रकरण का अपवाद है। क्योंकि धातु के परचात् जो भी प्रत्यय होते हैं उनकी सार्वधातुक या आर्धधातुक में ई न कोई संज्ञा हो ही जाती है और सर्वत्र सार्वधातुकार्धधातुकयोः (६.३.८४) या पुगन्तलधूपधस्य च (७.३.८६) में गुण की प्राप्ति है। वह गुण उत्सर्ग कार्य है। उन सूत्रों के द्वारा गुण की प्राप्ति में इस वृद्धि विधान का आरम्भ किया गया है। अतएव ये सभी सूत्र अपवाद हैं। सिद्धि के समय गुण प्राप्ति का दर्शन कराना आवश्यक है।

लुङ् लकार—इस लुङ् लकार में रूपों को सिद्ध करने के लिए सिचि वृद्धि० (७.२.१.) वदत्रज० (७.२.३.) नेटि (७.२.४.) और अतो हलादेः० (७.२.७.) का अर्थ समझकर स्मरण कर लेना चाहिये। जिस धातु में इङ् अन्त में हो वहाँ सिचि वृद्धिः० (७.२.१.) सूत्र लगता है। क्योंकि वृद्धि शब्द से वृद्धि का विधान किया गया है। अतएव यहाँ इङ्को गुणवृद्धी (१.१.३) परिभाषा सूत्र उपस्थित हो ही जायेगा। जिम धातु के अन्त में इङ् प्रत्याहार में आने वाला कोई वर्ण नहीं है, वहा पहले वदत्रज० (७.२.) से वृद्धि प्राप्त होती है। यदि वह सेट् धातु है तो नेटि (७.२.४) से वृद्धि का निषेध होता है, पुनः यदि वह धातु हलादि है, और लघु आकार वाला है तो “अतो” ० (७.२.७) से विकल्प में वृद्धि का मना होता है जैसे “गद् व्यक्तावाचि” धातु है। गद् लुङ् । गद् तिप् गद् च्लि तिप् । गद् सिच् तिप् । गद् म् ति । गद् इट् स् ति । गद् ड स् ति इस स्थिति में सिचि वृद्धिः ७.२.१) तो लगेगा नहीं क्योंकि इसमें इङ् है ही नहीं। वदत्रज० (७.२.३) में वृद्धि प्राप्त होती है। उस वृद्धि को नेटि (७.२.४) मना कर देता है पुनः अतो० (७.२.७) विकल्प में मना करता है। अतएव इसके दो रूप बनते हैं। इसी पूर्ण सिद्धि के लिए इमो गुणवृद्धी (१.१.३) सूत्र के उदाहरणों को देखना चाहिए। इसके अगदीत् और अगादीन् ये दो रूप बनते हैं।

इट् प्रकरणम्

इस प्रकरण से लिए उदात्त और अनुदात्त इन दो शब्दों का तात्पर्य अच्छी तरह से समझ लेना चाहिये। धातुपाठ में जिन जिन धातुओं का उदात्त पढ़ा है। उनका अर्थ है कि उन धातुओं के पश्चात् वलादि प्रत्यय को इट् का आगम होता है अर्थात् वे सेट् धातु हैं। इसी प्रकार जिन धातुओं का अनुदात्त पढ़ा है, वे सभी अनिट् धातु हैं। विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि इट् का आगम प्रत्यय को होता है, धातु का नहीं। इस प्रकरण में क्रादिनियम, और भारद्वाजनियम, ये दोनों बहुत प्रसिद्ध नियम हैं। जब तक इन नियमों की अनुभूति नहीं होगी तब तक लिट् लकार में प्रयाग का बनाना असम्भव है। इसलिये इन दो नियमों का जानना चाहिए। विस्तार भय से यहाँ नहीं लिखते। ऋता भारद्वाजस्य (७० ६३) सूत्र पर भारद्वाज के नियम का व्याख्यान किया गया है। तथा सूत्रों के प्रकार पर व्याख्यान में क्रादिनियम का वर्णन किया गया है, वहाँ ही देखना चाहिये।

इस प्रकरण के एकाच उपदेशोऽनुदात्तात् (७० १०) श्रुत्युक् किति (७० ११) आर्धधातुकस्य ङ्घ्रलाद् (७० ३५) स्वरति० (७२ ४४) ऋतो भारद्वाजस्य (७० ६३) इत्यान् प्रसिद्ध तथा आवश्यक सूत्र हैं। इन सूत्रों का अर्थ और प्रयोजन इन सूत्रों का पढ़कर जान लेने से शब्द सिद्ध में अव्याहत गति होती है।

अभ्यासप्रकरणम्

अभ्यास प्रकरण अत्र लोपाऽभ्यासस्य (७४ ५८) से आरम्भ होता है। धातु के द्विर्वचन हाने के पश्चात् पूर्वोऽभ्यास (६१ ४) सूत्र पच् लिट्। पच् अतुस् इसका द्विर्वचन होकर (१) पच् (२) पच् अतुस् होता है। इसमें (१) अभ्यास सज्ञा वाला है। इस अभ्यास सज्ञक पच् का अब जा भी अभ्यास कार्य होगा उन सभी कार्यों को इस प्रकरण के सूत्र करेंगे।

इस प्रकरण में ह्रस्व (७४ ५६), हलादि शेष (७४ ६०) शपूर्वा खय (७४ ६१) उरत् (७४ ६६) इत्यान् महत्व पूर्ण सूत्र हैं। इस प्रकरण के सूत्रों को समझने के लिये न पदान्त० (११ ५७) सूत्र पर चिकीर्षक की सिद्धि देखनी चाहिये।

द्वादश व्याख्यान

वर्णोच्चारण शिक्षा

किमी वर्ण का क्या क्या स्थान तथा क्या क्या प्रयत्न होता है, इस बात का ज्ञान रखना अध्याप्यायी के सूत्रों को समझने के लिए अत्यावश्यक है। मवर्ण संज्ञा के किये बिना अरु मवर्णों दीर्घ (६.१.६७) इत्यादि सूत्रों की गति हो ही नहीं सकती।

स्थान—मुख में कण्ठ, तालु, मूढ़ां, दात, ओष्ठ, आदि स्थान होते हैं। वर्णों को इन्हीं स्थानों में उच्चारण किया जाता है।

प्रयत्न—किसी वर्ण में थोड़ा प्राण, किसी में अधिक प्राण, किसी में गर्मी निकलती है, किसी वर्ण का उच्चारण करने के समय थोड़ा स्पर्श होता है, इत्यादि अनेक प्रकार के प्रयत्न होते हैं।

सवर्णसंज्ञा—जब स्थान और प्रयत्न किसी दो वर्णों का समान होता है तो उसकी सवर्णसंज्ञा होती है अर्थात् एक जाति होती है। एक जाति में ही कार्य भी होता है।

इन वर्णों के सम्यन्ध में विशेष ज्ञान करने के लिये वैदिक यन्त्रालय से मुद्रित वर्णोच्चारण शिक्षा देखनी चाहिये। यहाँ सवर्णसंज्ञा करने के लिये जितनी बातों की आवश्यकता है, उनकी ही चर्चा करेंगे। पाणिनि मुनि ने सूत्रों में ही उक्त वर्णोच्चारण शिक्षा का निर्माण किया है। हम इन बातों को पं. केशवदास के श्लोकों में बतावेंगे। श्लोक कण्ठ कर लेने से इन बातों की याद करने में बड़ा मरलता होती है। वर्णोच्चारण शिक्षा से सूत्रों का कण्ठस्थीकरण अत्यन्त आवश्यक है।

स्थान - प्रयत्नतुल्यत्वं वर्णसात्पर्यमिष्यते ।

प्रयत्नास्तु द्विधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरभेदत ॥१॥

स्थानानि—विमर्गस्याकुहा ऋण्ठस्तालुस्थी तु यशाविवृ ।

मूर्वास्थान ऋदुरपा दन्ता लृतुलसा तथा ॥२॥

स्थान और प्रयत्न की समानता होने पर वर्णों की सवर्णसंज्ञा होती है बाह्य और आभ्यन्तर भेद से प्रयत्न दो प्रकार के होते हैं ॥१॥ अ, कवर्ग, ह और विमर्जनीय ना कण्ठ । इ, बवर्ग, य, श का तालु । ऋ, टवर्ण, र, प का मूर्वा । ल, तवर्ग, ल, म का दन्त । उ, पवर्ग, ऋभ-

उपूष्मानिमोष्ठात्रेते। कण्ठतालु तन् ।
 नासिक्या विन्दुवर्गान्त्या ओष्ठौतोरौष्ठकण्ठकम् ॥३॥
 दन्तोष्ठ स्याद् वकारस्य जिह्वामूल तु तद्भवे ।
 इति स्थानानि वर्णानामुच्चारणा ममान्त ॥४॥

प्रयत्ना — [प्रयत्नास्तु द्विधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरभेदे]

बाह्या — आमृतात्कण्ठपर्यन्त प्रयत्ना बाह्यसङ्गका ।

आभ्यन्तरा — कण्ठादौष्ठ मुखे ये स्युस्ते बाह्याभ्यन्तरसङ्गका ॥५॥

भेदा — अप्रो बाह्यप्रयत्ना स्युर्भाष्यकारमते मता ।

अन्यानतर्यपरीक्षायामुत्थाने मूपयोगिन ॥६॥

श्वामो नादो विवारोऽथ घोषोऽघोषोऽपि सवृत ।

अल्पप्राणो महाप्राण इत्यष्टौ नामत स्मृता ॥७॥

वैपा वै—वर्गोणा प्रथमे वर्णोऽस्तृतीया पञ्चमा यण ।

अल्पप्राणा ममाख्याता महाप्राणा परे शल ॥८॥

खरो विवारा श्वासाश्चाघोषाश्च परिकीर्तिता ।

सवाराश्चाथ नादाश्च घोषाश्चापि हश स्मृता ॥९॥

आभ्यन्तरभेदा — स्पृष्टेपत्स्पृष्ट विवृतमीपद्विवृत सवृतम् ।

नीय का ओष्ठ । ग, औं न कण्ठ तालु । विन्दु अर्धान् अनुस्वार और
 वर्ण के अन्तिम अक्षरका नासिका । ओ, औं का ओष्ठ-कण्ठ ।
 वकार का दन्त ओष्ठ जिह्वामूलीय \times का जिह्वामूल । उच्चारण
 किये जाने वाले वर्णों के स्थान सक्षिप्त रूप से वर्णन किये गये ॥ २,
 ३, ४ ॥

नाभि से कण्ठ तक सभी प्रयत्ना को बाह्य प्रयत्न कहते हैं । कण्ठ
 से लेकर ओष्ठ तक के सभी प्रयत्न आभ्यन्तर प्रयत्न होते हैं ॥३॥ वर्णों
 के सादृश्य में उत्पन्न उपयोगी आठ बाह्य प्रयत्न होते हैं ॥६॥ श्वाम,
 नाद, विवार, घोष, अघोष, सवार (सवृत), अल्पप्राण और महाप्राण
 ये आठ बाह्य प्रयत्न होते हैं ॥७॥ वर्ग के प्रथम, तृतीय, पञ्चम और
 षष्ठ (य र ल व) का अल्पप्राण, तथा वर्ग के अन्य द्वितीय और
 चतुर्थ वर्ग, तथा शल् (श प म ह) का महाप्राण प्रयत्न है ॥८॥ खर्
 प्रयाहार के वर्णों का विवार, श्वास और अघोष तथा हश् (ह से लेकर
 श तक) न सवार, नाद और घोष प्रयत्न हैं ॥९॥ स्पृष्ट, ईपत्स्पृष्ट,

आभ्यन्तरप्रयत्नस्य भेदा पञ्च इमे स्मृता ॥१०॥

केपा क—[कादयो मायमानाश्च वर्णा स्पर्शा प्रकीर्त्तिता]

स्पृष्ट प्रयत्न स्पर्शानामीप्सस्पृष्ट यत्न स्मृतम्

विवृत तु स्वरान्ना स्यादापद्विनृतमूपमणाम् ॥११॥

ह्रस्वदीर्घप्लुनादीनामुदात्तादिप्रभेदेन ।

अनुनामिभेदाच्च भेदास्त्रय्यादश स्मृता ॥१२॥

विवृत, ईपद्विवृत और सवृत ये पांच आभ्यन्तर प्रयत्न हैं ॥१०॥

[क मे लेखर म तक के सभी वर्णों अर्थात् पाचों वर्ग के सभी वर्णों को स्पर्श कहते हैं] स्पर्शों का स्पृष्टप्रयत्न, यत्न या ईपत्स्पृष्ट, स्वरों का विवृत तथा शल् अर्थात् श प म ह का ईपद्विवृत प्रयत्न है ॥११॥ ह्रस्व, दीर्घ, प्लुन, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, तथा निरनुनासिक और मानुनासिक भेद से स्वरों के १० भेद हैं ।

ग्रन्थिनिवेदन

इन व्याख्यानो को आरम्भ पढ़ना चाहिए । जो भी मूत्र व्याख्यानां में आते हैं, उनका अर्थ और प्रयोजन ग्रन्थ में अवश्यमेव देखना चाहिये । सूत्रों को देखते देखते इतना अभ्यास हो जायेगा कि व्याख्यान नमाप्त होते होते व्याकरण की भारी समस्या ममम में जायेगी । भगवान् पाणिनि का अष्टाध्यायी वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर निर्मित है । तथा इन्हीं सूत्रों के द्वारा समस्त संस्कृत वाङ्मय के शब्दों को सिद्ध किया गया है । सूत्रों में लोग भय खाते हैं लेकिन यह भय की बात नहीं । यदि १०० सूत्रों का अर्थ भा ममम में आ जाय तो अष्टाध्यायी पढ़ने में नैमगिक मुश्किल की प्राप्ति होती है । अष्टाध्यायी पढ़ना घेद पढ़ना है क्योंकि ६ अङ्गों में यह एक प्रधान अङ्ग है । महाभाष्यकार कहते हैं “पडङ्गेषु प्रधान व्याकरणम्” व्याकरण जिह्वा है । बिना जिह्वा का मानस मूत्र होता है । सूत्रात्मक पद्धति से यदि हाई स्कूलों, कालेजों में भी संस्कृत व्याकरण का शिक्षण हो तो सारी कठिनाइया दूर हो जायेंगी ।

इन व्याख्यानो के लिखने का हमारा प्रयोजन है कि सभी लोग इस ग्रन्थ में लाभ उठायें । नाधारण हिन्दी पढ़ा लिखा व्यक्ति भी इस ग्रन्थ में संस्कृत का व्यावहारिक पूर्ण बोध प्राप्त कर सकें ।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

प्रतीकों का स्पष्टीकरण

प० वि० पदच्छेदः विभक्तिः

म० समासः

अर्थ०—अर्थः

उदा०—उदाहरणम्

सि०—सिद्धिः

अ०—अव्ययपदम्

१।१—प्रथमायाः एकत्रचनम्

प०तत्पु०—पृष्ठी तत्पुरुषः

* * व्याख्याकारस्य व्याख्या

ममा०द्वन्द्वः—समरहारो द्वन्द्वः

बहु०—बहुव्रीहिः

कर्म०—कर्मधारयः

न०तत्पु०—नञ् तत्पुरुषः

इतरे०द्वन्द्वः—इतरेतरो द्वन्द्वः

[] —अनुवृत्तिनिर्देशः

× × —वातिरुनिर्देशः

अविभ०—अविभक्तिरुो निर्देशः



प्रवक्तुं पितृचरणा •
श्रीसन्तमणिरामदासमहोदयाः
[श्रीमहेन्द्रप्रसादा]

अष्टाध्यायी-प्रकाशिका

प्रथमोऽध्यायः

अथ शब्दानुशासनम्

५० वि०—अथ अ० । शब्दानुशासनम् ? । १ । स०—शब्दानाम् अनुशासनम् इति शब्दानुशासनम् (५० तत्पु०) ।

अर्थ—शब्दानुशासनं नाम शास्त्रम् अधिष्ठतं वेदितव्यम् । (शब्दानुशासनं नामकं शास्त्रं वा अधिकारं क्रिया जाता है)

❀ केषां शब्दानामनुशासनम् ? लौकिकानां वैदिकानां च । लोके प्रयुक्ताः शब्दाः लौकिकाः, वेदे प्रयुक्ताः शब्दा वैदिकाः । कथमनुशासनम् ? प्रकृतिप्रत्ययविभागकल्पनया उत्सर्गपवादेन सूत्रेण च ❀

(किन् शब्दो वा अनुशासनं करोति—लौकिकं तथा वैदिकं शब्दो वा । लोकं अर्थात् सप्तारं में प्रयुक्त होनेवाले शब्दों को लौकिकं तथा वेदो में प्रयुक्त होनेवाले शब्दों को वैदिकं कहते हैं । शब्दो वा अनुशासनं किस प्रकार से करना चाहिये—प्रकृति और प्रत्यय के विभाग की कल्पना से, एक उत्सर्ग और अपवाद सूत्रों के द्वारा) ।

अइउर्ण् । ऋलृक् । एओङ् । ऐऔच् । ह्यवरट् । लण् ।
अमहणानम् । भ्रभम् । घढधप् । जवगडदश् । खफछठथचट-
तव् । कपय् । शपसर् । हल् । इति प्रत्याहारसूत्राणि ॥

सज्ञापरिभाषाप्रकरणम्

वृद्धिरादैच् १।१।१

५० वि०—वृद्धिः १।१ आदैच् १।१। स०—आच्च ऐच्च अनयोः समाहार इति आदैच् (समा० द्वन्द्वः)

अर्थ—आ ऐ औ इत्येतेषां वर्णानां वृद्धिः संज्ञा भवति । (आ ऐ औ इन वर्णों की वृद्धि संज्ञा होती है)

उदा०—आ- शालीय, मालीय । ऐ—ऐतिकायन । औ—औपगवः ।

सि०—शालायां भव इति शालीय । मालायां भव इति मालीय । शाला छ^१ । शाला ईय^२ अ । शाल्^३ ईय । शालीय सु^४ । शालीय स्^५ । शालीय स्^६ । शालीय रु^७ । शालीयर्^८ । शालीय^९ । इतिकस्य गोत्रापत्यम् इति ऐतिकायन । इतिक फक्^{१०} । इतिक फ । इतिक आयन् अ । इतिक आयन । ऐतिकायन^{११} । ऐतिकायन सु । ऐतिकायन रु । ऐतिकायनर् । ऐतिकायन । औपगव । उपगोरपत्यम् इति विप्रह । उपगु । उपगु अर्^{१२} । उपगु अ^{१३} । औपगु^{१४} अ । औपगो^{१५} अ । औपगव^{१६} अ । औपगव सु । औपगव स् । औपगवरु । औपगवर । औपगव ॥

१—अथवदघातुरप्रत्यय प्रातिपदिकम् (१ २ ४५) इयाप्रातिपदिकात् (४ १ १) तद्धिता (४ १ ७६) समर्थाना प्रथमाद् वा (४ १ ८२) तत्र भव (४ ३ ५३) वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम् (१ १ ७२) वृद्धिरादैच् (१ १ १) वृद्धाच्छ (४ २ ११४) प्रत्यय (३ १ १) परश्च (३ १ २) । ७—यस्मात्प्रत्ययविधित्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् (१. ४ १३) अङ्गस्य (६ ४ १) आयनेयीनीयियः फदखल्लथा प्रत्ययादीनाम् (७ १ १) यथासख्यमनुदेश समानाम् (१ ३ १०) । ३—यच्च भम् (१ ४. १८) यस्मात्प्रत्यय० (१-४-१३) अङ्गस्य (६ ४. १) भस्य (६ ४ १२६) यस्येति च (६ ४. १४८) । ४—कृतद्धितसमासाश्च (१ २ ४६) इयाप्रातिपदिकात् (४ १ १) स्वीजसमोद्दृष्टाम्याम्भिसङ्गम्याभ्यसृष्टसिम्याभ्यसृष्टसोसाम्द्योस्सुप् (४ १ २) सुप (१ ४ १०३) विभक्तिश्च (१ ४ १०४) द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने (१ ४ २२) इति एकत्वे विवक्षिते नु प्रत्यय (३. १ १) परश्च (३ १ २) । ५—उपदेशेऽजनुनासिक इत् (१ ३ २) तस्य लोपः (१ ३. ८) अदशन लोप (१ १ ५९) । ६—सुप्तिङन्त पदम् (१ ४ १४) । ७—पदस्य (८. १ १६) ससञ्जयो रुः (८. २ ६६) । ८—उपदेशेऽजनुनासिक इत् (१ ३ २) तस्य लोप (१ ३ ८) । ९—पर सन्निकर्षं सहिता (१ ४. १०६) । सहितायाम् (८ २. १०८) खरवसानयोर्विसर्जनीयः (८ २ १५) । १०—तस्यापत्यम् (४ १ ९२) नडादिभ्य फक् (४ १ ६६) । ११—किति च (७ २ ११८) १२—प्राग्दीव्यतोऽण (४ १ ८३) तस्यपत्यम् (४ १. ९२) । १३—हलन्त्यम् (१ ३ ३) १४—यस्मात्प्रत्यय० (१ ४ १३) अङ्गस्य (६. ४ १) तद्धितेष्वचामादेः (७ २ ११७) वृद्धिरादैच् (१ १ १) स्थानेऽन्तरतमः (१ १ ४९) । १५—यच्च भम् (१. ४. ८), यस्मात्प्रत्यय० (१ ४. १३) अङ्गस्य (६. ४. १) भस्य (६ ४. १२६) ओष्ठुण (६. ४- १४६) अदेशुणः (१ १. २) स्थानेऽन्तरतम (१ १ ४९) १६—पर सन्निकर्षः सहिता (१ ४ १०९) सहितायाम् (६. १. ७२) एचोऽपवायाव (६ १ ७८) यथासख्यमनुदेश समानाम् (१. ३ १ १०) ।

अदेङ्गुण १।१।२

प० वि०—अदेङ् १।१ गुण १।१। स०—अच गङ् च अनयो
ममाहार इति अदेङ् (समा० द्वन्द्व) ।

अर्थ—अ ग ओ इत्येतेषा वर्णानां गुणसंज्ञा भवति । (अ ए आ
इन वर्णों की गुण संज्ञा हानी है)

ऽऽ०—अ—तरिता । ग—चेता । ओ—भोता । पचन्ति ।
जयन्ति । अह पचे ।

सि०—न प्लवनसतरणयो । तृत्त्^१ । तृत्त्^२ । नृत्त्^३ वृ ।
तृत्त्^४ । तृत्त्^५ इत्त्^६ । तृत्त्^७ इत्त्^८ । तरित्त्^९ । तरित्त्^{१०} मु^{११} । तरित्त्^{१२}
अनत्त्^{१३} मु । तरित्त्^{१४} न्म् । तरित्त्^{१५} न्म् । तरित्त्^{१६} न्म् । तरित्त्^{१७} न्म् । तरित्त्^{१८} न्म् ।
चित्त्^{१९} चयने । चित्त्^{२०} चित्त्^{२१} । चित्त्^{२२} चित्त्^{२३} । चेतत्त्^{२४} । चेतत्त्^{२५} मु ।
चेत्त्^{२६} अनत्त्^{२७} मु । चेतत्त्^{२८} मु । चेतत्त्^{२९} न्म् । चेतत्त्^{३०} न्म् । चेतत्त्^{३१} न्म् । चेतत्त्^{३२} न्म् ।

१—भूवादया घातव (१ ३ १) घाता (३ १ ६१) इदत्त् (३ १ ९३),
वत्तरित्त् (३ ४ ६७) षुत्त् (३ १ १३३) प्रत्यय (३ १ १) परस्व
(३ १ २) । २—हनन्त्यम् (१ ३ ३) तस्य लोप (१ ३ ८) अदर्शन लोप
(१ १ ५६) ३—आर्धघातुक क्षय (३ ४ ११४) यस्मात्प्रययविधिस्तदादि
प्रत्ययेऽङ्गम् (१ ४ १३) अङ्गस्य (६ ४ १) आर्धघातुकस्य इ वनादे (७ २
३५) आघतो टक्त्वो (१ १ ४५) ४—मावघातुकार्धघातुकयो (७ ३ ८४)
इवा गुणवृद्धी (१ १ ३) अदेङ्गुण (१ १. २) स्थानन्तरतमः (१ १ ४९)
५—उरग्न रपर. (१ १ ५०) ६—वृत्तद्वित० (१ २ ४६)
इयाप्रातिपत्तिवत् (४. १. १) स्वीजनमौ (४. १. २)
मुप (१. ४. १०३) विभक्तिदत्त (१. ४. १०४) द्वेषकयोद्विचर्नैकवचने
(१. ४. २२) एकत्वे विवक्षित मु, प्रत्यय (३. १. १) ७—अनङ् सो (७. १.
६३) ऋदुगनस्फुटसोऽनेहसा च (७. १. ६४) डिच्च (१ १. ५२) ८—
मुहनपु सवस्य (१. १ ४२) सवनामस्याने चासम्बुद्धी (६. ४. ८) ९—
हृत्स्वाम्यो दीर्घात्पुतिस्फुटन हृत् (६. १. ६८) अदर्शन लोपः (१. १. ५६)
१०—मुक्तिद्वर्त पदम् (१. ४ १४) नलोप प्रातिपदिकान्तस्य (८. २ ७) ११—
आर्धघातुक क्षय (३. ४. ११४), सावघातुकार्धघातुकयो (७. ३. ८४), इवो
गुणवृद्धी (१. १. ३) अदेङ्गुण (१. १. २) स्थानन्तरतम (१. १. ४६)

स्तुतौ । ष्टु^१ । स्तु^२ । स्तु वृच् । स्तु वृ । स्तो^३ वृ । स्तोवृ सु ।
 स्तोत् अनङ् सु । स्तोतन् सु । स्तोतान् सु । स्तोतान् । स्तोता । डुपचप्
 पाके । डुपचप् । डुपच^४ । डुपच्^५ । पच्^६ । पच् लट्^७ । पच्
 ल । पच् ल^८ । पच् फि^९ । पच् शप्^{१०} फि । पच् श^{११} फि । पच्
 अ फि । पच् अ अन्त^{१२} इ । पच् अन्ति । पचन्ति^{१३} । जि जये । जि ।
 जि फि । जि शप् फि । जि श फि । जि अ फि । जि अ अन्ति । जे^{१४}
 अ अन्ति । जय् अ अन्ति । जय अन्ति । जयन्ति^{१५} । डुपचप् । डुपच ।
 पच् । पच् लट् । पच् इट् । पच् शप् इ । पच् अ इ । पच् अ ए^{१६} ।
 पच् ए^{१७} । पचे ।

१—भूवादयो घातव (१ ३ १) हलन्त्यम् (१ ३ ३) तस्य लोप^१
 (१. ३. ६) २—घात्वादे पः स (६ १ ६४) ३—आर्धधातुक शप
 (३ ४ ११४) सार्वधातुकार्धधातुकयो (७. ३ ८४) इको गुणवृद्धौ (१ १ ३)
 स्थानेऽन्तरतम (१ १ ४६) ४—हलन्त्यम् (१ ३ ३) तस्य लोप (१ ३
 ६) अदर्शन लोप (१ १ ५६) ५—उपदेशेऽजनुनासिक इत् (१. ३ २)
 तस्य लोप (१ ३ ८) अदर्शन लोप (१ १ ५६) । ६—आदिङितुडव (१
 ३ ५) तस्य लोप (१ ३. ९) अदर्शन लोप (१. १ ५६) ७—भूवादयो
 घातव (१ ३. १) घातो (३ १ ६१) वतमान लट् (३ २. १२३) प्रत्यय-
 ३ १ १) परश्च (३ १ २) हलन्त्यम् (१ ३. ३) तस्य लोप (१ ३ ९)
 अदर्शन लोप (१ १. ५६) ८—उपदेशेऽजनुनासिक इत् (१ ३. २) तस्य
 लोप (१ ३. ६) अदर्शन लोप (१ १. ५६) ९—तस्य (३ ४. ७७)
 तिप्त्सुभिसिपथस्थमित्त्वस्मस्ताताभ्यासायांभ्वमिड्वहिमहिड् (३ ४ ७८)
 ल परस्मैपदम् (१ ४ ६६) तडानावात्मनेपदम् (१ ४ १००) अनुदात्तङित
 आत्मनेपदम् (१ ३ १२) स्वरितङित कर्त्तृभिप्राये क्रियाफले (१ ३ ७२)
 शेषात्वर्त्तरि परस्मैपदम् (१. ३ ७८) तिङ्श्रीणिश्रीणि प्रथममध्यमोत्तमा
 (१ ४ १०१) तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकश (१ ४ १०२) युष्मद्युपपदे
 समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः (१. ४ १०५) अस्मद्युत्तम (१. ४ १०७)
 शेष प्रथम (१ ४ १०८) बहुषु बहुवचनम् (१ ४ २१) इति बहुत्वे विवधि-
 ते फि १०—तिङ्शित्त्यार्धधातुकम् (३ ४. ११३) [सार्वधातुके] यक् (३ १-
 ६७) कर्त्तरि णप् (३ १ ६८) ११—लशक्वतद्धिते (१. ३. ८) तस्य लोप
 (१ ३. ९) १२—भोऽत् (७ १ ३) । १३—अदेङ्गुण (१. १. २) अतो
 दुष्टे (६. १. ६७) । १४—टित् आत्मनेपदाना टेरे (३ ४. ७६) ।

लूल् । लू तिप् । लू च्चि तिप् । लू सिच् तिप् । लू सि तिप् । लू स् तिप् ।
 लू स् ति । लू इट् स् ति । लो इ स् ति । लाव् इ स् ति । लाव् इ
 स् त् । लाव् इ स् ईट् त् । लाव् इ स् ई त् । लाव् इ ई त् । लाव् ई^३
 त् । लावीत् । अट् लावीत् । अलावीत् । पूञ् । अपावीत् ॥

न धातुलोप आर्धधातुके १।१।४

प० वि०—न अ० । धातुलोपे ५१ । आर्धधातुके ७ । १ निमित्त-
 सप्तमी । स०—धातोरवयवः धात्ववयवः (प० तत्पु०) । धात्ववयवस्य
 लोपः धातुलोपः (उत्तरपदलोपी समासः) तस्मिन् ।

अर्थ—[इको गुणवृद्धी] आर्धधातुकनिमित्ते धात्ववयवस्य लोपे इकः
 स्थाने ये गुणवृद्धी प्राप्नुतस्ते न भवतः । (आर्धधातुक को निमित्त कारण
 मानकर इक् के स्थान में जो गुण और वृद्धि प्राप्त होती है वे नहीं होती) ।

उदा०—लोलुवः । पोपुवः । मरीमृजः ।

सि०—लूञ् । लू यङ् । लू य । लू लू^३ य । लो^६ लू य । लोलूय ।
 लोलूय अच्* । लोलूय अ । लोलू^८ अ । लोलू^९ अ । लोलू उयङ्* अ ।
 लोलुवङ् अ । लोलुव अ । लोलुव् अ । लोलुव सु । लोलुव स् । लोलुव
 रु । लोलुव र् । लोलुवः । पूञ्-पोपुवः । मृजूप शुद्धौ । मृज् - मृज् । मृज्

लृङ्क्ष्वट्टुदात्तः (६. ४. ७१) ।

१—आर्धधातुकस्येड्वलादे (७. २. ३५), आद्यन्तो टङितौ (१. १. ४५)
 २—इट ईटि (८. २. २८) ३—अक सवरणौ दीर्घं (६. १. १०१) पूर्वत्रा-
 सिद्धम् (८. २. १), सिज्लोप एवादेशे सिद्धो वक्तव्य (८. २. ३ व.) तुल्यास्य-
 प्रयत्न सवरणम् १. १. ६) ४—धातुरेकाचो० (३. १. २२) प्रत्यय (३. १.
 १), परश्च (३. १. २) ५—एकाचो द्वे प्रथमस्य (६. १. १) सन्पडो
 (६. १. ६) ६—पूर्वोऽभ्यासः (६. १. ४) अत्र लोपोऽभ्यासस्य (७. ४. ५८)
 गुणो यङ्लुको (७. ४. ८२) इको गुणवृद्धी (१. १. ३) स्थानेऽन्तरत्तम् (१.
 १. ४६) ७—सनाद्यन्ता धातवः (३. १. ३२) धातो (३. १. ६१), कृदतिङ्
 ३. १. ६३) कर्त्तरि कृत् (३. ४. ६७), अज्विधिः सर्वधातुभ्यः (३. १. १३४.
 वा०) प्रत्यय (३. १. १), परश्च (३. १. २) ८—यङोऽचि च (२. ४. ७४),
 प्रत्ययस्य लुक्श्लुपः (१. १. ६०) ९—आर्धधातुक शेषः (३. ४. ११४) साव-
 धातुवार्धधातुकयोः (७. ३. ८४), न धातुलोप आर्धधातुके (१. १. ४) १०—
 अचि णुधातुभ्रुवा य्वोरियङ्वट्टौ (६. ४. ७७) डिच्च (१. १. ५२)

यङ् । मृज् य । मृज् मृज् य । मृ^१ मृज् य । म^२ मृज् य । मर^३
मृज् य । म^४ मृज् य । मरीक्^५ मृज् य । मरीमृज् य अच् । मरी-
मृज् अच् । मरीमृज्^६ अ । मरीमृज् अ । मरीमृज । मरीमृज सु ।
मरीमृज स् । मरीमृज रू । मरीमृज र् । मरीमृज ॥

क्वडति च १।१।५

प० वि०—क्वडति ७ । १ निमित्तसप्तमी । च अ० । स०—गरश्च
करश्च डरश्च इति क्वड् ॥ इच्च इच्च इच्च इति इत् । क्वड् इतो यस्येति
क्विडत् तस्मिन् क्वडति ।

अर्थ—[न इमो गुणवृद्धी] क्वडन्निमित्तो ये गुणवृद्धो प्राप्नुतस्ते
न भवत । (गित् कित् घोर डित् को निमित्त कारण मानकर इक् के स्थान
में जा गुण वृद्धि प्राप्त होती है वे नहीं होती) ।

उदा०—गित् - जिप्पु, भूप्पु । कित् - चित्, चितवान् ।
डित् - चिनुत्, चिन्वन्ति ।

सि०—ग्लानिस्थश्च क्स्नु (३. २. १३६) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ॥ चित्
निष्ठेति (३. २. १००) सूत्रे, चिनुत् सार्वधातुसमपित (१. २. ४)
इति सूत्रे चैषां साधन द्रष्टव्यम् ।

हलोऽनन्तराः सयोगः १।१।७

प० वि०—हल १।३ अनन्तरा १।३ सयोग १।१ । स०—हल् च
हल् च इति हलो । हल च हल् च हल् चेति हल । हलो च
हलश्चेति हल ॥ अविद्यमानम् अन्तरम् एषां ते अनन्तरा. (बहु०) ।

अर्थ—अविद्यमानम् अन्तरमेषां ते हल सयोगसज्ञा भवन्ति ।
(जिसका बीच में [अच् का] व्यवधान नहीं हाता ऐम हला की सयोग सज्ञा
होती है) ।

ऋत्रेदं घोष्यम्—हल इत्यत्र बहुवचनं, तेन यदूना हल सयोगसज्ञा

१—पूर्वोऽभ्यास. (६. १. ४) अत्र सारोभ्यासस्य (७. ४. ५८) हनादि गण (७.
४. ६०) २—उत्त (७. ४. ६६) ३—उरण् एपर (१. १. ५०) ४—हनादि
शेषः (७. ४. ६०) ५—पूर्वोऽभ्यास (६. १. ४) अत्र सारोभ्यासस्य (७. ४.
५८) रीगृदुपस्य ष (७. ४. ६०) घाघन्तो टडितो (१. १. ४५) ६—मूर्ते-
वृद्धि (७. २. ११४) न घानुवाप घापघानुव (१. १. ४) ।

सिद्धा मयति, द्वयोर्न सिध्यति । अत एव फारणात् पूर्वं द्वयोर्हलोः
एकरोपकर्त्तव्यः । पुनश्च बहूनां हलासिकशेषः कर्त्तव्यः । एवं कृते
सति हलो हलः इत्येतयोरपि एकशेषः । तथा सति द्वयोर्हलोर्वा बहूनां
हलां वा संयोगसंज्ञा सिध्यति । ॐ

उदा०—अग्निः इति गनौ । इन्द्रः इति नदराः ॥

मुखनासिकावचनोऽनुनासिक १।१।८

प० वि०—मुखनासिकावचनः १।१ अनुनासिकः १।१ । स०—मुखं
च नासिका चेति मुखनासिकम् । ईपद् वचनम् आवचनम् । मुख-
नासिकम् आवचनं यस्य वर्णस्य स मुखनासिकावचनः (बहु०) ।

अर्थ—मुखनासिकम् आवचनं यस्य वर्णस्य सोऽनुनासिकसंज्ञो
भवति । (कुछ मुख और कुछ नासिका से जिस वर्ण का उच्चारण किया
जाता है उसकी अनुनासिकसंज्ञा होती है) ।

उदा०—सुँ । एधँ । स्पद्धँ । गाधँ ॥ इ् ब् ण् न् म् य् ल् व् ।

तुल्यास्यप्रयत्न सवर्णम् १।१।९

प० वि०—तुल्यास्यप्रयत्नम् १।१ सवर्णम् १।१ । स०—तुल्यः आस्ये
प्रयत्नः येषां वर्णानां तत् तुल्यास्यप्रयत्नम् (त्रिपदबहु०) ।

अर्थ—तुल्यः आस्ये प्रयत्नो येषां वर्णानां ते सवर्णसंज्ञाः भवन्ति ।
(मुखमें होने वाले समान हैं स्यात और प्रयत्न जिन वर्णों के, उनकी
सवर्णसंज्ञा होती है) ।

उदा०—दण्डाग्रम् । भानूदयः । गिरीशः ।

सि०—दण्ड+अग्रम् । भानु+उदयः गिरि+ईशः ।

नाज्झलौ १।१।१०

प० वि०—न । अ० । अज्झलौ १।१ स०—अञ्च हल् चेति अज्झलौ ।

अर्थ—[सवर्णम्] अच् हल् इत्येतौ परस्पर सवर्णसंज्ञौ न भवतः ।
(अच् और हल् की परस्पर सवर्णसंज्ञा नहीं होती है)

उदा०—दण्ड हस्तः । दधि शीतम् ॐ इत्यत्र सवर्णदीर्घत्वं न भवति ॐ

१—परः सन्निकर्षः सहिता (१. ४. १०६), सहितायाम् (६. १. ७२)
एकः पूर्वेपरयोः (६. १. ८४), अकः सवर्णो दीर्घः (६. १. १०१) तुल्यास्य-
प्रयत्न सवर्णम् (१. १. ९)

ईदूदेद्द्विवचन प्रगृह्यम् १।१।११।

प० वि०—ईदूदेत् १ । १ द्विवचनम् १।१ प्रगृह्यम् १।१ ॥ स०—ईश् उच्च एच्चेति ईदूदेत् (समा० द्वन्द्वः)

अर्थ—ईदन्तम् उदन्तम् एदन्तं च यद् द्विवचनं तद् प्रगृह्यमंज्ञं भवति । (ईकारान्त, उकारान्त और एकारान्त जो द्विवचन उमकी प्रगृह्यसज्ञा होती है)

उदा०—अग्नी इति । वायू इति । माले इति । पचेते इति ।

सि०—अग्नी^१ इति । वायू इति ॥

अदसो मात् १।१।१२

प० वि०—अदसः ६।१ मान् ५।१ ।

अर्थ—[ईदूदेत्, प्रगृह्यम्] अदसः सम्बन्धी यो मकारस्तस्माद् ईदूदेतः प्रगृह्यसंज्ञा भवन्ति (अदम् सम्बन्धी जो मकार उमने पश्चात् ईकार, उकार और एकार की प्रगृह्यसज्ञा होती है)

उदा०—अमी अत्र । अमी आसते । अमू अत्र । अमू आसते ।
ऋणकारस्योदाहरणं नास्ति ॥

निपात एकाजनाड् १।१।१४

प० वि०—निपातः १।१ एकाच् १।१ अनाड् १।१ । स०—एकरचासौ अद्य इति एकाच् (कर्म० तत्पु०) । न आड् इति अनाड् (न० तत्पु०)

अर्थ—[प्रगृह्यम्] आड्वर्जित एकाच् यो निपातः सः प्रगृह्यसंज्ञो भवति । (आड् को छोड़कर जो एकाच् निपात उमकी प्रगृह्यसंज्ञा होती है)

उदा०—अ अपेहि । उ इन्द्रं पश्य । उ उत्तिष्ठ ।

ओत् १।१।१५

प० वि०—ओन् १।१ ।

अर्थ—[प्रगृह्यम् निपातः] ओदन्तो यो निपातः सः प्रगृह्यसंज्ञो भवति । (ओकारान्त निपात की प्रगृह्य संज्ञा होती है)

उदा०—आहो इति । उताहो इति ।

सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनापे १।१।१६

प० वि०—सम्बुद्धौ ७।१ शाकल्यस्य ६।१ इती ७।१ अनापे ७।१
स०—न अपार्यः अनापः (न० तत्पु०) तग्मिन् ।

अर्थ—[ओत्] सम्बुद्धौ य ओकारान्त स शाकल्याचार्यस्य मतेन प्रगृह्यसङ्गो भवति, अवैदिके इतिशब्दे परत ।

(सम्बुद्धि म जो ओकारात् उसकी शाकल्याचार्य के मत से प्रगृह्य सङ्गा होत। है अवैदिक इति शब्द के परे रहत पर) ।

उदा०—वायो इति (ऋक्पद० १।२।१) अध्वर्यो इति (ऋ० ३।५।३) ।

सि०—वायु सु । वायो^१ सु । वायो स । वायो^२ । वायो^३ इति ।

ॐ अत्रेद बोध्यम्—सर्वेऽपि पाणिनीया वैयाकरणा शाकल्यग्रहण विकल्पार्थं मत्वा पक्षे 'वायविति' इत्यादिषु प्रगृह्याभावेऽनादेशमुदाहरन्ति । तदसत् यतो हि सहितापाठस्य पदपाठे क्रियमाणे यत्र पदकारा विशेषानभिप्रायान् द्योतयितु वैदिकपदात् परमितिकरण कुर्वन्ति तदेवेति करणमनार्पपदेन द्व्यपदिश्यते, न तु लौकिकवाक्यस्थम् । इदमेव चानार्पमितिकरण प्रातिशाख्येषु 'उपस्थितपदेन स्मर्यते' (द्र० ऋक्प्राति० १०।१२॥ शु० य० प्रा० ४।६०), भगवता पाणिनिनाऽपि 'अप्लुतवदुपस्थिते' (६।१।१२६) इत्यत्र प्रयुज्यते । न च केचनापि पदकारा ओकारान्तसबुद्धे परमितिपद प्रयुज्यावादेश (वायविति-इत्येव रूपम्) विदधति, तस्मात् 'वायविति' इत्येवमादीनि लक्षणैकचक्षुष्कैर्निर्दिष्टानि लक्ष्यविरुद्धानि उदाहरणानि चिन्त्यानि । वस्तुतस्तु शाकल्यग्रहणमत्र पूजार्थम्, न विकल्पार्थम् । शाकल्येन स्वीयर्कपदपाठे ओकारान्तसबुद्धे परमितिकरण प्रयुज्य पदस्वरूपप्रदर्शनाय प्रकृतिभाव उक्त, तदनु अन्यैरपि पदकारैः स नियम स्वीकृत । भगवान् पाणिनिरपि तमेव पदपाठनियमं बोधयितु सूत्रमिदं प्रोक्तवान् ।

एवमेव चोत्तरसूत्रेऽपि 'उव उँ' इत्येक योग विभज्य अनार्प इति परे 'उ इति, विति, उँ इति' इत्येव त्रीण्युदाहरणानि प्रदर्शयन्ति । तत्रापि उ इति 'विति' इति उदाहरणद्वय पूर्वोक्तेनैव हेतुना चिन्त्यम् । वेदे 'उ' इति पदं बह्वर्थक श्रूयते । तत्रार्थभेदपरिज्ञानाय वैयाकरणैर्द्वौ निपातौ स्वीकृतौ—उ इति उञ् इति च । तत्र पदकारेण शाकल्येन उच्चार्यकोऽयमुकारो न निरनुबन्धकार्य इ यस्य परिज्ञानाय पदपाठे उच्चार्यकस्य उकारस्य स्थाने 'उँ' आदेश विधाय इतिकरण प्रयुक्तम् (अन्यैरपि पदकारैरय नियम स्वीकृत) । तेन उँ इति' इत्येवोदाहरण युक्तम् ।

१ ह्रस्वस्य गुण (७ ३ १०८) २ एह्रस्वात्सम्बुद्ध (६ १. ६९)

३ प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् (६ १ १२४)

(निरनुबन्धकरच पूर्वपदेन मंयुञ्ज प्रदर्शित । यथा—अथो उति—ऋत्पद०
१ । ८२ । ६) यतो हि नहि क्वचिदपि पदपाठे 'उ इति' 'विति' च प्रयोग
उपलभ्यते । इति युधिष्ठिरमीमांसकानां मतं, तद् युक्तियुक्तम् । ❀

(यहा यह ज्ञातव्य है—सभी अष्टाध्यायी परम्परा के व्याकरण के विद्वान् शाकल्य का ग्रहण विकल्प के लिये मानकर पाणिनि के मत में प्रगृह्य सजा के अभाव में 'वायविति' आदि में अवादेश का उदाहरण देते हैं । जो ठीक नहीं क्योंकि वेदों के संहितापाठ का पदपाठ करते समय पदकार लोग जहा विशेष अभिप्रायो को प्रकट करने के लिये वैदिक पद के पश्चात् इति शब्द का प्रयोग करते हैं, उमी इति शब्द को यहा पर अनापं पद से कहा गया है, लौकिक इति शब्द का यहाँ पर अनापं शब्द में ग्रहण नहीं होता है । इसी पदपाठ मन्वी अनापं इति शब्द का प्रातिशाख्यो में 'उपस्थित' पद से कथन किया गया है । भगवान् पाणिनि ने भी अप्नुतवदुपस्थिते (६. १. १२६) सूत्र में उपस्थित पद का प्रयोग किया है । कोई भी पदकार ओकारान्त सन्बुद्धि के पश्चात् इति शब्द का प्रयोग करके 'वायविति' इस प्रकार का रूप नहीं लिखते ।

इस कारण 'वायविति' इत्यादि लक्ष्य के विरुद्ध उदाहरण ठीक नहीं हैं । वास्तव में शाकल्य का ग्रहण पूजा के लिये है, विकल्प के लिये नहीं । शाकल्य ने ऋग्वेद का पदपाठ करते समय आकारान्त सन्बुद्धि के पश्चात् इति शब्द का प्रयोग करके पद के स्वरूप को दिखलाने के लिए प्रकृतिभाव का नियम बनाया । उसके पश्चात् दूसरे सभी पदकारों ने उमी नियम को स्वीकृत कर लिया । पाणिनि भगवान् ने भी उसी पदपाठ के नियम का बाध कराने के लिये इस सूत्र का निर्माण किया ।

इसी प्रकार म 'उज् ऊँ' इस एक सूत्र का भी विभाग करके 'उ इति, विति, ऊँ इति' इस प्रकार स तीन रूपों का व्याकरण लागू मिद्ध करते हैं । यहाँ पर 'उ इति' और 'विति' ये दोनों रूप भी पूर्वोक्त कारणों से ठीक नहीं हैं । वेद में 'उ' यह पद बहुवचन दक्षा जाता है । ब्रह्म अर्थ के भेद के लिये व्याकरणशास्त्र के ज्ञाता लोग 'उ' और 'उज्' ये दो निपात स्वीकार करते हैं । पदकार शाकल्याचार्य ने वेद का यह उकार उज् निपात के अर्थ में लिया है केवल 'उ' के अर्थ में नहीं, इस भेद का ज्ञान कराने के लिये उज् अर्थ वाले उ के स्थान में 'ऊँ' आदेश का विधान और उससे परे 'इति' शब्द का निर्देश किया है । यह शाकल्य का नियम अन्य पदकारों ने भी स्वीकार कर लिया है । इस

कारण यहा भी केवल 'ऊँ इति' यही उदाहरण ठीक है 'उ इति, विति' में उदाहरण पदपाठ में कही नहीं मिलते, अतः अगुद है ।)

उञ् ऊँ १।१।१७

प० वि०—उञ् ६।१ ऊँ अ० ।

अर्थ—[प्रगृह्यम् शाकल्यस्येतावनापे] उञ् स्थाने ऊँ इत्ययमादेशो भवति प्रगृह्यसन्नकश्च शाकल्यस्याचार्यस्य मतेन अनापे इतिशब्दे परत । (उञ् के स्थान में ऊँ यह आदेश होता है और उसकी प्रगृह्यसज्ञा भी होती है, शाकल्याचार्य के मत से अनाप इति शब्द के परे रहने पर) ।

उदा०—ऊँ इति ॥ ॐ अत्र यद्वत्तव्यं तत्र पूर्वसूत्रं सत्तम् ॥ॐ

दाधा घ्वदाप् १।१।१६

प० वि०—दाधा १।३ घु १।१ (सुपा सुलुक् इति सोलुक्) अदाप् १।१।स०—दाश्च दाश्च दाश्च दाश्च इति दा । धाश्च धाश्च इति धौ । दाश्च वौ चेति दाधा (इतरे० द्वन्द्व) । दाप् च दैप् (दाप्) च इति दाप् । न दाप् इति अदाप् (नञ्० तत्पु०) ।

अर्थ—डुदाञ् डाने, दाण् डाने, दो अग्रखण्डने, देङ् रक्षणे इति दारुपाश्चत्वारो धातवः । डुधान् धारणपोषणयो, धेट् पाने इति धारूपौ द्वौ धातू । दाप् लवने, दैप शोधने, इति दापरूपौ द्वौ धातू ॥

दारुपाश्चत्वारो धातवो धारूपौ च द्वौ दाव्दैपौ वर्जयित्वा घुसज्ञका भवन्ति ।

(दा रूप चार धातु और धारूप दो धातु इनकी घुसज्ञा होती है दाप् और दैप को छोड़कर)

उदा०—प्रणिददाति, प्रणिदाता, प्रणिद्यति, प्रणिद्यते । प्रणिदधाति, प्रणिधयति वत्सो मातरम् ॥

सि०—डुदाञ्^१ । डुदा । दा । दा लट् । दा ल । ण ल् । दा तिप् । दा ति । दा शप् ति । दा^२ ति । दा ण^३ ति । दा^४ दा ति । ददाति । प्र नि ददाति । प्रणिददाति^५ । दाण् ॥ दा वृच् । दा वृ । दावृ सु । दात् अनङ् सु । दातनङ् सु । दातन सु । दानच् सु । दातन् स् । दातान् स् । दातान् । दाता । दातारी । दातार । दातारम् । दातारी । दातन् । प्र नि

१. प्रादिजिडुडव (१. ३ ५) तस्य लोप (१ ३. ६) अदर्शन लोप. (१ १. ५६) २. जुहोत्यादिभ्य इव (२ ४ ७५) अदर्शन लोप (१. १. ५६) ३. द्लो (६ १ १०) ४. पूर्वोऽभ्यास (६ १ ४) अत्र लोपोऽभ्यासस्य (७.

दाता । प्रणिदाता ॥ दो । दो लट् । दो ल । दो ल् । दो तिप् । दो ति ।
 दो शप् ति । दो श्यन्^३ ति । दो श्य ति । दो य ति । द्^२ य ति । द्यति ।
 प्र नि द्यति । प्रणिद्यति । ❀ अशिद्द्विपये दासुपोऽयं भवतीत्यत्र घुमंजा
 प्रवर्तते एव ❀ ॥ देङ् । दे । दे लट् । दे ल । दे ल् । दे त । दे शप् त ।
 दे श न । दे अ त । द्य अ त । द्यत । द्यते । प्र नि द्यते । प्रणि-
 द्यने । डुधाञ् । डुगा । धा लट् । धा ल । धा ल् । धा
 तिप् । धा धा ति । घ धा ति । द्^३ धा ति । प्रनि दधाति । प्रणिदधाति ॥
 घेट् । घे । घे लट् । घे ल । घे ल् । घे तिप् । घे शप् ति । घे श ति ।
 घे अ ति । ध्य् अ ति । ध्यति । प्र नि ध्यति । प्रणिध्यति ॥

आद्यन्तवदेकस्मिन् १।१।२०

प० रि०—आद्यन्तञ् अ० । एकस्मिन् ७ । १ ॥ स०—आदिश्च
 अन्तश्चेति आद्यन्तो । आद्यन्तयोरित् इति आद्यन्तवट् ।

अर्थ—आदाविव अन्त इत् एकस्मिन्नपि कार्यं भवति । (आदि शोर
 अन्त को जो विधान किया गया कार्य वह एक में भी होता है) ।

उदा०—यथा कर्त्तव्यम् इत्यत्र प्रत्ययाद्युदात्तत्वं भवति एवमौपगवम्
 इत्यत्रापि यथा स्यान् । यथा वृक्षाभ्याम् इत्यत्र अतो दीर्घो यञि, सुपि च
 इति अद्भ्यस्य दीर्घत्वं भवति ण्यम् आभ्याम् इत्यत्रापि यथा स्यान् ।

सि०—कर्त्तव्यम् । औपगवम् ॥ इदम् । इदम् भ्याम् । इद अ^४
 भ्याम् । इद^५ भ्याम् । अ^६ भ्याम् । आभ्याम्* ।

तरप्तमपौ घ १।१।२१

प० वि०—तरप्तमपौ १।२ घ १ । १ स०—तरप् च तमप् चेति
 तरप्तमपौ (इतरे० द्वन्द्वः)

अर्थ—तरप् तमप् इत्येते प्रत्ययौ घसज्ञौ भवतः । (तरप् शोर तमप्
 को घ सज्ञा होती है) ।

उदा०—कुमारितरा, कुमारितमा । ब्राह्मणितरा, ब्राह्मणितमा ।

४. ५८) ह्रस्व (७. ४. ५९) नेगंदनद० (८. ४. ७७)

१—दिवादिभ्यः श्यन् (३. १. ६९) २—श्रोतं श्यनि (७. ३. ७१)

३—अभ्यासे चर्चं (८. ४. ५४) । ४—अष्टन घा [विभक्तौ] (७. २. ८४)

त्यदादीनाम् (७. २. १०२) ५—अतो गुणे (६. १. ९७) ६—हलि लोप

(७. २. ११३) ७—अतो दीर्घो यञि (७. ३. १०१) सुपि च (७. ३. १०२)

सि०—कुमारी तरप्^१ । कुमारी तर^२ । कुमारी तर टाप्^३ । कुमारी तर आ^४ । कुमारी तरा^५ । कुमारि तरा^६ । कुमारितरा भु । कुमारितरा ।

बहुगणवतुडति सरया १।१।२२

प० वि०—बहुगणवतुडति ८।१ सख्या १।१ ॥ स०—बहुश्च गणश्च वतुश्च डतिश्चेति बहुगणवतुडति (समा० द्वन्द्व) ।

अर्थ—बहुगणौ वतुपप्रत्ययान्त डतिप्रत्ययान्तौ च शब्दा सख्या सज्ञा भवन्ति । (बहु गण वतुपप्रत्ययात् और डतिप्रत्ययात् शब्दो की सख्यासना होती है) ।

उदा०—बहुकृत्व^० । बहुधा^१ । बहुक^२ । बहुश^३ । गणकृत्व । गणधा । गणक । गणश ॥ तावकृत्व । तावद्धा । तावक । तावच्छ । कतिकृत्व । कतिधा । कतिक । कतिश ॥

सि०—तद्धितप्रकरणे साधन द्रष्टव्यम् ॥

ष्णान्ता पट १।१।२३

प० वि०—ष्णा ता १।१ पट् १।१ स०—पश्य नश्च इति ष्णौ । अन्तश्च अन्तश्च इति अन्तौ । ष्णौ अन्तौ यस्या सख्याया सा ष्णान्ता ।

अर्थ—[सरया] पकारान्ता नकारान्ता सख्या पट् सज्ञा भवति । (षकारात् और नकारात् सख्या की पट सज्ञा होती है)

उदा०—पकारात्ता पट् तिष्ठन्ति, पट् पश्य । नकारान्ता पञ्च, सप्त, नव, दश ।

१—द्विवचनविभक्त्योपपदे तस्वीयसुनी (५ ३ ५७) २—हलत्यम् (१ ३ ३) ३—कृतद्धितसमासाश्च (१ २ ४६) डयाप्प्रातिपदिकात् (४ १ १) स्त्रियाम् (४ १ ३) अजाद्यतष्टाप् (४ १ ४) प्रथम (३ १ १) परश्च (३ १ २) ४—चुट् (१ ३ ७) तस्य लोप (१ ३ ६) अदशन लोप (१ १ ५६) ५—अक सवर्णे दीघ (६ १ १०१) ६—अनुबुत्तरपद (६ ३ १) षरूपकल्पवेलड० (६ ३ ४३) ७—सख्याया क्रियाम्यवृत्तिगणन कृत्वमुच (५ ४ १७) ८—सख्याया विधायै घा (५ ३ ४२) ९—सख्याया प्रतिश दताया कन् (५ १ २२) १०—बह्वल्पायच्छिस्कारकादयतरस्याम् (५ ४ ४२)

सि०—पप् । पप् जस् । पप्^१ । पङ्^२ । पट्^३ । पप् शस् । पप । पङ् । पट् । पञ्चन जस् । पञ्चन्^४ । पञ्च । पञ्चन् शस् । पञ्चन् । पञ्च ॥

डति च १।१।२४

प० वि०—डति १।१ च अ० ।

अर्थ—[संग्या] डतिप्रत्ययान्ता सख्या पट् संज्ञा भवति । (डति प्रत्ययान्त सख्या वाचो मन्त्र की पट् मज्ञा होनी है)

उदा०—कति तिष्ठन्ति । कति पश्य ।

सि०—अन्यन् सर्व साधनं तद्धितप्रकरणे, विशेषस्तु कति जस् । कति । कति शस् । कति ॥

क्तक्तवतू निष्ठा १।१।२५

प० वि०—क्तक्तवतू १।२। निष्ठा १।१ ॥ म०—क्तश्च क्तवतु-श्चेति क्तक्तवतू (इतरे० द्वन्द्वः)

अर्थ—क्तक्तवतू प्रत्ययौ निष्ठासंज्ञौ भवतः । (क्त और क्तवतु प्रत्यय की निष्ठा संज्ञा होनी है)

उदा०—चितः, चितवान् । साधन निष्ठा (३।२।१०२) सूत्रे दृष्टव्यम् ॥

सर्वादीनि सर्वनामानि १।१।२६

प० वि०—सर्वादीनि १।३ सर्वनामानि १।३ ॥ स०—सर्व आदिर्ये-पां तानि इमानि सर्वादीनि (तद्गुणसंविज्ञानबहु०) सर्वेषां नामानि सर्वनामानि (प० तत्पु०) ।

अर्थ—सर्वादीनि सर्वनामसंज्ञानि भवन्ति । (सर्व इत्यादि शब्दों की सर्वनामसंज्ञा होनी है)

उदा०—सर्वे । सर्वस्मै । सर्वस्मात् । सर्वस्मिन् ।

सि०—सर्व जम् । सर्व शी^१ । सर्व ई^२ । सर्वे^३ । सर्वे डे । सर्व

१—पङ्मो मुक् (७. १. २२) २—कृता जसोऽन्ते (८. २. ३६),
३—वावसाने (८. ४. ५६) ४—ननोपः प्रातिपदिकान्तस्य (८. २. ७)
५—जसः ङी (७. १. १७) ६—लगावतद्धिते (१. ३. ८) तस्य लोपः
(१. ३. ६) घटगंन लोपः (१. १. ५६) ७. एकः पूर्वपरयोः (६. १. ८४),
भाद्रगुणः (६. १. ८७) भदेद्गुणः (१. १. २) स्थानेऽन्तरतमः (१. १. ४६)

स्मै^१ । सर्वस्मै । सर्व डसि । सर्वस्मात्^२ । सर्व डि । सर्व स्मिन्^३ ।
सर्वस्मिन् ॥

स्वरादिनिपातमव्ययम् १११३६

प० वि०—स्वरादिनिपातम् १११ अव्ययम् १११ स०—स्वर् आदि-
र्येषां ते स्वरादयः । स्वरादयश्च निपाताश्च इति स्वरादिनिपातम्
(समा० द्वन्द्वः) ।

अर्थ—स्वरादीनि शब्दरूपाणि निपाताश्च अव्ययसंज्ञानि भवन्ति ।
(स्वर् इत्यादि शब्द तथा निपातो की अव्ययसज्ञा होती है)

उदा०—स्वर् । प्रतर् । उच्चैस् । नीचैस् ।

सि०—स्वर् सु । स्वर्^४ । स्वः ॥ उच्चैस् सु । उच्चैस् । उच्चैः ।

तद्धितश्चासर्वविभक्तिः १११३७

प० वि—तद्धितः १११ च अ० । असर्वविभक्तिः १११ स०—न
उत्पद्यन्ते सर्वाः विभक्तयो यस्मात् सोऽसर्वविभक्तिः तद्धितः ।

अर्थ—[अव्ययम्] यस्मात् सर्वाः विभक्तयो नोत्पद्यन्ते सः तद्धित-
प्रत्ययान्तशब्दोऽव्ययसंज्ञो भवति ॥ (जिससे सारी विभक्तियाँ उत्पन्न नहीं
होती है ऐसे तद्धित प्रत्ययान्त शब्दों की अव्यय सज्ञा होती है)

उदा०—तत्र, ततः । साधनं प्राग्दिशो विभक्तिः (५. ३. १) इत्यत्र
प्रकरणे द्रष्टव्यम् ॥

कृन्मेजन्तः १११३८

प० वि०—कृन्मेजन्तः १११ स०—मश्च एच्चेति मेचौ । अन्तश्च
अन्तश्चेति अन्तौ । मेचौ अन्तौ यस्य इति मेजन्तः (बहु० स०) कृन्सासौ
मेजन्तश्च इति कृन्मेजन्तः (कर्म० तत्पु०)

अर्थ—[अव्ययम्] कृद् यो मकारान्त एजन्तश्च तदन्तं शब्दरूपम्
अव्ययसंज्ञं भवति । (कृत् जो मकारान्त और एजन्त, तदन्त शब्दों की अव्यय
सज्ञा होती है)

उदा०—भोक्तुम् । वक्षे रायः ।

१—सर्वतामनः स्मै (७. १. १४) २—डसिङ्योः स्मात्स्मिनी (७. १. १५)

३—डसिङ्यो स्मात्स्मिनी (७. १. १५) ४—अव्ययादाप्पुपः (२. ४. ८२) ।

सि०—भोक्तुम्^१ सु । भोक्तुम्^२ । वच^३ से । वक्^४ से । वक्^५ पे । वक्ते सु । वक्ते^६ ॥

क्त्वातोमुन्कसुन १।१।३६

प० वि०—क्त्वातोमुन्कसुनः १।३ ॥ स०—क्त्वा च तोमुन् च कसुन् च इति क्त्वातोमुन्कसुनः (इतरे० द्वन्द्वः)

अर्थ—[अव्ययम्] क्त्वा तोमुन् कसुन् इत्येवमन्तं शब्दरूपम् अव्ययमन्तं भवति ॥ (क्त्वा, तोमुन् और कसुन् प्रत्ययान्त शब्दों की अव्यय-सज्ञा होती है)

उदा०—क्त्वा-कृत्वा । तोमुन्-पुरा सूर्यस्योदितोराधेय । कसुन्-पुरा क्रूरस्य विसृपो विरिप्शिन ॥

सि०—उदेतोः । उन् इण् तोमुन्^१ । इ तोमुन् । इतोसु । इ तोम् । ए^२ तोस् । एतोस्^३ सु । एतोरु । एतोरु । ण्तो । उन् एतोः । उद्^४ एताः । उदेतो । सृप् कसुन् । सृप् अमुन् । सृप् अमु । सृप्^५ अस् । सृप्स् सु । विसृप्स्^६ विरिप्शिन । विसृप्स् विरिप्शिन । विसृप् उ^७ विरिप्शिन । विसृपो^८ विरिप्शिन ।

अव्ययीभावश्च १।१।४०

प० वि०—अव्ययीभावः १।१ च अ० ।

अर्थ—[अव्ययम्] अव्ययीभावसमासोऽव्ययसंज्ञो भवति । (अव्ययीभाव समास की अव्ययसज्ञा होती है)

उदा०—उपकृष्णम् । अधिस्त्रि ।

सि०—अव्ययीभावसमासे (०. १. ६) साधनं द्रष्टव्यम् ।

१—तुमुन्बुलो क्रियाया क्रियार्थायाम् (३. ३. १०) २—वृन्मेजन्तः (१. १. ३८), अव्ययादाप्सुपः (२. ४. ८२) ३—तुमर्थे से० (३. ४. ९) ४—घोः क्तु (८. २. ३०) ५—आदेशप्रत्यययो (८. ३. ५९) ६—वृन्मेजन्तः (१. १. ३८), अव्ययादाप्सुपः (२. ४. ८२) ७—भावलक्षणो (३. ४. १६) ८—सावंधातुकार्धधातुयो (७. ३. ८४) ९—भूना जशोऽन्ते (८. ३. ३९) १०—पुगन्तलघूपधस्य च (७. ३. ८६) विडति च (१. १. ५) ११—क्त्वातोमुन्कसुनः (१. १. ३६) अव्ययादाप्सुपः (२. ४. ८२) १२—हसि च (६. १. ११२) १३—सहितायाम् (६. १. ७२), एक पूर्वपरयोः (६. १. ८४) घाद् घृणः (६. १. ८७)

शि सर्वनामस्थानम् १।१।४१

प० वि०—शि १।१ सर्वनामस्थानम् १।१ ॥

अर्थ—शि इत्येतत् सर्वनामस्थानसंज्ञं भवति । (शि इमकी सर्वनामस्थान सज्ञा होती है)

उदा०—कुण्डानि तिष्ठन्ति । कुण्डानि पश्य । दधीनि । मधूनि ।

सि०—कुण्ड जस् । कुण्ड शि^१ । कुण्ड इ^२ । कुण्ड नुम्^३ इ । कुण्डन् इ । कुण्डान्* इ । कुण्डानि ।

सुडनपु सकस्य १।१।४२

प० वि०—सुट् १।१ अनपुंसकस्य ६।१ स०—न नपुंसकम् इति अनपुंसकम् (नञ्० तत्पु०) तस्य

अर्थ—[सर्वनामस्थानम्] नपुंसकभिन्नस्य सुट् सर्वनामस्थानसंज्ञो भवति । (नपुंसकभिन्न जो सुट् उसकी सर्वनामस्थान सज्ञा होती है)

उदा०—राजा । राजानो । राजानः । राजानम् । राजानौ ।

सि०—राजन् मु । राजान्^१ मु । राजान् स् । राजान^२ । राजा* । राजन् औ । राजान् औ । राजानौ । राजानः ॥

न वेति विभापा १।१।४३

प० वि०—न अ० । वा अ० । इति अ० ।

अर्थ—नेति प्रतिषेधार्थो वेति विकल्पार्थस्तयोः प्रतिषेधविकल्पार्थयोर्विभापा इति संज्ञा भवति । (निषेध और विकल्प अर्थ की विभापा सज्ञा होती है)

उदा०—शुशाव । शिश्वाय ॥ शुशुवतुः । शिश्वितुः ॥

साधनं तु विभापा श्वेः (६. १. ३०) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

१—जश्सतोः शि. (७. १. २०) २—लशक्वतद्धिते (१.३. ८), तस्य लोपः (१. १. ६), अदर्शन लोप. (१. १. ५६) ३—इदितो [नुम्] धातोः (७.१.५८), नपुंसकस्य भक्तवः (७. १. ७२) मिदधोऽज्यात्परः (१. १. ४६) ४—शि सर्वनामस्थानम् (१. १. ४१), सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ (६. ४. ८) ५—शि सर्वनामस्थानम् (१. १. ४१), सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ (६. ४. ८) ६—हल्द्वयाभ्यां दीर्घात् सुतिस्पृक्त हल् (६.१.६८) अदर्शनं लोपः (१.१.५६) ७—नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य (८. २. ७) अदर्शनं लोपः (१. १. ५८)

इग्यण सम्प्रसारणम् १।१।४४

प० वि०—इक् १।१ यण ६।१ सम्प्रसारणम् १।१ ॥

अर्थ—यण स्थाने य इक् भूतो भावी वा तस्य सम्प्रसारणम् इत्येषा संज्ञा भवति । (यण के स्थान में जो हुमा हुमा या होने वाता इक् उसको सम्प्रसारण संज्ञा होती है)

उदा०—उस्तम् । उस्तान् ।

सि०—वच् क्त^१ । वच् त^२ । उ अ^३ च् त । उच्^४ त । उस्त^५ सु । उस्त अम्^६ । उस्तम्^७ ।

आद्यन्ती टकितौ १।१।४५

प० वि०—आद्यन्ती १।० टकितौ १।० स०—आदिश्च अन्तश्चेति आद्यन्ती । टश्च कश्चेति टकौ । इश्च इच्चेति इतौ । टकौ इतौ ययोरिति टकितौ ।

अर्थ—पष्ठीनिर्दिष्टस्य टित्कितौ आगमौ आद्यन्ती अपयवौ भवत । (पष्ठी विभक्ति स निर्देश किया गया टकार इत् वाता और ककार इत् वाला जो आगम वह क्रमशः प्रादि और अन्तिम प्रययव होता है)

उदा०—टित्-भविता, भवितुम्, भवितुज्यम् । कित्-प्रकृत्य, प्रकृत्य ।

सि०—भविता एवत्तृचौ इति (२. १. १३३) सूत्रे द्रष्टव्यम् । कित्-ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् (६. १. ७१) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

मिदचोऽन्त्यात्पर १।१।४६

प० वि०—मित् १।१ अच ६।१ अन्त्यात् ५।१ पर १।१ ॥

१—भूवादयो घातव (१. ३. १), कर्त्तरि कृत् (३. ४. ६७) ल वमणि च भाव चावर्भवेभ्य. (३. ४. ६६) तपोरेव कृत्यत्तल्लर्था (३. ४. ७०) कृद-तिङ् (३. १. ६३), भूते (३. २. ८४), निष्ठा (३. २. १०२) वनवनवतू निष्ठा (१. १. २५), प्रत्यय (३. १. १) परश्च (३. १. २) २—सगवचतद्धिते (१. ३. ८), तस्य लोप (१. ३. ६), अदशान लोप (१. १. ३६) ३—वचिस्वपिय-जादीना किति (६. १. १५), इग्यण सम्प्रसारणम् (१. १. ४४), स्थानेऽन्तर-तमः (१. १. ४६) ४—पर. सन्निकषं सहिता (१. ४. १०६), सहितायाञ्च (६. १. ७२) एक पूर्वपरयो (६. १. ८४), षमि [पूर्व.] (६. १. १०) सम्प्रसारणाञ्च (६. १. १०८) ५—चो कुः (८. २. ३०) ६—प्रतोऽम् (७. २४) ७—षमि पूर्वं (६. १. १०७)

अमुष्मै । अदस् डे । अद अ^१ डे । अद^२ डे । अद स्मै^३ ।
 अमुष्मै । इत्यत्र अदसोऽसेर्दादुदो मः इत्यनेन सूत्रेण प्रमाणकृतान्तर्याद्
 अकारस्य ह्रस्वस्य ह्रस्व उकार आदेशो भवति । अमूभ्याम् । अदस् भ्याम् ।
 अद अ भ्याम् । अद भ्याम् । अदा^४ भ्याम् इत्यत्र दीर्घस्य आकारस्य
 ऊकारो भवति । अमूभ्याम् ।

उरण् रपरः । १।१।५०

प० वि०—उः ६।१ अण् १।१ रपरः १।१ स० । रः परो यस्मात् स
 रपरः (बहु०) ।

अर्थ—[स्थानेयोगा इत्यतः स्थाने, स्थानेऽन्तरतम इत्यतः स्थाने] उः
 स्थाने अण् प्रसज्यमान एव रपरो भवति । (ऋ के स्थान में प्राप्त होता
 हुआ अण् रपर हो जाता है) ॐ अत्रेदं बोध्यम्—एतेन लक्षणान्तरेण विधीय-
 मानस्य अणो विधानकाल एवेय परिभाषा व्याप्रियते । अतस्तेन सह
 सहत्य रपरत्वविशष्टो विधीयते । एतच्च स्थानद्वयग्रहणस्यात्रानुवृत्तेर्लभ्यते ।
 पूर्वकेण हि स्थानग्रहणेनेहानुवृत्तावुः स्थाने इत्येतद् अर्थरूपं लभ्यते ।
 द्वितीयेन तु प्रसज्यमान इत्येतत् । तथाहि यदिह स्थानग्रहणं सप्तम्यन्तं
 प्रकृतमनुवर्त्तमानं तत् सामर्थ्यात् प्रथमान्तं सम्पद्यते । स्थानशब्दश्चायं
 प्रसङ्गवाची ततश्च यदा स्थानेनाण् विशिष्यतेऽण् स्थानम् इति तदा
 अण् प्रसज्यमान एव इत्यर्थो जायते, प्रसज्यमानशब्दस्य प्रसङ्गेनाभि-
 सम्बन्धमान इत्यर्थो भवतिः ॐ

(यहा पर यह जानना चाहिये—यह सूत्र क्या काम करता है—किसी
 दूसरे लक्षण या सूत्र से विधान किया जाता हुआ जो अण् है वह अण् विधान
 काल में ही रपर होकर प्रयुक्त हो इस कार्य के लिए यह परिभाषा सूत्र है ।
 इस प्रकार का अर्थ इसलिए प्राप्त होता है क्योंकि ऊपर से 'स्थाने-स्थाने' इन
 दोनो पदो की अनुवृत्ति आती है । पष्ठो स्थानेयोगा स जो स्थाने की अनुवृत्ति आती
 है उससे तो 'ऋ के स्थान में' ऐसा अर्थ प्राप्त होता है । और स्थानेऽन्तरतमः
 से जो स्थाने की अनुवृत्ति आती है, उसका अर्थ 'प्राप्त होता हुआ' होता है ।
 अब यहाँ प्रश्न उठता है कि वहाँ तो स्थाने सप्तम्यन्त है यहाँ प्रथमान्त कैसे
 हो जाता है तो इसका यह उत्तर है कि सामर्थ्य से । यहाँ पर प्रथमा विभक्ति

१—त्यदादीनाम (७ २ १०२) २—अतो गुणे (६ १ ६७) ३—सर्वनाम्न.
 स्मै (७. १ १४) ४—अतो दीर्घो यजि (७ ३ १०१) सुपि च (७ ३ १०२)

(पष्ठी विभक्ति से निर्देश किया गया जो आदेश वह अन्तिम षल् के स्थान में होता है)

उदा०—सः, तौ, ते। यः, यौः, ये। तम्, तौ, तान्। यम्, यौ, यान्।

सि०—तद् सु। त अ१ सु। त२ सु। स३ सु। स स्। सरु। सरु। सः। तद् औ। त अ१ औ। त२ औ। तौ३। तद् जस्। त अ जस्। त जस्। त शी३। त ई३। ते३। यद् सु। य अ सु। य स्। य रु। य र। यः। यद् औ। य अ औ। य औ। यौ। यद् जस्। य अ जस्। य जस्। य शी। य ई। ये। तम्। तद् अम्। त अ अम्। त अम्। तम्। तान्। तद् शस्। त अ शस्। त अस्। तास्। तान्। यद् अम्। य अ अम्। य अम्। यम्। यान्। यद् शस्। य अ अस्। य अस्। यास्। यान्॥

डिच्च १।१।५२

प० वि०—डिन् १।१ च अ०। स०—ङ् इत् यस्य सोऽय डिन्।

अर्थ—[अलोऽन्यस्य] डिच्च य आदेशः सोऽन्यस्य अलः स्थाने भवति। (ङकार इत् वाला जो आदेश वह अन्तिम षल् के स्थान में होता है)

उदा०—कर्ता, हर्ता।

आदे परस्य १।१।५३

प० वि०—आदेः ङ।१ परस्य ङ।१

अर्थ—[अलः] परस्य कार्यमुच्यमानमादेरलः स्थाने भवति। (पर का वहा हुआ कार्य आदि षल् के स्थान में होता है)

उदा०—आसीनो यजते, द्वीपम्, अन्नरीपम्, प्रनीपम्, समीपम्।

१—त्यदादीनाम. (७ २ १०२) षलाऽन्यस्य (१ १. ५१) २—घतो गुणे (६ १ ६७) ३—तदोः स सावनत्ययो (७ २ १०६) ४—वृद्धिरेचि (६ १ ८८) प्रथमयो पूर्वमवर्णं (६ १ १०२) नादिचि (६. १ १०४) वृद्धिरेचि (६ १ ८८) वृद्धिरादेच् (१ १. १) स्थानेऽन्तरतम (१ १ ४६) ५—जडाः षो (७ १ १७) ६—षाद् गुणः (६ १ ८७) षदेद् गुणः (१. १. २) स्थानेऽन्तरतम (१ १ ४९) ७—प्रथमयो पूर्वमवर्णः (६ १ १०२) ८—तस्माच्छयो न पुमि (६ १. १०३)

सि०—आम् लट्^१ । आस् शानच्^२ । आस् शान । आस आन ।
आम् ईन^३ । आसीन मु । आसीन स् । आसीन रु । आसीन र् ।
आमीनर् यजते । आमीन उ^४ यजते । आसीनो^५ यजते ॥ द्वीपम्
इत्यादीना सायन (५ ४ ७२) तद्धितसमासान्ते द्रष्टव्यम् ।

अनेकालिशत्वम्य १।१।५८

प० वि०—अनेकालिशन् १।१ सर्वस्य ६।१ ॥ स०—न ण् अनेक ।
अनेक चासी अल् च इति अनेकाल् । श् ट् न् यन्येति शिन् । अनेकाल्
च शिन्च इति अनेकालिशन् (समा० द्वन्द्व)

अर्थ—[पष्ठी स्थाने] अनेकाल् शिन्च य आदेश स सर्वस्य पष्ठी-
निर्दिष्टस्य स्थाने भजति । (अनक अल् वावा (अनर वावा) तथा अकार इत्
वाला आदेश पष्ठी विभक्ति ये निर्देश किया गया सभी क स्थान में होता है)

उदा०—तै , के , तस्मै , कस्मै , ते , के , ये ।

सि०—तद् भिस् । त अ भिस् । त भिस् । त ऐस्* । तैस्* ।
तै । त्मि भिम् । क्^६ भिम् । क ऐम् । कैस् । कैह । कैर् । कै । तद्
डे । त अ डे । त ट् । त स्मै । तस्मै । त्मि डे । क डे । क स्मै । कस्मै ॥

स्थानिवत्प्रकरणम् —

स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ १।१।५५

प० वि०—स्थानिवन् य० । आदेश १।१ अनल्विधौ ७।१ ॥ स०—
अला विधि अल्विधि । अल परस्य विधि अल्विधि । अल स्थाने
विधि अल्विधि । अलि परतो विधि अल्विधि । अल्विधिश्च अल्वि-
धिश्च अल्विधिश्च अनल्विधिश्चेति अल्विधि । (सर्वविभक्त्यन्त समास)
न अल्विधि अनल्विधि (तच् तत्पु०) तस्मिन् ।

१—भूवादया घातव (१ ३ १) घाता (३ १ ६१) वनमान लट्
(३ २ १२३) प्रत्यय. (३ १ १) परस्व (३ १ २) २—नट शनृशानवा
वप्रथमासमानाधिकरण (३ २ १२४) क्त्तरि शप् (३ १ ६८) अदिप्रमृतिम्य
गप (२ ४ ७२) ३—ईदास (७ २ ८२) आद परस्व (१ १ ५१) ४—
हवि च (६ १ ११४) ५—आदशुण (६ १ ८७) ६—अतो मिम एम् (७
१ ६), अनकालिशत्वस्य (१ १ ५४) ७—वृद्धिरेचि (६ १ ८८) वृद्धि-
राईच् (१ १ १) स्थानोत्तरतमः (१ १ ४६) ८—किम क (७ २
१०३) अनकालिशत्वस्य (१ १ ५४)

अर्थ—आदेशः स्थानिवद् भवति न तु अल्विधौ (आदेश स्वामी के समान होता है परन्तु अन्विधि में नहीं, अर्थात् एक वर्ण के द्वारा, एक वर्ण के पश्चात्, एक वर्ण के स्थान में या एक वर्ण के परे रहने पर जो अल् के आश्रित विधि है, उस में नहीं)

उदा०—ॐ धातु-अङ्ग-कृन्-तद्धित-अव्यय-सुप्-तिङ्-पदादेशाः स्था-
निवद् भवन्ति ॐ धात्वादेशाः धातुवद् भवन्ति । भविता,
भवितुम्, भवितव्यम् । वक्ता, वक्तुम्, वक्तव्यम् । अङ्ग-केन,
काभ्याम्, कैः । कृत्-प्रकृत्य, प्रहृत्य । तद्धित-शालीयः, ऐतिकायनः,
औपगवः । अव्यय-प्रकृत्य, प्रहृत्य । सुप्-वृत्ताय, प्लक्षाय । तिङ्-
अपठतम्, अपठत । पद-प्राप्तो बः स्वम्, जनपदो नः स्वम् । अला
विधौ-व्युद्धोरस्केन । अलः परस्य विधौ-द्यौः, पन्थाः, सः । अलः विधौ-
द्युक्तामः । अलि परतो विधौ-क इष्टः ।

सि०—अस् भुवि । अस् । भू' ॐ अत्रेदं बोध्यम्-भूवादयो धातव
इत्यनेन सूत्रेण अस्धातोर्धातुसंज्ञा भवति परञ्च भू इत्यस्य धातुसंज्ञा
नास्ति । नायं भू सत्तायाम् धातुर् इति शङ्कनीयम् अस्य अस्धातोः
स्थाने अस्तेभूः इत्यनेन आदेशत्वात् । अतः आदेशे कृते गणस्थत्वा-
दसधातोर्धातुसंज्ञा सिद्धा न तु भू इत्यस्य इत्येवमर्थम् इदं सूत्रं ब्रवीति
भगवान् पाणिनिः । आदेशस्य स्थानिवत्त्वाद् भवति भू इत्यादेशस्यापि
धातुसंज्ञा । आदेशस्तु आर्धधातुके विषये एव भवति आर्धधातुके इति
सूत्रे विषयसप्तमीत्वात् ।

(महा यह ज्ञातव्य है—'भूवादयो धातव.' इस सूत्र से 'अस् भुवि' इस की
धातु संज्ञा होती है लेकिन अस् के स्थान में भू के आदेश हो जाने पर भू की
धातुसंज्ञा प्राप्त नहीं होती क्योंकि धातु संज्ञा अस् की की थी भू की नहीं ।
यह भू भू सत्तायाम् धातु है, इस प्रकार की शङ्का नहीं करनी चाहिये, क्योंकि
यह तो आदेश हुआ हुआ भू है, इसका उस भू धातु से कोई सम्बन्ध
नहीं । जब अस् के स्थान में भू आदेश हो जाता है तब भू की धातु संज्ञा है ही
नहीं, फिर 'धातोः' अधिकार करके वृच् इत्यादि प्रत्यय कैसे आ सकता है ।
इसलिये भगवान् पाणिनि सूत्र बोलते हैं । 'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ' इससे
जिन प्रकार अस् की धातुसंज्ञा होती है उन्ही प्रकार भू की भी उसके स्थान में
आदेश होने के कारण धातु संज्ञा हो जाती है । और यह आदेश 'आर्धधातुके'

प्रत्यय वे विषय में ही होता है। क्योंकि 'आधंधातुवे' यह विषय सप्तमी है।
 भू वृच् । भू इट् वृ । भो इट् वृ । भवित् । भवित् सु । भवित्
 अनङ् सु । भवितन् सु । भवितान् स् । भवितान् । भविता । भूतुमुन् ।
 भवितुम् । भू तव्य । भवितव्य । भवितव्य सु । भवितव्यम् । व्रून् ।
 वचि । वच् वृच् । वक्तु । वक्तु सु । वक्त अनङ् सु । वक्तन्
 स् । वक्तान् स् । वक्तान् । वक्ता ।

किम् टा । क छ् अत्रेदं बोध्यम्-किम् इति अस्मात् प्रातिपदिकात्
 टाप्रत्ययो विहितः अत एव यस्मात्प्रत्ययविविस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् इत्यनेन
 सूत्रेण किम्शब्दस्य अङ्गसंज्ञा सिद्धा न पुनः क इत्येतस्य शब्दस्य ।
 अस्माद् वचनात् क इत्येतस्य किम् इत्येतस्य स्थाने आदेशत्वात् अङ्गसंज्ञा
 सिध्यति । ततः 'टाडसिडसामिनात्स्या' इत्यनेन सूत्रेण टा इत्येतस्य स्थाने
 अदन्तादङ्गादिन इत्ययमादेशो भवति । क इन् । केन् । किम् भ्याम् ।
 क भ्याम् । काभ्याम् । किम् भिस् । क ऐम् । कैस् । कै ।

(यहा यह ज्ञातव्य है—किम् प्रातिपदिक से टा प्रत्यय वा विधान किया
 गया है इसलिये 'यस्मात् प्रत्ययविविस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्' इस सूत्र से 'किम्' शब्द
 की अङ्ग संज्ञा होती है 'क' शब्द की नहीं। इस स्थानियत् सूत्र से किम् शब्द के
 स्थान में 'क' के आदेश होने के कारण इसकी भी अङ्ग संज्ञा हो जाती है।
 उससे पश्चात् 'टाडसिडसाम्' इस सूत्र से प्रकारान्त अङ्ग के पदचान् टा के
 स्थान में इन यह आदेश हो जाता है)

१—भूवादयो घातव (१ ३. १), घातो (१ १ ६१), वृदतिङ् (३ १
 ६३), कर्त्तरि वृत् (३ ४ ६७) ण्वुल्लुचो (३ १ १३३), प्रत्यय (३ १ १)
 परश्च (३. १ २) २—आधंधातुक शेषः (२ ४ ११४), आधंधातुकस्येह
 वलादे (७ २ ३५), आद्यन्तो टन्ति (१ १ ४५) ३—यस्मात्प्रत्ययविवि-
 स्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् (१ ४ १३) अङ्गस्य (६ ४ १), सार्वधातुकाधधातुकयो
 (७ ३ ८५) इको गुणवृद्धी (१ १ ३), स्थानेऽन्तरत्तम (१ १ ४६) ४—
 तुमुण्वुलो (३ ३ १०) ५—ध्रुवो वचि (२ ४ ५३) ६—चो वु (८ २ ३०)
 ७—किम् कः (७ २ १०३) स्थानिवदादेशोऽन्त्विधौ (१ १. ५५)
 टाडसिडसामिनात्स्या (७. १ १०२) यथासह्यमनुदेश समानाम् (१. ३. १०)
 ८—आद् गुण (६. १. ८७) ९—सुपि च (७ ३. १०२)

डुकृञ् । कृ क्त्वा^१ । प्र कृ ल्यप्^२ । प्र कृ य ऋ अत्रेद बोध्यम्
 वृदतिङ् इत्यनेन सूत्रेण क्त्वा इत्येतस्य कृत्सज्ञा अस्ति । परञ्च क्तव्यो
 स्थाने ल्यपि आदेशे कृते तस्य ल्यप कृत्सज्ञा नास्ति । अत एव ह्रस्वस्य
 पिति कृति तुगिति कृत्सज्ञाया अभावात् ल्यपि तुगागमो न प्राप्नोति ।
 अस्माद् वचनात् ल्यप क्त स्थाने आदेशत्वात् कृत्सज्ञा भवत्येव । तत
 तुगागमो भवतिः प्र कृ तुक्^३ य । प्रकृत्य सु । प्रकृत्य^४ स् । प्रकृत्य ।
 प्रहृत्य ।

(यहा पर ज्ञातव्य है— कृदतिङ् इस सूत्र स क्त्वा की कृत्सज्ञा है परन्तु
 क्त्वा क स्थान म ल्यप् आदेश कर लेन पर उस ल्यप की कृत् सज्ञा नहीं है ।
 इसलिये 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' इस सूत्र से ल्यप् के कृत् सज्ञा न होने
 से उसके परे रहन पर तुक् का आगम नहीं होता है । इस वचन से (स्थानि-
 वदादेशोऽनिल्विषी) ल्यप् की भी कृत् सज्ञा हो जाती है, क्योंकि वह क्त्वा के
 स्थान में आदेश है)

शालीय । शाला छ । शाला ईय । शाल् ईय । शालीय इत्यत्र छ
 इत्येतरस्य तद्धितसज्ञा न ईय इत्येतस्य । अत एव ईय इत्येवमन्तस्य कृत्त-
 द्धितसमासाश्चेति प्रातिपदिकसज्ञा न सिध्यति । स्थानिपद् इति वचनात्
 सिध्यति अस्यापि ईयान्तस्य प्रातिपदिकसज्ञा । तत स्यादिरूपत्ति ।

(छ की तद्धिता इम अधिकार सूत्र से तद्धितसज्ञा है ईय की नहीं ।
 इमलिपे ईय है अन्त में जिसके एस शालीय शब्द की 'कृत्तद्धितसमासाश्च' इस
 सूत्र स प्रातिपदिकसज्ञा नहीं हो सकती है परन्तु स्थानिवद् इस सूत्र के कारण
 म आदेश जो ईय है उसकी भी तद्धित सज्ञा हो जाती है क्योंकि तद्धित का
 आदेश तद्धित के समान होता है)

प्रकृत्य । इत्यत्र क्त्वातोमुन्कसुन इत्यनेन सूत्रेण क्त्वात्तस्य
 अव्ययसज्ञा भवति न तु ल्यवन्तस्य । तथा च सति अन्वययत्वात्

१—समानवर्तुक्तव्यो पूर्वकाने (३. ४. २१) २—यस्मात्प्रत्ययः (१. ४. १३)
 प्रकृत्य (६. ८. १) समासजन्मपूर्वै क्तव्यो ल्यप् (७. १. ३७) ३—ह्रस्वस्य
 पिति कृति तुक् (६. १. ७१) आद्यतो टवितो (१. १. ४५) ४—कृत्तद्धित-
 समासाश्च (१. २. ४६) ड्याप्प्रातिपदिकान् (४. १. १) स्वो० (४. १. २)
 गुप (१. ४. १०३) विभक्तिश्च (१. ४. १०४) द्वयकयोद्वयचर्नैकवचन (१. ४.
 २२) एकत्व विवक्षिते गु, प्रत्यय (३. १. १) परदच (३. १. २) क्त्वातोमुक्-
 मुन (१. १. ३६) मध्ययादाप्पुप (०. ४. ८२)

अव्ययादाप्सुपः इत्यनेन सु इत्येतन्म लुङ् न प्राप्नोति । स्थानिवदिति सूत्रेण ल्यप् इत्येतस्य आदेशस्यापि अव्ययमज्ञा भवत्येव अव्ययस्य आदेशः अव्ययवद् भवति इति वचनान् । ततः अव्ययादाप्सुप इत्यनेन सोलुक् ।

(यहा पर क्वातोमुक्त्वात् इम मूत्र न क्वाप्रत्ययान्त गद् की अव्यय सज्ञा होनी है ल्यप् प्रत्ययान्त की नहीं । और इस स्थिति में ल्यप् व अव्यय न होने में अव्ययादाप्सुप इम मूत्र में मुप् का लुक् नहीं प्राप्त है । स्थानिवचन इस मूत्र में ल्यप् आदेश की भी अव्ययमज्ञा हो जाती है)

वृत्त ङे । वृत्त य^१ अत्रेदं बोध्यम् ङे इत्येतस्य मुप्प्रत्याहारे निर्देश न तु य इत्येतस्य । अत एव अमुप्प्रान् अतो दीर्घो यत्रि, मुपि च इति न प्रवर्तते । स्थानिवद् वचनान् य इत्येतस्यापि ङे स्थाने आदेशत्वात् मुप्प्रम् उपपद्यते ततो दीर्घो भवत्येव वृत्ताय^२, प्लत्ताय इति ।

(ङे मुप् प्रत्याहार में है व नहीं, इमनिय 'मुपि च' मूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती है । स्थानिवद् इम मूत्र म ङे के स्थाने में य के आदेश होने में ङे को मुप माना गया । अतः अत्र दीर्घ हा जायगा) ।

पठ । पठ् लङ्^३ । पठ, ल् । पठ् थस्^४ । पठ् शप्^५ थम् । पठ तम्^६ । अट्^७ पठतम् । अपठतम्^८ । ङे इत्यत्र थस् इत्येतस्य तिङ् प्रत्याहारे निर्देशः । न तु तम् इत्येतस्य । अत एव अपठतम् इत्येतस्य^९ 'मुप्तिङन्त पदम्' इत्यनेन पठसज्ञा न सिध्यति । परन्तु स्थानिवद् वचनान् तम् इत्येतस्य थस् इत्येतस्य स्थाने आदेशत्वात् सिध्यति पठसज्ञा । तथा च साति मुप्तिङन्तं पठमित्यनेनसिध्यति तमन्तस्य पठसज्ञा ।

(पठ् तिङ् प्रत्याहार में निर्दिष्ट है तम् नहीं । इसलिए अपठतम् की पठसज्ञा नहीं सिद्ध होती । परन्तु स्थानिवच् इम वचन से तम् का थस् के स्थान

१—ङेयं (७ १. १३) २—स्थानिवदादेशाऽनन्विधौ (१ १ ५५) मुपि च (७ ३ १०२) ३—भूते (३ २ ८४) अनद्यनन लङ् (३ २ १११) प्रत्यय (३. १ १) परस्व (३ १ २) ४—लस्य (३. ४. ७७) तिप्तिङ्म० (३ ४. ७८) ५—तिङ्गित्सार्वधानुक्तम् (३ ४ ११३) सार्वधानुक्ते यच् (३ १ ६७) कर्त्तरि शप् (३ १ ६८) ६—तस्यस्यमिषा तान्तन्ताम (३ ४ १०१) यथामस्यमनुदेश समानाम् (१ ३ १०) ७—लुङ्लङ्ङुङ्ङुदात्त. (६ ४ ७१) आद्यन्तो टक्त्वो (१ १ ४५) ८—स्थानिवदादेशोऽनन्विधौ (१. १ ५५) मुप्तिङन्त पदम् (१ ४ १४)

में आदेश होने के कारण से पद सज्ञा सिद्ध होती है। इस कारण 'मुप्तिङन्त पदम्' इस सूत्र से अपठतम की भी पद सज्ञा हो जाती है।)

ग्राम. युष्माकम् स्वम् । ग्रामो वः स्वम्' ॥ इत्यत्र युष्माकम् इत्ये-
तस्य स्थाने वस् इत्ययमादेशो भवति । किन्तु 'मुप्तिङन्त पदम्' इत्यनेन
सूत्रेण युष्माकम् इत्येतस्य पदसज्ञा न तु वस् इत्येतस्य । अस्माद् वचनात्
पदस्य पदात् युष्मदस्मदोरित्यनेन सूत्रेण युष्माकम् स्थाने वस् आदेश-
त्वात् भवत्येव तस्यापि पदसज्ञा, पदादेश' पदवद् भवतीति वचनात्
तेन पदरात् रूपादीनि भवन्ति ॥

(युष्माकम् के स्थान में 'वस्' यह आदेश होता है। अतएव युष्माकम् की
'मुप्तिङन्त पदम्' इस सूत्र से पद सज्ञा है न कि वस् की। परन्तु स्थानिवत् सूत्र
के कारण से वस् की भी पद सज्ञा हो जाती है क्योंकि वह पद के स्थान पर
आदेश है और पद का आदेश पद के समान होता है, ऐसा यह सूत्र विधान
करता है इसलिये पद सज्ञा होने से एत्व आदि कार्य हो जाते हैं)

व्यूढमुर. यस्य स व्यूढोरम्भ' तेन व्यूढोरस्केन ॥ इत्यत्र सकारस्य
स्थानिवद्भावाद् विसर्जनीयत्वाद् अयोगवाहानामट्सु एत्वम् अट्कुप्वा-
डनुन्वयत्रायेऽपि इत्यनेन सूत्रेण नकारस्य स्थाने एकारादेशः प्राप्नोति ।
तृतीयान्तेन समासेन अला विधौ न, स्थानिवद्भाव इति निषेधात्
सकारस्य न भवति विसर्जनीयवद्भावः, तस्मान्न प्रवर्तते एत्वादेशविधायकं
सूत्रमिति ॥

(सकार के स्थानिवद् भाव होने से सकार को विसर्जनीय माना गया
जिससे 'अयोगवाहानामट्सु एत्वम्' इस वातिक से नकार के स्थान में एकार प्राप्त
होता है परन्तु एक वर्ण के द्वारा विहित विधि में स्थानिवद् भाव नहीं होता
इस निषेध में स् को विसर्जनीय नहीं माना गया। और सकार से व्यवधान
रहने पर एत्व का विधान नहीं। इसलिए एकार नहीं हो सकता)

दिव् सु । दि श्री^२ स् । द्वयोस्^३ । द्यौः । पथिन् सु । पथि आ^४
स् । पथ् आ^५ आ स् । पथा^६ स् । पन्था^७ स् । पन्थारु । पन्थार् । पन्थाः ।

१—मुप्तिङन्त पदम् (१ ४ १४) पदस्य (८ १ १६) पदात् (८ १ १७)
युष्मदस्मदो० (८ १ २०) अनेकाल्पित्तसर्वस्य (१ १ ५४) २—दिव् श्रौत्
(७ १. ८४) प्रलोऽत्यस्य (१ १. ५१) ३—इको यणचि (६ १. ७७) ४—
पथिमध्यमुष्मात् (७ १. ८५) प्रलोऽत्यस्य (१ १ ५१) ५—इतोऽसर्वनाम-
स्थाने (७ १ ८६) ६—प्रक.० (६ १.१०१) ७—घो न्यः (७. १. ८७) ।

सः । तद् सु । त अस् । त स् । सस् । सरु । सर् । सः । इत्यत्र अलः विधौ न स्थानिवद् भवतीति निषेधान् एतेषूदाहरणेषु हल्ङ्यादिलोपो न भवति । यत अत्र हल्प्रत्याहारान्तर्गतागतैकं वर्णम् आश्रित्य सोर्लोपो विधीयते । अत एव पञ्चम्यन्तेन सह विग्रहेण इदं स्थानिवत्त्वस्याभावरूपफलम् ।

(यहाँ पर अल् विधि में स्थानिवद् नहीं होता है इस निषेध से हल्ङ्याब्धो इस सूत्र से इन उदाहरणों में स् प्रत्यय का लोप नहीं होता है । यहाँ हल् प्रत्याहार के अन्तर्गत आने वाले एक वर्ण को आश्रय करके सुलोप का विधान किया जाता है । पञ्चमी के माय समास करने का यह निषेध रूप फल है)

दिवि कामो यस्य स युक्तामः । दिव कामः । दि उ^१ कामः । उकारस्य स्थानिवत्त्वात् वकारवद्भावात् लोपो व्योर्वलि इति वकारस्य लोपः प्राप्नोति । अलः विधौ न, इति निषेधान् स्थानिवद्भावो न भवति ॥

यहाँ पर उकार का स्थानिवद्भाव हो जाय तो वह वकार माना जाय और 'लोपो व्योर्वलि' इस सूत्र में उस का लोप हो जाय । लङ्गिन अल् की विधि में स्थानिवद् नहीं होता है इससे उकार ही माना गया अत लोप नहीं होता ।

॥क इष्टः । यज^३ क्त । यज त^४ । इ^५ अज् त । इज्^६ त । इप्^७ त । इष्ट^८ सु । इष्ट^९ । क इष्टः ॥ इत्यत्र उकारस्य स्थानिवत्त्वात् यकारत्वान् दृशि च इत्युत्वं प्राप्नोति । अलि विधौ न, इति निषेधान् स्थानिवद्भावो न भवति । इत्येतत्सर्वं रटनमन्तरेणैव अथवगन्तव्यम् ॥

(यहाँ पर इकार का स्थानिवद्भाव से यकार हों जाय तो 'इति च' इस सूत्र से कर् के रेफ का उकार आदेश हो जाय जिससे यो इष्ट, यह प्रयोग बनना

- १—दिव उ^१ (६. १. १३१) अलोऽन्त्यस्य (१. १. ५१) २—दृको यण्वि (६. १. ७७) ३—भूवादयो धातव (१. ३. १) धातोः (३. १. ६१) वृदन्ति (३. १. ६३) कर्त्तरि कृत् (३. ४. ५७) नः कर्मणि च भवि चाकर्मकेभ्य (३. ४. ६६) नयोरेव कृत्यक्तखलर्षा. (३. ४. ७०) नृने (३. २. ८८) निष्ठा (३. २. १००) क्तक्तवतू निष्ठा (१. १. २५) प्रत्ययः (३. १. १) परस्व (३. १. २) ४—लशक्वतद्धिते (१. ३. ८) नम्य मांसः (१. ३. ६) इत्त्वो लोप (१. १. ५६) ५—वचिस्त्रिपिनत्रादीनां द्वित्रि (६. १. १५) सम्प्रसारणम् (१. १. ४४) ६—प्रणि [पूर्वा] (६. १. १००) सम्प्रसारणम् (१. १. ४४) ७—अस्य अस्त्वगृज्मृज्पृज्गृज्प्रश्नार्था यः (८. ३. ३१) सहितायाम् (८. २. १०८) ष्टा ष्टः (८. ४. ४१) ।

परन्तु अल् के परे रहने पर जो विधि उसमें स्थानिवद् भाव का निषेध है अतः स्थानिवद् भाव नहीं होता जिससे इकार का यकार न माना जाकर इकार ही माना जाता है, अब 'हसि च' की प्रवृत्ति ही नहीं होती अतः एव क इष्टः यही प्रयोग माधु है)

अच परस्मिन् पूर्वविधौ १।१।५६

प० वि०—अच ६।१ परस्मिन् ७।१। (निमित्तसप्तम्या एकवचनम् ।) पूर्वविधौ ७।१॥ स०—पूर्वस्य विधि पूर्वविधि तस्मिन् पूर्वविधौ ।

अर्थ—[स्थानिवदादेश] परनिमित्तक अजादेश पूर्वविधौ कर्त्तव्ये स्थानिवद् भवति ।

(पर की निमित्त या कारण मानकर अच् के स्थान में जा आदेश वह स्थायी के समान माना जाता है पूर्व की विधि करने में)

उदा०—पटयति ।

सि०—पटुभाचष्टे करोतीति पटयति पटुम् शिच् । पटु अस् शिच् । पटु शिच् । पटु इ^३ । पट् इ । अत्रेव बोध्यम्—पट् इ इति स्थिते 'अत उपधाया' इति वृद्धि प्राप्नोति । स्थानिवदादेशो भवति इति वचनात् स्थानिवत्त्वात् वृद्धिर्न भवति । पुन अल [स्थाने] विधौ न स्थानिवद् इति वचनात् स्थानिवत्त्वभावात् वृद्धि प्राप्नोति । पुनश्च अच परस्मिन्निति स्थानिवद्भावो भवतीति न प्रवर्त्तते वृद्धिविधायक सूत्रमितिः पट् इ । पटि^४ लट् । पटि ल् । पटि तिप् । पटि शप् ति । पटे^५ अ ति । पटयति^६ ।

१—तत्त्वरोति तदाचष्टे (३ १. २६ वा०) प्रत्यय (३. १. १) परश्च (३ १ २) २—*अलोविभे विग्रहे* सनाद्यन्ता धातव (३ १ ३२) सुपो षानुप्रातिपदिक्या (२ ४. ७१) मदर्शन लोप (१ १ ५६) ३—पुट् (१ ३. ७) तस्य लापः (१ ३ ६) मदर्शन लोपः (१ १ ५६) ४—साविष्टवत्-प्रातिपदिकस्य (६ ४ १५५ वा०) ५—सनाद्यन्ता धातव (३ १ ३२) धातो (३ १ ६१) वर्तमान लट् (३ २ १२३) प्रत्यय (३ १ १) परश्च (३. १. २) ६—निटशित्सावंपानुक्म् (३ ४. ११३) सावंपानुक्के यक् (१ १ ६७) क्त्तरि शप् (३ १ ६८) ७—सावंपानुक्कार्पंपानुक्कयो (७ ३ ८४) इको गुणवृद्धी (१ १ ३) स्यात्स्वरतम (१. १ ४६) ८—एचोऽभ्यवापाव (६ १ ७८) यथास्यमनुदश समानाम् (१ ३ १०)

(यहा पर 'पट् इ' इस स्थिति में 'अत् उपधाया' इस मूत्र में वृद्धि प्राप्त होती है। लेकिन 'स्थानिवदादेश' इस मूत्र में आदेश स्थानी के समान हो जाता है, इस कारण उकार पुनः महा आ गया जिसमें उपधा में अकार नहीं मिला और जब उपधा में अकार ही नहीं तो वृद्धि किसको हो। उपधा सजा अन्विधि है, अत् विधि में स्थानिवद् का निषेध है। अत् उकार का स्थानिवद् भाव नहीं माना जावेगा जिससे फिर वृद्धि प्राप्त हो गई। इस प्रकार से वृद्धि प्राप्त होने पर 'अचः परिस्मिन् पूर्वविधौ' इस मूत्र का आरम्भ किया गया है। जिसमें स्थानिवद् भाव हो गया और वृद्धि नहीं हुई। अन्विधि में स्थानिवत् कराना हो इस मूत्र का प्रयोजन है।

न पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वारदीर्घजश्चविधिषु ।

१।१।५७

प० वि०—न अ०। पदान्त-द्विर्वचन-वरे-यलोप-स्वर-सवर्ण-अनुस्वार-दीर्घ-जश्-चविधिषु ७।३॥ स०—पदे अन्तः पदान्तः। पदान्तश्च द्विर्वचनं च वरे च यलोपश्च स्वरश्च सवर्णं च अनुस्वारश्च दीर्घश्च जश् चर्च इति पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वारदीर्घजश्चः। त्रिविधश्च त्रिविधश्च विविदश्च विविदश्च विविदश्च विविदश्च विविदश्च विविदश्चेति विधयः। पदान्त-द्विर्वचन-वरे-यलोप-स्वर-सवर्ण-अनुस्वार-दीर्घ-जश्-चराम् विधयः इति पदान्त-द्विर्वचन-वरे-यलोप-स्वर-सवर्ण-अनुस्वार-दीर्घ-जश्-चर्-विधयः तेषु (प० तत्पु०)।

अर्थ—[स्थानिवद् अच. परिस्मिन्] पदान्तादिषु विधिषु परिमित्त-कोऽजादेशो न स्थानिवद् भवति। (पदान्तादि विधियों के करने में पर को निमित्त मानकर जो अच् का आदेश है, वह स्थानिवत् नहीं होता है)

उदा०—१. पदान्तविधौ—की स्तः, यौ स्तः, कानि सन्ति, यानि सन्ति। २. द्विर्वचनविधौ—दृद्ध्यत्, मदध्यत्। ३. वरेविधौ—याया-चरः। ४. यलोपविधौ—कण्डूतिः। ५. स्वरविधौ—चिरीर्षकः। ६. सवर्णविधौ—रुचः। ७. अनुस्वारविधौ—रुचः। ८. दीर्घविधौ—प्रति-दीप्ते। ९. जश्विधौ—मग्निः। १०. चर्चविधौ—जहनुः, जह्नुः।

सि०—अम् लट्। अम् तम्। अम् शप्। तम्। अम् तम्।

१—वर्तुर्गु (३. १. ६८) २—प्रतिप्रवृत्तिभ्यः घन. (२. ४. ७०)

स्तस्^१ । स्तः । अस्^२ क्ति । अस्^३ अन्ति । अस्^४ शप् अन्ति । अस्^५ अन्ति । स्^६ अन्ति । सन्ति । कौ स्त^७, कानि सन्ति इत्यत्र अस्^८ घातोरकारो लुप्यते । तस्य स्थानिवद्भावाद्वादेशो यणादेशश्च प्राप्नोति । अनेनाजादेशस्य स्थानिवत्त्वाभावाद्वादेशो यणादेशश्च न प्रवर्तते ।

(अम् घातु का अकार लोप होता है । उस अकार के स्थानिवत् हो जाने से एचोऽयवायाव् से आव् और 'कानि सन्ति' में 'इको यणचि' से यण् प्राप्त होता है । परन्तु इस सूत्र से स्थानिवत्त्व का निषेध हो जाने से आवादेश और यणादेश नहीं होता)

दधि अत्र । दध् य्^२ अत्र । दध् ध्^३ य् अत्र । दध्^४ ध्यत्र । क्लृयणादेशः परनिमित्तकः । तस्य स्थानिवद्भावात् 'अनिच च' इति धकारस्य द्विवचनं न प्राप्नोति; अस्माद् वचनात् स्थानिवत्त्वभावस्य निषेधे द्विवचनम् भवति॥

(यहा पर 'इको यणचि' से जो यण का आदेश है वह पर को कारण मान कर हुआ, इसलिये 'अच परस्मिन् पूर्वविधौ' इस सूत्र से स्थानिवद् भाव हो जाता है । ऐसा करने से पुनः य् को इ माना गया जिससे 'अनिच च' इस सूत्र से 'अच्' परे न हो ऐसा नहीं हुआ' जिससे द्विवचन प्राप्त हो नहीं हो रहा है, इसलिये इस सूत्र के द्वारा उस स्थानिवद् भाव का द्विवचन विधि में प्रतिषेध कर दिया गया जिम कारण द्विवचन हो गया)

या यङ्^१ । या या य^२ । य या^३ य । यायाय^४ । यायाय वरच्^५ । यायाय वर । यायाय^६ वर । याया वर^७ । इत्यत्र यङोऽकारस्य स्थानिवत्त्वात् आतो लोप उटि च इत्यनेन आकारलोपः प्राप्नोति परन्तु स न भवति स्थानिवत्त्वम्य प्रतिषेधात् ।

कण्डूञ् गात्रविघर्षणे । कण्डू कित्च्^१ । कण्डू ति । कण्डू यक्^२

- १—श्नमोरल्लोपः (६. ४. १११) २—इको यणचि (६. १. ७७) ३—अनिचि च (८. ४. ४७) ४—भला जदभति (८. ४. ५३) ५—घातोरकारो हलादेः क्रियासप्तमिहारे यङ् (३. १. २२) प्रत्यय (३. १. १) परश्च (३. १. २) ६—सग्यङो. (६. १. ६) ७—पूर्वोऽभ्यास (६. १. ४) अत्र लोपोऽभ्यासस्य (७. ४. ५८) ह्रस्वः (७. ४. ५६) ८—दीर्घोऽवित् (७. ४. ८३) ९—यश्च यङ् (३. २. १७६) १०—घातुघातुके (६. ४. ४६) अतो लोप (६. ४. ४८) ११—लोपो व्योर्वलि (६. १. ७६) १२—क्विच्यो च सजायाम् (३. ३. १७४) १३—कण्डूवादिभ्यो यक् (३. १. २७)

ति । कण्ठ् य ति । कण्ठ् य् ति । इत्यत्र अकारलोपः परनिमित्तकः । यदि अयमकारः स्थानिवन्त्यान् तदा 'लोपो व्योर्वालि' (६. १. ६६) इत्यनेन मूत्रेण यकारस्य लोपो न भवेत् ; परन्तु यनोपविधिं प्रति अजादेशो न स्थानिवद् भवति । अत एव अत्र स्थानिवत्त्वस्याभावाद् अकारभावान् यकारस्य लोपो भवत्येव तथा च कृते क्कण्ठ् ति । कण्ठ्ति मु । कण्ठ्तिः । ;

(यहा पर क्तिव् धार्यपानुक् के कारण मे घकार का लोप होता है । यदि इस घकार का स्थानिवद् भाव हो जाय तो 'लोपो व्योर्वालि' इस सूत्र मे यकार का लोप न हो । लेकिन घकार (घ) लोप के प्रति घ्रच् के आदेश को स्थानिवद् भाव नहीं होता है । इसलिए ही स्थानिवद् भाव के न होने मे घकार के प्रभाव के कारण यकार का लोप हो ही जाता है)

डुरुभू^१ । कृ मन्^२ । कृ^३ म । क्ति^४ स । कीर्^५ म । कीर् कीर् म^६ । कीर् कीर् स । कि^७ कीर् स । चि^८ कीर् स । चिकीर्ष^९ रघुन् । चिकीर्ष यु । चिकीर्ष अक^{१०} । चिकीर्ष^{११} अकः इत्यत्र लिनप्रत्ययान् पूर्वमुदात्ते कर्तव्ये परनिमित्तकोऽकारलोपो न स्थानिवद् भवतिः

(यहाँ पर क्तिव्प्रत्यय के परे रहने पर पूर्व को उदात्त होता है । जो उदात्त करने में पर को घर्षान् 'प्रक' को मानकर जो घकार का लोप हुआ है वह पर को निमित्त मानकर सोनरूप आदेश है, इसलिए यदि स्थानिवद्भाव ही जाय तो वह घकार ही उदात्त हो जाय, लेकिन स्वर की विधि करने में स्थानिवद्भाव नहीं होता है, अतः स्थानिवद्भाव नहीं हुआ । तिसरे 'की' का ई उदात्त हुआ ।)

१-घतो मोरः (६. ४. ४८) २-हृत्प्रत्यय (१. ३. ३) आदित्रिदुदरः (१. ३. १) तस्य मोरः (१. ३. ६) ३-घातोः कर्मणुः समानकर्तृवादिप्रत्यया वा (३. १. ७) प्रथमः (३. १. १) परस्य (३. १. २) ४-धार्यपानुक् लोपः (३. ४. ११४) धार्यपानुक्च्येष्ट वनादेः (७. २. ३१) एवाच उददेशेऽनुदात्तात् (७. २. १०) दातो भन् (१. ७. ६) क्तिनि च (१. १. १) घञ्जलसमां गति (६. ४. १६) ५-कृत् इद् घातोः (७. १. १००) ६-हृत्ति च (८. २. ७७) ७-गन्धतोः (६. १. ९) ८-पूर्वोऽभ्यासः (६. १. ४) अत्र मोरोऽभ्यासस्य (७. ४. ९८) हनादिः लोपः (७. ४. ६०) ९-ह्रास्यः (७. ४. २६) १०-बुहोत्सुः (७. ४. ६२) ११-आदेशप्रत्यययोः (८. ३. २६) १२-बुहोत्सु-मादी (७. १. १) १३-धार्यपानुक् (६. ४. ४६) घतो लोपः (६. ४. ४८)

रुन्धः । रुधिर् आवरणे । रुध् लट् । रुध् ल् । रुध् तस । रुश्नम्ध्^१
तस् । रुन्ध् तस् । रुन्ध्^२ तस् । ऋइत्यत्र अनुस्वारे कर्त्तव्येऽकारलोपो
न स्थानिवद् भवतिः

(यहा पर पर को निमित्त मानकर 'न' के अकार का लोप हुआ, उसका पूर्व की विधि अर्थात् अनुस्वार के करने में स्थानिवद्भाव होना प्राप्त है । यदि स्थानिवद्भाव हो जाय तो 'नश्चापदान्तस्य भलि' इस सूत्र से अनुस्वार करने में भलादि नहीं मिलता जिससे अनुस्वार नहीं हो सकता है । इसलिए इस सूत्र से अनुस्वार की विधि करने में जो - पर को निमित्त मानकर अच का लोपह्य आदेश है, उसको स्थानिवद्भाव नहीं होता । इससे भलादि मिल गया और अनुस्वार हा गया ।)

तत रुध् तस् इति स्थिते रुन्ध् तस् ऋइत्यत्र परसवर्णादेशे कर्त्तव्ये
अकारलोपो न स्थानिवद् भवतिः

(यहा पर 'अनुस्वारस्य यदि परमवर्णं (८-४ ५७) इस सूत्र से अनुस्वार का परसवर्ण आदेश के करने में स्थानिवद्भाव नहीं होता है । यदि स्थानिवद्भाव हो जाय तो अकार का स्थानिवद् भाव हो जायेगा । जिससे यद् प्रत्याहार मिलेगा नहीं । और पूर्वसवर्ण ही ही नहीं सकता । इसलिये 'न पदान्त'० इस सूत्र का निर्माण किया गया जिससे परसवर्ण की विधि में स्थानिवद्भाव नहीं होता है ।)

प्रतिदीप्ने । प्रतिद्विवन् डे । प्रतिद्विवन् ष । प्रतिदीप्नेः इत्यत्र
अलोपोऽन (६. ४. १३४) इत्यनेन परनिमित्तेऽकारलोपे कृते 'हलि च'
इति दीर्घे कर्त्तव्ये अलोपो न स्थानिवद् भवतिः

अद् । घस्त्व^३ । घस्त्व कितन्^४ । घस्त्व ति । घस्^५ ति ।
घ्^६ स् ति । घ्^७ ति । घ् धि^८ । ऋ इत्यत्र उपधायां स्थितस्य अकार-
स्य स्थानिवद् भावात् 'भलां जश् भशि' इति जश्त्वं न प्राप्नोति, तदनेन

- १—रुपादिभ्यः ङाम् (३ १ ७८) मिदचोऽन्त्यात्परः (१. १. ४६)
२—एनमोरल्लोप (६ ४ १११) ३—बहुव छन्दसि (२. ४. ३६) ४—
स्थानिवदादेशोऽनल्लिपो (१. १. ५५) भूवादयो घातव (१ ३. १) घातो (३.
१. ११) स्त्रियां कितन् (३ ३. ६४) ५—उपदेशेऽननुनासिक इत् (१. ३. २)
६—यसिमसोर्हन्ति ष (६ ४. १००) ७—भ्रनो भलि (८ २. २ ६) ८—
भ्रपन्तपोर्होऽथ (८. २. ४०)

स्थानिवद्भावस्य प्रतिषेधः क्रियतेः ततः ग्वि^१ मु । ग्विः । समाना^२ ग्विः । सग्विः ।

(यहा पर पर को निमित्त मानकर प्रकार का लोप होता है । घोर लोप के हो जाने पर 'हलि च' इस मूत्र से दीर्घ की प्राप्ति है लेकिन परनिमित्तक अजादेश पूर्व विधि के करने में स्थानिवद् हो जाता है । तो यदि स्थानिवद् हो जाय, तो यहा पर हल् के परे न मिलने से दीर्घ हो ही नहीं सकता । लेकिन 'न पदान्त'० इस मूत्र से दीर्घविधि में स्थानिवद्भाव का निषेध कर दिया गया जिससे यहाँ स्थानिवद्भाव के न होने से दीर्घ हो जाता है)

अद् । घम्^३ । घम्^३ लिट्^४ । घस्^५ अतुस्^६ । घ्स्^७ अतुम् । यस्^८ घ्स्^७ अतम्^९ । घ^८ न्स्^७ अतुम् । क^{१०} घ्स्^७ अतुस् । ज^{११} घ्स्^७ अतुस् इत्यत्र अकारलोपस्य स्थानिवद्भासान् 'खरि च' इत्यनेन मूत्रेण घकारस्य चत्वं न प्राप्नोति तदनेन स्थानिवद्भावस्य अभावाद् भवति । ज क्म^{१२} अतुम् । जक्प्^{१३} अतुस् । जनतुः ।

द्विवचनेऽचि १।१।५८

प० वि०—द्विवचने ७१ अचि ७१॥ स०—द्विवचनं च द्विवचनं चेति द्विवचनम्, तस्मिन् द्विवचने ।

अर्थ—[स्थानिवदादेशः अचः] द्विवचननिमित्तेऽचि अजादेशः स्थानिवद् भवति द्विवचने एव कर्त्तव्ये ।

(द्विवचन का कारण जो अजादि प्रत्यय है उसके परे रहने पर जो घच् का प्रादेश वह स्थानिवद् हो जाता है द्विवचन विधि के ही करने में)

उदा०—पपतुः, पपुः ।

सि०—पा लिट् । पा अतुम् । प^{१४} अतुम् इत्यत्रेदं बोध्यम् अनिदेशो

१—मना जग् भवि (८. ४. ५३) २—समानस्य च्छन्दस्य० (६. ३. ८०) ।

३—लिट्यन्यतरस्याम् (२. ४. ४०) ४—परोक्षे लिट् (३. ०. ११५)

५—तस्य (३. ४. ७७) लिप्तस्मिन् (३. ४. ७८) परस्मैपदानाम् (३. ४. ८०)

६—असयोगाल्लिट् कित् (१. २. ५) गमहनजनस्यनणाम् (६. ४. ६८)

७—द्विवचनेऽचि (१. १. ५८) लिटि घातोरेतद्व्यासम् (६. १. ८) ८—

पूर्वोऽन्त्यासः (६. १. ४) अत्र लोपोऽन्त्यासम् (३. ४. १८) ऋदादि. संघ.

(७. ४. ६०) ९—कुहोरनुः (७. ४. ६२) १०—अभ्यासं च्चं (८. ६. ५५)

११—खरि च (८. ४. ५५) १२—आगिर्वादिः (८. ३. ६०) १३—

१३—घातो लोप इटि च (६. ४. ६४)

द्विविधो भवति-कार्यातिदेशः, रूपातिदेशश्च । तत्र कार्यातिदेशे कार्य-
सिद्ध्यर्थमादेशं स्थानितुल्य मत्वाऽऽदेशेनैव कार्याणि क्रियन्ते । तेन
स्थान्यादेशोभयाश्रयाणि कार्याण्यदेशे भवन्ति । रूपातिदेशे तु स्थानिनो
यद् रूपं तदेव तत्रागच्छति, स्थान्याश्रयाण्येव कार्याणि भवन्ति, नैवा-
देशाश्रयाणि । अस्मिन् सूत्रे तु रूपातिदेशोऽस्तिक्लृप् अतुस् । पा प्
अतुस् । प पतुस् । पपतुः ।

(अतिदेश दो प्रकार का होता है—एक को तो कार्यातिदेश और दूसरे को
रूपातिदेश कहते हैं । कार्यातिदेश में कार्य को सिद्ध करने के लिये आदेश को
स्थानी के समान मानकर आदेश से ही कार्य किये जाते हैं । इस प्रकार आदेश
में स्थानी और आदेश इन दोनों का आश्रय कर कार्य किये जाते हैं । परन्तु
रूपातिदेश में स्थानी का जो रूप है वह ही वहाँ आ जाता है और केवल स्थानी
के आश्रय से ही कार्य होते हैं आदेश के आश्रय से नहीं । इस सूत्र में रूपाति-
देश है । प् अतुम् यहाँ पर आकार का जो लोप हुआ है उसका रूप ही प्रकार
खड़ा हो जायेगा, जिससे 'पा' बन गया और अब इसका द्विवचन होता है ।)

अदर्शन लोप १।१।५६

प० वि०—अदर्शनम् १।१ लोप १।१। स०—न दर्शनम् अदर्शनम् ।
(नञ् लोपे)

अर्थ—[नवेति विभाषा इत्यत इति शब्दो मण्डकप्लुत्या अनुवर्तते]
(विद्यमान वस्तु के अदर्शन की लोप सज्ञा होती है)

क्लृप् अत्रेर्द्धं योध्यम्—इतिक्लृप्सोऽर्थनिर्देशार्थं इति भाष्ये प्रसिद्धम् ।
अत एव अत्र अदर्शनरूपस्य अर्थस्य लोपसज्ञा न तु अदर्शन-शब्दस्य ।
अपि चेद ज्ञातव्यम् इन्द्रियैर्प्राप्तो भूत्वाऽप्राप्तो भवति तद् अदर्शनम् ।
यदस्ति एव नहि तस्य अदर्शनस्य लोप सज्ञा कत्र भविष्यति किन्तु यद्
भूत्वा न भवति तद् अदर्शनम् क्लृप् (इति शब्द सूत्रा में इस लोप रत्ना गया
कि वह अर्थ का लोप कराये, यह बात महाभाष्य में प्रसिद्ध है । इस
लिय यज्ञ पर इति की अनुवृत्ति आ जाने से अदर्शन अर्थात् नहीं होने रूप अर्थ
की प्रतीति होती है, अदर्शन शब्द की नहीं । यहाँ यह भी जानने योग्य बात है
कि इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण योग्य होकर जो ग्रहण नहीं होता उसको अदर्शन
कहते हैं । जो है ही नहीं मला उग अदर्शन की लोप सज्ञा कम हो सकती है ।
किन्तु जो पञ्चे होकर परवान् नहीं होता उमरा अदर्शन कहते हैं)

उदा०—पचति ।

प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुप् १।१।२०

प० वि०—प्रत्ययस्य ६।१ लुक्श्लुलुप् १।३। स०—लुक्च श्लश्च लुप् चेति लुक्श्लुलुपः (इतरे० द्वन्द्वः)

अर्थ—[अदर्शनम्] प्रत्ययस्य अदर्शनस्य लुक् श्लु लुप् इत्येताः सन्नाः भवन्ति । (प्रत्यय के अदर्शन की लुक् श्लु धोर लुप् सजा होती है)

उदा०—लुक्-अस्ति । श्लु-जुहोति । लुप्-वरणा ।

सि०—अद् भक्षणे । अद् लट्^१ । अद् ल् । अद् तिप् । अद् ति । अद् शप्^२ ति । अद्^३ ति । अस्ति । हु दानादानयो । हु लट् । हु ल् । हु तिप् । हु शप्^२ तिप् । हु^४ ति । हु ति । हु हु^५ ति । हु^६ ति । हु^७ ति । जु हो^८ ति । जुहोति ।

प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् १।१।६१

प० वि०—प्रत्ययलोपे ७।१ प्रत्ययलक्षणम् १।१। स०—प्रत्ययस्य लोपः प्रत्ययलोपः तस्मिन् प्रत्ययलोपे । प्रत्ययो लक्षण यस्य कार्यस्य तत्प्रत्ययलक्षणम् (बहु०) ।

अर्थ—प्रत्ययस्य लोपे सति प्रत्ययनिमित्त कार्यं भवति । (प्रत्यय के लोप हो जाने पर प्रत्यय के कारण से जो कार्य प्राप्त है सो होता है) ।

उदा०—कृन् ।

सि०—हुक्^१ । कृ क्विप्^२ । कृ क्वि । कृ वि । कृ व्^३ । कृ^४ । कृ तुक्^५ । कृ तु । कृन् । कृन् सु । कृन् स् । कृन्^६ । कृत् । कृत ।

१—भूवादया घातकः (१. ३. १) घातोः (३ १ ६१) वर्तमाने लट् (३ २. १२३) प्रत्ययः (३. १. १) परस्मिन् (३ १ २) २—कर्त्तरि षप् (३ १. ६८) ३—अदिप्रभृतिभ्यः षप् (२ ४ ७२) ४—जुहोत्यादिभ्यः श्लु (२ ४ ७५) ५—इलौ (६. १. १०) ६—पूर्वाऽभ्यास (६ १ ४) अत्र लोपोऽभ्यासस्य (७ ४ ५८) कुहोर्यु (७. ४ ६२) ७—अभ्यासे चर्चं (८. ४. ५४) ८—सार्वधानुकार्यधानुकार्यो (७ ३ ८४) ९—क्विप् च (३ २. ७६) १०—अपूर्वत एकालप्रत्यय (१ २. ४१) वेरपुवतस्य (६ १ ६७) अदर्शन लोप (१ १ ५६) ११—सार्धधानुक लोप (३ ४ ११४) सार्वधानुकार्य-धानुकार्यो (७. ३. ८४) विडति च (१. १. ५) १२—ह्रस्वस्य पिति कृति लुक् (६. १ ७१) आद्यन्तो० (१. १. ४५) १३—ह्रस्वस्यो० (६. १. ६८)

उदा०—भेत्ता, छेत्ता । साधनं तु एबुल्लृचौ (३ १. १३३) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य १।१।६५

प० वि०—तस्मिन् ७।१ इति अ० । निर्दिष्टे ७।१ पूर्वस्य ६।१

अर्थ—* इतिकरणोऽर्थनिर्देशार्थः । * सप्तम्या निर्दिष्टे पूर्वस्य कार्यं भवति । (मूर्त्तौ में सप्तमी विभक्ति मे निर्देश करने पर पूर्व का ही का होता है) ।

उदा०—दध्यत्र । मध्वत्र । * इति व्यवधानरहितस्य इमारस्य उमारस्य च यणादेशो भवति *

तस्मादित्युत्तरस्य १।१।६६

प० वि०—तस्मात् ५।१ इति अ० । उत्तरस्य ६।१

अर्थ—[निर्दिष्टे] पञ्चम्या निर्दिष्टे परस्य कार्यं भवति । (मूर्त्तौ में पञ्चमी विभक्ति से निर्देश करने पर उत्तर का ही कार्य होता है)

उदा०—आसीनः साधनं तु ईडास (७ २. ८३) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

स्व रूप शब्दस्याशब्दसज्ञा १।१।६७

प० वि०—स्वम् १।१। रूपम् १।१ शब्दस्य ६।१ अशब्दसज्ञा १।१

स०—शब्दस्य सज्ञा शब्दसज्ञा (प० तत्पु०) न शब्दसज्ञा अशब्दसज्ञा ।

अर्थ—शब्दस्य स्वं रूपं ग्राह्यं शब्दसज्ञां वर्जयित्वा (शब्द का अपना रूप ग्रहण करना चाहिये शब्दसज्ञा को छोड़कर)

उदा०—आग्नेयम्, अष्टकपालम् । * अग्निशब्दोऽअग्निशब्दस्यैव ग्राह्यो भवति न ज्वलनः पावको धूमफेतुरित्यादीनाम् * अशब्दसज्ञेति किम् दाधा ध्वदाप् । तरत्तमपौ च । धुमहरेषुं घमहरेषु च सक्षिनां ग्रहणं न सज्ञायाः ।

सि०—साधनं तु अग्नेर्दक् (४. २. ३३) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः १।१।६८

प० वि०—अणुदिन् १।१ सवर्णस्य ६।१ च अ० । अप्रत्ययः १।१।।

स०—उन् इन् यस्य सः उदिन् (बहु०) । अण् च उदिच्चेति अनयोः समाहार अणुदिन् (समा० द्वन्द्वः) । न प्रत्ययः अप्रत्ययः ।

अर्थ—[स्वं रूपम्] अण् उदिच्च सवर्णस्य ग्राह्यो भवति

स्वस्य च रूपस्य प्रत्यय वर्जयित्वा । (अण् और उदित् अपन सवर्णों का ग्राहक होता है और अपन रूप का भी प्रत्यय को छोड़कर)

उदा०—अर् इति परेण णकारेण प्रत्याहारग्रहणम् अद्गुण (६ १ ८७) । अस्य न्वौ (७ ४ ३०) । यस्येति च (६ ४ १४८) । देव इन्द्र देवेन्द्र । इत्यपि सिध्यति खट्वा इन्द्र खट्वेन्द्र इति । उदित् । चुट् (१ ३ ७) । लशस्वतद्धिते (१ ३ ८) । कुचुटुतुपु इत्येते उदित् ॥

तपरस्तत्कालस्य १।१।६६

प० वि०—तपर १।१ तत्कालस्य ६।१।। स०—त परो यस्मात् मोऽय तपर । तादपि परस्तपर । तस्य काल तत्काल तस्य तत्कालस्य । अर्थ—[सवर्णस्य स्व रूपम्] तपरो वर्ण तत्कालस्य सवर्णस्य ग्राहको भवति स्वस्य रूपस्य च । (तपर किया हुआ वर्ण अपन काल वाले सवर्ण का ग्रहण कराता है और अपन रूप का भी)

अङ्गुणान्तरयुक्तस्य ग्राहको भवतीत्यर्थ अत एव 'अतो गुणे' इत्यत्र दीर्घल्पुतयोर्ग्रहणं न भवति । किन्तु उदात्तानुदात्तस्वरितविशिष्टस्य अकारस्य ग्रहणं तु भवत्येव ॥

उदा०—रामै । पचन्ति ।

सि०—राम भिस् । राम ऐस् । रामैस् । रामैरु । रामैर् । रामे ।

आदिरन्त्यन महता १।१।७०

प० वि०—आत्ति १।१ अन्येन ३।१ सह अ० । इता ३।१।।

अर्थ—[स्व रूपम्] अन्येन इता सह आत्ति मध्यपतिताना वर्णाना स्वस्य च रूपस्य ग्राहको भवति । (अतिस इत्मनश्च वर्ण व साथ आदि अपना ग्रहण कराता है और अपन बीच म आन वाले वर्ण का भी)

उदा०—अण् इत्यनेन अ इ उ, अक् इत्यनेन अ इ उ ऋ लृ इत्येतेषां ग्रहणं भवति ।

येन विविस्तदन्तस्य १।१।७१

प० वि०—येन ३।१ विधि १।१ तन्तस्य ६।१।। स०—सोऽन्तो यम्य तत् तन्तस्य तन्तस्य (बहु०)

अर्थ—[स्व रूपम्] येन विशेषणेन विविधिधीयते स तन्तस्य

आत्मान्तस्य समुदायस्य प्राट्को भवति स्वम्य च रूपस्य । (जिस विशेषण में विधान किया जाता है वह तदन्त का तथा अपने म्य का प्राहक होता है)

उदा०—जयः, चयः, अयः ।

सि०—जि जये । चिच् चयने । ट् गती । जि अच् । जे अ । जय मु । जयः । चि अच् । चे अ । चय् य । चयमु । चय । उ अच् । ए अ । अय् अ । अय मु । अयः अच् अच् बोध्यम्-घातोरित्यविभक्त्य एरच् इति विधीयते । नस्यायमर्थः एः घातोरच् प्रत्ययो भवति । इत्यत्र घातुविशेष्यं णरिति विशेषणम् । तत्कथं भवति । इवर्णान्ताद् घातोरच् प्रत्ययो भवति इत्येतादृशोऽर्थो भवति । येन विधिस्तदन्तम्येति (१. १. ७?) सूत्रेण ।

(घातो. का अधिकार करके 'एरच्' इस मूत्र का विधान किया गया है । इस मूत्र का यह अर्थ है इवर्णं घातु में अच् प्रत्यय होता है । इवर्णं का क्या अर्थ है । यहाँ पर इवर्णं विशेषण है और घातु विशेष्य है । ऐसे स्थान के लिए 'येन विधि'० यह मूत्र बनाया गया है । अर्थात् विशेषण अपने तदन्त का प्राहक होता है इसमें इवर्णं अर्थात् इवर्णान्ति घातु म अच् प्रत्यय होता है, ऐसा अर्थ हुआ) ।

वृद्धिर्म्याचामादिस्तद्वृद्धम् १।१।७२

प० वि०—वृद्धिः १।१ यम्य ६।१ अचाम् ६।३ आदिः १।१ तन् १।१ वृद्धम् १।१

अर्थ—यस्य समुदायस्य अर्चां मध्ये आद्यञ् वृद्धिः, तद्वृद्धमनं भवति । (जिस समुदाय के अर्चों के बीच में प्रारम्भिक अच् वृद्धि है उसकी वृद्ध सजा होती है ।

उदा०—शालीयः, मालीयः ।

त्यदादीनि च १।१।७३

प० वि०—त्यदादीनि १।३ च अ० ॥ स०—त्यद् आदिर्येषाम् तानि इमानि त्यदादीनि ।

अर्थ—[वृद्धम्] त्यदादीनि प्रातिपदिकानि वृद्धमज्ञानि भवन्ति । (त्यद् इत्यादि प्रातिपदिकों की वृद्धमज्ञा होता है ।

उदा०—त्यदीयम्, भवदीयम् ।

सि०—त्यद् छ । त्यद् ड्य । त्यदीय मु । त्यदीय अच् । त्यदीयम् ।

इत्यष्टाध्यायीप्रकाशिकाया प्रथमाध्यायं प्रथमः पादः

डित्कितप्रकरणम्—

गाड् कूटादिभ्योऽङ्गिण [ङित्] १।२।१

सार्वधातुकमपित् १।२।४

प० वि०—सार्वधातुकम् १।१। अपित् १।१। स०—न पित् इति अपित् (नञ् तत्पु०)

अर्थ—[ङित्] अपित् सार्वधातुक द्विद्वद्भवति । (पित् भिन्न सार्वधातुक प्रत्यय ङित् के समान होता है)

उदा०—कुरुत्, कुर्यन्ति ॥ चिनुत्, चिन्वन्ति ।

सि०—डुकृञ् । कृ । कृ लट् । कृ लृ । कृ तस् । कृ उ^१ तस् । क उ^२ तस् । कु^३ उ तस् । कुर^४ उ तस् । कुरुतस् । कुरुत् । कृ उ फि । कुर्यन्ति^५ । चिञ् । चि तस् । चि श्नु^६ तस् । चि नु तस् । चिनुतस् । चिनुत्^७ । चि नु अन्ति । चिन्वन्ति ।

असयोगाल्लिट् कित् १।२।५

प० वि०—असयोगान् ५।१ लिट् १।१ कित् १।१। स०—न संयोग इति असयोग तस्मात् असयोगान् (नञ् तत्पु०)

अर्थ—[अपित्] असयोगान्ताद्घातो पश्चादपिल्लिट् द्विद्वद्भवति ॥ (असयोगान्त धातु क पश्चात् पित् भिन्न लिट् कित् क समान होता है)

उदा०—विभिदतु, विभिदु ।

सि०—भिद्विर् । भिद् । भिद् लिट् । भिद् लृ । भिद् तिप्तस्० । भिद् अतुस्^१ । भिद् भिद् अतुस्^२ । भि^३ भिद अतुस् । वि^४ भिद् अतुस् । विभिदतु । भिद् उस् । विभिदु ॥

१—तनादिङ्ङम्य उ (३ १ ७६) २—सावधानुकार्यधातुत्वयो (७. ३. ८४) ३—घत् उत् सावधानुक (६ ४. ११०) ४—उरल् रपर (१ १. ५०) ५—इवा यणचि (६. १. ७७) ६—स्वादिभ्य श्नु (३ १ ७३) ७—सार्वधातुकार्यधातुत्वयो (७ ३. ८४) सावधानुकमपित् (१ २. ४) कित्ति च (१. १. ५) ८—गुणन्तलघूपधस्य च (७ ३. ८६) असयोगाल्लिट् कित् (१. २. ५) कित्ति च (१. १. ५) ९—लिटि घातोरनम्यामस्य (६. १ ८) १०—पूर्वोऽम्याम (६. १. ४) घत् सापोऽम्यामस्य (७. ४. ५८) ह्लादि घोष. (७. ४. ६०) ११—अम्यामे षच् (८ ४. ५४)

अर्थ—[अच्] उच्चैस्सरेण उच्चार्यमाणो अच् उदात्तसज्ञको भवति । (ऊचे स्वर से उच्चारण किये जाने वाले अच् की उदात्त सज्ञा होती है)

नीचैरनुदात्त १।२।३०

प० वि०—नीचैः अ० । अनुदात्त १।१

अर्थ—[अच्] नीचैस्सरेण उच्चार्यमाणोऽच् अनुदात्तसज्ञको भवति । (नीचे स्वर से उच्चारण किये जाने वाले अच् की अनुदात्त सज्ञा होती है)

समाहार स्वरित १।२।३१

प० वि०—समाहार १।१ स्वरित १।१

अर्थ—[उदात्त अनुदात्त अच्] उदात्तानुदात्तयोस्समाहारो योऽन् सः स्वरितसज्ञको भवति (बराबर ऊचे और नीचे स्वर से उच्चारण किये जाने वाले अच् की स्वरितसज्ञा होती है)

[एकश्रुति] दूरात्सम्बुद्धौ १।२।३३

स्वरितात्सहितायामनुदात्तानाम् १।१।३२

प० वि०—स्वरितात् १।१ सहितायाम् ७।१ अनुदात्तानाम् ६।३

अर्थ—[एकश्रुति] सहितायां विषये स्वरितात्परेपामनुदात्तानामेक श्रुतिर्भवति । (सहिता के विषय में स्वरित के पश्चात् अनुदात्तों की एकश्रुति होती है)

उदाहरणं साधनं च उदात्तानुदात्तस्य स्वरितः (स ४. ६५) इति सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतर १।२।४०

प० वि०—उदात्तस्वरितपरस्य ६।१ सन्नतरः १।१ ॥ स०—उदात्तः परो यस्मात्स उदात्तपरः (बहु०)स्वरितः परो यस्मात्स स्वरितपरः (बहु०)

उदात्तपरश्च स्वरितपरश्चेति उदात्तस्वरितपरः (उत्तरपदलोपी समासः) तस्य ।

अर्थ—[अनुदात्तानाम्—सामर्थ्यादेकवचनेन विपरिणाम्यते] उदात्तपरस्य स्वरितपरस्य चानुदात्तस्य सन्नतरः आदेशो भवति । अनुदात्ततर इत्यर्थः । (उदात्त और अनुदात्त परे है निष्पत्ते ऐसे अनुदात्त को अनुदात्ततर आदेश होता है)

न क्त्वा सेट् १।१।१८

प० वि०—न अ० । क्त्वा १।१ या (अव्ययपदम्) । सेट् १।१ ॥
स०—इटा सह इति सेट् (तृतीया तत्पु०)

अर्थ—सेट् क्त्वाप्रत्यय किन्न भवति । (इट के साथ क्त्वाप्रत्यय कित् नहीं होता है)

उदा०—देवित्वा, वर्त्तित्वा ॥

सि०—द्विच् । द्विच् क्त्वा^१ । द्विच् त्वा । द्विच् इट् त्वा । द्विच् इत्वा । देवित्वा^२ । देवित्वा सु । देवित्वा स । देवित्वा ॥ घृत्तु । घृत्त्वा । घृत्तित्वा ॥

ऊकालोऽज्जह्रस्वदीर्घप्लुत १।२।२७

प० वि०—ऊकाल १।१ अच् १।१ ह्रस्वदीर्घप्लुत १।१ ॥स०—उ ऊ उ३काल इति ऊकाल । ऊ इत्येतेषा काल इच कालो यस्य अचः स ऊकाल (बहु०) ॥ ह्रस्वश्च दीर्घश्च प्लुतश्च इति ह्रस्वदीर्घप्लुत ॥

अर्थ—ऊकालोऽज्ज यथासंख्य ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञको भवति (ऊकाल के समान काल हैं जिसके ऐसे अच की क्रमशः ह्रस्व दीर्घ और प्लुत संज्ञा हाती है)

उदा०—ऊकालो ह्रस्व—दधि, मधु ॥ ऊकालो दीर्घ—कुमारी, गौरी ॥ उ३काल प्लुत—देवदत्त ३ अन्नसि ॥

ऋग्वृत्पोदाहरणानिः

अचश्च १।२।२८

प० वि०—अच ६।१ च अ० ।

अर्थ—[ह्रस्वदीर्घप्लुत] ह्रस्वदीर्घप्लुता अच एव स्थाने भवन्ति ॥ (ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत अच् ही के स्थान में होते हैं)

उदा०—अतिरि, अतिनु, अतिगु ।

सि०—हरयो नपु सके प्रातिपदिकस्य । रै, अतिरि ॥ नौ, अतिनु । गो, अतिगु ॥ साधन तु लुगतिप्रादय (२. २. १८) इति सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

उच्चैरुदात्त १।२।२९

प० वि०—उच्चै अ० । उदात्त १।१

१—समानवर्तुण्यो पूर्वकाले (३. ४ २१) २—पुगतत्तपूपपस्य च (७ ३. ८६)

उदा०—कष्टश्रित, गङ्कुलाखण्डः, चूनाद्रुः, वृकभयम्, राजपुम्पः, अन्नशौण्डः ।

सि०—कष्ट^१ श्रितः इति कष्टश्रितः । कष्ट^२ अन् श्रित मु । कष्ट^३ अन् श्रित मु । उपसर्जसंज्ञा यान् कष्टगण्डस्य पूर्वप्रयोगः । कष्टश्रित । कष्टश्रित^३ मु । कष्टश्रित स् । कष्टश्रितः । शङ्कुला^४ खण्ड इति शङ्कुलाखण्डः । शङ्कुला टा खण्ड मु । गङ्कुलाखण्डः । चूना^५ द्रु^६ इति चूनाद्रुः । चू डे द्रु मु । चूनाद्रुः । वृक^७ भयम्^८ अन् इति वृकभयम् । वृक भयम् भय मु । राज^९ पुम्प इति राजपुम्पः । राजन् इन् पुम्प मु । राजन् पुम्प । राजन्पुम्प । राजपुम्प । राजपुम्पः । अन्नेपु^{१०} शौण्डः इति अन्नशौण्डः । अन्न मुप् शौण्ड मु ।

एकविभक्ति चापूर्वनिपाते १।२।४४

प० वि०—एकविभक्ति १।१ च अ० । अपूर्वनिपाते ७।१॥ स०—एका विभक्तिर्यन्य तद्विभक्त्यविभक्तिपदम् । पूर्वप्रयोगो निपातः । पूर्वनिपातः (कर्म० तपु०) न पूर्वनिपातोऽपूर्वनिपातः तस्मिन् (नञ् तपु०)

अर्थ—[उपसर्जनम्] (नियतयाचो एकगण्डः) नियतविभक्तिपदम् उपसर्जनमंत्रं भवति पूर्वनिपातोपसर्जनकार्यं वर्जयित्वा ॥ (नियत विभक्ति बाले पद की उपसर्जनसज्ञा हाता है पूर्व निपात होने वाले उपसर्जन कार्य को छाड़कर)

उदा०—निष्कौशाम्बि, निर्गोपणमिः ।

सि०—निष्कान्तः कौशाम्ब्याः इति निष्कौशाम्बि ॥ निष्कान्तं निष्कान्तेन निष्कान्ताय निष्कान्तान् निष्कान्तम्य निष्कान्ते वा कौशाम्ब्याः इति निष्कौशाम्बिः ॥ पूर्वपदे नानाविभक्तिकेऽप्युत्तरपदं पञ्च-

- १—समर्थ पदविधिः (२. १. १) प्राक्कडाणत् समास (२. १. १.) सह मुपा (२. १. ४) तन्पुत्र. (२. १. २०) द्वितीया धितार्तोपपत्तिगतात्यस्त-प्राप्तापत्तं (२. १. २४) २—प्रथमानिदिष्ट समास उपसर्जनम् (१. २. ४३) उपसर्जनं पूर्वम् (२. २. ३०) कृतद्वितसमासाश्च (१. २. ४६) मुतो० (२. ४. ७१) ३—कृतद्वितसमासाश्च (१. २. ४६) इयाप्रतिपदिक्ताव (४. १. १) स्वोत्रन्० (४. १. २) ४—तृतीया तत्प्रायेण गुणवचनेन (२. १. ३०) ५—चतुर्थी तदार्थार्थलिहितमुक्तरहितः (२. १. ३६) ६—पञ्चमी मनेन (२. १. ३७) ७—षष्ठी (२. २. ८) ८—सप्तमी शौण्डं (२. १. ४०)

उदाहरण साधन च उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित (८ ४ ६५) इति सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

अपृक्त एकाल्प्रत्यय १।२।४१

प० वि०—अपृक्त १।१ एकाल्प्रत्यय १।१॥ स०—एकश्चासौ अल च इति एकाल् । (कर्म० तत्पु०) एकाल् चासौ प्रत्ययश्च इति एकाल्प्रत्यय (कर्म० तत्पु०)

अर्थ—(असहायवाची एकशब्द) एकाल्प्रत्यय अपृक्तसन्नको भवति । (असहाय अल वाले प्रत्यय की अपृक्त सना होती है ।

उदा०—याक्, लता, कुमारी, घृतस्पृक् ।

सि०—वाच् सु । वाच् म् । वाच् ळ । वाक् ळ । वाग् ळ । वाक् ळ । घृतस्पृश् क्विन् ळ । घृतस्पृश् व् । घृतस्पृश् ळ । घृतस्पृक् ळ ।

तत्पुरुष समानाधिकरण कर्मधारय १।२।४२

प० वि०—तत्पुरुष १।१ समानाधिकरण १।१ कर्मधारय १।१॥ स०—समानाधिकरण ययोरिति समानाधिकरण (बहु०)

अर्थ—समानाधिकरण तत्पुरुष कर्मधारयसन्नो भवति (समानाधिकरण वाले तत्पुरुष की कर्मधारय सना होती है)

उदा—परमराज्यम्, उत्तमराज्यम्, नीलात्पलम् । साधन विशेषण विशेष्येण बहुलम् (२ १ ५६) इति सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

प्रथमानिर्दिष्ट समास उपसर्जनम् १।२।४३

प० वि०—प्रथमानिर्दिष्टम् १।१ समासे ७।१ उपसर्जनम् १।१ ॥ स०—प्रथमया निर्दिष्टमिति प्रथमानिर्दिष्टम् (तृतीया तत्पुरुष) ।

अर्थ—समासविधायकसूत्रेषु प्रथमया निर्दिष्ट पदम् उपसर्जनसन्न भवति । (समास विधान करने वाले सूत्रों में प्रथमा विभक्ति से निर्दिष्ट किये गये पदों की उपसर्जन सना होती है)

१—अपृक्त एकाल्प्रत्यय (१ २ ५१) हृदयान्म्यो दीर्घात् सुतिस्मपृक्त हल् (६ १ ६८) २—मुक्तिञ्च पदम् (१ ४. १४) वाक् कु (८ २ ३०) ३—भना जगोऽन्त (८ २ ३९) ४—विरामोज्वसानम् (१ ४ ११०) वाज्वसान (८ ४ ५६) ५—स्तुगोऽनुदवे क्विन् (३ २ ५८) ६—वेरपृक्तस्य (६ १ ६७) ७—क्विन्प्रत्ययस्य कु (८ २ ६२)

अर्थ—[प्रातिपदिकम्] उपसर्जनगोशब्दान्तस्य उपसर्जनस्त्रीप्रत्ययान्तस्य च प्रातिपदिकस्य द्वन्द्वो भवति ॥ (उपसर्जन गार्शब्द तान तथा उपसर्जन स्त्रीप्रत्ययान्त प्रातिपदिक वा ह्रस्व हाता है)

उदा०—गोशब्दान्तस्य उपसर्जनस्य—चित्रगु, शत्रुलगु । स्त्री-प्रत्ययान्तस्य उपसर्जनस्य—निर्माशाश्वि ॥

सर्पाणामेकशेष एकविभक्तौ १।२।६४

५० वि०—सर्पाणाम् ६।३ एकारशेष १।१ एकारविभक्तौ ७।१ स०—समानं रूप त्रयो येषां वा इति सर्पा (नहु०) तेषाम् सर्पाणाम् । एकस्य शेष इति एकारशेष । एका चासौ विभक्तिश्च इति एकारविभक्ति तस्यामेकविभक्तौ ।

उदा०—वृक्षौ, वृक्षा, फले, फलानि, लते, लता ।

सि०—वृक्षश्च वृक्षश्च इति वृक्षौ । वृक्षश्च वृक्षश्च वृक्षश्च इति वृक्षा । वृक्षश्चौ । वृक्षौ । वृक्ष जम् । वृक्षश्चम् । वृक्षाम् । वृक्षा । फलञ्च फलञ्च इति फले । फलश्चौ । फल । फले । फलञ्च फलञ्च फलञ्च इति फलानि ॥ फल जम् । फल इ । फलञ्चम् । फलान् । फलानि । लता च लता च इति लतौ । लताश्चौ । लता । लता इ । लते ॥ लता च लता च लता च इति लता । लता जम् । लता ॥

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया प्रथमाध्याये द्वितीय पाद

भूवादयो घातव १।३।१

५० वि०—भूवात् १।३ घातव १।३ स०—भूञ्च वाश्च इति भूवौ (इतरेऽद्वन्द्व) भूवौ आदी येषान्ते भूवादय । एव आदिशब्द प्रसारवाची अर्थ—भू इत्याग्नीना वा इत्येव प्रसाराणां धातुसद्भा भवति । (भू जिनवे आदि मं, तथा वा के समान क्रियावाची शब्दों की धातु मत्ता होती है)

उदा०—भवति, पचति, याति ।

१—वृद्धिरचि (६ १ ८८) २—प्रथमया पूर्वसत्रण (६ १ १०२)

३—नपु सक्त्व (७ १ १६) ४—घादृणुण (६ १. ८३) ५—जदभसो

गि (७ १. २०) ६—नपु सक्त्वस्य मत्वच (७ १ ७२) ७—सि सवनाम-

स्थानम् (१. १ ४१) सवनामस्थान० (६ ४ ८) ८—घौघ घाप (७ १ १८)

म्यन्तमेव भवति ॥ निर् सु कौशाम्बी डसि ॥ निर कौशाम्बी^१ । निप्^२
कौशाम्बी । निप्कौशाम्बि^३ । निप्कौशाम्बिः ।

अर्थवदधातुरप्रत्यय. प्रातिपदिकम् १।२।४५

प० वि०—अर्थवत् १।१ अधातुः १।१ अप्रत्ययः १।१ प्रातिपदिकम्
१।१ ॥ स०—न धातुः इति अधातुः । न प्रत्ययः इति अप्रत्ययः ॥

अर्थ—धातुप्रत्ययौ वर्जयित्वा अर्थवच्छब्दरूप प्रातिपदिकसंज्ञं
भवति ॥ (धातु धीर प्रत्यय को छोड़कर अर्थ वाले शब्द की प्रातिपदिक सज्ञा
होती है)

उदा०—डित्थः, कपित्थः, कुण्डम्, पीठम् ।

सि०—डित्थ । डित्थ सु । डित्थ स । डित्थः ॥ कुण्ड सु । कुण्ड
अम् । कुण्डम् ॥

कृत्तद्धितसमासाश्च १।२।४६

प० वि०—कृत्तद्धितसमासाः १।३ च अ० । स०—कृच्च तद्धि-
तश्च समासश्चेति कृत्तद्धितसमासाः ।

अर्थ—[प्रातिपदिकम्] कृदन्तस्य तद्धितान्तस्य समासस्य च प्रातिप-
दिकसंज्ञा भवति । (कृदन्त तद्धितान्त धीर समास की प्रातिपदिक सज्ञा होती है)

उदा०—कृन्—कारकः, हारकः, कर्त्ता, हर्त्ता । तद्धितः—शालीयः,
मालीयः, ऐतिकायनः, औपगवः । समासः—कष्टश्रितः, शङ्कुलाखण्डः,
यूपदारुः, वृकभयम्, राजपुरुषः, अक्षशौण्डः ।

ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य १।२।४७

प० वि०—ह्रस्वः १।१ नपुंसके ऽ।१ प्रातिपदिकस्य ६।१

अर्थ—नपुंसकलिङ्गे वर्तमान यत् प्रातिपदिक तस्य ह्रस्वो भवति ।
(नपुंसक लिङ्ग में वर्तमान प्रातिपदिक का ह्रस्व होता है)

उदा०—अतिरि । कुगतिप्रादय (२.२. १८) इत्यत्र साधनं द्रष्टव्यम् ।

गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य १।२।४८

प० वि०—गोस्त्रियोः ६।२ उपसर्जनस्य ६।१ स०—गौरश्च स्त्रीश्च
इति गोस्त्रियौ (इतरे० द्वन्द्वः) तयोः गोस्त्रियोः ।

१—निरादयः नान्ताद्यर्थे पञ्चम्या (२.२. १८ वा०) प्रथमानिदिष्टं
सामाम० (१.२. ४३) उपसर्जनं पूर्वम् (२.२. ३०) २—इदुपपत्त्यं चाप्रत्यय-
स्य (८.३. ४१) ३—गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य (१.२. ४८)

न विभक्ती तुस्मा १।३।४

प० वि०—न अ० । विभक्तौ अ१ तुस्मा १।३।४ ॥ स०—तुश्च सश्च मश्च इति तुस्मा ॥

अर्थ—[इत्] विभक्तौ तवर्गसकारमकारा इत्सज्ञका न भवन्ति (विभक्ति में तवर्ग सकार और मकार की इत्सज्ञा नहीं होती है)

उदा०—रामात्, रामा, रामम् ॥

सि०—राम ङसि । राम आत् । रामात् । राम जस् । रामा । राम अम् । रामम् ॥

आदिर्जिटुडव १।३।५

प० वि०—आदि १।१ ङिटुडव १।३ स०—जिश्च टुश्च डुश्च इति ङिटुडव (इतरे० द्वन्द्व)

अर्थ—[उपदेशे, इत्] उपदेशे आदि ङिटुडव इत्सज्ञका भवन्ति । (उपदेश म प्रारम्भिक जि टु डु की इत्सज्ञा हाती है)

उदा०—भिन्न, घृष्ट, वेपथु, श्वयथु, पक्त्रिमम्, उप्त्रिमम् ॥

सि०—जिमिन् । जिमिद् । मिद् क्त । मिद् त । मिन् न । मिन्न ॥ निघृपा । निघृप् । घृप् । घृप् क्त । घृप् त । घृप् ट । घृष्ट ॥ टुवेष्ट । टुवेष्ट । वेप् अथुच् । वेप् अथु । वेपथु ॥ टुओशिन । ओशिन । शिव अथुच् । श्वे अथु । श्वय् अथु । श्वयथु ॥ डुपचप् । डुपच् । पच् । पच् क्त्रि । पच् त्रि । पक् । त्रि । पक् त्रि म् । पक्त्रिम सु । पक्त्रिम अम् । पक्त्रिमम् । डुवप् । डुवप । वप् क्त्रि । उ अप् त्रि । उप । त्रि । उप त्रि म् । उपत्रिम सु । उपत्रिम अम् । उपत्रिमम् ॥

प प्रत्ययस्य १।३।६

प० वि०—प १।१ प्रत्ययस्य ६।१

अर्थ—[आदि] प्रत्ययस्य आदि पकार इत्सज्ञको भवति । (प्रत्यय

१—आदिर्जिटुडव (१ ३ ५) २—ओत क्त (३ २ १८७) ३—रदाम्या निष्ठातो न पूर्वस्य च द (८ २ ४२) ४—ष्टुना ष्टु (८ ४ ४१) ५—त्रिवर्तीऽथुच् (३ ३ ८६) ६—द्विवर्त वित्र (३ ३ ८८) ७—ओ बु (८ २ ३०) ८—वदमप नित्यम (४ ४ २०) ९—वचिस्वपियजादीना क्ति (६ १ १५) इत्यण सम्प्रसारणम् (१ १ ४४) १०—सम्प्रसारणाच्च (६ १ १०८)

सि०—भू लट्^१ । भू लृ^२ । भृ तिप्^३ । भू शप्^४ तिप् । भू अ^५
ति । भो^६ अ ति । भव्^७ अ ति । भवति । डुपचप् । डुपच । डुपच् ।
पच् । पच लट् । पच् अ ति । पचति । वा ति । वा ति । वाति ।

इत्सज्ञाप्रकरणम्—

उपदेशोऽनुनासिक इत् १।३।२

प० वि०—उपदेशे ७।१ अच् १।१ अनुनासिक १।१ इत् १।१

अर्थ—उपदेशावस्थायामनुनासिको योऽज् तस्य इत्सज्ञा भवति
(उपदेश अवस्था में अनुनासिक अच् की इत्सज्ञा होती है)

उदा०—एधते, पचति ।

सि०—एव । एध्^८ । एध शप् त । एध् अ ते^९ । एवते । डुपचप् ।
पचप् । पच । पच् । पच् शप् तिप् । पच् अ ति । पचति ॥

हलन्त्यम् १।३।३

प० वि०—हल् १।१ अन्यम् १।१

अर्थ—[उपदेशे इत्] उपदेशे अन्य हल् इत्संज्ञको भवति ।
(उपदेश में अन्तिम हल् की इत्सज्ञा होती है)

उदा०—अडडण् । ऋलृक् ।

१—भूवादयो घातव (१. ३. १) घातो (३. १. ६१) वर्तमाने लट्
(३. २. १२३) प्रत्यय (३. १. १) परश्च (३. १. २) २—हलन्त्यम् (१. ३.
३) उपदेशोऽनुनासिक इत् (१. ३. २) तस्य लोपः (१. ३. ६) अदर्शन लोप
(१. १. ५६) ३—तस्य (३. ४. ७७) तिप्तस्मिन् (३. ४. ७८) ४—तिङ्-
शित्सावंधातुक् (३. ४. ११३) सार्धंधातुके यक् (३. १. ६७) कर्त्तरि शप्
(३. १. ६८) ५—हलन्त्यम् (१. ३. ३) लशक्वतद्धिते (१. ३. ८) तस्य लोप
(१. ३. ६) अदर्शन लोप (१. १. ५६) ६—तिङ्शित्सावंधातुक् (३. ४.
११३) यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् (१. ४. १३) अङ्गस्य (६. ४. १)
मिदे [युंण] (७. ३. ८२) सार्धंधातुवार्धंधातुवयो (७. ३. ८४) इको गुण-
वृद्धी (१. १. ३) स्थानेऽन्तरतमः (१. १. ४९) ७—परः सन्निवर्णः सहिता
(१. ४. १०६) सहितायाम् (६. १. ७२) एधोऽप्रवायाव (६. १. ७८)
८—उपदेशोऽनुनासिक इत् (१. ३. २) तस्य लोपः (१. ३. ६) अदर्शन लोप
(१. १. ५६) ९—द्वित घातनेपदाना टेरे (३. ४. ७६)

न विभक्तौ तुस्मा १।३।४

प० वि०—न थ० । विभक्तौ ७।१ तुस्मा १।३।४ ॥ स०—तुश्च
सश्च मश्च इति तुस्मा ॥

अर्थ—[इत्] विभक्तौ तवर्गसकारमकारा इत्सज्ञाना न भवन्ति
(विभक्ति में तवर्ग सकार और मकार की इत्सना नहीं होती है)

उत्पा०—रामात्, रामा, रामम् ॥

सि०—राम ङसि । राम आत् । रामात् । राम जस् । रामा । राम
अम् । रामम् ॥

आदित्रिटुडव १।३।५

प० वि०—आदि १।१ त्रिटुडव १।३ स०—त्रिश्च दुश्च डुश्च
इति त्रिटुडव (इतरे० द्वन्द्व)

अर्थ—[उपदेशे, इत्] उपदेशे आदि त्रिटुडव इत्सज्ञाना भवन्ति ।
(उपदेश म प्रारम्भिक त्रि टु डु की इत्सना होती है)

उत्पा०—भिन, धृप्, वेपथु, श्ययथु, पक्त्रिमम्, उप्त्रिमम् ॥

सि०—त्रिमिन् । त्रिमिद्^१ । मिद् क्त^२ । मिद् त । मिन् न^३ ।
मिन्न ॥ त्रिवृषा । त्रिवृष् । धृष् । धृष् क्त । धृष् त । धृष् ट^४ ।
धृष् ॥ दुत्रेष्ट । दुत्रेष् । वेप् अथुच्^५ । वेप् अथु । वेपथु ॥ दुत्रोश्चि ।
ओश्चि । त्रि । शिव अथुच् । श्वे अथु । श्वय् अथु । श्वयथु ॥ दुपचप् ।
दुपच् । पच् । पच् क्त्रि^६ । पच् त्रि । पक्^७ त्रि । पक् त्रि म् । पक्त्रिम
सु । पक्त्रिम अम् । पक्त्रिमम् । डुवप् । डुवप । वप् क्त्रि । उ^८ अप्
त्रि । उप^९ त्रि । उप त्रि म् । उपत्रिम सु । उपत्रिम अम् । उपत्रिमम् ॥

प प्रत्ययस्य १।३।६

प० वि —प १।१ प्रत्ययस्य ६।१

अर्थ—[आदि] प्रत्ययस्य आदि पकार इत्सज्ञको भवति । (प्रत्यय

१—आदित्रिटुडव (१ ३ ५) २—त्रीत क्त (३ २ १८७) ३—
रक्षाम्या निष्ठाता न प्रवस्य च द (८ २ ४२) ४—पुना पु (८ ४ ४१)
५—टिवताऽथुच (३ ३ ८६) ६—डिवत्त क्त्रि (३ ३ ८८) ७—चो कु
(८ २ ३०) ८—क्त्रमप नियम (४ ४ २०) ९—वचिस्वपियजादीना
किति (६ १ १५) इत्यण मन्प्रसारणम् (१ १ ४४) १०—सम्प्रसारणाच्च
(६ १ १०८)

ने आदि पकार की इत्सज्ञा होती है)

उदा०—नर्त्तकी, रजकी ।

सि०—नृती । नृत् । नृत् प्वुन्^१ । नृत् पुन्^२ । नृत् यु । नृत्
अक^३ । नर्त्^४ अक । नर्त्तक डीप्^५ । नर्त्तक ई । नर्त्तक^६ ई । नर्त्तकी सु ।
नर्त्तकी ॥ रञ्ज । रञ्ज् । रज् प्वुन्^७ । रज् यु । रज् अक । रजक ।
रजक डीप् । रजक ई । रजक् ई । रजकी । रजकी सु । रजकी स् ।
रजकी ॥

चुटू १।३।७

प० वि०—चुटू १।२ स०—चुश्च टुश्चेति चुटू (इतरे० द्वन्द्वः) ।

अर्थ—[प्रत्ययस्य आदिः] प्रत्ययस्य आदी चवर्ग-टवर्गौ इत्संज्ञकौ
भवतः (प्रत्यय के आदि चवर्ग और टवर्ग की इत्सज्ञा होती है)

उदा०—ब्राह्मणः, कुरुचरी ।

सि०—ब्राह्मण जस् । ब्राह्मण अस् । ब्राह्मणास् । ब्राह्मणाः । कुरुचर
ट^८ । कुरुचर् अ । कुरुचर । कुरुचर डीप्^९ । कुरुचर ई । कुरुचर^{१०} ई ।
कुरुचरी सु । कुरुचरी स् । कुरुचरी^{११} ॥

लशक्वतद्धिते १।३।८

प० वि०—लशक् १।१ अतद्धिते ७।१ स०—लश्च शश्च कुरुचेति
लशक् (समाहार-द्वन्द्वः) न तद्धितः इति अतद्धितः तस्मिन् अतद्धिते ।
(नञ् तत्पु०)

अर्थ—[आदिः प्रत्ययस्य] तद्धितवर्जितस्य प्रत्ययस्य आदयः लकार-
शकार-कवर्गोः इत्संज्ञकाः भवन्ति ॥ (प्रत्यय के आदि ल् न् और कवर्ग की
इत्सज्ञा होती है तद्धित को छोड़कर)

उदा०—चयनम्, भवति, पचति, भिन्नः ॥

१—शिल्पिनि प्वुन् (३. १. १४५) २—पः प्रत्ययस्य (१. ३. ६) ३—
पुंवोरनाकी (७. १. १) ४—पुगन्तलधूपघस्य च (७. ३. ८६) उरगम् रपरः
(१. १. ५०) ५—इत्तद्धितममामासञ्च (१. २. ४६) इयाप्प्रातिपदिकान् (४.
१. १) मित्रमाम् (४. १. ३) पिद्गीरादिभ्यश्च (४. १. ४१) ६—यचि भम्
(१. ४. १८) भग् (६. ४. १२६) यस्वेति च (६. ४. १४८) ७—रजवर-
जनरजःसूपमस्यान षत्तंघ्यम् (६. ४. २४ वा०) ८—चरेटः (३. २. १६)
९—टिड्ढा०—(४. १. १५) १०—यस्वेति च (६. ४. १४८)

सि०—चिच् । चि ल्युच् । चि युच् । चि यु । चि अन । चे अन ।
च् अय् अन । चयन । चयन मु । चयन अम् । चयनम् ॥

तस्य लोप १।३।९

प० वि०—तस्य ६।१ लोप १।१

अर्थ—तस्य इत्सङ्घस्य लोपो भवति । (जिसकी इत्सना होती है उसका लोप होता है)

यथासरयमनुदेश समानाम् १।३।१०

प० वि०—यथासख्यम् १।१ अनुदेश १।१ समानाम् ६।३ स०—
सरयाम् अनतिक्रान्त इति यथासख्यम् (अव्ययीभाव समास)

अर्थ—(पश्चात्कथनवाची अनुदेशशब्द) समाना पश्चात्कथन यथा
क्रम भवति ।

उदा०—नाडायन । सौपर्ण्य । आढ्यकुलीन । शालीय । क्षत्रिय ।

सि०—नड । नड फक्^१ । नड फ । नड आयन^२ । नाड^३ आयन ।
नाड^४ आयन । नाडायन मु । नाडायन स् । नाडायन । मुपर्णा ढक्^५ ।
मुपर्णा ढ । मुपर्णा एय । सौपर्णा एय । सौपर्ण्य एय । सौपर्ण्य । सौप
र्ण्य मु । सौपर्ण्य स् । सौपर्ण्य ॥ शाला छ । शाला ईय । शालीय ।
शालीय ॥ क्षत्र घ । क्षत्र इय । क्षत्र् इय । क्षत्रिय । क्षत्रिय ॥

स्वरितेनाधिकार १।३।११

प० वि०—स्वरितेन ३।१ अधिकार १।१

अर्थ—स्वरितेन चिह्नेन अधिकारो येन्तितव्य । (स्वरित चिह्न से
अधिकार ममकता चाहिय)

उदा०—प्रयय । धातो । इयाप्रातिपत्तिकान् । अङ्गस्य । भस्य
पदस्य ।

आत्मनपदप्रकरणम्—

अनुदात्तङित आत्मनेपदम् १।३।१२

प० वि०—अनुदात्तङित ५।१ आत्मनेपदम् १।१ ॥ स०—अनुदात्तश्च

१—नडादिभ्य फक् (४ १ ९९) २—आयन० (७ १ २) ३—किति
च (७ २ ११८) ४—यस्येति च (६ ४ १४८) ५—स्त्रिभ्यो ढक्
(४ १ १२०)

इश्चेति अनुदात्तडौ । इश्च इच्चेति इतौ । अनुदात्तडौ इतौ यस्य सः
अनुदात्तडित् (बहु०) तस्मात् ।

अर्थ—अनुदात्तेतः डितश्च धातोरात्मनेपदं भवति । (अनुदात्त तथा
इकार इत् वाके घातु से आत्मनेपद होता है)

उदा०—एवते, शेते ।

सि०—एव । एव् ॥ शीङ् । शी त । शी' त । शे ते । शेते ।

भावकर्मणो १।३।१३

प० वि०—भावकर्मणोः ७।२ स०—भावश्च कर्म च इति भावक-
र्मणी तयोः भावकर्मणोः

अर्थ—[आत्मनेपदम्] भावे कर्मणि च आत्मनेपदं भवति । (भाव
और कर्म में आत्मनेपद होता है)

उदा०—भावे-ग्लायते भवता, मुप्यते भवता । कर्मणि-क्रियते
कटः, द्वियते भारः । कर्मकर्त्तरि—लूयते केदारः स्वयमेव ।

सि०—ग्लायते । ग्लै । ग्ला* । ग्ला लट् । ग्ला लृ । ग्ला त । ग्ला
यक्^३ त । ग्लायत । ग्लायते^४ । विप्यप् । प्यप् । स्वप्^५ । स्वप् त ।
स्वप् यक्^६ त । स्वप् य त । सू उ अ^१ प य त । सुप्^७ य त । सुप्यते ॥
कृ त । कृ य त । कृ य ते । क्रियते^८ । द्वियते । लृञ् । लृ त । लृ
यक्^९ त । लृ य त । लृयते ।

कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे १।३।१४

प० वि०—कर्त्तरि ७।१ कर्मव्यतिहारे ७।१ ॥ स०—कर्मण. व्यतिहारः
कर्मव्यतिहारः (प० तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—(क्रियायाची कर्मशब्दः) (परस्परव्यवहारवाची विनिमय-
वाची वा व्यतिहारशब्दः) क्रियायाः विनिमये कर्त्तरि धातोरात्मनेपदं
भवति । (क्रिया के आदान प्रदान में वर्तमान घातु से कर्त्ता में आत्मनेपद
होता है)

१—शोड् मावंधानुके गुण (७. ४. २१) २—आदश्च उपदेशशक्ति (६. १. ४५)

३—ल कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्य (३. ४. ६६) भावकर्मणो (१. ३.
१३) मावंधानुके यर् (३. १. ६७) ४—डित आत्मनेपदाना टेरे (३. ४. ७६)

५—पाठवादे प म (६. १. ६४) ६—वचिभ्यपियमादीना विति (६. १. १५)

७—सम्प्रसारणाच्च (६. १. १०८) ८—रिङ्शयग्लिङ्शु (७. ४. २८)

उदा०—व्यतिभवते, व्यतिलुनते ।

सि०—व्यतिभू शप् त । व्यतिभवते । व्यति लृच् । व्यतिलू श्ना
क् । व्यतिलु^१ ना क् । व्यतिलु ना क् । व्यतिलुन^२ क् । व्यतिलुन^३
अत्^४ । व्यतिलुनते^५ । व्यतिपुनते^६ ॥

न गतिर्हिंसार्येभ्यः १।३।१५

प० वि०—न अ० । गतिर्हिंसार्येभ्यः ५।३ स०—गतिरर्थो^१ येषां
धातूनाम् ते गत्यर्थोः (बहु०) हिंसा अर्थो येषां धातूनाम् ते हिंसार्थोः ।
गत्यर्थारश्च हिंसार्थारश्च इति गतिर्हिंसार्थाः (पूर्वपदलोपी समासः) तेभ्यः
अर्थ—गत्यर्थेभ्यः हिंसार्थेभ्यश्च धातुभ्यः कर्मव्यतिहारे आत्मने-
पदं न भवति । (गति श्रौर हिंसा अर्थवाले धातुषो से कर्मव्यतिहार में
आत्मनेपद नहीं होता है)

उदा०—व्यतिगच्छति, व्यतिर्हिसन्ति ।

सि०—व्यतिगम्लृ । व्यतिगम् । व्यतिगम् तिप् । व्यतिगम् शप
तिप् । व्यतिगम् अ ति । व्यतिगच्छ^१ अ ति । व्यतिग तुक्^२ छ् अ
ति । व्यतिगच्छ^३ अ ति । व्यतिगच्छति । व्यतिर्हिसि । व्यतिर्हिस् ।
व्यतिर्हि नुम्^४ स् । व्यतिर्हिन्स् । व्यतिर्हिन्स् शप् ति । व्यतिर्हिसति^५ ।

नेविश १।३।१७

प० वि०—नेः ५।१ विशः ५।१ ॥

अर्थ—[आत्मनेपदम्] निपूर्वाद् विशः आत्मनेपदं भवति ॥ (निपू-
वंक विष् धतु से आत्मनेपद होता है)

उदा०—निविशते ।

परिव्यवेभ्यः कियः १।३।१८

प० वि०—परिव्यवेभ्यः ५।३ कियः ५।१ म०—परि च वि च अथ
च इति परिव्ययाः (इतरे० द्वन्द्वः) तेभ्यः ।

१—ज्वादीना ह्रस्वः (७, ३, ८०) २—स्नाम्यस्तयोरात् (६, ४, ११२)

३—आत्मनेपदेष्वनतः (७, १, ५) ४—दित आत्मनेपदाना टरे (३, ४, ७६)

५—इपुगमिपमा छः (७, ३, ७७) ६—छे च (६, १, ७३) ७—स्तौ

इजुना इजुः (८, ४, ४०) ८—इदितो णुम् धातोः (७, १, ५८) ९—मोजु-

स्वारः (८, ३, २३) नश्चापदान्तस्य भजि (८, ३, २४)

अर्थ—परि-वि-अवपूर्वेभ्यः क्रीधातोरात्मनेपदं भवति । (परि, वि
और अव उपसर्गपूर्वक क्रीधातु से आत्मनेपद होता है)

उदा०—परिक्रीणीते, विक्रीणीते, अवक्रीणीते ।

सि०—परिक्री लट् । परिक्री लृ । परिक्री त । परिक्री र्ना त । परिक्री
ना त । परिक्रीनीत^१ । परिक्रीणीत^२ । परिक्रीणीते ।

विपराभ्या जे: १।३।१६

प० वि०—विपराभ्याम् ५।२ जे: ५।१ स०—वि च परा च इति
विपरो (इतरे० द्वन्द्वः) ताभ्याम् ।

अर्थ—विपरापूर्वाभ्यां जिधातोरात्मनेपद भवति ॥ (वि तथा परा
उपसर्गपूर्वक जि धातु से आत्मनेपद होता है)

उदा०—विजयते, पराजयते ।

सि०—विजि । विजि त । विजि शप् त । विजि अ त । विजि अ
ते । विजे अ ते । विज् अय् अ ते । विजयते । पराजयते ॥

क्रीडोऽनुसपरिभ्यश्च १।३।२१

प० वि०—क्रीडः ५।१ अनुसपरिभ्यः ५।३ च अ० । स०—अनु
च सञ्च परि च इति अनुसपरयः (इतरे० द्वन्द्वः) तेभ्यः ।

अर्थ—[आड्] अनुसपरिपूर्वात् आड्पूर्वाच्च क्रीडधातोरात्मनेपदं
भवति । (अनु, स, परि तथा आड् उपसर्गपूर्वक क्रीड धातु से आत्मनेपद
होता है)

उदा०—अनुक्रीडते, संक्रीडते, परि क्रीडते, आक्रीडते ।

सि०—अनुक्रीड् । अनुक्रीड । अनुक्रीड त । अनुक्रीड् ते । अनुक्रीड्
शप् ते । अनुक्रीडते ॥

समवप्रविभ्य स्थः १।३।२२

प० चि०—समवप्रविभ्यः ५।३ स्थः ५।१ ॥

अर्थ—सम् अव प्र विपूर्वात् म्याधातोरात्मनेपदं भवति । (सम्, अव,
प्र और विपूर्वक म्याधातु से आत्मनेपद होता है)

उदा०—मंतिष्ठते, अवतिष्ठते, प्रतिष्ठते, चितिष्ठते ।

सि०—मंस्था । मंस्था लट् । मंस्था लृ । मंस्था त । मंस्था त ।

१—इहल्यपोः (६. ४. ११३) २—घट्टपुल्वाडनुम्यवावेऽपि (८. ४. २)

सस्था शप् त । सस्था अ त । संतिष्ठ^१ अ त । सतिष्ठत । सतिष्ठते^२ ॥

उद्विभ्या तप १।३।२७

प० वि०—उद्विभ्यान् शप् तप ५।१ ॥

अर्थ—[अकर्मकात्] उद्विभिपूर्वात् अकर्मकतपवातोरात्मनेपद भवति । (उत् और वि उपसगपूर्वक अकर्मक तपधातु स आत्मनपद होता है)

उदा०—उत्तपते, वितपते, (दीप्यते इत्यर्थ)

आडो यमहन १।३।२८

प० वि०—आड ५।१ यमहन ५।१ स०—यमश्च हन् च इति यम हन् (समा० द्वन्द्व) तस्मान्

अर्थ—[अकर्मकात्] आडपूर्वात् अकर्मकयमहनधातोरात्मनेपद भवति ॥ (आड उपसगपूर्वक अकर्मक यम और हन् धातु स आत्मनपद होता है)

उदा०—आयच्छते, आहते ॥

सि०—आयम । आयम् त । आयम् शप् त । आयम् अ त । आयम् अ ते । आयच्छ^३ अ ते । आय तुक्^४ छ अ ते । आयच्छ अ ते । आयच्छ^५ अ ते । आयच्छते ॥ आहते । आहन् । आहन् त । आहन् शप् त । आहन् त । आहत^६ । आहते ॥

समो गम्यच्छिभ्याम् १।३।२९

प० वि०—सम ५।१ गम्यच्छिभ्याम् ५।२ स०—गमिश्च ऋच्छिश्च इति गम्यच्छी (उतरे० द्वन्द्व) ताभ्याम् ॥

अर्थ—[अकर्मकान्] ऋपूर्वाद् अकर्मकगमिच्छिद्धधातुभ्यामात्मनेपद भवति । (मपूर्वक अकर्मक गम् और ऋच्छ धातु म आत्मनपद होता है)

उदा०—सगच्छते, समृच्छते ।

सि०—सगम्लु । सगम् । मगम् लट् । मगम् त । मगम् शप् त । मगम् अ त । स ग छ अ त । स ग तुक् छ अ त । मग त् छ अ त । सगच्छते । सगच्छते । समृच्छते ॥

१—पाद्माध्या० (७ ३ ७८) २—द्वित आत्मनपगना टरे (३ ४ ७६)

३—इणुगमियमा छ (७ ३ ७७) ४—छ च (६ १ ७३) ५—स्तो इचुना

इचु (८ ४ ४०) ६—सावधानुक्रमित (१ २ ४) अनुत्पन्नोपदगवननितनो-

त्पादीनामनुनामिकसोपो भति विदति (६ ४ ३७)

निसमुपविभ्यो ह्र. १।३।३०

प० वि०—निसमुपविभ्योः ५।३ ह्रः ५।१ ॥

अर्थ—नि-सम्-उप-विपूर्वात् ह्राधातोरात्मनेपदं भवति । (नि, सम्, उप और वि पूर्वक ह्रैब् धातु से आत्मनेपद होता है)

उदा०—निह्वयते, संह्वयते, उपह्वयते, विह्वयते ।

सि०—निह्वेब् । निह्वे त । निह्वे शप् त । निह्वे अ त । निह्वय् अ त । निह्वयते ।

स्पर्द्धायामाडः १।३।३१

प० वि०—स्पर्द्धायाम् ७।१ आडः ५।१ ॥

अर्थ—[ह्रः] स्पर्द्धायां विषये आड्पूर्वात् ह्राधातोरात्मनेपदं भवति । (सर्पणं के विषय में आड्, उपसर्गपूर्वक ह्रैब् धातु से आत्मनेपद होता है)

उदा०—मत्तो मल्लम् आह्वयते, छात्रश्छात्रमाह्वयते ।

आड उद्गमने १।३।४०

प० वि०—आडः ५।१ उद्गमने ७।१ ॥

अर्थ—[क्रमः] (उर्ध्वगमनवाची उद्गमनशब्दः) उर्ध्वगमने वर्तमानात् आड्पूर्वात् क्रमधातोरात्मनेपदं भवति । (ऊपर जाने अर्थ में वर्तमान आड्पूर्वक क्रमधातु से आत्मनेपद होता है)

उदा०—आक्रमते आदित्य, आक्रमते चन्द्रमाः ।

वे पादविहरणे १।३।४१

प० वि०—वेः ५।१ पादविहरणे ७।१ स०—पादानां विहरणम् पादविहरणम् (प० तत्पु) तस्मिन् ॥

अर्थ—[क्रमः] (अश्ववादीनां गतिविशेषे पादविहरणमुच्यते) पादविहरणे वर्तमानाद् विपूर्वात् क्रमधातोरात्मनेपदं भवति । (घोड़े आदि की गति विशेष में वर्तमान विपूर्वक क्रमधातु से आत्मनेपद होता है)

उदा०—मुष्टु विक्रमते, साधु विक्रमते ।

पूर्ववत्मन. १।३।६२

प० वि०—पूर्ववत् ५।१ सनः ५।१ ॥

अर्थ—रानि पूर्वो यो धातुः तद्वयन मनन्तादपि आत्मनेपदं भवति । (गन् के पूर्व जो धातु उभके समान् मन्प्रत्ययान्तधातु से भी आत्मनेपद होता है)

उदा०—आमिमिपते, शिशयिपते ।

मि०—आम । आम् सन्^१ । आम् इट्^२ सन् । आमि स । आसि मि^३ स । आसि मि प^४ लट् । आसिमिपे त । आमिसिपत । आसिसिपते ॥ शीङ् । शी मन् । शी स । शी शी म । शि शी म । शि शे स । शि शे इट् म । शि शय् ट स । शि शयि प । शि शयि प शप् त । शिशयिप अ ते । शिशयिपते ॥

ग्राम्प्रत्ययवन्कृत्रोऽनुप्रयोगस्य १।३।६३

प० वि०—ग्राम्प्रत्ययवत् १।१ कृत्रः १।१ अनुप्रयोगस्य ६।१ स०—ग्राम् प्रत्ययो यन्मान् सोऽयमाम्प्रत्ययः (बहु०) ग्राम्प्रत्ययस्य इव इति ग्राम्प्रत्ययवत् ।

अर्थ—ग्राम्प्रत्ययस्य अनुप्रयोगस्य कृत्रः धातोरात्मनेपद भवति । (जिमसे ग्राम् प्रत्यय द्वया है, उमत्र समान फन्वात् प्रयोग किये गये कृ धातु से आत्मनेपद होता है)

उदा०—ईचांचक्रे, ईहाञ्चक्रे ।

मि०—ईच् । ईच् लिट्^१ । ईच् लि । ईच् आम्^२ लि । ईच् आम्^३ । ईच् आम् कृ^४ लिट् । ईचाम् कृ कृ^५ लिट । क^६ कृ लि । च^७ कृ त । च कृ गृ^८ । च कृ ग । चक्रे^९ । ईचाञ्चक्रे^{१०} । ईच् आम् । ईहाञ्चक्रे ॥

१—धातो. वमंण समाननृंवादिन्धाया वा (३. १. ७) २—आर्धघानुक शेषः (३. ४. ११४) आर्धघानुकस्येह वलादे (७. २. ३५) आद्यन्तो टक्ती (१. १. ४५) ३—एवाचो द्वे प्रथमस्य (६. १. १) अजादेश्चितीयस्य (६. १. २) सन्वटोः (६. १. ६) ४—ट्को (८. ३. ५७) आदेशप्रत्यययोः (८. ३. ५९) ५—परोक्षे लिट् (३. २. ११५) ६—इजादेश्च घुहमतोऽनुच्छ (३. १. ३६) उपदेशेऽननुनासिक इत् (१. ३. २) ७—ग्राम. (२. ४. ८१) ८—कृत्रानुप्रयुज्यते लिटि (३. १. ८०) ९—लिटि धातोरात्मनेपदस्य (६. १. ८) १०—पूर्वोऽभ्यासः (६. १. ४) अत्रज्जोषोऽभ्यासस्य (७. ४. ५८) उरत् (७. ४. ६६) उरण् रपरः (१. १. ५०) हलादिः शेषः (७. ४. ६०) ११—गुहोद्वुः (७. ४. ६२) १२—लिट्प्रथमयोरेतिरेच् (३. ४. ८१) अनेवात्किन् सर्वस्य (१. १. ५४) १३—द्वो मणचि (६. १. ७७) १४—नदवापदान्तस्य मनि (८. ३. २४) अनुस्वारस्य ययि परसवर्णे (८. ४. ५८)

स्वरितञित कर्त्रभिप्राये क्रियाफले १।३।७२

प० वि०—स्वरितञित ५।१ कर्त्रभिप्राये ७।१ क्रियाफले ७।१ स०—
स्वरितश्च वञ्चेति स्वरितञौ । इच्च इच्चेति इतौ । स्वरितञो इतौ यस्येति
स्वरितञित् तस्मात् स्वरितञित । कर्तु अभिप्राय तस्मिन् । क्रियाया
फलं क्रियाफल तस्मिन् ।

अर्थ—[आत्मनेपदम्] क्रियाया फल यदि कर्तुरभिप्राये भवेत् तदा
स्वरितेत् ञितश्च धातोरात्मनेपद भवति । (क्रिया का फल यदि कर्ता के
अभिप्राय में हो तो स्वरित इत् वाल तथा ञकार इत् वाल धातु स आत्मनेपद
होता है)

उदा०—यजते, पचते । ञित—सुनुते, कुरुते । कर्त्रभिप्राय इति किम्—
यजन्ति याजका, पचन्ति पाचका, कुर्वन्ति कर्मकरा, श्लयद्यपि दक्षिणा
भृतिश्च कर्तु फलमिहास्ति तथापि न याजकार्थं नापि कर्मकारार्थं
क्रियारम्भ ॐ

परस्मैपदप्रकरणम्—

शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदम् १।३।७८

प० वि०—शेषात् ५।१ कर्त्तरि ७।१ परस्मैपदम् १।१ ॥

अर्थ—उक्तादन्य शेष तस्मात् धातो कर्त्तरि परस्मैपद भवति ।
(पहल कहे हुए स शेष धातु स कर्ता में परस्मैपद होता है)

उदा०—याति, गति, प्रविशति ।

सि०—या तिप् । या शप् तिप् । या तिप् । या ति । वा ति
याति ॥ प्र विश् शप् ति । प्रविशति ॥

अनुपराभ्या कृञ् १।३।७९

प० वि०—अनुपराभ्याम् । ५।१ कृञ् ५।१ स०—अनु च परा च
इति अनुपरो (इतरे० द्वन्द्व) ताभ्याम्

अर्थ—[परस्मैपदम्] अनुपरापूर्वात् कृञ्धातो परस्मैपद भवति ।
(अनु और परा उपसर्गपूर्वक कृ धातु से परस्मैपद होता है)

उदा०—अनुकृञ् । अनुकृ । अनुकृ लट् । अनुकृ लृ । अनुकृ तिप् ।
अनुकृ ति । अनुकृ उ ति । अनुकृ च ति । अनुकृ उ ति । अनुकृ ओ
ति । अनुकरोति । पराकरोति ॥

अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः १।३।८०

प० वि०—अभिप्रत्यतिभ्यः ५।३ क्षिपः ५।१

अर्थ—अभि प्रति अतिपूर्वात् क्षिपधातोः परस्मैपदं भवति ।

(अभि, प्रति धोर प्रति उपसर्गपूर्वकं क्षिप् धातु मे परस्मैपदं होता है)

उदा०—अभिक्षिपति, प्रतिक्षिपति, अनिक्षिपति ।

प्राद्वह् १।३।८१

प० वि०—प्रात् ५।१ वह् ५।१

अर्थ—प्रपूर्वाद् वहधातोः परस्मैपदं भवति ।

प्र उपसर्गं पूर्वकं वह धातु मे परस्मैपदं होता है)

उदा०—प्रवहति ।

परेर्मृष १।३।८२

प० वि०—परेः ५।१ मृषः ५।१

अर्थ—परिपूर्वाद् मृषधातोः परस्मैपदं भवति । (परि उपसर्गं पूर्वकं मृषधातु मे परस्मैपदं होता है)

उदा०—परिमृष्यति ।

व्याट्परिभ्यो रम १।३।८३

प० वि०—व्याट्परिभ्यः ५।३ रमः ५।१

अर्थ—विआड्परिपूर्वाद् रमधातोः परस्मैपदं भवति । (वि० आड् धोर परि उपसर्गपूर्वकं रमधातु मे परस्मैपदं होता है)

उदा०—विरमति । आरमति । परिरमति ।

उपाच्च १।३।८४

प० वि०—उपान् ५।१ च अ० ।

अर्थ—[रमः] उपपूर्वाच्च रमधातोः परस्मैपदं भवति । (उप उपसर्गं पूर्वकं रम धातु मे परस्मैपदं होता है)

उदा०—उररमति ।

विभाषाऽकर्मकात् १।३।८५

प० वि०—विभाषा १।१ अकर्मकान् ५।१

अर्थ—उपपूर्वाद् अकर्मकाद् रमधातोः विभाषा परस्मैपदं भवति । (उप उपसर्गपूर्वकं अकर्मकं रम धातु मे परस्मैपदं होता है) ।

उदा०—यावद् भुक्तमुपरमति । यावद् भुक्तम् उपरमते ।

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया प्रथमाध्याये तृतीयः पादः

आकङारादेका सज्ञा १।४।१

प० वि०—आ अ० । कङारात् ५।१ एका १।१ संज्ञा १।१

अर्थ—‘कङाराः कर्मधारये’ इति एतस्मात्पूर्वम् एका संज्ञा भवति इत्यधिकारो वेदितव्यः । (‘कङारा कर्मधारये’ इस सूत्र से पहले पहले एक ही संज्ञा होती है, इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

उदा०—अततत्तत् । अररत्तत् ॥

सि०—तत्त शिच्^१ । तत्त ङ लुङ्^२ । तत्त इ चङ् तिप्^३ । तत्त^४ अ ति । तत्त^५ तत्त अ ति । त तत्त अ ति । ततत्तति^६ । ततत्तन्^७ । अततत्तत्^८ ।

विप्रतिपेधे पर कार्यम् १।४।२

प० वि०—विप्रतिपेधे ७।१ परम् १।१ कार्यम् १।१

अर्थ—तुल्यबलविरोधे परं कार्यं भवति ।

(तुल्य बल के विरोध होने पर परचात् वाले सूत्र का काम होता है)

उदा०—पुरुषेभ्यः ।

सि०—पुरुष भ्यस् । पुरुषे^१ भ्यस् । पुरुषेभ्यः ॥

नद्यादिसंज्ञाप्रकरणम्

यू स्यात्स्यो नदी १।४।३

प० वि०—यू (अविभक्तिको निर्देशः) स्यात्स्यो १।२ नदी १।१

स०—स्त्रियमाचक्षते इति स्त्रियात्स्यो (उपपदसमासः) ई च ऊ चेति यू ॥

१—हेतुमति च (३. १. २३) २—सनाद्यन्ता घातवः (३. १. ३२) घातोः (३. १. ६१) मूते (३. २. ८४) चुङ् (३. २. ११०), प्रत्ययः (३. १. १.) परदघ (३. १. २), ३—तस्य (३. ४. ७७) तिप्तस्झि० (३. ४. ७८) शिधि-द्रुथ्रुभ्यः कर्तरि षड् (३. १. ४८) ४—घ्राणंघातुक षोषः (३. ४. ११४), घ्राणंघातुके (६. ४. ४६) शौरनिटि (६. ४. ११) ५—चटि (६. १. ११) ६—पुरुषसंज्ञात्वाद्धारस्य सन्वत्सपुनि षड्परेऽन्तोपे (७. ४. ६३) इत्येष विधिर्न भवति ७—इतदघ (३. ४. १००) ८—तुष्टसङ्गुत्सुवहुदात्ताः (६. ४. ७१) घ्राणन्तो टवितो (१. १. ४५) ९—बहुवचने भस्येद् (७. ३. १०३)

अर्थ—ईकारान्तमूकारान्तञ्च स्यात्स्यं शब्दरूपं नदीमंत्रं भवति ।
(स्त्रीलिङ्ग को बहने वाले ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दों की नदी मन्त्रा होती है)

उदा०—कुमारी, गौरी, शार्ङ्गरवी, लक्ष्मी, वज्रमधुः, यवायूः ॥

तेयदुवट्स्थानावस्त्री १।४।४

प० वि०—न अ० । इयदुवटौ १।२ अस्त्री १।१ स०—इयदुवटौ स्थानमनयोरिति इयदुवट्स्थान (यदु०) तौ । न स्त्री इति अस्त्री (नञ् तन्मु०)

अर्थ [यू]—इयदुवट्स्थानौ यू नदीमन्त्रौ न भवतः स्त्रीशब्दं वर्जयित्वा । (इयट् उवट् है स्थान जिसका अर्थात् बहने पर ईकार और ऊकार के स्थान पर इयट् या उवट् आदेश होता है, ऐसे ईकारान्त और ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों की नदी मन्त्रा नहीं होती है स्त्री शब्द को छोड़कर)

उदा०—हे श्रीः । हे भ्रूः । सि०—धी० सु । धीः । भ्रू० सु । भ्रूः ।

वामि १।४।५

प० वि०—या अ० । वामि ७।१

अर्थ—[यू स्याग्न्यौ नदी, इयदुवट्स्थानावस्त्री] इयदुवट्स्थानौ स्याग्न्यौ यू स्त्रीशब्दं वर्जयित्वा वामि परतः या नदीमन्त्रौ भवतः ।

(इयट् उवट् है स्थान जिसका ऐसे ईकारान्त और ऊकारान्त, स्त्रीलिङ्ग को बहने वाले शब्दों की विलग में नदी मन्त्रा होती है वामि के परे रहने पर स्त्री शब्द को छोड़कर)

उदा०—धियाम्, श्रीणाम् । भ्रूवाम्, भ्रूणाम् ।

सि०—श्री आम् । भ्रूँ आम् । भ्रूँ इयट् आम् । धियु आम् । धियाम् । भ्रूवाम् । श्री आम् । श्री नुट् आम् । श्री न् आम् । श्री श् आम् । श्रीणाम् । भ्रूणाम् ।

विति ह्रस्वञ्च १।४।६

प० वि०—विति ७।२ द्वयः १।१ च अ० ।

१—धम्यापंतोह्रस्वः (७. १. १०७) इत्येव विधिर्न भवति २—धवि स्तुपानुषावां व्योरिवट्बटौ (६. ४. ७७) इत्यनेन पानुषाद् इत्यदेशः टिप्प (१. १. ५०) ३—ह्रस्वपानो नुट् (७. १. ५८) ४—पट्बुवाद्-मुम्पवावेऽति (८. ४. २)

अर्थ—[यू स्यारयौ नदी, इयडुवड्स्थानावस्त्री, वा] ह्रस्व-
मिकारान्तमुकारान्तं च स्याख्यम्, इयडुवड्स्थानौ च यू डिति प्रत्यये
परतः धा नदीसज्ञौ भवतः स्त्रीशब्दो वर्जयित्वा । (ह्रस्व इकारान्त और
उकारान्त जो स्त्रीवाचक शब्द तथा इयड् उवड् स्थान है, जिसका, ऐसे जो
ईकारान्त और उकारान्त स्त्रीवाचक शब्द, इन दोनों की डित् प्रत्यय के
परे रहन पर विवर्ण से नदी सज्ञा होती है स्त्री शब्द को छोड़कर)

उदा०—कृत्यै, कृतये, धेनवै, धेनवे, श्रियै, श्रिये, भ्रुवै, भ्रुवे ।
सि०—कृति डे । कृति आट्^१ ए । कृति आ ए । कृति ऐ^२ । कृत्यै^३ ।
कृति ड । कृति ए । कृते^४ ए । कृत् अय्^५ ए । कृतये । धेनु आट् डे ।
धेनो आ ए । धेनवे । श्री डे । श्रु इयड् डे । श्रिय आट् डे । श्रिय्
आ ए । श्रियै । श्रियड् डे । श्रियड् ए । श्रिय् ए । श्रिये । भ्रुवै । भ्रुवे ।

शेषो घ्यसखि १।४।७

प० वि०—शेषः १।१ चि १।१ असखि १।१ स०—न सखि इति
असखि ॥

अर्थ—[डिति] शेषो घिसज्ञो भवति डिति प्रत्यये परतः सखिशब्द
वर्जयित्वा । कश्च शेष ? ह्रस्वमिवर्णोवर्णान्तं यन्न स्याख्य, स्याख्यं
च यन्न नदीसज्ञकं स शेष । (शेष की घिसज्ञा होती है डित् प्रत्यय के परे
रहने पर, सखिशब्द को छोड़कर) शेष कौन है ? ह्रस्व इकारान्त उकारान्त
जो स्त्रीवाचक नहीं और स्त्री वाचक जो नदीसज्ञक नहीं, उसे शेष कहते हैं)

उदा०—अग्नये, वायवे, कृतये, धेनवे ।

सि०—अग्नि डे । अग्नि ए । अग्ने ए । अग्नये । वायु डे ।
वायो ए । वायवे । कृति डे । कृते ए । कृतये । धेनु डे । धेनो ए ।
धेनवे ।

पति समास एव १।४।८

प० वि०—पतिः १।१ समासे ७।१ एव अ० ।

अर्थ—[धि] पतिशब्दः समास एव घिसज्ञो भवति । (पति शब्द की
धि सज्ञा होती है केवल समास ही में)

१—डिति ह्रस्वश्च (१. ४ ६) घाण्णद्याः (७ ३. ११२) २—माटश्च
(६. १. ६०) ३—इको मणुचि (६. १ ७६) ४—शेषो घ्यसखि (१. ४. ७)
वेडिति (७. ३. १११) ऋदेड् गुण (१. १. २) स्थानेऽन्तरत्तम. (१. १ ४६)
५—एचाऽयवायाव (६ १. ७८)

उदा०—प्रजासतिना, प्रजापतये ।

मि०—प्रजासति टा । प्रजासतिना । प्रजासति डे । प्रजासति ण ।
प्रजासते ण । प्रजासन् अय् ण । प्रजासते ॥

ह्रस्व लघु १।८।१०

प० वि०—ह्रस्व १।१ लघु १।१

अर्थ—ह्रस्वमन्तरं लघुमन्त्रं भवति । (ह्रस्व धनर की लघु मन्त्र
होती है)

उदा०—भेना, अवाकरन् ।

मि०—भित्तिर । भिद् वृच् । भिद् वृ । भेद् वृ । भेच् । भेच् सु ।
भेच् अनच् सु । भेच्नच् सु । भेच्न सु । भेचन् म् । भेचान् म् ।
भेचान् । भेचान् ॥ अर्वाकरन् । कृ ग्लिच् । वृ ट । कर् ट । वारि
लुट् । वारि चट् लुट् । वरि अ ल् । कर् अ तिप् । वर अ
ति । कर् अ ति । च अ न् । वि अ न् । वरि अ न् । अर्वाकरन् ।
अट् अर्वाकरन् । अर्वाकरन् ।

मयोगे गुरु १।८।११

प० वि०—मयोगे ७।१ गुरु १।१

अर्थ—मयोगे परतो ह्रस्वमन्तरं गुरुमन्त्रं भवति ।

(मन्त्र के पर रहने पर ह्रस्व धनर की गुरु मन्त्र होती है)

उदा०—गुरुडा, गुरुडा ।

मि०—गुडि । गुड् । वृ लुम् अट् । गुड् । गुड् । गुड् ।

१—हनुमति च (३. १. २६) २—प्रवा ज्योति (३. २. ११५) ३—
सनासना पात्रकः (३. १. ३०) पात्रो (३. १. ६०) नूते (३. २. ८५) मुद्
(३. २. ११०) प्रपय. (३. १. १) परद्व (३. १. २) ४—गिधित्पुम्यः
कत्तिर चट् (३. १. ५८) ५—गो चट्पुम्यायाः ह्रस्व (७. ५. १) ६—
घाषंघानुक घेषः (३. ५. ११८) घाषंघानुकं (६. ५. ५६) एट्पटि (६. ५.
५१) ७—वटि (६. १. ११) ८—पुषोऽम्माय (६. १. ५) न्न लोपोऽम्माय
(७. ५. ५८) ह्वारि घेषः (७. ५. ६०) ९—गुह्यः (७. ५.
६२) १०—मन्त्रपुत्रि चट्पुम्यायाः (३. ५. ६३) ११—दीपो लपो (३.
५. ६५) १२—इतिगो मुष्पात्रा (३. १. ३८) निदपोऽम्माय (१. १. ५६)
१३—नद्यासिद्धावतलम् नदि (८. १. २५)

कुण्ड् अ^१ । कुण्ड टाप्^२ । कुण्डा ॥ हुडि । हुड । हु नुम ड । हुन्ड ।
हुड । हण्ड अ । हुण्ड टाप् । हुण्डा ॥

दीर्घ च १।४।१०

प० वि०—दीर्घं १।१ च अ० ।

अर्थ—[गुरु] दीर्घं चाक्षर गुरुसङ्ग भवति ।

(ओर दीर्घ अक्षर की गुरु सङ्गा होती है)

उदा०—ईनांचक्रे, ईहांचक्रे, आम्प्रत्ययवद् (१. ३. ६३) इत्यत्र
साधन द्रष्टव्यम्

यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् १।४।१३

प० वि०—यस्मात् १।१ प्रत्ययविधि १।१ तदादि १।१ प्रत्यये ७।१
अङ्गम् १।१ स०—प्रत्ययस्य विधि प्रत्ययविधि (प० तत्पु०) तस्य आदि
तदादि (प० तत्पु०)

अर्थ—यस्मात् प्रत्ययो विधीयते धातोर्वा प्रातिपदिकाद् वा तदादि
शब्दरूप प्रत्यये परत अङ्गसङ्ग भवति । (जिससे प्रत्यय का विधान किया
जाये उसकी तथा वह धातु और प्रातिपदिक जिसके आदि में हो उसकी
भी अङ्ग सङ्गा हाती है प्रत्यय के परे रहन पर)

उदा०—केन, रामाय, करिष्यति, हरिष्यति, औपगच, ऐतिकायन ॥

सि०—किम् टा । क टा । क इन । केन । राम डे । राम य । रामाय ।
हुङ्क्त् । हुङ्क् । कृ लृत्^३ । कृ ल् । कृ तिप् । कृ स्य^४ ति । कृ इत्^५ स्य ति ।
कर् इत् स्य ति । करि स्य ति । करिष्यति^६ । हरिष्यति ॥

सुप्तिङन्त पदम् १।४।१४

प० वि०—सुप्तिङन्तम् १।१ पदम् १।१ स०—सुप् च तिङ् च इति
सुप्तिङौ । अन्तश्च अन्तश्च इति अन्तौ । सुप्तिङौ अन्तौ यस्य इति
सुप्तिङन्तम् ।

१—अनुस्वारस्य ययि परसवण (८. ४ ५८) युरोश्च हल (३ ३
१०३) २—स्त्रियाम् (४ १. ३) भजाद्यतप्ताप् (४ १ ४) प्रत्ययः (३
१ १) परसव (३ १ २) ३—ट् षप् च (३. ३ १३) ४—स्यत्रासी
वृत्तुटा (३ १ ३३) ५—एकाच उपदेशानुदात्तान् (७. २. १०) ऋद्धना स्वे
(७ २ ७०) ६—घादेशप्रत्यया (८ ३ ५६)

अर्थ—सुवन्तं तिङन्तञ्च शब्दरूपं पदसंज्ञं भवति । (मुप् है अन्त में जिसके और तिङ् है अन्त में जिसके ऐसे शब्दरूप की पदमज्ञा होती है)

उदा०—जवाहरलालः लोकसभायां भाषणं ददाति ।

सि०—जवाहरलाल सु । जवाहरलाल स । जवाहरलाल रु । जवा-
हरलाल र । जवाहरलालः ॥ लोकसभा ङि । लोकसभा चाट् ङि । लोक-
सभा या आम्^२ । लोकसभा याम्^२ ॥ भाषणं श्रम् । भाषणम् ।
ददाति । डुदाब् । दा लट् । दा ल् । दा तिप्^२ । दा दा तिप्^२ । द्^२
दा ति । द्दाति ॥

स्वादिप्त्वसर्वनामस्थाने १।४।१७

प० वि०—स्वादिपु ७।३ अस्वसर्वनामस्थाने ७।१ स०—सु आदिर्ये-
पान्ते स्वादयः तेषुः स्वादिपु । न सर्वनामस्थानम् इति अस्वसर्वनामस्थानम्
(नञ् तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—[पदम्] सर्वनामस्थानभिन्नेषु स्वादिपु प्रत्ययेषु परतः पूर्व
पदसंज्ञं भवति । (सर्वनामस्थान भिन्न सु इत्यादि प्रत्ययो के परे रहने पर पूर्व
की पदमज्ञा होती है)

उदा०—राजभ्याम्, राजभिः, राजत्वम्, राजता, राजतरः, राजतमः ।

सि०—राजभ्याम् । राजन् भ्याम् । राजभ्याम्^२ । राजन् भिस् ।
राज भिस् । राजभिः ॥ राजन् त्व^२ । राजत्व सु । राजत्व श्रम्^२ ।
राजत्वम् ॥ राजन् तल्^२ । राजन् त । राजत । राजत टाप्^२ । राजता ।
राजन् तरप्^२ । राजन् तर । राजतर । राजतर सु । राजतरः ॥ राजन्
तमप्^२ । राजन् तम । राज तम । राजतम । राजतम सु । राजतमः ।

१—यादापः (७ ३. ११३) २—हेराम्नहामीम्. (७ ३ ११६) ३—
श्रवः मवर्णे दीर्घं (६. १. १०१) ४—तिङ्गित्वावधानुबन्धम् (३ ४. ११३)
[साधंघातुके] यक् (३. १. ६७) कर्त्तरि णप् (३. १. ६८) चुत्रोऽस्यादिभ्यः ङुः
(२. ४. ७५) प्रत्ययस्य लुक्लुप्तपुः (१. १. ६०) ५—दलो (६ १. १०) ६—पूर्वो-
ऽभ्यास. (६. १. ४) भ्रज लोपोऽभ्यासस्य (७. ४. ५८) ह्रस्वः (७. ४. ५६)
भ्रज्यासे चर्चं (८. ४. ५४) ७—स्वादिप्त्वसर्वनामस्थाने (१. ४. १७) पदस्य
(८. १. १६) नलोपः प्रातिपदिसान्त्स्य (८. २. ७) ८—तस्य भावस्त्वतलो
(५. १. ११६) ९—मतोऽम् (७. १. २०) १० भ्रजाद्यण्टाप् (४. १. ४)
प्रत्ययः (३. १. १) परस्व (३ १. २) ११—द्विषचनविभ्रज्योऽपदे तर्ग्यापगुनो
(५. ३. ५७) १२—प्रतिगायने तमविष्टनो (५. ३. ५५)

यचि भम् ॥

प० वि०—यचि ७।१ भम् १।१॥ स०—यश्च अच्च इति यच्
(समा० द्वन्द्व.) तस्मिन् यचि ।

अर्थ—[स्वादिष्यसर्वनामस्थाने] सर्वनामस्थानभिन्ने स्वादौ,
यकारादौ अजादौ च प्रत्यये परतः पूर्वं भसङ्ग भवति ॥ (सर्वनामस्थान-
भिन्न मु इत्यादि प्रत्ययो में यकारादि और अजादि प्रत्ययो के परे रहने पर पूर्व
की भसङ्गा होती है)

उदा०—गार्ग्यः वात्स्यः, दाक्षि, प्लाक्षिः, सोमपः ।

सि०—गर्ग यञ् । गर्ग य । गर्ग य । गार्ग य । गार्ग्य सु ।
गार्ग्यः । वत्स यञ् । वत्स य । वत्स य । वात्स य । वात्स्य मु ।
वात्स्यः । दक्ष इञ् । दक्ष इ । दाक्ष इ । दक्ष इ । दाक्षि मु । दाक्षिः ।
प्लक्ष इञ् । प्लाक्षि ॥ सोमपा डस । सोमपा अस् । सोमप अस् ।
सोमपस् । सोमप ॥

बहुषु बहुवचनम् १।४।२१

प० वि०—बहुषु ७।३ बहुवचनम् १।१

अर्थ—बहुषु विधत्ते बहुवचनं भवति । (बहुषु के कहने की
इच्छा में बहुवचन होता है)

उदा०—पुरुषाः पठन्ति ॥

द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने १।४।२२

प० वि०—द्व्येकयोः ७।२ द्विवचनैकवचने १।२॥ स०—द्वौ च एकश्च
इति द्व्येषो (इतरे० द्वन्द्वः) तयोः द्व्येकयोः । द्विवचन च एकवचन
चेति द्विवचनैकवचने (इतरे० द्वन्द्वः)

अर्थ—द्वित्ये विधत्ते द्विवचनमेकवचने विधत्ते एकवचनं च भवति
(दो के कहने की इच्छा हा तो द्विवचन और एक के कहने की इच्छा हो तो
एक वचन होता है) ।

१—गर्गादिभ्यो यञ् (४. १. १०५) २ यचि भम् (१. ४. १८) यस्मात्
प्रत्ययविधीयन्तर्नादि प्रत्ययेऽङ्गम् (१. ४. १३) अङ्गस्य (६. ४. १) भस्य (६.
४. १२६) यस्वेति च (६. ४. १४८) ३—तदितेष्वात्मादेः (७. २. ११७)
४—नस्यापत्यम् (४. १. ९२) अत इञ् (४. १. ६५) ५—यचि भम् (१. ४.
१८) *विचन्त पानुव न जहानि* पातो पाता. (६. ४. १४०)

उदा०—रामो गच्छतः । रामः गच्छति ॥

कारकप्रकरणम्

कारक १।४।२३

प० वि०—कारके ७१

अर्थ—(क्रियायां सिद्धौ साधकत्वं कारकत्वम्) अप्र वक्ष्यमाणानि कार्याणि कारके भवन्ति इति अविमारो वेदितव्य. (क्रिया की सिद्धि में जो सहायक हो उसे कारक कहते हैं) आगे कहे जाने वाले कार्य कारक के विषय में होंगे, इस बात का अधिकार समझना चाहिये) ।

ध्रुवमपायेऽपादानम् १।४।२४

प० वि०—ध्रुवम् १।१ अपाये ७१ अपादानम् १।१

अर्थ—[कारक] (पृथग्भवनत्वात् अपायशब्द) अपाये सति ध्रुवं यत्कारकं तदपादानसंज्ञं भवति (अपाय अर्थात् अलग हान में ध्रुव या निश्चित या अचल जो कारक उसकी अपादान सत्ता होती है) ।

उदा०—वृक्षात् पत्र पतति । ग्रामादागच्छति । रथात्पतितः ॥

भीत्रार्थानां भयहेतु १।४।२५

प० वि०—भीत्रार्थानां ७३ भयहेतुः १।१॥ स०—भीश्च त्राश्च इति भीत्री । अर्थश्च अर्थश्च इति अर्थी । भीत्री अर्थी येषां धातूनान्ते भीत्रार्थाः (बहु०) तेषाम् । भयस्य हेतुः भयहेतुः (प० तत्पु०) ।

अर्थ—विभेत्यर्थानां त्रायत्यर्थानां च धातूनां प्रयोगे भयस्य हेतुर्यस्तत्कारकमपादानसंज्ञं भवति । (भयायं च और रक्षायं च धातुआ के प्रयोग में भय का कारण जो कारक उसकी अपादानसत्ता होती है) ।

उदा०—चौरेभ्यो विभेति । चौरेभ्य उद्विजते । त्रायत्यर्थानाम्-चौरेभ्यस्त्रायते । चौरेभ्यो रक्षति ॥

पराजेरसोढः १।४।२६

प० वि०—पराजे. ६१ असोढः १।१ स०—सोढुं शक्यते इति सोढ-न सोढ इति असोढः ।

अर्थ—परापूर्वकजिगतोः प्रयोगे असोढो यस्तत्कारकम् अपादानसंज्ञं भवति । (परा उपमर्गपूर्वक जिगतु के प्रयोग में न महुने योग्य जो कारक उसकी अपादान सत्ता होती है)

उदा०—अव्ययानान् पराजयते ॥

वारणार्थानामीप्सित १।४।२७

प० वि०—वारणार्थानाम् ६।३ ईप्सितः १।१॥ स०—वारणम् अर्थो
येषां धातूनाम् ते वारणार्थाः (बहु) तेषाम् ।

अर्थ—(प्रवृत्तिविघातो वारणम्) वारणार्थानां धातूनां प्रयोगे
ईप्सितो योऽर्थस्तत्कारकमपादानसङ्गं भवति । (प्रवृत्ति के रोकने को
वारण कहते हैं) रोकना अर्थ वाले धातुओं के प्रयोग में अत्यन्त ईष्ट जो कारक
उसकी अपादान सज्ञा होती है)

उदा०—यवेभ्यो गां वारयति । यवेभ्यो गां निवर्त्तयति ।

अन्तर्द्धौ येनादर्शनमिच्छति १।४।२८

प० वि०—अन्तर्द्धौ ७।१ येन ३।१ अदर्शनम् १।१ इच्छति (क्रिया०) ।

स०—न दर्शनम् अदर्शनम् ।

अर्थ—(व्यवधानवाची अन्तर्द्धिशब्दः) अन्तर्द्धिनिमित्त येन अदर्शनम्
इच्छति तत्कारकमपादानसङ्गं भवति । (छिपने के कारण से अपना
जो अदर्शन चाहता है ऐसा जो कारक उसकी अपादान सज्ञा होती है)

उदा०—उपाध्यायादन्तर्द्धते । उपाध्यायान्निलीयते ।

आख्यातोपयोगे १।४।२९

प० वि०—आख्याता १।१ उपयोगे ७।१

अर्थ—(आख्याता प्रतिपादयिता पाठयिता वा । नियमपूर्वकं विद्या-
ग्रहणमुपयोगः) नियमपूर्वकविद्याग्रहणे यः प्रतिपादयिता तत्कारकमपादानसङ्गं
भवति । (नियमपूर्वक विद्या क ग्रहण करने में पढ़ाने वाला जो
कारक उसकी अपादान सज्ञा होती है)

उदा०—उपाध्यायादधीते । उपाध्यायादागमयति ।

जनिकर्त्तुं प्रकृतिः १।४।३०

प० वि०—जनिकर्त्तुः ६।१ प्रकृतिः १।१॥ स०—जने. कर्ता जनि-
कर्ता (प० तत्पु०) तस्य ।

अर्थ—जन्धातोर्यः कर्ता तस्य या प्रकृति कारणं हेतुर्वा तत् कारक-
मपादानसङ्गं भवति । (जन् धातु का जो कर्ता उसकी प्रकृति या कारण
या कारक उसकी अपादान सज्ञा होती है)

उदा०—शृङ्गाच्छते जायते । गोमयाद् वृश्चिको जायते ।

भुव प्रभव १।४।३०

प० वि०—भुव. ६।१ प्रभव १।१॥

अर्थ—भूवानोर्य कर्ता तस्य य प्रभव. उत्पत्तिस्थानम् तत्कारकम-
पादनसङ्ग भवति ।

(भूवानु वा जा कर्ता और उसका जा उत्पात्त स्थान, वह जो कारक उसकी
प्रदातन सजा होती है)

उदा०—हिमवतो गङ्गा प्रभवति । काश्मीरेभ्यो वितस्ता प्रभवति ।

सि०—हिमवत् डमि । हिमवत् असि । हिमवत् अस् । हिमवत्. ।

कर्मणा यमभिप्रैति न सम्प्रदानम् १।४।३२

प० वि०—कर्मणा ३।१ यम् २।१ अभिप्रैति (क्रिया०) सम्प्रदान
१।१॥

अर्थ—(अभित प्रकर्षण एति गच्छति प्राप्नोति एति अभिप्रैति)
कर्मणा क्रियया यस्य यमिप्राय मायति स यकारक तन् सम्प्रदानसङ्ग
भवति । (क्रिया क द्वारा निमक घनिपाय वा घच्छी तरह न सिद्ध किया
जाय, वह जो कारक उसकी सम्प्रदानमज्ञा हाती है)

उदा०—उषाध्यायाय गां ददाति

रुच्यर्थाना प्रीयमाण १।४।३३

प० वि०—रुच्यर्थानाम् ६।२ प्रीयमाण १।१॥ स०—रुचि अर्थां तेषां
घातूनाम् तै रुच्यर्था (नहु०) तेषाम् ।

अर्थ—रुच्यर्थाना गानूना प्रयोगे प्रीयमाणो योऽर्थमन शरुं
सम्प्रदानसङ्ग भवति ।

(राचना घच्छा लगना है अथ जिन घानुषा वा तैम क प्रयोग में त्रिमकी
अच्छा लगना है वह जो कारक उसकी सम्प्रदान मज्ञा हाती है)

उदा०—देवदत्ताय रोचते मोदक । यज्ञदत्ताय मन्त्रे अशुभ ।

श्लाघहनुट् म्थाशपा जीप्समान १।४।३४

प० वि०—श्लाघहनुट् म्थाशपाम् ६।३ जीप्समान. १।१॥ स०—
श्लाघश्च हनुड च स्थाश्च शप् चति म्थाशपाम् म्थाशपाम् देवाम् । (स्ते
द्वन्द्व)

अर्थ—श्लाघहनुड इत्याशपा धानूनां प्रयोगे शीप्स्यमानो योऽर्थस्तत्कारक सम्प्रदानसज्ञ भवति ।

(श्लाघ हनुड स्था और शप धातु के प्रयोग में जनाये जान की इच्छा रखन वाना जो कारक उसकी सम्प्रदान सज्ञा होती है)

उदा०—देवदत्ताय श्लाघते । देवदत्ताय हनुते । देवदत्ताय तिष्ठते । देवदत्ताय शपते । श्लाघते ज्ञापयति चेत्यर्थ ।

धारेरुत्तमर्ण १।४।३५

प० वि०—धारे ६।१ उत्तमर्ण १।१॥ स०—उत्तमर्ण यस्य स उत्तमर्ण ।

अर्थ—धारयते प्रयोगे उत्तमर्णो योऽर्थ तत्कारक सम्प्रदानसज्ञ भवति । (धारि धातु के प्रयोग म जो ऋण देन वाला है वह जो कारक उसकी सम्प्रदान सज्ञा होती है)

उ.१०—देवदत्ताय शत धारयति । देवदत्ताय सहस्र धारयति ।

स्पृहेरीप्सित १।४।३६

प० वि०—स्पृहे ६।१ ईप्सित १।१

अर्थ—स्पृहिधातो प्रयोगे ईप्सितो योऽर्थस्तत्कारक सम्प्रदानसज्ञ भवति । (स्पृह धातु के प्रयोग म श्रुत्यत् इष्ट जो कारक उसकी सम्प्रदानसज्ञा होती है)

उदा०—पुष्पेभ्य स्पृहयति । फलेभ्य प्रहयति ।

क्रुधद्रुह्यर्ष्यासूयार्थाना य प्रति कोप १।४।३७

प० वि०—क्रुधद्रुह्यर्ष्यासूयार्थानाम् ६।३ यम् २।१ प्रति अ० । कोप १।१॥ म०—क्रुधश्च द्रुहश्च ईर्ष्यश्च असूयश्च इति क्रुधद्रुह्यर्ष्यासूया अर्थश्च अर्थश्च अर्थश्च अर्थश्च इति अर्था । क्रुधद्रुह्यर्ष्यासूया अर्था. येषा धानूनाम् ते क्रुधद्रुह्यर्ष्यासूयार्था (बहु०) तेषाम् ॥

अर्थ—(अमर्षे क्रोध । अपकारो द्रोह । अक्षमा ईर्ष्या । गुणेषु दोषाविष्करणमसूया) क्रुधार्थाना द्रुहार्थाना ईर्ष्यार्थाना असूयार्थाना च धानूना प्रयोगे य प्रति कोपस्तत्कारक सम्प्रदानसज्ञ भवति ।

(क्रुध द्रुह ईर्ष्य और असूय इन चार धातुषा म प्रयोग म जिसक प्रति कोप किया जाता है वह जा कारक उसका सम्प्रदान मना जाता है)

उदा०—देवदत्ताय क्रुध्यति । देवदत्ताय द्रुह्यति । देवदत्ताय ईर्ष्यति । देवदत्ताय असूयति ।

ऋधद्रुहोस्पमृष्टया कर्म १४१३८

प० वि०—ऋधद्रुहो ६।१ उपमृष्टयो. ६।१॥ स०—ऋधश्च द्रुहश्च इति ऋधद्रुहो (इतरे० द्वन्द्व) तयो ।

अर्थ—[य प्रति कोप] उपसर्गपूर्वकयो ऋधद्रुहो वात्वा प्रयोगे य प्रति कोपस्तत्कारक र्ममज्ञ भवति ।

(उपसर्ग है पूव में तिस क एम ऋध और द्रुह धानु क प्रयोग में जिसके प्रति कोप किया जाय वह जो कारक उसका कर्ममता हाता है)

उदा०—देवदत्तमभिक्रुध्यति । देवदत्तमभिद्रुह्यति ।

राधीक्ष्योर्यम्य विप्रश्न १४१३९

प० वि०—राधीक्ष्यो ६।१ यस्य ६।१ विप्रश्न १।१॥ स०—राधिश्व ईक्षिश्च इति राधीक्षी (इतरे० द्वन्द्व) तयो । विविधः प्रश्न विप्रश्न ।

अर्थ—राध्यते ईक्षितेश्च धात्वो प्रयोगे यस्य विप्रश्न तत्कारक सम्प्रदानसज्ञ भवति । (राध और इक्ष धानु क प्रयोग में जिसका गुमागुम समाचार पूछा जाय एसा जा कारक उसकी सम्प्रदान सज्ञा हानी है)

उदा०—देवदत्ताय राध्यति । देवदत्ताय ईक्षते ।

प्रत्याङ्भ्या श्रुव पूवस्य कर्ता १४१४०

प० वि०—प्रत्याङ्भ्या १।१ श्रुव ६।१ पूर्वस्य ६।१ कर्ता १।१॥ स०—प्रति च आङ् च इति प्रत्याङ्गी ताभ्याम् ।

अर्थ—प्रति आङ्पूर्वश्चुवातो प्रयोगे पूर्वस्य कर्ता तत्कारक तत्सम्प्रदानसज्ञ भवति । (प्रति आङ् पूवक श्रुवातु क प्रयोग में पहले का जा कर्ता वह जा कारक उसकी सम्प्रदान सज्ञा हानी है)

उदा०—देवदत्तं वृन्दति । यज्ञदत्तं देवदत्ताय गा प्रतिशृणाति । यज्ञदत्तं देवदत्ताय गामाशृणाति ।

अनुप्रतिगृणाश्च १४१४१

प० वि०—अनुप्रतिगृण ६।१ च अ०।

अर्थ—[पूर्वस्य कर्ता]अनुपूर्वस्य प्रतिपूर्वस्य च गृणाते धातो प्रयोगे पूर्वस्य कर्ता यत्कारक तत्सम्प्रदानसज्ञ भवति ।

(अनु और प्रति पूवक ग धातु क प्रयोग में पहले का कर्ता जा कारक उस की सम्प्रदान सज्ञा हाती है) ।

उदा०—होता प्रथमं शंसति, तम् अन्यः प्रोत्साहयति इति अनुगृणा-
तेरर्थः । होत्रे अनुगृणाति । होत्रे प्रतिगृणाति ।

सि०—होत् डे । होत् ए । होत् ए । होत् र् ए । होत्रे ।

साधकतम करणम् १।४।४२

प० वि०—साधकतमम् १।१ करणम् १।१

अर्थ—क्रियायां सिद्धौ सहायकतमं यत् कारक तत्करणसंज्ञं भवति ।
(क्रिया की सिद्धि में अत्यन्त सहायक जो कारक उमकी करण सज्ञा
होती है) ।

उदा०—दात्रेण लुनाति । परशुना छिनत्ति ।

सि०—दात्र । दात्र टा । दात्र इन । दात्रेन । दात्रेण^१ । परशु दा ।
परशु ना^२ । परशुना ।

दिव. कर्म च १।४।४३

प० वि०—दिवः ६।१ कर्म १।१ च अ०

अर्थ—[करणम्] दिवधानोः प्रयोगे साधकतमं यत्कारकं तत्करण-
संज्ञं भवति, चकारात् करणसंज्ञञ्च । (दिव धातु के प्रयोग में अत्यन्त
सहायक जो कारक उमकी कर्म सज्ञा होती है और चकार से करणसज्ञा भी ।

उदा०—अज्ञान् दीव्यति । अज्ञैर्दीव्यति ।

परिक्रयणे संप्रदानमन्यतरस्याम् १।४।४४

प० वि०—परिक्रयणे ७।१ सम्प्रदानम् १।१ अन्यतरस्याम् अ०

अर्थ—(परिक्रयणं नियतकालं चेतनादिना स्वीकरणं, नात्यन्तिकः
क्रय एव) परिक्रयणे साधकतमं यत्कारकं तन् सम्प्रदानसंज्ञं भवति
विकल्पेन । (परिक्रयण उमे कहते हैं जिनको चेतन इत्यादि देकर किसी
नियत समय तक के लिए काम में लगाया जाता है, उसको अत्यन्त गरीब
ही नहीं लिया जाता है)

(परिक्रयण में अत्यन्त सहायक जो कारक उमकी विवक्ष्य में सम्प्रदान-
सज्ञा होती है, पक्ष में करण सज्ञा भी ।

उदा०—शनाय परिक्रीतः । शनेन परिक्रीतः । सद्म्याय परिक्रीतः ।
सहस्रेण परिक्रीतः ।

१—घट्कुप्वाद्० (व. ४. २) २—घातो नास्त्वियाम् (७. ३. १०९) ।

आधारोऽधिकरणम् १।४।४५

प० वि०—आधारः १।१ अधिकरणम् १।१

अर्थ—(आध्रियन्ते अस्मिन् क्रिया इति आधारः) क्रियायां सिद्धौ आधारो यत्कारकतदधिकरणसंज्ञं भवति । (क्रिया के करने या होने पर आधार जो कारक उसकी अधिकरण सजा होती है)

उदा०—कटे आस्ते, कटे शेते, स्थाल्यां पचति ।

सि०—कट ङि । कट इ । कटे ॥ स्थाली ङि । स्थाली आम् । स्थाल्याम् ॥

अधिशीङ्स्थासा कर्म १।४।४६

प० वि०—अधिशीङ्स्थासाम् ६।३ कर्म १।१

अर्थ—अधिपूर्वकशीङ्स्थास्धातूनां प्रयोगे आधारो यत्कारक तत्कर्मसंज्ञं भवति । (अधि उपसर्गपूर्वक शीङ् स्था और आस् धातुओं के प्रयोग में आधार जो कारक उसकी कर्म सजा जाती है)

उदा०—ग्रामम् अधिशेते, ग्रामम् अधितिष्ठति, पर्वतम् अध्यास्ते ।

अभिनिविशश्च १।४।४७

प० वि०—अभिनिविशः ६।१ च अ० ।

अर्थ—अभिनिपूर्वस्य विश् धातोः प्रयोगे आधारो यत्कारकं तत्कर्मसंज्ञं भवति । (अभि और नि पूर्वक विश्धातु के प्रयोग में आधार जो कारक उसकी कर्मसजा होती है)

उदा०—ग्रामम् अभिनिविशते ।

उपान्वध्याङ् वसः १।४।४८

प० वि०—उपान्वध्याङ् वसः ६।१

अर्थ—उप अनु अधि आङ्पूर्वस्य वस्धातोः प्रयोगे आधारो यत्कारकं तत्कर्मसंज्ञं भवति । (उप अनु अधि और आङ् उपसर्गपूर्वक वस्धातु के प्रयोग में आधार जो कारक उसकी कर्मसजा होती है)

उदा०—ग्रामम् उपवसति सेना, पर्वतमुपवसति, ग्राममनुवसति, ग्राममधिवसति, ग्राममावसति ।

कर्तुरीप्सिततम कर्म १।४।४९

प० वि०—कर्तुः ६।१ ईप्सिततमम् १।१ कर्म १।१

अर्थ—कर्तु ईप्सिततम यत्कारक तत्कर्मसङ्ग भवति । (कर्ता का अत्यन्त इष्ट प्रयाति अत्यन्त चाहा हुआ जो कारक उसकी कर्मसङ्गा होती है)
उदा०—पुस्तक पठति । वेदान् पठन्ति छात्राः । ग्राम गच्छति ।

तथायुक्त चानीप्सितम् १।४।५०

प० वि०—तथायुक्तम् १।१ च अ० । अनीप्सितम् १।१ स०—तेने प्रकोरणेति तथा । तथा युक्तम् इति तथायुक्तम् । न ईप्सितम् इति अनीप्सितम् ।

अर्थ—[कर्म] येन प्रकारेण कर्तुरीप्सितं तेनैव प्रकोरण कर्तुरनीप्सितमपि यत्कारक तत्कर्मसङ्ग भवति ।

(जिस प्रकार से कर्ता का अत्यन्त चाहा हुआ उसी प्रकार से कर्ता का अत्यन्त न चाहा हुआ जा कारक उसकी भी कर्मसङ्गा होती है)

उदा०—विष भक्षयति, चौरान् पश्यति, ग्राम गच्छन् वृक्षमूलानि उपसर्पति ।

सि०—चौरान् । चौर शस् । चौर अस् । चौरास्^१ । चौरान्^२ ॥ वृक्षमूलानि । वृक्षमूल शस् । वृक्षमूल शि^३ । वृक्षमूल इ । वृक्षमूल नुम्^४ इ । वृक्षमूल नु इ । वृक्षमूलन् इ । वृक्षमूलान्^५ इ । वृक्षमूलानि ॥

अकथित च १।४।५१

प० वि०—अकथितम् १।१ च अ० । स०—न कथितम् अकथितम् (नन्व तत्पु०)

अर्थ—अपादानादिविशेषकथाभिः अकथित यत्कारक तत्कर्मसङ्ग भवति । (अपादान, सम्प्रदान, करण, अधिकरण इत्यादि से न कहा गया जो कारक उसकी कर्मसङ्गा होती है)

उदा०—दुहियाचिरुधिप्रच्छिभिन्निचिन्वामुपयोगनिमित्तमपूर्वविधौ । अ विशासिगुणेन च यत्सचते तदकीर्णितमाचरितं कविना ॥ दुहि—गां दोग्धि पय । याचि—पौरव गां याचते । रुधि—गामवरुणद्धि अजम् । प्रच्छि—माण्यक पन्थानं पृच्छति । भिन्नि—पौरव गां भिन्ते । चिन्व—

१—प्रथमयो पूर्वसवर्णं (६ १ १०२) २—तस्पाच्छसो न पु सि (६ १. १०३) अलोऽन्त्यस्य (१. १. ५१) ३—जश्चसोः सि (७. १ २०) अन्वात्सिस्तसर्वस्य (१ १. ५४) ४—सि सर्वनामस्थानम् (१. १. ४१) नपु सकस्य अन्वः (७. १. ७२) मिदधोऽन्त्यात्पर (१. १ ४६) ५—सर्वनामस्थाने चास-

वृत्तम् अत्रचिनोति फलानि । त्र वि—माणवक वर्मं त्रुते । शासि—माण-
वक धर्मम् अनुशासित ॥

सि०—गा । गा अम् । गा अम्^१ । गाम्^२ ॥ पौरव अम् । पौरवम् ॥

गतिबुद्धिप्रत्ययसानार्थशब्दकर्माकर्मकारणाम्-

अणिकर्ता स णी १।८।२०

प० वि०—गतिबुद्धिप्रत्ययसानार्थशब्दकर्माकर्मकारणाम् ६।३ अणिक-
कर्ता १।१ स १।१ णी ७।१ स०—गतिश्च बुद्धिश्च प्रत्यय-
सान चेति गतिबुद्धिप्रत्ययसानानि । अर्थश्च अर्थाश्च अर्थश्च इति
अर्था । गतिबुद्धिप्रत्ययसानानि अर्था यथा धातूनां ते गतिबुद्धिप्रत्य-
यसानार्था (गृह०) ॥ शब्द कर्म यस्य इति शब्दकर्म (गृह०) न कर्म
प्रियते यस्य स अकर्मक । शब्दकर्म च अकर्मकश्च इति शब्दकर्मा-
कर्मका ॥ गतिबुद्धिप्रत्ययसानार्थाश्च शब्दकर्माकर्मकाश्च इति गति-
बुद्धिप्रत्ययसानार्थशब्दकर्माकर्मका तेपाम् । अणीकर्ता अणिकर्ता ॥

अर्थ—गत्यर्थानां बुद्ध्यर्थानां प्रत्ययसानार्थानां शब्दकर्मकारणाम्
अकर्मकारणा च धातूनां प्रयोगे अण्यन्तावस्थाया य कर्ता कारक तत्
अण्यन्तावस्थाया कर्मसङ्ग भवति ॥

(गति, बुद्धि, भक्षण अर्थ वा ने तथा शब्द कर्म है जिसका एम घोर अक-
मक धातुमा क प्रयोग में अण्यत अवस्था में जो कर्ता कारक उसकी अण्यन्त
अवस्था में कर्मसङ्ग हा जाती है)

उदा०—गति । अणी—गच्छति माणवको ग्रामम् । णी—गमयति
माणवक ग्रामम् । अणी—याति माणवको ग्रामम् । णी—यापयति माणवक
ग्रामम् । बुद्धि । अणी—बुध्यते माणवको धर्मम् । णी—बोधयति माण-
वक धर्मम् । अणी—वेत्ति माणवको धर्मम् । णी—वेदयति माणवक
धर्मम् ॥ प्रत्ययमान । अणी—भुङ्क्ते माणवक ओदनम् । णी—भोजयति
माणवकम् ओदनम् ॥ शब्दकर्म । अणी—अधीते माणवको वेदम् । णी-
अयापयति माणवक वेदम् । अणी—पठति माणवको वेदम् । णी—पाठ-
यति माणवक वेदम् । अकर्मक । अणी—आस्ते देवदत्त । णी—आस-
यति देवदत्तम् । अणी—शेते देवदत्त । णी—शाययति देवदत्तम् ॥

हृक्कोरन्यतरस्याम् १।४।५३

प० वि०—हृको ६।० अन्यतरस्याम् अ० । स०—हृ च कृ च इति हृक् (समा० द्वन्द्व) तयो

अर्थ—[अणि कर्त्ता स णो] हृकृधात्वो प्रयोगे अख्यन्तावस्थायाम् य कर्त्ता यत्कारक तत् ख्यन्तावस्थाया विकल्पेन कर्मसज्ञ भवति ।

(हृ और कृ ध तु के प्रयोग म अण्यत अवस्था म जो कर्त्ता वह जो कारक उसकी ण्यत अवस्था में विकल्प से कर्मसज्ञा हो जाती है)

उदा०—अणौ—हरति भार माणवक । णौ—हारयति भार माणवक माणवकेन वा । अणौ—करोति कट देवदत्त । णौ—कारयति कट देवदत्त देवदत्तेन वा ॥

स्वतन्त्र कर्त्ता १।४।५४

प० वि० स्वतन्त्र १।१ कर्त्ता १।१

अर्थ—क्रियाया सिद्धौ स्वतन्त्रो यत्कारक तत् कर्त्तृसज्ञ भवति । (क्रिया की सिद्धि में स्वतन्त्र जो कारक उसकी कर्त्ता सज्ञा होती है)

उदा०—देवदत्त पचति । राम गच्छति ।

तत्प्रयोजको हेतुश्च १।४।५५

प० वि०—तत्प्रयोजक १।१ हेतु १।१ च अ० ।

स०—तस्य प्रयोजक तत्प्रयोजक (प० तत्पु०)

अर्थ—[कर्त्ता] स्वतन्त्रस्य प्रयोजको यत्कारकं तद् हेतुसज्ञ भवति चकारात्कृत् सज्ञञ्च ।

(स्वतन्त्र का जो प्रेरणा करने वाला उसकी हेतु सज्ञा होती है और चकार से कर्त्ता सज्ञा भी)

उदा०—देवदत्त करोति । यज्ञदत्त कुर्वाण देवदत्त प्रयुङ्क्ते इति यज्ञदत्त देवदत्त वारयति ।

साधनं हेतुमति च (३ १ ०६) इति सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

प्राग्नीश्वरान्निपाता १।४।५६

प० वि०—प्राक् १।१ रीश्वरात् ५।१ निपाता १।३।।

अर्थ—‘अधिरीश्वरे’ इति एतस्मान् प्राक् निपातसंज्ञा भवन्ति इति अधिकारो वेदितव्य । (अधिरीश्वरे इस सूत्र से पहले पहले निपातसंज्ञा होती है, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

चादयोऽसत्त्वे १।८।५७

प० वि०—चादय १।३ असत्त्वे ७।१॥ स०—च आदिर्येषामिति चादय । न सत्त्वम् असत्त्वम् तस्मिन् असत्त्वे ।

अर्थ—(द्रव्यवाची सत्त्वशब्द) चादयो निपातसज्ञा भवन्ति न चेत् सत्त्वे भवन्ति ।

(च इत्यादि की निपात सज्ञा होती है यदि वे द्रव्य के बोधक न हो तो)

उदा०—च, वा, ह, अह, एव, एवम्, शाश्वत्,

सि०—च सु । च^१ । एव सु । एव । नूनम् सु । नूनम् ।

प्रादय १।४।५८

प० वि०—प्रादय १।३ स०—प्र आदिर्येषान्ते प्रादय ।

अर्थ—[निपाता. असत्त्वे] प्रादयोऽसत्त्वे निपातसज्ञा भवन्ति ।

(प्र इत्यादि अद्रव्यवाची की निपात सज्ञा होती है)

उदा०—प्र, परा, अप, सम्, अनु, अब, निस्, दुस, वि, आह, नि, अधि, अपि, अति, सु, उन्, अभि, प्रति, परि, उप ।

उपसर्गा क्रियायोगे १।८।५९

प० वि०—उपसर्गा १।३ क्रियायोगे ७।१॥ स०—क्रियाया योग-क्रियायोग (प० तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—क्रियायोगे प्रादय उपसर्गसज्ञा भवन्ति ।

(क्रिया के साथ सम्बन्ध होन पर प्र इत्यादि की उपसर्ग सज्ञा होती है)

उदा०—प्रणयति, परिणयति, प्रणायक, परिणायक ।

सि०—प्र णीष् । प्र णी । प्र नी । प्र नी शप् तिप् । प्र ने अ ति । प्र नयति । प्रणयति^१ । परिणयति । प्रणीन् । प्र णी । प्र नी खुल् । प्र नी बु । प्र नी अक । प्र नै अक । प्र नाय् अक । प्रणायक । प्रणायक सु । प्रणायक । परिणायक ।

गतिश्च १।४।६०

प० वि०—गति १।१ च अ० ।

अर्थ—[क्रियायोगे, प्रादय] प्रादय क्रियायोगे गतिसज्ञाकारक भवन्ति । (प्र इत्यादि की क्रिया के योग में गतिसज्ञा भी होती है)

उदा०—प्रकृत्य, प्रहृत्य, प्रकृतम्, प्रहृतम् ।

सि०—डुकृत् । डुकृ । कृ । कृ क्त्वा । कृत्वा । प्र कृत्वा । प्रकृ^{त्} ल्यप् । प्रकृ ल्य । प्रकृ य । प्रकृ तुक् य । प्र कृ तु य । प्रकृत्य । प्रकृत्य सु । प्रकृत्य । प्रहृत्य । प्रहृतम् । कृ क्त । कृ त । प्रकृत । प्रकृत सुं । प्रकृत अम् । प्रकृतम् । प्रहृतम् ।

ते प्राग् धातोः १।४।८०

प० वि०—ते १।३ प्राक् १।१ धातोः ५।१।।

अर्थ—[गतिः उपसर्गाः] ते गति-उपसर्ग सङ्गनाःधातोः प्राक् भवन्ति । (उन गति और उपसर्ग सज्ञा वाले शब्दों का प्रयोग धातु के पहले होता है)

छन्दसि परेऽपि १।४।८१

प० वि०—छन्दसि ७।१ परे ७।१ अपि १।१

अर्थ—[ते धातोः] छन्दसि विषये ते गति-उपसर्गाः धातोः परेऽपि भवन्ति । (छन्द के विषय में गति और उपसर्ग सज्ञा वाले शब्दों का प्रयोग धातु के पश्चात् भी होता है)

उदा०—याति नि हस्तिना । हन्ति नि मुष्टिना । नियाति । निहन्ति ।

व्यवहिताश्च १।४।८२

प० वि०—व्यवहिताः १।३ च १।१

अर्थ—[ते धातोः] ते गति-उपसर्गसंज्ञकारछन्दसि व्यवहिताश्च भवन्ति । (उन गति और उपसर्ग संज्ञा वाले शब्दों का प्रयोग छन्द में व्यवधान युक्त भी होता है)

उदा०—आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूरोमभिः । आयाहि ।

कर्मप्रवचनीया. १।४।८३

प० वि०—कर्मप्रवचनीयाः १।३

अर्थ—इतः ऊर्चं कर्मप्रवचनीयसङ्गाः भवन्ति इति अधिकांशे वेदित्तव्यः । (इसके पश्चात् कर्मप्रवचनीय सज्ञा का अधिकार समझना चाहिये)

अपपरी वर्जने १।४।८८

प० वि०—अपपरी १।२ वर्जने ७।१। स०—अपरि परि इति अपपरी ।

अर्थ—वर्जने अर्थे अपपरी कर्मप्रवचनीयसंज्ञौ भवतः ।

(कर्मनं धर्मं में अप्र और परि का कमप्रवचनीय संज्ञा होती है)

उदा०—अप त्रिगर्तभ्यो वृष्टो देव । परि त्रिगर्तभ्यो वृष्टो देव ।

आङ् मर्यादावचने १।४।८६

प० वि०—आङ् १।१ मर्यादावचने ७।१॥ स०—मर्यादाया वचनम् मर्यादावचन (प० तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—मर्यादावचने अर्थ आङ् कर्मप्रवचनीयसङ्गो भवति ।

उदा०—आ पाटलिपुत्राद् वृष्टो देव । आकुमार यश पाणिने ।

सि०—पाटलिपुत्रान् । पाटलिपुत्र डसि । पाटलिपुत्र आत् । पाटलिपुत्रात् । आकुमारम् । आ कुमारात् । आ सु कुमार डसि । आकुमार सु । आकुमार अम् । आकुमारम् ।

अधिरीद्वरे १।४।९०

प० वि०—अधि १।१ ईश्वरे ७।१॥

अर्थ—ईश्वरे अर्थ अधि कर्मप्रवचनीयसङ्गो भवति ।

(अधिक कहने धर्म में अधि की कम प्रवचनीय संज्ञा होती है)

उदा०—अधि ब्रह्मदत्ते पञ्चाला । अधि पञ्चालेषु ब्रह्मदत्त ।

ल परस्मैपदम् १।४।९६

प० वि०—ल ६।१ परस्मैपदम् १।१॥

अर्थ—लादेशा परस्मैपदसङ्गा भवन्ति । (ल के स्वान में जो आदेश होते हैं उनकी परस्मैपदसङ्गा हाती है)

उदा०—भवति, भवत, भवन्ति । भवसि, भवथ, भवथ । भवामि, भवाव, भवाम ।

सि०—भू लट् । भू तिप् । भू ति । भू शप् ति । भू अ ति । भो अ ति । भव् अति । भवति । भू मिप् । भू मि । भू शप् मि । भू अ मि । भो अ मि । भव् अ मि । भव् आ मि । भव् आमि । भवामि ।

तडानावात्मनेपदम् १।४।१००

प० वि०—तडानो १।२ आत्मनेपदम् १।१॥ स०—तद् च आनश्च इति तडानो (इतरे० द्वन्द्वः)

१—पञ्चम्याद्यपरिमि (२ ३ १०) इति पञ्चमी २—धाट् मर्यादाभि विष्यो (२ १. १२) ३—अव्ययीभावश्च (१ १ ४०) नाव्ययीभावा० (२ ४ ८३) मनि पूर्वं (६ १ १०७) ४—मती० (७. ३. १०१) ।

अर्थ—तडानौ आत्मनेपदसंज्ञौ भवत ।

(तड् प्रौर आन की आत्मनेपदसज्ञा होती है)

उदा०—एधते, एधेते, एधन्ते । एधसे, एधेथे, एधध्वे । एधे, एधावहे, एधामहे । एधमानः ।

सि०—एध । एध् लट् । एध् ल । एध् ल् । एध् त । एध् शप् त । एध् अ त । एध् अ ते^१ । एधते । एध् आताम् । एध् शप् आताम् । एध् अ आताम् । एध् अ इय्^२ ताम् । एध् अ इ^३ ताम् । एध् एताम्^४ । एध् एत् आम् । एध् एत् ए^५ । एधेते । एधन्ते । एध् भ् । एध् अन्त । एध् शप् अन्त । एध् अ अन्त । एध् अन्त । एधन्ते ॥ एध् लट् । एध् ल् । एध् थास् । एध् से^६ । एध् शप् से । एध् अ से । एधसे । एध् शप् आथाम् । एध् अ आथाम् । एध् अ इय्^७ थाम् । एध् अ इ^८ थाम् । एध् ए थाम् । एधे थाम् । एधेथे । एध् शप् ध्वम् । एध् अ ध्वे^९ । एधध्वे । एध् शप् इट् । एध् अइ । एध ए । एधे । एध शप् वहि । एध् अ वहि । एध वहि । एध वहे^{१०} । एधावहे^{११} । एध् महिङ् । एध् शप् महि । एध अ महे । एध महे । एधामहे । एध् लट् । एध् शानच्^{१२} । एध् आन । एध् शप्^{१३} आन । एध् अ आन । एध् अ मुक्^{१४} आन । एध् अ मु आन । एध् अम् आन । एधमान सु । एधमानः ।

तिडस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमा १।४।१०१

प० वि०—तिड् ६।१ त्रीणि १।३ त्रीणि १।३ प्रथममध्यमोत्तमा १।३

स०—प्रथमश्च मध्यमश्च उत्तमश्चेति प्रथममध्यमोत्तमाः (इतरे० द्वन्द्वः) प्रथममध्यमोत्तमाश्च प्रथममध्यमोत्तमाश्चेति प्रथममध्यमोत्तमाः ।

अर्थ—तिडः त्रीणि त्रीण्यथा संख्य प्रथममध्यमोत्तमसंज्ञाः भवन्ति ।

(तिड् के तीन तीन की क्रमशः प्रथम, मध्यम प्रौर उत्तम सज्ञा होती है)

उदा०—तिप्, तस्, भि, इति प्रथमः । सिप्, थस्, थ, इति

१—टित आत्मनेपदाना टेरे (३. ४. ७९) २—आतो टित (७. २. ८१)

३—नोपो व्योर्वलि (६. १. ६६) ४—आद् गुण (६. १. ८७) ५—घास. से (३. ४. ८०) अनेकात्सिारमवस्य (१. १. ५४) ६—अतो दीर्घो यजि (७. ३. १०१) ७—लटः शतुशानचावप्रथमासमानाधिकरणे (३. २. १२४) ८—कर्त्तरि षप् (१. १. ६८) ९—मानं मुक् (७. २. ८२) घासन्तो टक्तौ (१. १. ४३)

मध्यम । मिप्, वस्, मस्, इति उत्तम । त आताम्, म्, इति प्रथम । थास, आथाम्, धम् इति मध्यम । इट्, वहि, महिट् इति उत्तम ।

तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकश १।४।१०२

प० वि०—तानि १।३ एकवचनद्विवचनबहुवचनानि १।३ एकश १।१ स०—एकवचन च द्विवचन च बहुवचन चेति एकवचनद्विवचनबहुवचनानि (इतरे० द्वन्द्व)

अर्थ—[तिष्न्त्रीणित्रीणि] तानि तिङ् त्रीणि त्रीणि एकश एकवचनद्विवचनबहुवचनसंज्ञानि भवन्ति । (उन तिङ् के तीन तीन की एक एक करके एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञा होती है)

उदा०—तिषित्येकवचनम्, तस् इति द्विवचनम्, मि इति बहुवचनम् ।

सुप १।४।१०३

प० वि०—सुप ६।१

अर्थ—[त्रीणि त्रीणि, एकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकश] सुप त्रीणि त्रीणि एकश एकवचनद्विवचनबहुवचनसंज्ञानि भवन्ति ।

(सुप् क तीन तीन पद एक एक करके एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञावाले होते हैं)

उदा०—सु इति एकवचनम्, औ इति द्विवचनम्, जस् इति बहुवचनम्, एव सर्वत्र ।

विभक्तश्च १।४।१०४

प० वि०—विभक्ति १।१ च अ० ।

अर्थ—[तिङ्, सुप, त्रीणि त्रीणि] सुप तिङ्श्च त्रीणि त्रीणि विभक्तिसंज्ञानि भवन्ति ।

(सुप और तिङ् के तीन तीन की विभक्ति संज्ञा होती है)

उदा०—पठत । रामान् ।

सि०—पठ् शप् तस् । पठ् अ तस् । पठतस् । पठत । राम शस् । राम अस् । रामास् । रामान् ॥

१—न विभक्तौ तुस्मा (१ ३ ४) २—तस्माच्छमो न पुसि (६ १ ६६) अलोऽन्त्यस्य (१. १ ५१) हलान्वयम् (१ ३ ३) न विभक्तौ (१ ३ ४)

युष्मद् उपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यम १।४।१०५
 प० वि०—युष्मदि ७।१ उपपदे । ७।१ समानाधिकरणे ७।१ स्थानिनि
 ७।१ अपि अ० । म यम १।१

अर्थ—युष्मदि उपपदे सति समानाभिधेये तुल्यकारके प्रयुज्यमाने
 अप्रयुज्यमाने अपि मध्यमपुरुषो भवति ।

(युष्मद् शब्द के उपपद रहन पर और समान अधिकरण में युष्मद् शब्द के
 प्रयोग होन या न होन पर भी मध्यम पुरुष होता है)

उदा०—त्व पचसि, युवाम् पचथ, यूयम् पचथ । पचसि, पचथ
 पचथ ।

अस्मद्युत्तम १।४।१०७

प० वि०—अस्मदि ७।१ उत्तम १।१

अर्थ—[उपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि] अस्मदि उपपदे सति
 समानाभिधेये तुल्यकारके प्रयुज्यमाने अप्रयुज्यमाने अपि उत्तमपुरुषो
 भवति । (अस्मद् शब्द के उपपद रहन पर और समान अधिकरण म अस्मद्
 शब्द के प्रयोग होन या न होन पर भी उत्तम पुरुष होता है)

उदा०—अह पचामि, पचामि । आवा पचाव, पचाव । वय
 पच म, पचाम ।

शेषे प्रथम १।४।१०८

प० वि०—शेषे ७।१ प्रथम १।१

अर्थ—(उभतादन्य शेष) यत्र युष्मद् अस्मदी समानाधिकरणे उप
 पदे न स्त तत्र शेषे प्रथमपुरुषो भवति । (जहा युष्मद् और अस्मद् समान
 अधिकरण में उपपद नहीं है वहा शेष म प्रथम पुरुष होता है)

उदा०—स पचति, पचति । तौ पचत, पचत । ते पचन्ति, पचन्ति ।

पर सन्निकर्षे सहिता १।४।१०९

प० वि०—पर १।१ सन्निकर्षे १।१ सहिता १।१

अर्थ—(अतिशयवाची परशब्द) अतिशय सन्निकर्षे सहिता
 संज्ञा भवति । (अत्यन्त निक्कट वी सहिता सना होती है)

सि०—अधिअत्र । दध्युअत्र । नध्यत्र ॥

विरामोऽवसानम् १।४।११०

प० वि०—विराम १।१ अवसानम् १।१

अर्थ—विराम अत्रसानसन्नो भवति ।

(विराम की अत्रमान सज्ञा हाती है)

उदा०—राम, रामा, रामै, रामेभ्य ।

सि०—राम । राम सु । रामस् । रामरु । रामर् । राम

इतिश्रीमत्पदवाक्यप्रमाणज्ञमहावैयाकरणपण्डितब्रह्मदत्ताचा-

र्याणामन्तेवासिना देवप्रकाशपातञ्जलेन विरचि-

तायामष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया प्रथमाध्याये

चतुर्थं पाद

इति प्रथमोऽध्याय

समर्थं पदविधिः २।१।१

प० वि०—समर्थं १।१। पदविधि १।१ स०—समर्थाद् विधि समर्थ-
विधि । समर्थस्य समर्थयोर्नां विधि समर्थविधि । समर्थानां विधि
समर्थविधि । समर्थे विधि समर्थविधि । समर्थविधिश्च समर्थविधिश्च
समर्थत्रिधिश्च समर्थत्रिधिश्च समर्थविधिश्च इति समर्थत्रिधय । (सर्व-
विभक्त्यन्तसमास) पदाद् विधिः पदविधि । पदस्य विधि पदविधि
पदयोर्त्रिधि पदविधि । पदानां विधि पदत्रिधि । पदे विधि पदविधि ।
पदत्रिधिश्च पदविधिश्च पदविधिश्च पदविधिश्च पदविधिश्च इति पद-
विधय । (सर्वविभक्त्यन्त समास) समर्थत्रिधयश्च पदविधयश्च इति
समर्थं पदविधि (पूर्वं समास उत्तरपदलोपी, यादृच्छिकी विभक्तिश्च)

अर्थ—(परिभाषेयम्) समर्थानां सम्बन्धार्थानां पदानाम् अस्मिन्
शास्त्रे विधिर्भवति (यह परिभाषा सूत्र है । समर्थ = सम्बद्ध अर्थ वाले पदों का
इस व्याकरण शास्त्र में विधान होता है)

उदा०—ऋयेन सह यस्य योगो भवति, तेन सह स समर्थो भवति ।
वक्ष्यति, द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापनै (० १ ०३) ।
कष्ट श्रित कष्टश्रित । इत्यत्र कष्ट-शब्दस्य श्रित-शब्देन सह योगोऽस्ति ।
अत एव समासो भवति । परन्तु मुहुर्ज्ञे त्व कष्ट, श्रित शिष्यो गुरुम्
इत्यत्र कष्ट-शब्दस्य श्रितेन सह समर्थता सम्बन्धो वा नास्ति, अत
असमर्थत्वात् समासो न भवति । एव सर्वत्र समर्थस्य कार्यं भवति
इति योजनीयम् ।

(जिसके साथ जिसका सम्बन्ध होता है उसके साथ वह समर्थ होता है। कहेंगे, द्वितीया इत्यादि सूत्र। 'कण्ट श्रितः' यहाँ पर कण्ट शब्द का श्रित शब्द के साथ सम्बन्ध है। क्योंकि कण्ट को प्राप्त होना यहाँ अर्थ है। अतः दोनों शब्दों में समर्थता है, इसलिए यहाँ समास होता है परन्तु भुङ्क्षे त्व कण्ट, श्रितः शिष्यो गुरुम्, यहाँ पर भोग रहा है तू कण्ट को, प्राप्त हुआ शिष्य गुरु को, यहाँ पर कण्ट शब्द का श्रित के साथ कोई सम्बन्ध नहीं, अतः समास नहीं होता है।

[सुप्] आमन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे २।१।२

प्राक्कडारात्समासः २।१।३

५० वि०—प्राक् १।१ कडारात् ५।१

अर्थ—'कडाराः कर्मधारये' इति एतस्मात् प्राक् समासो भवति इति अधिकारो वेदितव्यः। ('कडाराः कर्मधारये' इस सूत्र से पहले पहले समास का अधिकार समझना चाहिये)

सह सुपा २।१।४

५० वि०—सह अ०। सुपा ३।१

अर्थ—[सुप्] सुपा सह सुप् समस्यते इति अधिकारो वेदितव्यः। (सुबन्त के साथ सुबन्त का समास होता है, इस बात का अधिकार है)

समासप्रवरणम्

अव्ययीभाव १।१।५

५० वि०—अव्ययीभावः १।१

अर्थ—अव्ययीभावः इति अधिकारो वेदितव्यः (इसके पश्चात् अव्ययीभाव का अधिकार समझना चाहिये)

अव्यय विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्युद्धि-अर्थाभाव-
अत्यय-असंप्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्-यथा-आनुपूर्व्य-
योगपक्ष-सादृश्य-संपत्ति-साकल्य-अन्तवचनेषु २।१।६

५० वि०—अव्ययम् । १।१ विभक्ति-अन्तवचनेषु ७।३ स०—विभक्तिश्च समीपञ्च समृद्धिश्च व्युद्धिश्च अर्थाभावश्च अत्ययश्च असंप्रतिश्च शब्दप्रादुर्भावश्च पश्चाच्च यथा च आनुपूर्व्यञ्च योगपक्षञ्च सादृश्यञ्च सम्पत्तिश्च साकल्यञ्च अन्तश्च इति विभक्ति-समीपसमृद्धिव्युद्धि-अर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यानुपूर्व्य-योगपक्षसादृश्यसंपत्तिसाकल्यान्ताः ।

वचनञ्च वचनञ्च वचनञ्च वचनञ्च वचनञ्च वचनञ्च
वचनञ्च वचनञ्च वचनञ्च वचनञ्च वचनञ्च वचनञ्च वचनञ्च
वचनञ्च वचनञ्च वचनञ्च इति वचनानि । विभक्ति-समीप-
समृद्धि-व्युद्धि-अर्थाभाव अत्यय-असम्प्रति- शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्-
यथा-आनुपूर्व्य-योग्यपद्य-सान्श्य-नपत्ति-साकल्यन्ताना वचनानि इति
विभक्तिसमीपसमृद्धिव्युद्धि अर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्-
यथानुपूर्व्ययोग्यपद्यसान्श्यरूपत्तिसाकल्यान्तवचनानि (प० तत्पु०) तेषु ॥

अर्थ-विभक्त्यादिषु अर्थेषु यदव्यय तत् समर्थेन सुवन्तेन सह
समस्यते अव्ययीभावश्च समासो भवति ।

(विभक्ति इत्यादि अर्थों में जो अव्यय वह समय अर्थात् सम्बंधित सुवन्त
के साथ समास को प्राप्त हाते हैं और उनकी अव्ययीभाव सज्ञा होती है)

उदा०-विभक्तिरचने-अधिस्त्रि, अतिकुमारि । समीपरचने-
उपकुम्भम्, उपकृष्णम् । समृद्धिवचने-सुमद्रम्, सुमगवम् । व्युद्धि-
वचने-दुर्गवदिकम्, दुर्यवनम् । अर्थाभावरचने-निर्मलिकम्,
निर्मगकम् । अत्ययवचने-निर्हिमम्, नि शीतम् । असम्प्रतिवचने-
अतितैस्त्रकम् । शब्दप्रादुर्भाववचने-इतिपाणिनि, तत्पाणिनि । पश्चाद्-
वचने-अनुरथम् । ॥ यथा-योग्यता, वीप्सा, पदार्थानतिवृत्ति सादृश्य
चेति यथार्था ॥ योग्यतावचने-अनुरूपम् । वीप्सावचने-प्रत्यर्थम् ।
पदार्थानति वृत्तिरचने-यथाशक्ति । आनुपूर्व्यवचने-अनुज्येष्ठम् ।
योग्यपद्यवचने-सचक्र धेहि । सादृश्यवचने-ससखि । सम्प्रतिवचने-
सत्रह्य त्राभ्रयाणाम्, सक्षत्र शलङ्कायनानाम् । साकल्यवचने-सतृणम-
भ्यवहरति, सनुसमभ्यवहरति । अन्तरचने-साग्न्यधीते ।

सि०-स्त्रीषु अधिभृत्य कथा प्रवर्तते इति अधिस्त्रि इति लौकिको
विग्रह । अलौकिकविग्रहस्तु-स्त्री सुप् अधि सु । अधि सु स्त्री सुप् ।
अधिस्त्री^१ । अधिस्त्रि^२ । अधिस्त्रि सु^३ । अधिस्त्रि^४ । अधिकुमारि ।

१-प्रथमानिदिष्ट समास उपसजनन् (१. १ ४३) उपसजन पूर्वम्
(२. २ ३०) २-प्राक्खडारात्ममान (२ १ ३) कृत्तद्धितसमासाश्च (१ २
४६) सुपो (२ ४ ७१) प्रत्ययस्व० (१ १ ६०) ३-अव्ययीभावश्च (२ ४
१८) ह्रस्वो नपु सक्वे प्रातिपदिकस्य (१ ० ४७) ४-इयाप्रातिपदिकात् (४
१ १) स्वी० (४ १ २) सुप (१ ४ १०२) विभक्तिश्च (१ ४ १०२)
इयं कयोद्विवचनैववचन (१ ४ २२) इति एवत्वे विवक्षिते मु प्रत्यय (३ १
१) परश्च (३ १ २) ५-अव्ययीभावश्च (१ १ ४०) अव्ययादाद्युप (२

कुम्भस्य समीपम् इति लौकिको विग्रहः । अलौकिकविग्रहस्तु कुम्भ
इस् उप सु । उप सु कुम्भ इस् । उपकुम्भ । उपकुम्भ सु । उपकुम्भ
अम् । उपकुम्भम् । उपकृष्णम् ।

मगधानां समृद्धिः इति सुगमधम् । मगध आम् सु सु । सु सु मगध
आम् । सुमगध । सुमगध सु । सुमगध अम् । सुमगधम् । सुमद्रम् ।
गवदिकानामृद्धेरभावो दुर्गवदिकम् । गवदिक आम् दुर् सु । दुर्
सु गवदिक आम् । दुर्गवदिक । दुर्गवदिक सु । दुर्गवदिक अम् । दुर्ग-
वदिकम् ।

मत्तिनाणाभावः इति निर्मत्तिकम् । मत्तिक आम् निर् सु । निर् सु
मत्तिक आम् । निर्मत्तिक । निर्मत्तिक सु । निर्मत्तिक अम् । निर्मत्तिकम् ।
अतीतानि हिमानि इति निर्हिमम् । निर् सु हिम जस् । निर् सु
हिम जस् । निर्हिम सु । निर्हिम अम् । निर्हिमम् ।

तैसृकस्य असम्प्रति इति अतितैसृकम् । तैसृक इस् अति सु । अति
सु तैसृक इस् । अतितैसृक सु । अतितैसृक अम् । अतितैसृकम् ।

पाणिनिः शब्दस्य प्रकाशता । पाणिनि सु इति सु । इति सु पाणि-
नि सु । इतिपाणिनि । इतिपाणिनि सु । इतिपाणिनि ।

रथस्य पश्चात् इति अनुरथम् । रथ इस् अनु सु । अनु सु रथ
इस् । अनुरथ । अनुरथ सु । अनुरथ अम् । अनुरथम् ।

रूपस्य योग्यम् इति अनुरूपम् । रूप इस् अनु सु । अनु सु रूप
इस् । अनुरूप । अनुरूप सु । अनुरूप अम् । अनुरूपम् ।

अर्थमर्थं प्रति इति प्रत्यर्थम् । अर्थ अम् प्रति सु । प्रति सु अर्थ
अम् । प्रतिअर्थ । प्रत्यर्थ सु । प्रत्यर्थ अम् । प्रत्यर्थम् ।

शक्तिमनतिरस्य इति यथाशक्ति । शक्ति अम् यथा सु । यथा सु
शक्ति अम् । यथाशक्ति । यथाशक्ति सु । यथाशक्ति ।

ज्येष्ठमानुपूर्वम् इति अनुज्येष्ठम् । ज्येष्ठ अम् अनु सु । अनु सु
ज्येष्ठ अम् । अनुज्येष्ठ । अनुज्येष्ठ सु । अनुज्येष्ठ अम् । अनु-
ज्येष्ठम् ।

युगपच्चक्रं धेदि इति मचक्रं धेदि । मद् सु चक्र टा । सट् सु

४. ८२) प्रत्ययस्य सुङ्गुत्तुप. (१. १. ६०) । १—अध्यायादाप्युपः इति प्राप्ते,
नाप्ययीभावाद्वाङ्मदपञ्चम्या. (२. ४. ८३) परः मद्रिङ्गः सहिता (१.

चक्र टा । सहचक्र । सचक्र^१ । सचक्र सु । सचक्र अम् । सचक्रम् ।

सदृश सट्या इति ससरि । समान सु सरि टा । समान मु सरि टा । स^२ सखि । ससरि मु । ससिर । ब्रह्मण सम्पत्ति इति सन्नह । ब्रह्मन् टा सह मु । मह मु नहन् टा । स^१ नहन् । सन्नहन् सु । सन्नहन् । सन्नह ।

वृणाना साक्त्व्यम् इति सवृणम् । वृण भिस् सह सु । सह स वृण भिस् । स^१ वृण । सवृण मु । सवृण अम् । सवृणम् ।

अग्नेरन्त इति साग्नि । अग्नि टा सह सु । सह सु अग्नि टा । स^१ अग्नि । साग्नि मु । साग्नि ।

यथाऽभादृश्ये २।१।७

प० वि०—यथा अ० । असादृश्ये ७।१॥ स०—न सादृश्यम् इति असादृश्यम् (नञ् तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—असादृश्ये वर्तमान यथा इति अव्यय 'मुग्रन्तेन सह समस्यते अज्ययीभावरश्च समासो भवति । (सादृश्य स भिन्न अर्थ में यथा यह अव्यय समर्थ सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हाता है और उसकी अव्ययी भाव सना हाती है ।

उदा०—यथावृद्धम् ब्राह्मणानामामन्त्रयन् । यगध्यापकम् ।

सि०—यथावृद्धम् । ये ये वृद्धा । यथा मु वृद्ध जम् । यथावृद्ध । यथावृद्ध मु । यथावृद्ध अम् । यथावृद्धम् ।

[विभाषा] अपपरिवहिरञ्चव [पञ्चम्या] २।१।११

आङ् मर्यादाभिविध्यो २।१।१२

प० त्रि०—आङ् १।१ मर्यादाभिविध्यो ७।१॥ स०—मर्यादा च अभिविधिश्चेति मर्यादाभिविधी (इतरे० द्वन्द्व) तयो ।

अर्थ—[पञ्चम्या] आङ् इति ष्त्वं अव्ययं मर्यादायाम् अभिविधी च वर्तमान पञ्चम्यन्तेन मुग्रन्तेन सह विभाषा समस्यते अज्ययीभावरश्च समासो भवति । (मर्यादा और अभिविधि में वर्तमान आङ् अव्यय पञ्चम्यत समर्थ सुबन्त के साथ विचल्य स समास को प्राप्त होता है)

४ १०८) सहितायाम् (६ १ १०) एक पूर्वपरयो (६ १ ८१) धमि पूर्व (६ १ १०३) १—अव्ययीभाव चाकाले (६ ३ ८१) । २—समानस्य (६ ३ ८४) योगविभागात् सभाव

उदा०—मर्यादायाम्—आपाटलिपुत्र वृष्टो देवः । आपाटलिपुत्रात् ।
अभिविधौ—आकुमारं यशः पाणिनेः । आ कुमारेभ्यः ।

सि०—आपाटलिपुत्रम् । आ पाटलिपुत्रात् । आङ् सु पाटलिपुत्र
ङसि । आ पाटलिपुत्र । आपाटलिपुत्र सु । आपाटलिपुत्र अम् । आपा-
टलिपुत्रम् । आकुमारम् । आ कुमारेभ्यः । आङ् सु कुमार, भ्यस् ।
आकुमार । आकुमार सु । आकुमार अम् । आकुमारम् ।

तत्पुरुषः २।१।२१

प० वि०—तत्पुरुषः १।१

अर्थ—प्राग्बहुव्रीहः तत्पुरुषः इति अधिकारो वेदितव्यः ।

(‘शेषो बहुव्रीहिः’ से पहले-पहले तत्पुरुष का अधिकार समझना चाहिये)

द्विगुश्च २।१।२२

प० वि०—द्विगुः १।१ च अ० ।

अर्थ—द्विगुश्च समासस्तत्पुरुषसंज्ञो भवति । (द्विगु समास को
तत्पुरुष सज्ञा होती है) । उदा०—पञ्चराजी । पञ्चगवम् ।

सि०—पञ्चनां राज्ञां समाहारः । पञ्चन् आम् राजन् आम् ।
पञ्चन् राजन्^१ । पञ्चराजन् टच्^२ पञ्चराजन् अ । पञ्च-
राज्^३ अ । पञ्चराज डीप्^४ । पञ्चराज ई । पञ्चराज् ई^५ । पञ्चराजी ।
पञ्चराजी मु । पञ्चराजी स् । पञ्चराजी ।
पञ्चगवम् । पञ्चानां गवाम् समाहारः । पञ्चन् आम् गो आम् । पञ्च
गो । पञ्चगो टच्^१ । पञ्चगो अ । पञ्चगव् अ । पञ्चगव मु ।
पञ्चगव अम् । पञ्चगवम् ।

द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः २।१।२३

प० वि०—द्वितीया १।१ श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः ३।३

स०—श्रितश्च अतीतश्च पतितश्च गतश्च अत्यस्तश्च प्राप्तश्च आप-
न्नश्च इति श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नाः (इतरे० द्वन्द्वः) तैः

१—तद्विधौत्तरपदसमाहारे च (२. १. ५०) २—राजाहः सतिम्बप्टष्
(५. ४. ६१) ३—नस्तद्विते (६. ४. १४४) ४—नस्यापूर्वो द्विगु (२. १.
५१) षकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रिया भाष्यते (२. ४. ३० वा०) द्विगोः (५.
१. २१) ५—यच्च अम् (१. ४. १८) मस्य (६. ४. १२६) । यत्वेति च (६.
४. १४८) ६—गोरत्तद्वित्तुङि (५. ४. ६२)

अर्थ—(द्वितीयान्त मुबन्त त्रितानिभि समर्थे मुबन्ते सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति) (द्वितीयात् सुबत् थित इत्यादि समय मुबन्ता के साथ समास का प्राप्त होता है और उसकी तत्पुरुषसत्ता होती है)

उदा०—कष्टश्रित, नरकश्रित, कान्तारातीत, नरकपतित, ग्राम-गत, तरङ्गात्यस्त, सुखप्राप्त, सुखापन्न ।

सि०—कष्टश्रित । कष्ट श्रित । कष्ट अम् श्रित सु । कष्ट श्रित । कष्टश्रित सु । कष्टश्रित । कान्तारम् अतीत । कान्तार अम् अतीत सु । कान्तारातीत । नरक पतित । नरक अम् पतित सु । नरकपतित ॥ तरङ्गान् अत्यस्त । तरङ्ग शस् अत्यस्त सु । तरङ्गात्यस्त । सुखम् प्राप्त । सुख अम् प्राप्त सु । सुखप्राप्त ॥ सुरम् आपन्न । सुख अम् आपन्न सु । सुरापन्न ।

तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन २।१।२६

प० वि०—तृतीया १।१ तत्कृतार्थेन ३।१ गुणवचनेन ३।१ तेन कृतम् । तत्कृतम् (तृ० तत्पु०) तत्कृतञ्च अर्थश्च इति तत्कृतार्थम् तेन । गुणस्य वचनम् गुणवचनम् (प० तत्पु०) तेन ।

अर्थ—तृतीयान्त मुबन्त तत्कृतेन गुणवचनेन अर्थशब्देन च समस्यते तत्पुरुषश्च समासो भवति । (तृतीयात् सुबत् उसके द्वारा किया जाय एस गुणवाची शब्द तथा अर्थ शब्द के साथ समास का प्राप्त होता है, और उसकी तत्पुरुष सत्ता होती है)

उदा०—शङ्कुलाखण्ड, किरिकाण, अर्थ शब्देन—धान्यार्थ ।

सि०—शङ्कुलाखण्ड । शङ्कु ला टा खण्ड मु । शङ्कुलाखण्ड । किरिकाण । किरि टा काण मु । किरिकाण । धान्येन अर्थ । धान्य टा अर्थ मु । धान्यार्थ ।

चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षित २।१।३५

प० वि०—चतुर्थी १।१ तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितै ३।३ स०—तस्मै अर्थम् तदर्थम् । तदर्थञ्च अर्थश्च बलिश्च हितञ्च सुखञ्च रक्षितश्च इति तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षिता (इतरे० द्वन्द्व्) तै

अर्थ—चतुर्थ्यन्त मुबन्त तदर्थ अर्थ-बलि हित-सुख-रक्षित इति एतै सुबन्तै सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ (चतुर्थ्यन्त मुबन्त तदर्थ, अर्थ बलि, हित, सुख और रक्षित इन मुबन्ता के साथ समास

० प्राप्त होता है और उसकी तत्पुरुष सज्ञा होती है)

उदा०—तदर्थ—यूपदारुः, कुण्डलहिरण्यम् । अर्थ—X अर्थेन नित्य-समासवचनं सर्वलिङ्गता च वक्तव्या X ब्राह्मणार्थं पयः । ब्राह्मणार्था यवागूः ॥ कुचेरवलिः, महाराजवलिः । गोहितम् । गोसुखम् । गोरक्षितम्, अश्वरक्षितम् ॥

सि०—यूपाय दारुः । यूप डे । दारु सु । यूपदारुः । कुण्डलाय हिरण्यम् । कुण्डल डे हिरण्य सु । कुण्डलहिरण्यम् । ब्राह्मणाय अर्थम् । ब्राह्मण डे अर्थ सु । ब्राह्मणार्थम् । कुचेराय वलिः । कुचेर डे वलि सु । कुचेरवलिः । महाराजाय वलिः । महाराज डे वलि सु । महाराजवलिः । गवे हितम् । गो डे हित सु । गोहितम् । गवे सुखम् । गो डे सुख सु । गोसुखम् । गवे रक्षितम् । गो डे रक्षित सु । गोरक्षितम् ।

पञ्चमी भयेन २।१।३६

प० वि०—पञ्चमी १।१ भयेन ३।१

अर्था—पञ्चम्यन्तं सुबन्तं भयशब्देन सुबन्तेन सह समस्यते । तत्पुरुषश्च समासो भवति । (पञ्चम्यन्त सुबन्त भय शब्द के साथ समास को प्राप्त होता है और उसकी तत्पुरुष सज्ञा होती है)

उदा०—वृकभयम्, चौरभयम् ।

सि०—वृकेभ्यो भयम् । वृक भ्यस् भय सु । वृकभय । वृकभय सु । वृकभय अस् । वृकभयम् ।

सप्तमी शीर्षः २।१।३६

प० वि०—सप्तमी १।१ शीर्षः ३।३

अर्था—सप्तम्यन्त सुबन्त शीर्षादिभिः सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ (सप्तम्यन्त सुबन्त शीर्ष इत्यादि सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त होता है और उसकी तत्पुरुष सज्ञा होती है)

उदा०—अक्षशीर्षः, अक्षधूर्जः, अक्षकितवः ।

सि०—अक्षेषु शीर्षः । अक्ष सुप् शीर्ष सु । अक्षशीर्षः । अक्षेषु कितवः । अक्ष सुप् कितव सु । अक्षकितवः ।

दिवसंख्ये, संज्ञायाम् २।१।४६

प० वि०—दिवसंख्ये १।२ संज्ञायाम् ५।१ स०—दिवश्च संख्या च इति दिवसंख्ये (इतरं० द्वन्द्वः)

अर्थ—[समानाधिकरणेन] दिग्नाचिन शब्दा सरया च सहायां गम्यमानाया नमानाधिकरणेन सुवन्तेन सह समस्यन्ते तत्पुरुषश्च समासो भवति । (दिशावाची शब्द और सख्यावाची शब्द समान अधिकरण जाने समर्थ सुवन्त के साथ सज्ञा गम्यमान हो ता समास को प्राप्त होत हैं, और उसकी तत्पुरुष सज्ञा हाती है)

उदा०—पूर्वपुत्रामशमी । अपरेपुत्रामशमी । सख्या-सप्तर्षय ।

सि०—पूर्वा च इपुत्रामशमी च । पूर्वा सु उपुत्रामशमी सु । पूर्वपुत्रामशमी । सप्तन् जस ऋषि जस् । सप्तर्षि । सप्तर्षि जस् । सप्तर्षय ।

इत्यत्र प्रामाणां सज्ञा ज्ञातव्या । पूर्वाचासाविपुत्रामशमी चेति पूर्वपुत्रामशमी । मन्द्गधियां पूर्वोत्तरपदविभागमात्रप्रदर्शनाय वाक्य कृतम् । नह्यत्र वाक्येन भवितव्यम् । नहि वाक्येन संज्ञा गम्यते

तद्वितार्थोत्तरपदसमाहारे च २।१।५०

प० वि०—तद्वितार्थोत्तरपदसमाहारे ७।१ च अ० । स०—तद्वितस्य अर्थः तद्वितार्थ (प० तत्पु०) उत्तरञ्च तत्पद च इति उत्तरपद (कर्म० तत्पु०) तद्वितार्थश्च उत्तरपद च समाहारश्च इति तद्वितार्थोत्तरपदसमाहारम् (ममा० द्वन्द्व) तस्मिन् ।

अर्थ—[द्विक्सख्ये, समानाधिकरणे] तद्वितार्थे विषये, उत्तरपदे च परत, समाहारे च अभिधेये द्विक्सख्ये समानाधिकरणेन सुवन्तेन सह समस्येते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । (तद्वित के अर्थ के विषय में, उत्तरपद के परे रहन पर और समाहार अभिधेय हो तो दिशावाची और सख्यावाची शब्द समानाधिकरण सुवन्त के साथ समास को प्राप्त होते हैं और उसकी तत्पुरुष सज्ञा होती है)

उदा०—दिक् । तद्वितार्थे-पीर्वशाल, आपरशाल । उत्तरपदे-पूर्वशालाप्रियः, अपरशालाप्रिय । समाहारे दिक्शब्दो न सभवति । संख्या । तद्वितार्थे-पाञ्चनापिति, पञ्चकपाल । उत्तरपदे-पञ्चगवधन, दशगवधन, समाहारे-पञ्चफली, दशफली, पञ्चकुमारि, दशकुमारि ।

सि०—पूर्वस्यां शालायां भव । पूर्वा ङि शाला ङि भव । पूर्वा शाला^२

१—ध्रुविको विषय । २—समर्थ पदविधि (२. १. १) प्राक्कटा-रात्समासः (२. १. २) तत्पुरुषः (२. १. २१) तद्वितार्थोत्तरपदसमाहारे च (२.

भवः । पूर्वशाला^१ भवः । पूर्वाशाला अण्^२ । पौर्वशाला^३ अ । पौर्वशाल^४
अ । पौर्वशाल सु पौर्वशालः । अपरस्यां शालायां भवः इति आपर-
शालः । पूर्वा शाला प्रिया यस्य । पूर्वा सु शाला सु प्रिया सु^५ । पूर्वा
शाला प्रिया^६ । पूर्वाशालाप्रिया । पूर्वशालाप्रिया^७ । पूर्वशालाप्रिय^८ ।
पूर्वशालाप्रियः । अपरा शाला प्रिया यस्य इति अपरशालाप्रियः । पञ्चानां
नापितानाम् अपत्यम्^९ । पञ्चन् आम् नापित आम् अपत्यम् ।
पञ्चनापित अपत्यम् । पञ्चनापित इञ्^{१०} । पाञ्चनापितिः । पञ्च गावः
धनं यस्य । पञ्चन् जस् गो जस् धन सु । पञ्च गो धन^{११} । पञ्च
गो टच्^{१२} धन । पञ्च गो अ धन । पञ्चगव्^{१३} अ धन । पञ्चगव-
धन सु । पञ्चगवधनः । दशगवधनः । पञ्चनां फलानां समाहारः ।
पञ्चन् आम् फल आम् । पञ्चफल^{१४} डीप् । पञ्चफल ई । पञ्चफल
ई । पञ्चफली सु । पञ्चफली स् । पञ्चफली । पञ्चकुमारि । पञ्चानां
कुमारीणां समाहारः । पञ्चकुमारी । पञ्चकुमारि^{१५} सु । पञ्चकुमारि ।

संख्यापूर्वो द्विगुः २।१।५१

प० वि०—संख्यापूर्वः १।१ द्विगुः १।१ स० संख्यापूर्वा यस्य सः
संख्यापूर्वः (बहु०)

अर्थ—[तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च] तद्धितार्थे उत्तरपदे समा-
हारे च यः सरयापूर्वः समासः स द्विगुसंज्ञो भवति । (तद्धित के अर्थ के

१. ५०) वृत्तद्धितसमासादय (१. २. ४६) सुपो धातुप्रातिपदिकयोः (२. ४. ७१) १—स्थियाः पु वद् (६. ३. ३२) २—प्राग्दीव्यतोष्ण (४. १. ८३) तत्र गवः (४. ३. ५३) प्रत्ययः (३. १. १) परश्च (३. १. १) ३—तद्धितेष्वचामादेः (७. २. ११७) वृद्धिरादेच् (१. १. १) स्थाने-
ऽन्तरतमः (१. १. ४६) ४—यस्येति च (६. ४. १४८) ५—इत्यत्र पूर्वं
त्रयाणां पदानां बहुव्रीहिः । अनेकमन्य पदार्थे (२. २. २४) परचात् प्रियशब्दे
परतः पूर्वंयो पदयोस्तत्पुरुषः ६—सुपो धातुप्रातिपदिकयोः (२. ४. ७१)
७—तद्धितार्थोत्तरपद समाहारे च ८—गोस्त्रियोत्पमर्जनस्य (१. २. ४८) ९—इत्यत्र तद्धितार्थविषयमृते प्राक् समासः । १०—अत इञ् (४. १. ६५) ११—तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च (२. १. ५०) १२—गोस्तद्धितबुद्धि
(५. ४. ६१) १३—अवट्स्फोटपनस्य (६. १. १२३) टिच्च (१. १. ५२)
१४—द्विगुरेववचनम् (२. ४. १) अत्रान्तोत्तरपदो द्विगु स्त्रिया भाष्यते (२. ४. ३० पा०) द्विगोः (४. १. २१) १५—गोस्त्रियोत्पमर्जनस्य (१. २. ४८)

विषय में, उत्तरपद के परे रहने पर और समाहार के अभिधेय में सख्या है पूर्वपद में जिसके ऐसे समास की द्विगु सजा होती है)

उदा०—तद्विद्यार्थे-पञ्चरूपालः । उत्तरपदे-पञ्चनावप्रियः । समाहारे-पञ्चपूली ।

सि०—पञ्चमु. कपालेपु^१ संस्कृतः । पञ्चरूपाल^२ अण् । पञ्च-कपाल^३ । पञ्चरूपाल सु । । पञ्चरूपालः ॥

पञ्चनावप्रियः । पञ्च नावः प्रियाः यस्य । पञ्चन् जस् नौ जस प्रिया जस् । पञ्चन् नौ प्रिया । पञ्च नौ टच्^४ प्रिया । पञ्चनाव अ प्रिया पञ्चनाव प्रिया । पञ्चनावप्रिय सु । पञ्चनावप्रियः ।

विशेषण विशेष्येण बहुलम् २।१।५६

प० वि०—विशेषणं १।१ विशेष्येण ३।१ बहुलम् १।१॥

अर्थ—[समानाधिकरणेन] (भेदक विशेषणं भेद्यं विशेष्यम्) विशेषणवाचि सुबन्त विशेष्यवाचिना समानाधिकरणेन सुबन्तेन सह समस्यते तत्पुरुषश्च समासो भवति । (विशेषणवाची सुबन्त विशेष्यवाची समान अधिकरण वाले समर्थ सुबन्त के साथ समास को प्राप्त होता है और उसकी तत्पुरुष सजा होती है)

उदा०—नीलोत्पलम्, रक्तोत्पलम् ।

सि०—नीलञ्च तदुत्पलञ्च इति नीलोत्पलम् । नील मु उत्पल सु । नील उत्पल । नीलउत्पल । नीलोत्पल स । नीलोत्पल अम् । नीलोत्पलम् ।

युवा खलतिपलितवलिनजरतीभिः २।१।६६

प० वि०—युवा १।१ खलतिपलितवलिनजरतीभिः ३।३॥ स०—खलतिश्च पलितश्च वलिनश्च जरती च इति खलतिपलितवलिनजरत्यः (इतरे० द्वन्द्वः) ताभिः ।

अर्थ—युवशब्दः खलत्यादिभिः समानाधिकरणैः सुबन्तैः सह समस्यते तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ (युवन् शब्द खलति इत्यादि समान अधिकरण वाले समर्थ सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त होता है और उसकी तत्पुरुष सजा होती है) ।

उदा०—युवखलतिः, युवखलती । युवपलितः, युवपलिता । युववलिनः,

१—तद्विद्यार्थे विषयमूले पूर्वं समासः २—संस्कृतम् (४. ४. ३) ३—द्विगुत्रुंजनपत्ये (४. १. ८८) ४—नावो द्विगोः (४. ४. ६६)

युववलिना । युवजरन्, युवजरती ।

सि०—युवा चासौ खलतिश्च इति युवरलति । युवन् सु खलति सु । युवन् रलति । युवरलति । युवखलति सु । युवखलति स् । युवरलति । युवखलती । युवति चासौ खलती च इति । युवति सु खलती सु । युवति खलती । युवन्^१ खलती । युवखलती । युवखलती सु । युवखलती । युवा चासौ पलितश्च इति । युवन् सु पलित सु । युवपलित । युवतिश्चासौ पलिता च इति । युवति सु पलिता सु । युवति पलिता । युवन् पलिता । युवपलिता । युवपलिता सु । युवपलिता स् । युवपलिता । युवा चासौ वलिनश्च इति । युवन् सु वलिन^२सु । युवन् वलिन । युव वलिन । युव वलिन सु । युववलिन । युवतिश्चासौ वलिना च इति । युवति स वलिना सु । युवति वलिना । युवन्^३ वलिना । युव वलिना । युववलिना, सु । युववलिना स् । युववलिना । युवा चासौ जरन् च इति । युवन् सु जरन् सु । युवन् जरन् । युवजरन् । युवजरन् सु । युवजर नुम् त् स् । युव जर न त् स् । युवजरन् न । युवजरन् । युवतिश्चासौ जरती च इति । युवति सु जरती सु । युवति जरती । युवन्^४ जरती । युवजरती । युवजरती सु । युवजरती स् । युवजरती ।

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया द्वितीयाध्याये प्रथम पाद

नञ् २।२।६

प० वि०—नञ् १।१

अर्थ—नञ् समर्थेन युजन्तेन सह समस्यते ।

(नञ् यह समय सुबत्त के साथ समास को प्राप्त होता है)

उदा०—अनाक्षण, अनीश्वरवाद । × नञो नलोपस्तिङि क्षेपे (६ ३ ७३ पा०) × अनेन वार्तिकेन ज्ञाप्यते नञो तिङन्तेन सह समासो भवति । अपचसि त्य जाल्म ।

सि०—न ब्राह्मण इति । नञ् सु ब्राह्मण सु । न ब्राह्मण । नब्राह्मण । अ^१ ब्राह्मण । अब्राह्मण सु । अब्राह्मण । न ईश्वरवाद इति । नञ् सु ईश्वरवाद सु । न ईश्वरवाद । अईश्वरवाद । अनु^२ ईश्वरवाद । अनु ईश्वरवाद । अनईश्वरवाद । अनीश्वरवाद सु । अनीश्वरवाद ।

१—तल्लुरय समानाधिकरण ऋमधारय (१ । २. ४२) पुक्त्वमधारय० (६ ३) । २—ननोपा नञ् (६ ३ ७१) ३—उत्मानुङि (६ ३ ७२) ।

ईपदकृता २।१।७

प० वि०—ईपन् १।१ अकृता ३।१।।

स०—न कृन् इति अकृन् (नञ् तत्पु०) तेन

अर्थ—ईपद् इत्ययं शब्दोऽकृदन्तेन सुवन्तेन सह समस्यते तत्पुरुषश्च समासो भवति । (ईपद् यह जो मन्त्र वह अकृदन्त सुवन्त के साथ समास को प्राप्त होता है और उसकी तत्पुरुष सज्ञा होती है)

उदा०—ईपत्कडारः, ईपत्पिङ्गलः ।

सि०—ईपच्चासौ कडारश्च इति । ईपन् मु कडार मु । ईपन् मु कडार मु । ईपन्कडार । ईपत्कडार मु । ईपत्कडारः ।

पष्ठी २।१।८

प० वि०—पष्ठी १।१

अर्थ—पष्थ्यन्तं सुवन्तं समर्थेन सुवन्तेन सह समस्यते तत्पुरुषश्च समासो भवति ॥ (पष्थ्यन्त सुवन्त समर्थ सुवन्त के साथ समास को प्राप्त होता है और उसकी तत्पुरुष सज्ञा होती है)

उदा०—राजपुरुषः, ब्राह्मणकन्दलः ।

सि०—राजः पुरुषः । राजन् इस् पुरुष मु । राजन् पुरुष । राज-पुरुष । राजपुम्प मु । राजपुरुष स् । राजपुरुष र् । राजपुरुष र् । राज-पुरुषः ।

याजकादिभिश्च २।२।६

प० वि०—याजकादिभिः ३।३ च अ० । स०—याजकः आद्रियेषां ते याजकादयः (बहु०) वै ।

अर्थ—[पष्ठी] पष्थ्यन्तं सुवन्तं याजकादिभिः सुवन्तैः सह समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । (पष्थ्यन्त सुवन्त याजक आदि समर्थ सुवन्तां के साथ समास को प्राप्त होता है और उसकी तत्पुरुष सज्ञा होती है)

उदा०—ब्राह्मणयाजकः, क्षत्रिययाजकः ।

न निर्द्धारणे २।२।१०

प० वि०—न अ० । निर्द्धारणे ७।१

अर्थ—[पष्ठी] निर्द्धारणे या पष्ठी सा न समस्यते । (निर्द्धारण में जो पष्ठी वह समास को नहीं प्राप्त होती है)

उदा०—(जातिगुणक्रियाभिः समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्द्धारणम्) क्षत्रियः मनुष्याणां शूरतमः । कृष्णाः गवां संपन्नक्षीरतमाः ।
 ❀ इत्यत्र मनुष्यशब्दस्य शूरतमशब्देन सह समासो न भवति ।❀

पूरणगुणसुहितार्थसद्व्ययतव्यसमानाधिकरणेन २।१।१७

प० वि०—पूरणगुणसुहितार्थसद्व्ययतव्यसमानाधिकरणेन ३।१
 स०—पूरणं च गुणश्च सुहितं च इति पूरणगुणसुहितानि ॥ अर्थश्च
 अर्थश्च अर्थश्च इति अर्थाः ॥ पूरणगुणसुहितानि अर्थाः येषां ते पूरण-
 गुणसुहितार्थाः ॥ पूरणगुणसुहितार्थाश्च सच्च अव्ययञ्च तव्यञ्च समा-
 नाधिकरणञ्चेति पूरणगुणसुहितार्थसद्व्ययतव्यसमानाधिकरणम्
 (समा० द्वन्द्वः) तेन ॥

अर्थ—[पष्ठी, न] पूरणार्थ-गुणार्थ-सुहितार्थ-सद्-अव्यय-तव्य-
 समानाधिकरण इत्येतैः सुबन्तैः सह पष्ठी न समस्यते । (पूरण अर्थं बाले,
 गुणवाचक, तृप्ति अर्थं बाले, सत् (शत्रु, शानच्) प्रत्ययान्त, अव्यय संज्ञक,
 तव्यप्रत्ययान्त और समानाधिकरण सुबन्त के साथ पष्ठी समास को नहीं
 प्राप्त होती है)

उदा०—पूरणार्थ-छात्राणां पञ्चमः, छात्राणां दशमः ॥ गुणार्थ-
 बलाकायाः शौकल्यम्, काकस्य काण्ड्यम् ॥ सुहितार्थ-फलानां सुहितः,
 फलानां तृप्तः ॥ सत्-ब्राह्मणस्य कुर्वन्, ब्राह्मणस्य कुर्वाणः ॥ अव्यय-
 ब्राह्मणस्य कृत्वा, ब्राह्मणस्य कृत्वा । तव्य-ब्राह्मणस्य कर्त्तव्यम् ॥ समा-
 नाधिकरण—राज्ञः पाटलिपुत्रस्य, पाणिनेः सूत्रकारस्य ॥

कुगतिप्रादयः १।१।१८

प० वि०—कुगतिप्रादयः १।३ स०—कुश्च गतिश्च प्रादयश्च इति
 कुगतिप्रादयः । प्र आदियेषां ते प्रादयः ॥

अर्थ—[नित्यम्] कुः गतिः प्रादयश्च समर्थेन शब्दान्तरेण सह
 नित्यं समस्यन्ते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । (कु यह शब्द, गति संज्ञा वाले
 तथा प्र इत्यादि दूसरे समर्थ-शब्दों के साथ समास को प्राप्त होते हैं और
 उसकी तत्पुरुष सज्ञा होती है)

उदा०—कुपुरुषः । गतिः । उररीकृतम् । ×प्रादयः दुर्निन्दायाम्
 ×दुष्पुरुषः । ×स्वतीपूजायाम् ×सुपुरुषः अतिपुरुषः । ×प्रादयो
 गताद्यर्थे प्रथमया ×प्रगतः आचार्यः प्राचार्यः ॥ ×अत्यादयः मन्ता-

द्वयर्थे द्वितीयया × अतिक्रान्तः खट्वाम्, अतिखट्वः ॥ × अवादयः
 कुप्राद्यर्थे तृतीयया × अवक्रुष्टः कोकिलया अवकोकिलः ॥ × पर्यादयो
 ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या × परिग्लानो अध्वयनाय, पर्यव्ययनः × निरादयः
 क्रान्ताद्यर्थे षष्ठ्या × निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः, निष्कौशाम्बि ॥
 × उचेन सह समासो विभक्त्यलोप पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं न वक्तव्यम्
 × वाससीद्व ॥ × वागर्थ्याविव ॥ प्रादिप्रसङ्गे कर्मप्रवचनीयानां प्रतिषेधो
 वक्तव्यः × वृत्तं प्रति विद्योतते विद्युत् । साधुर्देवदत्तो मातर प्रति ॥

सि०—कुपुरपः ॥ कु. पापार्थे । कुत्सितः पुरुपः । कु सु पुरप सु ।
 कुपुरप । कुपुरुपः ॥

उपपदमतिङ् २।२।१६

प० वि०—उपपदम् १।१ अतिङ् १।१ स०—न तिङ् अतिङ्
 (नञ् तत्पु०)

अर्थ—[नित्यम्] अतिङन्तम् उपपदम् समर्थेन शब्दान्तरेण सह
 नित्य समस्यते, तत्पुरुषश्च समासो भवति । (तिङ् जिसके अन्त में न हो
 ऐसा उपपद, समर्थ शब्दान्तर के साथ नित्य समास को प्राप्त होता है और
 उसकी तत्पुरुष सज्ञा होती है)

उदा०—कुम्भकार, नगरकार ।

सि०—कुम्भकार । कुम्भं करोति इति । कुम्भ अम् कृ अण्^१ ।
 कुम्भ अम् कार^२ । कुम्भ कार । कुम्भकार सु । कुम्भकारः ।

शेषो बहुव्रीहि २।२।२३

प० वि०—शेष १।१ बहुव्रीहिः १।१

अर्थ—शेषः समासो बहुव्रीहिसङ्गो भवति । (कहे हुए से शेष समास
 की बहुव्रीहि सज्ञा हाती है इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

अनेकमन्यपदार्थे २।२।२४

प० वि०—अनेकम् १।१ अन्यपदार्थे ७।१ ॥ स०—न एकम् इति
 अनेकम् ॥ अन्यश्चासौ पदार्थश्च इति अन्यपदार्थः (कर्म०तत्पु०) तस्मिन्

अर्थ—अन्यपदार्थे अन्यमात्रे, अनेकं, सुदन्तं, परस्परं समस्यते, बहु-
 व्रीहिश्च समासो भवति । (अन्य पदार्थ के ज्ञान होने में अनेक सुबन्त पर-

१—कर्मण्यण् (३. २. १) प्रत्यय. (३. १. १) परस्परं (३. १. २) २—

स्पर समास को प्राप्त होते हैं और उसकी बहुव्रीहि सज्ञा होती है)

उदा०—चित्रगुः । शबलगुः । प्राप्तोदको ग्रामः ॥

सि०—चित्राः गावः यस्य । चित्रा जस् गो जस् । चित्रा^१ गो । चित्रगु^२ । चित्रगु सु । चित्रगुः । शबलाः गावः यस्य । शबला जस् गो जस् । शबलगुः ॥ प्राप्तम् उदक य ग्राम सः । प्राप्त सु उदक सु । प्राप्त उदक । प्राप्तोदक सु । प्राप्तोदकः ॥

दिङ्नामान्यन्तराले २।२।२६

प० वि०—दिङ्नामानि १।३ अन्तराले ७।१ स०—दिशां नामानि इति दिङ्नामानि ।

अर्थ—दिङ्नामानि सुबन्तानि अन्तराले वाच्ये समस्यन्ते, बहुव्रीहिश्च समासो भवति । (दिशा नाम वाले सुबन्त अन्तराल (दो दिशाओं की मध्यवर्ती उपदिशा) के ज्ञान होने में समास को प्राप्त होते हैं और उसकी बहुव्रीहि सज्ञा होती है)

उदा०—दक्षिणपूर्वा दिक्, पूर्वोत्तरा, उत्तरपश्चिमा, पश्चिमदक्षिणा ।

सि०—दक्षिणस्याश्च पूर्वस्याश्च दिशोर्यद् अन्तरालं, दक्षिण^३-पूर्वा । दक्षिणपूर्वा सु । दक्षिणपूर्वा ॥

तेन सहेति तुल्ययोगे २।२।२८

प० वि०—तेन ३।१ सह अ० । तुल्ययोगे ७।१ स०—तुल्यश्चासौ योगश्च इति तुल्ययोग (कर्म० तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—सह इति एतत् सुबन्तं तुल्ययोगे वर्तमानं तृतीयान्तेन सुबन्तेन सह समस्यते, बहुव्रीहिश्च समासो भवति । (सह यह सुबन्त तुल्ययोग में वर्तमान होने पर तृतीयान्त सुबन्त के साथ समास को प्राप्त होता है और उसकी बहुव्रीहि सज्ञा होती है)

उदा०—सपुत्रः, सच्छात्रः ।

सि०—सह पुत्रेण^४ आगतः पिता इति । सह पुत्रेण । सह पुत्र टा । स^५ पुत्र । सपुत्र सु । सपुत्रः ॥ सह छात्रेण आगतः अभ्यापकः इति ।

१—सप्तमीविशेषणे बहुव्रीही (२ २. ३५) २—गास्त्रियोरपसर्जनस्य (१. २. ४८) स्त्रिया पु वद० (६. ३. ३२) इयनेन चित्राशब्दस्य पु स्त्वम् । ३—गर्धनाम्न. वृत्तिमात्रे पु वदनावः ४—सहयुक्तेऽप्रपाने (२. ३. १९) इति तृतीया विभक्ति ५—सोपसर्जनस्य (६ ३ ८२) इति सहस्य मभावः

सद् द्यात्रेण । सद् द्यात्र टा । सद् द्यात्र । स द्यात्र । स तुक्^१ द्यात्र ।
सद्द्यात्र । सच्च्यात्र^२ सु । सच्च्यात्र ॥

चार्ये द्वन्द्व २।२।२६

प० वि०—चार्ये ७।१ द्वन्द्व १।१ स०—चस्य अर्थ चार्यः (प०
तत्पु०) तस्मिन्

अर्थ—[अनेकम्] अनेकं सुवन्तं चार्ये वर्तमानं परस्पर समस्यते,
द्वन्द्वश्च समासो भवति । (अनेक सुवन्त च के अर्थ में वर्तमान परस्पर
समास को प्राप्त होते हैं और उसकी द्वन्द्व सज्ञा होती है)

अर्थ—रामलक्ष्मणौ । प्लक्ष्मण्यप्रोथौ । धवस्वदिरपलाशा ।

सि०—रामश्च लक्ष्मणश्च इति । राम सु लक्ष्मण सु । रामलक्ष्मण ।
रामलक्ष्मण^३ औ । रामलक्ष्मणौ^४ । धवश्च स्वदिरश्च पलाशश्च इति ।
धव सु स्वदिर सु पलाश सु । धवस्वदिरपलाश । धवस्वदिरपलाश जस् ।
धवस्वदिरपलाश अस् । धवस्वदिरपलाशास्^५ । धवस्वदिरपलाशा ।

उपसर्जन पूर्वम् २।२।३०

प० वि०—उपसर्जनम् १।१ पूर्वम् १।१।

अर्थ—उपसर्जनसङ्गक पूर्वं प्रयोक्तव्यम् । (उपसर्जन सज्ञा बाने
का पूर्व में प्रयोग करना चाहिए)

द्वन्द्वे धि २।२।३२

द्वन्द्वे ७।१ धि १।१

अर्थ—[पूर्वम्] द्वन्द्वे समासे घ्यन्तं पूर्वं प्रयोक्तव्यम् । (द्वन्द्व समास
में धि है अन्त में जिसके एते शब्द का पूर्व में प्रयोग करना चाहिए)

उदा०—पटुगुप्तौ, मृदुगुप्तौ ।

सि०—पटुगुप्तौ । पटुश्च गुप्तश्च । पटु सु गुप्त सु । पटुगुप्त । पटु-
गुप्त^६ औ । पटुगुप्तौ । मृदुश्च गुप्तश्च इति । मृदु स गुप्त सु । मृदु-
गुप्त । मृदुगुप्त औ । मृदुगुप्तौ ।

१—छे ष (६ १ ७१) २—स्तो इचना इत्तु (८ ४ ३६) ३—अल्पाचत्तरम्
(२ २. ३४) ४—वृद्धिरेधि (६ १ ८५) प्रथमयो पूर्वसवर्णं (६ १. ६८)
नादिधि (६ १ १००) वृद्धिरेधि (६ १ ७५) ५—प्रथमयो पूर्वसवर्णं (६
१ ६८) ६—शेषो घ्यसति (१ ४ ७) द्वन्द्वे धि (२ २ ३२)

अजाद्यदन्तम् २।२।३३

प० वि०—अजाद्यदन्तम् १।१ स०—अच् आदिर्यस्य तत् अजादि (बहु०) अत् अन्ते यस्य इति अदन्तम् (बहु०) अजादि चादः अदन्तं च इति अजाद्यदन्तम् । (कर्म० तत्पु०)

अर्थ—[द्वन्द्वे] अजाद्यदन्तं शब्दरूपं द्वन्द्वे समासे पूर्वं प्रयोक्तव्यम् । (अच् है आदि में जिस के और अकार जिस के अन्त में है उसका द्वन्द्व समास में पूर्वं प्रयोग होता है) ।

उदा०—उग्रखरम्, उग्रशशकम् × बहुष्वनियमः × अश्वरथेन्द्राः, इन्द्ररथाश्वाः ।

अल्पाचत्तरम् २।२।३४

प० वि०—अल्पाचत्तरम् १।१ स०—अल्पः अच् यस्मिन् इति अल्पाच् (बहु०) द्वौ इमौ अल्पाचौ, अयम् अनयोरतिशयेन अल्पाच् इति अल्पाचत्तरः ।

अर्थ—[द्वन्द्वे] अल्पाचत्तर शब्दरूपं द्वन्द्वे समासे पूर्वं प्रयोक्तव्यम् ।

(अल्प अच् वाले शब्द का द्वन्द्व समास में पूर्वं प्रयोग करना चाहिए) ।

उदा०—रामलक्ष्मणौ । प्लक्ष्मणप्रोधौ । धवखदिरपलाशाः × बहुष्वनियमः × शङ्खदुन्दुभिवीणाः । वीणाशङ्खदुन्दुभिः । × लघ्वत्तरं पूर्वं निपततीति वक्तव्यम् × कुशकाशम् । शरशादम् ॥ × अभ्यर्हितं च पूर्वं निपततीति वक्तव्यम् × मातापितरौ, सीतारामौ, रुक्मणीकृष्णौ, गीरीशङ्करी, कमलाजवाहरी । × भ्रातुश्च ज्यायस' पूर्वनिपातो वक्तव्यः × युधिष्ठिरार्जुनौ ॥ × सख्यायाः अल्पीयस्याः पूर्वनिपातो वक्तव्यः × द्वित्राः, त्रिचतुराः, नवतिशतम् ।

सप्तमीविशेषणो बहुव्रीहौ २।२।३५

प० वि०—सप्तमीविशेषणे १।२ बहुव्रीहौ ७।१॥

स०—सप्तमी च विशेषणञ्च इति सप्तमीविशेषणे (इतरे० द्वन्द्वः)

अर्थ—सप्तम्यन्तं विशेषणं [च बहुव्रीहिस्मासे पूर्वं प्रयोक्तव्यम् । (सप्तम्यन्त घोर विशेषण का बहुव्रीहि समास में पूर्वं प्रयोग करना चाहिए) ।

उदा०—सप्तमी—कण्टकालः ' उरसिनोमा ' ॥ विशेषण-चित्रगुः, शनलगुः ।

निष्ठा २।२।३६

५० वि०—निष्ठा १।१

अर्थ—[बहुव्रीहौ] निष्ठान्त शब्दरूपं बहुव्रीहिसमासे पूर्वं प्रयोक्तव्यम् (बहुव्रीहि समास में निष्ठान्त का पूर्व प्रयोग करना चाहिये) ।

उदा०—कृतकटः, भित्तितभित्तिः ।

सि०—कृतकटः । कृतः कटः येन सः । कृत सु कट सु । कृतकटः ।

कडाराः कर्मधारये २।२।३७

५० वि०—कडाराः १।३ कर्मधारये ७।१

अर्थ—कर्मधारये समासे कडारादयः शब्दाः पूर्वं वा प्रयोक्तव्याः । (कर्मधारय समास में कडार इत्यादि शब्दों का विकल्प से पूर्व प्रयोग करना चाहिये)

उदा०—कडारजैमिनिः, जैमिनिकडारः ।

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया द्वितीयाध्याये द्वितीयः पादः



विभक्तिप्रकरणम्

अनभिहिते २।३।१

५० वि०—अनभिहिते ७।१ म०—न अभिहितम् अनभिहितम् ।

अर्थ—अनभिहिते अनुकृते अनिर्दिष्टे अकथिते कर्मादौ विभक्तिर्भवति इति अधिकारो चेद्विद्वयः । (नहीं बहे गये कर्ता, कर्म इत्यादि में विभक्ति होती है, इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

कर्मणि द्वितीया २।३।२

५० वि०—कर्मणि ७।१ द्वितीया १।१

अर्थ—अकथिते कर्मणि द्वितीया विभक्तिर्भवति ।

(अकथित कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है)

उदा०—कृतं करोति । ग्राम गच्छति ।

उभयसर्वतसोः कार्या विगुपर्याद्विपु त्रिपु ।

द्वितीयाऽऽध्वेदितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ॥

उभयतोः ग्रामम् । सर्वतोः ग्रामम् । धिग् द्वेवदत्तम् । उपर्युपरि ग्रामम् । अध्यधि ग्रामम् । अधोऽधो ग्रामम् । X अभितः परितः समया

निकषा हा-प्रतियोगेषु च दृश्यते × अभितो ग्रामम् । परितो ग्रामम् । समया ग्रामम् । निकषा ग्रामम् । हा देवदत्तम् । बुभुक्षित न प्रतिभाति किञ्चित् ।

अन्तरान्तरेणयुक्ते २।३।४

प० वि०—अन्तरान्तरेणयुक्ते ७।१ स०—अन्तरा च अन्तरेण च इति अन्तरान्तरेणौ । अन्तरान्तरेणाभ्याम् युक्तम् इति अन्तरान्तरेण-युक्तम् (तृ० तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—[द्वितीया] अन्तरा अन्तरेण इत्येताभ्यां युक्ते द्वितीया विभक्तिर्भवति । (अन्तरा और अन्तरेण इन दोनों निपातो से सम्बद्ध शब्दों में द्वितीया विभक्ति होती है)

उदा०—अन्तरा त्वां च मा च कमण्डलु । अन्तरेण त्वां च मां च कमण्डलु ।

कालाध्वनोरत्यन्तसयोगे २।३।५

प० वि०—कालाध्वनो ६।० अत्यन्तसयोगे ७।१ स०—कालश्च अध्वा च इति कालाध्वानौ (इतरे० द्वन्द्व) तयो । अत्यन्तश्चासौ सयोगश्च इति अत्यन्तसयोग (कर्म० तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—अत्यन्तसयोगे गम्यमाने कालशब्देभ्य अध्वाशब्देभ्यश्च द्वितीया विभक्तिर्भवति । (अत्यन्त सयोग जान जान पर कालवाची तथा मागवाची शब्दों से द्वितीया विभक्ति होती है)

उदा०—क्रियागुणद्रव्यै साकन्येन कालाध्वनो सम्बन्ध अत्यन्त-सयोगः । मासमधीते, सवत्सरमधीते । मास कल्याणी, सवत्सर फल्याणी । मास गुडधाना, सवत्सर गडधाना । अध्वन-क्रोशमधीते, योजनमधीते । क्रोश कटिला नदी, योजन कुटिला नदी । क्रोश पर्वत, योजन पर्वत ॥

अपवर्गे तृतीया २।३।६

प० वि०—अपवर्गे ७।१ तृतीया १।१

अर्थ—[कालाध्वनोरत्यन्तसयोगे] अपवर्ग फलप्राप्ती सत्या क्रियापरिममाप्ति । अपवर्गे गम्यमाने कालाध्वनोरत्यन्तसयोगे तृतीया विभक्तिर्भवति । (अपवर्ग हा जान पर क्रिया की जो समाप्ति हो जाती है उसे अपवर्ग कहत है) (अपवर्ग जाने जाने पर कालवाची और मार्गवाची शब्दों के अत्यन्त मयाग में तृतीया विभक्ति होती है)

उदा०—मासेन वेदोऽधीतः । संवत्सरेण वेदोऽधीतः । अध्वनः-
क्रोशेन अध्यायोऽधीतः । योजनेन अध्यायोऽधीतः ।

कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया २।३।८

प० वि०—कर्मप्रवचनीययुक्ते ७।१ द्वितीया १।२ स०—कर्मप्रवच-
नीयेन युक्तं कर्मप्रवचनीययुक्तम् (तृतीया तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—कर्मप्रवचनीयेन युक्ते द्वितीया विभक्तिर्भवति (कर्मप्रवचनीय
संज्ञा वाते शब्दो के योग में द्वितीया विभक्ति होती है)

उदा०—वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत्, वृक्षम् अनु ।

चतुर्थी सम्प्रदाने २।३।१३

प० वि०—चतुर्थी १।१ सम्प्रदाने ७।१

अर्थ—[अनभिहिते] अनुक्ते सम्प्रदाने चतुर्थी विभक्तिर्भवति ।
(नहीं कहे गये सम्प्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति होती है)

उदा०—भिक्षुकाय धनं ददाति । उपाध्यायाय गां ददाति । देव-
दत्ताय रोचते । पुण्येभ्यः स्पृहयति ।

नम स्वस्तिस्वाहास्वधालवपङ्योगाच्च २।३।१६

प० वि०—नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालवपङ्योगात् ५।१ च अ० ।
स०—नमश्च स्वस्तिश्च स्वाहाश्च स्वधाश्च अलं च वपट् च इति नम-
स्वस्तिस्वाहास्वधालवपङ् । (इतरे० द्वन्द्वः) तैर्योगः (तृतीया तत्पु०)
तस्मिन् ॥

अर्थ—[चतुर्थी] नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधा अलं वपट् इत्येतैर्योगे
चतुर्थी विभक्तिर्भवति । (नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलं और वपट्
इन शब्दों के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है)

नमो देवेभ्यः । स्वस्ति प्रजाभ्यः । स्वाहाऽग्नये । स्वधा पितृभ्यः ।
अलं मत्तो मत्ताय । अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम् । प्रभुर्मल्लो मल्लाय ।
शक्तो मल्लो मल्लाय । वपङ् अग्नये ।

कर्तृकरणयोस्तृतीया २।३।१८

प० वि०—कर्तृकरणयोः ७।२ तृतीया १।१ स०—कर्ता च करणं
च इति कर्तृकरणे (इतरे० द्वन्द्वः) तयोः ।

अर्थ—अनुक्ते कर्त्तरि करणे च तृतीया विभक्तिर्भवति ।

(अनुक्त कर्त्ता श्रौर करण कारक मे तृतीया विभक्ति होती है)

उदा०—कर्त्ता-देवदत्तेन कृतम् । यज्ञदत्तेन कृतम् । करण-दात्रेण
लुनाति । परशुना छिनत्ति ।

सहयुक्तेऽप्रधाने २।३।१६

प० वि—सहयुक्ते ७।१ अप्रधाने ७।१ स०—सहेन युक्तम् सह-
युक्तम् (तृतीया तत्पु०) तेन । न प्रधानम् अप्रधानम् तस्मिन् अप्रधाने ।

अर्थ—[तृतीया] सहशब्देन युक्ते अप्रधाने तृतीया विभक्ति-
र्भवति । (सह शब्द के योग में अप्रधान में तृतीया विभक्ति होती है)

उदा०—पुत्रेण सह आगतः पिता ।

येनाङ्गविकार २।३।२०

प० वि०—येन ३।१ अङ्गविकार. १।१ स०—अङ्गस्य विकारः ।
अर्थ—[तृतीया] येन अङ्गस्य विकार लक्ष्यते तस्मात् तृतीया
विभक्तिर्भवति । (जिस शब्द से अङ्ग का विकृत होना जाना जाता है उससे
तृतीया विभक्ति होती है)

उदा०—लोचनेन काण. । पादेन खञ्ज. । पाणिना कुण्ठः ।

सि०—पाणिना । पाणि टा । पाणि ना । पाणिना ॥

हेतौ २।३।२३

प० वि—हेतौ ७।१

अर्थ—[तृतीया] फलसाधनयोग्य पदार्थों लोके हेतुरुच्यते । हेतुवा-
चिनस्तृतीया विभक्तिर्भवति । (फल को सिद्ध करने योग्य वस्तु को सप्तार
में हेतु कहते हैं) (हेतुवाची शब्दों से तृतीया विभक्ति होती है)

उदा०—घनेन कुलम् । विद्यया यशः ।

सि०—विद्या टा । विद्ये^१ आ । विद्यय्^२ आ । विद्यया ।

पष्ठी हेतुप्रयोगे २।३।२६

प० वि०—पष्ठी १।१ हेतुप्रयोगे ७।१ स०—हेतोः प्रयोगः हेतुप्रयोगः
(प० तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—हेतुशब्दस्य प्रयोगे पष्ठी विभक्तिर्भवति । (हेतु शब्द के

प्रयोग में पढ़ी विभक्ति होती है)

उदा०—अन्नस्य हेतोवसति ।

सि०—अन्न उस् । अन्न स्य^१ । अन्नस्य ॥

सर्वनाम्नस्तृतीया च २।३।२७

प० वि०—सर्वनाम्नः ५।१ तृतीया १।१ च अ० ।

अर्थ—[पष्ठी हेतुप्रयोगे] सर्वनामशब्देभ्यः तृतीया विभक्तिर्भवति चकारात् पष्ठी अपि हेतु शब्दस्य प्रयोगे (सर्वनाम सज्ञा वाले शब्दों से तृतीय और पष्ठी विभक्ति होती है हेतु शब्द के प्रयोग में)

उदा०—कस्य हेतोर्वसति । केन हेतुना वसति ॥

अपादाने पञ्चमी २।३।२८

प० वि०—अपादाने ७।१ पञ्चमी १।१

अर्थ—अनुक्ते अपादाने कारके पञ्चमी विभक्तिर्भवति । (नहीं कहे गये अपादानकारक में पञ्चमी विभक्ति होती है)

उदा०—वृक्षात् पत्रं पतति ॥ ×पञ्चमीविधाने ल्यब्लोपे कर्मण्युपसंख्यानम् ×प्रासादमारुह्य प्रेक्षते, प्रासादात्प्रेक्षते ॥ ×अधिकरणे चोपसंख्यानम् ×आसने उपविश्य प्रेक्षते, आसनात् प्रेक्षते ॥

अन्यारादितरर्त्तेदिकशब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते २।३।२९

प० वि०—अन्यारादितरर्त्तेदिकशब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते ७।१

स०—अन्यश्च आराश्च इतरश्च ऋते च दिक्छब्दश्च अञ्चूत्तरपदश्च । आश्च आदिश्च इति अन्यारादितरर्त्तेदिकशब्दाञ्चूत्तरपदाजाहयः तैर्युक्तम् इति अन्यारादितरर्त्तेदिकशब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्तम्, तस्मिन्

अर्थ—अन्य आरात् इतर ऋते दिक्छब्द अञ्चूत्तरपद आच् आदि इत्येतैः योगे पञ्चमी विभक्तिर्भवति । (अन्य, आरात्, इतर, ऋते, दिशावाची शब्द, अञ्चुघातु है उत्तरपद में जिसके ऐसे, आश्च और आदि के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है)

उदा०—अन्य इत्यर्थप्रहणम्, तेन पर्यायप्रयोगेऽपि भवति । अन्यो देवदत्तात् । भिन्नो देवदत्तात् । अर्थान्तरं देवदत्तात् । विलक्षणो देवदत्तात् । आराद् देवदत्तात् । आराद् यज्ञदत्तात् । इतरो देवदत्तात् । ऋते

इति अव्ययं वर्जनार्थं वर्तते । ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः । दिक्शब्द—पूर्वो
 प्रामात् । उत्तरो प्रामात् । अञ्चूत्तरपद—प्राग् प्रामात् । प्रत्यग् प्रामात् ।
 आच्-दक्षिणा^१ प्रामात् । उत्तरा प्रामात् । आहि-दक्षिणाहि^२ प्रामात् ।
 उत्तराहि प्रामात् ।

पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् २।३।३२

प० वि०—पृथग्विनानानाभिः ३।३ तृतीया १।१ अन्यतरस्याम् अ०।

स०—पृथक् च विनाश्च नानाश्च इति पृथग्विनानानाः तैः
 पृथग्विनानानाभिः

अर्थ—[पञ्चमी] पृथग् विना नाना इत्येतैः योगे तृतीया विभक्ति-
 र्भवति अन्यतरस्याम् पञ्चमी च । (पृथक् विना और नाना के योग में
 विकल्प से तृतीया विभक्ति होती है, और पक्ष में पञ्चमी भी)

उदा०—पृथग् देवदत्तेन देवदत्ताद् वा । विना देवदत्तेन देवदत्ताद्
 वा । नाना देवदत्तेन देवदत्ताद् वा ।

दूरान्तिकार्थैः पठ्यन्यतरस्याम् २।३।३४

प० वि०—दूरान्तिकार्थैः ३।३ पठ्ठी १।१ अन्यतरस्याम् । अ०।

स०—दूरश्च अन्तिकश्चेति दूरान्तिकौ । दूरान्तिकौ अर्थो येषां ते दूरान्ति-
 कार्थाः तैः ।

अर्थ—[पञ्चमी] दूरार्थैरन्तिकार्थैश्च शब्दैर्योगे पठ्ठी विभक्तिर्भ-
 वति अन्यतरस्याम् पञ्चमी च । (दूर तथा अन्तिक (पाठ) है अर्थ जिन
 शब्दों का उनके योग में पठ्ठी विभक्ति होती है पक्ष में पञ्चमी भी)

उदा०—दूरं प्रामान् प्रामस्य वा । विप्रकृष्टं प्रामान् प्रामस्य वा ।
 अन्तिकं प्रामान् प्रामस्य वा । अभ्याशं प्रामान् प्रामस्य वा । समीपं
 प्रामान् प्रामस्य वा ।

दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च २।३।३५

प० वि०—दूरान्तिकार्थेभ्यः ५।३ द्वितीया १।१ च अ० ।

अर्थ—[पठ्यन्यतरस्याम्] दूरान्तिकार्थेभ्यः शब्देभ्यः द्वितीया
 विभक्तिर्भवति, विकल्पेन पठ्ठी पक्षे पञ्चमी च । (दूरार्थे और अन्तिकार्थे
 शब्दों से द्वितीया विभक्ति होती है, विकल्प से पठ्ठी और पक्ष में पञ्चमी भी)

१—दक्षिणादाच् (५. ३. ३६) २—आहि च दूरे (५. ३. ३७)

बहु जस् । बहो^१ जस् । बहो अस् । बहव् अस् । बहव
स् । बहव रु । बहव र् । बहव.

सम्बोधने च २।३।४७

प० वि०—सम्बोधने ७।१। च अ० ।

अर्थ—[प्रथमा] सम्बोधने च प्रथमा विभक्तिर्भवति (और सम्बोधने में प्रथमा विभक्ति होता है)

उदा०—राम, रमे, कुमारि, साधो ।

सि०—राम सु । राम म् । राम^२ । रमे । रमा सु । रमे^३ सु । रमे
स् । रमे^२ । कुमारि । कुमारी सु । कुमारि^४ स । कुमारि । साधो ।
साधु सु । साधु म् । साधो^५ म् । साधो ।

साऽऽमन्त्रितम् २।३।४८

प० वि०—सा १।१। आमन्त्रितम् १।१

अर्थ—[सम्बोधने प्रथमा] सम्बोधने या प्रथमा सा आमन्त्रित-
संज्ञका भवति । (सम्बोधन में जो प्रथमा उसकी आमन्त्रित संज्ञा होती है)

एकवचन सम्बुद्धि २।३।४९

प० वि०—एकवचनम् १।१। सम्बुद्धिः १।१। स०—एक चाटः वचन
च इति एकवचनम् (कर्म० तत्पु०)

अर्थ—[प्रथमा आमन्त्रितम्] आमन्त्रितप्रथमाया एकवचन
सम्बुद्धिसंज्ञा भवति । (आमन्त्रित प्रथमा के एकवचन की सम्बुद्धि संज्ञा
होती है)

उदा०—राम । रमे । कुमारि । साधो ।

पष्ठी शेषे २।३।५०

प० वि०—पष्ठी १।१। शेषे ७।१

अर्थ—कर्मादीनाम् अयिवक्षा शेष । कर्मादीनि कारकाणि यत्र न
पित्रक्ष्यन्ते, स शेषः । शेषे पष्ठी विभक्तिर्भवति । (कर्मादि कारका की
जहाँ बहने की इच्छा न हो उसे शेष बहने है । ऐसे शेष में पष्ठी

१—जमि च (७ ३ १०९) २—एटहस्वात्मबुद्धि (६ १ ६७)

३—सम्बुद्धी च (७ ३ १०६) ४—अस्वार्थनद्योहस्व (७ ३ १०७) ५—

६—वस्व गुण (७ ३ १०८) ७—अदेह ग (१ १ ०) स्थानेऽन्तरतमः (१.१ ४६)

यतश्च निर्धारणम् २।३।४१

प० वि०—यत अ० । च अ० । निर्धारणम् १।१

अर्थ—[पष्ठी, सप्तमी] (जातिगुणक्रियाभिः समुदायाद् एकदेशस्य पृथक्करणम् निर्धारणम्) यस्मात् जाति-गुण क्रियाशब्दात् एकदेशस्य पृथक्करणम् भवति तस्मात् पष्ठीसप्तम्यौ विभक्ती भवतः ।

(जाति गुण और क्रिया के द्वारा समुदाय से एक देश या एक विभाग का अलग करना निर्धारण कहलाता है) (जिस जातिवाचक गुणवाचक तथा क्रियावाचक शब्द से जाति गुण या क्रिया के एक भाग का अलग होना पाया जाय उससे पष्ठी और सप्तमी विभक्ति होती है) ।

उदा०—जाति—मनुष्याणां क्षत्रिय शूरतम । मनुष्येषु क्षत्रिय शूरतम । गुण—गवा कृष्णा सपन्नक्षीरतमा । गोषु कृष्णा सपन्नक्षीरतमा । क्रिया—अध्वगानां धान्त शीघ्रतमा । अध्वगेषु धावन्त शीघ्रतमा ।

प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्र प्रथमा २।३।४६

प० वि०—प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे ७।१ प्रथमा १।१।

स०—प्रातिपदिकस्य अर्थ प्रातिपदिकार्थः । प्रातिपदिकार्थश्च लिङ्ग च परिमाण च वचन च इति प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनम् । द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणे पद प्रत्येकम् अभिसम्प्रथ्यते इति नियमात् मात्रशब्द प्रत्येकम् अभिसम्प्रथ्यते ।

अर्थ—प्रातिपदिकार्थः—प्रातिपदिकस्य सत्ता । लिङ्ग—स्त्री पु-नपु सप्तानि । परिमाण—तोलनम् । वचनम्—एकत्व द्वित्व-बहुत्वानि । प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्रे परिमाणमात्रे वचनमात्रे प्रथमा विभक्तिर्भवति । (प्रातिपदिक की सत्ता में, लिङ्गमात्र में, परिमाणमात्र में और वचनमात्र में प्रथमा विभक्ति हाती है)

उदा०—प्रातिपदिकार्थः—उच्चैः, नीचैः, । लिङ्ग—कुमारी, वृक्ष, कुण्डम् । परिमाण—द्रोण, खारी, आढकम् । वचन—एक, द्वौ, बहवः ।

सि०—उच्चैस्सु । उच्चैः । कुमारी सु । कुमारीः । वृक्ष सु । वृक्षः । द्रोण सु । द्रोणः । आढक सु । आढक अम् । आढकम् । एकः । द्वौ । बहवः ।

१—हृत्स्वाम्यो दीर्घान् गुणित्स्वपृक्त हन् (६ १ ६६) २—प्रताम् (७ १ २४) ३—प्रति पूर्वं (६ १ ११३)

बहु जस् । बहो^१ जस् । बहो अस् । बहव् अस् । बहव
स् । बहव रु । बहव र् । बहव

सम्बोधने च २।३।४७

प० वि०—सम्बोधने ज्ञ। च अ० ।

अर्थ—[प्रथमा] सम्बोधने च प्रथमा विभक्तिर्भवति (और सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति होता है)

उदा०—राम, रमे, कुमारी, साधो ।

सि०—राम सु । राम स् । राम^२ । रमे । रमा मु । रमे^३ सु । रमे स् । रमे^२ । कुमारी । कुमारी सु । कुमारी^४ स । कुमारी । साधो । साधु सु । साधु स् । साधो^५ म् । साधो ।

साऽऽमन्त्रितम् २।३।४८

प० वि०—सा १।१ आमन्त्रितम् १।१

अर्थ—[सम्बोधने प्रथमा] सम्बोधने या प्रथमा सा आमन्त्रित-सज्ञा भवति । (सम्बोधन में जो प्रथमा उसकी आमन्त्रित सज्ञा होती है)

एकवचन सम्बुद्धि २।३।४९

प० वि०—एकवचनम् १।१ सम्बुद्धि १।१।।स०—एकं चात्र वचन च इति एकवचनम् (कर्म० तत्पु०)

अर्थ—[प्रथमा आमन्त्रितम्] आमन्त्रितप्रथमाया एकवचन सम्बुद्धिसज्ञा भवति । (आमन्त्रित प्रथमा क एकवचन की सम्बुद्धि मना होती है)

उदा०—राम । रमे । कुमारी । साधो ।

पठ्ठी शेषे २।३।५०

प० वि०—पठ्ठी १।१ शेषे ज्ञ।

अर्थ—कर्मादीनाम् अविद्यक्षा शेष । कर्मादीनि कारकाणि यत्र न विद्यन्ते, स शेष । शेषे पठ्ठी विभक्तिर्भवति । (कर्मादि कारको की जहाँ बहू की डच्छा न हो उसे शेष कहते हैं । एमे शेष में पठ्ठी

१—जसि च (७ ३ १०९) २—एङ्हस्वात्सम्बुद्धि (६ १ ६७)

३—सम्बुद्धौ च (७ ३ १०६) ४—सम्बोधनस्याह स्व (७ ३ १०७) ५—

ह्रस्वस्य गुण (७ ३ १०८) षडेङ्गण (१ १ २) स्थानेऽवरतम (१ १ ४९)

विभक्ति होती है) ।

उदा०—राज्ञ पुरुष । पशो पाठ । पितु पुत्र ।

सि०—राजन् डस् । राजन् अस् । राजन्^१ अस् । राज् अ^२ अस् ।
राज्ञस् । राज्ञ । पशु डस् । पशु अस् । पशो^३ अस् । पशोस्^४ ।
पशोरु । पशोर । पशो । पितृ डस् । पितृ अस् । पितुर^५ स् ।
पितुर^६ । पितु ।

ज्ञोऽविदर्थस्य करणे २।३।५१

प० वि०—ज्ञ ६।१ अविदर्थस्य ६।१ करणे ७।१॥ स०—विद अर्थ
विदर्थ (प० तत्पु०) न विदर्थ अविदर्थ (नञ्त्त्पु०) तस्य ।

अर्थ—(पष्ठी) अविदर्थस्य अज्ञानार्थस्य ज्ञाधातो नरण कारके
पष्ठी विभक्तिर्भवति ।

(ज्ञान प्रथ से भिन्न अथ वाल ज्ञा धातु क करण कारक में पष्ठी
विभक्ति होती है) ।

उदा०—सर्पिषां जानीते । मधुनो जानीते ।

सि०—सर्पिप् डस् । सर्पिष । मधु डस् । मधु^७ नुट् डस । मधु न्
अस । मधुन ।

अधीगर्थदयेशा कर्मणि २।३।५१

प० वि०—अधीगर्थदयेशाम् ६।३ कर्मणि ७।१॥ स०—अधीग्
अर्थो येषा धातूनाम् इति अभीगर्था (बहु०) अधीगर्थाश्च दयश्च
ईट् च इति अधीगर्थदयेश तेषाम् ।

अर्थ—[पष्ठी शेषे] अधीगर्थदयेशां धातूना कर्मणि कारके
शेषत्वेन विवक्षिते पष्ठी विभक्तिर्भवति । (अधि उपसर्ग पूर्वक इक् धातु
के अथ वाले धातुओं के तथा दय और ईश धातुओं के कम कारक में पष्ठी
विभक्ति होती है)

उदा०—मातुरध्येति । मातु स्मरति । सर्पिषो दयते । सर्पिष ईष्टे ।
मधुन ईष्टे ।

१—अल्लोपोऽन (६ ४ १३४) २—स्तो ष्चुना ष्चु (८ ४, ३६) ३—
षेडिति (७ ३ १११) ४—डसिडसोश्च (६ १ १०६) ५—ऋत उत (६
१ १०७) उरण् रपर (१ १ ५०) ६—रात्सस्य (८ २ २४) ७—इकोऽवि
विभक्तौ (७ १ ७३) मिदचोऽन्वात्पर (१ १ ४६)

कर्तृकर्मणोः कृति २।३।६५

५० वि०—कर्तृकर्मणोः ७२ कृति ७१ सः—कर्ता च कर्म च इति कर्तृकर्मणी (इतरे० द्वन्द्वः) तयोः ।

अर्थ—(पठ्ठी) कृत्रयोगे कर्त्तरि कर्मणि च कारके पठ्ठी विभक्ति-
भवति ।

(इदन्त के प्रयोग में कर्ता और कर्म कारक में पठ्ठी विभक्ति होती है)

उदा०—भवतः गायिना । भवनः आमिका । कर्मणि-अपां मघ्रा ।
पुरां भेत्ता ।

सि०—शायिका । शीङ् एबुल्^१ । शी वृ । शं अरु^२ । शाय् अरु ।
शायक टाप्^३ । शायिना^४ । आसिना । आम् एबुल् । आम् अरु ।
आसक । आमक टाप् । आनक आ । आमिका । मघ्रा । मृज् तृच् ।
मृप्^५ तृ । मृ अम्^६ पृत् । मृ^७ पृत् । मृष्टृ^८ । मृष्टृ^९ मु । मृष्ट् अनङ्^{१०}
मु । मृष्टन् मु । मृष्टान् म् । मृष्टान् । मृष्टा । भेत्ता । भिद्वि । भिद्^{११}
तृच् । भिद् तृ । भेद् तृ । भेन् तृ । भेत् । भेत् मु । भेत् अनङ् मु ।
भेत्त् म् । भेत्तान् स् । भेत्तान् । भेत्ता ।

न लोकाव्ययनिष्ठास्त्वर्थतृणाम् २।३।६६

५० वि०—न अ० । लोकाव्ययनिष्ठास्त्वर्थतृणाम् ६३ सः—
लश्च उश्च इकरश्च अव्ययं च निष्ठा च स्वत्वर्थश्च तृन् च इति
लोकाव्ययनिष्ठास्त्वर्थतृणः तेषाम् ।

अर्थ—[पठ्ठी] ल उ इरु अव्यय निष्ठा स्वत्वर्थ तृन् इत्येवमन्तानां
प्रयोगे पठ्ठी विभक्तिर्न भवति ।

तु के स्थान में कृदादेश, उ, उक्, घञ्य, निष्ठा, मन् धर्थ जाने और
तृन् इन प्रत्ययान्तों के प्रयोग में पठ्ठी विभक्ति नहीं होती है)

१—पुत्रुचो (३. १. १३३) २—पुत्रोरनाको (७. १. १) ययामस्य-
मनुदेनः समानाम् (१. ३. १०) मचोऽग्निगुति (७. २. ११५) वृद्धिरादंश्च (१.
१. १) स्थानेऽन्तरत्तम. (१. १. ४६) ३—कृत्तद्विठसमासाश्च (१. २. ४६)
ह्याप्प्रानिपदिशान् (५. १. १) स्त्रियाम् (५. १. ३) मजाष्टवृष्ण् (५. १. ४)
प्रत्ययः (३. १. १) परदश्च (३. १. २) ४—प्रत्ययवात्कान्पूर्वस्थान् द्रष्टव्यमुनः
(७. ३. ४३) ५—यदश्चप्रत्य० (८. २. ३६) ६—मृत्रिद्विगोर्नचमकिटि
(६. १. २७) ७—इतो मगुवि (६. १. ७४) ८—पुत्रा पृः (८. ४. ४०) ।

उदा०—ल इति शतृशानचौ कानन्वसू फिकिनौ च गृह्यन्ते । शतृ—
आदेन पचन् । शानच्-ओदन पचमान । कानच्-ओदन पेचान ।
क्वसु-ओदन पेचिवान् । किकिनौ-पपि सोमम् । टदिर्गा । उ-कट
चिकीर्षु । आदेन बुमुञ्च । उरु-आगामुक वाराणसौ रक्ष आहु ।
अव्यय-कृ कृत्वा । निष्ठा-ओदन खादितवान् । ट्रेटत्तेन कृतम् ।
खलर्थ-ईपरकर कटो भवता । नन्-कर्ता कटान् । Xद्विप शतुर्ग
वचनम् X चोर द्विपन् । चौरस्य द्विपन् ॥

सि -पचन् । डुपचप् । पच् लट्^१ । पच् शतृ^२ । पच् अतृ । पच् अत् ।
पच शप्^३ अन् । पच् अ अन् । पच् अ^४ त् । पचत् । पचत् सु । पच
नुम्^५ त् सु । पचन्त् सु । पचन्त् स् । पचन्त्^६ । पचन्^७ ॥ पचमान । डुप
चप् । पच् शानच् । पच् आन । पच् शप् आन । पच् अ आन । पच्
अ मुञ्^८ आन । पच् अ म् आन । पचमान सु । पचमान । पेचान ।
पच् कानच्^९ । पच् आन । पच् पच्^{१०} आन । पेच् आन^{११} । पेचान
सु । पेचान । पेचिवान् । पच् क्वसु^{१२} । पच् वस् । पच पच्^{१३} वस् ।
पेच् वम् । पेच इट्^{१४} वस् । पेच् इ वस् । पेचिवस् । पेचिवस् सु ।
पेचिवास सु । पेचिवा नुम्^{१५} स सु । पेचिवान्स् सु । पेचिवान्स् म् ।
पेचिवान्स् । पेचिवान् ॥

पपि । पा कि^{१६} । पा इ । प् ड^{१७} । पा प् ड^{१८} । प^{१९} पि । पपि

- १—वतमान लट (३ २ १२३) २—लट शतृशानचावप्रथमासमानाधि
करण (३ २ १२४) ३—तिङ्गित्सावधातुकम् (३ ४ ११३) सावधातुके
यक (३ १ ६७) कत्तरि शप (३ १ ६८) ४—अनो गुण (६ १ ८४)
५—उगिदचा सवनामस्थानऽघातो (७ १ ७०) मिदचाऽत्यात्पर (१ १
४६) ६—ह्रस्वाद्यम्नो दीघान् मुतिस्प्रयुक्तं हल (६ १ ६६) ७—ह्रस्वोऽन्तरा
सयोग (१ १ ७) सयोगान्तस्य लोप (८ २ २३) ८—आन मुक (७ २
८२) आद्यतो टकितौ (१ १ ४५) ९—लिट कानच्वा (३ २ १०६)
१०—लिटि घातोऽरनभ्यासस्य (६ १ ८) ११—पूर्वोऽभ्यास (६ १ ४)
अत एकहलमध्येऽनादगादेर्लिटि (६ ४ १२०) १२—वसुश्च (३ २ १०७)
१३—वस्वकाजादघसाम् (७ २ ६७) आद्यतो टकितौ (१ १ ४५) १४—
उगिदचा सवनामस्थानऽघातो (७ १ ७०) मिदचाऽत्यात्पर (१ १ ४६)
१५—आद्यगम० (३ २ १७१) १६—अनो लोप इटि च (६ ४ ६४)
१७—द्विवचनऽचि (१ १ ५८) १८—ह्रस्व (७ ४ ५६)

सु। पपिः। दा किन्^१। दा इ। दृ ड। दा दृ ड। ददि। ददि सु।
ददिः। स्वरे विशेषः।

चिकीर्षुः। हुहृन्। कृ सन्। कृ स। कृ स। क स। किर् स। कीर्
स। कीर् कीर् स। की कीर् स। चिकीर् स। चिकीर्षु^१। चिकीर्षु^२
उ^३। चिकीर्षु^३ उ^३। चिकीर्षु^४। चिकीर्षु^५ सु। चिकीर्षुः॥

बुमुत्तः। भुज् सन्। भुज् स। भुज् स। भुज् भुज् स। भु भुज्
स। भु भुज् स। बुभुग्^१ म। बुभुक् स^२। बुभुक् प^३। बुभुक् उ^४।
बुभुक् उ। बुभुक् सु। बुभुक्त्तः। आगामुकम्। आ गम्लु। आगम्
उकम्^५। आगामुक। आगामुक अम्। आगामुकम्। अव्यय—कृत्वा।
हुहृन्। कृ क्त्वा। कृ त्वा। कृ त्वा^१। कृत्वा सु। कृत्वा^२। निष्ठा—
खादितवान्। खाद्। खाद् वतश्चतु। खाद् तयत्। खाद् इद् तयत्।
खादितयत्। खादितयत् सु। खादितयत् सु। खादितवा नुम् त^३ सु।
खादितवान् सु। खादितवान् न्। खादितवान्। खनम्।
हुहृन्। कृ क्त। कृ त। कृ त। कृ न सु। कृ त अम्। कृ तम्। ईपत्कर^४।
ईपत्कृ^५। ईपत्कृ^६ खन्। ईपत्कर^७ अ। ईपत्कर सु। ईपत्करः। तृन्।
कर्त्ता।

कृत्याना, कर्त्तरि वा २।३।७१

प० वि०—कृत्यानाम् ६।३ कर्त्तरि ७।१ वा अ०।

अर्थ—[पठो] कृत्यानां प्रयोगे कर्त्तरि वा पठो विभक्तिर्भवति।

१—आद्गम० (३. २ १७१) २—सनागमभिज्ञ उ (३ २. १६८)

३—घार्धंघातुक शेषः (३ ४. ११४) घतो शेषः (६ ४. ४८)

४—पूर्वोऽभ्यासः (६ १ ४) अभ्यासे चवं (८. ४. ५३) ५—घोः कृः

(८ ० ३०) ६—अरि च (८. ४. ५४) ७—घादेशप्रत्यययो (८ ३ ५८)

८—सनागमभिज्ञ उ (३ २ १६७) ९—घार्धंघातुक शेष (३. ४. ११४)

घार्धंघातुके (६ ४. ४६) घतो शेष (६ ४. ४७) १०—तत्पत्रपदस्थाम्बुव

हनस्वमगमगुम्प उक्त् (३ २. १५४) ११—घार्धंघातुक शेषः (३. ४. ११४)

गार्धंघातुकार्धंघातुकयो (७. ३ ८४) विदति च (१. १. ५) १२—वृत्तान्तो-

न्वगुन (१. १ ३६) घव्ययाशम्पु. (२. ४ ८२) १३—उगिदधां गवंताम-

स्थानेऽघातो (७ १. ७०) विदधोऽभ्यासपरः (१. १. ४६) १४—ईपद्दु सु

इच्छावृच्छार्थेषु सन् (३. ३. १०६)

(कृत्य प्रत्ययों के प्रयोग में कर्ता में विकल्प से पष्ठी विभक्ति होती है)

उदा०—भवता कट कर्तव्य । भवत कट कर्तव्य ।

चतुर्थी चाशिष्यायुप्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितै २।३।७३

प० वि०—चतुर्थी १।१ च अ० । आशिपि ७।१ आयुप्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितै ३।३। स०—आयुप्य च मद्र च भद्र च कुशल च सुख च अर्थश्च हित च इति आयुप्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितानि, तै

अर्थ—आशिपि गम्यमानायाम् आयुप्य-मद्र भद्र कुशल-सुख अर्थ-हित इत्येतैर्योगे चतुर्थी विभक्तिर्भवति चकारात् पष्ठी । (आशीर्वाद अथ जाना जाय तो आयुप्य मद्र भद्र कुशल सुख अर्थ और हित के योग में चतुर्थी और चकार ग्रहण में पष्ठी विभक्ति होती है)

उदा०—× अत्र आयुष्यादीना पर्यायग्रहणम् कर्तव्यम् × आयुष्य देवदत्ताय भूयात् । प्रायुष्य देवदत्तस्य भूयात् । चिर जीवित देवदत्ताय देवदत्तस्य वा भूयात् । मद्र देवदत्ताय देवदत्तस्य वा । कुशल देवदत्ताय देवदत्तस्य वा । सुख देवदत्ताय देवदत्तस्य वा । श देवदत्ताय देवदत्तस्य वा । अर्थो देवदत्ताय देवदत्तस्य वा । प्रयोजन देवदत्ताय देवदत्तस्य वा । हित देवदत्ताय देवदत्तस्य वा । प० देवदत्ताय देवदत्तस्य वा ।

इत्यष्टाध्यायी प्रकाशिकाया द्वितीयाध्याये तृतीय पाद

—०—

एकवद्भावप्रकरणम्

द्विगुर्कवचनम् २।४।१

प० वि०—द्विगु १।१ एकवचनम् १।१ स०—एकस्य वचनम् । एकवचनम् । (प० तत्प०) ।

अर्थ—द्विगु समास एकस्य अर्थस्य वाचको भवति ।

ॐ अत्र समाहारद्विगोरेव ग्रहणम् ॐ

(द्विगु समास एक अथ का वाचक हाता है) यहा द्विगु से समाहार अथ में विहित द्विगु लिया जाता है ।

उदा०—पञ्चपूली । दशपूली ।

द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् २।४।२

प० वि०—द्वन्द्व १।१ च अ० । प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् ६।३ स०—प्राणिश्च तूर्यश्च सेना च इति प्राणितूर्यसेना तासामङ्गानि इति

प्राणितूर्यसेनाज्ञानि (प० तत्पु) तेषाम् । अन्नशब्दः प्रत्येकम् अभि-
सम्बन्धते ।

अर्थ—प्राण्यज्ञानां तूर्याज्ञानां सेनाज्ञानां च द्वन्द्वः एकवद् भवति ।
(प्राणी, राजा और सेना के अज्ञो का द्वन्द्व एकवद् हां जाता है)

उदा०—प्राणि-पाणिपादम् कण्ठपृष्ठप्रीवाजङ्घम् । तूर्य-वशी-
वीणम् । मृदङ्गशङ्खपणम् । सेना-हस्तयन्त्राष्टम् । रथशकटम् ।

सि०—पाणो च पादौ च इति पाणिपादम् । पाणि औ पाद औ ।
कण्ठश्च पृष्ठं च प्रीवा च जङ्घा च इति । वंशी च वीणा च इति ।
मृदङ्गश्च शङ्खश्च पणश्च इति । हस्तिनश्च अस्त्राश्च उष्ट्राश्च इति ।

येषां च विरोध शाश्वतिकः २।४।१६

प० वि०—येषां ६।३ च अ० । विरोधः १।१ शाश्वतिकः १।१

अर्थ—[एकवचनम्] येषां जीवानां शाश्वतिक. सनातनो विरोधः
तेषां द्वन्द्व. एकवद् भवति ।

(जिन प्राणियों का सनातन विरोध है, उनका द्वन्द्व एकवद् हां जाता है)

उदा०—अहिर्नकुलम् । मार्जारमूपम् ।

सि०—अहिश्च नकुलश्च इति । मार्जारश्च मूपश्च इति ।

स नपुंसकम् २।४।१७

प० वि०—स १।१ नपुंसकम् १।१

अर्थ—अस्मिन् एकवचनप्रकरणे यस्य एकवद्भावो विहित, स.
नपुंसकलिङ्गो भवति ।

उदा०—पाणिपादम् ।

अव्ययीभावश्च २।४।१८

प० वि०—अव्ययीभावः १।१ च अ० ।

अर्थ—[नपुंसकम्] अव्ययीभावः समासो नपुंसकलिङ्गो भवति ।
(अव्ययी भाव समास नपुंसक लिङ्ग होता है)

उदा०—उपकृष्णम् । उपगु । अविन्त्रि ।

परवल्लिङ्ग द्वन्द्वतत्पुरुषयोः २।४।१९

प० वि०—परवत् अ० । लिङ्गम् १।१ द्वन्द्वतत्पुरुषयोः ७।२

स०—द्वन्द्वश्च तत्पुरुषश्च इति द्वन्द्वतत्पुरुषो (द्वन्द्वे इन्द्रः) तयोः ।

अर्थ—द्वन्द्वसमासे तत्पुरुषसमासे च परस्य इव लिङ्गं भवति ।
(द्वन्द्व और तत्पुरुष समास म पर के लिङ्ग के समान लिङ्ग होता है)

उदा०—गुणवृद्धी । अर्द्धपिप्पली ।

सि०—गुणश्च वृद्धिश्च इति । पिप्पल्या अर्द्धम् । अर्द्धपिप्पली
सु । अर्द्धपिप्पली ।

धात्वादेशप्रकरणम्

आर्धधातुके २।४।३५

प० वि०—आर्धधातुके ७।१

अर्थ—इतोऽप्रे वक्ष्यमाणानि कार्याणि आर्धधातुके विषये भवन्ति
इत्यधिकारो वेदितव्य ॥ (आगे कहे जाने वाले कार्य आर्धधातुक के विषय में
होते हैं, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

अस्तेभू २।४।५२

प० वि०—अस्ते ६।१ भू १।१

अर्थ—[आर्धधातुके] आर्धधातुके विषये अस्तेभूरादेशो भवति ।
(आर्धधातुक के विषय में अस धातु के स्थान में भू यह आदेश होता है)

उदा०—भविता, भवितुम्, भवितव्यम् ।

वुवो वचि २।४।५३

प० वि०—व्र व ६।१ वचि १।१

अर्थ—व्रू इत्येतस्य स्थाने वचिरादेशो भवति आर्धधातुके विषये ।

उदा०—वक्ता, वक्तुम्, वक्तव्यम् ।

लुक्लुप्रकरणम्

सुपो धातुप्रातिपदिकयो २।४।७१

प० वि०—सुप ६।१ धातुप्रातिपदिकयो ७।२ स०—धातुरच प्राति-
पदिक च इति धातुप्रातिपदिके तयो

अर्थ—[लुक्] धातौ प्रातिपदिके च स्थितस्य सुप लुग्भवति ।
(धातु और प्रातिपदिक में स्थित सुप का लुक् होता है)

उदा०—पुत्रीयति, राजपुत्र ।

सि०—पुत्रीयति । आत्मन पुत्रम् इच्छति इति ॥ पुत्र अम् क्यच् ।

१—सुप आत्मन क्यच् (३ १ ८)

पुत्र अम् य^१ । पुत्र^२ य । पुत्रोत्र^३ । पुत्रोत्र लट्^४ । पुत्रोत्र ल् । पुत्रीय तिप्
पुत्रीय ति । पुत्रीय शप् ठि । पुत्राय अ ति । पुत्रोत्रति । राजपुत्र ॥ राज्ञः
पुत्र । राजन् इस् पुत्र सु । राजन् पुत्र । राजपुत्र ।

अदिप्रभृतिभ्य. शप २।४।७२

प० वि०—अदिप्रभृतिभ्य शप शप ६।१ स०—अदे प्रभृत-
य. इति अदिप्रभृतय तेभ्य. ।

अर्थ—[लुक्] अदिप्रभृतिभ्य. शप. लुक् भवति । (अदि इत्यादि
षानुभों क पश्चात् शप् वा लुक् हाता है)

उदा०—अस्ति, अत्त, अदन्ति । अस्ति, अत्थ, अय । अद्मि,
अद्व., अद्म. ।

सि०—अद् । अद् । अद् लट । अद् ल् । अद् तिप् । अद् ति ।
अद् शप् ति । अद् ति । अन् ति । अत्ति । अदन्ति । अद् मि ।
अद् अन्त् इ । अदन्ति ॥

बहुल छन्दसि १।४।७३

प० वि०—बहुलम् १।१ छन्दसि ७।१

अर्थ—छन्दसि विषये शपो बहुल लुग्भवति । (छन्द के विषय में शप्
वा बहुल करके लुक् हाता है)

उदा०—यत्र हनति, अहि शयते । अन्येभ्यश्च भवति । त्राध्य नो
देवा. ।

सि०—हनति । हन् शप् तिप् । शयते । शीङ् शप् ठि । शी अ न ।
शो अ त । शय् अ त । शयते । त्राध्य । त्रै । त्रा^१ । त्राद्यन् ॥

यटोञ्चि च २।४।७४

प० वि०—यट ६।१ अचि ७।१ च अ० ।

अर्थ—यटो लुग्भवति अचि प्रत्यये दत्त इच्छगन् गृह्यन् च ।
(यट् वा लुक् हाता है अचि प्रत्यय के दत्ते गृहे च गृह्यन् गृह्यन् च
दत्त करके ग्री)

उदा०—लोलुव, पोपुव, बहुलप्रहरणादनचि अपि भवति, शाकु
निको लालपीति, दुन्दुभिर्वावदीति ।

सि०—लालपीति । लप् । लप् य^१ । लप् लप् य^२ । ल लप् य^३ ।
ला^४ लप् य । ला लप्^५ । लालप् लट् । लालप् ल् । लालप् तिप् ।
लालप् ईट्^६ ति । लालपीति ॥ वावदीति । वद् यद् । वद् य । वद्
वद् य । व वद् य । वा वद् य । वा वद् । वा वद् लट् । वावद् ल् ।
वा वद् तिप् । वावद् ईट्^७ ति । वावदीति । वावदीति

जुहोत्यादिभ्य इलु २।४।७४

प० वि०—जुहोत्यादिभ्य ५।३ इलु १।१ स०—जुहोति, आदिर्ये-
पान्ते जुहोत्यादय (वट्) तेभ्य

अर्थ—जुहोत्यादिभ्य शप् इलुर्भवति । (जुहोत्यादि धातुभ्यो के पश्चात्
शप् का इलु हो जाता है)

उदा०—जुहोति, जहुत, जुहति । जुहोपि, जुहथ, जुहथ । जुहोमि,
जुहुव, जुहुम ।

सि०—जुहोति । हु । हु लट् । हु ल् । हु तिप् । हु शप्^१ तिप् । हु^२
ति । हु हु^३ ति । मु^४ हु ति । जु^५ हु ति । जुहोति^६ । जुहति । जुहु
म्नि । जुहु अति^७ । जुहति^८ ॥

गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिच परस्मैपदेषु २।४।७७

प० वि०—गाति-स्था-घु-पा-भूभ्य ५।३ सिच ६।१ परस्मैपदेषु ७।३
स०—गातिश्च स्थाश्च घु च पाश्च भूश्च इति गातिस्थाघुपाभव (इतरे०
द्वन्द्व) तेभ्य

अर्थ—गाति-स्था-घु-पा-भूभ्ये सिच लुग्भवति परस्मैपदेषु परत ॥

१—घातोरकाचा हलाद् क्वासमभिहार यड (३ १ २२) २—
सन्वडो (६ १ ६) ३—पूर्वोभ्यास (६ १ ४) अत्र लोपोभ्यासस्य (७. ४
५८) हलादि शप् (७ ४ ६०) ४—दीर्घोऽकित (७ ४ ८३) ५—यडोऽचि
च (२ ४ ७३) सनाद्यन्ता घातव (३ १ ३२) ६—यडो वा (७ ३. ९४)
आद्यन्तो टकितो (१ १ ४५) ७—कस्तरि शप् (३ १ ६८) ८—जुहोत्या-
दिभ्य इलु (२ ४ ७५) ९—श्लो (६ १ १०) १०—कुहोश्चु (७ ४ ६२)
११—अभ्यासे चच (८ ४ ५३) १२—सावधातुक० (७ ३ ८४) १३—उभय-
स्तम् (६ १. ५) अदम्यस्तात् (७ १ ४) १४—हुस्तुवो सावधातुके (६ ४ ८७)

(गा स्या घु (दा घा) पा घोर भू धानुघो के पश्चात् सिच का युक् होता है परस्मैपद के परे रहन पर)

उदा०—अगान्, अस्यात्, अदात्, अधान्, अपान्, अभुन् ।

सि०—अगात् । इण् । इ । गा^१ । गा लुङ्^२ । गा ल् । गा तिप् । गा च्लि^३ ति । गा सिच्^४ ति । गा^५ ति । गा त्^६ । अट्^७ गात् । अगात् । अभूत् । भू लुङ् । भू तिप् । भू सिच् तिप् । भूति । भूत । भूत् । अट् भूत् । अभूत्

विभाषा घ्राघेट्शाच्छास २।४।७८

प० वि०—विभाषा १।१ घ्राघेट्शान्छास १।१॥ स०—प्राच घेट् च शाग्च छारच साश्च इति घ्राघेट्शाच्छासा तस्मान् । छसयच्यफ्ट् भावे नपु सक्तता न भवति, अन्यथा 'छासान्' प्राप्नोति । छः

अर्थ—[सिच परस्मैपदेषु लुक्] प्रा घेट् शा-छा-सा इत्येतेभ्य उत्तरम्य सिच परस्मैपदेषु विभाषा लुग्भवति । (घ्रा, घट, घा, छा घोर ग धानुघा क पश्चात् सिच का युक् होता है विषय स परस्मैपद क पर रहन पर)

उदा०—अप्रात्, अप्रासीन् । अवात्, अधासात् । अशान् । अगासीन् । अन्धात्, अन्धासीन् । असान्, असामीन् ।

सि०—अप्रात् । प्रा । प्रा लुङ् । प्रा च्लि लुङ् । प्रा मिच् लुङ् । प्रा सिच् ल् । प्रा मिच् तिप् । प्रा तिप् । प्रा त् । अट् प्रा त् । अप्रात् । अट् प्रा सक् इट् मिच् ईट् ति । अप्रासीन् । अवात् । धट् । धे । धा^१ । अट् धा मिच् तिप् । अधात् । अट् धा सक् इट् सिच् ईट् तिप् । अधासीन् । अशात् । शो । शा । अट् शा मिच् तिप् । अशात् । अन्धात् । अन्धासात् । अन्धान् । छा । छा^१ । अट् छा मिच् तिप् । अछात् । अतुप् छा त् । असान् । सो । सा^१ । अट् सा मिच् तिप् । असात् । असासीन् ।

तनादिभ्यन्तथामाः २।४।७९

प० वि०—तनादिभ्य १।३ तथासो ७९

१—इण् गा मुटि (२ ४ ४५) २—भूत् (३ ० ०९) मुत् (० ० ११०) ३—प्लि मुटि (३ १ ९३) ४—एच मिष् (३ १ ४९) ५—गतिम्सा० (० ९ ७३) ६—इणश्च (३ ९ १००) ७—मुटिगन्मुटिगन्मुटिगान् (९ ९ ७१) ८—पमरमनातो मर च (३ ० ७३) ९—मिडिगिवात् (७ ३ ९६) घाट्गो ट्गिगो (१ १ ९५) १०—घाश्च उा० (९ १ ९८)

स०—बन् आट्टिर्येपान्ते तनादयः (बहु०) तयोः

अर्थ—[विभाषा लुक्] तनादिभ्यः धातुभ्यः सिचः विभाषा लुग्भवति तप्रत्यये धासि च परत । (तन् इत्यादि धातुभ्यो कं पश्चात् सिच् का विकल्प से लुक् होता है त और धास् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—अतत, अतनिष्ट । अतथा, अतनिष्ठा । असात्, असनिष्ट । असाथा, असनिष्ठा ।

सि०—अतत । तनु । तन् । तन् लुङ् । तन् लृ । तन् त । तन् च्लि त । तन् सिच् त । तन् त । त^१ त । अट् तत । अतत । अट् तन् सिच् इट् त । अ तन् इस् त । अ त निस् त । अ त नि प्^२ त । अतनिष्ट^३ । असात् । सन् सिच् त । सन् त । स आ^४ त । सात् । असात् ।

मन्त्रे घसह्वरगशवृदहाद्वृक्कृगमिजनिभ्यो]लेः] २।४।८०

आम २।४।८१

प० वि०—आम ५।१

अर्थ—[ले] आम. परस्य लेलुग्भवति ।

उदा०—उहाञ्चक्रे । ईहाञ्चक्रे । ईहाञ्चक्रे ।

अव्ययादाप्सुप २।४।८२

प० वि०—अव्ययात् ५।१ आप्सुप ६।१ स०—आप् च सुप् च इति आप्सुप् तस्य आप्सुप ।

अर्थ—[लुक्] अव्ययात्परस्य आप सुपश्च लुग्भवति (अव्यय के पश्चात् आप और सुप् का लुक् होता है)

उदा०—तत्र शालायाम् । यत्र शालायाम् । सुपः—कृत्वाः, हृत्वा ।

सि०—तत्र । तद् डि त्रल्^१ । तद्^२ त्र । त अ^३ त्र । तत्र^४ टाप्^५ । तत्र सु । तत्र^६ । कृत्वा । डुकृन् । कृत्वा । कृत्वा । कृत्वा सु । कृत्वा ।

१—अनुवासापवेशवनतितनोत्यावीना० (६. ४. ३७) २—आदेश-प्रत्यययो (८. ३. ५९) ३—ष्टुना ष्टु (८. ४. ४०) । ४—जनसनखर्ना० (६. ४. ४२) ५—प्राग्दिसो विभक्ति (५. ३. १.) सप्तम्यास्त्रल् (५. ३. १०) प्रत्यय (३. १. १) परश्च (३. १. २) ६—कृत्तद्वितसमासाश्च (१. २. ४६) सुपो धातुप्रातिपदिकयो (२. ४. ७१) ७—प्रष्टन आ विभक्तौ (७. २. ८४) त्यदादीनाम (७. २. १०२) अलोऽन्त्यस्य (१. १. ५१) ८—प्रतो गुणं (६. १. ६४) ९—अत्राद्यतप्यान् (४. १. ४) १०—तद्वितश्चासवविभक्ति (१. १. ३७) अव्ययादाप्सुप (२. ४. ८२) ।

त । एध् तास् डा । एध् इट्^१ तास् डा । एध् इ तास् डा । एध् इ त्^२
आ । एविता । एधितास् रौ । एधितारौ^३ । एधितास् रस् । एधितारस् ।
एधितार ।

भविता । भू लुट् । भू ल् । भू ति । भू तासि ति । भू तास् डा । भू
तास् आ । भू त् आ । भू इट् त् आ । भो^४ इ त् आ । भव्^५ इ त्
आ । भविता । भवितारौ । भवितार ।

इतिश्रीमत्पदवाक्यप्रमाणजमहावैयाकरणपण्डितब्रह्मदत्ता-
चार्याणामन्तेवासिना देवप्रकाशपातञ्जलेन विर-

चितायामष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया

द्वितीयाध्याये चतुर्थं पाद ।

इति द्वितीयोऽध्याय

प्रत्ययाधिकारप्रकरणम्

प्रत्यय ३।१।१

प० वि०—प्रत्यय १।१

अर्थ—इतोऽग्रे आ पञ्चमाध्यायपरिसमाने प्रत्यय इत्यधिकारो
वेदितव्य । (इसके पश्चात् पञ्चमाध्याय पर्यन्त प्रत्यय का अधिकार समझना
चाहिये)

परश्च ३।१।२

प० वि०—पर १।१ च अ० ।

अर्थ—[प्रत्यय] प्रत्यय परो भवति इति , अधिकारो वेदितव्य ।
(प्रत्यय परे होते हैं, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

आद्युदात्तश्च ३।१।३

प० वि० आद्युदात्त १।१ च अ० । स०—आदिश्चासौ उदात्तश्चेति
आद्युदात्त (कर्म० तत्पु०)

१—आघघातुक शेष (३. ३ ११४) आघघातुकस्येड वलादे (७. २. ३५)
आद्यन्तो टकिलौ (१ १ ४५) २—द्वित्करणसामर्थ्यादिभ्यास्वापि टेलोपो
भवति (इष्टि) ३—रि च (७ ४ ५१) ४—सार्वधातुकार्षधातुकयो
(७ ३. ८४) ५—एचोऽयवामाव. (६ १ ७५) ।

अर्थ—आ पञ्चमाध्यायपरिसमाप्ते सामान्येन सर्वे प्रत्यया आद्यु-
दात्ताः भवन्ति इत्यधिकारो वेदितव्य । (१चम अध्याय पर्यन्त सामान्यतया
समी प्रत्यय आद्युदात्त होने हैं, इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

उदाहरण साधन च 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः (८. ४. ६५) इत्यत्र
द्रष्टव्यम् ।

अनुदात्तो मुष्पितौ ३।१।४

प० वि०—अनुदात्तो १।२ मुष्पितौ १।२ स०—सुप् च पिच्चेति
मुष्पितौ (इतरे० द्वन्द्वः)

अर्थ—आ पञ्चमाध्यायपरिममाप्तेः मुष्-पितौ प्रत्ययावनुदात्तो भवतः
इत्यधिकारो वेदितव्य । (५चम अध्याय पर्यन्त सुप् और पकार इत वाले
प्रत्यय अनुदात्त होने हैं, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

उदाहरण साधन च उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः (८. ४. ६५) इत्यत्र
द्रष्टव्यम् ।

मनादिप्रकरणम्

मुष्तिज्जिद्भ्य [सन्] ३।१।५

घातो. कर्मण समानकर्तृकादिच्छाया वा ३।१।६

प० वि०—घातोः ५।१ कर्मण. ५।१ समानकर्तृकात् ५।१ इच्छायाम्
७।१ घा अ० । स०—समानः कर्त्ता यस्य सः समानकर्तृकः तस्मात् ।

अर्थ—[सन्] समानकर्तृकात् कर्मण घातोर्विकल्पेन सन् प्रत्ययो
भवति इच्छायां गम्यमानायाम् ।

(समान कर्ता है जिसका ऐसा जो कर्म रूप घातु उससे इच्छा घोटन होने
पर विकल्प से सन् प्रत्यय होता है)

उदा०—चिकीर्षति । चिकीर्षतः । चिकीर्षन्ति । जिहीर्षति । जिही-
र्षतः । जिहीर्षन्ति ।

सि०—साधनं तु न पदान्त० (१. १. ५७) इति सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

कारिका—शौपिकान्मनुपर्थीयाच्छैपिको मनुपर्थिकः ।

सरूपः प्रत्ययो नेष्टः सनन्तान्न सनिष्यते ॥

(‘शेषे’ अधिकार करने तथा मनुप् प्रत्यय के धर्म में, जिन तद्धित प्रत्ययों
का विधान किया गया है, उन प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से पुनः समान रूप वाले
शौपिक तथा मनुप धर्म वाले प्रत्यय नहीं होने । एव सनन्त से मन् प्रत्यय की
उत्पत्ति नहीं होती है)

सुप आत्मन क्यच् ३।१।८

प० वि०—सुप ५।१ आत्मन ६।१ क्यच् १।१

अर्थ—[कर्मण इच्छायाम् वा] आत्मसंबन्धित सुवतात् कर्मण इच्छाया विकल्पेन क्यच् प्रत्ययो भवति । (स्वसस्व धी सुवन्त कम से इच्छा में विकल्प करके क्यच प्रत्यय होता है)

उदा०—पुत्रीयति ।

सि०—आत्मन पुत्रम् इच्छति इति । पुत्र अम् क्यच् । पुत्र अम् य । पुत्रीय । पुत्रीय लट् । पुत्रीय तिप् । पुत्रीय शप् तिप् । पुत्रीय अ ति । पुत्रीयति । साधनसूत्राणि तु सुपो धातुप्रातिपदिकयोरित्यत्र द्रष्टव्यानि ।

काम्यच्च ३।१।९

प० वि०—काम्यच्च १।१ च अ० ।

अर्थ—[कर्मण इच्छाया वा, सुप आत्मन] आत्मन सुवन्तात् कर्मण इच्छाया वा काम्यच् प्रत्ययो भवति । (स्वसम्बन्धीसुवन्त कम से इच्छा म विकल्प से काम्यच प्रत्यय होता है)

उदा०—पुत्रकाम्यति । वस्त्रकाम्यति ।

सि०—आत्मन पुत्रम् इच्छति । पुत्रम् काम्यच् । पुत्र अम्^१ काम्य । पुत्रकाम्य लट्^२ । आत्मन वस्त्र काम्यति इति । वस्त्र अम्^१ काम्यच् ।

उपमानादाचारे ३।१।१०

प० वि० उपमानात् ५।१ आचारे ७।१

अर्थ—[कर्मण वा, सुप] उपमानवाचिकर्मण सुवतादाचारार्थे वा क्यच् प्रत्ययो भवति । (उपमानवाची कम सुवन्त से आचार ध्य म विकल्प से क्यच प्रत्यय होता है)

उदा०—पुत्रीयति छात्रम् । प्राचारीयति कम्बलम् ।

सि०—पुत्रीयति । पुत्रम् इव आचरति छात्र गुरु इति । पुत्र अम् य । पुत्र क्य । पुत्री^३ य । पुत्रीय लट् । प्राचारम् इव आचरति कम्बल नर इति ।

१—सनाद्यन्ता धातव (३ १ ३२) सुपो धातुप्रातिपदिकयो (२ ४ ७१)

२—धातो (३ १ ६१) वतमान लट (३ २ १२३) प्रत्यय (३ १ १)

परदच (३ १ २) ३—क्यचि च (७ ४ ३३)

कत्तु^१ क्यङ् सलापश्च ३।१।११

प० वि०—कत्तु^१ ५।१ क्यङ् १।१ सलाप १।१ च अ० । स—
सस्य लोप सलोप (प० तत्प०)

अर्थ—[सुप उपमानादाचारे] उपमानवाचिन कत्तु^१ मुनन्ताद्
आचारार्थे वा क्यङ् प्रत्ययो भवति, सकारस्य च लोपो भवति ।

(उपमानवाची कर्ता सुबन्त म आचार के अर्थ में विकल्प से क्यङ् प्रत्यय
होता है और सकार का लोप होता है)

उदा०—श्येनायते । ओजायते । अप्सरायते । पयायते । पयस्यते ।
ओजसोऽप्सरसो नित्य पयसस्तु विभाषया ।

सि०—श्येनायते । श्येन इव आचरति वाक् इति । श्येन मु
क्यङ् । श्येन सु य । श्येन^१ य । श्येना^१ य । श्येनाय लट् । श्येनाय
लृ । श्येनायत्^३ । श्येनाय ते^४ । श्येनाय शप् ते । श्येनाय अ ते ।
श्येनायते । ओजस् सु क्यङ् । ओजस् य । ओज य । ओजाय लट् ।
ओजायते । अप्सरसम् । अप्सरस् सु क्यङ् । अप्सरायते । पयायते
पयस्यते ॥

घातारेकाच्चा हलादे क्रियासमभिहारे यट् ३।१।२२

प० वि०—घातो ५।१ एकाच् ५।१ हलादे ५।१ क्रियासमभिहारे
७।१ यट् १।१ स०—एकोऽच् यस्मिन् इति एकाच् (बहु०) तस्मात् । हल्
आदिर्यस्य इति हलात् (बहु०) तस्मात् । क्रियाया समभिहार क्रिया
समभिहार तस्मिन् ।

अर्थ—[चा] पौनपुन्य भृशार्थो वा क्रियासमभिहार । एकाच् चो
घातुर्हलादि तस्मात् क्रियाया समभिहारे चा यट् प्रत्ययो भवति ।

(एक अक्षर वाला घातु जो हलादि उससे क्रिया के बारम्बार या अधिक
होन में यट् प्रत्यय विकल्प से होता है)

उदा०—पापच्यते । यायज्यते । जाज्वल्यते । देदीप्यते ।

सि०—पुन पुन भृश वा पचति इति पापच्यते । हुपचप् पाके ।
पच् । पच् य । पच् पच् य । प पच् य । पा पच् य । पापच्य । पापच्य

१—सनाद्यन्ता घातव (३ १. ३२) मुपा घातुप्रातिपदिकस्यो (२ ४
७१) २—अभृत्सावघातुकया दीप (७ ४ २५) ३—अनुगतद्वित् भातनपदम्
(१. ३ १२) ४—द्वित् भातनपदाना टरे (३ ४. ७६)

लट् । पापच्य ल् । पापच्य त । पापच्य ते । पापच्य शप्ते । पापच्य
अ ते । पापच्यते ॥

जाज्वल्यते । ज्जल् यङ् । जाज्वल्यते । दीप् यङ् । दीप् य । दीप्
दीप् य । दी दीप् य । दि दीप् य । देदीप्य । देदीप्य लट् । देदीप्यते ।
सावनसूत्राणि तु 'न धातुलोप आर्धधातुक' इत्यत्र द्रष्टव्यानि ।

सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्म-

वर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् ३।१।२५

प० वि०—सत्याप-पाश रूप-वीणा तूल-श्लोक सेना-लोम त्वच-वर्म
वर्ण चूर्ण-चुरादिभ्य ५३ णिच् १।१ स०—सत्यापश्च पाशश्च रूप च
वीणा च तूलश्च श्लोकश्च सेना च लाम च त्वच च वर्म च वर्ण च
चूर्ण च चुरादयश्च इति सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालामत्वच-
वर्मवर्णचूर्णचुरादय, तेभ्य ।

अर्थ—सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म
वर्ण-चूर्ण-चुरादिभ्यो णिच् प्रत्ययो भवति ।

(सत्याप इत्यादि से णिच् प्रत्यय हाता है)

उदा०—सत्यापयति । × अर्थवेदसत्यानामापुग्वक्तव्य. × अर्था
पयति । वेदापयति । × आपुग्वचनसामर्थ्याद्विलोपो न भवति × पाशाद्-
विमोचने । निपाशयति । रूपादर्शने । रूपयति । वीणया उपगायति ।
उपवीणयति । तूलेन अनुकुप्णाति । अनुतूलयति । श्लोकैरुपस्तौति ।
उपश्लोकयति । सेनयाऽभियाति । अभिपेणयति त्वचं गृह्णाति ।
त्वचयति । अकारान्तस्त्वचशब्द । वर्मणा सनहति । सर्वर्मयति ।
चूर्णैरवध्यसयति । अवचूर्णयति । चुरादिभ्यो स्वार्थे । चोरयति, चिन्तयति ।

सि०—सत्यापयति । सत्यम् आचष्टे इति । सत्याप् णिच् । सत्याप्
इ । सत्यापि^१ । सत्यापि लट्^२ । सत्यापि ल् । सत्यापि तिप् । सत्यापि
शप्^३ तिप् । सत्यापि अ ति । सत्यापे^४ अ ति । सत्याप् अय्^५ अ ति ।
सत्यापयति । वेदापयति । अर्थोपयति । विपाशयति । विपाश णिच् ।

१—मनाद्यन्ता धातव (३ १. ३२) २—घातो (३ १ ६१) वर्तमान
लट् (३ २. १२३) ३—कर्त्तरि शप् (३ १ ६८) ४—सावंधातुकार्धधातु-
कयो (७ ६ ८४) अदेङ्गुणः (१. १. २) स्थानेऽन्तरतम (१. १ ४९)
५—एचोऽयवायाव (६. १ ७५)

विपाश् शिच् । विपाशि । विपाश् अय् अ निप् । विपाशयति ।
 अभिपेरयति । अभिमेता शिच् । अभिमेन् शिच् । अभिमेन् ट ।
 अभिमेनि । अभिपेनि^१ शप् निप् । अभिपेरयति । वर्मयति । वर्मन्
 शिच् । वर्म् शिच् । वर्मि । वर्मि शप् निप् । वर्मयति । चोरयति । चुर ।
 चूर् । चूर् शिच् । चोर् इ । चोरि । चोरि लट् । चोरि ल् । चोरि निप् ।
 चोरि ति । चोरि शप् ति । चोर् अय् अ ति । चोरयति ।

हेतुमति च ३।१।२६

प० वि०—हेतुमति ७।१ च अ० ।

अर्थ—हेतुरन्नि अन्व इति हेतुमन् तस्मिन् हेतुमति । न्यनन्व
 कर्तुः प्रयोजकः तृतीयो व्यापारः प्रेरणादिलक्षणे हेतुमान् तस्मिन्नि-
 धेये धातोः शिच् प्रत्ययो भवति ।

(स्वतन्त्र कर्ता के प्रेरक को हेतु कहते हैं । तथा प्रेरक का नेत्रना इत्यादि
 मक्षण वाता जो व्यापार करने हेतुमान् कहते हैं ऐसे प्रेरणा करने प्रथं में धातु
 में शिच् प्रत्यय होता है)

उदा०—ज्योतिःस्वरूपः निरुक्त पठति । युधिष्ठिरो मीमांसको ज्योतिः-
 स्वरूपं निरुक्तं पाठयति । ष्टाशुम्बुले वीरेन्द्रः महाभाष्यम् अर्थति ।
 आचार्यः ज्योतिःस्वरूपः वीरेन्द्रं महाभाष्यमभ्यासयति । युधिष्ठिरो वेदं
 अयगन्धति । महाशय्याकरणाः ब्रह्मदत्ताचार्याः युधिष्ठिरं वेदमयगम-
 यन्ति । त्रिस्तम्भमहाविद्यालये रघुनीरसिंहः वेदमपठन् । परिहृते जगदेव-
 सिंहः सिद्धान्ती रघुनीरसिंहं वेदमपाठयन् । जेमसिंहः कर्पटिकां
 पचति । प्रकाशवती जेमसिंहं कर्पटिकां पाचयति । × तत्प्रेरति तदाचष्टे
 इत्युत्पत्त्यानम् × पठुं करोति आचष्टे वा इति पठयति ।

सि०—पाठयति । पठ व्यन्तायां वाचि । पठ् । पठ् शिच् । पठ्
 इ । पाठि^१ । पाठि लट् । पाठि ल् । पाठि तिप् । पाठि शप् निप् । पाठि
 अ ति । पाठे अ ति । पाठ् अय् अ ति । पाठयति । अध्यापयति । अधि
 इह् अध्यापने । इ शिच् । आ^२ ट । आ पुङ्^३ ट । आपि । अधि आपि ।
 अध्यापि लट् । अध्यापि तिप् । अध्यापि शप् ति । अध्यापि अ ति ।
 अध्यापे अ ति । अध्यापय् अ ति । अध्यापयति ।

१—उत्पत्त्यानम् (८. ३. ६४) । २—एत उपायाः (७. २.) वृद्धिरादिच्
 (१. १. १) स्थानेऽपरतमः (१. १. ४६) ३—कीदृशीना ली (६. १. ४८)
 ४—पतिहोप्ली० (७. ३. ३६)

अवगमयति । गम्लृ सृष्टृ गतो । गम् । गम् णिच् । गम् इ ।
गामि^१ । गमि^२ । गमि लट् । गमि तिप् । गमि शप् ति । गमे अ ति ।
गमय् अ ति । गमयति । अवगयति ।

पाचयति । पच् णिच् । पाच् इ । पाचि तिप् । पाचि शप् तिप् ।
पाचय् अ ति । पाचयति ।

पटयति^३ । पटुं णिच् । पटु अम् णिच् । पटु णिच् । पटु इ । पट्
इ । पट् इ । पटि । पटि तिप् । पटि शप् तिप् । पटे अ ति । पट् अच् अ
ति । पटयति ।

कण्ड्वादिभ्यो यक् ३।१।२७

प० वि०—कण्डूरादिर्यपान्ते कण्ड्वादयः तेभ्यः (बहु०)

अर्थ—कण्ड्वादिभ्यो यक् प्रत्ययो भवति ।

(कण्डूज इत्यादि से यक् प्रत्यय होता है)

उदा०—कण्डूयति । कण्डूयते ।

सि०—कण्डूयति । कण्डूय् । कण्डू यक् । कण्डूय । कण्डूय
लट् । कण्डूय तिप् । कण्डूय शप् ति । कण्डूय अ ति । कण्डूयति ।
कण्डूय लट् । कण्डूय त । कण्डूय शप् त । कण्डूय त । कण्डूय ते ।
कण्डूयते ।

सनाद्यन्ता धातवः ३।१।३२

प० वि०—सनाद्यन्ताः १।३ धातवः १।३ स०—सन् आदिर्येषां ते
सनादयः । सनादयः प्रत्ययाः अन्ते येषान्ते सनाद्यन्ताः ।

अर्थ—सनाद्यन्ताः धातुसंज्ञाः भवन्ति ।

(सनादि हैं अन्त में जिस के ऐसे समुदाय की धातु संज्ञा होती है)

उदा०—चिकीर्षति । पुत्रीयति । पुत्रकाम्यति । पुत्रीयति छात्रम् ।
श्रेयायते । पयायते । पयस्यते । पापच्यते । सत्यापयति । चोरयति ।
पाठयति । अध्यापयति । कण्डूयति । कण्डूयते ।

विकरणप्रकरणम्

स्यतासी लृलुटो. ३।१।३३

प० वि० स्यतासी १।२ लृलुटोः ७।२ स०—स्यश्च तासिश्च इति
स्यतासी । लृ च लुट् च इति लृलुटौ (इतरे० द्वन्द्वः) तयोः ।

१—उत् उषधायाः (७. २. ११६) २—जनीजप्वनसुरञ्जो भ्रमन्ताश्च (धातु-
पाठे) मित्ता ह्रस्वः ६. ४. ६२) ३—समूत्रा साधनिका (१. १. ५६ द०)

अर्थ—लुटोः परतः धातोः स्यनासी प्रत्ययौ भवतः ।

(लृ मे लृट् श्रौर लृङ् दोनां का ग्रहण होता है । लृट् तथा लृङ् के परे रहने पर धानुमात्र के पश्चात् क्रमशः स्य श्रौर तासि प्रत्यय (विकरण) होते हैं)

उदा०—लृट्—भू । भविष्यति, भविष्यतः, भविष्यन्ति । भविष्यसि, भविष्यथः, भविष्यथ । भविष्यामि, भविष्यावः, भविष्यामः । एष वृद्धौ । एधिष्यते, एधिष्येते, एधिष्यन्ते । एधिष्यमे, एधिष्येथे, एधिष्यथ्वे । एधिष्ये, एधिष्यावहे, एधिष्यानहे । लृङ्—भू । अभविष्यन्, अभविष्यताम, अभविष्यन् । अभविष्यः, अभविष्यतम्, अभविष्यत । अभविष्यम्, अभविष्याव, अभविष्याम । एध—एधिष्यन्, एधिष्येताम । एधिष्यन्त । एधिष्यथाः, एधिष्येथाम्, एधिष्यध्वम् । एधिष्ये, एधिष्यावहि, एधिष्यामहि । लृट्—भू । भविता, भवितारो, भवितारः । भवितासि, भवितास्यः, भवितास्य । भवितास्मि, भवितास्यः, भविताम्मः । एध् । एधिता, एधितारो, एधितारः । एधितासे, एधितासाये, एधिताथ्वे । एधिताहे, एधितान्यहे, एधितास्महे ॥

सि०—भविष्यति ॥ भू । भू लृट्^१ । भू लृ । भू तिप् । भू स्य^२ तिप् । भू ट्^३ स्य तिप् । भू इ स्य ति । भो^४ ट् स्य ति । भव्^५ इ स्य ति । भवि स्य ति । भविष्यति^६ ॥ भविष्य ऋ । भविष्य अन्^७ इ । भविष्य अन्ति । भविष्यन्ति^८ । भविष्य मिप् । भविष्यसि । भविष्यथः । भविष्यथ । भविष्यामि । भविष्य मिप् । भविष्य मि । भविष्या^९ मि । भविष्यामि । भविष्यावः । भविष्याम^{१०} । एधिष्य न । एधिष्य ते^{११} । एधिष्यते । एधिष्य आताम् । एधिष्य आते^{१२} । एधिष्य ट्यन्ते^{१३} । एधिष्य इते^{१४} । एधिष्येते । एधिष्य ऋ । एधिष्य अन् । एधिष्य अन्ते । एधिष्यन्ते । एधिष्य थास् । एधिष्य मे^{१५} । एधिष्यमे ॥ एधिष्य आधाम् । एधिष्य आथे । एधिष्य ट्यथे । एधिष्य ट्ये । एधिष्येथे ।

१—लृट् णेपे च (३. ३. १३) २—स्यनासी लृटुटोः (३. १. ३३) ३—प्राधंधानुक्तस्वेड्वनादेः (७. २. ३५) प्राधानो टङितो (१. १. ४५) ४—माधंधानुकार्यधानुक्तयोः (७. ३. ८४) ५—एचोऽथवादावः (६. १. ७८) ६—टङितो (८. ३. ४६) आदेशप्रत्यययोः (८. ३. ५२) ७—अन्ते टुटो (९. १. २४) ८—अतो दीर्घो यत्रि (७. ३. १०१) ९—टिट् घास्मनेपदाना टेटे (३. ४. ७६) १०—धातो टितः (७. २. ८१) ११—तोतो व्योवन्ति (९. १. ६४) १२—यामस्मे (३. ४. ८०) घनेजानिन्नु सर्वस्य (१. १. ५४)

एधिष्य ध्वम् । एधिष्य ध्वे । एधिष्यध्वे । एधिष्ये । एधिष्य इट् ।
 एधिष्य ए । एधिष्ये । एधिष्य वहि । एधिष्य वहे । एधिष्या वहे
 एधिष्यावहे ॥ एधिष्य महिङ् । एधिष्य महि । एधिष्य महे । एधिष्या
 महे । एधिष्यामहे । भू लुङ्^१ । भविष्य ति । भविष्य त्^२ । भविष्यत् ।
 अट् भविष्यत् । अ भविष्यत् । अभविष्यत् । अभविष्य तस् । अभ-
 विष्य ताम् । अभविष्यताम् ॥ अभविष्य ऋि । अभविष्य अन्ति ।
 अभविष्य अन्त् । अभविष्य अन्त्^३ । अभविष्यन् ॥ अभविष्य
 सिप् । अभविष्य सि । अभविष्य स् । अभविष्यः । अभविष्य थस् ।
 अभविष्य तम् । अभविष्यताम् । अभविष्य थ । अभविष्य त । अभ-
 विष्यत । अभविष्य मिप् । अभविष्य मि । अभविष्य अम् । अभ-
 विष्य वस् । अभविष्य व । अभविष्याव । एधिष्य । एधिष्य त ।
 एधिष्य ते । एधिष्यते । आट्^४ एधिष्यते । आ एविष्यते । ऐ^५ धिष्यते ।
 ऐधिष्य आताम् । ऐधिष्य इयताम् । ऐधिष्य इताम् । ऐधिष्येताम् ।
 ऐधिष्य ऋ । ऐधिष्य अन्त । ऐधिष्यन्त । ऐधिष्यथाः । ऐधिष्य आथाम् ।
 ऐधिष्य इयथाम् । ऐधिष्य इथाम् । ऐधिष्येथाम् । ऐधिष्यध्वम् । ऐधिष्य
 इट् । ऐधिष्ये ।

भविता । भू लुट् । भू ल् । भू तिप् । भू तासि तिप् । भू तास् ति ।
 भू इट् तास् ति । भू इ तास् ति । भो इ तास् ति । भव् इ तास्
 ति । भवितास् ति । भवितास् डा । भवित् आ । भविता । भवितारौ ।
 भवितारः । भवितास् सिप् । भवितास सि । भविता^६ सि । भवितासि ।
 भवितास् थस् । भवितास्थः । भवितास्थ । भवितास् मिप् । भविता-
 स्मि, भवितास्वः । भवितास्मः ॥

एधिता । एधितारौ । एधितारः । एधितास् थास् । एधितास् से । एधिता
 से । एधितासे । एधितास् आथाम् । एधितास् आथे । एधितासाथे ।
 एधिनास् ध्वम् । एधितास् ध्वे । एधिताध्वे^७ । एधितास् इ । एधितास ए ।
 एधिताह्^८ ए । एधिताहे । एधितास् वहि । एधितास् वहे । एधितास्वहे ।

१—लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्ती (३. ३. १३६) २—इतश्च (३. ४. १००) ३—मयोगान्तस्य लोप (८. २. २३) ४—आडजादीनाम् (६. ४. ७२) ५—आद्यन्तो टकितौ (१. १. ४५) ६—आटश्च (६. १. ८७) ७—नायस्त्योर्लोपः (७. ४. ५०) ८—धि च (८. २. २५) ९—ह एति (७. ३. ५२)

सिञ्चद्वल लेटि ३।१।३४

प० वि०—मिन् १।१ बहुलम् १।१ लेटि ७।१

अर्थ—लेटि परतः घातोः बहुलं सिप् प्रत्ययो भवति ।

(लेट् के परे रहने पर घातुमात्र ने बहुल करके सिप् प्रत्यय (विकरण) होता है)

उदा०—भाविपति । भाविपाति । भाविपत् । भाविपान् । भाविपद् ।
भाविपाद् । भविपति । भविपाति । भविपत । भविपान् । भविपद् ।
भविपाद् । भवति । भवति । भवन् । भवात् । भवद् । भवाद् ॥१८॥

भाविपतः । भाविपातः । भविपतः । भविपातः । भवतः ॥ भवातः ॥१६॥

भाविपान्ति । भाविपान्ति । भाविपन् । भाविपान् । भविपन्ति । भवि-
पान्ति । भविपन् । भविपान् । भवन्ति । भवान्ति । भवन् । भवान् ॥१२॥

भाविपसि । भाविपासि । भाविपः । भाविपाः । भविपसि । भवि-
पासि । भविपः । भविपाः । भवसि । भवासि । भवः । भवाः ॥१२॥

भाविपथः । भाविपाथः । भविपथः । भविपाथः । भवथः ।

भवथः ॥१६॥

भाविपथ । भाविपाथ । भविपथ । भविपाथ । भवथ । भवाथ ॥१६॥

भाविपमि । भाविपामि । भाविपम् । भाविपाम् । भविपमि । भवि-
पामि । भविपम् । भविपाम् । भवमि । भवामि । भवम् । भवाम् ॥१२॥

भाविपवः । भाविपावः । भाविपव । भाविपाव । भविपवः । भवि-
पावः । भविपव । भविपाव । भववः । भवाव । भवव । भवाव ॥१२॥

भाविपमः । भाविपामः । भाविपम । भाविपाम । भविपमः । भवि-
पामः । भविपम । भविपाम । भवमः । भवामः । भवम । भवाम ॥१२॥

सि०—Xमिञ्चद्वलं सिट् यक्तव्यःX भाविपति । भू लेट् । भू
तिप् । भू सिप्^१ ति । भू स्^२ ति । भू ट्^३ स्^४ ति । भू ड्^५ स्^६ ति । भू^७ ड्^८
स्^९ ति । भाविम्^१ ति । भाविप्^२ ति । भाविप्^३ अट्^४ ति । भाविप्^५ अ नि ।
भाविपति । भाविप्^६ आट्^७ ति । भाविपाति । भाविप^८ अट्^९ न्^{१०} । भाविपन ।

१—लिट्के लेट् (३. ४. ७) २—मिञ्चद्वल लेटि (.. १ ३४) ३—
घाघंघानुक्त्वेद्वलान्तेः (७. २. ३४) ४—मिञ्चद्वल सिट् यक्तव्यः (वा०)
स्योर्प्रत्ययति (७. २. ११५) कृदित्वादिप् (१. १. १) स्यानेऽपरतमः) १.१.४६)
५—इणो (८. ३. ५७) घाघेनप्रत्यययोः (८. ३. ५६) ६—गेटोःशटो (३. ४.
६४) घाघन्तो टन्तो (१. १. ४५) ७—इत्यस्य मोन. परस्मैपदेषु (३.४.६७)

भाविप् आट् ति । भाविप् आ त् । भाविपात् । भाविपट्^१ । भाविपाट् ।
 भविपति । भू इट् सिप् तिप् । भो^२ इ स् ति । भव् इ स् ति । भविप्
 ति । भविप् अट् ति । भविपति । भू इट् सिप् आट् ति । भविपाति ॥
 भवति । भू शप् अट्^३ तिप् । भू अ अ ति । भो अ अ ति । भव् अ
 अ ति । भवति । भू शप् आट् तिप् । भव् अ आ ति । भवाति ॥ भावि-
 पवः । भू इट् सिप् अट् वस् । भाविप् अ वस् । भाविपवः । भू इट्
 सिप् आट् वस् । भाविपावः । भाविपव^४ । भाविपाव ॥ एवं सर्वत्र
 सूत्रपूर्वकं साधनीयम् ॥

कासप्रत्ययादाममन्त्रे लिटि ३।१३५

प० वि०—कासप्रत्ययात् ५।१ आम् १।१ अमन्त्रे ७।१ लिटि ७।१
 स०—काश्च प्रत्ययश्च इति कासप्रत्ययम् (समा० द्वन्द्वः) तस्मात् । न
 मन्त्रः अमन्त्रः (नञ् तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—कासधातो प्रत्ययन्ताच्च धातोरात् प्रत्ययो भवति लिटि
 प्रत्यये परतः । (कामृ द्वाद कुत्सायाम तथा प्रत्यय है अन्त में जिसके ऐसे
 धातुधो से धम् प्रत्यय होता है लिट् के परे रहने पर)

उदा०—कासाञ्चक्रे, कासाञ्चक्राते, कासाञ्चकिरे । कासाञ्चकृपे,
 कासाञ्चक्राथे, कासाञ्चकृद्वे । कासाञ्चक्रे, कासाञ्चकृवहे, कासाञ्च-
 कृमहे । प्रत्ययान्तात्—लोलूयाञ्चक्रे, लोलूयाञ्चक्राते, लोलूयाञ्चकिरे ।
 लोलूयाञ्चकृपे, लोलूयाञ्चक्राथे, लोलूयाञ्चकृद्वे । लोलूयाञ्चक्र, लोलू-
 याञ्चकृवहे, लोलूयाञ्चकृमहे ॥

सि०—कासाञ्चक्रे । कास् । कास् लिट् । कास् आम् लिट् । कास्
 आम् लि । कास् आम् । कासाम् कृब् लिट् । कासाम् कृ णल् । कासाम्
 कृ कृ त । कासाम् क कृ त । कासाञ्च कृ त । कासाम् च कृ एश् ।
 कासाम् च कृ ए । कासाम् चक्रे । कासां^५ चक्रे । कासाञ्चक्रे^६ । कासा-
 ञ्चकृ आताम् । कासाञ्चकृ आते । कासाञ्चक्राते^७ । कासाञ्चकृ

१—भला जशोज्ते (८. २. ३६) २—एिदभावपक्षे सावंधातुकार्धधातुकयो
 (७. ३. ८४) ३—कर्त्तरि णप् (३. १. ६८) ४—त उत्तमस्य (३. ४. ६८)
 ५—एतेषां साधकानि सूत्राणि धाम्प्रत्ययवदिति सूत्रे द्रष्टव्यानि विशेषस्तु
 नश्चापदान्तरस्य भलि (८. ३. २४) ६—लेखुंकि प्रातिपदिकज्ञा तत सु,
 मन्तत्वादव्ययमज्ञा, सोलुंक्, पदसज्ञा, वा पदान्तास्य (८. ४. ५८) ७—इको
 यणचि (६. १. ३४)

म् । कासाञ्चकृ इरेच्^१ । कासाञ्चकृ इरे । कासाञ्चकिरे ॥
कासाञ्चकृ थास् । कासाञ्चकृ से । कासाञ्चकृ पे । कासाञ्चकृपे ।
कासाञ्चकृ ध्वे । कासाञ्चकृ ट्वे^२ । कासाञ्चकृट्वे ।

लोलूयाञ्चके । लून् । लू । लू यङ् । लू लू यङ् । लो लू य ।
लोलूय । लोलूय लिट् । लीलूय आम् लि । लोलूय आम् । लोलूयाम्
चके । लोलूया चके । लोलूयाञ्चके ॥

इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छ ३।१।३६

प० वि०—इजादे ५।१ च अ० । गुरुमत ५।१ अनृच्छ ५।१ स०—
इच् आदिर्यस्य स इजादि (बहु०) तस्मान् । गुरुर्गो विद्यते अस्मिन्
स गुरुमान् तस्मिन् । न ऋट् अनृट् तस्मात् (नक्त् तपु०)

अर्थ—[अमन्त्रे लिटि] इजादियों धातुगुरुस्मान् ऋच्छतियर्जित-
स्तस्मान्च लिटि परत आम्प्रत्ययो भवति अमन्त्रे ।

(इच प्रत्याहार में घाने वाला कोई वरुण आदि में है जिसके ऐसे गुरु वरुण
वाले धातु से लिट् क परे रहन पर आम् प्रत्यय होता है, ऋच्छ धातु को छोड़
कर अमन्त्र में)

उदा०—एधाञ्चके । इन्धाञ्चकार ।

एधाञ्चके । एध् । एध् लिट् । एध् आम् लिट् । एध् आम् । एधाम्
कृ लिट् । एधाम् चके । एधां चके । एधाञ्चके ।

इन्धाञ्चकार । इधि परमेश्वर्ये । इदि । इ नुम् ङ् । इन्द् लिट् । इन्द्
आम् लिट् । इन्द् आम् । इन्धाम् कृ लिट् । इन्धाम् कृ णल् । इन्धाम्
कृ कृ अ । इन्धाम् क कृ अ । इन्धाम् च कृ अ । इन्धाम् च कार अ ।
इन्धाम् चकार । इन्धां चकार, इन्धाञ्चकार ।

वृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि ३।१।४०

प० वि०—वृञ् १।१ च अ० । अनुप्रयुज्यते । क्रिया० । लिटि ७।१
अर्थ—परचादर्थे अनु । आम्प्रत्ययस्य परचात् वृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि
परत । (आम् प्रत्यय क परचात् वृञ् का अनुप्रयोग हाना है लिट् के परे
रहन पर)

उदा०—कृञ् इति प्रत्याहारग्रहण, तेन वृ-भू-अस्तयो पृथगन्ते,
तस्मान्ध्यांस्ते भूर्भोगो न भवति ॥३॥

१—लिट्प्रत्ययपरिचर (३ ४ ८१) अनकालितमवस्य (१. १ ५४)

२—इण वोध्वलुल्लिता० (८ ३ ७८) ३—इन्ति नुम् धातोः (७. १. ५८)

च्ले सिच् ३।१।४४

प० वि०—च्ले ६।१ सिच् १।१

अर्थ—च्ले स्थाने सिजादेशो भवति । (च्लि के स्थान में सिच् आदेश होता है)

उदा०—अभूत् । अभूताम् । अभूवन् । अभू । अभूतम् । अभूत । अभूवम् । अभूव । अभूवम् ।

ऐधिष्ट । ऐधिषाताम् । ऐधिषत । ऐधिष्टा । ऐधिषाम् । ऐधिषम् । ऐधिषि । ऐधिष्वहि ऐधिष्महि ॥

सि०—अभूत् । भू लुङ् । भू ल् । भू तिप् । भू सिच् ति । भू ति । भू न् । अट् भू त् । अभून् । अभू तस् । अभ ताम् । अभूताम् । अभू म्फि । अभू अन्ति । अभू वुन् अन्ति । अभूव् अन्न । अभूवन् । अभूवन् । अभूवम् । अभूव ॥

साधकानि सूत्राणि गतिस्थायुषामभ्य (२।४।७७) इत्यत्र द्रष्टव्यानि ।

शल इगुपधादनिट क्स ३।१।४५

प० वि०—शल ५।१ इगुपधान् ५।१ अनिट ५।१ क्स १।१ स०—इक् उपधाया यस्य स इगुपध (वह०) तस्मान् । न विद्यते इट् यस्मान् सोऽनिट (वहु०) तस्मान् ।

अर्थ—[च्ले] शलन्तो यो धातुरिगुपध अनिट्च तस्मात् परस्य च्ले स्थाने क्स आदेशो भवति । (एन प्रत्याहार में धान वाला बाद वण है अत में जिसके एसा जो इक् उपधावाला अनिट घाट्ट उमके पश्चान च्लि के स्थान में क्म आदेश होता है)

उदा०—अधुक्तन्, अधुक्ताम्, अधुक्तन् । अधुक्त, अधुक्तम्, अधुक्तत । अधुक्तम्, अधुक्ताय, अधुक्ताम् ।

सि०—अधुक्तत् । दुह प्रपूरणे । दुह लुङ् । दुह् तिप् । दुह् ति । दुह् च्लि ति । दुह् क्स ति । दुह् म ति । दुघ् स ति । धुक् स ति । धुक् प ति । धुक् प त् । अद् धुक्पत् । अधुक्पत् । अधुक्तत् ॥ अधुक्त

१—दादपानाय (८ २ ३२) २—सरिच (८ ४ ५४) एतावो बगा भप् भपत्स्य र्ध्वा (८ २ ३७) ३—घादेशप्रत्यया (८ ३ ४६)

तस् । अधुच् ताम् । अधुच्ताम् । अधुच्ताय । अधुच्त वस् । अधुच्त
व । अधुच्ता व । अधुच्ताव ।

णिश्चिद्रुसुभ्य कत्तरि चङ् ३।१।४६

प० वि०—णिश्चिद्रुसुभ्य २।३ कत्तरि ७।१ चङ् १।१ स०—णिश्च
श्चिश्च द्वरच स्रश्च इति णिश्चिद्रुसुव (इतरे० द्वन्द्व) तेभ्य ।

अर्थ—[च्ले] एय-तेभ्यो धातुभ्य शिद्रुसु इत्येतेभ्यश्च परस्य
च्लेश्चङादेशो भवति कर्त्वाचिनि लुङि परत ॥ (णिश्च है प्रत में
जिसके एने धातु से तथा शि द्रु सु इन धातुओं के पश्चात् कर्त्वाची लुङ क
पर रहने पर च्लि क स्थान में चङ् आदेश होता है)

उदा०—कारयति । अचीकरत्, अचीकरताम्, अचीकरन् । अची
कर । अचीकरतम्, अचीकरत । अचीकरम्, अचीकराय, अचीकराम ।

अशिश्चियत्, अशिश्चियताम्, अशिश्चियन् । अशिश्चिय, अशि-
श्चियतम्, अशिश्चियत । अशिश्चियम्, अशिश्चियाव, अशिश्चियाम ।

अदुद्रवत्, अदुद्रवताम्, अदुद्रवन् । अदुद्रव, अदुद्रवतम्, अदु-
द्रवत । अदुद्रवम्, अदुद्रवाव, अदुद्रवाम ।

असुस्रुवत् । असुस्रुवताम् । असुस्रुवन् । असुस्रुव । असुस्रु-
वतम् । असुस्रुवत । असुस्रुवम् । असुस्रुवाव । असुस्रुवाम ।

सि०—अचीकरत् । इहृव् । कृ णिच्^२ । कृ इ । कार^३ इ । कारि ।
कारि लुङ । कारि ल् । कारि तिप् । कारि चङ्^४ तिप् । कारि च तिप् ।
कारि अ ति । करि अ^५ ति । कर् अ^६ ति । कर् व् अ^७ ति ।

क कर् अ ति । च कर् अ ति । चि^८ कर् अ ति । ची^९ कर् अ ति ।
ची कर् अ त् । चीकरत् । अट् चीकरत् । अचीकर तस् । अचीकर
ताम् । अचीकरताम् । अचीकर मि । अचीकर अन्ति । अचीकर अन्त् ।

१—तस्यस्यमिषा तान्ताताम् (३ ४ १०१) यथासक्यमनुदेश समाताम् (१
३ १०) २—हेतुमति च (३ १ २६) ३—अघो ज्झिति (७ २ १०५)
वृद्धिरादेच (१ १ १) स्थानन्तरतम (१ १ ४६) उरण् रपर (१ १ ५०)
४—णिश्चिद्रुसुभ्य कत्तरि चङ् (३ १ ४६) ५—णो चङ्युपधाया ह्रस्व
(७ ४ १) ६—आधधातुक शप (३ ४ ११३) सार्वनाटि (६ ४ ५१)
७—चङि (६ १ ११) ८—सवल्लघुनि० (७ ४ ६३) ९—दीर्घो लघो

अचीकर अन् । अचीकरन् । अचीकर सिप् । अचीकर सि । अचीकर
स् । अचीकरः ।

अशिथियत् । शिञ् । शि । शि लुङ् । शि ल् । शि तिप् । शि चङ्
तिप् । शि अ ति । शियङ् अ ति । शिय अ ति । शिय अ ति ।
शिय् शिय् अ ति । शि शिय् अति । शि शिय् अत् । शिशियत् ।
अट् शिशियत् । अशिथियत् । अशिथियताम् । अशिथिय तस् । अशि-
थिय ताम् । अशिथियताम् । अदुद्रवत् । द्र लुङ् । द्रु ल् । द्रु तिप् । द्रु
चङ् तिप् । द्रु अ ति । द्रु वङ् अ ति । द्रुव् अ ति । द्रुव् द्रुव् अ ति । द्रु
द्रुव् अ ति । द्रु द्रुव् अ त् । दुद्रवत् । अट् दुद्रवत् । अदुद्रुवत् । अमु-
स्रुवत् । स्रु । स्रु लुङ् । स्रु ल् । स्रु तिप् । स्रु चङ् ति । स्रु अ ति ।
स्रुवङ् अ ति । स्रुव् अ ति । स्रुव् स्रुव् अ ति । मु स्रुव् अ ति ।
मुस्रुवत् । अट् मुस्रुवत् । असुस्रुवत् ।

अस्यतिवकितस्यातिभ्योऽङ् ३।१।५२

प० वि०—अस्यतिवकितख्यातिभ्यः ५।३ अङ् १।१

स०—अस्यतिश्च वक्तिश्च ख्यातिश्च इति अस्यतिवक्तिख्यातय,
तेभ्यः ।

अर्थ—[च्लेः कर्त्तरि लुङि] अमु क्षेपणे, वच परिभाषणे, व्रू वादेशो
वा, ख्या प्रकथने चक्षिडादेशो वा इत्येतेभ्यो धातुभ्यः च्लेरडादेशो भवति
कर्त्वाचिनि लुङि परतः । (अमु, वच और ख्या धातुओं के पश्चात् कर्त्ता-
वाची लुङ् के परे रहने पर च्लि के स्थान में अङ् प्रादेश होता है)

उदा०—अस्यतेः पुपादिपाठादेवाङि सिद्धे पुनर्प्रहणमात्मनेपदार्थम् ।
× उपसर्गादस्वत्यृहोर्वा वचनम् × (१. ३. ४६) पर्यास्थत, पर्यास्थेताम्,
पर्यास्थन्त । पर्यास्थथाः, पर्यास्थेथाम्, पर्यास्थध्वम् । पर्यास्थे, पर्यास्थावहि,
पर्यास्थामहि । वक्ति ॥ अवोचत्, अवोचताम्, अवोचन् । अवोचः,
अवोचतम्, अवोचत । अवोचम्, अवोचाव, अवोचाम । ख्याति ।
आख्यत्, आख्यताम्, आख्यन् । आख्यः, आख्यतम्, आख्यत ।
आख्यम्, आख्याव, आख्याम् ॥

सि०—परि अमु । परि अस् लुङ् । परि अस् ल् । परि अस् ठ ।

परि अस् च्लि त । परि अस् अङ् त । परि अस् थुक्^१ अङ् त । परि अस् थ् अ त । परि अस्थत । परि आट् अस्थत । परि आ अस्थत । पर्यास्थत । अवोचत् । वच् लुङ् । वच् ल् । वच् तिप् । वच् अङ् ति । व उम् च्^२ अ ति । वउ च् अ ति । वोच ति । वोचत् । अट् वोचत् । अवोचत् । आरयत् । आङ् रया । आरया लुङ् । आरया ल् । आख्या तिप् । आख्या अङ् तिप् । आख्या अ तिप् । आरय^३ अ ति । आख्य् अ त् । आरयत् । आ आट् ख्यत् । आ आ ख्यत् । आरयत् । आरय-तम् । आख्य तस् । आख्यतम् ॥

पुपादिद्युताद्यलृदित परस्मैपदेषु ३।१।५५

प० वि०—पुपादिद्युताद्यलृदित ५।१ परस्मैपदेषु ७।३ स०—पुप आदि येषान्ते पुपादय ॥ द्युत आदि येषां ते द्युतादय ॥ लृत् इत् यस्य सोऽयम् लृदित् । पुपादयश्च द्युतादयश्च लृदिच्च इति पुपादिद्युताद्यलृदित् (सर्मा० द्वन्द्व) तस्मात् ॥

अर्थ—[च्ले अङ् कर्त्तरि लुङि] पुपादिभ्यो द्युतादिभ्य लृदिद्-भ्यश्च धातुभ्य परस्य च्लेरडादेशो भवति लुङि कर्त्वाचिपरस्मैपदेषु परत ॥ पुप आदि में है जिनके ऐसे द्युत आदि में है जिनके ऐसे तथा लृकार इत् वाले धातुओं के पश्चात् कर्त्वाची लुङ परस्मैपद के परे रहने पर 'च्लि' के स्थान में 'अङ्' आदेश होता है)

उदा०—पुपादयो दिवादिस्था गृह्यन्ते न भ्वादिस्था । पुपादि—अपु पत्, अपुपताम्, अपुपन् । अपुप, अपुपतम्, अपुपत । अपुपम्, अपुपाव, अपुपाम ॥ द्युतादि—अद्युतत्, अद्युतताम्, अद्युतन् । अद्युत, अद्युततम्, अद्यतन् । अद्युतम्, अद्युताव, अद्यताम् । लृदित्—अगमत् अगमताम्, अगमन् । अगम, अगमतम्, अगमत । अगमम्, अगमाव, अगमाम ॥

सि०—पुप । पुप् । पुप् लुङ् । पुप् ल् । पुप् तिप् । पुप् च्लि तिप् । पुप् अङ् ति । पुप् अ ति । पुप्^४ अत् । पुपत् । अट् पुपत् । अपुपत् । (एव सर्वत्र)

१—अस्यतेऽथुक् (७. ४. १७) आद्यन्तो टकितो (१. १. ४५) २—वच उम् (७. ४. २०) ३—धातो लोप इटि च (६. ४. ६४) ४—पुगन्तल्लपुपधस्य च (७. ३. ८६) क्ति च (१. १. ५)

‘डरितो वा ३।१।५७

प० वि०—डरितः ५।१ वा अ० । म०—इच्च रच्च इति डरी । इच्च इच्च इति डती । डरी डती यम्य मोऽयन् डरिन् (बहु०) तस्मात्

अर्थ—[च्लेः लुङि परस्मैपदेषु] डरितो घातोः परस्य वा च्लेरडादेशो भवति लुङि कर्तृवाचिपरस्मैपदेषु परतः ॥ (इत् है इत् जिमका ऐसे घानुघो के परवान् कर्तावाची गुट् परस्मैपद के परे रहने पर च्लि के स्थान में विकल्प में अट् आदेश होता है)

उदा०—अडि । भिडिर्—अभिदत् , अभिदताम्, अभिदन् । अभिदः, अभिदतम्, अभिदत । अभिदम्, अभिदान, अभिदाम ॥ मिचि । अभैत्सीन्, अभैत्ताम्, अभैत्सुः । अभैत्सीः, अभैत्तम्, अभैत्त । अभैत्नम्, अभैत्त्व, अभैत्सम् । छिडिर्—अच्छिदत्, अच्छिदताम्, अच्छिदन् । अच्छिदः, अच्छिदतम्, अच्छिदत । अच्छिदम् । अच्छिदान, अच्छिदाम ॥ चट्—अच्छैत्सीन्, अच्छैत्ताम्, अच्छैत्सुः । अच्छैत्सीः, अच्छैत्तम्, अच्छैत्त । अच्छैत्सम्, अच्छैत्त्व, अच्छैत्सम् ॥

सि०—भिडिर् । भिड् । भिड् लुङ् । भिड् तिप् । भिड् न्लि तिप् । भिड् अट् ति । भिड् अ ति । भिड् अ ति । भिड् अ त । भिदत् अट् भिदत् । अभिदत् । भिड् लुङ् । भिड् तिप् । भिड् च्लि तिप् । भिड् सिच् तिप् । भैद् स् तिप् । भैद् स् न । भैद् स् इट्^१ त् । भैन्^२ स् इत्^३ त् । भैत्सीन् । अट् भैत्सीन् । अभैत्सीन् । अभैत्ताम् । अभैन् स् तम् । अभैन् स् तान् । अभैन्^४ तान् । अभैत्ताम् । अभैत्सुः । अभैत्सुम् । अभैत्सुम् । अभैत्सुम् । अभैत्सुः ॥

चिण् ते पदः ३।१।६०

प० वि०—चिण् १।१ ते अ१ पदः ५।१
अर्थ—[च्लेः लुङि कर्त्तरि] पद गतोः इत्यन्माद् घातोः परस्य कर्त्तृवाचि लुङि लृङ्देशे परतः च्लेरिन्सुदेशो भवति । (एत् घानु के परवान् कर्तावाची गुट् घातमनेपद त प्रचय के परे रहने पर च्लि के स्थान में चिण्

१—मिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु (उ. २. १) २—अट् एकत्रयसः (१. २. ४१) ३—गदि च (द. ४. ४४) ४—अतो ऋति (द. २. २६)

घ्रादेश होता है)

उदा०—उदपादि सस्यम् । प्रापादि विद्या ब्राह्मणः । उदपादि, उद-
पत्साताम्, उदपत्सत ।

सि०—उदपादि । उद् पद् । उप् पद् । उद् पद् लुङ् । उद् पद् ल् ।
उद् पद् त । उद् पद् चित्त त । उद् पद् चिण् त । उद् पद् चिण् ।
उद् पद् इ । उपाद् इ । उद् पादि । उद् अट् पादि । उद् अ पादि ।
उदपादि ॥

अच कर्मकर्त्तरि ३।१।६२

प० वि०—अच १।१ कर्मकर्त्तरि ७।१

अर्थ—[चिण् ते अन्यतरस्याम्] अजन्ताद् धातो परस्य च्ले स्थाने
कर्मकर्त्तरि तप्रत्यये परत विकल्पेन चिण् आदेशो भवति । (अजन्त धातु
के पश्चात् ज्लि क स्थान में कर्मकर्ता त प्रत्यय क परे रहन पर विकल्प से
चिण् घ्रादेश होता है)

उदा०—कर्त्तरि—देवदत्त कट करोति । कर्मकर्त्तरि—अकृत वा
अकारि कट स्वयमेव । कर्त्तरि—देवदत्त केदारं लुनाति । कर्मकर्त्तरि—
अलावि केदार स्वयमेव । अलविष्ट केदार स्वयमेव ॥

सि०—अकारि । कृ लुङ् । कृ ल् । कृ चिण् त । कृ इ त । कार् इ
त । कारि । अट् कारि । अकारि । अकृत । कृ लुङ् । कृ त । कृ सिच्
त । कृ^३ सिच् त । कृ स् त । कृ^४ त । अट् कृत । अकृत ॥ अलावि ।
लूङ् । लू लुङ् । लू ल् । लू त । लू चिण् त । लौ इ त । लावि त ।
लावि । अट् लावि । अलावि । अलविष्ट । लू लुङ् । लू ल् । लू त । लू
सिच् त । लू इट् स त । लो इ स त । लविप् त । लविष्ट । अट्
लविष्ट । अलविष्ट ॥

चिण् भावकर्मणो ३।१।६६

प० वि०—चिण् १।१ भावकर्मणो ७।२ स०—भावश्च कर्म च
इति भावकर्मणी तयो ।

अर्थ—[च्ले लुङि] धातो परस्य च्लेश्चिणादेशो भवति भावे

१—चिणो लुक् (६. ४ १०४) २—अत उपधाया (७ २ ११६)

३—सावधातुकाधधातुत्वयो (७ ३ ८४) उश्च (१ २ १२) विडिति च (१.०

१. ५) ४—ह्रस्वादङ्गात् (८ २ २७)

कर्मणि च लुङि तप्रत्यये परतः ॥ (घातु के पदवात् चिञ् के स्थान में विल्ल प्रादेश होता है भाव और कर्म विषयक लुट् में आत्मनेपद त प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—भावे लुङि—अशायि देवदत्तेन । कर्मणि लुङि—अपाठि वेदः देवदत्तेन ॥ × कर्मापदिष्टाः विधयः कर्मकर्त्तर्यपि भवन्ति × कर्मणि लटि—देवदत्तेन काष्ठं मिश्रते । कर्मकर्त्तरि लुङि—अमेदि काष्ठं म्ययमेव ॥

सि०—अशायि । शीङ् । शी लुट् । शी त । शी चिण् त । शै इ त । शाय् इ त । शायि । अट् । शायि । अशायि । अपाठि । पठ । पठ् लुङ् । पठ् ल् । पठ् त । पठ् चिण् त । पाठ् इ त । पाठ् इ । पाठि । अट् पाठि । अपाठि ॥ अमेदि ॥ मिदिरि । मिद् । मिद् लुङ् । मिद् ल् । मिद् त । मिद् चिण् त । मिद् इ त । भेद् इ त । भेदि । अट् भेदि । अमेदि ॥

सार्वधातुके यक् ३।१।६७

प० वि०—सार्वधातुके ७।१ यक् १।१

अर्थ—[भाक्कर्मणोः] भाक्कर्मवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः धातोर्यक् प्रत्ययो भवति । (भाव और कर्मवाची सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहने पर धातु से यक् प्रत्यय होता है)

उदा०—कर्त्तरि लटि—देवदत्तः आस्ते । भावे लटि—आग्नये देवदत्तेन । कर्त्तरि लटि—देवदत्तः ओदनं पचति । कर्मणि लटि—पच्यते ओदनः देवदत्तेन । × कर्मकर्त्तर्यपि कर्मापदिष्टो यक् भवति × कर्त्तरि लटि—देवदत्तः काष्ठं लुनाति । कर्मणि लटि—काष्ठं लूयते देवदत्तेन । कर्मकर्त्तरि लटि—लूयते काष्ठं म्ययमेव ॥

सि०—आस्यते । आम् लट् । आम् ल् । आम् त । आस् यक् त । आस्यत । आस्यते ॥ पच्यते । डुपचप् । पच् लट् । पच् ल् । पच् त । पच् यक् त । पच्यत । पच्यते ॥ लूयते । लूञ् लट् । लू ल् । लू त । लू यक् त । लूयत । लूयते ॥

कर्त्तरि शप् ३।१।६८

प० वि०—कर्त्तरि ७।१ शप् १।१

अर्थ—[सार्वधातुके] कर्त्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः धातोः शप् प्रत्ययो (विकरणः) भवति ॥ (कर्त्तावाची सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहने पर धातु से शप् प्रत्यय होता है)

उदा०—भवति । पचते । पारयति । चिकीर्षति । पापच्यते ।

सि०—भवति । भू लट् । भू ल् । भू तिप् । भू शप् तिप् । भू अ
ति । भो अ ति । भवति । एधते । एध् । एध् लट् । एध ल् । एध त ।
एध शप् त । एध् अ त । एध् अ ते । एवते ॥

चोरयति । चूर् । चूर् णिच् । चूर् इ । चोरि । चोरि लट् । चोरि
ल् । चोरि ति । चोरि शप् ति । चोरि अ ति । चोरे अ ति । चोरय् अ
ति । चोरयति ।

पापच्यते । पच् यङ् । पच् य । पच् पच् य । प पच् य । पा' पच् य ।
पापच्य शप् त । पापच्य अ त । पापच्यत । पापच्यते ॥

दिवादिभ्यः श्यन् ३।१।६६

प० वि०—दिवः आदिर्चेपान्ते दिवादयः तेभ्यः ।

अर्थ—[सार्वधातुके कर्त्तरि शप्] दिवादिभ्यो धातुभ्यः शपः स्थाने
श्यन् प्रत्ययो भवति कर्त्तृवाचिसार्वधातुके प्रत्यये परतः ।

(कर्त्तावाची सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहने पर दिव है आदि में जिसके
ऐसे धातुओं से शप् के स्थान में श्यन् प्रत्यय होता है)

उदा०—दीव्यति, दीव्यतः, दीव्यन्ति । दीव्यसि, दीव्यथः, दीव्यथ ।
दीव्यामि, दीव्यावः, दीव्यामः ।

सि०—दिवु । दिव् लट् । दिव् तिप् । दिव् ति । दिव् श्यन् ति ।
दिव् यं ति । दीव्^२ य ति । दीव्यति ॥

स्वादिभ्यः श्नु. ३।१।७३

प० वि०—स्वादिभ्यः ५।३ श्नुः १।१ स०—सुः आदिर्चेपां ते स्वादयः
तेभ्यः ।

अर्थ—[सार्वधातुके कर्त्तरि शप्] कर्त्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये
परतः स्वादिभ्यो धातुभ्यः शपः स्थाने श्नुप्रत्ययो भवति ।

(कर्त्तावाची सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहने पर सु इत्यादि धातुओं के
पश्चात् शप् स्थान में श्नु प्रत्यय होता है)

उदा०—सुनोति, सुनुतः, सुन्वन्ति । सुनोपि, सुनुथ, सुनुथ ।
सुनोमि, सुनुवः, सुन्वः, सुनुमः, सुन्म ॥

सि०—पुञ् । पु । सु^३ लट् । सु ल् । सु ति । सु श्नु^४ ति । सु नु

१—दीर्घोऽकित. (७. ४. ८३) २—हलि च (८. २ ७७) ३—पात्वादिः
पः सः (६. १. ६२) ४—स्वादिभ्यः श्नु (३. १. ७३)

ति । मु नो^१ ति । मु^२ नोति । मुनुत । मु न्नु^३ तम् । मुनु अन्ति ।
मुन्नन्ति^४ । मुनुतः । मुन्नः^५ । मु नु वस् । मु न् वम । मुन्वः ॥

श्रुव शृ च ३।१।७८

प० वि०—श्रुवः ६।१ शृ । १ । १ नपुंसकनिर्देश । च अ० ।

अर्थ—[सार्वधातुके कर्त्तरि शप्] श्रु श्रवणे इत्यस्माद् धातो परम्य
शत. स्थाने कर्त्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परतः श्रुविचरणो
भवति, तत्संनिधौनेन ध्रुवः शृ इत्ययमादेशो भवति । (श्रु धातु के
पदवाच्य कर्त्तावाचो मार्गधातुके प्रत्यय के परे रहने पर शप् के स्थान
में श्रु विचरण होता है और उसके समीप में श्रु धातु के स्थान में शृ आदेश
होता है)

उदा०—शृणोति । शृणुतः । शृण्वन्ति ।

तुदादिभ्यः श ३।१।७७

प० वि०—तुदादिभ्यः ५।३ श. १ । १ सि०—तुदः आदिर्येषां ते
तुदादयः तेभ्यः ।

अर्थ—[सार्वधातुके कर्त्तरि शप्] कर्त्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये
परतः तुदादिभ्यो धातुभ्यः शपः स्थाने शविचरणो भवति ।

(कर्त्तावाचो मार्गधातुके प्रत्यय के परे रहने तुद इत्यादि धातुओं के पदवाच्य
शप के स्थान में श विचरण होता है)

उदा०—तुदति, तुदतः, तुदन्ति । तुदसि, तुदथः । तुदथ । तुदामि,
तुदावः, तुदामः ।

सि०—तुदति । तुद् लट् । तुद् तिप् । तुद शप् ति । तुद अ
ति । तुद्^१ अ त । तुदति । तुद अ अन्ति । तुदन्ति ।

रधादिभ्यः दनम् ३।१।७८

प० वि०—रधादिभ्यः ५।३ दनम् १।१ स०—रुः आदिर्येषान्ते
रधादयः तेभ्यः ।

अर्थ—[सार्वधातुके कर्त्तरि शप्] कर्त्तृवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये

१—सार्वधातुकार्थधातुवयो (७. ३. ८४) २—सार्वधातुकार्थधातुवयोः इति
प्राप्ते—सार्वधातुकार्थवित् (१. २. ४) विडति च (१. १. ५) इति गुणस्य
निषेध ३—दन्तुवो (६. १. ८०) ४—लौगन्वास्यान्वतरस्या र्वोः (६. ४.
१०७) ५—पुणन्तत्पूर्वपस्य (१. २. २४) विडति च ।

परत रुगान्भ्यो धातुभ्य शप् स्थाने श्नम् विकरणो भवति ।

(कर्त्तावाची सावधातुक प्रत्यय के पर रहन पर ह्य इत्यादि धातुओं से शप् के स्थान में श्नम् विकरण होता है)

उदा०—रुणद्धि, रुध रुद्ध, रुन्वन्ति । रुणत्सि, रुन्ध, रुन्ध । रुणभि, रुन्ध, रुन्धम् । रुन्धे, रुन्धाते, रुन्धते । रुन्से, रुन्धये, रुन्धे । रुन्धे, रुन्धहे, रुन्धहे ॥

सि०—रुधिर । रुध् । रुध् लट् । रुध् लृ । रुध् तिप् । रुध् ति । रु श्नम् ध् ति । रुनध् ति । रुणध् ति । रुणध् धि^३ । रुणद्धि^४ धि । रुणद्धि । रुन्ध । रुध् । रुध् लट् । रुध् तस् । रु श्नम् ध् तस् । रुन ध् तस् । रुन्ध^५ ध् तस् । रुन्ध धस् । रुन्ध^६ धस्, रुन्ध । रुन्ध धस् । रुन्ध धस् । रुन्ध ध । रुद्ध । रुन्वन्ति । रुध् भि । रु श्नम् ध अन्ति । रुनध् अन्ति । रुन्वन्ति । रुणत्सि । रुणध् सिप् । रुणन् सि । रुणत्सि ॥ रुन्धे । रुध् । रुध लट् । रुध त । रु श्नम् ध् त । रुन ध् त । रुन्ध् त । रुन्ध् ते । रुन्ध् धे । रुन्धे ॥

तनादिकृञ्भ्य उ ३।१।७१

प० वि०—तनादिकृञ्भ्य ५।३ उ १।१ स०—तन् आदिर्येपाते तनादय । तनादयश्च कृञ्च इति तनादिकृञः तेभ्य ॥

अर्थ—[सार्धधातुके कर्त्तरि शप्] तनु विस्तारे, इत्येवमादिभ्यो धातुभ्य कृञश्च उप्रत्ययो भवति, कर्त्तावाचिनि सार्वधातुकप्रत्यये परत । (तनु विस्तारे धातु है आदि म जिनके ऐसे धातुओं के पश्चात् तथा कृञ् धातु के पश्चात् कर्तावाची सावधातुक प्रत्यय के परे रहन पर शप् के स्थान में उ विकरण होता है)

अत्रेदं बोध्यम्—कृञ् तनादौ पठ्यते, स चानार्प पाठ, अन्यथा तनादित्वादेव उप्रत्यये सिद्धे कृञ् पृथग्ग्रहणमनर्थक स्यात् । सायणत प्राचीना पाणिनीया (मैत्रेय वर्जयित्वा), अन्ये च हैमादय, सर्व एव वैयाकरणा कृञ् भवादावप्यपाठिषु (सायणेनैव कृञ् भवादे निष्कापित द्र० माधवीया धातुवृत्ति पृ० १६३ ऋग्भाष्य १।२२।१) तथा सति कृञो भवादिपाठान् शब्दभवति, तनादिकृञ्भ्य उ इत्यत्र कृञ्ग्रहणाच्च उ ।

१—मिदचीज्ज्यात्पर (१ १ ४६) २—अट्कुप्वाङ्गुम्भ्यव्येऽपि (६ ४ २) ३—भ्रुस्तयोर्धोऽपि (८ ४. ४०) ४—कला जग भ्रुधि (८ ४ ५२) ५—श्नसोरल्लोप (६ ४ १११) ६—करो भ्रुि सवर्णे (८ ४. ६४)

एतदेवाभिप्रेयाचार्यद्वयानन्देनाप्युक्तम्—“ङ्ङ्ङ् करणे इत्यस्य
भ्यादिगणान्तर्गतपाठान् जञ्चिकरणोऽत्र गृह्यते, तनादिभि मह
पाठादुचिकरणोऽपि” (यजुर्भाष्य ३।१८) ।

उदा०—तनोति, तनुत, तन्वन्ति । तनोपि, तनुय, तनुय । तनोमि,
तनुय तय । तनुम तन्म ॥ करोति, कुरुत, कुर्वन्ति । करोपि, कुम्भ,
कुम्भ । करोमि, कुर्व । कुर्म ॥

सि०—तनोति । तनु । तन् लट् । तन् लृ । तन् तिप् । तन् उ ति ।
तनु ति । तनोति । तनुत । तनुय, तन्व । कुम्भ । कृ उ तम् । कर
उ तस । कुर उ तस् । कुम्भ । कुर उ मस् । कुर मम । कुर्म ॥

क्यादिभ्य ङना ३।१।८१

प० वि०—क्यादिभ्य ङङ् ङना १।१ स०—क्री आद्विर्घां ते
क्यादय तेभ्य ।

अर्थ—[सार्वधातुके कर्त्तरि शप्] कर्त्त्याचिनि सार्वधातुके प्रथये
परत क्र्यादिभ्यो धातुभ्य शप् स्थाने ङनाचिकरणो भवति ॥

(कर्त्तावाची साधधातुक प्रथम क परे रहन पर दुर्कीत्र इत्यादि धातुषो मे
शप् के स्थान में ङनाविकरण होता है)

उदा०—क्रीणाति क्रीणीत, क्रीणन्ति । क्रीणामि, क्रीणीथ,
क्रीणीथ । क्रीणामि, क्रीणीत, क्रीणीम ।

सि०—क्रीणाति । कुक्रीञ् । क्री लट् । क्री लृ । क्री तिप् । क्री ति ।
क्री ङना ति । क्री ना ति । क्री ना ति । क्री ङा ति । क्रीणाति । क्रीणा
तम् । क्रीणीत । क्रीणा अति । क्री ङ् अन्ति । क्रीणन्ति ।

हन ङन धानज्भो ३।१।८३

प० वि०—हल ङङ् ङन ङङ् शानच् १।१ ही ङङ्

अर्थ—[हलन्नाट् धातोरुत्तरस्य ङनाप्रथमस्य स्थाने शानज् आदेशो
भवति ही परत ॥ (हलन्नाट् धातु क परधान ङना प्रथम के स्थान में शानज्
आदेश होता है मात्र मध्यम परत एकवचन हि प्रथम क पर रहन पर)

१—मायान्मायान्तरस्यां भ्या (६ ४ १०३) २—मायधातुवापधातु
कदा (३ २ ८४) उरुत् पर (१ १ १०) ३—हल ङङ्गार्धधातुक (६
६ ११०) ४—निष्प कदा (६ ६ १०८) ५—प्रकृत्वत्तुम्भवात् (८
४ ०) ६—इ हास्यो (६ ६ ११३) ७—द्वान्द्वारत् (६ ४ ११०)

उदा०—मुपाण रत्नानि, पुपाण ।

सि०—मुप् । मुप् लोट् । मुप् मिप् । मुप् सि । मुप् श्ना सि । मुप् श्ना सि । मुप् श्ना हि^१ । मुप् शानच् हि । मुप् आन हि । मुपान^२ । मुपाण^३ । पुपाण ॥

कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रिय ३।१।८७

प० वि०—कर्मवत् अ० । कर्मणा ३।१ तुल्यक्रियः १।१ स०—तुल्यक्रिया यस्य कर्तुरिति तुल्यक्रियः कर्ता ।

अर्थ—[कर्त्तरि (इत्यत्र प्रथमया विपरिणम्यते)] कर्मणा तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवद् भवति । ऋयस्मिन् कर्मणि कर्तृभूतेऽपि तद्वत्क्रिया लक्ष्यते यथा कर्मणि, स कर्ता कर्मवद् भवति ॥ यावन्तो धातवः सन्ति ते सर्वे चतुर्विधाः—कर्मस्थभावकाः, कर्मस्थक्रियाः, कर्तृस्थभावकाः, कर्तृस्थक्रिया । अस्मिन् सूत्रे कर्मस्थभावकानां कर्मस्थक्रियाणां च कर्ता कर्मवद् भवति, न कर्तृस्थभावकानां न कर्तृस्थक्रियाणाम् ॥ कोऽय कर्मस्थभावकः कर्मस्थक्रियश्च इति उच्यते । कर्मणि तिष्ठति इति कर्मस्थः, कर्मस्थां भावो यस्य धातोः सः कर्मस्थभावकः । कर्मस्था क्रिया यस्य धातोः सः कर्मस्थक्रियः । पुनश्च कोऽयं भावः केयं क्रिया च इति ? उच्यते—अपरिस्पन्दनसाधनसाध्यो धात्वर्थो भावः, सपरिस्पन्दनसाधनसाध्यो धात्वर्थः क्रिया ॥३॥

(कर्त्तरि षप से कर्त्तरि की अनृवृत्ति आती है जिसका प्रथमा विभक्ति में विपरिणाम अर्थात् बदल कर कर्तृ हो जाता है । (कर्म से तुल्य क्रिया वाला कर्त्ता कर्म के समान होता है) । जिस कर्म के कर्ता हो जाने पर भी कर्म के समान ही क्रिया लक्षित होती है, वह कर्त्ता कर्मवत् हाता है । जितने धातु हैं वे सभी चार प्रकार के होते हैं—कर्मस्थभावक, कर्मस्थक्रिय, कर्तृस्थभावक, कर्तृस्थक्रिय । इस सूत्र में कर्मस्थभावक और कर्मस्थक्रिय धातुओं का कर्ता कर्मवद् होता है कर्तृस्थभावक और कर्तृस्थक्रिय धातुओं का नहीं हाता ॥

कर्मस्थभावक और कर्मस्थक्रिय शब्द का क्या अर्थ है, इसका अर्थ बतलाया जाता है । कर्म में जो स्थित है उसको कर्मस्थ कहते हैं और कर्मस्थ भाव है जिस धातु का उस धातु का कर्मस्थभावक कहते हैं । उही प्रकार कर्मस्थ क्रिया है जिस धातु की उस धातु का कर्मस्थक्रिय कहते हैं ।

१—नेह्यं विच्च (३. ४. ८७) २—अतो ह (६. ४. १०५) ३—प्रदु-
ष्वाऽनुम्ब्यवायेऽपि (८. ४. १)

भाव और क्रिया शब्द का क्या अर्थ है वह बतलाया जाता है—अपरि-
स्पन्दन अर्थात् हिलना डोलनादि चेष्टा से रहित साधन अर्थात् कर्ता आदि
कारक द्वारा सिद्ध होने वाला धातु का अर्थ भाव कहा जाता है। सपरिस्पन्दन
अर्थात् हिलना डोलना आदि चेष्टा से युक्त साधन के द्वारा सिद्ध होने वाला
धातु का अर्थ क्रिया कही जाती है।

कर्मस्थः पचतेर्भाव. कर्मस्था च भिदे. क्रिया।

मासासिभाव' कर्तृस्थ' वर्तस्था च गमे. क्रिया ॥

वारिका का अर्थ—'पचति' का धात्वर्थ भाव कर्म में रहता है जैसे
'ओदन पचति देवदत्त'। गलना रूपी भाव ओदन कर्म में होता है न कि वर्ता
देवदत्त में। 'भिनत्ति' की धात्वर्थ क्रिया कर्म में रहती है। जैसे 'देवदत्त काष्ठ
भिनत्ति' पटना रूपी क्रिया वाष्प में होती है न कि वर्ता देवदत्त में। 'आस्ते'
(ठहरता है) का धात्वर्थ भाव वर्ता में रहता है। जैसे 'भाममास्ते देवदत्त'।
ठहरना रूपी भाव वर्ता देवदत्त में रहता है न कि कर्म मास में। 'गच्छति'
की धात्वर्थ क्रिया कर्ता में होती है। जैसे 'देवदत्त आस गच्छति'। जाना
रूपी क्रिया देवदत्त में होती है न कि कर्म आस में।

उदा०—यगात्मनेचिण्चिण्यद्भावा प्रयोजनम्। कर्त्तरि—देवदत्त.
काष्ठ भिनत्ति। कर्मणि—काष्ठ भिद्यते देवदत्तेन। कर्मकर्त्तरि—काष्ठ
भिद्यते स्वयमेव। कर्त्तरि—देवदत्त काष्ठम् अभिद्यत्। कर्मणि—अभेदि
काष्ठ देवदत्तेन। कर्मकर्त्तरि—अभेदि काष्ठं स्वयमेव।

सि०—भिद्यते। भिदिर्। भिद् लट्। भिद् लृ। भिद् त। भिद्
यक्। त। भिद् य ते। भिद् य ते। भिद्यते। अभेदि। भिद्। भिद्
लुङ्। भिद् लृ। भिद् त। भिद् निलि त। भिद् चिण् त। भिद् इ त।
भेद् इ। भेदि। अट् भेदि। अभेदि।

धातो ३।१।६१

प० वि०—धातो इति पञ्चमीपठ्योरेकपञ्चमयो तन्त्रेण निर्देशः।
तेन यत्र सूत्रेषु पञ्चमीनिर्देशस्तत्र पञ्चम्यन्तं यत्र च ऋहलोर्ण्यन्
इत्यादिषु पठोनिर्देशस्तत्र पठ्यन्त धातो पठ समङ्गते। आधुनिका
पैषाकरणा ऋहलोर्ण्यन् आदिषु सूत्रेषु पञ्चम्यर्थे पठोप्रादु तत्र, परशक्त-
योगे पठ्या अन्यत्रापि दर्शनात्। यथा धात्यायन—'एकादशिनो.
परः पठ्यन्तनुशिरा' (ऋग्मर्षा० उपो० १।५)। पाणिनिना पञ्चम्येध

१—सावंधातुव यत् (३ १ ६७) २—पुगतलपूपधम्य च (७. ३ ८९)
विति च (१. १ ५)

विहिता इति चेत् तदीयसूत्रेषु बहुत्र पठ्या प्रयोगदर्शनात् पठ्ठी प्रयोगोऽपि ज्ञापनीय । न तु पञ्चम्यर्थे पठ्ठी वक्तव्या । हिन्दीभाषायामपि परयोगे, 'ग्राम से परे, ग्राम के परे', इत्युभयथा प्रयुज्यते ।

अर्थ—इतोऽग्रे वक्ष्यमाणानि कार्याणि आ तृतीयाध्यायपरिसमाप्ते धोतोरैव भवन्ति इत्ययमधिकारो वेदितव्य ।

(इसके पश्चात् आगे कहे जाने वाले कार्य तृतीय अध्याय के अन्त तक धातु से ही होते हैं इस बात का अधिकार समझना चाहिये ।)

तत्रोपपद सप्तमीस्थम् ३।१।६२

प० वि०—तत्र अ० । उपपदम् १।१ स०—समीपोच्चारित पदम् उपपदम् (अव्ययीभाव) सप्तम्यां विभक्तौ तिष्ठति इति सप्तमीस्थम् (उपपदसमास) ।

अर्थ—एतस्मिन् धात्वधिकारे सप्तमीस्थ = सप्तमीनिर्दिष्ट पदमुपपदसज्ञ भवति । (इस धातु के अधिकार में सप्तमी विभक्तिस्थ अर्थात् सप्तमी विभक्ति स निर्दिष्ट पद की उपपद सज्ञा होती है)

उदा०—कर्मण्यण्—कुम्भकार नगरकार ।

सि०—कुम्भ करोति इति । कुम्भ अम् कृ अण् । कुम्भ अम् कृ अ । कुम्भ अम् कार् अ । कुम्भ अम् कार् । कुम्भ^२ कार । कुम्भकार सु । कुम्भकार स् । कुम्भकार ।

कृतप्रत्ययप्रकरणम्

कृदतिङ् ३।१।६३

प० वि०—कृत् १।१ अतिङ् १।१ स०—न तिङ् इति अतिङ् ।

अर्थ—एतस्मिन् धात्वधिकारे तिङ्भिन्न प्रत्यय कृत्सज्ञको भवति । (इस धातु अधिकार में तिङ् भिन्न प्रत्यय की कृत्सज्ञा होती है)

उदा०—कर्त्तव्यम्, हर्त्तव्यम्, कृतम्, दृतम्, कारक, हारक, पाक, चिकीर्षक, जिहीर्षक ।

वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ३।१।६४

प० वि०—वा अ० । असरूप १।१ अस्त्रियाम् ७।१ स०—समान

१—समथ पदविधि (२ १ १) प्राक्कडारात्समास (२ १. ३) उपपदमतिङ् (२ २ १९) २—कृत्तद्धितसमासाश्च (१. २ ४६) सुपो धातुप्रतिपदिकयो (२. ४ १७) प्रथमानिर्दिष्ट समास उपसर्जनम् (१ २ ४३) उपसर्जन पूर्वम् (२ २ ३०) ।

इति तव्यत्त्व्यानीयर ।

अर्थ—[धातोः] धातोस्तव्यन् तव्य अनीयर् इत्येते प्रत्ययाः भवन्ति ।

(धातु से तव्यत् तव्य और अनीयर् प्रत्यय होते हैं)

उदा०—कर्त्तव्यम्, कर्त्तव्यम् । करणीयम् × केलिम् उपसंख्यानम् ×
पचेलिमाः मापाः, पक्तव्याः इत्यर्थः ।

सि०—डु०ब्व् । कृञ् । कृ तव्यत् । कृ तव्य । कर्त् तव्य^१ । कर्त्तव्य
सु । कर्त्तव्य अम् । कर्त्तव्यम् । कृ तव्य । कर्त्तव्य सु । कर्त्तव्य अम् ।
कर्त्तव्यम् । करणीयम् । कृ अनीयर् । कृ अनीय । कर्त् अनीय ।
करणीय । करणीय सु । करणीय अम् । करणीयम् । डुपचप केलिम् ।
पच् णलिम् । पचेलिम् अस् । पचेलिम् अस् । पचेलिमास् । पचेलिमाः ॥

अचो यत् ३।१।६७

प० वि०—अच^१ ५।१ यन् १।१

अर्थ—अजान्ताद् धातोर्यत् प्रत्ययो भवति ।

(अजन्त धातु से यत् प्रत्यय होता है)

उदा०—गेयम् । पेयम् । ज्ञेयम् । ज्ञेयम् । × तकिशसिचतियतिजनी-
नामुपसंख्यानम् × तक्थम् । शस्यम् । चत्यम् । यत्यम् । जन्यम् । × हनो
वा वध च × वध्यम्, घात्यम् ।

सि०—गेयम् । गै । गा^२ । गा यन् । ग् ई^३ य । गे य^४ । गेय सु ।
गेय अम् । गेयम् । पा यन् । पेयम् । जि यन् । ज्ञेयम् । हन् यत् । वध
यत् । वध् य । वध्यम् । हन् एयत् । हन् य । हान्^५ य । घात^६ य ।
घात्यम् ।

पोरदुपधात् ३।१।६८

प० वि०—पो^१ ५।१ अदुपधान् ५।१ स०—अद् उपधायां यस्य स
अदुपध. तस्मात् ।

अर्थ—अदुपधान् पदगान्ताद् धातोर्यत् प्रत्ययो भवति ।

१—चत्तरि कृत् (३. ४. ६७) ल कर्मणि च भाव चाकर्मकैः (३. ४. ६६) तयोरेव वृत्त्यन्तरालयां (३. ४. ७०) तव्यत्त्व्यानीयर (३. १. ६६)
प्रत्ययः (३. १. १) परश्च (३. १. २) २—आदेच उपसंख्यानसिद्धि (६. १. ४४)
३—ईदं यति (६. ४. ६५) अलोऽन्त्यम् (१. १. ५१) ४—सार्वधातुकार्थ-
धातुवयो (७. ३. ६४) ५—प्रत उपधाया (७. २. ११६) ६—हो
हन्तेऽङिः (१. ३. ५४)

(अकार है उपधा में जिस के ऐसे पवर्गान्त धातु से यन् प्रत्यय होता है)

उदा०—शप्यम्, लभ्यम् ।

सि०—शप् । शप् यन् । शप्यम् । लभ । लभ् यन् । लभ्यम् ।

शकिसहोच्च ३।१।६६

प० वि०—शकिसहोः ६।२ च अ० । स०—शकिश्च सहश्च इति शकिसहो तयोः ।

अर्थ—शकिसहोः धातुव्योः परः यन्प्रत्ययो भवति ।

(शक् घोर मह धातु के परे यत् प्रत्यय होता है)

उदा०—शक्यम्, सह्यम् ।

गदमदचरयमदचानुपसर्गो ३।१।१००

प० वि०—गदमदचरयमः ५।१ च अ० । अनुपसर्गो ७।१ स०—
गदश्च मदश्च चरश्च यं च इति गदमदचरयम्, तस्मात् । न उपसर्गः
अनुपसर्गः, तस्मिन् ।

अर्थ—उपसर्गरहितेभ्यो गदादिभ्यो धातुभ्यो यन् प्रत्ययो भवति ।

(उपसर्गरहित गद व्यक्ताया वाचि, मदी हर्षे, चर गतिभक्षणयोः, यम उपरमे
इन धातुओं से यन् प्रत्यय होता है)

उदा०—गद्यम् । मद्यम् । चर्यम् । यम्यम् । × चरेराडि चागुरी ×
आचर्यो देशः ।

एतिस्तुशास्वृदृजुपः क्यप् ३।१।१०६

प० वि०—एतिस्तुशास्वृदृजुपः ५।१ क्यप् १।१ स०—एतिश्च स्तुश्च
शाश्च वा च दा च जुट् च इति एतिस्तुशास्वृदृजुट् तस्मान् ।

अर्थ—एत्यादिभ्या धातुभ्यः क्यप् प्रत्ययो भवति ।

(इण् गतो, प्ठुन् स्तुतो, शामु अनुनिष्टो, वृन् वरणं, हृद् भादरे, जुषो
प्रीतिमेवनयोः इन धातुओं से क्यप् प्रत्यय हाता है)

उदा०—इत्य् । स्तुत्यः । शिष्यः । घृत्यः । आहृत्यः । जुष्यः ।
× अञ्जेश्चोपसरयानं संज्ञायाम् × आञ्य घृतम् ।

सि०—इण् । इ क्यप् । इ य । इ य । इ तुर् य । इत्य् । इत्य् ।
शास् क्यप् । शिम् क्यप् । शिप् य । शिष्यः । जुषी । जुप् क्यप् ।

१—आयं धातुः शेषः (३. ८. ११४) ताव धातुनायं धातुव्योः (७. ३. ८४) विटति च (१. १. १) २—ह्रस्वस्य विटि इति तुक् (६. १. ६६) ३—
शास् इदृह्लाः (६. ४. ३४) ४—शामिनिधनीना प (८. ३. ६०)

आङ् अञ्ज् य । आ अज् य । आज्य । आज्य सु । आज्य अम्^२ ।
आज्यम् ।

ऋहलोर्ण्यत् ३।१।१२४

प० वि०—ऋहलो ङार एयत् १।१ स०—आ च हल् च इति
ऋहलो तयो ।

अर्थ—ऋवर्णान्तस्य हलन्तस्य च वातो परो यत् प्रत्ययो भवति ।

(ऋवर्णान्त और हलन्त धातु के परे ण्यत् प्रत्यय हाता है)

उदा०—कार्यम् । हार्यम् । पाठ्यम् । पाक्यम् ।

सि०—ङुकृञ् करणे । कृ एयत् । कार् च । कार्य सु । कार्य
अम् । कार्यम् । पठ एयत् । पठ् य । पाठ् य । पाठ्य सु । पाठ्य अम् ।
पाठ्यम् ।

एवुल्लृचौ ३।१।१३३

प० वि०—एवुल्लृचौ १।२ स०—एवुल्च् वृच्च इति एवुल्लृचौ ।

अर्थ—धातो एवुल्लृचौ प्रत्ययौ भवत । (धातु से ण्डुल और वृच्
प्रत्यय हाते हैं)

उदा०—पाचक, पठक । कर्ता, हर्ता, जेता ।

सि०—ङुपचप् । पच् एवुल् । पच् वु । पच् अक । पाच् अक ।
पाचक सु । पाचक । पठ् एवुल् । पाठक । ङुकृञ् वृच् । कृ वृ । कर् वृ ।
कर्त् सु । कर्त् अनङ् सु । कर्त्तङ् सु । कर्त्तन् स् । कर्त्तन् स् । कर्त्तन् ।
कर्त्ता । हर्त्ता ॥

नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यत् ३।१।१३४

प० वि०—नन्दिग्रहिपचादिभ्य ५।३ ल्युणिन्यत् १।३ स०—
नन्दिश्च ग्रहिश्च पचश्च इति नन्दिग्रहिपचा (इतरे० द्वन्द्वः) आदिश्च
आदिश्च आदिश्च इति आदय । नन्दिग्रहिपचा आदयो येषान्ते
नन्दिग्रहिपचादय (बहु०) तेभ्य । ल्युश्च णिनिश्च अच्च इति
ल्युणिन्यत् ।

अर्थ—नन्दादिभ्यो ग्रहादिभ्य पचादिभ्यश्च धातुभ्य ल्यु णिनि
अच्च प्रत्यया यथासंख्य भवन्ति ।

(नद् इत्यादि ग्रह इत्यादि और पच इत्यादि धातुया से ल्यु णिनि और

१—नन्दिदिता हल उपधाया विङ्गति (६ ४ २४) ०—घतोऽम् (७ १ २४)

अच् प्रत्यय क्रमशः होने हैं)

उदा०—नन्दन । प्राही । पच । ×अत्रपि सर्वधातुभ्य × भव ।

सि०—टुनदि । नद् नुम्^१ द् । नद्^२ । नद्^३ । नन्द ल्यु । नन्द
अन^४ । नन्दन मु । नन्दन । प्राही । प्रह् णिनि । प्रह इन् । प्राहिन
मु । प्राहीन्^५ स् । प्राहीन्^६ । प्राही^७ । पच । पच् अच् । पच । भू । भू
अच् । भो अ । भव मु । भव ॥

इगुपधज्ञाप्रीकिर क ३।१।१३५

प० वि०—इगुपधज्ञाप्रीकिर ५।१ क १।१ स०—इग् उपधायां यस्य
स इगुपध । इगुपधश्च ज्ञाश्च प्रीश्च कीश्च इति इगुपधज्ञाप्रीकिर
वस्मात् ।

अर्थ—इगुपधेभ्यो जनाते प्रीणाते किरितेश्च धातुभ्य कप्रत्ययो
भवति । (इच् है उपधा में जिसके एम धोर जा धववापन, प्रीञा तपणे नातो
च, वृ विदोष इन पातुआ स व प्रत्यय होता है)

उदा०—इगुपध-बुध^१ । वृश । ज्ञा-जानातिरिति ज्ञ । प्रीणातीति
प्रिय । किरतीति किर ।

सि०—बुध । बुध् क । बुध्^२ अ । बुय । ज्ञ । ज्ञा क । ज्ञा अ ।
ज्ञ^३ अ । ज्ञ मु । ज्ञ । प्रीच् । प्री क । प्री अ । प्र् इयद्^४ अ । प्रियद्
अ । प्रिय् अ । प्रिय मु । प्रिय । क क । क अ । किर^५ अ । किर
मु । किर ॥

आतश्चोपसर्गे २।१।१३६

प० वि०—आत ५।१ च अ० । उपसर्गे ७।१।

अर्थ—[क] उपसर्गे उपपठे आनारान्नेभ्यो धातुभ्य कप्रत्ययो

- १—दक्षिणानुष्पातो (७ १ ५८) २—नस्वापदान्तस्य भक्ति (८ ३. २४)
३—धनुस्वारस्य यपि परमवर्ण (८ ४) ४—युवारतात्ता (७ १ १) यथा-
सस्यमनुदश समानाम् (१. ३ १०) ५—मुह्यन्तपु मकस्य (१. १ ४०) सव-
नामस्थाने चामम्बुदो (६ ४ ८) ६—हृद्वाभ्यो दीर्घानुष्पान्तस्य एव
(६ १ ६६) ७—नन्तार प्रातिपदिवान्तस्य (८. २ ७) ८—घाघपातुश्च दीर्घ
(३. ४ ११४) पुगन्तलप्राथस्य च (७ ३. ८६) किरति च (१ १. ५)
९—घातो नाग इति च (६ ४ ६४) १०—घषित्पुपातुश्चुवा योस्त्वित्पुपातो
(६. ४ ७३) टिष्य (१. १ ५२) ११—ह्यन् इडाता (७ १०. १०)

भवति । (उपपद के उपपद रहन पर आकारा त धातु से क प्रत्यय होता है)

उ० — प्ररातीति प्रर । प्रलातीति प्रल ।

सि०—प्रला क । प्रला अ । प्रल्^१ अ । प्रल सु । प्रल । प्ररा क । प्रर^२ अ । प्रर ।

शिल्पिनि प्वुन् ३।१।१४५

प० वि०—शिल्पिनि ७।१ प्वुन् १।१

अर्थ—शिल्पिनि वर्त्तरि वातो प्वुन् प्रत्ययो भवति (शिल्पी वर्त्ता अभिषय हो तो धातु से प्वुन् प्रत्यय होता है)

उ०×—नृतिखनिरञ्जिभ्य परिगणन कर्त्तव्यम्× नर्त्तक । खनक । रजक । नर्त्तकी । खनयी । रजकी ॥

सि०—नृत् प्वुन् । नृत् यु । नृत् अक । नर्त् अक । नर्त्क सु । नर्त्क । नर्त्की । नर्त्क डीप्^२ । नर्त्क ई । नर्त्क ई^३ । नर्त्की सु । नर्त्की । रजक, रजकी । रञ्ज् प्वुन् । रज्^४ प्रक । रजक । रजकी । सर्वासु विभक्तिषु रूपाणि कुमारोवत् अभ्यसितव्यानि ।

इत्यष्टाध्यायी प्रकाशिकाया तृतीयाध्याये प्रथम पाद

कर्मण्यण ३।२।१

प० वि०—कर्मणि ७।१ अण् १।१

अर्थ—[धातो] कर्मण्युपपदे वातोरण प्रत्ययो भवति । 'कर्मणि' इत्यधिक्रियते । (कर्म के उपपद रहन पर धातु से अण् प्रत्यय होता है)

उ०—अत्र त्रिविध कर्म गृह्यते—निर्वृत्यमान विक्रियमाण प्राप्यञ्च । निर्वृत्यमान—कुम्भकार । नगरकार । विक्रियमाण—वेदार लाय । काण्डलाय । प्राप्य—वेदाध्याय । शास्त्राध्याय ।

सि०—कुम्भकार । कुम्भ करोति डति । कुम्भ अम् कृ अण् । कुम्भ अम् कृ अ । कुम्भ अम् वार अ । कुम्भ अम् कार^२ ।

उ० ए० रपर (१ १ ५०) १—घातो० (६४ ६४) २—पिद् गोरादिभ्यञ्च (४ १ ४१) ३—यच्चि भम् (१ ४ १८) भस्य (६ ४ १२९) यस्यति च (६ ४ १४८) ४—रजकरजनरज भूपसस्थान क्तव्यम् (६ ४ २४ वा०) ५—समय पदविधि (२ १ १) प्राक्कडारात् समास (२ १ ३) उपपदमतिङ् (२ २ १९) प्रथमानिदिष्ट समास उपसजनम् (१ २ ४२) उपसजन पूर्वम् (२ २ ३०)

कुम्भकार^१ सु । कुम्भकार स् । कुम्भकार । वेदारलाय । वेदारं लुनाति इति । वेदार अम् लून् । वेदार अम् लू अण । वेदार अम् लौ^२ अ । वेदार अम् लाय् अ । वेदार अम् लाय । वेदारलाय । वेदाध्याय । वेदान् अधाते इति । वेद शम् अधि इङ् अण् । वेद शस् अवि इ अ । वेद शम् अधि ऐ^३ अ । वेद शस् अधि आय । वेद शम् अत्रि आय । वेद अध्याय । वेदाध्याय ।

आतोऽनुपसर्गे क ३।२।३

प० वि०—आत श^१ अनुपसर्गे ङ^१ क श^१ स०—न उपसर्ग अनुपसर्ग तस्मिन् ।

अर्थ—[कर्मणि] अनुपसर्ग कर्मण्युपपदे आकारान्तधातुभ्य कप्रत्ययो भवति । (जायग रहिन क्म क उरगद रहन पर आकारान्त धातु स कप्रत्यय हाता है)

उदा०—गोद । कम्बलद ।

सि०—गोद । गां उदाति ङनि । गो अम् दा न । गो अम् द्^३ अ । गो अम् ङ । गोद । गोद सु । गोद । कम्बलद

सुपि म्थ ३।२।४

प० वि०—सुपि ङ^१ च अ०

अर्थ—[क] सुप्रन्त उपपदे तिष्ठतेर्धातो कप्रत्ययो भवति । इतोऽप्ये 'सुपि' इत्यधिकार तेन उत्तरत्र कर्मणि सुपि इत्युभावुपपत्तिष्ठेते । तत्र सप्तमकाद्धातो कर्मणि इति मन्त्र्यते अन्वयान् सुपीति ।

(सुप्रन्त क उपपद रहन पर स्या धातु स कप्रत्यय हाता है ।

उदा०—गृहस्थ । विपमस्थ । समस्थ ।

सि०—गृहे तिष्ठतीति गृहस्थ । गृह ङि स्या क । गृह ङि स्थ^३ अ । गृह ङि स्थ । गृहस्थ । गृहस्थ सु । गृहस्थ ।

शमि धातो मञ्जायाम् ३।२।५

प० वि०—शमि ङ^१ धातो श^१ मञ्जायाम् ङ^१

१—वृत्तद्वितसमासाच्च (१ २ ४६) सुपो० (२ ४ ५) इयाप्रातिपदिकात् (४ १ १) स्वी० (४ १ २) सुप (१ ४ १०२) विभक्तिच्च (१ ४ १०३) द्वेषयोर्द्विवचनैकवचन (१ ४ २२) एकत्वे विवक्षिते सु प्रत्यय (३ १ १)
०—धनो ङिति (७ २ ११५) ३—धातो लोप इटि च (६ ४ ६४) ।

अर्थ—[हरतेरनुद्यमनेऽच् इत्यस्मात् सूत्राद् अजनुवर्तते] शम्भु-
पपदे संज्ञायां विषये धातोरच् प्रत्ययो भवति ।

(शम् के उपपद रहने पर सज्ञा के विषय में धातु से अच् प्रत्यय होता है)

उदा०—शङ्करः । शम्भवः ।

सि०—शं करोतीति शङ्करः । शम् अम् कृ अच् । शम् कर । श
कर । शङ्कर सु । शङ्करः ।

अधिकरणे शते ३।२।१५

प० वि०—अधिकरणे ७।१ शेते । क्रिया० ।

अर्थ—[सुपि] अधिकरणे सुबन्त उपपदे शेतेर्धातोरच् प्रत्ययो
भवति । (अधिकरण कारक में सुबन्त के उपपद रहने पर शीङ् धातु से अच्
प्रत्यय होता है)

उदा०—खशयः । गर्तशयः ।

सि०—खे शेते इति खशयः । ख ङि शी अच् । ख ङि शे अ ।
ख ङि शय । खशय^१ । खशय सु । खशयः ।

चरेट ३।२।१६

प० वि०—चरेः ५।१ टः १।१

अर्थ—[अधिकरणे] अधिकरणे सुबन्त उपपदे चरतेर्धातोष्टप्रत्ययो
भवति । (अधिकरण सुबन्त के उपपदरहने पर चर् धातु से टप्रत्यय होता है)

उदा०—कुरुचरी । मद्रचरी । कुरुचरः । मद्रचरः । खचरः ।
व्योमचरः ।

सि०—कुरुचरः । कुरुषु चरतीति । कुरु सुप् चर् ट । कुरु सुप् चर्
अ । कुरु सुप् चर । कुरुचर ङीप्^२ । कुरुचर ई । कुरुचर् ई । कुरुचरी ।
कुरुचरी सु । कुरुचरी । व्योमचरः । व्योमिन् चरतीति ।

भिक्षासेनादायेषु च ३।२।१७

प० वि०—भिक्षासेनादायेषु ७।३ च अ० ॥ स०—भिक्षा च सेना
च आदायश्च इति भिक्षासेनादायाः तेषु ।

अर्थ—[चरेष्टः] भिक्षा सेना आदाय इत्येतेषूपपदेषु चरतेर्धातोष्ट-
प्रत्ययो भवति । (भिक्षा, सेना और आदाय सुबन्त के उपपद रहने पर चर्
धातु से ट प्रत्यय होता है)

उदा०—भिक्षाचरः । सेनाचरः । आदायचरः ॥

१—सुपो धातुप्रातिपदिकयोः (२. ४. ७१) २—टिड्ढाण० (४. १. १५)

सि०—भिन्ना चरतीति भिन्नाचर । भिन्ना अम् चर्त् । भिन्ना
अम् चर । भिन्ना चर । भिन्नाचर मु । भिन्नाचर ।

कृजो हेतुताच्छील्यानुलोम्यषु ३।२।२०

प० वि०—कृञ् ५।१ हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ७।३ स०—हेतुश्च
ताच्छील्यञ्च आनुलोम्यञ्च इति हेतुताच्छील्यानुलोम्यानि तेषु ।

अर्थ—[ट] कर्मण्युपपदे करोतेर्धातोष्टप्रत्ययो भवति हेतौ
ताच्छील्ये आनुलोम्ये च गम्यमाने । (कम क उपपद रहन पर कृ धातु स
टप्रत्यय हाता है हतु ताच्छीलय और आनुलोम्य गम्यमान हान पर ।

उदा०—हेतु आवश्यक कारणम् । ताच्छील्यम् तत्समाप्रता ।
आनुलोम्यमनुकूलता । हेतौ—यशस्करी विद्या । ताच्छील्ये—श्राद्धकर ।
अर्थकर । आनुलोम्ये—यचनकर । प्रैपकर ।

सि०—यशस्करी । यश करोतीति । यशम् अम् कृ ट । यशस् अम्
कर अ । यशस्कर ङीप् । यशस्कर् ई । यशस्करी ।

एजे खश् ३।२।२०

प० वि०—एजे ५।१ खश् १।१

अर्थ—एज् कम्पने इत्यस्मान् एयन्तान् कर्मण्युपपदे खश् प्रत्ययो
भवति । (एज् कम्पन इस ष्यन्त धातु स कम क उपपद रहन पर खण प्रत्यय
हाता है)

एजा०—वृक्षमेजय । जनमेजय ।

सि०—वृक्षमेजय । वृक्षान् एजयति इति । वृक्ष शस् एज् णिच्^१ ।
वृक्ष शम् एजि । वृक्ष शस् एजि खश् । वृक्ष शस् एजि शप्^२ अ । वृक्ष
शस् एजे अ अ । वृक्ष शम् ए वृक्ष शस् एजय । वृक्ष एजय ।
वृक्ष मुम्^३ एजय । वृक्षमेजय । वृक्षमेजय मु । वृक्षमेजय । जनमेजय ।

प्रियवशे वद खच् ३।२।३८

प० वि०—प्रियवशे ७।१ वद ५।१ खच् १।१ स०—प्रियश्च वशश्च
इति प्रियवशा तस्मिन् ।

अर्थ—प्रिय वशा इत्येतयो कर्मणोऽपपत्त्योर्वर्द्धेर्धातो खच् प्रत्ययो
भवति । (प्रिय और वशा कम क उपपद रहन पर वद धातु म खच्

१—हेतुमति च (३ १ २६) २—तिङ्गित्प्रवधानुक्रम (३ ४ ११३)
[सावधानुके] एक (३ १ ६७) क्त्तरि शप् (३ १, ६८) ३—अरुद्धिषद

प्रत्यय होता है ।

उदा०—प्रियंवदः । वशंवदः ।

सि०—प्रियंवदः । प्रियं वदतीति । प्रिय अम् वद् स्वच् । प्रिय अम् चद् अ । प्रिय अम् चद । प्रिय वद । प्रिय मुम् चद । प्रियम् वद । प्रियं-चद । प्रियंवद सु । प्रियवदः । वशंवदः । वशं वदतीति ।

द्विपत्परयोस्तापेः ३।२।३६

प० वि०—द्विपत्परयोः ७।२ तापेः ५।१ स०—द्विपच्च परश्च इति द्विपत्परी तयोः ।

अर्थ—[स्वच्] द्विपत्परयोः कर्मणोरुपपदयोस्तापेर्धातोः स्वच् प्रत्ययो भवति । (द्विपत् ओर पर कर्म के उपपद रहने पर ष्यन्त तप्घातु से स्वच प्रत्यय होता है)

उदा०—द्विपन्तपः । परन्तपः ।

सि०—द्विपन्तपः । द्विपन्तं तापयतीति । द्विपत् अम् तापि । द्विपत् अम् तापि स्वच् । द्विपत् अम् तापि अ । द्विपत् अम् तपि^१ अ । द्विपत् अम् तप्^२ अ । द्विपन् अम् तप । द्विपत् तप । द्विप मुम् त तप । द्विपम् तप । द्विपम्^३ तप । द्विपं तप । द्विपन्तपः । परन्तापयतीति परन्तपः ।

स्पृशोऽनुदके क्विन् ३।२।५८

प० वि०—स्पृश. ५।१ अनुदके ७।१ क्विन् १।१ स०—न उदकमिति अनुदकम् तस्मिन् ।

अर्थ—उदकमिन्ने सुबन्ते उपपदे स्पृशधातोः क्विन् प्रत्ययो भवति । (उदकमिन्न सुबन्त के उपपद रहने पर स्पृश् घातु से क्विन् प्रत्यय होता है)

उदा०—घृतं स्पृशति इति घृतस्पृक् । मन्त्रेण स्पृशति मन्त्रस्पृक् । जलेन स्पृशति जलस्पृक् ।

सि०—घृतं स्पृशति इति । घृत अम् स्पृश्^१ । घृत अम् स्पृक्^२ । घृत-स्पृक् सु । घृतस्पृक् । घृतस्पृग् । घृतस्पृशौ । घृतस्पृशः । घृतस्पृशम् । घृत-

जन्तस्य मुम् (६. ३. ६७)

१—खचि ह्रस्वः (६-४-९४) २—खेरनिटि (६।४।५१) ३—सयोगान्तस्य लोप. (८. २. २३) ४—प्रपूक्त एकाल्प्रत्ययः (१. २. ४१) वेरपूक्तस्य (६. १. ६४) अदर्शन लोपः (१. १. ५६) ५—क्विन्प्रत्ययस्य कुः (८. २. ६२)

स्पृशी । घृतस्पृश । घृतस्पृशा । घृतस्पृड्भ्याम् । घृतस्पृड्भिः । घृतस्पृशि ।
घृतस्पृशो । घृतस्पृक् सु । घृतस्पृक्तु

त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च ३।२।६०

प० नि०—त्यदादिषु ७।३ ऋग ५।२ अनालाचने ७।१ कञ् १।१ च
अ० । स०—त्यद् आदिर्यपान्ते त्यदादय तेपु । न लोचनम् अनालो
चनम् तस्मिन् ।

अर्थ—[क्विप्] त्यदादिषूपपदेषु अनानोचनेऽर्थे वर्तमानाद् दृशो-
धातो कञ् प्रत्ययो भवति चकारान् क्विञ्च ॥

(स्पृष्ट इत्यादि के उपपद रहने पर न देखने अर्थ में वर्तमान दृश् घातु से
कञ् प्रत्यय हाता है और चकार स क्विप् में)

उदा०—कञ्-त्यादृश । त्यादृशी । तादृश । तादृशी । यादृश ।
यान्शी । एतादृश । एतान्शी । क्विप्—त्यान्कृ । तादृक् । यादृक् ।
एतादृक् । ×समाना ययोश्चेति वन्नव्ययम्× सदृश । सदृशा । अन्या-
दृश । अन्यादृशी । सन्कृ । अन्यादृक् । ×दृशे क्सश्च वक्तव्य ×
तादृन् , यान्क्ष , अन्यादृक्ष , कीदृक्ष ॥

सि०—त्यद् अम् दृश् कञ् । त्यद् अम् दृश् अ । त्यद् अम् दृश ।
त्य आ न्श । त्यान्श । त्यादृश सु । त्यादृश । त्यादृश डीप् ।
त्यादृश ई । त्यादृश् ई । त्यादृशी सु । त्यादृशी । त्यादृक् । त्यान्श्
क्विप् । त्पान् । सगान ऋग । स दृश । सदृग । तादृक्ष । तादृश् क्स ।
तादृश् स । तादृप् स । तादृक् स । तादृक्प । तादृक्ष । तादृक्ष सु ।
तादृक्ष । कीदृश । किम् दृश । कीदृश । कीदृशी ॥

क्विप् च ३।२।७६

अर्थ—[मुपि उपसर्गेऽपि] सोपसर्गे निरुपसर्गे च मुप्युपपदे घातो
क्विप् प्रत्ययो भवति । (उपसर्ग वा निरुपसर्ग सुबन्त के उपपद रहने पर
घातु स क्विप् प्रत्यय हाता है)

उदा०—उत्तामन् । पर्ण वन् । वाहाभ्रट् ।

सि०—उत्तास्र् । उत्ताया स्र सते इति । उत्ता ङसि स्र सु । उत्ता-
ङसि स्र स् क्विप् । उत्ता ङसि स्र स् घ् । उत्ता ङसि स्र स् । उत्ता-

१—प्रश्चभ्रज० (८ २ ३६) पदो व सि (८. २. ४१) २—मा सर्वनाम्न
(६ ३ ४१) ३—टिड्ढा० (४ १ १५) ४—इद्विमोरीपकी (६ ३ ९०)
५—मनिदिता हल० (६ ४ २४)

स्रद्^१ । उखास्रत्^२ । वाहाभ्रट् । वाहाद् भ्रश्यति इति । वाह डसि भ्रंशु ।
वाह डसि भ्रंशु क्विप् । वाह डसि भ्रश् । वाहभ्रश् । वाहभ्रप्^३ ।
वाहभ्रड् । वाहभ्रट्^२ । वाहा^४ भ्रट्

सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ३।२।७८

प० वि०—सुपि ७।१ अजातौ ७।१ णिनिः १।१ ताच्छील्ये ७।१
स०—न जातिरिति अजाति तस्याम् । तस्य शीलं तच्छीलम् । तच्छी-
लस्य भाव ताच्छील्यम्, तस्मिन् ।

अर्थ—अजातिवाचिनि सुबन्ते उपपदे, ताच्छील्ये गम्यमाने धातो-
र्णिनि, प्रत्ययो भवति । (अजातिवाची सुबन्त के उपपद रहने पर तत्त्वभावता
ज्ञान होने पर धातु से णिनि प्रत्यय होता है)

उदा०—उष्णभोजी । शीतभोजी । प्रियवादी । धर्मोपदेशी ॥

सि०—उष्णभोजी । उष्णं भोक्तुं शीलमस्य इति । उष्ण अम् भुज्
णिनि । उष्ण अम् भुज् इन् । उष्ण अम् भोज् इन् । उष्णभोजिन् ।
उष्णभोजिन् सु । उष्णभोजीन्^५ स् । उष्णभोजीन् । उष्णभोजी ।
उष्णभोजिनौ । उष्णभोजिनः । उष्णभोजिनम् । उष्णभोजिनौ । उष्ण-
भोजिन ॥ शीतभोजी । शीतं भोक्तुं शीलं यस्य । प्रियवादी । प्रियं
वदितुं शील यस्य । धर्मोपदेशी । धर्मम् उपदेष्टुं शीलं यस्य ॥

कर्तयुपमाने ३।२।७९

प० वि०—कर्त्तरि ७।१ उपमाने ७।१

अर्थ—[णिनि] कर्त्तृवाचिनि उपमान उपपदे धातोर्णिनिप्रत्ययो
भवति । (कर्त्तावाची उपमान के उपपद रहने पर धातु से णिनि प्रत्यय होता है)

उदा०—उष्ट्रकोशी । काकवादी ॥

सि०—उष्ट्र, इव क्रोशतीति उष्ट्रकोशी । उष्ट्र सु कुश् णिनि । उष्ट्र सु
क्रोश् इन् । उष्ट्र क्रोशिन् । उष्ट्रकोशिन् सु । उष्ट्रकोशी । काक इव
वदतीति । काकवादी ॥

मन ३।२।८२

प० वि०—मनः ५।१

१—वसुध सु० (८. २. ७२) २—वावसाने (८. ४. ५५) ३—वश्चभ्रस्ज०
(८.२. ३६) ४—अन्येषामपि दृश्यते (६. ३. १३७) ५—तौ च (६. ४. १२)

अर्थ—[सुप्ति णिनि] सुवन्त उपपदे मन्थतेर्णिनिप्रत्ययो भवति ।
(सुवन्त के उपपद रहन पर दिवादिगणस्य मन् धातु से णिनि प्रत्यय होता है)

उदा०—दर्शनीयमानी । सरूपमानी ।

सि०—दर्शनीयमानी । दर्शनीय मन्यते इति । दर्शनीय अम् मन्
णिनि । दर्शनीय अम् मानिन् । दर्शनीयमानिन् । दर्शनीयमानिन् मु ।
दर्शनीयमानीन् स् । दर्शनीयमानीन् । दर्शनीयमानी । सरूपमानी ।
सरूप मन्यते इति सरूपमानी । सरूपमानिनी । सरूपमानिन । सरूप
मानिनम् । सरूपमानिनी । सरूपमानिन । सरूपमानिना । सरूपमानि
भ्याम् । सरूपमानिभि ।

आत्ममाने खश्च ३।२।८३

प० वि०—आत्ममाने ७।१ खश् १।१ च अ० । स०—आत्मन
स्वस्य मननम् आत्ममान तस्मिन् ।

अर्थ—[णिनि] आत्ममाने वर्तमानान्मन्यतेर्धातो सुवन्त उपपदे
खशप्रत्ययो भवति णिनिश्च ।

(अपन आपको मानना इस अर्थ में वर्तमान मन् धातु से सुवन्त के उपपद
रहन पर खश प्रत्यय होता है चकार से णिनि)

उदा०—परिडतमन्य । शोभनमन्य ।

सि०—परिडतमन्य । आत्मान परिडत मन्थत इति । परिडत
अम् मन् खश् । परिडत अम् मन् श्यन् अ । परिडत अम् मन्य । परिडत
अम् मन्य । परिडत मन्य । परिडत मुम् मन्य । परिडत म् मन्य ।
परिडतमन्य मु । परिडतमन्य । शोभनमन्य ।

भूते ३।२।८४

प० वि०—भूते ७।१

अर्थ—इतोऽपि वक्ष्यमाणा प्र यया वर्तमाने लडिति यावद् भूते
भवन्ति इत्यधिकारो वेदितव्य ।

(यहा से वर्तमान सट इस मूत्र तक कहे जान जान बाल प्रत्यय भूतकाल
में होते हैं इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

करसो यजः ३।२।८५

प० वि०—करसो ७।१ यज ५।१

अर्थ—[णिनि] करण उपपदे यजतेर्धातो णिनिप्रत्ययो भवति

भूते । (करण क उपपद रहन पर बजघातु से णिनि प्रत्यय होता है)

उदा०—अग्निष्टोमयाजी । राजसूययाजी । अश्वमेधयाजी ।

सि०—अग्निष्टोमयाजी । अग्निष्टोमेन इष्टवान् । अग्निष्टोम
टा यज् णिनि । अग्निष्टाम टा याजिन् । अग्निष्टोमयाजिन् । अग्निष्टो-
मयाजी । अग्निष्टोमयाजिनौ । अग्निष्टोमयाजिन । राजसूययाजी ।

कर्मणि हन ३।२।८६

प० वि०—कर्मणि ७।१ हन ५।१

अर्थ—[णिनि] कर्मण्युपपदे हन्तेर्धातोर्णिनि प्रत्ययो भवति भूते ।
(कर्म क उपपद रहन पर हन् घातु से णिनि प्रत्यय होता है भूतकाल में)

उदा०—पितृघाती । पितृयघाती । मातुलघाती ।

सि०—पितर हतवान् इति पितृघाती । पितृ अम् हन् णिनि ।

पितृ अम् हान् इन् । पितृ अम् घान्^१ इन् । पितृ अम् घान्^२ इन् ।
पितृ अम् घातिन् । पितृघातिन् सु । पितृघातीन्^३ सु । पितृघाती । पितृ-
घातिनौ । पितृघातिन ॥

सोमे सुञ् ३।२।९०

प० वि०—सोमे ७।१ सुञ् ५।१

अर्थ—[ब्रह्मभ्रूणरूपेषु क्विप् इत्यत क्विविति अनुवर्तते] सोमे
कर्मण्युपपदे सुञ् धातो क्विप्प्रत्ययो भवति । (सोम कर्म के उपपद रहन
पर पुत्र धमिपदे घातु से क्विप् प्रत्यय होता है भूतकाल में)

उदा०—सोमसुत् ।

सि०—सोमसुत् । सोम सुतवान् इति । सोम अम् पुत्र क्विप् ।
सोम अम् पु क्विप् । सोम अम् सु क्विप् । सोम अम् सु व । सोम अम्
सु । सोम अम् सु तुक्^४ । सोम अम् सुत् । सोमसुत् । सोमसुत् सु
सोमसुत् । सोमसुतो । सोमसुत । सोमसुतम् । सोमसुतो । सोमसुत ।
सोमसुता । सोमसुद्^५ भ्याम् । सोमसुति । सोमसुतो । सोमसुत्सु^६ ॥

१—हो हतत्रिणि नपु (७ ३ ५४) २—हनस्तोऽचिण्यतो (७ ३ ३२)

३—सो च (६ ४ १३) ४—ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् (६ १ ७१) ५—
स्वादिष्वसवनामस्थान (१. ४ १७) ऋत्वा जशाज्न्त (८ २ ३६) ६—खरि
च (८ ४ ५४)

अग्नी चे ३।२।६१

प० वि०—अग्नी ७।१ चे ५।१

अर्थ—[क्विप्] अग्नी कर्मणि उपपदे चिनोतेर्घातोर्भूते क्विप् प्रत्ययो भवति । (अग्नि कर्म के उपपद रहन पर विन् चयने घातो से क्विप् प्रत्यय होता है भूतकाल में)

उत्पा०—अग्निचित् ।

सप्तम्या जनेडं ३।२।६७

प० वि०—सप्तम्याम् ७।१ जने ५।१ ङ १।१

अर्थ—सप्तम्यन्त उपपदे जनेर्घातोर्ङं प्रत्ययो भवति भूते । (सप्तम्यन्त के उपपद रहन पर जन् घातु स ङ प्रत्यय हाता है भूतकाल में)

उदा०—कटज , उपसरज , पङ्कज , वारिज ।

सि०—कटज । कटे जात इति । कट ङि जन् ङ । कट ङि जन् अ । कट ङि ज् अ । कट ङि ञ । कट ज । कटज मु । कटज ॥ पङ्क ज्ञात , पङ्कज । वारिणि जात , वारिज । उपसरे जात , उपसरज

पञ्चम्यामजातो ३।२।६८

प० वि०—पञ्चम्याम् ७।१ अजातो ७।१ स०—न जातिरिति अजाति तस्याम् अजातो ॥

अर्थ—[ङ] अजातिवाचिनि पञ्चम्यन्त उपपदे जनेर्घातोर्ङं प्रत्ययो भवति भूते । (अजातिवाची पञ्चम्यन्त सुबन्त के उपपद रहन पर वन् घातु से 'ङ' प्रत्यय हाता है भूतकाल में)

उत्पा०—सस्कारज , गोमयज , दु रज ।

सि०—संस्काराज्जात इति संस्कारज । संस्कार ङसि जन् ङ । संस्कारज । गोमयज । गोमयाज् जायते वृश्चिक इति ॥

निष्ठा ३।२।१०३

प० वि०—निष्ठा १।१

अर्थ—गतोर्भूते निष्ठाप्रत्ययो भवति । (घातु स भूतकाल में निष्ठा प्रत्यय हाता है)

उत्पा०—स्तक्तवत् निष्ठा (१ १ २५) क्त—कृत । कृतौ । कृता । कृतम् । कृती । कृतान् । कृतेन । कृताभ्याम् । कृतै । कृता । कृते । कृता ।

१—द्वित्वकरणसामर्थ्यादिमस्यापि टलोपो भवति (भाष्येष्टि)

कृताम् । कृते । कृता । कृतया । कृताभ्याम् । कृताभि । कृतम् । कृते ।
 कृतानि । कृतम् । कृत । कृतानि । भिन्न । छिन्न । द्राण । म्लान ।
 लून । जीन । उक्लून । शुष्क । पक्व । क्षाम । भावित । हितम् ।
 दत्त । क्तवतु—कृतवान् । कृतवन्तौ । कृतवन्त । कृतवन्तम् । कृतवन्तौ ।
 कृतवत । कृतवता । कृतवद्भ्याम् । कृतवद्भि । कृतवती । कृतवत्यौ ।
 कृतवत्य । कृतवतीम् । कृतवत्यौ । कृतवती । कृतवत्या । कृतवतीभ्याम् ।
 कृतवतीभि । कृतवत् । कृतवती । कृतवन्ति । कृतवत् । कृतवती
 कृतवन्ति ॥ भिन्नवान् । छिन्नवान् । द्राणवान् । म्लानवान् । लूनवान् ।
 जीनवान् । उक्लूनवान् । शुष्कवान् । पक्ववान् । क्षामवान् ।
 भावितवान् । हितवान् । दत्तवान् ॥

सि०—कृत । कृकृञ् । कृ क्त । कृ त । कृ त^१ । कृत^२ । कृत सु ।
 कृत ॥ कृतौ । कृत औ^३ । कृत^४ औ । कृतौ^५ । कृत जस् । कृता^६ ।
 कृत अम् । कृतम्^७ । कृतौ । कृतान् । कृत शस् । कृत अस् । कृतास्^८ ।
 कृतान्^९ । कृतेन । कृत टा । कृत इन^{१०} । कृतेन^{११} । कृताभ्याम् । कृत
 भ्याम् । कृता^{१२} भ्याम् । कृत भिस् । कृत ऐस्^{१३} । कृतैस् । कृतै ॥
 कृत टाप्^{१४} । कृत आ । कृता^{१५} सु । कृता स् । कृता^{१६} । कृते । कृता
 औ । कृता शी^{१७} । कृता इ । कृते^{१८} । कृता जस् । कृता^{१९} । कृता अम् ।
 कृताम् । कृते । कृता शस् । कृता अस् । कृतास् । कृता ॥ कृता टा ।
 कृते^{२०} आ । कृतया । कृताभ्याम् । कृताभि ।

१—घाघघातुक क्षप (३ ४ ११४) घाघघातुकस्यड वलादे (७ २
 ३५) एकाच उपदेशश्रुदात्तात् (७ २ १०) ४—सावघातुकाघातुकयो (७
 ३ ८४) क्विति च (१ १ ५) ३—वृद्धिरचि (६ १ ८५) प्रथमयो पूव
 सवण (६ १ ९८) ४—नादिचि (६ १ १००) ५—वृद्धिरचि (६ १
 ८५) वृद्धिरादच् (१ १ १) स्थानऽतरतम (१ १ ४९) ६—प्रथमयो पूव
 सवण (६ १ ९८) ७—घनि पूव (६ १ १०३) ८—तस्माच्छ्रौ न
 पुसि (६ १ ९६) ९—टाडसिडसामिनास्या (७ १ १२) १०—घाद्गुण
 (६ १ ८४) ११—मुपि च (७ ३ १०२) १२—घनो भिस् एम (७ १ ९)
 घनकालिस्त्वस्य (१ १ ५४) १३—घजाद्यतष्टाप् (४ १ ४) १४—मक सवण
 वीप (६ १ ९७) १५—हल्ङ्याग्न्यो दीर्घान् मुत्तिस्वपुक्त्वा हल् (६ १ ६६)
 १६—घोर् घाप (७ १ १८) घनकालिस्त्वस्य (१ १ ५४) १७—घाद्गुण
 (६ १ ८४) १८—घादि घाप (७ ३ १०५)

कृतम् । कृत सु । कृत अम् । कृतम् । कृते । कृत औ । कृत शी^१ ।
कृत ई । कृते । कृतानि । कृत जस् । कृत शि^२ । कृत नुम्^३ इ । कृतन्
इ । कृतान्^४ इ । कृतानि । कृतम् । कृते । कृतानि । कृतेन । कृताभ्याम् ।
कृतै ॥

भिन्नः ॥ भिदिर् क्त । भिद् त । भिन्^१ सु । भिन्न । छिदिर् ।
छिद् क्त । छिन्न ॥ द्राण । द्रा क्त । द्रा त । द्रा न^१ । द्राण^१ ।
द्राण सु । द्राण ॥ म्लान । म्लै म्लै हर्षक्षये । म्लै क्त । म्ला त ।
म्लान^१ । म्लान सु । म्लान ॥ लून । लून् । लू क्त । लू त । लू
न^१ । लून सु । लून ॥ जीन । ज्या वयोहानी । ज्या क्त । ज्या त । जू
इ^२ आ त । जि आ त । जि^३ त । जी^४ त । जी न^१ । जीन सु ।
जीन ॥ उच्छून । दुश्चोश्री गतिवृद्धयो । श्री क्त । श्वी त । श् उ^१
ई त । शु ई त । शु^२ त । शू^३ त । शून^४ । शून सु । शून । उन्
शून । उच् शून^१ । उच् छून^२ । उच्छून ॥ शुष्क । शुप् क्त ।
शुष्क^३ सु । शुष्क । पक्व । पक् क्त । पक् त । पक् र^१ । पक् व ।
पक्व सु । पक्व ॥ क्षै क्त । क्षा^१ त । क्षा म^२ । क्षाम सु । क्षाम ॥
भाषित । भ् णिच् क्त । भौ उ त । भाव् इट् त । भाव् उ त । भावित
सु । भावित ॥ हितम् । हुधाब् । धा क्त । वा त । हि त^१ । हित
सु । हित अम् । हितम् ॥ दत्त । दा क्त । दा त । दद्^२ त । दत्^३
त । दत्त सु । दत्त ॥

१—नपुंसकाच्च (७ १ १६) २—जइसतो णि (७ १ २०)
अनवात्सित सवस्य (१ १ ५४) ३—णि सवनाभस्यानम् (१ १ ४२)
नपुंसकस्य भलच (७ १ ७२) मिदचोऽत्यात्पर (१ १ ४६) ४—सव-
नामस्थाने चासम्बुद्धौ (६ ४ ८) ५—रदाम्या निष्ठातो न पूर्वस्य च द
(८ २ ४२) ६—सयोगादरातो धातोयञ्चत (८ २ ४३) अटकु-
ष्वाङ्गुम् (८ ४ २) ७—त्वादिभ्यश्च (८ २ ४४) ८—ग्रहिज्यावयि०
(६ १ १६) इग्यण सम्प्रसारणम् (१ १ ४४) ९—सम्प्रसारणाच्च (६
१ १०४) १०—हल (६ ४ २) ११—वचिस्वणियजादीना णि त (६ १
१५) इग्यण सम्प्रसारणम् (१ १ ४४) १२—घोदितश्च (८ २ ४५)
१३—स्तो वृत्ता वृत् (८ ४ ३६) १४—गरजोऽटि (८ ४ ६२) १५—
शुप व (८ २ ५१) १६—पचो व (८ २ ५२) १७—प्रादेव उपदेश०
(६ १ ४४) १८—शायो म (८ २ ५३) १९—दधातेहि (७ ४ ४२)
२०—दो ददधो (८ ४ ४६) २१—वरि च (८ ४ ५४)

कृतवान् । कृतवत् । कृतवत्सु । कृतवान् स् । कृतवा
 नुम् त्स् । कृतवान्त्स् । कृतवान् । कृतवत् डीप् । कृतवतीसु ।
 कृतवती । कृतवती । कृतवती जस् । कृतवती । कृतवन्ति । कृतवत्
 जस् । कृतव नुम् त् शि । कृतवन्त् इ । कृतवन्ति ॥

लुङ् ३।२।११०

५० वि०—लुङ् १।१

अर्थ—[भूते] धातोर्भूते लुङ् प्रत्ययो भवति । (धातु सं भूतकाल में
 लुङ् प्रत्यय होता है)

उदा०—अचैपीन्, अचैष्टाम्, अचैषु । अचैपी, अचैष्टम्,
 अचैष्ट । अचैषम्, अचैष्य, अचैष्य । अनापीन् । अकार्षाम् । अकार्षु ।
 अकार्षी । अकार्षम् । अकार्ष । अकार्षम् । अकार्ष । अकार्षम् ।

सि०—अचैपीत् । चिच् । चि लुङ् । चि ल् । चि तिप् । चि च्छि
 तिप् । चि सिच् ति । चै स् ति । चै प् ति । चै प् ति । चै प् ति । चैप् ईट्
 त् । चैप् ईत् । अट् चैपीन् । अ चैपीन् । अचैपीत् । अचैप् तस् ।
 अचैष ताम् । अचैष्टाम् । अचैष् मि । अचैष् जुस् । अचैषु ।
 अचैषु ॥

अनद्यतने लङ् ३।२।१११

५० वि०—अनद्यतने ७।१ लङ् १।१ स०—न त्रिद्यतेऽद्यतनोऽस्मिन्
 सोऽनद्यतनस्तस्मिन् (बहु०) ।

अर्थ—अनद्यतनभूतेऽर्धे वर्तमानाद् धातोर्लङ् प्रत्ययो भवति ।

१—प्रत्वस तस्य चाधातो (६ ४ १४) २—उदिश्वा मवनामस्थानेऽधाता (७
 १ ७०) मिदवाऽप्रत्यापर (१ १ ४६) ३—उगितश्च (४ १ ६) ४—
 ननु सप्तम्य भनच (७ १ ७२) ५—घाघंधानुक्त्वात्वादे (७ २ ३५)
 गवाच उपदेशःपुदात्तान् (७. २ १०) मिधि वृद्धि परम्भेपेपु (७. २ १)
 इना युग्वृद्धी (१ १. ३) स्थानऽतरतम (१ १. ४६) ६—इषा
 (८ ३ ५७) आदप्रत्यययो (८ ३ ५६) ७—इतश्च (३ ४ १००)
 अष्टव एवान्प्रत्यय (१. २ ८१) अतिमिचाऽश्वने (७. ३ ६६) आघनो
 टकिती (१. १ ४५) ८—तस्यस्यमिवा तातताम (३ ४ १०१) ९—पुना
 ट् (८ ८ ४०) १०—मिजग्मस्तविदिग्मश्च (३ ४ १०६) अन्वाङ्गिग-
 वंस्य (१. १ ४४)

(जिसमें आज का सम्बन्ध न हो ऐसे भूत धर्म में वर्तमान धातु से लड़ प्रत्यय होता है)

उदा०—अभवत् । अभवताम् । अभवन् । अभवः । अभवतम् ।
अभवत । अभवम् । अभवाव । अभवाम । ऐवत् । ऐथेताम् । ऐयन्त ।
ऐथथाः । ऐथेथाम् । ऐवध्वम् । ऐथे । ऐथावहि । ऐथामहि ।

सि०—अभवत् । भू लङ् । भूल् । भू तिप् । भू ति । भू शप् ति ।
भू अ ति । भो अ ति । भव् अ ति । भवति । भवन्^१ । अट्^२ भवत् ।
अभवत् । अभवताम् । अभव तस् । अमथ ताम् । अभवताम् ॥ अम-
वन् । अमव फि । अमव अन्ति । अमव अन्त्^३ । अमव अन्त्^४ ।
अमवन् । अमवाव । अमव वस । अमवा^५ वस् । अमवाव^६ ।
अमवाम ॥

ऐथत । एथ । एथ् । एथ् लङ् । एथ् ल् । एथ् त । एथ् शप् त ।
एथत । आट् एवत् । आ एवते । ऐवत्^७ । ऐव आताम् । ऐव इयताम्^८ ।
ऐथ इनाम्^९ । ऐथेताम् । ऐथ क् । ऐथ अन्त । ऐथन्त । एथ थास् ।
ऐथथा । ऐथेथाम् । ऐथध्वम् । ऐथे । ऐथ इट् । ऐथ ड । ऐथे । ऐथ
वहि । ऐथावहि । ऐथामहि ।

परोक्षे लिट् ३।२।११५

प० वि०—परोक्षे ७।१ लिट् १।१ स०—अक्षण. परम् इति परोक्षम् ।
इन्द्रियेभ्यः परम् इत्यर्थः । (मयूरकृत्यसनादिवात्समासः)

अर्थ—[अनद्यतने भूते] अनद्यतनभूतपरोक्षेऽर्थे वर्तमानाद् धातो-
लिट् प्रत्ययो भवति । (आज न होने वाले परोक्षभूत में वर्तमान धातु से लिट्
प्रत्यय होता है)

उदा०—वभूव । वभूवतु । उभूवु । वभूविथ । वभूवथु । वभूव ।
वभूय । वभूविथ । वभूविम ।

एधाञ्चक्रे । एधाञ्चक्राते । एधाञ्चक्रिरे । एधाञ्चकृपे । एधाञ्च-
क्राथे । एधाञ्चकृड्वे । एधाञ्चक्रे । एधाञ्चकृवहे । एधाञ्चकृमहे ।

१—इतश्च (३ ४. १००) २—तुङ्लङ्लृङ्द्वङ्कुदात्त (६. ४. ७१)
धाद्यन्तो टकितौ (१. १. ४५) ३—ह्रस्वोऽन्तरा सयोग (१ १. ८) सयोगा-
न्तस्य लोप (८. २ २३) ४—अतो दीपो यजि (७. ३ १०१) ५—नित्य
ङितः (३. ४ ६६) ६—आटश्च (६ १ ८७) ७—आतो ङित (७ २ ८१)
८—लोपो व्योर्बलि (६ १. ६४)

सि०—भू लिट् । भू णल् । भू अ । भू वुक् अ । भूक् भूक् अ ।
भ भूक् अ । भ भूक् अ । व भूक् अ । वभूक् । एधाञ्चक्रे-इत्यस्य
साधनं इजादेश्च० (३. १. १३६) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

लट् स्मे ३।२।११८

प० वि०—लट् १।१ स्मे ७।१

अर्थ—[भूतानद्यतनपरोक्षे भूतानद्यतनपरोक्षे स्मशब्द उपपदे
धातोर्लट् प्रत्ययो भवति । (अनद्यतन परोक्ष भूत में स्म शब्द के उपपद
रहने पर लट् प्रत्यय होता है) ।

उदा०—धर्मेण स्म कुरवो युध्यन्ते । युधिष्ठिरो यजते स्म ।

सि०—युध्यन्ते । युध । युध् लट् । युध् त । युध् श्यन् त । युध्
य त । युध् य त । युध् य ते । युध्यते । युध्येते । युध्यन्ते ।

अपरोक्षे च ३।२।११९

प० वि०—अपरोक्षे ७।१ च अ० ।

स०—न परोक्षम् इति अपरोक्षम् तस्मिन् (नव् तत्पु०)

अर्थ—[स्मे, भूते, अनद्यतने] स्मोपपदे भूतानद्यतनापरोक्षेऽर्थे
वर्तमानाद् धातोर्लट् प्रत्ययो भवति । (अनद्यतन अपरोक्ष भूत में वर्तमान
धातु से स्म शब्द के उपपद रहने पर लट् प्रत्यय होता है) ।

उदा०—देहलीविश्वविद्यालये भाषाविज्ञानविद् आचार्यो गङ्गारामो
मामध्यापयति स्म । उर्मिला अष्टाध्यायी पठनाय वदति स्म ।

सि०—अध्यापयति । इङ् । इ णिच् । इ इ । आ इ । आ पुक् इ ।
आपि लट् । आपि ल् । आपि तिप् । आपि शप् ति । आपि अ ति । आपे
अ ति । आप्य् अ ति । आपयति । अधि आपयति । अध्यापयति ।

वर्तमाने लट् ३।२।१२६

प० वि०—वर्तमाने ७।१ लट् १।१

अर्थ—वर्तमानेऽर्थे वर्तमानाद् धातोर्लट् प्रत्ययो भवति ।

(वर्तमान घट्ट में वर्तमान धातु से लट् प्रत्यय होता है) ।

वर्तमाने इत्यधिकारः उणादयो बहुलं (३।३।१) इतियायत ।

उदा०—परिहृत्प्रवरः केदारनाथशर्मा सारस्वतांऽरिजलभारतीयसंस्कृत-
माहित्यसम्मेलनस्य प्रधानमन्त्रिपदमलङ्करोति । लीलाधरशर्मा तत्र
पर्यालयमन्त्रिरूपेण चिराजते ।

प्रथमगण — भवति, भवत, भवन्ति । भवसि, भवथ, भवथ ।
भवामि, भवाव, भवाम ।

द्वितीयगण — अत्ति, अत्त, अत्न्ति । अत्सि, अत्थ, अत्थ ।
अत्मि, अत्व, अत्म ।

तृतीयगण — जुहोति, जुहुत, जुह्वति । जुहोपि, जुहुथ, जुहुथ ।
जुहोमि, जुहुव, जुहुम ।

चतुर्थगण — दीव्यति, दीव्यत, दीव्यन्ति । दीव्यमि, दीव्यथ,
दीव्यथ । दीव्यामि, दीव्याव, दीव्याम ।

पञ्चमगण — मुनोति, मुनुत, मुन्यन्ति । मुनोपि, मुनुथ, मुनुथ ।
मुनोमि, मुनुव, मुन्य, मुन्य, मुन्य, मुन्य ।

षष्ठगण — तुदति, तुदत, तुदन्ति । तुदसि, तुदथ, तुदथ । तुदामि,
तुदाव, तुदाम ।

सप्तमगण — रुणद्धि, रुण्य, रुण्द्ध, रुण्यन्ति । रुण्ठिमि, रुण्य,
रुण्य । रुण्ठिमि, रुण्य, रुण्य । रुण्ये, रुण्वाते, रुण्यते । रुण्यसि, रुण्यथे,
रुण्ये । रुण्ये, रुण्यहे, रुण्यहे ।

अष्टमगण — तनोति, तनुत, तन्यन्ति । तनोपि, तनुथ, तनथ ।
तनोमि, तनुव, तन्य । तनुम तन्म ।

नवमगण — क्रीणाति, क्रीणान, क्रीणन्ति । क्रीणासि, क्रीणीय,
क्रीणीथ । क्रीणामि, क्रीणीव, क्रीणीम ।

दशमगण — चोरयति, चोरयत, चोरयन्ति । चोरयसि, चोरयथ,
चोरयथ । चोरयामि, चोरयाव, चोरयाम ।

सन् बुभूषति, बुभूषत, बुभूषन्ति । बुभूषसि, बुभूषथ, बुभूषथ ।
बुभूषामि, बुभूषाव, बुभूषाम ।

यद्-बोभूयते, बोभूयते, बोभूयन्ते । बोभूयन्ते, बोभूयेथे, बोभूयथे ।
बोभूय, बोभूयावहे, बोभूयामहे ।

यद्-बुभूषति, बोभूषति, बोभूषत, बोभूषति । बोभूषपि,
बोभूषपि, बोभूषथ, बोभूषथ । बोभूषमि, बोभूषमि, बोभूषव, बोभूषम ।

सि०—बुभूषति । भू सन्^१ । भू सन्^२ । भू सन्^३ । भू भू सन् । बु

१—घाता कर्मण समानकर्तृकादिच्छाया वा (३ १ ७) २—प्राघघानुक्
क्षप (३ ४ ११४) प्राघघानुक्तस्यङ्कनात् (७. २ ३५) सति ग्रहणुदात्त्वं (७
२ १२) ३—सावघानुक्ताघघानुक्तयो (७ ३ ८५) इको मल (१ १ ६)

भू सन् । वुभूपन् । वुभूप लट् । वुभूप तिप् । वुभूप शप् ति । वुभूपति ।
 वोभवीति । भू । भू यङ् । भू । भू भू । वू भू । वु भू । वो भू ।
 वोभू लट् । वोभू तिप् । वोभू ति । वोभू ईट्^२ ति । वोभू इ ति । वोभा
 ईति । वोभवीति । वोभोति । वोभुवति । वो भू भि । वोभू अति । वोभू
 उवङ्^३ अति । वोभुवति ।

लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ३।२।११४

प० वि०—लट ६।१ शतृशानचौ १।२ अप्रथमासमानाधिकरणे ७।१
 स०—शता च शानच्च इति शतृशानचौ । प्रथमया समानाधिकरणम्
 इति प्रथमासमानाधिकरणम् (वृ० तत्पु०) । न प्रथमासमानाधिकरणम्
 इति अप्रथमासमानाधिकरणम् (नब् तत्पु०) तस्मिन् ।

अर्थ—[नन्वोर्विभाषा इति सूत्रान्मण्डूकप्लुतिन्यायेन विभाषा
 ग्रहणमिहानुवर्तते, अतोऽप्रेय व्यवस्था ज्ञातव्या—प्रथमासमानाधिकरणे
 विभाषा अन्यत्र नित्यमिति] अप्रथमासमानाधिकरणे प्रत्ययार्थे लट
 स्थाने शतृशानचौ प्रत्ययौ नित्य भवत, प्रथमासमानाधिकरणे तु विक-
 ल्पेन भवत ।

(नन्वाविभाषा इति मूत्र स विभाषा की अनुवृत्ति मण्डूकप्लुति न्याय स
 आतो हे । और वह विभाषा व्यवस्थित विभाषा है । इसलिए यहाँ वह व्यवस्था
 समझनी चाहिए कि जब प्रथमाविभक्ति से समान अधिकरण है तब विकल्प से
 शतृ और शानच प्रत्यय हात हँ और जब प्रथमासमानाधिकरण नहीं है तब
 नित्य ही ये दाना प्रत्यय होते हँ)

उदा०—शतृ-पचन्त देवदत्त पश्य । पचता देवदत्तेन कृतम् ।
 पचन्तो देवदत्ता पश्य । पचन्त्या देवदत्तया कृतम् । पचति पचन् वा
 देवदत्त । अस्ति सन् वा ब्राह्मण । करोति कुर्वन् वा ब्राह्मण ।

शानच—पचमान देवदत्त पश्य । पचमानेन देवदत्तेन कृतम् ।
 कुर्माणेन देवदत्तेन दृष्टम् । कुरुते कुर्माणो वा देवदत्त । आस्ते आसीनो
 वा आचार्य ।

सि०—पचन्तम् । डुपचप् । पच् लट् । पच् शट् । पच् अन् । पच
 शप् अत् । पच अ अन् । पचत अम् । पच नुम्^४ त अम् । पचन्त्

विटति च (१. १. ५)

१—दुणो यडलुको (७. ४. ८२) २—यडो वा (७. ३. ६४) ३—प्रचिदनु०
 (६४. ७७) टिप्च (१. १. ५३) ४—डगिदशा सवनामस्थानेऽप्यातो (७. १.

अम् । पचन्तम् । पचन् टा । पचता । पचन्तीम् । पचन्^१ ङीप् । पचन्
 डे । पच नुम्^२ त् डे । पचन्ती अम् । पचन्ताम् । पचन्ती टा । पचन्त्या ।
 पचन् । पचन् सु । पचनुम्^३ न् । पचन् न् । पचन् । पचन् । सन् ।
 अन् लट् । अस् गृह् । अम् अन् । स् अन् । सन् सु । स नुम् त् स् ।
 मन् न् । सन् । मन् । कुर्वन् । ऋ शृह् । कृ ऋ अन् । कृ ऋ अन् । कृर्^४ उ
 अन् । कृर्^५ वन्^६ । कुर्वन् । कुर्वन् सु । कुर्वन् नुम् त् सु । कुर्वन् न् ।
 कुर्वन् । कुर्वन् ॥ पचमानम् । पच् गानच् । पच गप् आन । पच अ
 आन । पच आन । पच मुक्^७ आन । पचमान अम् । पचमानम् ।
 पचमान टा । पचमानेन । कुर्वाणेन । कृ गानच् । कृ आन । कृ उ
 आन । कृर्^८ आन । कृर्^९ आन । कुर्वान् । कुर्वाण । कुर्वाण टा ।
 कुर्वाण टन । कुर्वाणेन । आमीन । आम् शानच् । आन आन । आस्
 टन^{१०} । आमीन सु । आमीन ॥

सम्वाधन च ३।२।१०५

प० वि०—सम्वाधन ७। च अ ।

अर्थ—[लट् गृह् गानच्] सम्वाधन च प्रियत् लट् स्थाने शृह्-
 गानच् प्रत्यया भवत ॥ (सम्वाधन च द्विपय म शृह् प्रीर गानच् प्रत्यय हाठ है)

उत्प—इ पचन । हे पचमान ।

ती नत् ३।२।१०७

प० वि०—ती ३। सन् १।

अर्थ—[शृह् शानच्] ती शत्रुशानचौ नमस्तौ भवत ।

(उम गृह् प्रीर गानच् प्रत्ययों का सम्मता हानी है)

उत्प०—ब्राह्मणस्य करिष्यन् । ब्राह्मणस्य करिष्यमाण ।

सि०—करिष्यन् । कृ लृत् । ऋ ल् । कृ गृह् । कृ अन् । कृ स्य अन् ।

कृ ऋ^१ स्य अन् । कृ उ स्य अन् । कृर्^२ उ स्य अन् । करि स्य अन् ।

७०) मिदचाञ्ज्यात्पर (१ १ ८६)

१—स्त्रियाम् (४ १ ३) उभितस्व (४ १ ४६) २—शब्दयनानित्यम् (७ १

८१) ३—प्रन उन्वाक्यानुक् (६ ८ ११०) उरण् स्पर (१ १ ५०) ४—इहा

पणुचि (६ १ ७५) ५—माऽ मुक् (७ २ ८०) ६—ईदास (७ २ ८३)

माऽ परस्य (१ १ ५३) ७—ऋदधना स्वे (७ २ ७०) ८—साव

करिष्य अत् । करिष्यत् । करिष्य नुम् त् सु । करिष्यन्त् स् । करिष्यत् ।
करिष्यन् । करिष्यमाण । करिष्य मुक्' आन । करिष्यमाण ॥

आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ३।२।१३४

प० वि०—आ अ० । स्वे ५।१ तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ५।१
स०—तस्मिन् शीलम्, तच्छीलम्, धात्वर्थे स्वभावतः प्रवृत्त इत्यर्थः ।
तस्मिन् धर्मा इति तद्धर्मः, तस्मिन् स्वभावेन विनापि प्रवृत्त इत्यर्थः
तत्साधुकारी । तस्मिन् कार्यकरणे शिल्पी इत्यर्थः ।

अर्थ—आ 'भ्राजभासधुर्विद्य तोर्जिपजु' प्राक्भुव विवप्' इत्येतस्माद्
ये प्रत्यया विहिता ते सर्वे तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु कर्तृषु भवन्ति
इत्यधिकारो वेदितव्यः ॥

(भ्राजभासधुर्विद्यनाजिपजुगावस्तुव विवप इस सूत्र को लेकर, यहाँ से जो
प्रत्यय विधान किये जात हैं व सभी तच्छील अर्थान् धात्वर्थ में स्वभाव से
प्रवृत्ति तद्धर्म अर्थान् विना भी स्वभाव क किसी कार्य में प्रवृत्ति, तत्साधुकारी
अर्थान् किसी काम को मुदरता से करना इन अर्थों में होते हैं ऐसा अधिकार है)

तृन् ३।२।१३५

प० वि०—तृन् १।१

अर्थ—वर्तमानकाले धातुभ्यस्तृन् प्रत्ययो भवति तच्छीलान्दिषु
कर्तृषु । (तच्छीलान्दि कर्ता अथ में धातु स वर्तमानकाल में तृन् प्रत्यय होता है)

उदा०—तच्छीले—परुष वदिता । कठोर वदिता । तद्धर्मणि—वेदा
नुपदेशः । धर्ममुपदेशः । तत्साधुकारिणि—कट कर्ता । ओदन पत्ता ।

सि०—वद् व्यक्ताया वाचि । वद् तृन् । वद् तृ । वद् इट् तृ ।
वदितृ । वदितृ सु । वदिन् अनङ् सु । वदितन् स् । वदितान स् । वदि-
तान । वदिता ।

ग्लाजिस्थश्च वस्तु ३।२।१३६

प० वि०—ग्लाजिस्थ १।५।१ च अ० । वस्तु १।१ स०—ग्लाश्च
जिश्च स्थश्च इति ग्लाजिस्था, समाहारद्वन्द्वेऽपि नतु सकृत्
न द्र० २।४।७८ तस्मान् ।

अर्थ—[भुवश्च] ग्ला जि म्या इत्येतेभ्यो धातुभ्यो भवतेश्च तच्छी-
लान्दिषु कर्तृषु वर्तमाने वस्तु प्रत्ययो भवति ।

(ग्ला जि स्या घोर भू धातुप्रा म तच्छीलादि कर्ता प्रथ म वर्तमान काल म वस्तु प्रत्यय हाता है)

उदा०—ग्लास्नु । जिघ्नु । ग्गस्नु । भूष्नु ।

सि०—ग्ले । ग्ला^१ वस्तु ग्लाम्नु । जि स्नु^२ । जिघ्नु । ग्ग-
स्नु । भू स्नु । भू ष्नु । भूष्नु ।

क्षिगि चाय प्रत्ययो न किन् । तेन स्था इत्यत्र घुमाम्धा० (६।४।६६)
इति ईकारा न भवति ।

जागुरूकः ३।२।१६५

प० वि०—जागु ५।१ उक् १।१

अर्थ—जागर्त्तरूक प्रत्यया भवति तच्छीलादिषु कर्तृषु वर्तमानकाल ।
(वर्तमान काल में जागु वातु से ऊक प्रत्यय हाता है तच्छीलादि कर्ता
ग्रथ में)

उदा०—जागरूक ।

सि०—जागृ उक् । जागर् उक् । जागरूक ।

सनाशसभिक्ष उः ३।२।१६८

प० वि०—सनाशसभिन् ५।१ उ १।१ स०—सश्च आशसश्च
भिट् च इति सनाशसभिट् तस्मात् ।

अर्थ—सन्नन्तेभ्य आशस-भिक्षिभ्याञ्च धातुभ्या तच्छीलादिषु
कर्तृषु उ प्रत्ययो भवति वर्तमानकाले ।

(मन्त घाड शक्ति इच्छाया घोर भिक्ष धातु से तच्छीलादि कर्ता अर्थ
में वर्तमान काल म उ प्रत्यय होता है)

उदा०—कट् चिकीर्षु । व्याकरण पिपठिषु । आशसु । भिक्षु ॥

सि०—चिकीर्षतीति चिकीर्षु । कृ सन् । कृ सन् । कृ सन् । क
सन् । किर् मन् । कीर् सन् । कीर् कीर् स । की कीर् स । कि कीर्
स । चिकीर्ष । चिकीर्ष उ । चिकीर्ष^२ उ । चिकीर्षु । चिकीर्षु सु ।
चिकीर्षु ॥ पिपठिषु ॥ आशसु । शसि । शस् । श नुम् स् । शन्स् ।
शस् उ । शसु ॥

१—आदेव उपदेशसिति (६ १ ४४) २—सावधातुकाधधातुवयो (७
३. ८४) इति सूत्रेण युगे प्राप्ते विडति च (१ १ ५) इत्यनन कित्वाद्गुण ।
३—अतो लोप (६ ४ ४८)

स्थेशभासपिसकसो वरच् ३।२।१७५

प० वि०—स्थेराभासपिसकसः ५।१ वरच् १।१ स०—स्थाश्च ईशश्च भासश्च पिसश्च कश्च इति स्थेशभासपिसकः, तस्मान् ।

अर्थ—स्था, ईश, भास, पिस कस् इत्येतेभ्यो धातुभ्यस् तच्छी-लादिपु कर्तृपु वर्तमानकाले वरच् प्रत्ययो भवति । (स्था, ईश, भास, पिस कम् धानुग्रो से तच्छीलादि कर्ता अर्थे मे वर्तमान काल मे वरच् प्रत्यय होता है)

उदा०—स्थावरः । ईश्वरः । भास्वरः । पेम्बरः । विकृत्वरः ।

भ्राजभानधुर्विद्युतोर्जिपजुग्रावस्तुवः विवप् ३।२।१७१

प० वि०—भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपजुग्रावस्तुवः ५।१ विवप् १।१ स०—भ्राजश्च भासश्च धुर्विश्च द्युतश्च ऊर्जिश्च पृ च जुश्च गावस्तुश्च इति भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपजुग्रावस्तु, तस्मान् कश्चि श्नुधातु-ध्रुवामिति ल्यङादेशः

अर्थ—भ्राज-भास धुर्वि-द्यु त-ऊर्जि-प-जु-गावस्तु इत्येतेभ्यो धातुभ्यः विवप् प्रत्ययो भवति तच्छीलादिपु कर्तृपुर्वेषु । (भ्राज, भास, ध्रुवं, द्यु, ऊर्जं, प, जु घोर प्राव उपपद पूर्वक स्तु इन धातुग्रो से तच्छीलादि कर्ता अर्थे मे विवप् प्रत्यय होता है)

उदा०—भ्राज्-विभ्राट् । विभ्राट् । विभ्राजी । विभ्राजः । विभ्राजम् । विभ्राजी । विभ्राजः । विभ्राजा । विभ्राड्भ्याम् । विभ्राड्भिः ॥

भास्—भाः । भासी । भासः । भासम् । भासी । भासः । भासा । भास्याम् । भाभिः ।

धुर्व्—धूः । धुरी । धुरः । धुस् । धुरी । धुरः । धुरा । धूर्याम् । धूर्भिः ।

द्युत्—द्युन् । द्युती । द्युतः । द्युतम् । द्युती । द्युतः । द्युता । द्युत्याम् । द्युद्भिः ॥

ऊर्ज्—ऊर्क । ऊर्ग । ऊर्जा । ऊर्जः । ऊर्जम् । ऊर्जा । ऊर्जः । ऊर्जा । ऊर्ज्याम् । ऊर्जिभिः ।

पृ—पूः । पूरा । पूरः । पूरम् । पूरी । पूरः । पूरा । पूर्याम् । पूर्भिः ॥

जु—जूः । जूवाः । जूवः । जूवम् । जूवी । जूवः । जूवा । जूव्याम् । जूभिः । वचिश्चद्वयायतस्तु कटप्रजुभीणां दीर्घश्चेति वक्तव्यम् इत्यनेन जूरित्यत्र दीर्घत्वम् ॥

प्रावन्तु-प्रावस्तुन् । प्रावस्तुती । प्रावन्तुतः । प्रावन्तुद्भ्याम् ।

प्रावस्तुद्भिः ॥

सि०—विभ्राट् । भ्राज् क्विप् । भ्राज सु । भ्राप् सु । विभ्राट् ।
विभ्राट् ॥

भाभ्याम् । भास् भ्याम् । भार् भ्याम् । भाभ्याम् । धूः । धुर्व्
क्विप् । धुर्व् । धुर् । धुर् सु । धूर् म् । धूर् । धूः । ऊर्ज् ।
ऊर्ज् । ऊर्ज् । पूः । पू क्विप् । पूर् । पूर् सु । पूः ॥

जूः । जुवा । जूटा । जुवत् आ । जुव् वा । जुवा । प्रावस्तुन् ।
प्रावस्तु क्विप् । प्रावस्तु तुक् । प्रावस्तुन् । प्रावस्तुन् सु । प्रावस्तुन् ॥

अन्येभ्योऽपि दृश्यते ३।२।१७८

प० वि०—अन्येभ्यः १।३ अपि अ० । दृश्यते । क्रिया० ।

अर्थ—[क्विप्] अन्येभ्योऽपि धातुभ्यः क्विप् प्रत्ययो दृश्यते तच्छ्री-
लादिषु कर्तृषु वर्तमानकाले । (अन्य धातुषो मे भो तच्छ्रीलादि कर्ता के अर्थ
मे क्विप् प्रत्यय देखे जाते हैं)

उदा०—छिन् । भिन् ।

सि०—छिदिर् । छिद् क्विप् । छिद् । छिद् सु । छिद् । छिद् ।
छिद् । छिद्दी । छिदः । भिद् । भिन् । भिद्दी । भिदः ॥

भुवः सज्ञान्तरयोः ३।२।१७९

प० वि०—भुवः १।१ सज्ञान्तरयोः ७।२ स०—सज्ञा च अन्तरश्च
इति सज्ञान्तरो तयोः ।

अर्थ—[क्विप्] भवतेधातोः सज्ञायाम् अन्तरे च गम्यमाने क्विप्
प्रत्ययो भजति तच्छ्रीलादिषु कर्तृषु । (भू धातु से सज्ञा या अन्तर गम्यमान
हो तो क्विप् प्रत्यय होता है तच्छ्रीलादि कर्ता अर्थ मे)

उदा०—संज्ञायाम्—विमूर्ताम कश्चित् । अन्तरे—प्रतिभू छिधनिका-
धमर्गयोरन्तरे यस्तिप्रति स प्रतिभूरुच्यते ३

१—प्रस्वभ्रस्वगृजमृज० (८. २. ३६) २—कदा जसोऽन्ते (८. २. ३६)
३—वावगाने (८. ४. ५५) ४—स्वादिष्यगवंनामस्याने (१. ४. १७) सग-
जुयोः ५ (८. २. ६६) ५—राल्लोपः (६. ४. २३) ६—हृत्ति ष (८. २. ७७)
७—चोः कुः (८. २. ३०) ८—उद्योऽम् पूर्वस्य (७. १. १०२) उरगु रपरः
(१. १. ५०) ९—क्विपन्त धातुव न जहाति इति धातुत्वान् क्विपन्तुधातुध्रुवा
मोर्दिपदवटो (६. ४. ७७)

अत्तिलूधूसूखनसहचर इत् ३।२।१८४

प० वि०—अत्तिलूधूसूखनसहचर ५।१ इत् १।१ स०—अत्तिश्च लूधुश्च सूखश्च सहचर इति अत्तिलूधूसूखनसहचरत् तस्मात् ।

अर्थ—[करणे] ऋ गतौ । लूज छेदने । धू विधनने । पू प्रेरणे । खनु अवतारणे । पह मर्पणे । चर गतिभक्षणयो एतेभ्यो धातुभ्य करणे कारके इत् प्रत्ययो भवति । (ऋ लू धू पू खनु पह और चर इन धातुओं से करण कारक म इत् प्रत्यय हाता है)

उत्पा०—अरित्रम् । लवित्रम् । धवित्रम् । सवित्रम् । खनित्रम् । सहित्रम् । चरित्रम् ।

वीत क्त ३।२।१८७

प० वि०—वीत ५।१ क्त १।१ ॥ स०—वि इत् यस्य सो वीत् तस्मात् ।

अर्थ—[वर्तमाने] वीतो धातोर्वर्तमानऽर्थे क्तप्रत्ययो भवति । (वि हे इत् जिसका एसे धातु से वर्तमान काल के अर्थ म क्त प्रत्यय होता है)

उत्पा०—मिन् । द्विण्ण । धृष्ट ।

सि०—मिन् । विमिन्ना स्नेहने । मिद् क्त । मिद् त । मिन् न । मिन्न । मिन्न सु । मिन्न ॥ विक्षिन्ना । क्षिद् क्त । क्षिद् त । क्षिन् न । क्षिण्ण न । द्विण्ण । द्विण्ण सु । द्विण्ण ॥

धृष्ट । विधृषा । धृप् क्त । धृप् त । धृप् त । धृष्ट । धृष्ट ॥

मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च ३।२।१८८

प० वि०—मतिबुद्धिपूजार्थेभ्य ५।३ च अ० । स०—मतिश्च बुद्धिश्च पूजार्थे इति मतिबुद्धिपूजा । अर्थश्च अर्थश्च अर्थश्च इति अर्था । मतिबुद्धिपूजा अर्था यथा धातूनामिति मतिबुद्धिपूजार्था तेभ्य ।

अर्थ—[क्त] मत्यर्थेभ्यो बुद्ध्यर्थेभ्य पूजार्थेभ्यश्च धातुभ्यो वर्तमाने अर्थे मत्प्रत्ययो भवति । (मत्यथक् बुद्धयथक् और पूजाथक् धातुओं से वर्तमानकाल के अर्थ म क्त प्रत्यय होता है)

उत्पा०—मतिरिच्छा । राज्ञा मत । राज्ञामिष्ट । बुद्धिज्ञानम् । राज्ञा बुद्ध । राज्ञा ज्ञात । पूजा सत्कार । राज्ञा पूजित । राज्ञामर्चित ।

सि०—मत । मन् क्त । मन् त । मन् त । मत सु । मत । इष्ट । इप् क्त । इप् त । इष्ट । इष्ट सु । इष्ट । बुद्ध । बुन् क्त । बुध त ।

१—धनुःतापदे० (६ ५ ३७) बुधनासिक्तावचनोऽनुनासिक
(१. १ ८) २—पुना पु (८ ५ ५१)

बुध् ध' । बुद् ध । बुद्ध सु । बुद्ध । ज्ञात । ज्ञा न । ज्ञान ।

पूजित । पूज् क्त । पूज् त । पूज् इट् त । पूजित । अर्चित
अर्च् इट् त । अर्चित ।

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया तृतीयाध्याये द्विंताय पाद

उणादयो बहुलम् ३।३।१

प० वि०—उणादय १।३ बहुलम् १।१

स०—उण् आदिर्यपा ते उणादय । बहून् अपान लाताति बहुलम् ।

अर्थ—[वर्तमाने] उणादय प्रत्यया वर्तमानकाले वातुभ्यो बहुल
भवन्ति । (धातुघा म उण इत्यादि प्रत्यय वर्तमानकाल में बहुत करक हात हैं)

बहुलशब्दस्य कोऽर्थादुच्यते—

कचचित्प्रवृत्ति क्वचिदप्रवृत्ति क्वचिद्विभाषा कचचिदन्यत्रेव ।

विधेर्निधान बहुधा समीक्ष्य चतुर्विध ग्राह्यत्वं वदन्ति ॥

(कही काय की प्रवृत्ति जाना, कही न जाना, कहा विकल्प न काय जाना
कही पर अन्य क स्थान पर घ व काय का हा जाना यह चार प्रकार का काय
बाहुनक कहाता है ।

उदा०—कृत्रावाजिमिस्त्रन्सिन्साध्यशून्य उण् (उणा० १।१।) कार् ।
वायु । पायु । जायु । मायु । ग्राहु । सायु । आयु । स्त्रिन्त्रचि
प्रच्छिन्त्रिन्त्रुप्रुजा दीर्घोऽमप्रसारण च (उणा० २।७) वान् । प्राट्
शाट्प्राट् । श्री । स्रू । ड्रू । कट्रू । जू ।

साधु । साध्नाति वग्ये कर्म इति मायु मञ्जन । सायु । मायु ।
साधन । मायुम् । मायु । साधून । । साधुना । मायुभ्याम् । मायुभि ।
सायये । साधुभ्याम् । साधुभ्य । साया । साधुभ्याम् । साधुभ्य ।
साधा । साया । साधूनाम् । सायो । साधो । साधुयु । साया ।
साधू । हे साधय ।

वाक्, वाग् । वायो । वाच । वाचम् । वायो । वाप । वाभा ।
वाग्भ्याम् । वाग्भि । वाचे । वाग्भ्याम् । वाग्भ्य । वाप । वाग्भ्याम्
वाग्भ्य । वाच । वायो । वाचाम् । वाचि । वाचो । वाग् ।

शब्दप्राट्, शब्दप्राड् । शब्दप्राशौ । शब्दप्राशः । शब्दप्राशम् ।
शब्दप्राशौ । शब्दप्राशः । शब्दप्राशा । शब्दप्राड्भ्याम् । शब्दप्राडिभ ।

ॐ अत्रायं विवेक — क्विपि छवोः शुडनुनासिके च (६।४।१८) इति
शकारे 'शब्दप्राश्' प्रातिपदकम्, विचि (३।२।७५) तु शब्दप्राच्छ् ।
तस्य शब्दप्राट् शब्दप्राच्छौ, शब्दप्राच्छः इति रूपाणि भवन्ति ।

श्रीः । श्रियौ । श्रियः । श्रियम् । श्रियौ । श्रियः । श्रिया ।
श्रीभ्याम् । श्रीभिः । श्रिये, श्रियै । श्रीभ्याम् । श्रीभ्यः । श्रियः, श्रियाः ।
श्रीभ्याम् । श्रीभ्यः । श्रियः, श्रियाः । श्रियोः । श्रियाम्, श्रीणाम् । श्रियि,
श्रियाम् । श्रीयोः । श्रीषु । हे श्रीः । हे श्रियौ । हे श्रियः । एवं स्त्रू, प्रू,
कटप्रू, जू इत्यादयः बोधनीयाः ।

सि०—करोतीति कारुः शिल्पी वा । कारुः । डुकृञ् । कृ ङ् । कृ
उ । कार् उ । कारु सु । कारुः । वायुः । वाति गच्छति जानातीति वायुः
पवनः परमेश्वरो वा । वा ङ् । वा ट । वा युक् ट । वाय् उ । वायु सु ।
वायुः । वायू । वायवः ।

वाक् । धक्ति शब्दानुच्चारयति यया सा वाक् । वच् क्विप् । वाय् ।
वाक् । वाग् । वाक् ॥

प्राट्, शब्दप्राट् । पृच्छतीति प्राट् । शब्दं पृच्छतीति शब्दप्राट्
शिष्यो वा । श्रीः । श्रयति श्रीयते वा सा श्रीः, ईश्वररचना शोभा वा । द्रू ।
द्रूयते प्राप्यते दुःखमनया इति द्रूः हिरण्य वा । कटप्रूः । कटेन कटिभागेन
प्रयते गच्छतीति कटप्रूः, कामुको जनः कीटो वा । जूः । जवति शीघ्रं
गच्छतीति जूः । शशोऽश्वो वृषभ आकाशं विद्या वा ।

साधुः । साधु सु । साधु श्रौ । साधू* । साधु जस् । साधो^२ अस् ।
साधय्^३ अस् । साधवः । साधु अम् । साधुम्* । साधू । साधु शम् ।
साधु अस् । साधून्* । साधून्* । साधु टा । साधु ना* । साधुना ।
साधु ङं । साधो^६ ए । साधव् ए । साधवे । साधु ङसि । साधु अस् ।
साधोस्* । माधोः । साधु ओम् । साधोस् । साध्वोः । साधु आम् ।

१—प्रथमयोः पूर्वसदसः (६. १. ६८) २—जति च (७. ३. १०९)

३—एचोऽनवायावः (६. १. ७८) ४—अभि पूर्व. (६. १. १०७) ५—

प्रथमयोः पूर्वसदसः (६. १. ६८) ६—तस्माच्छशो नः पुंसि (६. १. ६६)

७—घाटो नाऽस्त्रियाम् (७. ३. १२०) ८—सोपो ध्यसिष्ठ (१. ४. ७) धेडिति

(७. ३. १११) ९—उगिटमोरध (६. १. ११०)

साधु नुट्^१ आम् । साधु नाम् । साधुनाम्^२ । साधु ङि । साय^३
 औ । सायो^४ । साधु मुप् । साधु सु । साधु पु । साधुपु । साधु सु ।
 साधो^५ स । साधो^६ ॥

वाच् क्विप् । वाच् । वाक्^७ । वाग्^८ । वाक्^९ । वाच् औ । वाचो
 गञ् अम् प्रच्छ् क्विप् । शञ्द्राच्छ् । शञ्द्राश्^{१०} शञ्द्राप्^{११} ।
 शञ्द्राह्^{१२} । शञ्द्राह् सु । शञ्द्राह् म् । शञ्द्राह् । शञ्द्राह्^{१३} ।
 शञ्द्राग् औ । शञ्द्राशी । शञ्द्राश्^{१४} न्याम् । शञ्द्राप्^{१५} न्याम् ।
 शञ्द्राह् न्याम् ।

श्री । श्री औ । श्र् ड्यन्^{१६} औ । श्रिप् औ । श्रियो । श्रिये,
 श्रियै । श्री ङे । श्रिय् ण । श्रिय् आद्^{१७} ण । श्रिया ण । श्रियै^{१८} ।
 श्रियाम् । श्री आम् । श्री नुट्^{१९} आम् । श्रियि, श्री ङि । श्रियाम् । श्री
 ङि । श्री आम् । श्रिप् आम् । श्रियाम् ॥

भूतेऽपि दृश्यन्ते ३।३।०

प० त्रि०—भूते ७।१ अपि अ० । दृश्यन्ते त्रिया० ।

अर्थ—[उणादय] उणादयो भूते कालेऽपि दृश्यन्ते । (उण् आदि प्रथम
 कृतकाल में भी दृश्य जात ह)

उदा०—वर्म । चर्म । भस्म । सर्पघातुभ्यो मनिन् (उणा० ४।१४५)

सि०—वृत्तम् इदं वर्त्म । वृत्तु मनिन् । वृत् मन् । वर्न् मन् । वर्न्
 मन् । वर्त्मन् सु । वर्त्म^{२०} । चर्म । चरित तदिनि चर्म । चर गतिभङ्ग-
 णयो । चर् मनिन् । चर्मन् । चर्म । भस्म । भसित दीपितम् इति । भस
 भक्षणदीप्त्यो^{२१} । भस्मन् । भस्म ।

१—ह्रस्वनघापो नुट (७ १ ५४) घाघन्तो टकितौ (१ १. ४६)

२—नामि (६ ४ ३) ३—घञ्च वे (७ ३ ११६) ४—वृद्धिरेषि

(६ १ ८८) ५—ह्रस्वस्य युग (७ ३ १०८) ६—एङ्ह्रस्वात्मबुद्धे

(६ १ ६७) ७—चो कु (८ २) ८—कृता जघोऽन्त (८ २ ३१)

९—वावमान (८ ४ ५६) १०—च्ययो गूढनुनासिक च (६ ४ १६) ११—

वदश्चभ्रस० (८, ० ३६) १२—श्वादिभ्रमरनामस्थान (१. ४ १७) १३—

विदबन् धातुश्च न जहाति अत एव धातुत्वात् अथि स्तुधानुभ्रूया च्वादिभ्र-
 वदो (६ ४. ७७) १४—इति ह्रस्वश्च (१ ४ ६) घाण्णया (७ ३ ११२)

१५—माटश्च (६ १ ६०) १६—वामि (१ ४ ५) १७—नवान० (८ २ ७)

१ घ्राहृराचायी—भगधाना भस्मन इत्यसौ नवीन भण्ण इति तु प्राची-

भविष्यति गम्यादयः ३।३।३

प० वि०—भविष्यति ७।१ गम्यादयः १।३ स०—गमी आदि-
र्येपान्ते गम्यादयः ।

अर्थ—गम्यादयः शब्दाः भविष्यति काले सावयो भवन्ति ।
(गमी इत्यादि शब्द भविष्यन् काल में साधु हाते हैं)

उदा०—गमी । आगामी । भावी ।

सि०—गमेरिनि. (उणा ४।६) गमिष्यतीति गमी पथिको या । गम्
इन् । गमिन् । गमिन् सु । गमीन् स् । गमी । आङि णिन् (उणा०
४।७) आ गमिष्यतीति आगामी ॥ भुवश्च (उणा० ४।८) भविष्यतीति
भावी ।

यावत्पुरानिपातयोर्लट् ३।३।४

प० वि०—यावत्पुरानिपातयोः ७।२ लट् १।१ स०—यावच्च पुरा
च इति यावत्पुरौ । यावत्पुरौ च अमू निपातौ इति यावत्पुरानिपातौ ।
तयोः ।

अर्थ—[भविष्यति] यावत्पुराशब्दयोर्निपातयोरुपपदयोः भविष्यति
काले धातोर्लट् प्रत्ययो भवति । (यावत् और पुरा इन दोनों निपातों के उपपद
रहने पर भविष्यत् काल में धातु से लट् प्रत्यय होता है)

उदा०—यावद् भुङ्क्ते । पुरा भुङ्क्ते ।

सि०—भुङ्क्ते । भुज् । भुज् लट् । भुज् ल् । भुज् त । भुज् ते ।
भु शनम् ज् ते । भुनज् ते । भुन्ज् ते । भुन्ग् ते । भुग् ते । भुग् ते ।
भुङ्क्ते ॥

विभाषा कदाकह्यो ३।३।५

प० वि०—विभाषा १।१ कदाकह्यो ७।२ स०—कदाश्च कर्हिश्च
इति कदाकह्यौ तयोः ।

अर्थ—[भविष्यति] कदा कर्हि इत्येनयोरुपपदयोर्विभाषा भविष्यति

नोऽर्थः (दया० ऋ० भाष्य १।२८।७) सायणोऽप्यत्रैवर्भाव्ये 'भस भक्षखदीप्योः'
इत्येवाह । यत्र 'वप्सता-भुञ्जाने' इति निरुक्तम् (६।३।६) अनुसन्धेयम् ।

१—इनसोरल्लोपः (६. ४ १११) २—चो. कु (न. २. ३०) खरि च
(न. ४. ५५) ३—नश्चापदान्तस्य झलि (न. ३ २४) ४—अनुस्वारस्य ययि
परसवर्णः (न. ४. ५८) खरि च (न. ४. ५४)

काले घानोर्लट् प्रत्ययो भवति । (कदा घोर कहि इत घाश क उपपद रहन पर भविष्यन् काल में धानु म विद्वल्य न तट् प्रत्यय हाता ह)

उदा०—कदा मुह्स्ते भोक्षते भोक्ता वा । र्हिं मुह्स्ते भोक्षते भोक्ता वा ।

तुमुन्प्बुलां क्रियाया क्रियार्थायाम् ३।३।१०

प० वि०—तुमुन्प्बुलां १।२ क्रियाया ७।१ क्रियार्थायाम् ७।१ म०—
तुमुन् च एतुल च इति तुमु-एतुली । क्रियायै इडमिति क्रियार्थां तम्याम् ।

अर्थ—[भविष्यति] क्रियार्थाया क्रियायामुपपदे भविष्यति काले घानोर्मुमुन्प्बुलां प्रत्ययो भवति । (क्रिया क लिय क्रिया क उपपद रहन पर भविष्यन् काल में धानु म तुमुन् घोर प्बुल प्रत्यय हाता है)

उदा०—भास्तु व्रजति । भोजसो व्रजति ।

मि०—भोजतुम् । भुज् तुमुन् । भोज् तुम् । भोक् तुम् । भोजतुम्
सु । भास्तुन ॥ भातर ॥ भुज् एतुन । भुत् तु । भुन् अर । भोजर ॥

भाववचनादच ३।३।११

प० वि०—भावरचना १ । २ च अ० । म०—उच्यन्ते येन ते
वचनाः, भावस्य वचना (प० नत्पु०)

अर्थ—[क्रियाया क्रियार्थायाम् भविष्यति] क्रियार्थाया क्रियायामु-
पपदे भविष्यति काले घानोर्भाववचना प्रत्ययो भवति । (क्रिया क लिय
क्रिया के उपपद रहन पर भविष्यन् काल म धानु म भाव अथ में विहित
प्रत्यय हाता ह)

उदा०—पाकाय व्रजति । भूतये व्रजति । पुष्टये व्रजति ।

सि०—पाकाय । पक्ष्प्रनाति व्रजति इति पाकाय व्रजति । हुश्चप्
पाके । पच् पञ् । पच् अ । पाच् अ । पाक् अ । पाकृ । पाक डे । पाक
य । पाकाय ॥ भूतये । भविष्यतीति व्रजतीति भूतये व्रजति । भू स्तित् ।
भू ति । भूति २ । भूते ण । भूतये ॥ पुष्टये । पुष् क्तिन् । पुष् ति । पुष्
टि । पुष्टि । पुष्टि हे । पुष्टये ॥

लृट् शेषे च ३।३।१०

प० वि०—लृट् १।१ शेषे ७।१ च अ० ॥

अर्थ—[भविष्यति क्रियाया क्रियार्थायाम्] गुट्टे भविष्यति काले

क्रियार्थायां क्रियायाञ्चोपपदे धातोर्लृट् प्रत्ययो भवति । (शुद्ध भविष्यत् काल में और जहा क्रिया के लिये क्रिया उपपद हो, वहा धातु से लृट् प्रत्यय होता है)

उदा०—पठिष्यामि । करिष्यामि । पठिष्यामीति व्रजति । करिष्यामीति व्रजति ।

सि०—पठिष्यामि । पठ् लृट् । पठ् लृ । पठ् तिप् । पठ् स्य ति । पठ् इट् स्य ति । पठि स्य ति । पठिष्यति । करिष्यति । डुकृब् । कृ लृट् । कृ तिप् । कृ स्य तिप् । कृ इट् स्य ति । कर् इ स्य ति । करिष्यति ॥

लृट् सद्वा ३।३।१४

प० वि०—लृट्. ६।१ सन् १।१ वा अ० ।

अर्थ—[भविष्यति, क्रियायां क्रियार्थायाम्] शुद्धे भविष्यति काले क्रियार्थायां क्रियायाञ्चोपपदे धातोर्लृट् प्रत्ययः तस्यन्धाने सत् (शतृशानच्) प्रत्ययो भवतः॥ ×सद्विविर्निर्णयप्रथमासमानाधिकरणे × क्लप्रथमासमानाधिकरणे तु अनित्यम् विकल्पेन वाक्ते

(शुद्ध भविष्यत् काल में और क्रिया के लिये क्रिया के उपपद रहने पर धातु से जो विहित लृट् प्रत्यय उसरु स्थान में विकल्प से गन् अर्थात् गतृ और शानच् प्रत्यय होते हैं । इस सत् प्रत्यय का विधान हम प्रकार समभना चारिषे-प्रथमान्त के साथ जब लृट् की समान अधिकरणता न हो तब तो नित्य करके लृट् के स्थान में सत् प्रत्यय होते हैं और जब प्रथमान्त के साथ समान अधिकरणता हो तब अनित्य या विकल्प स सत् प्रत्यय हा जान है)

उदा०—अप्रथमासमानाधिकरणे—ब्राह्मणस्य करिष्यन् । ब्राह्मणस्य करिष्यमाणः । ब्राह्मणस्य पक्ष्यन् । ब्राह्मणस्य पक्ष्यमाण । प्रथमासमानाधिकरणे—ब्राह्मणः पक्ष्यति पक्ष्यते वा । ब्राह्मणः पक्ष्यन् पक्ष्यमाणो वा ।

अनद्यतने लृट् ३।३।१५

प० वि०—अनद्यतने ७।१ लृट् १।१ स०—न विद्यते अद्यतनम् तत् अनद्यतनम् तस्मिन् ।

अर्थ—[भविष्यति] अनद्यतने भविष्यत्काले धातोर्लृट् प्रत्ययो भवति । (जिसमें आज का सबन्ध न हो उस भविष्यत् काल में धातु से लृट् प्रत्यय होते हैं)

उदा०—श्वो भविता । श्वः गन्ता । श्व म्भिता ।

पदरुजविशस्पृशो घञ् ३।३।१६

प० वि०—पदरुजविशस्पृश ५।१ घञ् १।१ स०—पदश्च रुजश्च विशश्च स्पृट् चेति पदरुजविशस्पृट् तस्मात् ।

अर्थ—पद रुज विश स्पृश् इत्येतेभ्यो धातुभ्यो घञ् प्रत्ययो भवति । (पद रुज् विद् और स्पृञ् धातु स घञ् प्रत्यय हाता है)

उदा०—पाद । रोग । वेश ×स्पृश उपताप इति वक्तव्यम् × स्पर्श ।

सि०—पाद । पद्यतेऽमौ पाद । पद गती । पद् घञ् । पद् अ । पाद् अ । पाद सु । पाद ॥ रोग । रुजति असौ रोग । रुज् घञ् । रुज् अ । रोज् अ । रोग^१ अ । रोग । रोग सु । रोग ॥ वेश । विश-त्यसौ विश । विश् घञ् । विश् अ । वेश् अ । वेश । वेश सु । वेश । स्पृश् घञ् । स्पर्श ॥

भावे ३।३।१८

प० वि०—भावे ७।१

अर्थ—[घञ्] भावे धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति । भावे इत्यधिक्रियते । (केवल धात्वय अर्थात् धातु का अर्थ कहा जाय वहा धातु स घञ् प्रत्यय होता है) यहा स भागे भाव का अधिकार है ।

उदा०—पाक । पाकी । पाका । राग । त्याग । पक्ति । पचनम् ॥

सि०—पच् घञ् । पाक^१ ॥ रब्ज् घञ् । रज्^२ अ । राज् अ । राज् अ । राग ॥ पक्ति । पच् क्तिन् । पक्^३ ति । पक्ति मु । पक्ति ॥ पचनम् । पच् ल्युट् । पच् अन । पचन सु । पचन अम् । पचनम् ॥

अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम् ३।३।१९

प० वि०—अकर्त्तरि ७।१ च अ० । कारके ७।१ संज्ञायाम् ७।१ स०—न कर्ता इति अकर्त्तो तस्मिन् अकर्त्तरि ।

अर्थ—[घञ्] कर्तृभिन्नकारके संज्ञायां गम्यमानाया धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति । अधिकारोऽयम् (कर्ता भिन्न कारक म संज्ञा जाना जाय तो धातु से घञ् प्रत्यय होता है) भागे भाव क साथ इत सूत्र का भी अधिकार जानना चाहिये ।

उदा०—प्रास । प्रसेय । आहार ।

सि०—प्रास । प्रास्यन्ति तमिति । प्र अस् घञ् । प्र आस । प्रास

१—चञा कृ षिण्यता (७ ३ ५२) २—पञि ष भावकरणया (६ ४ २७) ३—चो कृ (८ २ ३०)

सु । प्रास. ॥ प्रसीव्यन्ति त प्रसेवः । प्रसिव् घञ । प्रसिव अ । प्रसेव
अ । प्रसेवसु । प्रसेवः ॥

एरच् ३।३।५६

प० वि०—एः ५।१ अच् १।१

अर्थ—[भावे, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्] भावे कर्त्तृभिन्नकारके
संज्ञायां च इवर्णन्ताद्घातोर्च् प्रत्ययो भवति ।

(भाव मे और कर्त्ताभिन्नकारक सज्ञा में इवर्णान्त घातु से अच् प्रत्यय
होता है) ।

उदा०—चयः । जयः । अय चयः । ॐ निवासवाची क्षयशब्द
आद्युदात्त (द्र० ६ । १ । १६५) नाशार्थकस्त्वन्तोदात्तः ॐ ।

सि०—चय । चिञ् अच् । चि अ । वे अ । चय । चयसु ।
चयः । जि अच् । जयः । इ अच् । अयः । ति अच् । क्षयः ।

ऋदोरप् ३।३।५७

प० वि०—ऋदोः ५।१ अप् १।१ स०—ऋच्च उश्च इति ऋदु
तस्माद् ऋदोः ।

अर्थ—[भावे अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्] भावे कर्त्तृभिन्नकारके
संज्ञायाच्च ऋकारान्तस्य उवर्णान्तस्य च घातोः परः अप् प्रत्ययो भवति ।

(भाव और कर्त्ताभिन्नकारक और सज्ञा में ऋकारान्त और उवर्णान्त घातु
से अप् प्रत्यय होता है)

उदा०—करः । गरः । शरः । उवर्णान्तेभ्यः—यवः । लवः । पवः ।
दकारो मुखमुखार्थः ।

सि०—क अप् । क अ । कर सु । करः । ग अप् । गरः ।
श अप् । शरः । यु अप् । यो अ । यवः । ल्व् अप् । लो अ । लवः । पू
अप् । पो अ । पवः ।

डिवतः क्त्रि. ३।३।८८

प० वि०—डिवतः ५।१ क्त्रिः १।१ स०—डु इद् यत्येति डिवत्
तस्मात् । डिवतः ।

अर्थ—[भावे अकर्त्तरि च कारके] भावे कर्त्तृभिन्नकारके च डिवतः
क्त्रिः प्रत्ययो भवति । (भाव में और कर्त्ताभिन्नकारक में डु इत् वाते घातु
से क्त्रि प्रत्यय होता है) ।

उदा०—पक्त्रिमम् । उप्त्रिमम् ।

सि०—पक्त्रिमम् । डुपचप् । पच् क्त्रि । पच् त्रि । पक् त्रि । पक्त्रिमप् । पक्त्रिम सु । पक्त्रिम अम् । पक्त्रिमम् । उप्त्रिमम् । डुवप् । वप् क्त्रि । वप् त्रि । वप् त्रि । उ अ^२ प् त्रि । उप् त्रि । उप्त्रिमप् । उप्त्रिम । उप्त्रिम सु । उप्त्रिम सु । उप्त्रिम अम् । उप्त्रिमम् ।

टि्वतोऽथुच् ३।३।८६

प० वि०—टि्वतः १।१ अथुच् १।१

स०—टु ट्ठु यस्येति टि्वन् तस्मान् ।

अर्थ—[भावे अकर्त्तरि च कारके] भावे कर्त्तृभिन्ने कारके टि्वतो घातोऽथुच् प्रत्ययो भवति । (भाव और कर्त्ताभिन्न कारक में टु इत् वाले घातु से अथुच् प्रत्यय होता है)

उदा०—वेपथुः । श्वयथुः ।

सि०—वेपथुः । डुवेपृ । वेप् अथुच् । वेपथु सु । वेपथुः । डुद्योश्चि । शिष्य अथुच् । श्वे अथु । श्वयथु सु । श्वयथुः ॥

यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् ३।३।९०

प० वि०—यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षः १।१ नङ् । स०—यजश्च याचश्च यतश्च विच्छश्च प्रच्छश्च रक्षत् च इति यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षत् तस्मान् ।

अर्थ—[भावे अकर्त्तरि च कारके] भावे कर्त्तृभिन्ने कारके एभ्यो घातुभ्यो नङ् प्रत्ययो भवति । (भाव और कर्त्ताभिन्न कारक में यज याच यत विच्छ प्रच्छ और रक्ष घातु से नङ् प्रत्यय होता है ।

उदा०—यज्ञः । याच्या । यत्नः । विरनः । प्ररनः । रक्षणः ।

सि०—यज्ञः । यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु । यज् नङ् । यज् न यज् ष^३ । यज्ञ सु । यजः । याच्या । टुयाच् याच्यायाम् । याच् नङ् । याच् न । याच् ष^३ । याच्च । याच्च टाप्^४ । याच्च आ । याच्या सु । याच्या ।

यत्नः । यती प्रयत्ने । यन् नङ् । यन् न । यत्नः । विरनः । विच्छ गती । विच्छ नङ् । विच्छन् । विश्^५ न । विरन सु । विरनः । प्ररनः ।

१—नेमंप्रतियम् (४. ४. २०) २—वचिस्वपिमजादीना किति (६. १. १५) । ३—स्तोः ष्नुना ष्नुः (८. ४. ४१) ४—मजायतटाप् (४. १. ४) ५—च्छ्वोः शूडनुनासिके च (६. ४. १६)

प्रच्छ ज्जीप्सायाम् । प्रच्छ् नङ् । प्रच्छ् न । प्रश् न । प्रश्न मु । प्रश्न ।
 ॐ प्रच्छेरसम्प्रसारणं ज्ञापकात् प्रश्ने चासन्नकाल इति ॐ । रक्षण । रक्ष
 रक्षणे । रक्ष् नङ् । रक्ष् न । रक्ष् ण^१ । रक्षण मु । रक्षण ।

स्वपो नन् ३।३।६१

प० वि०—स्वपः ५।१ नन् १।१

अर्थ—[भावे अकृत्तरि च कारके] स्वपेर्वातोर्नन् प्रत्ययो भवति ।
 (स्वप् धातु स नन् प्रत्यय होता है)

उदा०—स्वप्न ।

उपसर्गे घो कि ३।३।६२

प० वि०—उपसर्गे ७।१ घो ५।१ क्रि. १।१

अर्थ—[भावे अकृत्तरि च कारके] उपसर्गे उपपदे घुसंज्ञकेभ्यो
 धातुभ्यः क्रि. प्रत्ययो भवति ।

(उपसर्ग के उपपद रहन पर घु सज्ञा वाले धातु से कि प्रत्यय होता है)

उदा०—प्रदि । प्रधि । अन्तर्द्धिः ॥

सि०—प्रदि । प्र दा । प्र दा कि । प्र दा ड । प्र द्^२ इ । प्रदि । प्रदि
 मु । प्रदि^३ । प्रधि । अन्तर्द्धिः । अन्तर् धिः । अन्तर् ध्^३ इः ।
 अन्तर्द्धिः^४ ।

कर्मण्यधिकरणे च ३।३।६३

प० वि०—कर्मणि ७।१ अधिकरणे ७।१ च अ० ।

अर्थ—[घो] कर्मण्युपपदे अधिकरणे कारके घुसंज्ञकेभ्यो धातुभ्यः
 क्रि. प्रत्ययो भवति । (कर्म के उपपद रहने पर अधिकरण कारक में घु
 सज्ञक धातु से कि प्रत्यय होता है)

उदा०—जलधिः । उदधिः । वारिधिः । तोयधिः । पयोधिः । यशोधिः ।

सि०—जलधिः । जलं धीयतेऽस्मिन् इति । जल अम् धा कि । जल
 अम् धा इ । जल अम् ध् इ । जल अम् धि । जलधि सु । जलधि ॥
 उदधिः । उदकानि धीयन्तेऽस्मिन्निति । उदक शस् धा कि । उदक धा
 इ । उदक ध् इ । उदक धि । उद^५ धि । उदधि सु । उदधि ।

१—रषाभ्या नो राः समानपदे (८. ४ १) । २—आतो लोप इटि च
 (६. ४. ६४) ३—प्रचो रषाभ्या द्वे (८. ४. ४७) ४—भला जस भसि (८
 ४. ५३) ५—उदकस्योद सज्ञायाम् (६. ३.)

स्त्रिया वितन् ३।३।६८

प० वि०—न्त्रियाम् ७।१ कितन् १।१

अर्थ—[भाये अकर्त्तरि च कारके] स्त्रीलिङ्गे भावादी धातो. कितन् प्रत्ययो भवति । (स्त्रीलिङ्गे मे नाथ शोर वर्ताभिन्नकारक मे धातु मे कितन् प्रत्यय होता है) ।

उदा०—चितिः । कृति । मतिः । ×संपदादिभ्यः स्त्रिप् × सपन् । विपन् । प्रतिपन् । कितन्नपि टप्यते । संपत्तिः । विपत्तिः ॥ ×क्लिन्नाद्या दिभ्यश्च यक्तव्य. × आप्तिः । स्वप्तिः ।

उदा० —मति^१ । मती । मतय । मतिम् । मती । मतोः । मत्या । मतिभ्याम् । मतिभिः । मत्यै, मत्ये । मतिभ्याम् । मतिभ्यः । मत्याः मतेः । मतिभ्याम् । मतिभ्यः । मया. मतेः । मत्योः । मतीनाम् । मत्याम् मती । मत्योः । मतिषु । हे मते । हे मती । हे मतयः ।

संपद् । सपन् । संपदौ । संपदः । संपदम् । सपदौ । संपदः । सपदा । सपद्भ्याम् । संपद्भिः । सपदे । संपद्भ्याम् । संपद्भ्यः । संपदः । संपद्भ्याम् । संपद्भ्यः । संपदः । संपदोः । सपदाम् । संपदि । संपदोः । संपत्तु ।

सि०—चितिः । चिष् । चि कितन् । चि ति । चितिः । मतिः । मन् कितन् । मन् ति । मति^१ मु । मतिः ।

मति मु । मतिः । मति औ । मती^२ । मति जम् । मते^३ जस् । मतय् अस् । मतयः । मति अम् । मतिम् । मति औ । मती^२ । मत्या । मतिभ्याम् । मतिभिः । मति डे । मति आट्^४ ए । मति आ ए । मति ऐ । मत्यै । मति डे । मते^३ ए । मतये । मति डसि । मति आट् डसि । मति आ अस् । मति आः । मत्याः । मति डमि । मति अस् । मतेः । मति औस् । मत्योः । मति नुट्^५ आम् । मति नाम् । मतीनाम् ।

१—प्रतुदासोपदेशवन्नित्त्तिलोत्पादीनाम्० (६. ४. २७) २—प्रथमयो पूर्वसवर्णः (६. १. ६८) ३—जसि च (७. २. १०६) ४—ङिति ह्रस्वश्च (१. ४. ६) थाप्नद्याः (७. २. ११२) ५—सोपो घ्यसखि (१. ४. ७) षेडिति (७. ३ १११) ६—ह्रस्वनद्याणे नुट् (७ १. ५४)

मति ङि । मति आट् आम् । मत्याम् । मति ङि । मत^१ औ । मती ।
मति मुप् । मतिप । हे मति मु । मते स् । मते । मती । मतय ।

अ प्रत्ययात् ३।३।१०२

प० वि०—अ अतिभक्तिर्को निर्देश । प्रत्ययात् ५।१

अर्थ—[भावे अर्कत्तरि च कारके स्त्रियाम्] प्रत्ययान्ताद् धातो.
अ प्रत्ययो भवति स्त्रीलिङ्गे ।

(प्रत्यय है अ त में जिसके ऐसे धातु में अ प्रत्यय होता है स्त्रीलिङ्ग में)

उदा०—चिकीर्षा । पुत्रीया । पुत्रकान्या । लोलया । कण्डया ।

सि०—सर्व सनादिप्रकरणे द्रष्टव्यम्

गुरोश्च हल ३।३।१०३

प० वि०—गुरो ५।१ च अ० । हल ५।१

अर्थ—[अर्कत्तरि च कारके] हलन्तो यो धातुर्गुरुमान तस्मादकार
प्रत्ययो भवति स्त्रियाम् । (हल त जो धातु गुरु अक्षर वाला उससे अप्रत्यय
होता है स्त्रीलिंग में)

उदा०—कुरण्डा । हुण्डा । ईहा । उहा ॥

सि०—कुरण्डा । कुडि । कुड् । कु नुम्^२ ड् । कुण्ड् । कुड् । कुरण्ड् अ ।
कुरण्ड टाप्^३ । कुरण्डा मु । कुरण्डा ।

पिद्भिदादिभ्योऽङ् ३।३।१०४

प० वि०—पिद्भिदादिभ्य ५।३ ऋङ् ५।१ स०—भिद् आदिव्येपान्ते
भिदादय । प् इत् यस्य इति पित् । पिच्च भिदादयश्च इति पिद्भिदा-
दय तेभ्य ।

अर्थ—[स्त्रियाम्, भावे अर्कत्तरि च कारके] पकारेद्भ्यो भिदा-
दिभ्यश्च धातुभ्य स्त्रियामङ् प्रत्ययो भवति । (पकार इत् वाले तथा भिद्
आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में अङ् प्रत्यय होता है)

उदा०—जरा । त्रपा । भिदादिभ्य —भिदा । छिदा । विदा ।

सि०—जप् वयोहानी । ज् अङ् । जर् अ । जर टाप् । जरा ।
त्रप् लज्जायाम् । त्रप् अङ् । त्रप टाप् । त्रपा ।

१—अच्च धे. (७ ३. ३६) २—इदितो नुम्धातो (७. १ ५८)
निदचोऽन्त्यात्पर. (१. १. ४७) ३—अजाद्यतष्टाप् (४ १ ४)

भिदा । भिद् अद् । भिद् अ । भिद् टाप् । भिदा सु । भिदा म् ।
भिदा । द्विदा ॥

चितिपूजिकथिकुम्बिचर्चच्च ३।६।१०५

प० वि०—चितिपूजिकथिकुम्बिचर्चः ५।१ च अ० ॥ स०—चितिश्च
पूजिश्च कथिश्च कुम्बिश्च चर्क् च इति चितिपूजिकथिकुम्बिचर्क्
तस्मान् ।

अर्थ—[अद्] चिति मृत्यां, पूज पूजायां, कथ वाक्यप्रदाने, कुत्रि
आच्छादने, चर्च अध्ययने इत्येतेभ्यां धातुभ्यो स्त्रियामद् प्रत्ययो
भवति । (चिति, पूज, कथ, कुम्ब चर्च, दन धातुषो से स्त्रीलिङ्ग में अद् प्रत्यय
होते हैं)

उदा०—चिन्ता । पूजा । कथा । कुम्बा । चर्चा ।

आतदचोपसर्गो ३।३।१०६

प० वि०—आतः ५।१ च अ० । उपसर्गो ७ । १

अर्थ—[अद्] उपसर्गो उपपदे आकारान्तेभ्यो धातुभ्यो स्त्रियामद्
प्रत्ययो भवति । (उपसर्ग के उपपद रहने पर आकारान्त धातुषो से स्त्रीलिङ्ग
में अद् प्रत्यय होता है)

उदा०—प्रदा । उदा । प्रया । उरया । Xअदन्तरांपसर्गवद्वृत्तःX
अदा । अन्नदो ।

सि०—प्र दा । प्र दा अद् । प्रद् अ । प्रद् टाप् । प्रदा सु । प्रदा ॥

एयामश्रन्थो युच् ३।३।१०७

प० वि०—एयामश्रन्थः ५।१ युच् १।१ स०—गिश्च आसश्च
अन् च इति एयासश्रन् तस्मान्

अर्थ—[श्रियाम्] एयान्तेभ्यो धातुभ्य आम श्रन् इत्येताभ्याम्
श्रियामद् प्रत्ययो भवति । (गिच् है अन्त में जिनके ऐसे धातुषो से तथा
धाम् घोर धन्य धातुषो से स्त्रीलिङ्ग में युच् प्रत्यय होता है)

उदा०—गि—कारणा । हारणा । आमना । श्रन्थना ।

सि०—कारणा । कृ णिच् । कारि युच् । कारि यु । कारि अन् ।
कार अन् । कारणु टाप् । कारणा सु । कारणा ॥

१—पातो साप इति च (६. ४. १४) २—दुवोत्तापो (७. १. १) ३—
शेरनिटि (६. ४. ५१)

रोगाख्यायां ष्वुल्वहुलम् ३।३।१०८

प० वि०—रोगाख्यायाम् ७।१ एबुल् १।१ बहुलम् १।१ स०—रोगस्य आख्या रोगाख्या तस्याम् ।

अर्थ—[भावे अकर्त्तरि च कारके इति सर्वत्र अनुवर्त्तते, स्त्रियाम्] रोगस्य आख्यायां गम्यमानायां धातोर्वहुलं एबुल् प्रत्ययो भवति । (रोग विशेष की सजा प्रतीत हो तो धातु से स्त्रीलिङ्ग, भाव तथा कर्त्तृभिन्न कारक में बहुल करने ष्वुल् प्रत्यय होता है)

उदा०—प्रच्छदिदेका । प्रवाहिका । विचर्चिका । × इक्षितपौ धातु-निर्देशो इति वक्तव्यम् × भिदिः । छिदिः । पचतिः । पठतिः । × वर्णा-त्कारः × अकारः । इकारः । पकारः । × रादिफः × रेफः ।

सि०—प्रच्छर्दिका । छर्दं वमने चुरादिः । प्रवाहिका । वह प्रापणे । प्रचर्चिका । चर्च अभ्ययने चुरादिः ॥ प्र छर्दं एबुल् । छर्दं बु । छर्दं अक । छर्दक । प्र छर्दक । प्र तुक् छर्दक । प्रच्छर्दक । प्रच्छर्दक । प्रच्छर्दक । प्रच्छर्दक टाप् । प्रच्छर्दिका सु । प्रच्छर्दिका ।

कृत्यल्युटो बहुलम् ३।३।११३

प० वि०—कृत्यल्युटः १।३ बहुलम् १।१ स०—कृत्याश्च लुट् च इति कृत्यलुटः ।

अर्थ—[भावेऽकर्त्तरि च कारक इति निवृत्तम्] कृत्यसङ्गताः प्रत्ययाः ल्युट् च बहुलमर्थेषु भवन्ति । ऋयत्र विहितास्ततोऽन्यत्रापि भवन्ति । भावकर्मणोः कृत्याः विहिताः कारकान्तरेऽपि भवन्ति । ऋ(कृत्यसङ्गक प्रत्यय और ल्युट् बहुल करके होते हैं) जहा विधान है उससे अन्यत्र भी हो जाते हैं । कृत्य प्रत्यय भाव और कर्म में होते हैं लेकिन अन्य कारको में भी हो जाते हैं)

उदा०—स्नानीय चूर्णम् । दानीयो ब्राह्मणः । अपसेचनम् । अवस्त्रा-चणम् । राजभोजनाः शालयः । राजाच्छादनानि वासांसि । प्रस्कन्दनम् । प्रपतनम् ॥

सि०—स्नाति अनेनेति स्नानीयं चूर्णम् । करणे कृत्यः ॥ दानीयः । दीयते तस्मि इति सम्प्रदाने । अपसेचनम् । अपस्तिच्छते तदिति कर्मणि ल्युट् । अवस्त्राचणम् । अवस्त्राव्यते तदिति सू गतावित्यस्मत् एयन्तात् कर्मणि ल्युट् । भुज्यन्ते इति भोजनाः, आच्छाद्यन्ते इति आच्छादनानि ।

कर्मण्येव ल्युट् । राज्ञो भोजनाः राज्ञ आच्छादनानि इति पष्ठीसमासः ।
प्रस्कन्दनम् । प्रपतनम् । प्रस्कन्दति प्रपतति अस्मादिति अपादाने ल्युट् ॥

नपुंसके भावे क्तः ३।३।११४

प० वि०—नपुंसके ७।१ भावे ७।१ क्तः १।१

अर्थ—नपुंसकलिङ्गे भावे घातोः क्तः प्रत्ययो भवति । (नपुंसक
लिङ्गे भाव में घातु में क्त प्रत्यय होता है)

उदा०—हसितम् । महितम् । जल्पितम् । सुप्तम् । शयितम् ।

सि०—सुप्तम् । जिप्स्यप् । स्वप् क्त । स्वप् त । स् उ^३ अ प् त ।
सुप् त । सुप्त सु । सुप्त अम् । सुप्तम् । शीङ् । शी क्त । शी त । शी
इत् त । शी^३ इत् । शय् इत् । शयिन सु । शयित अम् । शयिनम् ॥

ल्युट् च ३।३।११५

प० वि०—ल्युट् १।१ च अ० ॥

अर्थ—[नपुंसके भावे] नपुंसके भावे घातोल्युट् प्रत्ययो भवति ।
(नपुंसकलिङ्गे भाव में घातु में ल्युट् प्रत्यय होता है)

उदा०—हसनं छात्रस्य । शोभनम् ॥

कारणाधिकरणयोश्च ३।३।११७

प० वि०—कारणाधिकरणयोः ७।२। च अ० । स०—करणञ्च
अधिकरणञ्च इति कारणाधिकरणे तयोः ।

अर्थ—[ल्युट्] घातोः करणे अधिकरणे च कारके ल्युट् प्रत्ययो
भवति । (घातु से करण और अधिकरण कारक में ल्युट् प्रत्यय होता है)

उदा०—इध्मप्रव्रचनः । पलाशशातनः । अधिकरणे—गोमंइनी ।
सक्तुघानी ॥

सि०—इध्मप्रव्रचनः । औत्रञ्च छेदेन । इध्मानां प्रव्रचन इति
पष्ठीसमासः । पलाशशातनः । शङ्ख शातने । शङ्ख णिच् । शङ्ख इ ।
शङ्ख इ । शान्^३ इ । शान् इ ल्युट् । शान् इ अन । शातन सु ।
शातनः ॥ पलाशस्य शातनः । पलाशशातनः ॥

१—बभ्रुवृत्तिव्यादीनां किति (९. १. १५) २—निष्ठा षोडश्विदिभि-
दिभिदिदिपु. (१. २. १९) इति मेनिष्ठा रिप्र षत् एव, सार्वधातुषां, धातुक्तयोः
(७. ३. ८४) इति गुणः । शदेरगङ्गो तः (७. ३. ५२)

गावो दुह्यन्त अस्यामिति गोदोहनी । गो जस् दुह् ल्युट् । गो
जस् दुह् अन । गोदोहन डीप । गोदोहन् ई । गोदोहनी सु ।
गोदोहनी ॥

पु सि सज्ञाया घ प्रायेण ३।३।११८

प० वि०—पु सि ७।१ सज्ञायाम् ७।१ घ १।१ प्रायेण ३।१

अर्थ—[करणाधिकरणयो] करणे अविकरणे च कारके धातो
प्रायेण घ प्रत्ययो भवति पु सि सज्ञाया गम्यमानायाम् । (करण और
अधिकरण कारक म धातु स प्राय करके घ प्रत्यय होता है पु लिङ्ग में सज्ञा
गम्यमान होन पर)

उदा०—दन्तश्छद । उरश्छद । अधिकरणे—आकर । आलय ।

सि०—दन्ताश्छायन्त अनेनेति दन्तच्छद । छद अपवारणे । छद्
णिच् । छादि घ । छाद् अ । छद् अ । छद । छद् ।

एत्य तस्मिन् कुर्वन्ति इत्याकर ॥

अवेतृस्नोर्घञ् ३।३।१२०

प० वि०—अने ७।१ तृस्त्रो ६।२ घञ् १।१ स०—तृश्च स्तृश्च इति
तृस्त्रो तयो ।

अर्थ—[करणाधिकरणयो पु सि सज्ञाया प्रायेण] अव उपपदे तरते-
स्तृणातेश्च धातो करणेऽधिकरणे च कारके सज्ञायां गम्यमानाया प्रायेण
घञ् प्रत्ययो भवति । (अव के उपपद रहन पर तृ और स्त धातु से करण
और अधिकरण कारक में सज्ञा के गम्यमान होन पर प्राय घर्ज प्रत्यय होता है)

उदा०—अवतार । अवस्तार । प्रायग्रहणादवतर, अवस्तर
इत्यपि भवति ।

सि०—अवतृ घञ् । अवतार् अ । अवतार सु । अवतार ॥ अवतृ
अप् । अवतर ॥

हलश्च ३।३।१२१

प० वि०—हल ५।१ च अ० ।

अर्थ—[करणाधिकरणयो, पु सि सज्ञाया प्रायेण] हलन्ताद् धातो
करणे अविकरणे च कारके सज्ञायां गम्यमानायां प्रायेण घञ् प्रत्ययो

भ्रमति पु सि। (हलन्त धातु स करण और अधिकरण वाक्य में मन्त्र गम्यमान होने पर प्रायः पुलिङ्ग में घञ् प्रत्यय हाता है)

उदा०—लेख । जेद । माग । वेप । जन् । असमार्गः ।

इपद्दु मुपु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु सल ३।३।१०६

प० वि०—इपद्दु मुपु ७३ कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ७३ सल १।२ स०—
इपच्च दुश्च मुञ्च दान इपद्दुस्य तेपु । कृच्छ्रञ्च अकृच्छ्रञ्च इति
कृच्छ्राकृच्छ्र । कृच्छ्राकृच्छ्र् अर्थो यपामिति कृच्छ्राकृच्छ्रार्था तपु ।

अर्थ—इपत् दुम् मु इत्येतेषूपपदेषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु घाता सल
प्रत्ययो भवति । (इपत् दुम् मु इनक उपपद रहन पर कृच्छ्र और अकृच्छ्र मय
में धातु में मन्त्र प्रत्यय हाता है)

उदा०—कृच्छ्रम् दुश्चम् । अकृच्छ्रम् मुञ्चम् इति । दुश्चत् कृच्छ्रार्थे
वर्तते । इपत्पुराणी अकृच्छ्रार्थे वर्तते । इपत्करो भवता कट् । अकृच्छ्रे
ण यत्नेन क्रियते भवता कट् इत्यर्थः । इपद्गमा प्रामा भवता ।
दुष्पठा विद्या भवता । दुष्कर पाकी भवता । मुक्कर पाकी भवता ।
मुपठा निगा भवता ॥ सर्वे न्यष्टमे ॥

कर्त्तृकर्मणोश्च भूवृत्रो ३।३।१०७

प० वि०—कर्त्तृकर्मणो ७३ च अ० । भूवृत्रो ६।२ म०—कर्त्ता च
कर्म चेति कर्त्तृकर्मणी तयो ॥ भूञ्च कृञ्चेति भूञ्ची तयो ॥

अर्थ—[इपद्दु मुपु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु सल] भ्रमते । वरानेञ्च
घातार्थे प्रामग्य कर्त्तरि कर्मणि चोपपदे चकारादापदादिषु च सल
प्रत्ययो भवति । (कर्त्ता और कर्म उपपद हा, कृञ्च और अकृञ्चाय में क्तमान
इपद्दु मु पूव हा ता भू और कृ धातु म मन्त्र प्रत्यय हाता है)

उदा०—X सल कर्त्तृकर्मणोश्च व्यर्थयो X अनादृत्य भ्रमता इपदा-
दृत्येन शक्यं भवितु—इपदादृत्यभय भ्रमता । दुरादृत्यभयं भ्रमता ।
म्रादृत्यभय भवता । अनादृत्य इपदादृत्य क्रियते इति इपदादृत्यकरो
देवदत्त । दुरादृत्यकरो देवदत्त । म्यादृत्यकरो देवदत्त ।

सि०—इपद् मु भू गल् । इपदादृत्य मु भव् अ । इपद् आदृत्य भय ।
इपदादृत्य नुम् भय । इपदादृत्यभय । इपदादृत्यभय मु । इपदादृत्यभयम् ।

आतो युच् ३।३।१०८

प० वि०—आत् १।२ युच् १।१

अर्थ—[ईषद्दु सुपु कृच्छ्राकृच्छार्थेषु] ईषद्दु सुपूपपटेप कृच्छ्राकृच्छ्रा
थेषु आकारान्तेभ्यो धातुभ्यो युच् प्रत्ययो भवति । (ईषद् दु सु के उपपद
रहन पर कृच्छ्र और अकृच्छ्र अर्थ में आकारान्त धातुओं से युच् प्रत्यय होता है)

उदा०—ईपत्पान सोमो भवता । दुप्पान सोमो भवता । सुपान
सोमो भवता । ईषद्दानो गौर्भवता । दुर्दानो गौर्भवता । सुदानो
गौर्भवता ॥

लकारान्तराद्यप्रकरणम्

वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद् वा ३।३।१३१

प० वि०—वर्त्तमानसामीप्ये ७।१ वर्त्तमानवत् अ० । वा अ० । स०—
समीपस्य भाव सामीप्यम् । वर्त्तमानस्य सामीप्यम्, वर्त्तमानसामीप्यम् ।
वर्त्तमाने इव वर्त्तमानवन् 'तत्र तस्येऽ इति चतिप्रत्यय ।

अर्थ—वर्त्तमानसमीपे भूते भविष्यति च वर्त्तमानाद् धातोर्वर्त्तमान-
वत् प्रत्यया वा भवन्ति ।

(वर्त्तमान के समीप म भूत और भविष्यत् में वर्त्तमान धातु से वर्त्तमान के
समान प्रत्यय विकल्प से होते हैं)

ॐअत्रेद् बोध्यम्—वर्त्तमानाधिकारो 'वर्त्तमाने लट् इत्यारभ्य उणादयो
बहुलम्' इति पर्यन्त—तत्र याभ्य प्रकृतिभ्यो येन विशेषणो ये प्रत्यया
विहितास्ताभ्य प्रकृतिभ्यस्तेनैव विशेषणो ते प्रत्यया वर्त्तमानसामीप्ये
भूते भविष्यति च काले विकल्पेन भवन्ति इति अनेन सूत्रेण विधीयते,
पक्षे यथाविहिता ॐ

(वर्त्तमान लट् से उणादयो बहुलम्' तक वर्त्तमान का अधिकार है । उसमें
जिन धातुओं से जिस विशेषण के साथ जो प्रत्यय कहा है वह उन ही विशेषण
युक्त प्रकृतियों से वर्त्तमानकाल के समीप जो भूत और भविष्यत् काल हैं उसमें
वर्त्तमान काल की भाँति विकल्पकरके प्रत्यय होते हैं । पक्ष में जैसा विधान किया
गया है वे भी होते हैं)

उदा०—देवदत्त कदाऽप्याही ? एष पचामि । एष पचन् । एष पच-
मान । देवदत्त कदाऽलङ्कृतम् ? एषोऽलङ्करोमि । एषोऽलङ्कुर्वन् ।
देवदत्त कदा पच्यसि ? एष पचामि ।

लिङ् निमित्ते लृट् क्रियातिपत्तौ ३।३।१३६

प० वि०—लिङ् निमित्ते ७।१ लृट् १।१ क्रियातिपत्तौ ७।१ स०—

लिङ्गो निमित्तमिति लिङ्निमित्तं तस्मिन् । क्रियायाः अतिपत्तिरनिष्पन्नता इति क्रियातिपत्तिः तस्याम् ।

अर्थ—[भविष्यति] लिङ्निमित्ते भविष्यति काले क्रियायाः अतिपत्ती सत्यां धातोर्लृट् प्रत्यया भवति । किमिदं लिङ्निमित्तम् लिङ्गो निमित्तम् इति लिङ्निमित्तम् तच्च लिङ्गं हेतुहेतुमद्भावनादयः ॥

(लिङ्गं के निमित्तं हान पर क्रिया की अतिपत्ति अर्थात् असिद्धि गम्यमान हो तो धातु से लृट् प्रत्यय होता है भविष्यत् काल में) लिङ्निमित्त शब्द का अर्थ है लिङ्ग का कारण । कारण शब्द से यहाँ पर लिङ्ग का अर्थ लेना चाहिये । लिङ्ग का अर्थ हेतुहेतुमद् भाव है अर्थात् जिसमें कार्यकारण का सम्बन्ध हो ।

उदा०—द्रक्षिणेन चेद्याम्यन्नं शक्यं पर्याभविष्यत् । (यदि दक्षिण के मार्ग से घाते तो गाड़ी नहीं उलटती अर्थात् दूटती) यदि कमलकम् आह्लास्यन्नं शक्यं पर्याभविष्यत् ॥ (यदि कमलक को बुला लेते तो गाड़ी न उलटती) अभोक्ष्यत भवान् ओदनं दुग्धेन यदि मत्समीपे आसिष्यत । (भाप दूध से भात खाने यदि मेर समीप बैठते तो)

हेतुहेतुमतोलिङ् ३।३।१५६

प० वि०—हेतुहेतुमतोः ७।२ लिङ् १।१ स०—हेतुरच हेतुमच्चेति हेतुहेतुमती तयोः ।

अर्थ—[भविष्यति विभाषा] हेतुः कारणम्, हेतुमन् फलं कार्यं यो । हेतुहेतुमतोः अर्थयोः धातोर्भविष्यत्काले विभाषा लिङ् प्रत्ययो भवति पक्षे लृट् च । (हेतु और हेतुमान् अर्थ में धातु से भविष्यत् काल में विकल्प से लिङ् प्रत्यय होना है और पक्ष में लृट् ।

उदा०—द्रक्षिणेन चेद्याम्यन्नं शक्यं पर्याभवेत् । यदि कमलकमाह्लास्येन्न शक्यं पर्याभवेत् । भविष्यति—द्रक्षिणेन चेद्यास्यति न शक्यं पर्याभविष्यति । ऋद्रक्षिणेन यानं हेतुः । अपर्याभवन्नम् हेतुमदिति ॥

सि०—आयात् । या लिङ् । या ल् । या तिप् । या ति । या गप्ति । या ति । या यामुट् ति । या यास्त् । या याम् मुट् न् । या यात् । पर्याभवेत् । भू लिङ् । भू ल् । भू निप् । भू शर्त्तिप् । भू अति । भो अति । भवति । भव यामुट् मुट्ति । भव या ति । भव इय्ति ।

१—यामुट् परस्मैपदेपूनासौ द्विच (३. ४. १०३) २—मुट् द्विधा (३. ४.

१०७) ३—लिङ्गः धातोर्न्यस्य (७. २. ७६)

भव इय् त् । भवेत् । भवे तस् । भवेताम् । भवेयुः । भवेय् ऋ । भवेय
जुस् । भवेयुः । भवेः । भवेतम् । भवेत । भवेयम् । भवेव । भवेम ।

इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ ३।३।१५७

प० वि०—इच्छार्थेषु ७३ लिङ्लोटौ १।२ स०—इच्छा अर्थो येषां
धातूनामिति इच्छार्थाः तेषु । लिङ् च लोट् चेति लिङ्लोटौ ।

अर्थ—इच्छार्थेषु धातुपूपपदेषु धातोर्लिङ्लोटौ प्रत्ययो भवतः ।

(इच्छार्थक धातुषो के उपपद रहने पर धातु से लिङ् और लोट् प्रत्यय
होते हैं)

उदा०—इच्छामि भुञ्जीत भवान् । इच्छामि भुङ्क्ताम् भवान् ।

× कामप्रवेदनं चेत् ×

ऋकामस्य स्वेच्छायाः प्रवेदन प्रकाशन यदि स्यात्तदास्य सूत्रस्य
प्रवृत्तिः स्यात् , तथैवोदाहृतमळ ॥ भुङ्क्ताम् । भुज् लोट् । भुज् त ।
भु र्नम् ज् त । भुनज् त । भुनग् त । भुनक् त । भुनक्त । भुंक्त ।
भुङ्क्त । भुङ्क्ते । भुङ्ताम् । भुञ्जीत । भुज् लिङ् । भुज् त । भु
र्नम् ज् त । भुनज् सीयुट् त । भुनज ईय् सुट् त । भुंजीत । भुञ्जीत ॥

समानकर्तृकेषु तुमुन् ३।३।१५८

प० वि०—समानकर्तृकेषु ७३ तुमुन् १।२ स०—समानः कर्त्ता येषां
धातूनाम् इति समानकर्तृकाः तेषु ।

अर्थ—[इच्छार्थेषु] समानकर्तृकेषु इच्छार्थेषु धातुपूपपदेषु धातो-
स्तुमुन् प्रत्ययो भवति । (समानकर्त्ता वाले इच्छार्थक धातुषो के उपपद रहने
पर धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है)

उदा०—इच्छति भोक्तुम् । वष्टि भोक्तुम् । वाञ्छति भोक्तुम् ।

सि०—भुज् तुमुन् । भुज् तुम् । भोज् तुम् । भोग् तुम् । भोक्तुम् ।
भोक्तुम् सु । भोक्तुम् स् । भोक्तुम् ॥

विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ३।३।१६१

प० वि०—विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु ७३ लिङ्
१।१ स०—विधिरच निमन्त्रणञ्च आमन्त्रणञ्च अचीष्टं च संप्रश्नरच
प्रार्थनं च इति विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनानि तेषु ।

अर्थ—विधिः मेरुणम् । निमन्त्रणम् नियोगकरणम् , निषट्ग्यान्

जनानाहूय तेषां शास्त्रानुसारेण मन्त्रार इत्यर्थः तत्र ह आहूतस्य आग-
मनमावश्यकमस्ति इति तत्त्वम् ॐ आमन्त्रणम् कामचारकरणम् हेआहू-
तस्यागमन तदधीनमस्ति इति तत्त्वम् ॐ अधीष्टः स्मरणपूर्वको व्यापारः ।
सप्रश्नः संदिग्धस्य निश्चयार्थं प्रच्छेदनम् । प्रार्थने यान्च्ञा । [इन्द्रार्थेभ्यो
विभाषा वर्तमाने इत्यतः वर्तमान इत्यनुवर्तते] क्रियादिषु अर्थेषु
वर्तमानकाले धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति ।

(विधि इत्यादि श्रवणे मं वर्तमान काल मं धातु मे लिङ् प्रत्यय हाता है)

उदा०—विधी—कटं कुर्यात् । निमन्त्रणे—इह भवान् भुञ्जीत ।
इह भवतामोत । आमन्त्रणे—इह भवतामामात । इह भवान् भुञ्जीत ।
अवीष्टे—अधीच्छामो भवन्तं माण्डक भवानुपनयेत् । सप्रश्ने—कि-
नु खलु भो व्याकरणमधीयीत । प्रार्थने—भवति मे प्रार्थना व्याकरण-
मधीयीत ।

सि०—कुर्यात् । कुरुष्व । कृ लिङ् । कृ ल् । कृ तिप् । कृ उ ति । कर् उ
यामुट् सुट् ति । कर् उ या ति । कर् उ यान् । कुर्यात् । कुर्याताम् । कुर्युः ।
कुर्याः । कुर्यान् । कुर्यान् । कुर्याम् । कुर्याथ । कुर्याम । आसीत् । आम्
सीयुट् सुट् त । आम् ईत् । आसीत् । उपनयेत् । उप नीत् लिङ् । उप
नी तिप् । उप नी शप् यामुट् सुट् ति । उपनयेत् । उपनयेताम् ।
उपनयेयुः । उपनयेः । उपनयेताम् । उपनयेत् । उपनयेयम् । उप-
येत् ।

अधि इद् अभ्ययने । इद् लिङ् । इ ल् । इ त । इ मीयुट् सुट् त । इयद्
ईय् त । इय् ईय् त । इयीत् । अधि इयीत् अधीयीत् । अधीयीयताम् ।
अधीयीरन् । अधीयीथाः । अधीयीथाथाम् । अधीयीथ्यम् । अधीयीथ ।
अधीयीरहि । अधीयीमहि । अधीयीथ । अधि इ मीयुट् सुट् । अधि इ
ईय् इ । अधि इयद् ईय् इ । अधीय ईय् अ । अधीयीथ ।

लोट् च ३।८।१२०

५० सि०—लोट् ११ च अ० ।

उदा०—विधौ—कटं तावद् भवान् करोतु । ग्रामं भवान् आगच्छतु ।
निमन्त्रणं—अमुत्र भवानास्ताम् । अमुत्र भवान् भुङ्क्ताम् । आमन्त्रणे—
इह भवान् भुङ्क्ताम् । अधीष्टे—अधीच्छामो भवन्तं माणवक भवान-
ध्यापयतु । माणवकं भवान् उपनयताम् । संप्रश्ने—किं नु खलु भो
व्याकरणमध्ययै । प्रार्थने—भवति मे प्रार्थना व्याकरणमध्ययै ।

सि०—करोतु । डुकृञ् । कृ लोट् । कृ ल् । कृ तिप् । कृ ति । कृ च
ति । कर् उ ति । कर् आ ति । कर् आ तु । करोतु । कुरुताम् । कुर्वन्तु ।
कुरु । कृ उ सिप् । कुरु हि । कुरु^१ । कुरुन्तु । कुरुन् । करवाणि । करवाव ।
भवतु । भवताम् । भवन्तु । भव । भू शप् सिप् । भू अ हि । भो अ हि ।
भव हि । भव^२ । भवतम् । भवत । भवानि । भव आट्^३ मिप् । भव
आ नि^४ । भवानि । भवाव । भव आवस् । भवाव^५ । भवाम । एध-
ताम् । एध् शप् त । एधते । एधताम्^६ । एधेताम् । एधन्ताम्^७ । एधस्व^८ ।
एधेथाम् । एवध्वम् । एधै । एनावहि । एवामहि ।

अध्यापयतु । अधि इङ् गिच् शप् तिप् । अधि आ^९ इ शप् तिप् ।
अधि आ पुङ्^६ इ अ ति । अध्यापि अ ति । अध्यापे अ ति । अध्यापय-
ति । अध्यापयतु । अध्यापयताम् । अध्यापयन्तु । अध्यापय । अध्यापय-
तम् । अ-न्यापयत । अध्यापयानि । अध्यापयाव । अध्यापयाम ।

आशिपि लिङ्लोटौ ३।३।२७३

प० वि०—आशिपि ७।१ लिङ्लोटौ १।२ स०—लिङ् च लोट् च
इति लिङ्लोटौ ।

अर्थ—आशंसनमाशीः । अप्राप्तस्येष्टस्यार्थस्य प्राप्तुमिच्छा ।
आशिपि लिङ्लोटौ प्रत्ययौ भवतः । (प्रप्राप्त वस्तु की प्राप्ति की इच्छा की
धानीः कहते हैं) (धानी धर्म में धानु से लिङ् घोर लोट् प्रत्यय होते हैं)

उदा०—चिरं जीव्यान् भवान् । चिर जीवतु भवान् । भूयान् । भूया-
स्ताम् । भूयानु । भूयाः । भूयान्तम् । भूयान्त । भूयासम् । भूयास्व ।

१—उपदव प्रत्ययादमयोगपूर्वान् (६. ४. १०६) २—घनो हेः (६. ४.
१०५) ३—माडुत्तमस्य दिव्च (३. ४. ६२) ४—मेनि (३. ४. ८६) ५—
लोटो लङ्बन् (३. ४. ८५) नित्य डिनः (३. ४. ६६) ६—घामेत. (३. ४.
६०) ७—घामः से (३. ४. ८०) गयान्या वामो (३. ४. ६१) ८—श्रीट-
जीना णो (६. १. ४८) ९—घतिहोन्नी० (७. ३. ३६)

भूयास्म । एषिपीष्ट । ण्विपीयान्नाम । ण्विपीस्त् । ण्विपीष्ठा । ण्वि-
पीयास्वाम् । ण्विपीयम् । ण्विपीय । ण्विपीवृद्धि । ण्विपीमहि ।

सि०—जीज्यान् । जीज् लिङ् । जीज् ल् । जीज् तिप् । जीज् ति ।
जीज् यामुट् सुट् ति । जीज् या स् ति । जीज् याम् म् न् । जीज् या
स् त् । जीज् या त् । जीज्यान् । जीज्यास्नाम् । जीज्यासु । जीज्या ।
जीज्यान्तम् । जीज्यान्त । जीज्यामम् । जीज्यास्त्र । जीज्यास्म ।

ण्विपीष्ट । ण्व् सीयुट् सुट् त । ण्व् इट् सीय् स् त । ण्विपीय् स्त ।
एषिपी ष्ट । ण्विपीष्ट ।

माटि लुट् ३।३।१७५

प० वि०—माटि ७।१ लुङ् १।१

अर्थ—माह्व्युपपदे घातोर्लुङ् प्रत्ययो भवति ।

(माह्व् न उपपद रहन पर घानु मे लुङ् प्रत्यय हाता है)

उदा०—मा कार्पात् । मा हार्पात् ।

ऋमा ते मंगोऽन्व्यर्म्मणि (गीता २।७०) इत्यादिशिष्टप्रयोगमिद्व्य-
र्थमत्र लिङ्लोटौ मण्डुक्युयानुवर्तनीयो इत्याचार्यदयानन्दा आहु ।
विशेषन्त्रत्र तद्वीयाष्टाध्यायीभाष्ये टिप्पण्या द्रष्टव्य ॥३॥

स्मोत्तरे लङ् च ३।३।१७६

प० वि०—स्मोत्तरे ७।१ लङ् १।१ च अ०॥ स०—स्मशब्द उत्तरो
यस्मात् तस्मिन्, स्मोत्तरे ।

अर्थ—[माडि] स्मोत्तरे माह्व्युपपदे घातोर्लुङ् प्रत्ययो भवति चा-
ल्लुङ् च । (स्म शब्द पर हा एम माह्व् न उपपद रहन पर घानु मे लुङ् प्रत्यय
होता है घोर वनार मे लुङ् भी)

उदा०—मा स्म करोत् । मा स्म कार्पात् । मा स्म पचन् । मा स्म
पाक्षीत् ।

इत्याष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया तृतीयाध्याये तृतीय पाद



१—स्वा सवोपाधारन च (८ ० २९) २—स्वा सवोपाधारन च
(८ २ २६) ३—अपमस्य सूत्रस्य पुन प्रवृत्ति इति सूत्र विचारितव्यं द्रष्टव्यमस्ति

धातुसम्बन्धे प्रत्यया ३।४।१

प० वि०—धातुसम्बन्धे ७।१ प्रत्यया १।३ स०—वातोरर्थो धात्वर्थ । धात्वर्थस्य सम्बन्ध इति धातुसम्बन्ध (उत्तरपदलोपी) तस्मिन् ।

अर्थ—धात्वर्थसम्बन्धे अथवाकालोक्ता अपि प्रत्यया साधयो भवन्ति ।
(धातु क प्रथ वा सम्बन्ध हान पर भिन्नकाल म विधान किये गय प्रत्यय भी साधु प्रथान् ठाक मान जात ह)

उदा०—अग्निष्टोमयाजी पुत्राऽस्य जनिता । ॐ अग्नेऽज्ञातव्यम्—
अग्निष्टोमयाजीति भूतकाल जनितति भविष्यत्काल । तत्र भूतकालो भविष्यत्कालेन आभसम्बन्धमान साधुर्भवति ।

(अग्निष्टोमन इष्टवान इति अग्निष्टोमयाजी यहाँ पर भूतकाल में एति प्रत्यय हुआ । अब अग्निष्टोम यज्ञ जिस न किया है ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा । इस वाक्य म भूतकाल वा भविष्यत् काल के साथ सम्बन्ध हाना असम्भव है पर यह सूत्र बनाया गया जिसस यह प्रयोग साधु हो जाये)

छन्दसि लुङ्लिट् ३।४।५

प० वि०—छन्दसि ७।१ लुङ्लिट् १।३ स०—लुङ् च लट् च लिट् च इति लुङ्लिट् ॥

अर्थ—[धातुसम्बन्धे अन्यतरस्याम्] छन्दसि वैदिकप्रयोगविषये धात्वर्थसम्बन्धे धाता सामान्ये काल अन्यतरस्याम् लुङ्लिट् प्रत्यया भवन्ति । (धातु के प्रथ के सम्बन्ध में धातु स सामान्य काल में विवक्ष्य स लुङ लट् और लिट् प्रत्यय होते है)

उदा०—लुङ्—शकलरुगुष्ठकोऽस्मिन् । अह तेभ्योऽस्मिन् नम । लट्—
अग्निमन्वा होतारमवृणीताय यजमान । लिट्—अद्या ममार ।

ऋषिपुत्राहररेष्वन्यस्य धातो सम्बन्धो मृग्य इति वाशिकाकारादय आहु वन्तुतन्तु "धातुसम्बन्धे प्रत्यया" इत्यस्यायमर्थ—येचन प्रत्यया करिन् केवल धात्वर्थसम्बन्ध एव भवन्ति न तु भूतात्कालार्थविशेषेषु । तेनाग्निष्टोमयाजा इत्याह्य अग्निष्टोमयाजः इत्येवार्थोऽभिप्रेत न तु अग्निष्टोममिष्टवानितिभूतकालविशिष्ट । तेन 'जनिता' इति भविष्यत्कालार्थेन सह मध्यो भवति । एव च सति एतन्मूत्रोऽहररेष्वपि धात्वन्तरसम्बन्धो न मृग्या भवति । धात्वर्थमात्र एव चेदे लुङ्लिट् प्रत्यया भवन्ति । इत्येवास्मिन्प्रत्ययार्थं, न तु तत्कालविशेषेषु । मयेष

“म दाधार पृथिवीम्” इत्यम्य म द्विरस्यगर्भा नामा परमेश्वरः पृथिवी दाधार, धरति, धरिष्यति च इति मामान्येन कालत्रयेऽपि अर्थो लभ्यते इति युधिष्ठिरमीमांसकाः ।

लिट्ये लेट् ३।४।७

प० वि०—लिङ्ग्ये ङा१ लेट् १।१ स०—लिङोऽर्थ लिङ्ग्यः तम्मिन ।

अर्थ—[छन्दसि अन्यतरम्याम्] लिङ्ग्यं छन्दसि विषये अन्यतरम्याम् घातोलेट् प्रत्ययो भवति । (लिङ् के अर्थ में छन्द के विषय में विक्रम में घातु में लेट् प्रत्यय होता है)

उदा०—जोषिपन् । तारिपन् । भाविपति । भाविपाति । भाविपन् । भाविपान् । भाविपद् । भाविपाद् ।

मि०—जुप् लेट् । जुप् तिप् । जुप् सिप् ति । जुप् ट्ट् म् ति । जोषिप् अट् ति । जोषिपन् ॥

अलंरत्त्वोः प्रतिषेधयोः प्राचा क्त्वा ३।४।१८

प० वि०—अलंरत्त्वोः ङा२ प्रतिषेधयोः ङा२ प्राचाम् ङा२ क्त्वा १।१

म०—अलञ्च खलुश्च इति अलंरत्त्वो तयोः ।

अर्थ—प्रतिषेधयोरलखत्वोऽप्यपदयोर्घातोः क्त्वा प्रत्ययो भवति प्राचामाचार्याणां मतेन । (प्रतिषेधवाची घञ घोर क्तु अन्त के अन्त रहने पर पूर्व देश में रहने वाले प्राचार्य के मन में क्त्वा प्रत्यय होता है)

उदा०—अलं कृत्वा । खलु कृत्वा । अलं भक्त्या । खलु मुक्त्वा । न कर्त्तव्यम्, न भोक्तव्यम् इत्यर्थः ।

समानकर्त्तृकयोः पूर्वकाले ३।४।२१

प० वि०—समानकर्त्तृकयोः ङा२ पूर्वकाले ङा१ म०—समानः एङः

कर्त्ता योर्घातोऽरिति समानकर्त्तृकौ तयोः । पूर्वकालो काल इति पूर्वकाल तम्मिन् ।

अर्थ—[क्त्वा] समानकर्त्तृकयोः घातोर्मध्ये पूर्वकाले घातार्थे घर्त्तमानाद् घातोः क्त्वा प्रत्ययो भवति । (समान कर्त्ता वाले घातुओं में पूर्वकाल के घातार्थ में घर्त्तमान घातु में क्त्वा प्रत्यय होता है)

उदा०—मुक्त्वा प्रजति । पीत्वा प्रजति । प्रहृत्य गन्धति । ममार ह्त्वा । अहत्वा ममार ॥ ग्नात्वा मुक्त्वा पीत्वा ह्त्वा प्रजति इत्यत्रापि सूत्रेषु लिङ्गप्रचनमन्त्रम् इति परिभाषया द्विचनम्यान्त्रयान् क्त्वा भवति ।

सि०—भुज् क्त्वा । भुग् त्वा । भुक्त्वा सु । भुक्त्वा सु । भुक्त्वा ॥
 हन् त्वा । ह त्वा । हत्वा सु । हत्वा ॥ अहत्वा । न हत्वा । अ हत्वा ।
 अहत्वा । प्रहृत्य । कृ त्वा । कृत्वा । प्र कृ ल्यप् । प्रकृ य । प्रकृ तुक् य ।
 प्रहृत्य सु । प्रहृत्य ॥

शकधृपज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन् ३।४।६५

प० वि०—शकधृपज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु ७।३ तुमुन्
 १।१ स०—अस्ति अर्थो येषां ते अस्त्यर्था । शकश्च धृपश्च ज्ञाश्च
 ग्लाश्च घटश्च रभश्च लभश्च क्रमश्च अर्हश्च अस्त्यर्थाश्च इति शक-
 धृपग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थां तेषु ।

अर्थ—शक-धृप-ज्ञा-ग्ला-घट-रभ-लभ-क्रम-सह-अर्ह- अस्त्यर्थेषूपपदेषु
 धातोस्तुमुन् प्रत्ययो भवति । (शक, धृप्, ज्ञा, ग्लै, घट, रभ, लभ, क्रम,
 सह, अर्ह, और अस्ति अर्थ वाले धातुओं के उपपद रहने पर धातु में तुमुन्
 प्रत्यय होता है)

उदा०—शक्नोति भोक्तुम् । धृष्णोति भोक्तुम् । जानाति
 भोक्तुम् । ग्लायति भोक्तुम् । घटते भोक्तुम् । आरभते भोक्तुम् । लभते
 भोक्तुम् । प्रक्रमते भोक्तुम् । सहते भोक्तुम् । अर्हति भोक्तुम् ।
 अस्त्यर्थेषु—अस्ति भोक्तुम् । भवति भोक्तुम् । विचते भोक्तुम् ॥

पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु ३।४।६६

प० वि०—पर्याप्तिवचनेषु ७।३ अलमर्थेषु ७।३ स०—पर्याप्तिरुच्यते
 चैस्ते पर्याप्तिवचना अलम् आदयः शब्दाः । अलम् अर्थो येषान्ते
 अलमर्था तेषु ।

अर्थ—पर्याप्तिरन्यूनता परिपूर्णतेत्यनर्थान्तरम् । [तुमुन्] पर्याप्ति-
 वचनेष्वलमर्थेषूपपदेषु धातोस्तुमुन् प्रत्ययो भवति । (पर्याप्ति अथवा परिपू-
 र्णता अर्थ कहन वाले अलम् अर्थ वाले शब्दों के उपपद रहने पर धातु में तुमुन्
 प्रत्यय होते हैं)

उदा०—पर्याप्तो भोक्तुम् । अल भोक्तुम् ॥

कर्त्तरि कृत् ३।४।६७

प० वि०—कर्त्तरि ७।१ कृत् १।१

अर्थ—ऋत्सङ्गना. प्रत्ययाः कर्त्तरि कारके भवन्ति । (कृत् सज्ञा वाले
 प्रत्यय कर्त्ता कारक में होते हैं)

अर्थ—तयोरेव भाषकमणो कृत्यसज्ञका स्तखलथार्श्च प्रत्ययाः भवन्ति ।

(उन्ही दोनो भाव और कम म कृत्य क्त और खल् अर्थवाले प्रत्यय हाते हैं)

उदा०—कृत्या कर्मणि-कर्त्तव्य कटो भवता । पठितव्यो वेदो भवता । भावे—आसितव्य भवता । शयितव्य भवता ॥ क्त कर्मणि-कृत कटो भवता । पठितो वेदो भवता । भावे—आसित भवता । शयित भवता । खलर्था- कर्मणि—ईप्कर कटो भवता । भावे—ईपदाढ्यंभव भवता । स्वाढ्यभव भवता ॥

ॐभावे चाकर्मकेभ्य इत्यनुवृत्तेःसकर्मकेभ्यो भावे न भवन्तिॐ
(यहाँ भावे चाकर्मकेभ्य इसकी अनुवृत्ति आती है इसलिए सकर्मक घातुप्र-
से भाव में ये प्रत्यय नहीं हाते हैं)

लादेशप्रकरणम् —

लस्य ३।४।७७

प० वि०—लस्य ६।१

अर्थ—ॐअकार उच्चारणार्थ ॐ इतोऽपे आ तृतीयाध्यायपरिस-
माप्ते. वक्ष्यमाणानि कार्याणि लकारस्थैव स्थाने भवन्ति इत्यधिकारो वेदि-
तव्य । (ल यहां पर अकार उच्चारणके लिये है । यहा से तृतीय अध्याय पर्यन्त
तक जो भी कार्य कहे जायेंगे व सभी लकार के स्थान में होंगे, इस बात का
अधिकार समझना चाहिए)

तिप्तस्त्रिभसिप्थस्थमिब्वस्मस्ताताम्भथासाथा-

ध्वमिड्वहिमहिड् ३।४।७८

प० वि०—तिप्-तस्-भि-सिप्-थस्-थ-मिप्-वस्-मस्-त-आताम्-
भ-थास-आथाम्-ध्वम्-इट्-वहि-महिड् । १।१

अर्थ—[लस्य] लस्य स्थाने तिगादय आदेशाः भवन्ति ।

(ल के स्थान में तिप् तस् भि सिप थम् थ गिप् वस् मस् त घाताम् भ
थास् आथाम् ध्वम् इट् वहि महिड् ये अठारह आदेश होते हैं)

उदा०—पचति, पचत, पचन्ति । पचसि, पचथ, पचथ । पचामि,
पचाव, पचाम. । पचते, पचेते, पचन्ते । पचसे, पचेथे, पचध्वे । पचे,
पचावहे, पचामहे ॥

दित् आत्मनेपदाना टेरे ३।४।७६

प० वि०—दितः ६।१ आत्मनेपदानाम् ६।३ टेः ६।१ ए अविभ० ।

अर्थ—[लम्ब] दितो लकारस्य स्थाने आत्मनेपदानां टेरेकारादेशो भवति । (दित् लकार के स्थान में जो आत्मनेपद आदेश उसकी टि का एकार आदेश हो जाता है)

उदा०—पचते । पचंते । पचन्ते ।

सि०—पच् शप् त । पच् अ त् अ । पच् अ त् ए । पचते । पच् शप् आताम् । पच आत् आम् । पच आन् ए । पचंते । पचन्ते ।

थासस्ते ३।४।८०

प० वि०—थासः ६।१ मे अविभ० ।

अर्थ—[दितः] दितो लकारस्य सम्बन्धिनः थासस्थाने मे इत्ययमादेशो भवति । (दित् लकार सम्बन्धी थास् के स्थानमें 'मे' यह आदेश होता है)

उदा०—पचसे । एधितासे । गधिप्यसे । जगाधिपे । पच् शप् थास् । पचसे । एधितास् थास् । एवितास् से । गधितासे । गधिप्य थास् । एधिप्यसे । गाव् । गाव् लिट् । गा गाव् लिट् । गगाव् लिट् । जगाव् ल् । जगाव् थास् । जगाव् इट् थास् । जगाधि से । जगाधिपे ।

लिटस्तभयोरेशिशेच् २।४।८१

प० वि०—लिट् ६।१ तभयोः ६।२ एशिशेच् १।१ स०—तरच क्ररचेति तम्नो तयोः । एश्च इरेच्चेति एशिशेच् ।

अर्थ—लिङादेशयोस्तभयोस्स्थाने यथासरयमेश् इरेच् इत्येतावादेशौ भवतः । (लिट् के स्थान में जो आदेश त और क उसके स्थान में क्रमशः एश् और इरेच् ये दो आदेश होते हैं)

उदा०—पेचे । पेचाते । पेचिरे । लेभे । लेभाते लेभिरे ।

सि०—पच् लिट् । पच् ल् । पच् त । पच् पच् त । प पच् त ।

पेच्^१ त । पेच् एश् । पच् ए । पेचे । लेभे । पेचिरे । पच् लिट् । पच् ल् । पच् क् । पच् पच् क् । पपच् क् । पेच् क् । पेच् इरेच् । पेच् इरे । पेचिरे । लेभिरे ।

परस्मैपदाना णलतुसुस्थलथुसणत्वमाः ३।४।८२

प० वि०—परस्मैपदानाम् ६।३ णलतुसुस्थलथुसणत्वमाः १।३

स०—एल् च अतुश्च उश्च थल् च अथुश्च अश्च एल् च बश्च
मश्चेति एलतुसुस्थलथुसएल्बमाः ।

अर्थ—[लिटः] लिटादेशानां परस्मैपदानां तिगादीनां स्थाने यथा-
संस्य एलादयः आदेशा भवन्ति ।

(लिट् के स्थान में जो परस्मैपद तिवादि प्रादेश उनके स्थान में क्रमश
एल् इत्यादि आदेश होते हैं)

उदा०—पपाच । पेचतु । पेचुः । पेचिथः । पपक्थ । पेचथुः । पेच ।
पपाच, पपच । पेचिब । पेचिम ।

सि०—पच् लिट् । पच् तिप् । पच् एल् । पाच् अ । पाच् पाच्
अ^२ । पा^३ पाच् अ । प^४ पाच् अ । पपाच । पच् अतुस् । पच् पच्
अतुस् । पेच्^५ अतस् । पेचतुः । पेचुः । पच् पच् थल् । पच् पच् ईट्
थल् । पेच्^६ ईट् थ । पेचिथ । पपक्थ । पपक्थ^७ । पच् अ । पेच अ ।
पेच । पच् एल् । पाच् एल् । पपाच । पपच^८ । पेचिब । पेचिम ।

विदो लटो वा ३।४।८३

प० वि०—विदः ५।१ लटः ६।१ वा अ० ।

अर्थ—[परस्मैपदानाम्] विद् ज्ञाने इत्यस्माद्धातोः परेषां लिटा-
देशानां परस्मैपदानां एलादयः नव आदेशाः विकल्पेन भवन्ति ।

(विद् ज्ञाने इम धातु के पश्चात् लट् के स्थान में जो तिवादि परस्मैपद
आदेश उसने स्थान में एल् इत्यादि आदेश विकल्प से होते हैं)

उदा०—वेद । विदतुः । विदुः । वेत्थ । विदथुः । विद । वेद ।
विद्व । विद्म । न च भवति । वेत्ति । वित्तः । विदन्ति । वेत्सि ।
वित्थः । वित्थ । वैदिम । विद्वः । विद्मः ।

सि०—विद् लट् । विद् तिप् । विद् एल् । वेद् अ । वेद । विद्
अतुम् । विद्^१ अतुस् । विदतुः । वेत्ति । विद् तिप् । वेद् ति । वेद्

१—अत उपधाया. (७. २. ११६) २—लिटि धातोरनभ्यासस्य. (६. १. ८)

३—पूर्वोभ्यास (६. १. ४) अत्र लोपोभ्यासस्य (७. ४. ५८) हलादि संपः
(७. ४. ६०) ४—ह्रस्व. (७. ४. ५६) ५—अत एकह्रस्वमध्येऽनादेशादेर्लिटि
(६. ४. १२०) ६—यसि च सेटि (६. ४. १२१) ७—कृवादिनियमाद् इडा-
गमो भवति परन्तु तस्यापि ऋनो भागद्वाजस्यति निधमादिद् विकल्पः ८—
एलुत्तमा वा (७. १. ६१) ९—असयोगात्लिट् कित् (१. २. ५) विशि च
(१. १. ५)

ति । वेत्ति^१ ।

ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ३।४।८४

प० वि०—ब्रुवः ५।१ पञ्चानाम् ६।३ आदितः । अ० । आहः १।१
ब्रुवः ६।१

अर्थ—[परस्मैपदानां लोटो वा] ब्रुवः परस्य लटः परस्मैपदानां पञ्चानामादिभूतानां पञ्चैव णलादय आदेशा भवन्ति, तत्सन्नियोगेन च ब्रुवः आह इत्यादेशो भवति ।

(ब्रू पातु के पदचात् जो लट् उसके स्थान में होने वाले परस्मैपद सङ्ग आदि के पाच तिवादि आदेशों के स्थान में णलादि पाच आदेश क्रमशः विरल्य से हाने हैं और उस आदेश के मयोग से ब्रू पातु के स्थान में आह आदेश हो जाता है)

उदा०—आह । आहथुः । आहुः । आत्थ । आहथुः । ब्रूथ । ब्रुवीमि
ब्रूवः । ब्रूमः ॥ न च भवति । ब्रुवीति । ब्रूतः । ब्रुवन्ति । ब्रुवीपि ।
ब्रूथः । ब्रूथ । ब्रुवीमि । ब्रूथः । ब्रूमः ।

सि०—ब्रू निप् । आह णल् । आह । आद् थल् । आत्थ थ ।
आत्थ^१ । ब्रुवीमि । ब्रू मिप् । ब्रू मि । ब्रू ईट्^२ मि । ब्रू ई मि । ब्रु ई
मि । ब्रु ई मि । ब्रुवीमि । ब्रुवन्ति । ब्रू मि । ब्रू अन्ति । ब्रू उवह्
अन्ति । ब्रुम् अन्ति । ब्रुवन्ति । ब्रूथः । ब्रू थस् । ब्रूथः ।

लोटो लङ् चत् ३।४।८५

प० वि०—लोटः ६।१ लङ् चत् १.१

अर्थ—लोट् लृकारस्य लङ् चत् कार्यं भवति, अर्थात् कित्कार्यं लोटो-
पि भवति । (लोट् लृकार का लङ् के समान कार्य होना है अर्थात् कित् कार्यं
लोट् का भी होता है) ।

उदा०—पचताम् । पचत । पचान । पचाम ।

सि०—इपचप् । पच् लोट् । पच् ल् । पच् तस् । पच् शप् तस् ।
पच तस् । पचताम्^३ । पच थस् । पचतम् । पच् शप् थस् । पच् अ वस् ।
पच आट्^४ वस् । पच आ वस् । पचावस् । पचाव^५ । पचाम ।

१—खरि च (८. ४. ५४) २—ब्रूय ईट् (७. ३. ६३) आद्यन्तो टकितो
(१. १. ४५) ३—तस्यस्यमिषा तान्तन्ताम. (३. ४. १०१) ४—प्राडुत्तमस्य
पिच्च (३. ४. ६२) ५—नित्य डितः (३. ४. ९९)

एरु ३।४।८६

प० वि०—एः ६।१ उ १।१

अर्थ—[लोटः] लोडादेशानामिकारस्य उकारादेशो भवति । (लोट् के स्थान में जो होने वाले आदेश उसके इकार के स्थान में उकार आदेश होता है)

उदा०—पचतु । पचन्तु ।

सि०—पच् शप् तिप् । पचति । पचतु । पच् अ भि । पच् अन्ति । पचन्ति । पचन्तु ।

सेह्यपिच्च ३।४।८७

प० वि०—सेः ६।१ हि १।१ अपित् १।१ च अ० । स०—न पिद् इति अपित् ।

अर्थ—[लोटः] लोडादेशस्य सेहि इत्ययमादेशो भवति अपिच्च भवति । (लोट् लकार के सिप् के स्थान में हि यह आदेश होता है और वह अपित् होता है)

उदा०—पच । लुनीहि । पुनीहि ।

सि०—पच् शप् सिप् । पचहि । पच^१ । लून् । लू । लू लोट् । लू लू । लू सिप् । लू श्ना सिप् । लू ना सि । लु ना हि । लुनीहि^२ ।

वा छन्दसि ३।४।८८

प० वि०—वा अ० । छन्दसि ७।१

अर्थ—आदेशश्छन्दसि विषयं हिशब्दो वाऽपिद्भवति ।

(लोट् के स्थान में ओ आदेश द्विसदर वह छन्द में विकल्प से अपित् होता है)

उदा०—युयोव्यस्मज्जहुराणमेनः । जुहुधि । जुहोधि ।

सि०—यु । यु लोट् । यु लू । यु सिप्^३ । यु यु^४ सि । यु यु हि । यु यो हि । यु यो वि^५ ।

जहुधि । हु लोट् । हु लू । हु सिप् । हु हु सिप् । कु हु सि । जु इ सि । जुहु हि । जु हु धि । जुहोधि^६ ।

मेनिः ३।४।८९

प० वि०—मेः ६।१ निः १।१

१—अतो हे. (६. ४. १०५) २—ई हत्यघो (६. ४. ११३) ३—बहुल छन्दसि (२. ४. ७६) ४—श्लो (६. १. १०) ५—प्रडितश्च (६. ४. १०३) ६—हुभ्रम्यो हेधिः (६. ४. १०१)

अर्थ—[लोटः] लोढादेशस्य मेर्निरादेशो भवति ।

(लोट् सम्बन्धी मिप् के स्थान में नि घ्रादेश होता है)

उदा०—पचानि । पठानि । भवानि । अतानि ।

सि०—पच् शप् मिप् । पच मि । पच आट् मि । पचामि । पचानि ।

आमेत ३।४।६०

प० वि०—आम् १।१ एतः ६।१

अर्थ—[लोटः] लोट् लकारसम्बन्धिन एकारस्य स्थाने आम् इत्ययमादेशो भवति । (लोट् लकार सम्बन्धी एकार के स्थान में ग्राम् यह घ्रादेश होता है)

उदा०—पचताम् । पचेताम् । पचन्ताम् । पचेथाम् ।

सि०—पच् लोट् । पच् ल् । पच् त् । पच् शप् त् । पचन् । पचन्ते । पचन् ए । पचन् आम् । पचताम् । पचेताम् । पच् शप् आताम् ।

पच् अ आताम् । पच आताम् । पच इयताम् । पच इतान् । पचेताम् । पचेते । पचेताम् ॥ पचन्ताम् । पचन्ते । पचन्ताम् ॥

सवाभ्या वामी ३।४।६१

प० वि०—सवाभ्याम् १।२ वामी १।२ स०—सश्च वश्चेति सवी ताभ्याम् । वश्च अश्चेति वामी ।

अर्थ—[लोटः एतः] सवारवजाराभ्यामुत्तरस्य लोट् सम्बन्धिन एकारस्य यथासंख्य व अम् इत्येतावादेशो भवतः । (सकार और वकार के पश्चात् लोट् लकार सम्बन्धी एकार के स्थान में वमयः व और अम् ये दोनों आदेश होते हैं)

उदा०—पचस्व । पचध्वम् ।

सि०—पच् लोट् । पच् ल् । पच् धास् । पच् से । पच् शप् से । पचसे । पचस ए । पचस व । पचस्व । पच शप् ध्वम् । पचध्वे । पचध्वम् ॥

आहुत्तमस्य पिच्च ३।४।६२

प० वि०—आट् १ १ उत्तमस्य ६।१ पित् १।१ च अ० ॥

अर्थ—[लोटः] लोट् सम्बन्धिन उत्तमपुरुषस्य आट् आगमो भवति स च पित् ॥ (लोट् लकार सम्बन्धी उत्तम पुरुष की आट् का आगम होता और वह पित् होता है)

उदा०—पचानि । पचात्र । पचाम । पचै । पचावहे । पचामहे ।

सि०—पच् लोट् । पच् ल् । पच् मिप् । पच् शप् मिप् । पच मि । पच आट् मि । पच आभि । पच आनि^१ । पचानि । पचावस् । पचाव^२ । पचाम । पचै । पच् शप् आट् इट् । पच आ इ । पच आ ए^३ । पच आ ऐ^४ । पचै । पचावहि । पचावहे । पचात्रहे । पचामहे ।

एत ऐ ३।४।६३

प० वि०—एतः ६।१ ऐ अविभ० ॥

अर्थ—[लोट् उक्तमस्य] लोट्सम्बन्धिन उत्तमपुरुषस्य एकारस्य स्थाने ऐ इत्ययमादेशो भवति । (लाट् लकार सम्बन्धी उत्तम पुष्प के एकार के स्थान में ऐकार आदेश होता है)

उदा०—पचै । पचावहे । पचामहे । करवै । करवावहे । करवामहे ॥

लेटोऽडाटी ३।४।६४

प० वि०—लेट् ६।१ अडाटी १।२ स०—अट् च आट् च इवि अडाटी

अर्थ—लेटोऽडाटावागमौ भवत पर्यायेण । (लेट् लकार को अट् और आट् का आगम पर्याय से होता है)

सि०—प्र ण आयु पि तारिपत् (यजु० २३।३२) । विपुरुषा भवाति (अथर्व० १८।१।०)

सि०—त लेट् । त ल् । त सिप् ल् । त इट् स् ति । तार् इ स् ति । तारिप् ति । तारिष् अट् ति । तारिपति । तारिपत्^१ । भवाति । भू लेट् । भू ल् । भू ति । भू शप् ति । भो अ ति । भव ति । भव आट् ति । भव आ ति । भवाति ॥

आत ऐ ३।४।६५

प० वि०—आत ६।१ ऐ अविभ० ॥

अर्थ—[लेट्] लेट्सम्बन्धिन आकारस्य स्थाने ऐ इत्यादेशो भवति । लेट लकार सम्बन्धी आकार के स्थान में ऐ मह आदेश होता है)

१—भेनि (३. ४. ८६) २—लोटा लङ्घत् (३. ४. ८५) नित्य ङित् (३. ४. ६६) ३—टित् आत्मनेपदानां टर (३. ४. ७६) ४—एत ऐ (३. ४. ६३) ५—इतश्च लोप परस्मैपदेषु (३. ४. ६७)

रदा०—णधिपैते । एधिपैते । एधैते । एधैते । णधिपैथे । एधिपैथे ।
एधैथे । एधैथे ।

सि —एधिपैते । ण्व । एध् लोट् । एध् ल् । एध् आताम् । ण्व्
सिप् आताम् । एध् इट् स् आताम् । एधिस् आताम् । ण्विप् आताम् ।
ण्विप् अट् आताम् । ण्विप ऐ ताम् । एधिप ऐते । एधिपैते । एधिप
आट् ऐते । ण्विपा ऐते । एधिपैते ॥

एधैते । ण्व् शप् अट् आताम् । ण्व् अ आताम् । एध आताम् ।
एध ऐनाम् । ण्व् ऐते । एधैते । एध् शप् आट् आताम् । एध आ
ऐते । ण्व् ऐते । एधैते ॥

वैतोऽन्यत्र ३।४।६६

प० वि०—वा अ० । एत ६।१ अन्यत्र अ० ॥

अर्थ—[लोट्] लोट्सम्बन्धिन ण्वारस्य स्थाने वा ऐकारादेशो भवति
अन्यत्र (आत ऐ इत्येतद् विषय वर्णयित्वा) ।

(सट् लकार सम्बन्धी एकार के स्थान में विकल्प से एकार आदाग होना
है और स्थानों पर अर्थात् जिस प्रयोग में आठ ए इस सूत्र की प्रवृत्ति हो जाए,
उस प्रयोग को छोड़कर)

रदा०—ण्वते । एपाते । एवतै । एधातै । एधिपते । ण्विपाते ।
एधिपतै । ण्विपातै । एधिपन्ते । ण्विपान्ते । एधिपन्तै । एधिपान्तै
एधिपसे । एधिपासे । एधिपसँ । ण्विपासँ । ण्वसे । एधासे । ण्वसै ।
एधासै ।

ण्विपध्वे । ण्विपाध्वे । एधिपध्वै । ण्विपाध्वै । ण्वध्वे । ण्विपाध्वे ।
एधध्वै । ण्विपाध्वै । ण्विपे । ण्विपै । ण्विपै । ण्विपै ॥ ण्विपवहे ।
एधिपावहे । ण्विपवहँ । ण्विपावहँ । ण्ववहे । एपावहे । एपावहँ ।
एधावहे ॥ ण्विपमहे । ण्विपामहे । ण्विपमहँ । ण्विपामहँ । ण्वमहे ।
एधामहे । ण्वमहँ । एधामहँ ॥

सि०—ण्व् इट् सिप् त । ण्विप् अट् त । ण्विपत । ण्विपते ।
एधिप् आट् त । ण्विपाते । ण्विपतँ । ण्विपातँ ॥ ण्व सर्त्र ॥

इतद्वच लाप परस्मैपदेषु ३।४।६७

प० वि०—इत ६।१ च अ० । लोप १।१ परस्मैपदेषु ७।३

अर्थ—[लिट् वा] परस्मैपदेषु लोट्लकारसम्बन्धिन इकारस्य विकल्पेन

लोपो भवति ॥ (परस्मैपद प्रत्ययो मे लेट् लकार सम्बन्धी इकार का विकल्प से लोप होता है)

उदा०—भाविपति । भाविपाति । भाविपत् । भाविपात् । भविपति । भविपाति । भविपत् । भविपान् (अन्यत्सर्वं सिञ्चहुल लेटि इत्यत्र द्रष्टव्यम्)

स उत्तमस्य ३।४।६८

प० वि०—सः ६।१ उत्तमस्य ६।१

अर्थ—[लेटः वा] लेट् सम्बन्धिन उत्तमपुरुषस्य सकारस्य वा लोपो भवति । (लेट् लकार सम्बन्धी उत्तम पुंष्य के सकार का विकल्प से लोप होता है)

उदा०—भाविपवः । भाविपावः । भाविपव । भाविपाव । भविपवः । भविपावः । भविपव । भविपाव । भववः । भवावः । भवव । भवाव ॥
भाविपमः । भाविपामः । भाविपम । भाविपाम । भविपमः । भविपामः । भविपम । भविपाम । भवमः । भवामः । भवम । भवाम ॥

सि०—सर्वं स्पष्टम् ॥

नित्य डित्. ३।४।६९

प० वि०—नित्यम् १।१ डितः ६।१ स०—इ इद् यस्येति डित् तस्य ।

अर्थ—[स उत्तमस्य परस्मैपदेषु] डिल्लकारसम्बन्धिन उत्तमपुरुषस्य सकारस्य लोपो भवति । (डित लकार सम्बन्धी उत्तम पुंष्य के सकार का परस्मैपद मे नित्य करके लोप होता है)

उदा०—अपचाव । अपचाम ।

सि०—पच् लङ् । पच् लृ । पच् वस् । पच् शप् वस् । पचवस् पचाव । सञ्चट् पचावस् । अपचावस् । अपचाव । अपचाम ॥

इतश्च ३।४।१००

प० वि०—इतः ६।१ च अ० ।

अर्थ—[डितो लोपः परस्मैपदेषु] डिल्लकारसम्बन्धिनः परस्मैपदेषु इकारस्य नित्य लोपो भवति । (डित् लकार सम्बन्धी परस्मैपद मे इकार का नित्य करके लोप होता है)

उदा०—अपचत् । अपचन् । अपचः ।

सि०—पच् लङ् । पच् ल् । पच् तिप् । पच् शप् तिप् । पचति ।
पचन् । अट् पचन् । अपचन् । अपचन् । अपचन् । अपचन् । अपचन् ।
अपचन् । अपचन् ।

तस्थस्थमिपा तान्ताम. ३।४।१०१

प० वि०—तस्थस्थमिपाम् ६।३ तान्तामः १।३ सि०—तश्च थश्च
थश्च मिप् च इति तस्थस्थमिपः तेषाम् । ताम् च तम् च तश्च अम् च
इति तान्तन्तामः ॥

अर्थ—[ङितः] डिल्लकारसम्बन्धिनां तस्थस्थमिपां तान्तन्तामो
यथासंख्यमादशा भवन्ति ।

(ङित लकार सम्बन्धी तम् थम् थ और मिप् के स्थान में क्रमशः ताम्,
तम्, त और अम् आदेश होते हैं)

अपचताम् । अपचतम् । अपचत । अपचम् ।

सि०—अपच् मिप् । अपच अम् । अपचम् ।

लिङः सीयुट्, ३।४।१०२

प० वि०—लिङः ६।१ मीयुट् १।१

अर्थ—लिङादेशानां सीयुडागमो भवति ।

(लिङ् के स्थान में जो हान वाले आत्मनपद आदेश उनकी सीयुट् का
आगम होता है)

उदा०—पचेत । पचेयाताम् । पचेरन् । पचेथा । पचेयाथाम् । पचे-
ध्वम् । पचेय । पचेवहि । पचेमहि ।

सि०—पच् लिङ् । पच् ल् । पच् त । पच् शप् त । पच त । पच
सीयुट् त । पच सीयुट् मुट् त । पच सीय् स् त । पच ईय्^१ त । पचेय् त^२ ।
पचेत^३ । पचेयाताम् । पच् शप् सीयुट् आताम् । पच ईय् आताम् । पचेय्
आताम् । पचेयाताम् । पचेरन् । पच शप् सीयुट् ऋ । पचेय् रन्^४ ।
पचेरन् । पचेय । पच् शप् सीयुट् इट् । पच् अ ईय् इ । पचेय् अ^५ ।
पचेय ।

१—लिङ् मलोपोजन्यस्य (७. २. ७९) २—ग्राह्युण* (६ १. ८४)

३—लोपो व्योर्बलि (६. १. ६४) ४—भ्रम्य रन् (३ ४. १०५) ५—इटोर्ङ्

(३ ४. १०६)

यासुट् परस्मैपदेपूदात्तो ङिच्च ३।४।१०३

प० वि०—यासुट् १।१ परस्मैपदेपु ७।३ उदात्त १।१ ङित् १।१ च अ० ।

अर्थ—[लिङ्] परस्मैपदेपु लिङो यासुडागमो भवति स चोदात्तो भवति ङिच्च ।

(परस्मैपद में लिङ् को यासुट् का आगम होता है और वह उदात्त होता है, और वह ङित् होता है)

षटा०—पचेत् । पचेताम् । पचेयु । पचे । पचेतम् । पचेत । पचेयम् । पचेव । पचेम ।

सि०—पच् लिङ् । पच् ल् । पच् तिप् । पच् ति । पच् शप् ति । पच् अ यासुट् ति । पच् यास् त् । पच् आस् सुट् त् । पच् या त् । पच् इय् त् । पचेय् त् । पचेत् ॥ पचेताम् । पचेयु । पचेय् फि । पचेय् जुस् । पचेय् उस् । पचेयुस् । पचेयु । पचेय् मिप् । पचेय् अम् । पचेयम् १ ।

किदाशिपि ३।४।१०४

प० वि०—कित् १।१ आशिपि ७।१

अर्थ—[लिङ् यासुट् परस्मैपदेपूदात्त] परस्मैपदेपु आशिपि लिङो यासुडागमो भवति, स चोदात्तो भवति किच्च ।

(परस्मैपद में आशीर्वाद म वतमान जो लिङ् उसको यासुट् का आगम होता है और वह उदात्त होता है और वह कित् होता है)

उदा०—उच्यात् । उच्यास्ताम् । उच्यासु । उच्या । उच्यास्तम् । उच्यास्त । उच्यासम् । उच्यास्व । उच्यास्म । इज्यात् । इज्यास्ताम् । इज्यासु । इज्या । इज्यास्तम् । इज्यास्त । इज्यासम् । इज्यास्व । इज्यास्म । जागर्यात् । जागर्यास्ताम् । जागर्यासु । जागर्या । जागर्यास्तम् । जागर्यास्त । जागर्यासम् । जागर्यास्व । जागर्यास्म ॥

सि०—ःगुणवृद्धिप्रतिषेधस्तुल्य ङिति किति वा उभयत्रापि भवि तुमर्हति परञ्च सम्प्रसारण जागर्तेर्गुणे च विशेष तच्च कित्येन सभवति न ङितिः । उच्यात् । वच् लिङ् । वच् तिप् । वच् यासुट् सुट् ति । वच् याम् स् त् । उ अ च् यास् स् त् । उच् या स् त् ।

दृज्यान् । इज्यान् । यञ् लिङ् । यञ् तिप् । यञ् यामुट् तिप् । यञ् यामुट् मुट् तिप् । इ^३ अ ज् याम् स् ति । इज् यास् स् त् । इज् याम् त् । इज्यान् । जागृ लिङ् । जागृ तिप् । जागृ ति । जागृ यामुट् ति । जागृ यास् स् ति । जागृ यास् त् । जागृ यान् । जागर्यान् ।

• ऋस्य रन् ३।४।१०५

प० वि०—ऋस्य ६।१ रन् १।१

अर्थ—[लिङ्] लिङादेशस्य ऋस्य म्याने रन् इत्ययमादेशो भवति । (लिङ् के स्थान में ओ प्रादेग ऋ उसके स्थान में रन् यह प्रादेग होता है)

उदा०—पचेरन् । पचरन् ॥

इटोज् ३।४।१०६

प० वि०—इटः ६।१ अन् १।१

अर्थ—[लिङ्] लिङादेशस्य इटः स्थाने अन् इत्ययमादेशो भवति । (लिङ् के स्थान में ओ प्रादेग इट् उसके स्थान में अन् यह प्रादेग होता है)

उदा०—पचेष्य । पचेष्य । पच्यीय । पचिपीय ।

सुट् तिथोः ३।४।१०७

प० वि०—सुट् १।१ तिथोः ६।२ म०—तिश्च धरचेति तिथौ तयोः ।

अर्थ—[लिङ्] लिङ् लकार सम्बन्धिनस्तकारथकारयोः सुडागमो भवति । (लिङ् लकार सम्बन्धी लकार धोर लकार को सुट् का धागम होता है)

उदा०—पधिपीष्ट । पधिपीयाम्नाम् । पधिपीष्टाः । पधिपीयाभ्याम् ।

भूयान् । भूयाम्नाम् । भूयाम्नाम् । भूयाम्नाम् । विध्यादिषु लिङि मकार-द्वयस्यापि निवृत्तिः । सुटः श्रमणं त्पारीर्निडि, स्फुटवरन्तु तत्रात्मनेपदे ।

ऋशत्रेर्दं बोध्यम् । मू याम् म् त् इत्यत्र ऋलि तनारे परतो यामुटः सकारस्य स्तो संयोगाद्योरन्ते चेति लोपः, पुनरन्त पदान्ते सुटः सकारल-कारयोः संयोगादेः सकारस्यापि स्तोः संयोगाद्योरित्यनेनैव लोपः । निमित्तभेदान् अम्य मूरम्य पुनः प्रवृत्तिर्वा या ऋ

ञ्जेजुंन् ३।४।११८

प० वि०—ञ्जेः ६।१ जुम् १।१

अर्थ—[लिङ्] लिङादेशस्य ञ्जे म्याने जुम् इत्ययमादेशो भवति ।

(लिङ् के स्थान म जो आदेश कि उसके स्थान में जुस् प्रह आदेश हो जाता है)

उदा०—पचेयु । पच्चासु । भवेयु । भूयासु ।

सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ३।४।१०६

प० वि०—सिजभ्यस्तविदिभ्य ५।३ च अ० । स०—सिच्च अभ्यस्तश्च विदिश्च इति सिच्चभ्यस्तविदय लेभ्य ।

अर्थ—[डित केजुस] सिच परम्य अभ्यस्तसङ्गकेभ्यो वेत्तेरचो प्तरस्य डित्लकारसम्बन्धिनो केजुस् आदेशो भवति । (सिच् के पश्चात् अभ्यस्तसङ्ग के पश्चात् तथा विद् घातु के पश्चात् डित लकार सम्बन्धी कि के स्थान जुस् आदेश होता है)

उदा०—सिच-अकार्पु । अभ्यस्तात्-अविभयु । अजिहयु । अजागस् । विदे-अविदु ।

सि०—अवापु । डक्व् । कृ लुङ् । कृ लु । कृ कि । कृ सिच् कि । कार् स् कि । कार् स् जुस् । कार्पुस् । अट् कार्पु । अकार्पु । अनिमयु । विभी । भी लङ् । भी ल् । भी ल् । भी कि । भी भी कि । विभी कि । वि भी उस् । विभे उस् । विभय् उस् । विभयु । अट् विभयु । अविभयु । अजिहयु । ही ल०जायाम् । ही लट् । ही ल् । ही कि । ही ही कि । ही ही कि । हि ही कि । कि ही कि । जि ही कि । जि ही जुस् । जि ह् उस् । जिहयु । अट् जिहयु । अजिहयु ।

आत ३।४।११०

प० वि०—आत ५।१

अर्थ—[सिच डित] डित्लकारसम्बन्धिन सिच आकारान्ताच्च परस्य केजुस् आदेशो भवति ।

ऋषभैव सिद्धे नियमार्थं वचनमिदम् । आत एव सिज्जुगन्तात् नान्यस्मादितिक् ।

(डित लकार सम्बन्धी जो सिच् और अकारान्त उसके पश्चात् कि के स्थान में जुग आदेश होता है)

उदा०—अटु । अपु ।

सि०—न लुङ् । न ल् । न कि । दा सिच् कि । दा' जुस ।

१—गातिस्थाधुपाभूम्य सिच परस्मैपदेषु (२ ४ ७७)

दु । अट् दुः । अदुः ।

लट्, शाकटायनस्यैव ३।४।१११

प० वि०—लटः ६।१ शाकटायनस्य ६।१ एव अ० ।

अर्थ—[आत' केर्जुम्] आकारान्तादुत्तरस्य लडादेशस्य केर्जुम् आदेशा भवति शाकटायनाचार्यस्य मतेन । (आकारान्त घातु क पदवात् लड् के स्थान में जो आदेश कि उसके स्थानमें जुम आदेश होता है शाकटायनाचार्य के मत में ।)

उदा०—अयुः । अयुः । अन्येषां मते अयान् । अयान् ।

क्षिप्र इत्यनुषर्त्तते तेन लडेशाकारान्तादनन्तरो ङिन् संभवति नान्यस्मान् । तत्किं लड्प्रहणेन । एवं तर्हि लडेव यो ङिहितमस्य यथा स्यात् । लड्प्रहारेण यन्तस्य भा भूत् । लोटा लड्प्रद् इति यान्तु, वान्तुक्

द्विपश्च ३।४।११२

प० वि०—द्विपः ५।१ च अ० ।

अर्थ—[लटः शाकटायनाचार्यस्यैव] द्विप परस्य लडादेशस्य केर्जु-सादेशा भवति शाकटायनाचार्यस्यैव मतेन ।

(द्विप् घातु के पदवात् लट् क स्थान में जो आदेश कि उसके स्थान में जुम् आदेश होता है शाकटायनाचार्य के ही मत में)

उदा०—अद्विपुः । अद्विपन् ।

तिट् शित्मादेधानुकम् ३।४।११३

प० वि०—तिट् शित् १।१ सार्वधानुकम् १।१ स०—तिड् च शिष इति तिट् शित् ।

अर्थ—तिडः शितश्च प्रत्ययाः सार्वधानुकसज्ञा भवन्ति ।

(तिट् घोर शकार इव चाने प्रत्यय की सार्वधानुक सज्ञा होती है)

उदा०—पचति । पचतः । पचन्ति ।

आर्धधानुक शेष ३।४।११४

प० वि०—आर्धधानुकम् १।१ शेषः १।१॥

अर्थ—शेषः प्रत्यय आर्धधानुकसज्ञा भवति । (तिट् घोर शकार इव चाने प्रत्यय को धोकार शेष प्रत्यय की आर्धधानुक सज्ञा होती है)

उदा०—भविता । भवितुम् । भवितव्यम् ।

लिट् च ३।४।११५

प० वि०—लिट् १।१ च अ० ।

अर्थ—[आर्धधातुकम्] लिटः स्थाने तिवाद्यः आर्धधातुकसंज्ञा भवन्ति । (लिट् भी आर्धधातुक सज्ञक होता है)

उदा०—ददे । दधे ।

सि०—ददे । दा लिट् । दा ल् । दा त । दा दा त । द दा त । ददा एश् । ददा ए । दद् ए । ददे । दधे ॥

लिङाशिपि ३।४।११६

प० वि०—लिङ् १।१ आशिपि ७।१

अर्थ—आशिपि यो लिङ् स आर्धधातुकसंज्ञो भवति ।

(आशिर्वादि अर्थ में जो लिङ् उसकी आर्धधातुक सज्ञा होती है)

उदा०—लविपीष्ट । लविपीयास्ताम् । लविपीरन् ।

छन्दस्युभयथा ३।४।११७

प० वि०—छन्दसि ७।१ उभयथा अ० ॥

अर्थ—छन्दसि विषये उभयथा भवति, सार्वधातुकम् आर्धधातुकं च ॥ (छन्द के विषय में दोनों प्रकार में होता है है अर्थात् सारे प्रत्ययों की सार्वधातुक और आर्धधातुक सज्ञा भी होती है)

उदा०—वर्धन्तु त्वा सुप्टुनयः ।

सि०—वृधु । वृध् णिच् । वृध् इ । वर्धि लोट् । वर्धि ल् । वर्धि ऋि । वर्धि अन्ति । वर्धि अन्तु । आर्धधातुकत्वान्णोरनिटि इति येल्लोपो भवति ॥ वर्धन्तु । वर्धयन्तु इति प्राप्ते ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणज्ञमहावैयाकरणपण्डितब्रह्मदत्ता-

चार्याणामन्तेवासिना देवप्रकाशपातञ्जलेन विर-

चितायामष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया

तृतीयाध्याये चतुर्थ पादः

इति तृतीयोऽध्यायः ।

ट्याप्प्रातिपदिकात् ४।१।१

५० नि०—ट्याप्प्रातिपदिकान् ५।१।१

छ्डी-गन्तेन डसृश्रान्त्यानुग्या डीप्-डीप्-डीन्-प्रथमा सामान्येन गृह्यन्ते एवम् आप् शन्तेन टाप्-टाप्-चाप्-प्रथमा डसृश्रान्त्यानुग्या-छ् डी च आप् च प्रातिपदिकञ्चेति ट्याप्प्रातिपदिकम् दग्मान् ।

(यहा डी गन्त स टाप् टीप् टीन् इन तीन प्रथमों के अन्त प् प् न् अनु-बन्धा—इत्सन्नका वा लोप करके सामान्य 'डो' रूप न ग्रहण होता है। इसी प्रकार आप्-गन्त से गान् हाप् चाप् इन प्रत्ययों के आदि के ट् ट् च् का लोप करके सामान्य 'आप्' रूप से ग्रहण होता है)

अर्थ—[प्रत्यय, परश्च] ट्यन्ताद् आपन्तान् प्रातिपदिकाच्च ट्तांप्प्रे आ पञ्चमात्यापरिममाप्ते वक्ष्यमाणाः प्रथमा भवन्ति ट्यथि-कारो वेदितव्यः । (यहा स आा पञ्चम अन्त्य पयन्त जा नी प्रत्यय कह जायगे वे सनी डी ओर आप प्रत्यय जिस क अन्त में है उन से तथा प्रातिप-दिक से होंगे इस बात का अतिकार समझना चाहिए)

स्वीजसमोष् छ्प्राभ्याभिन्दे भ्याभ्यन्ट् सिभ्याभ्यन्ट्सो-
नाम्ड्योम्मुप् ४।१।२

५० नि०—सु-ओ-जस् अम्-ओट्-गन्-टा भ्याम्-भिम्-हे-भ्याम्-भ्यम्-टमि भ्याम्-भ्यन्-डस् ओस्-आम्-टि-ओम्-मुप् १।१ स०—
मुग्च ओश्च जश्च अं च ओट् च शश्च टाग्च भ्यांच भिरच डंश्च
भ्यांच भ्यश्च टमिश्च भ्यांच भ्यग्च टग्च ओश्च आञ्च डिग्च ओश्च
मुप् च इति सु ओ जन्-अम् ओट् गस टा-न्याम् भिम् हे-भ्याम्-भ्यन्-
टमि भ्याम्-भ्यम्-डन्-ओम्-आम् टि-ओन्-मुप् (समाहारां द्वन्द्वे)

अर्थ—[ट्याप्प्रातिपदिकान् प्रत्ययः परश्च] ट्याप्प्रातिपदिकान् स्वादय प्रथया भवन्ति । (इयन्त आसन्त ओर प्रातिपदिक के परवाउ स्वादि प्रथय हाते है)

उदा०—डोप्—कुमारी । कुमारीं । कुमारीः । कुमारोम् । कुमारीं ।
कुमारी । कुमारी । कुमारीभ्याम् । कुमारीभिः । कुमारी । कुमारीभ्याम् ।
कुमारीभ्य । कुमारीयां । कुमारीभ्याम् । कुमारीभ्यः । कुमारीयां । कुमारीं ।
कुमारीणाम् । कुमारीणाम् । कुमारीं । कुमारीप । हे कुमारि । हे कुमारी ।
हे कुमारीयः ॥

डीप्—गौरी । डीन-शाङ्करिणी ॥

टाप् रट्वा । रट् वे । रट्वा । रट्वाम् । रट्वे । खट्वा ।
रट्त्वया । खट्वाभ्याम् । खट्वाभि । खट्वाये । खट्वाभ्याम्
रट्वाभ्य । खट्वाया । खट्वाभ्याम् । खट्वाभ्य । खट्वाया । खट्वा
खट्वानाम् । खट्वायाम् । रट्त्वया । रट्वासु । हे खट् । रट् । ह
खट्वा ॥ डाप्—बहुराजा । चाप्—कारोपगन्था ॥ प्रातिपत्तिक—
दृपद् । दृपत् । दृपन् । दृपत् । दृपन्म् । दृपन् । दृपत् । दृपत् ।
दृपद्भ्याम् । दृपद्भि । दृपदे । दृपद्भ्याम् । दृपद्भ्य । दृपत् ।
दृपद्भ्याम् । दृपद्भ्य । दृपत् । दृपन् । दृपन् । दृपदाम् । दृपन् । दृपत् ।
दृपत् । हे दृपद् । ह दृपन् । हे दृपत् ॥

सि०—कुमारी सु । कुमारी स् । कुमारी^१ ॥ कुमारी औ^२ ।
कुमार्यौ^३ । कुमारी जम् । कुमारी अस् । कुमार्य^४ । कुमारी अम् ।
कुमारीम्^५ । कुमारी आट् । कुमारी औ । कुमार्या^६ । कुमारी शस् ।
कुमारी अस् । कुमारीस्^७ । कुमारी । कुमारो टा । कुमार्या^८ । कुमारी
भ्याम् । कुमारीभि । कुमारी हे । कुमारी आट्^९ डे । कुमारी आ ए ।
कुमारी ऐ^{१०} । कुमार्ये । कुमार्या । कुमारी डसि । कुमारी अस् । कुमारी
आट्^{११} अस । कुमारी आ । कुमार्या । कुमार्यो । कुमारी आस् ।
कुमाया । कुमारी आम् । कुमारी नुट्^{१२} आम । कुमारी नाम । कुमारी
णाम् । कुमारी डि । कुमारी आट्^{१३} इ । कुमारी आ आम^{१४} । कुमारी
आम । कुमायाम् । कुमारी सुप् । कुमारी सु । कुमारीपु । हे कुमारि ।
कुमारी सु । कुमारि^{१५} स् । कुमारि ॥

एव गौरी शाङ्करिणी इति ।

खट्वा । खट्वा सु । खट्वा स् । खट्वा । खट्वा औ । खट्वा
शौ^{१६} । खट्वा ई । खट्वे । खट्वा जस् । खट्वा । खट्वा टा । खट्वे

१—हलङ्याभ्या दीर्घा सुतिस्यपृक्त हल (६ १ ६६) अपृक्त एका
प्रत्यय (१ २ ४१) २—प्रथमयो पूव सवग (६ १ ९८) दीर्घजिति
च (६ १ १०१) ३—इको यणचि (६ १ ७४) ४—अभि पूव (६ १ १०३)
५—प्रथमयो पूवसवण (६ १ ९८) ६—यू स्याद्व्यो नदी (१ ४ ३)
आण्वा (७ ३ ११२) आद्य तो टकितो (१ १ ४५) ७—आट्श्च (६ १
८७) ८—ह्रस्वन्वापो नुट् (७ १ ५४) ९—हराम्नद्याम्नाभ्य (७ १ ११६)
१०—अन्वायनद्योह्रस्व (७ ३ १०७) ११—औड् आप (७ १ १८)

आ^१ । सट्वाया । सट्वायै । सट्वा डे । सट्वा याट्^२ म् ।
 सट्वा यै^३ । सट्वायै । सट्वा डमि । सट्वा अम् । सट्वायाः ।
 सट्वायाम् । सट्वा डि । सट्वा आम् । सट्वा याट्^४ आम ।
 सट्वायाम् । हे सट्वाये । सट्वा नु । सट्वायै^५ म् । सट्वायै^६ ॥

एवं बहुराजा कारीपगन्त्या इति ।

दृपट् । दृपन्^७ । अन्यःसर्वे स्पष्टम् ॥

स्त्रियाम् ४।१।३

प० वि०—स्त्रियाम् ७।१

अर्थ—[प्रातिपदिकान्, प्रथमः, परश्च] इतोऽप्ये वक्ष्यमाणाः
 प्रथयाः ममर्थानां प्रथमाद्वेति यावत् प्रातिपदिकान् स्त्रियां भवन्ति
 इत्यधिसारो वेदितव्यः (स्त्रीनिङ्ग म् वर्तमान जो प्रातिपदिक उभये परचान्
 भागे कहे जाने वाले प्रथम होते हैं, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

अजाद्यतष्टाप् ४।१।४

प० वि०—अजाद्यतः ४।१ टाप् १।१ म०—अज आदिर्यदान्ते
 अजाद्यः । अजाद्यश्च अच्चेति अजाद्यन् तस्मान् ।

अर्थ—अजादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽकारान्ताच्च प्रातिपदिकान्
 म्त्रियां टाप् प्रत्ययो भवति । (पर इत्यादि तथा प्रकाशान् प्रातिपदिक वे
 स्त्रीनिङ्ग म् टाप् प्रथम होते हैं)

उदा०—अजा । एडका । कोकिला । चटका । अद्या । सट्वा ।
 देवदत्ता ॥

मि०—अज टाप् । अज आ । अजा^१ । अजा नु । अजा म् ।
 अजा ।

शृन्नेभ्यो ङीप् ४।१।५

प० वि०—शृन्नेभ्यः ४।३ ङीप् १।१ स०—शृच्य नश्च इति
 शृन्नाः तेभ्यः । नकारेऽन्तार उच्चारणार्थः ।

अर्थ—[स्त्रियाम्] शृन्नेभ्यो नकारान्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्य

१—पाठि पाठः (७. ३. १०५) २—यादायः (७. ३. ११३) ३—
 कुट्टिगेवि (९. १. ८५) ४—गम्बुदी म (७. ३. १०६) ५—एदन्त्वात्पुट्टेः
 (९. १. ६७) ६—वाग्दाने (८. ४. ५२) ७—अजः सवर्णे ङीप्. (९. १. ८७)

स्त्रिया डीप् प्रत्ययो भवति । (ऋकारात् श्रौर नकारात् प्रातिपदिक स स्त्रीलिङ्ग म डीप प्रत्यय होता है)

उदा०—कर्त्री । हर्त्री । नकारान्तेभ्य —दण्डिनी । छत्रिणी ।

सि०—कर्त् डीप् । कर्त् ई । कर्त् र् ई । कर्त्री सु । कर्त्री स् ।
कर्त्री ॥ दण्डिन् । दण्डिन् डीप् । दण्डिनी सु । दण्डिनी ।

उगितश्च ४।१।६

प० वि०—उगित ५।१ च अ० ॥ स०—उक् इत् यस्य सोऽयम
उगित् तस्मात् ।

अर्थ—[डीप] उगिदन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रिया डीप् प्रत्ययो
भवति । (उक है इत् जिसका ऐसे तदत् प्रातिपदिक स स्त्रीलिङ्ग म डीप प्रत्यय
होता है)

उदा०—भवती । अतिभवती । भवन्ती । पचन्ती । ×धातोरुगित
प्रतिषेधो वक्तव्य × उखासत् । पर्णावत् ब्राह्मणी । × अञ्चतेश्चोप
सख्यानम् × प्राची । प्रतीची । उदीची ।

सि०—भवती । भा डवतुप्^१ । भा अवत् । भ्^२ अवत् । भवत् ।
भवत् डीप् । भवती सु । भवती । भवत्यौ^३ । भवत्य । भवत्यम् । भव
त्यौ । भवती^४ । उखासात् । उखात् स्र सते, पर्णानि भवसत इति । प्राची ।
प्र अञ्चु । प्र अञ्च् । प्र अञ्च् क्विन्^५ । प्र अच् । प्र च्^६ । प्रा^७ च् ।
प्राच् डीप् । प्राची ।

न पटस्वस्त्रादिभ्य ४।१।१०

प० वि०—न अ० । पटस्वस्त्रादिभ्य ५।३ स०—पट् च स्वसा
दयश्चेति पट्स्वस्त्रादय तेभ्य । स्वसा आदिर्येषान्ते स्वस्त्रादय ।

अर्थ—पट्सङ्गकेभ्य स्वस्त्रादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्य स्त्रीप्रत्ययो न
भवति । (पट् सङ्ग श्रौर स्वस्र इत्यादि शब्दो से स्त्री प्रत्यय नहीं हाते हैं)

उदा०—पञ्च ब्राह्मण्य । सप्त । नव । दश । स्वस्त्रादिभ्य —स्वसा ।
दुहिता । ननान्दा । याता । माता । तिस्र । चतस्र ॥

१—इको यणचि (६ १ ७४) २—भातेडवतुप् (उणा० १ ६३)
३—डित्त्वरणसामर्थ्यादिभस्यापि टलोपो भवति (भाष्येष्टि) ४—इको यणचि
(६ १ ७४) ५—प्रथमयो पूवसबण (६ १ ६८) ६—ऋतिवशदृक्त्वादि
शुभ्रिणगञ्ठुपुजिङ्गञ्च व (३ २ ५६) ७—अच (६ ४ १३८) ८—वौ
(६ ३. १३८)

मन. ४।१।११

प० वि०—मनः ४।१

अर्थ—[डीप् न] मन्न्तान् प्रातिपदिकान् डीप् प्रत्ययो न भवति ।
(मन्न्त प्रातिपदिक से डीप् प्रत्यय नहीं होता है)

उदा०—दामा । दामानो । दामानः ।

दा मनिन्^१ । दा मन् । दामन्^२ । दामन् सु । दामान् सु । दामा ।

अनो बहुव्रीहेः ४।१।१२

प० वि०—अनः ४।१ बहुव्रीहेः ४।१

अर्थ—[डीप् न] अन्नन्ताद् बहुव्रीहेः स्त्रियां डीप् प्रत्ययो न भवति ।
(मन् है अन् में जिसके ऐसे बहुव्रीहि से स्त्रीलिङ्ग में डीप् प्रत्यय नहीं होगा है)

उदा०—सुपर्वा सुपर्वाणी । सुपर्वाणः । सुशर्मा । सुशर्माणी ।
सुरार्माणः ।

सि०—सुपर्वा । शोभन पर्ष अस्याः इति । सुशर्मा । शोभन शर्म
अन्याः इति । उभयत्र बहुव्रीहिसमासः । सुपर्वन् सु । सुपर्वां स् ।
सुपर्वां । सुपर्वा । सुपर्वन् शो । सुपर्वां शो । सुपर्वाणी ।

उभावुभाभ्यामन्यतरस्याम् ४।१।१३

प० वि०—उाव् १।१ उभाभ्याम् ४।२ अन्यतरस्याम् अ० ।

अर्थ—[अनो बहुव्रीहेः डीप्] उभाभ्यां मन्न्तान् प्रातिपदिकान्
अनन्ताच्च बहुव्रीहेरन्यतरस्याम् डाप् प्रत्ययो भवति स्त्रियाम् ।

(मन्त और मन्त बहुव्रीहि इन दोनों प्रातिपदिकों से विकल्प करके
स्त्रीलिङ्ग में डाप् प्रत्यय होता है)

उदा०—पामा । पामे । पामाः । सीमा । सीमे । सीमाः । न च
भवति । पामा । पामानी । पामानः । सीमा । सीमानी । सीमानः ।
अनन्तान् बहुव्रीहेः—यदुराजा । यदुराजे । यदुराजाः । बहुतच्चा । बहुतच्चे ।
यदुराजाः । न च भवति । यदुराजा । यदुराजानी । यदुराजातः
यदुराजा । यदुराजाणी । यदुराजाणः ।

सि०—पामा । पामन् डाप् । पामन् आ । पाम् अन् आ ।

१—पानो मनिन्वनिन्निपदश्च (३. ७ ७४) २—अनेभ्यो डीप् (४.

१. ५) मन. (४. १. ११)

पाम् आ । पामा सु । पामा । पाम्ना । पामन् सु । पामान् सू । पामा ।
बहुराजा । बहवो राजानो अस्यां नगर्याम् इति बहुराजा नगरी ।
बह्वः तक्षानोऽभ्यां नगर्यामिति बहुतत्ता नगरी ।

बहु जस् राजन् जस । बहुराजन् डाप् । बहुराज् आ । बहुराजा
सु । बहुराजा । बहुराजा औ । बहुराजा ई । बहुराज ।

अनुपसर्जनात् ४।१।१०

प० वि०—न उपसर्जनमिति अनुपसर्जनम् तस्मात् ।

अर्थ—इतोऽधो समर्थानां प्रथमाद्वेति यावत् वक्ष्यमाणा प्रत्ययाः
अनुपसर्जनाद् भवन्ति इत्यधिकारो वेदितव्यः ।

(समर्थानां प्रथमाद् वा इस सूत्र तक आगे कहे जाने वाले प्रत्यय अनु-
सर्जन से होते हैं, इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

अत्र 'अप्रधानमुपसर्जनम्' इति पूर्वाचार्यवचनानुसारम् उपसर्जन-
शब्देन अप्रधानम् अर्थात् गौणम् इत्यर्थो गृह्यते, न तु प्रथमानिर्दिष्ट-
समास उपसर्जनम् । तेन कुरुचर-आदिपु टित्प्रत्ययान्तस्यार्थस्य
प्राधान्यात् 'टिट्ढाणञ्' इति ङीप् भवति 'बहुकुरुचरा' इत्यादिपु
बह्वः कुरुचरा अस्यां नगर्याम् इति बहुव्रीहिसमास अन्यपदार्थस्य प्रा-
धान्यात् टिट्ढन्तस्य कुरुचरपदस्यार्थोऽप्रधानो भवति अतो ङीप् न भवति,
अजाद्यतष्टाप् इति टाप् भवति ।

इस सूत्र में उपसर्जन शब्द से 'अप्रधान' अर्थात् 'गौण' यह अर्थ समझना
चाहिए । 'प्रथमानिर्दिष्ट' (१. २. ४३) सूत्र विहित उपसर्जन सज्ञा नहीं लेनी
चाहिए । कुरुपु चरतीति कुरुचर.' (कुरु देश में विचरने वाला) में टित् प्रत्ययान्त
शब्द के अर्थ की प्रधानता है इसलिए 'टिट्ढाणञ्' (४. १. १५) सूत्र से
ङीप् हो जाता है । परन्तु 'बह्वः कुरुचराः सन्ति अस्यां नगर्याम् सा बहुकुरु-
चरा' (बहुत से कुरु देश में विचरने वाले मनुष्य हैं जिस नगरी में) इस
बहुव्रीहि समास में अन्य पदार्थ 'नगरी' की प्रधानता है 'कुरुचर' की
नहीं । अतः यहाँ टिट्ढन्त कुरुचर के गौण होने से ङीप् प्रत्यय नहीं होता ।

टिट्ढाणञ् द्वयसज्दध्नञ्मात्रचतयपठ्कूठञ्कञ्क्वरपः ४।१।१५

प० वि०—टिट्ढाणञ् द्वयसज्दध्नञ्मात्रचतयपठ्कूठञ्कञ्क्वरपः
५।१स०—टिट्च ठश्च अण् च अञ्च द्वयसच्च दध्नच्च मात्रच्च

१—यचि भम् (१. ४. १८) टैः (६. ४. १४३)

तयप् च ठक् च ठञ्च कञ्च क्वरप् च इति टिड्ढाणुद्द्वयसज्ज्वलन्-
मात्रचत्तयपठन्ठञ्कञ्क्वरप् तन्भान् ।

अर्थ—[अनुपसर्जनात् स्त्रियां ङीप् प्रातिपदिकान्] टिडादिभ्योऽ-
नुपसर्जनेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीप् प्रत्ययो भवति । (टिड्ढादि
अनुपसर्जनञ्जो प्रातिपदिके उभये स्वीकित्वा मे ङीप् प्रत्यय इति ३)

दृढा०—टिन्—कुरुचरी । मद्रचरी । ड—सौपर्णेयी । वैनतेयी ।
अण्—कुम्भकारी । अन्—औत्मी । औदपानो । द्वयमच्—उम्द्वयमी ।
जानुद्वयसी । दन्च—उरद्वयमी । जानुद्वयमी । मात्रच्—उम्मात्री ।
जानुमात्री । तयप्—पञ्चतयी । द्ययतयी । ठक्—आत्रिकी । शाला-
फिकी । ठञ्—लागणिकी । कञ्—यादृशी । तादृशी । क्वरप्—
इवरी । नधरी । X नञ्जनञ्जीञ्कञ्चुन्तरुणतलुनानामुपसर्ग्यानम् X
नञ्—स्त्रैणी । स्तञ्—पौंन्नी । डंक्—शान्तीनी । वाप्रीनी । ग्युन्-
आद्वयद्वरणी । मुभगद्वरणी । तरुण । नरुणी । तलुन । तलुनी ॥

सि०—कुरुचरी । कुरुचरतीति । कुरु सुप् चर ट । कुन्चर । कुन्चर
ङीप् । कुरुचर् ई । कुरुचरी सु । कुरुचरी म् । कुरुचरी ॥ सौपर्णेयी ।
सुपर्ण्याः अपत्यं स्त्री चेत् सौपर्णेयी । सुपर्णी इम् ठक् । सुपर्णी ट ।
सुपर्णी ण्य । सुपर्णी ण्य अ । सुपर्णु ण्य । सौपर्णु ण्य । सौपर्णेय ङीप् ।
सौपर्णेय ई । सौपर्णेयी । सौपर्णेयी सु । सौपर्णेयी ॥ वनिनाया, अपत्य
स्त्री चेदिति वैनतेयी । कुम्भकारी । कुम्भं करोतीति । कुम्भ अम् कृ
अण् । कुम्भकार । कुम्भकार ङीप् । कुम्भन्तर् ई । कुम्भकारी सु ।
कुम्भकारी ॥ नगरकारी ॥ औत्सी । असम्य उदपानम्य वा अयचं स्त्री
चेत् ॥ उम् इम् अञ् । उम् अ । औत्स । औत्स ङीप् । औत्स ई ।
औत्सी सु । औत्मी । उम्द्वयसी । उर प्रमाणमन्या, जानुः
प्रमाणमन्या इति । उर नु द्वयमच् । उम्द्वयम् ङीप् । उम्द्वयमी
उरद्वयमी सु । उरद्वयसी ॥ पञ्चतयी । पञ्च अयववा अस्या इति ।
पञ्चन् जस् तयप् । पञ्चन् तय । पञ्चतय ङीप् । पञ्चतयी ।

आत्रिकी । अत्रैर्दिव्यति गलानामिर्दिव्यतीति ॥ अत्र भिम् ठक् ।
अत्र ठ । अत्र इक् । अत्र् इक् । आत्र् इक् । आत्रिक ङीप् । आत्रिकी

१—स्वीभ्यो ङ् (४. १. १२०) २—उत्पादिभ्योऽङ् (४. १. ८६) ३—
प्रमाणे द्वयमच्ज्वलन्मात्रच (४. २. १७) ४—सन्ध्याया अयववे तयप् (४. २.
४२) ५—तेन दीव्यति एतन्नि जयति जितम् (४. ४. २)

सु । आक्षिकी ॥ लावणिकी । लवण पण्यमस्या इति । लवण सु ।
ठञ् । लवण इक । लवण इक । लावणिक डीप् । लावणिकी ॥
यादृशी । यद् दृश् कञ् । यादृश । यादृश डीप् । यादृश् ई । यादृशी ॥
इत्वरी । इण् गती । इ क्वरप् । इ वर । इ तुक् वर । इत्वर डीप् ।
इत्वरी ॥ नश्वरी ॥ स्त्रीणी । स्त्रिया इयम् । पुंस इयम् इति विग्रहः ॥
स्त्री डस् नञ् । स्त्रै न । स्त्रैण डीप् । स्त्रैणी सु । स्त्रैणी । पुंस डस्
नञ् । पौस्न डीप् । पौस्नी ॥ शाक्तीकी । शक्तिः प्रहरणमस्या इति
विग्रहः । शक्ति सु ईकक् । शक्ति ईक । शक्त ईक । शक्त ईक ।
शाक्तीक डीप् । शाक्तीकी सु । शाक्तीकी । यष्टिः प्रहरणमस्या इति
विग्रहः । ऋतरूणी तलुनी अत्र मुरादौ विषये अभिनवमात्रेऽर्थं तरुणतलुन-
शब्दाभ्यां ङोव् धेदितव्यः यदा तु वयो विवक्ष्यते तदा गौरादिपाठान्
ङीपा भवितव्यम् ॥३३

यञश्च ४।१।१६

प० वि०—यञ् ५।१ च अ० ॥

अर्थ—[डीप्] यञन्ताच्च प्रातिपदिकान् स्त्रियां डीप् प्रत्ययो
भवति । (यञ् प्रत्यय है अन्त में जिसके ऐसे प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में डीप्
प्रत्यय होता है)

उदा०—गार्गी । वात्सी ।

सि०—गर्गस्य गोत्रापत्य स्त्री चेदिति विग्रहः । गर्ग डस् यञ् ।
गर्ग य । गर्ग्य य । गर्ग्य य । गर्ग्य । गार्ग्य डीप् । गार्ग्य ई । गार्ग्य
ई । गार्ग्य ई । गार्गी सु । गार्गी ॥ वात्सी ॥

प्राचा ष्फ तद्धित ४।१।१७

प० वि०—प्राचाम् ६।३ ष्फः १।१ तद्धित १।१

अर्थ—[यञ्] प्राचामाचार्याणां मतेन यञन्तात् स्त्रियां ष्फ प्रत्ययो
भवति, स च तद्धितसंज्ञ ॥ ऋतद्धितसंज्ञकत्वात् प्रातिपदिकसज्ञा भवति
ततश्च पिच्चात् डीप् भवति ॥३३

१—लवणादृठञ् (४. ४ ५०) २—यदादिपु दृशोऽनालाचने वञ् (३
२ ६०) ३—इणानञ्जिसत्तिभ्य क्वरप् (३ २. १६३) ४—स्त्रीषु साम्या
नञ्स्नजो भवनात् (४ १ ८७) ५—शक्तियष्टयारीकक् (४ ४ ५६)
६—गर्गादिभ्यो यञ् (४. १ १०५) ७—यस्वति च (६ ४ १४८) ८—
ह्रस्वतद्धितस्य च (६ ४ १४०)

(पूर्व देश में रहने वाले आचार्यों के मत में यजन्त प्रातिपदिक में स्त्रीलिङ्ग में एक प्रत्यय होता है और उसकी तद्धित सज्ञा होती है) तद्धित सज्ञा होने से प्रातिपदिक सज्ञा होती है और उसमें पुनः पिद्गीरादिन्वस्व में डीप् होता है

उदा०—गार्ग्यायणी । वात्स्यायनी । अन्येषां मते, गार्गी । वात्सी ।

सि०—गर्गस्य गोत्रापत्य स्त्री चेदिति विग्रहः । गार्ग्यं इत् ष् । गार्ग्यं ष् । गार्ग्यं आयन । गार्ग्यं आयन । गार्ग्यायण डीप्^१ । गार्ग्यायणी । वात्स्यायनी ॥

वयसि प्रथमे ४।१।२०

प० वि०—वयसि ७।१ प्रथमे ७।१

अर्थ—[डीप् अतः] ऋणालकृतशरीरावस्थायीवनादिव्ययः प्रथमे वयसि यत्प्रातिपदिकं वतते तस्मान् स्त्रियां डीप् प्रत्ययो भवति । (प्रथम वय में वतमान जो प्रातिपदिक उसमें स्त्रीलिङ्ग में डीप् प्रत्यय होता है)

उदा०—कुमारी । किशोरी । वरकरी ।

द्विगो. ४।१।२१

प० वि०—द्विगोः ५।१

अर्थ—[डीप् अतः] द्विगुमञ्जकान् अदन्तप्रातिपदिकान् स्त्रियां डीप् प्रत्ययो भवति । (द्विगुमञ्जकाले अदन्त प्रातिपदिक में स्त्रीलिङ्ग में डीप् प्रत्यय होता है)

उदा०—पञ्चपूली । दशपूली । त्रिलोकी ।

सि०—त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिनाकी । त्रिलोक^२ डीप् । त्रिलोकी ॥

पत्युर्नो यज्ञमयोगे ४।१।३३

प० वि०—पत्यु. ६।१ नः १।१ यज्ञमयोगे ७।१ स०—यज्ञेन मयोगः यज्ञमयोगः तस्मिन् ।

अर्थ—पतिशब्दस्य नकारादेशो भवति यज्ञमयोगे ॥ अतोऽन्यस्येति नियमाद् इकारस्य स्थाने 'पन् न', ततः डीप् प्रत्ययस्मिन् नकारान्त्व्यादेश सिद्धः ॥ (पत शब्द का नकार आदेश हो जाता है यज्ञमयोग अर्थात् सम्यमान होने पर) अतोऽन्यस्य के नियम में पति के इ कां न होकर 'पन्' रूप होता है इसलिये डीप् प्रत्यय से उसके नकारान्त होने में ही ही आदेश ।

१—पिद्गीरादिन्वस्व (४. १. ४१) २—तद्धिताप्योत्तरपदमाहारे ष

(२. १. ११) अकारान्तोत्तरपदो द्विगु म्बिवा भाष्ये इति (२. ४. ३० वा०) स्त्रीलिङ्गता ।

उदा०—वशिष्ठस्य पत्नी । ऋयजमानस्य भार्या यज्ञस्य कर्मणे
साधनत्वाद् विना तथा तदनिष्पत्तेः यज्ञस्य स्वर्गाख्यप्रधानफलप्रहीतृ-
त्वाद् वा यजमानस्य पत्नी ॥३३

सि०—पति । पत्न् डीप् । पत्नी सु । पत्नी ।

अन्यतो [डीप्] ४।१।४०

पिद्गौरादिभ्यश्च ४।१।४१

प० वि०—पिद्गौरादिभ्यः ५।३ च अ० । स०—पिच्च गौरादय-
श्चेति पिद्गौरादयः तेभ्यः । गौर आदिर्येपान्ते गौरादयः (बहु०)

अर्थ—[डीप्] पिद्भ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गौरादिभ्यश्च स्त्रियां डीप
प्रत्ययो भवति । (पकार इत् वाले तथा गौर इत्यादि प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग
में डीप् प्रत्यय होता है)

उदा०—नर्त्तकी । खनकी । गार्ग्यायणी । वात्स्यायनी । गौरा-
दिभ्य --गौरी । मत्सी ।

सि०—मत्स्य । मत्स्य डीप् । मत्स्य् ई । मत्सी सु । मत्सी स् ।
मत्सी ।

वोतो गुणवचनात् ४।१।४४

प० वि०—वा अ० । उतः ५।१ गुणवचनात् ५।१ स०—गणम
उक्तवान् गुणवचनः (भूते काले ल्युट्)

अर्थ—[डीप्] गुणवचनादुकारान्तात् प्रातिपदिकान् स्त्रियां वा डीप
प्रत्ययो भवति । (गुणवाचो उकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से
डीप् प्रत्यय होता है)

उदा०—पटुः । पट्वी । मृदुः । मृद्वी ।

सि०—पटु डीप् । पट्वी सु । पट्वी ॥

बह्नादिभ्यश्च ४।१।४५

प० वि०—बह्नादिभ्यः ५।३ च अ० । स०—बहुः आदिर्येपान्ते
बह्नादयः तेभ्यः ।

अर्थ—बह्नादिभ्य प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां वा डीप् प्रत्ययो भवति ।
(बह् इत्यादि प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से डीप प्रत्यय होता है)

उदा०—बहु । बह्वी ।

सि०—बहु डीप् । बह्व् ई । बह्व् ई । बह्वी ।

पुंयोगादाख्यायाम् ४।१।४८

प० वि०—पुंयोगात् ५।१ आख्यायाम् ७।१ स०—पुंसा योः
पुंयोग तस्मात् ॥

अर्थ—[डीप्] पुंयोगाद्देवतोर्ध्वप्रातिपदिक स्त्रियां आख्यायां वर्तते
तस्मात् डीप् प्रत्यया भवति । (पुरुष म मन्वन्ध क कारण स जा प्रातिपदिक
स्त्रीलिङ्ग बो कर्त्त म समर्थ होता है नम प्रातिपदिक से डीप् प्रत्यय हाता है)

उदा०—गणकस्य स्त्री गणकी । महामात्री । गोपी ।

× गोपालमातीनां प्रतिषेध × गोपालकस्य स्त्री गोपालिका, अग्र-
पालिका । × सूर्यादेवतायां चाक्षरस्तव्य × सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या ।

सि०—गणकस्य (ज्योतिषी ऋषी) स्त्री गणका, या तु स्य गणयति
सा गणका । महामात्रस्य (प्रधानस्य) स्त्री या तु स्वयं प्राधान्ये स्थिता सा
महामात्रा (प्रधाना) । गोपस्य स्त्री इति ।

इन्द्रवरुणभगवर्षन्द्रमृडहिमारण्ययवयवनमातलाचार्याणामा-

नुक् ४।१।४९

प० वि०—इन्द्रवरुणभगवर्षन्द्रमृडहिमारण्ययवयवनमातलाचार्या-
णाम् ६।३ आनुक् १।१ स०—इन्द्रश्च वरुणश्च भगवश्च शर्वश्च रुद्रश्च
मृडश्च हिमन्श्च अरण्यन्श्च यवश्च यवनश्च मातुलश्च आचार्यश्च इति
इन्द्रवरुणभगवर्षन्द्रमृडहिमारण्ययवयवनमातलाचार्या तेषाम् ।

अर्थ—[डीप्] इन्द्रादीनां प्रातिपदिकानां पर स्त्रिया डीप् प्रत्ययो
भवति आनुक्चागम । (इन्द्र इत्यादि प्रतिपदिका क पर स्त्री'लङ्गे में डीप्
प्रत्यय होता है और आनुक् का आगम जाना है)

उदा०—इन्द्राणी । वरुणानी । भवानी । शर्वाणी । रुद्राणी ।
मृडानी । × हिमारण्ययोर्महत्त्वे × महद्धिमम् हिमानी । महद्वरण्यम-
रण्यानी । × यवाक्षेपे × दुष्टो यवां यवानो । × यवनास्त्रिप्याम् ×
यवनानां लिपिरिति यवनानी । × उपाध्यायमानुलान्यां वा × उपा-
ध्यायस्य स्त्री उपाध्यायी उपाध्यायानी । या तु स्वयं व्यापयति उपाध्याया
सा भवति । मातुली । मातुलानी । × आचार्यादेण्यन्श्च × आचा-
र्याणी । आचार्या । स्वयमव्यापिना तु आचार्या एव । × अर्षक्षत्रिया
भ्यां वा × अर्षाणी । अर्षा । क्षत्रियाणी । क्षत्रिया ।

मि०—सर्वं स्पष्टम् ।

क्रीतात्करणपूर्वात् ४।१।५०

प० वि०—क्रीतान् ५।१ करणपूर्वात् ५।१

स०—करणं पूर्त्यमस्मिन्निति करणपूर्वम् तस्मात् ।

अर्थ—[डीप्] करणपूर्वात् क्रीतशब्दान्ताद् अदन्तात् प्रातिपदिकान् स्त्रियां डीप् प्रत्ययो भवति । (करण है पूर्व में जिसके ऐसे क्रीतशब्दान्त अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में डीप् प्रत्यय होता है)

उदा०—वभ्रक्रीती । वसनक्रीती । क्वचिन्न । धनक्रीता ।

सि०—वभ्रेण क्रियते सा वभ्रक्रीती । वसत्र टा क्रीत । वसत्रक्रीत^१ डीप् । वसत्रक्रीती सु । वसत्रक्रीती ।

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसयोगोपधात् ४।१।५४

प० वि०—स्वाङ्गान् ५।१ च अ० । उपसर्जान् ५।१ असंयोगोपधान् ५।१ स०—स्वमेवाङ्गम् इति स्वाङ्गम् । संयोग उपधायां यस्येति संयोगोपधः, न संयोगोपध इति असंयोगोपधः तस्मात् ।

अर्थ—[अतः, वा इत्येतद् अस्वाङ्गपूर्वपदाद्भवेत्यतः [स्वाङ्गं यदुपसर्जनमसंयोगोपधं तदन्ताददन्तान् प्रातिपदिकान् स्त्रियां वा डीप् प्रत्ययो भवति । (स्वाङ्गवाचो जो उपसर्जन संयोग है उपधा में नहीं जिसके ऐसे अकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से डीप् प्रत्यय होता है)

उदा०—चन्द्रमुखी । चन्द्रमुखा । अतिकेशी । अतिकेशा ।

सि०—चन्द्रमुखी । चन्द्र इव मुखमस्या इति । अतिकेशी । अतिक्रान्ता केशान ।

जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ४।१।६३

प० वि०—जातेः ५।१ अस्त्रीविषयात् ५।१ अयोपधात् ५।१

स०—स्त्रीविषयो यस्य स स्त्रीविषयः, न स्त्रीविषयोऽस्त्रीविषयः तस्मात् । यकार उपधायां यस्येति यकारोपधः । न यकारोपध इति अयकारोपधः तस्मात् ।

अर्थ—[डीप्] जातिवाचि यत्प्रातिपदिक न च स्त्रियामेव नियतस्योपधञ्च तस्मान् स्त्रियां डीप् प्रत्ययो भवति ।

१—अत्र गतिकारकोपदाना कृद्भि सह समासवचन प्राक् सुबुत्पत्तेरिति वस्त्रवचनयो वरणयो क्रीतशब्देन वत्त्करणे कृता बहुलम् इति (२. १. ३२) प्रागेव मुवत्पत्तेः समास ।

(जिम वा केवल स्त्रीलिङ्ग ही विषय नहीं है, और जिम में यकार उपधा में नहीं है ऐसे जातिवाची प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में डीप् प्रत्यय होता है)

उदा०—कुक्कुटी । सूकरी । ब्राह्मणी । वृषली । नाडायनी ।

आकृतिग्रहणा जातिलिङ्गानां च न सर्वभाक् ।

सकृदाप्यातनिर्घाटा गोत्र च चरलैः सह ॥

× योषधप्रतिषेधे ह्यगवयमुकयमत्स्यमनुप्याणामप्रतिषेधः × हयी । गवयी । मत्सी । मनुपी ।

इतो मनुप्यजाते ४।१।६५

प० वि०—इतः ५।१ मनुप्यजाते. ५।१ स०—मनुप्यस्य जातिरिति मनुप्यजातिः तस्या ।

अर्थ—[डीप्] इकारान्तान् प्रातिपदिकान् मनुप्यजातिवाचिनः स्त्रियां डीप् प्रत्ययो भवति । (इकारान्त जो मनुप्य की जाति का कहने वाला प्रातिपदिक उसने स्त्रीलिङ्ग में डीप् प्रत्यय हाता है)

उदा०—अवन्ती । कुन्ती । दाक्षी । प्लाक्षी ।

सि०—अवन्ती । अन्तेरपत्य स्त्री चेत् । अवन्ति ज्यङ्^१ । अवन्ति^२ डीप् । अवन् इ । अवन्ती । कुन्ती । दक्षन् अपत्य स्त्री चेद् इति दाक्षी । दक्ष इञ्^३ । दाक्षि डीप् । दाक्षी मु । दाक्षी । प्लाक्षी ।

ऊटुत ४।१।६६

प० वि०—उट् ५।१ उतः ५।१

अर्थ—[मनुप्यजाते.] उकारान्तात्मनुप्यजातिवाचिनः प्रातिपदिकात् स्त्रियामूट् प्रत्ययो भवति । (मनुप्य जाति को कहने वाले उकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में उट् प्रत्यय होता है)

उदा०—कुरुः । ब्रह्मन्तूः । वीरन्तूः ।

सि०—कुरोरपत्यं स्त्री इति कुरुः । कुरु एय^१ । कुरु^२ उट् । कुरु ऊ । कुरु मु । कुरुः ।

ब्रह्म वन्धुरस्या वीरो वन्धुरस्या इति विग्रहः । कुरुब्रह्मन्धूवीरवन्धुरादौ कस्याञ्चिद्देवजाती वर्त्ततेक

१—वृद्धेत्वाशलाजादान् ज्यङ् (४. १. १७१) २—स्त्रियामवन्तिकुन्ति-
कुरुभ्यश्च (४. १. १७६) ३—अत इत् (४. १. ६५) ४—कुरुनादिभ्यो ष्यः
(४. १. ७२) ५—स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च (४. १. १७६) ।

उदा०—प्यङ्; प्यङ्श्च सामान्यग्रहणमेतत् । आम्बष्ठ्या ।
सौवीर्या । कौसल्या । प्यङ्—कारीपगन्ध्या । कामुद्गन्ध्या । वाराह्या ।
वालाक्या ।

सि०—आम्बष्ठस्य सौवीरस्य कौसलस्य वा अंपत्यम् स्त्री इति
आम्बष्ठ्या^१ । सौवीर्या^१ । कौसल्या^१ । आम्बष्ठ डस् व्यङ्^१ ।
आम्बष्ठ^२ य । आम्बष्ठ्य चाप् आम्बष्ठ्या^३ । कारीपगन्ध्या । करी-
पस्य गन्ध इव गन्धो यस्येति विग्रहः । करीपगन्ध डस् ड । करीपगन्ध
इ । करीपगन्धि टस् अण्^४ । कारीपगन्ध अण् । कारीपगन्ध् अ ।
कारीपगन्ध । कारीपगन्ध् प्यङ्^५ । कारीपगन्ध् य । कारापगन्ध्य चाप् ।
कारीपगन्ध्या । कारीपगन्ध्या सु । कारीपगन्ध्या स् । कारापगन्ध्या ।

वराहस्य अपत्यं पुमान् । वराह डस् ट्व् । वाराहि । वाराह प्यङ्
वाराह्य चाप् । वाराह्या सु । वाराह्या । वालाक्या ।

तद्धितप्रत्ययप्रकरणम्

तद्धिता. ४।१।७६

प० वि०—तद्धिताः १।३ स०—तम्मै हितम् इति तद्धितम्ते तद्धिताः ।

अर्थ—इतोऽग्रे आ पञ्चमाध्यायपरिसमाप्ते. वक्ष्यमाणाः प्रत्ययाः
तद्धितसङ्घाताः भवन्त इत्यधिकारो वेदितव्यः । (इसके आगे पञ्चम अध्याय
पर्यन्त कहे जाने वाले प्रत्ययों की तद्धित सजा हाती है, इस बात का अधिकार
समझना चाहिए)

यूनस्ति. ४।१।७७

प० वि०—यूनः ५।१ तिः १।१

अर्थ—युवन् शब्दान् प्रातिपदिकात् स्त्रियां तिप्रत्ययो भवति ।
(युवन् प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ति प्रत्यय होता है)

उदा०—युवतिः ।

सि०—युवन् ति । युवति सु । युवति ।

१—वृद्धताशलाजादाञ् व्यङ् (४. १. १७१) २—यच्च भम् (१. ४.
१८) यस्येति च (६. ४ १४८) ३—प्रकः सवर्णं दीर्घः (६. १. ६७) ४—
अनेकमन्यपदार्ये (२. २. २४) उपमानाच्च (५. ४. १३७) ५—तस्यापत्यम्
(४. १. ६२) ६—अणिजोरत्तार्थयोगुं ह्योत्तमयोः प्यङ् गात्रे (४. १. ७८)

अणिजोरनार्पयो गुरुपोत्तमयो प्यङ् गोत्रे ४।१।७८

प० वि०—अणिवो. ६।० अनार्पयो. ६।२ गुरुपोत्तमयो ६।० प्यङ् १।१ गोत्रे ७।१ स०—अण् च इञ्च इति अणिवो तथाः अणिवोः । न आपो तयो । त्रिप्रभृतीनामन्त्यमक्षरमुत्तमम् । उत्तमस्य समीपम् उपोत्तमम् । गुरु उपोत्तम यस्य प्रादिपठिकत्ति गुरोपोत्तमम् तयो. ।

अर्थ—गोत्रे यावणिवो त्रिहितायनार्पो तदन्तयो प्रातिपठिक्यो-गुरुपोत्तमयो. स्त्रियां प्यङादेशो भवति ।

(गोत्रापत्य में जो विधान किये गए अण् और इञ् प्रत्यय ऋषिवाची नहीं तदन्त उत्तम के समीप गुरु अक्षर वाल प्रातिपठिक के स्थान में स्त्रीलिङ्ग में प्यङ आदेश हाता है)

उदा०—ऋनिर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति इत्यण् इञ् इत्येतयोस्थाने प्यङ् आदेशो भवति ॥

अण् —कारीपगन्ध्या । क्रीमुदगन्ध्या । इञ् -वाराह्या । बालाक्य ॥

समर्थाना प्रथमाद् वा ४।१।८२

प० वि०—समर्थानाम् ६।३ प्रथमात् ५।१ वा अ० ।

अर्थ—इतोऽप्रे वक्ष्यमाणा तद्धिता प्राग्दिशो विभक्तिरितियावत् समर्थानां य. प्रथम तस्मात् वा भवन्ति इत्यधिकारो वेदितव्य ।

(यहा से आगे नहे जान वाले प्राग्दिशो विभक्ति इस सूत्र तक जा प्रथम प्रकृति उस प्रातिपठिक से हाता है, इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

प्राग्दीव्यतोऽण् ४।१।८३

प० वि०—प्राक् १।१ दीव्यत. ५।१ अण् १।१

अर्थ—तेन दीव्यति खनति जयति जितम् इति एतस्मात् प्राक् अण् प्रत्ययो भवति इत्यधिकारो वेदितव्य. ।

(तेन दीव्यति खनति जयति जितम् इस सूत्र के पूर्व अण् प्रत्यय होता है, इस बात का अधिकार समझना चाहिए ।

• अधिकार परिभाषा विधिर्वेति त्रिष्वपि दर्शनेषु अपवादाविषयं परिहृत्य अण् प्रवर्त्ततेः

प्राग्दीव्यतोऽण् इस सूत्र को अधिकार सूत्र, परिभाषा सूत्र या विधि सूत्र इन तीनों प्रकारों में से किसी भी प्रकार का सूत्र माना जाय फिर भी अपवाद विषय को छोड़कर इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है)

अश्वपत्यादिभ्यश्च ८।१।८८

प० वि०—अश्वपत्यादिभ्य ५।३ च अ० । स०—अश्वपतिरादि-
र्यदा ते अश्वपत्यादय तेभ्य ।

अर्थ—अश्वपत्यादिभ्य प्रातिपदिकेभ्य प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु अण्
प्रत्ययो भवति । (अश्व इत्यादि प्रातिपदिका न प्राग्दीव्यतीये अर्थो मे
अण् प्रत्यय हाता है)

उदा०—आश्वपतम् । शान्पतम् । अश्वपति । शतपति । वनपति ।
गणपति । राष्ट्रपति । कुञ्जपति । गृहपति । गान्धरपति । पशुपति । धर्मपति ।
सभापति । प्राणपति । क्षेत्रपति ।

दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदान् ८।१।८९

प० वि०—दिति-अदिति-आदित्य-पत्युत्तरपदान् ८।१ एय १।१॥
स०—दितिश्च अदितिश्च आदित्यश्च पत्युत्तरपदञ्चेति दित्यदित्या
दित्यपत्युत्तरपद तन्मात् । पति उत्तरपद यस्य तत् पत्युत्तरपदम् ।

अर्थ—दिति अदिति आदित्य इत्येतेभ्य पत्युत्तरपदान्च प्राति
पदिकान् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु एय प्रत्ययो भवति ।

(दिति अदिति आदित्य धोर पति पद है उत्तर पद जिम्हा एय प्राति
पदिक न प्राग्दीव्यतीये अर्थो मे एय प्रत्यय हाता है)

उदा०—दैत्य । आदित्य । आदित्यम् । पत्युत्तरपदान्-राजा
पत्यम् । सैनापत्यम् ।

उत्सादिभ्योऽञ् ८।१।९०

प० वि०—उत्सादिभ्य ५।३ अञ् १।१ स०—उत्स आदिर्येपा ते
उत्सादय तेभ्य ।

अर्थ—उत्सादिभ्य प्रातिपदिकेभ्य प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेष्वञ् प्रत्ययो
भवति । (उत्स इत्यादि प्रातिपदिक स प्राग्दीव्यतीये अर्थो मे अञ् प्रत्यय
हाता है)

उदा०—औत्स । औत्सान ।

स्त्रीषु साम्या नञ्स्त्री भवनात् ८।१।९१

प० वि०—स्त्रीषु साम्याम् ५।३ नञ्स्त्री १।३ भवनान् ५।१ स०—
स्त्री च पुमांश्च इति स्त्रीषु मौ साम्याम् । नञ् च स्तञ् च इति नञ्स्त्री ।

अर्थ—[प्राक्] या यानां भ ने इत्येतस्मान् प्राक् ये अर्था विहित
तेष्वर्थेषु स्त्रीशब्दात् पुंशब्दाच्च यथासक्यं नञ्स्त्री प्रत्ययो भवति ।

(धान्याना भवन इत सूत्र क पहले जितन अथ विधान किये गये हे उन अर्थों में स्त्री और पुंम् शब्द स क्रमशः नञ् और स्तञ् प्रत्यय होते हैं)

उदा०—स्त्रैणम् । पौंसनम् । स्त्रीषु भवमिति स्त्रैणम् । स्त्रीणां समूह इति स्त्रैणम् । स्त्राम्भ्य आगत इति स्त्रैणम् । स्त्रीभ्यो हितम् इति स्त्रैणम् ।

द्विगालुङ्गनपत्ये ४।१।८८

प० वि०—द्विगो ६।१ तुक् १।१ अनपत्ये ७।१ स०—न अपत्यम् अनपत्यम् तस्मिन् अनपत्ये ।

अर्थ—[प्राग्दीव्यतोऽण] प्राग्दीव्यतीयेऽर्थेषु विहितो द्विगो सम्बन्धी योऽनपत्येऽर्थे वर्तमान तद्धित प्रत्यय तस्य लुग्भवति ।

(प्राग्दीव्यतीये अर्थों में विधान किये गये द्विगु सम्बन्धी जो अपत्यभिन्न अथ में वर्तमान तद्धित प्रत्यय उभका सुव हाता है)

उदा०—पञ्चकपाल । दशकपाल । द्विवेद । त्रिवेद ।

सि०—पञ्चसु कपालेषु ससृष्ट इति विग्रह । पञ्चकपाल^१ सुप् अण^२ । पञ्चकपाल^३ सु । पञ्चकपाल । दौ वेदावधीते इति विग्रह । द्विवेद^४ औट् अण^५ । द्विवेद ।

अपत्याधिकारप्रकरणम्—

तस्यापत्यम् ४।१।६२

प० वि०—तस्य ६।१ अपत्यम् १।१

अर्थ—[समर्थाना प्रथमाद्वा] तस्य इति पष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकात् अत्रयमित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहित प्रत्यया वा भवन्ति ।

(पष्ठी समय प्रातिपदिक स अपत्य इस अर्थ में यथाविहित जिस जिस प्रकृति स इस सूत्र के पूर्व या पश्चात् प्रत्यय विधान किये गए ह वे विकल्प स हाते हैं)

उदा०—औपगय । आश्वपत । दैत्य । औत्स । स्त्रैण । पौंसन ।

१—तद्धितार्थोत्तरपदसमाहार च (२. १. ५१) २—ससृष्टम् (४. ४. ३)

३—सस्यापूर्वो द्विगु (२. १. ५२) द्विगालुङ्गनपत्ये (४. १. ८८) ४—तदधीते तद्वेद (४. ४. ५१)

सि०—उपगोरपत्यं पुमान् इति औपगवः । अश्वपतेरपत्यं पुमान् आश्वपतः । उपगु इस् अण् । उपगु अ । उपगो अ । औपगो अ । औपगव् अ । औपगव सु । औपगवः । अश्वपति इस् अण् । अश्वपन् अ । आश्वपन् अ । आश्वपत मु । आश्वपतः ।

अत इज् ४।१।६५

प० वि०—अतः १।१ इज् १।१

अर्थ—[तस्यापत्यम्] अकारान्तात् प्रातिपदिकादिब् प्रत्ययो भवति तस्यापत्यमित्येतस्मिन्नर्थे । (प्रकारान्त प्रातिपदिक से उसका अपत्य इस मर्मे में इज् प्रत्यय होता है)

उदा०—दाक्षिः । प्लाक्षिः । दाशरथिः ।

सि०—दक्षस्य अपत्यं पुमान् इति दाक्षिः । दक्षः इस् इज् । दक्ष इ । दाक्षि मु । दाक्षिः ।

एको गोत्रे ४।१।६३

प० वि०—एकः १।१ गोत्रे ७।१

अर्थ—गोत्रे एक एव प्रत्ययो भवति । सर्वे अपत्येन युज्यन्ते । (गोत्र में एक ही प्रत्यय होता है । और उसके बाद जितने अपत्य हैं उन सभी का बोध एक प्रत्यय में होता है)

गोत्राद्यन्यस्त्रियाम् ४।१।६४

प० वि०—गोत्रात् १।१ यूनि ७।१ अस्त्रियाम् ७।१ स०—न स्त्री अस्त्री, तस्याम् अस्त्रियाम् ।

यूनि अपत्ये विवक्षिते गोत्रादेव प्रत्ययो भवति, स्त्रियां तु न भवति । (युवा अपत्य अर्थ में गोत्रप्रत्ययान्त से ही प्रत्यय होता है, स्त्री अपत्य में नहीं होता ।)

उदा०—गार्ग्यायणः । वात्स्यायनः । दाक्षायणः ।

सि०—गर्गस्य गोत्रापत्यम् इति गार्ग्यः । गार्ग्यस्य युवापत्यम् इति गार्ग्यायणः । गार्ग्य इस् फक् । गार्ग्यायणः । वात्स्यायनः । दक्षस्यापत्यम् दाक्षिः । दाक्षेर् युवापत्यम् दाक्षायणः ।

गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफञ् ४।१।६८

प० वि०—गोत्रे ७।१ कुञ्जादिभ्यः १।३ चफञ् १।१ स०—कुञ्ज

१—यच्च भम् (१. ४. १८) औष्ठंणः (६. ४. १४६)

आदिर्येपान्ते कुञ्जादयः तेभ्यः ।

अर्थ—[तस्यापत्यम्] कुञ्जादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्ये च्फञ् प्रत्ययो भवति (कुञ्ज इत्यादि प्रातिपदिक से गोत्रापत्य अर्थ में च्फञ् प्रत्यय होता है)

उदा०—कौञ्जायनः ।

सि०—कुञ्जस्य गोत्रापत्यम् इति कौञ्जायनः । कुञ्ज इस् च्फञ् । कुञ्ज फ । कुञ्ज आयन । कुञ्ज आयन । कौञ्ज आयन । कौञ्जायन सु । कौञ्जायनः ॥

नडादिभ्यः फक् ४।१।६६

प० वि०—नडादिभ्यः ५।३ फक् १।१ स०—नड आदिर्येपान्ते नडादयः तेभ्यः नडादिभ्यः ।

अर्थ—[गोत्रे तस्यापत्यम्] नड इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्ये फक् प्रत्ययो भवति । (नड आदि प्रातिपदिक से गोत्रापत्य अर्थ में फक् प्रत्यय होता है)

उदा०—नाडायनः । चारायणः । ऐतिकायनः ।

सि०—नडस्य गोत्रापत्यम् नाडायनः । नड इस् फक् । नड फ । नड आयन । नड आयन । नाडायन । नाडायनः । चर इस् फक् ।

यञिञोश्च ४।१।१०१

प० वि०—यञिञोः ६।२ च अ० ।

स०—यञ् च इञ् च इति यञिञौ तयोः ।

अर्थ—[फक् तस्यापत्यम् गोत्रे] गोत्रे यौ यञिञौ तदन्तात् फक् प्रत्ययो भवति । (गोत्र अर्थ में यञ् और इञ् जिसके अन्त में है, ऐसे प्रातिपदिक से फक् प्रत्यय होता है ।

उदा०—गार्ग्यायणः । वात्स्यायनः । दाक्षायणः । प्लक्षायणः ।

सि०—गार्ग्यस्य गोत्रापत्यम् गार्ग्यः । गार्ग्यस्य युचात्पत्यम् गार्ग्यायणः । गार्ग्य इस् फक् । गार्ग्य आयन । गार्ग्य आयन । गार्ग्यायण सु । गार्ग्यायणः ।

अनृप्यान्तर्ये विदादिभ्योऽञ् ४।१।१०४

प० वि०—अनृपि, सौत्रो निर्देशः ५।३ आनन्तर्ये ७।१ विदादिभ्यः ५।३ अञ् १।१ स०—न ऋपिः अनृपिः, तेभ्यः अनृपि सौत्रो निर्देशः ।

विद् आदिर्येपा ते विदादय तेभ्य ।

अर्थ—अनृपिभ्यो विदादिभ्य अनन्तरापत्येऽञ् प्रत्ययो भवति ।
 ॐ अत्रेद् बोध्यम् विदादिषु ऋपिवाचिन अनृपिवाचिनश्च शब्दा पठ्यन्ते ।
 तत्र ये ऋपिवाचिनश्शब्दा तेभ्यो गोत्रे एऽञ् प्रत्यय ये तु अनृपि-
 वाचिनश्शब्दास्तेभ्यो गोत्रेऽनन्तरे च प्रत्यय इत्येव भाष्याल्लभ्यत इति
 नागेश । सिद्धान्तकौमुदीकारस्तु अत्र एभ्यो गोत्रे ये त्वानृपयस्तेभ्य
 अनन्तरे, काशिकाकारस्तु अत्र विदादिभ्यो गोत्रापत्ये अनृपिभ्योऽनन्त-
 रापत्ये प्रत्ययो भवति, क्वेयटस्तु तत्र ऋपिभ्यो गोत्रे एवऽञ् प्रत्यय
 अनृपिभ्यस्त्वनतरापत्य एतेत्येप त्रिषयविभाग । अत्र यथा प्रयोग तत्त्व
 सुधियो विभावयन्तु ।

उदा०—वैद । और्व । पौत्र । दौहित्र ।

सि०—विदस्य गोत्रापत्यम् वैद । विद् ङस् अञ् । विद् अ । वैद
 सु । वैद । पुत्रस्यापत्यं पौत्र । दुहितुरपत्यं दौहित्र । दुहितृ ङस् अञ् ।
 दुहितृ अ । दौहित्र सु । दौहित्र ।

गर्गादिभ्यो यञ् ४।१।१०५

प० वि०—गर्गादिभ्य ५।३ यञ् १।१ स०—गर्ग आदिर्येपान्ते
 गर्गादय तेभ्य ।

अर्थ—[गोत्रे] गर्गादिभ्यो गोत्रापत्ये यञ् प्रत्ययो भवति ।

(गम इत्यादि प्रातिपदिक से गोत्रापत्य अथ मं यञ् प्रत्यय होता है)

उदा०—गार्ग्य । वात्स्य ।

सि०—गर्गस्य गोत्रापत्यम् इति गार्ग्य । गर्ग ङस् यञ् । गर्ग्य ।
 गार्ग्य सु । गार्ग्य । वात्स्य ।

शिवादिभ्योऽण् ४।१।११२

प० वि०—शिवादिभ्य ५।३ अण् । स०—शिव आदिर्येपान्ते
 शिवादय तेभ्य ।

अर्थ—शिवादिभ्य प्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये अर्थे अण् प्रत्ययो भवति ।

ॐ अत प्रभृति सामायेन प्रत्यया विज्ञायन्ते गोत्र इति निवृत्तम् ॐ

(शिव इत्यादि प्रातिपदिक से अपत्य अर्थं मं अण् प्रत्यय होता है)

उदा०—शैव । गद्गा ।

सि०—शिवस्य अपत्यं पुमान् शैव । गद्गाया अपत्यं पुमान् इति ।

मातुरुत्सख्यासंभद्रपूर्वायाः ४।१।११५

प० वि०—मातुः ६।१ उत् १।१ सख्यासंभद्रपूर्वायाः ६।१

स०—संख्या च सञ्च भद्रा चेति संख्यासंभद्राः । सख्यासंभद्राः पूर्वा यस्याः मातुरिति संख्यासंभद्रपूर्वा तस्याः ।

अर्थ—संख्यापूर्वात् सर्वाद् भद्रपूर्वाच्च मातृशब्दात् अपत्येऽर्थेऽण् प्रत्ययो भवति उकारश्चान्तादेशः ।

(सख्या, सं और भद्रा शब्द है पूर्व में जिस के ऐसे मातृ शब्दान्त प्रातिपदिक से अपत्य के अर्थ में अण् प्रत्यय होता है और मातृ शब्द को उकार अन्तादेश होता है)

उदा०—द्वैमातुरः । पाण्मातुरः । सांमामुरः । भाद्रमातुरः ।

सि०—द्वयोर्मात्रोरपत्यम् इति द्वैमातुरः । द्वि ओस् मातृ ओस् । अण् । द्वि मातृ अण् । द्विमातृ अ । द्वैमातृ अ । द्वैमातु अ । द्वैमातुर अ । द्वैमातुर सु । द्वैमातुरः । उकारादेशार्थं वचनं प्रत्ययस्तु तस्यापत्यम् इत्येव सिद्धम् ॥

कन्यायाः कनीन च ४।१।११६

प० वि०—कन्यायाः ६।१ कनीन अविभक्तिको निर्देशः । च अ० ।

अर्थ—कन्याशब्दाद् अपत्येऽर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, तत्सन्नियोगेन कनीनशब्द आदेशो भवति ।

(कन्या शब्द से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होता है और उसके सयोग से कन्या शब्द के स्थान में कनीन यह आदेश हो जाता है)

उदा०—कानीनो व्यासः । कानीनः कर्णः ।

स्त्रीभ्यो ढक् ४।१।१२०

प० वि०—स्त्रीभ्यः ५।३ ढक् १।१

अर्थ—स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक् प्रत्ययो भवति अपत्येऽर्थे ।

(स्त्रीप्रत्ययान्त शब्द से अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है)

उदा०—सौपर्ण्यः । वैनतेयः ।

कुर्वादिभ्यो ण्यः ४।१।१५१

प० वि०—कुर्वादिभ्यः ५।३ ण्यः १।१ स०—कुरादिर्यपान्ते कुर्वा-
ह्यः तेभ्यः ।

अर्थ—कुरु इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये ण्यः प्रत्ययो भवति ।

(कुरु इत्यादि प्रातिपदिके स अपत्य अथ में प्य प्रत्यय होता है)

उ०—कौरव्य । गार्ग्य ।

सि०—कुरु इस् एय । कुरु य । कुरो^१ य । कुरव्^२ य । कौरव्य सु । कौरव्य ।

मनोजातावञ्जती पुक् च ८।१।१६१

प० वि०—मनो ६।१ जातो ७।१ अञ्जती १।२ पुक् १।१ च अ० ।

अर्थ—मनुशब्दात् अव्ययी भवति पुक् चागम जातो गम्यमाने । (मनु शब्द में अत्र और यत् प्रत्यय होत है और पुक् का आगम हाता है जाति गम्यमाने हान पर)

उदा०—मानुप । मनुप्य ।

सि०—मनु पुर् अच् । मनुप् अ । मानुप सु । मानुप । मनुपुक् य । मनुप्य ।

अपत्य पौत्रप्रभृति गोत्रम् ४।१।१६२

प० वि०—अपत्यम् १।१ पौत्रप्रभृति १।१ गोत्रम् १।१

स०—पौत्रात्प्रभृति पौत्रप्रभृति ।

अर्थ—पौत्रप्रभृति अपत्यं गोत्रसज्ञ भवति ।

(पौत्र इत्यादि अपत्यो की गोत्र मना होता है)

जीवति तु वश्ये युवा ४।१।१६३

प० वि०—जीवति ७।१ तु अ० । वश्ये ७।१ युवा १।१

अर्थ—अभिजनप्रत्ययो वश । अभिजना पितामहान्य । प्रत्यय सन्तान । तत्र भयो वश्य तस्मिन् वश्ये । वश्ये पित्रादी जीवति पौत्रादे-
र्यदपत्य चतुर्थोऽदि तद्युवसज्ञमेव न गोत्रसज्ञम् ।

(वश्य अर्थात् पिता इत्यादि क जीवित रहन पर पौत्र का जो अपत्य अथवा चतुर्थ अपत्य उसकी युवामना होती है गोत्र मना नहीं)

जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ् ४।१।१६४

प० वि०—जनपदशब्दात् ५।१ क्षत्रियात् ५।१ अच् १।१

अर्थ—जनपदशब्दे य क्षत्रियात् क्षत्रियात् अच् प्रत्ययो भवति । (जनपद शब्द जो क्षत्रिय का कहन वाला उससे अपत्य अथ में अच् प्रत्यय जाना है)

उदा०—ऐच्वाक । वैदेह । पाञ्चाल ।

सि०—ईच्वाकौरपत्यम् पुमान् ऐच्वाक । ऐच्वाक् अ । ऐच्वाक ।

× क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदशब्दात्तस्य राजनि अपत्यवत् ×
पञ्चालानां राजा पाञ्चाल । विदेहानां राजा वैदेह । मगधाना राजा
मागध ।

द्वयञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण् ४।१।१७०

प० वि०—द्वयञ्मगधकलिङ्गसूरमसात् ५।१ अण् १।१ स०—द्वौ
अचौ यस्मिन् प्रातिपदिक इति द्वयच् । द्वयच्च मगधश्च कलिङ्गश्च
सूरमसश्चेति द्वयञ्मगधकलिङ्गसूरमसम् तस्मात् ।

अर्थ—[जनपदशब्दात् क्षत्रियात्] जनपदशब्दात् क्षत्रियवाचिनो
द्वयच् मगध कलिङ्ग सूरमस इत्येतेभ्यश्चापत्येऽण प्रत्ययो भवति ।

(जनपद को कहन वाले क्षत्रियवाची जो दो अच् वाल तथा मगध
कलिङ्ग सूरमस शब्द हैं उनसे अपत्य अथ में अण प्रत्यय होता है)

उदा०—आङ्ग । याङ्ग । मागध । कालिङ्ग । सौरमस । × तस्य
राजनीत्येन × आङ्गो राजा ।

वृद्धेत्कोसलाजादाञ्च्यङ् ४।१।१७१

प० वि०—वृद्धेत्कोसलाजादात् ५।१ ञ्यङ् १।१ स०—वृद्धश्च इच्च
कोसलश्च अजादश्चेति वृद्धेत्कोसलाजादम् तस्मात् ।

अर्थ—[जनपदशब्दात् क्षत्रियात्] जनपदशब्दात् क्षत्रियवाचिनो
वृद्धादिकारान्तप्रातिपदिकात् कोसलाजादशब्दाभ्याञ्चापत्ये ञ्यङ्
प्रत्ययो भवति ।

(जनपद को कहन वाले जा क्षत्रियवाची वृद्ध सजा वाल, इकारान्त प्राति-
पदिक तथा कोसल और अजाद शब्द उनसे अपत्य अथ में ञ्यङ् प्रत्यय होता है)

उदा०—वृद्धात्—आम्बष्ठ्य । सीवीर्य । इकारान्तात्—आवन्य ।
कौन्त्य । कौस्त्य । आजाद्य । × तस्य राजनीत्येव × आम्बष्ठ्यो
राजा ।

कुरुनादिभ्यो ण्य ४।१।१७२

प० वि०—कुरुनादिभ्य ५।१ ण्य १।१ म०—नकार आदिर्येऽन्ते
नादय । कुरुश्च नादयश्चेति कुरुनादय तेभ्य ।

अर्थ—[जनपदशब्दात् क्षत्रियात्] कुरुणादिभ्यश्च प्राति-
पदिकेभ्यो ण्यप्रत्ययो भवति अपत्येऽर्थ ।

(कृद् घोर नकारादि प्रातिपदिक म प्रपय प्रथ में ष्य प्रत्यय होता है)
 उ०—कौरव्य । नादिभ्य-नैपथ्य । नैपथ्य । X तस्य राचनीत्येन X
 कौरव्यो राजा ।

ते तद्राजा ४।१।१७२

प० वि०—ते १।३ तद्राजा १।३

अर्थ—तेऽत्रान्यस्तद्राजसङ्गा भवन्ति ।

(उन भन्नादि प्रत्यया की तद्राज सगा हाता है)

इत्यष्टाध्यायी प्रकाशिकाया चतुर्थाध्याये प्रथम पाद

—२२०१०—

रक्ताद्ययप्रकरणम्—

तेन रक्त रागात् ४।२।१

प० वि०—तेन ३।१ रक्तम् १।१ रागात् १।१

अर्थ—रज्यते अनेनेति राग ॥ तेनेति तृतीयासमर्थाद् रागविशेष-
 वाचिन प्रातिपदिकाद् रक्तम् इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहित प्रत्ययो भवति ।

(तृतीय समथ रागविशेषवाची (राग विगपवाची) प्रातिपदिक स रगा गया
 इस प्रथ में बैसा विधान किया गया है बैसा प्रत्यय हागा)

उ०—कापायम् । मजिष्ठम् । कीमुम्भम् ।

सि०—करायेण रक्त वस्त्रम् इति कापायम् वस्त्रम् । कपाय टा
 अण् । कपाय अ । कपाय् अ । कापाय् अ । कापाय मु । कापाय अम् ।
 कापायम् । मजिष्ठेन कुमुम्भेन वा रक्त वस्त्रम् इति विप्र ॥

लाक्षारोचनाट्ठक् ४।२।२

प० वि०—लाक्षारोचनात् १।१ ठक् १।१ स०—लाक्षा च रोचन
 ष्चेति लाक्षारोचनम् तस्मान् ।

अर्थ—[तेन रक्तम् रागान्] लाक्षान्भ्या रागवचनेभ्यस्तृतीया-
 समर्थप्रातिपदिकेभ्यो रक्तमित्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्यया भवति ।

(लाक्षा रोचन इन रागविशेषवाची तृतीया समथ प्रातिपदिक स रगा गया
 इस प्रथ में ठक् प्रत्यय हाता है)

स । —लाक्षिकम् । राचनिकम् ।

नक्षत्रेण युक्त काल ४।२।३

प० वि०—नक्षत्रेण ३।१ युक्त १।१ काल १।१

अर्थ—[तेन] तृतीयासमर्थान्नक्षत्रविशेषवाचिनः प्रातिपदिकात् युक्तः काल इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ।

(तृतीया समय नक्षत्र विशेषवाची प्रातिपदिक से युक्त काल इस अर्थ में यथाविहित (अणु) प्रत्यय होता है)

उदा०—पौषी रात्रिः । पौषमहः ।

सि०—ऋकथं पुनर्नक्षत्रेण पुष्यादिना कालो युज्यते । पुष्यादिसमीपस्थे चन्द्रमसि वर्तमानाः पुष्यादिशब्दाः प्रत्ययमुत्पादयन्ति । पुष्येण नक्षत्रेण युक्तः कालः, पुष्यसमीपस्थेन चन्द्रमसा युक्त इत्यर्थः । ऋ

सि०—पुष्य टा अणु । पुष्य अ । पुष्य् अ । पौष्य् अ । पौष् अ । पौष ङीप्^१ । पौषी सु । पौषी ॥

लुवविशेषे ४।२।४

प० वि०—लुप् १।१ अविशेषे ७।१ स०—न विशेष अविशेषः तस्मिन् ।

अर्थ—पूर्वेण विहितस्य प्रत्ययस्य लुन् भवति अविशेषे गम्यमाने । (पूर्व में विधान किये गये प्रत्यय का लुप् हो जाता है विशेष किसी रात्रि या दिन का बोध न हो तो)

उदा०—अद्य पुष्य । अद्य कृतिका ।

दृष्ट साम ४।२।७

प० वि०—दृष्टम् १।१ साम १।१

अर्थ—[तेन] तृतीयासमर्थप्रातिपदिकान् दृष्ट साम इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहित प्रत्ययो भवति । (तृतीया समय प्रातिपदिक से देखा गया साम इस अर्थ में यथाविहित (अणु) प्रत्यय होता है)

उदा०—ऋक्षेन दृष्टं साम इति ऋज्विषम । वाशिष्ठम् । वैश्वामित्रम् ।

वामदेवाद् ड्यङ्ङ्यौ ४।२।९

प० वि०—वामदेवात् ५।१ ड्यङ्ङ्यौ १।२ स०—ड्यङ्ङ्य ड्यङ्ङ्य इति ड्यङ्ङ्यौ

अर्थ—[तेन दृष्ट साम] वामदेवान् तृतीयासमर्थान् प्रातिपदिकान्

१—पूर्वतिष्यागस्तमत्तयाना य उपधायाः (४. १. १५६) २—टिङ्ङा-
खञ० (४. १. १५)

दृष्टं साम इत्येतस्मिन्नर्थे इयन् इय इत्येतौ प्रत्ययो भवतः ॥

(वामदेव तृतीया समर्थं प्रातिपदिक से दत्ता गया साम इय अर्थ में इयन् प्रीर इय प्रत्यय होते हैं)

उदा०—वामदेवेन दृष्टं साम इति वामदेव्यम् साम ॥

संस्कृतं भक्षा ४।२।१६

५० वि०—संस्कृतम् १।१ भक्षा १।१

अर्थ—[तत्र] सप्तमीसमर्थान् प्रातिपदिकान् संस्कृतमन्वेतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति यत्संस्कृतं भक्षाश्चेन् ते भवन्ति ।

ऋत्सरविशदमन्व्यवहारार्थं भक्षम् इत्युच्यते । सत उक्त्वाधानं संस्कारः॥

(सप्तमी समर्थं प्रातिपदिक से मन्वार किया गया इस अर्थ में यथाविहित (प्रण) प्रत्यय होता है) दानों से चवाकर खाने योग्य पदार्थ को भक्ष कहते हैं ।

उदा०—भ्राष्ट्रे संस्कृता भक्षा भ्राष्ट्रा अपूपाः । भ्राष्ट्रा यवाः । भ्राष्ट्रा ओदनाः ।

सि०—भ्राष्ट्रा ङि अण् । भ्राष्ट्र । भ्राष्ट्रा जस् । भ्राष्ट्रा ॥

सास्य देवता ४।२।२४

५० वि०—सा १।१ अस्य ६।१ देवता १।१

अर्थ—प्रथमासमर्थान् प्रातिपदिकान् अस्य देवता इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । (प्रथमा समर्थंप्रातिपदिक से 'देवता है इसका' इस अर्थ में यथाविहित (अण्) प्रत्यय होता है)

उदा०—इन्द्रो देवतास्य मन्त्रस्येति ऐन्द्रो मन्त्रः । इन्द्रो देवतास्य हविष इति ऐन्द्र हविः । ॥ देवतास्योऽस्य बहुष्वर्थेषु प्रसिद्धः । इह तु मन्त्रप्रतिपाद्यो विषयः देवताशब्देन उच्यते । तथा चोक्तं कात्यायनेन—या तेनाच्यते सा देवता (ऋक्सर्वाणुकमणी०) । तेन यस्मिन् मन्त्रे इन्द्रः प्रतिपाद्यते वर्ण्यते स्मृत्यते तस्य मन्त्रस्य इन्द्रो देवता एवमग्न्यादयस्तत्तन्मन्त्रविषया देवतापदवाच्या द्रष्टव्याः॥

(देवता शब्द लोक में बहुत अर्थों में प्रसिद्ध है । इस सूत्र में देवता शब्द से मन्त्र प्रतिपाद्य विषय का ग्रहण होता है । यही वाक्य कात्यायन ने अपनी ऋक्सर्वाणुकमणी में कही है । इस लिए जिस मन्त्र में इन्द्र का प्रतिपादन हो या स्तुति की गई हो उस मन्त्र का इन्द्र देवता होगा वह मन्त्र ऐन्द्र कहावेगा । इसी प्रकार अग्न्यादि देवताओं के विषय में भी समर्थों) ।

विषयभेदेन इमा इन्द्रादयो देवता सचेतना अचेतनाश्च भवन्ति । यत्रि कस्मिंश्चिन्मन्त्र इन्द्रशब्देन विद्युदादयो भौतिकाः पदार्था उच्यन्ते तदा सा इन्द्रदेवता अचेतना उच्यते यदा तु इन्द्रशब्देन कस्मिंश्चिन्मन्त्रे आत्मा परमात्मा वा उच्यते तदा सा इन्द्रदेवता सचेतना इत्युच्यते । (विषय के भेद से ये देवता चेतन और अचेतन दोनों प्रकार के होते हैं । जब किसी मन्त्रमें इन्द्र शब्द से विद्युत् आदि भौतिकपदार्थों का वर्णन किया जाता है तब वह इन्द्र देवता अचेतन होता है और जब इन्द्र शब्द से किसी मन्त्र में आत्मा या परमात्मा का वर्णन होता है तब वह इन्द्र देवता सचेतन कहा जाता है)

अग्नेर्ढक् ४।२।३३

प० वि०—अग्ने ५।१ ढक् १।१

अर्थ—[सास्य देवता] अग्ने प्रातिपदिकात् सास्य देवता इत्येतस्मिन्नर्थे ढक् प्रत्ययो भवति । (अग्नि प्रातिपदिक से वह देवता है इसका इस अर्थमें ढक प्रत्यय होता है)

उदा०—आग्नेयो मन्त्र । आग्नेयोऽष्टकपाल ।

सि०—अग्निर्देवतास्य मन्त्रस्येति विग्रह । अग्नि मु ढक् । अग्नि ढ । अग्नि एय । अग्न् एय । आग्न् एय । आग्नेय सु । आग्नेय ॥

पितृव्यमातुलमातामहपितामहा ४।२।३६

प० वि०—पितृव्यमातुलमातामहपितामहा १।३ स०—पितृव्यश्च मातुलश्च मातामहश्च पितामहश्चेति पितृव्यमातुलमातामहपितामहा ।

अर्थ—पितृव्य-मातुल मातामह-पितामह इत्येते शब्दा निपात्यन्ते (पितृव्य, मातुल मातामह, पितामह ये शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं)

उदा०—× पितृमातृभ्यां भ्रातरि व्यङ्गु लचौ × पितुर्भाता पितृव्य । मातुर्भाता मातुल । × मातृपितृभ्यां पितरि ङामहच् × मातु पिता मातामह । पितु पिता पितामह । × मातरि पिच्च × [मातृपितृभ्यां मातरि ङामहच् णच् वक्तव्य] पितुर्भाता पितामही । मातुर्भाता मातामही ।

सि०—पितृव्य । पितृ ङस् व्यत् । पितृ व्य । पितृव्य सु । पितृव्य । मातृ ङस् ङुलच् । मातृ उल । मातृ उल । मातुल । मातामह । पितामह । पितामह । मातामही । पितामही । मातामह ङीप् । मातामह ई । मातामही ।

तस्य समूह. ४।२।३७

प० वि०—तस्य ६।१ समूहः १।१

अर्थ—पष्ठीसमर्थान् प्रातिपदिकान् समूहः इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहित प्रत्ययो भवति (पष्ठीसमर्थं प्रातिपदिकं से समूह इत्थं ग्रथं मे यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—काकम् । वाकम् । वार्कम् ।

सि०—काकानां समूहः इति विग्रहः । वरानां वृकानां वा समूह इति विग्रहः । वृक आम् अण् । वृक अण् । वृक अ । वृक् अ । वार्क् अ । वार्क सु । वार्क अम् । वार्कम् ।

भिक्षादिभ्योऽण् ४।२।३८

प० वि०—भिक्षादिभ्यः ५।३ अण् १।१ स०—भिक्षाशब्द आदिर्येषां ते भिक्षादय तेभ्यः।

[तस्य समूहः] भिक्षादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽण् प्रत्ययो भवति तस्य समूह इत्येतस्मिन्नर्थे । (भिक्षा इत्यादि प्रातिपदिको मे उभवा समूह इत्थं ग्रथं मे अण् प्रत्यय होता है)

उदा०—भैक्षम् । गार्भिणम् । भिक्षा । गर्भिणी । क्षेत्र । कटीप । अङ्गार । चर्मिन् । वर्मिन् । सहस्र । पदाति । पद्धति । अथर्वन् । दक्षिणा ।

सि०—भिक्षाणां समूहो भैक्षम् । गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम् ।
X भस्याडे तद्धिते पुं वद्भावो वक्तव्यः X भिक्षा आम् अण् । भिक्षा अ । भैक्ष सु । भैक्ष अम् । भैक्षम् । गर्भिणी आम् अण् । गर्भिन्^१ अ । गर्भिन्^२ अ । गार्भिन् अ । गार्भिणम् ।

ग्रामजनवन्धुभ्यस्तल् ४।२।४३

प० वि०—ग्रामजनवन्धुभ्यः ५।३ तल् १।१ स०—ग्रामश्च जनश्च वन्धुश्चेति ग्रामजनवन्धुव. तेभ्यः ।

अर्थ—[तस्य समूहः] ग्राम-जन-वन्धुभ्यः प्रातिपदिकेभ्यस्तल् प्रत्ययो भवति तस्य समूहः इत्येतस्मिन्नर्थे । (ग्राम, जन और वन्धु प्रातिपदिक से तस्य समूह अर्थान् इनका समूह इत्थं ग्रथं मे तल् प्रत्यय होता है ।)

१—भस्याडे तद्धिते पुं वद्भावो वक्तव्य (६. ३. ३५ वा०) २—यच्चि भम् (१. ४. १८) भस्य (६. ४ १२६) नस्तद्धिते (६. ४ १४४) इनप्यन-प्ये (६. ४. १६४)

उदा०—प्रामता । जनता । बन्धुता । X गजसहायान्याञ्चेति
वक्तव्यः X गजता । सहायता ।

सि०—प्रामाणां जनानां बन्धूनां वा समूहः इति विग्रह । प्राम आम्
तल् । प्रामत टाप् । प्रामता ।

तदधीते तद्वेद ४।२।५६

प० वि०—तत् २।१ अधीते क्रिया० । तत् २।१ वेद क्रिया० ।

अर्थ—द्वितीयासमर्थप्रातिपदिकात् अधीते वेद इत्येतयोरर्थयो-
र्यथाविहित प्रत्ययो भवति (द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से पढता है और जानता
है इन दोनों अर्थों में यथाविहित (अण) प्रत्यय होता है ।

उदा०—छान्दसः । वैयाकरणः । नैरुक्त । नैमित्तः ।

सि०—छन्द. व्याकरणं निरुक्त निमित्तानि वा अधीते वेद इति
विग्रह । छन्दस् अम् अण् । छान्दस सु । छान्दसः । व्याकरण अम्
अण् । वैयाकरण ।

क्रमादिभ्यो वुन् ४।२।६१

प० वि०—क्रम आदिर्येषान्ते क्रमादय तेभ्यः ।

अर्थ—[तदधीते तद्वेद] क्रमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः तदधीते
तद्वेद इत्येतयोरर्थयोरुन् प्रत्ययो भवति ।

(क्रम इत्यादि प्रातिपदिक से उसको पढता है या उसको जानता है, इन
अर्थों में वुन् प्रत्यय होता है)

उदा०—क्रमक । पटक. । क्रम । पद । शिक्षा । मीमांसा ।
सामन् ।

घातुरापिक्प्रवरणम्—

तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ४।२।६७

प० वि०—तत् १।१ अस्मिन् ७।१ अस्ति क्रिया० । इति अ० । देशे
७।१ तन्नाम्नि ७।१ । स०—तत् प्रत्ययान्त नाम यस्येति तन्नाम तस्मिन् ।

अर्थ—तदिति प्रथमासमर्थप्रातिपदिकाद् अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे
यथाविहित प्रत्ययो भवति यत्तत्प्रथमासमर्थम् अस्ति चेत् तद्भवति,
यत्तद् अस्मिन्निति निर्दिष्टं प्रत्ययान्तनामा देशश्चेत् तद्भवति ।

(प्रथमा समर्थं प्रातिपदिक से सप्तमी के अर्थ में यथाविहित (अण्) प्रत्यय होता है, यदि वह प्रथमा समर्थं अस्ति अर्थात् 'है' अर्थ को बताने वाला हो और 'अस्मिन्' यह प्रत्ययान्त शब्द बनने पर, देश को कहने वाले हो)

उदा०—श्रीदुम्बर । बाल्वज. । पार्वत. ॥

सि०—उदुम्बराः सन्ति अस्मिन् देशे इति श्रीदुम्बरो देशा । पर्वता-
सन्त्यस्मिन् देशे इति पार्वताः ॥

तेन निवृत्तम् ४।२।६८

प० वि०—तेन ३।१ निवृत्तम् १।१

अर्थ—[देशे तन्नाम्नि] तृतीयसमर्थप्रातिपदिकान् निवृत्तम् इत्ये-
तस्मिन्नर्थे यथाविहित प्रत्ययो भवति देशनाम्नि अभिधेये ।

(तृतीया समर्थं प्रातिपदिक मे बनाया गया अर्थात् बनवाया गया इस अर्थ में यथाविहित (अण्) प्रत्यय होता है देश का नाम गम्यमान हान पर)

उदा०—कौशाम्बी नगरी ।

सि०—कुशाम्बेन निर्मिता नगरी इति विग्रह । कुशाम्ब टा अण् ।
कौशाम्ब अ । कौशाम्ब डीप् । कौशाम्बी मु । कौशाम्बी ॥

तस्य निवास. ४।२।६९

प० वि०—तस्य ६।१ निवासः १।१

अर्थ—[देशे तन्नाम्नि] षष्ठीसमर्थप्रातिपदिकान् निवास इत्ये-
तस्मिन्नर्थे यथाविहित प्रत्ययो भवति देशनामधेये । (षष्ठी समर्थं प्रातिपदिक
से निवास इन अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है देश का नाम अभिधाय हाने पर)

उदा०—शैव ।

सि०—शिमीनां निवासो देश इति शैवो देशः ॥

अदूरभवश्च ४।२।७०

प० वि०—अदूरभवः १।१ च अ० । स०—न दूरम् अदूरम् । अदूरे
भव अदूरभवः ।

अर्थ—[देशे तन्नाम्नि, तस्य] षष्ठीसमर्थान् प्रातिपदिकाद् अदूरभव
इत्येतस्मिन्नर्थे देशनामधेये यथाविहित प्रत्ययो भवति । (षष्ठी समर्थं
प्रातिपदिक मे पास हान अर्थ में यथाविहित (अण्) प्रत्यय होता है देश के नाम
हाने पर)

उदा०—विदिशाया नद्या अदूरभव नगरं वैदिशम् ॥

शैपिकप्रकरणम्—

शेषे ४।२।६२

प० वि०—शेषे ७।१

अर्थ—इतोऽग्रे वक्ष्यमाणा प्रत्यया. शेषे अर्थे भवन्ति इत्यधिकारो वेदितव्य । ङापशब्देनात्र इत आरम्भ 'तस्येदम्' इतिपर्यन्तं ये अर्थाः वक्ष्यन्ते तेषां ग्रहणम् । (यहा से बहे जाने वाले प्रत्यय शेष अर्थों में होते हैं, इस बात का अधिकार समझना चाहिये) शेष से अभिप्राय यहा 'तस्येदम्' प्रकरण पर्यन्त जितन वक्ष्यमाण अर्थ कहें उनसे है ।

राष्ट्रावारपाराद् घञौ ४।२।६३

प० वि०—राष्ट्रावारपारात् ५।१ घञौ १।२ स०—राष्ट्रञ्च अवार-पारञ्चेति राष्ट्रवारपारम् तस्मात् । घश्च खश्चेति घञौ ।

अर्थ—राष्ट्र अवारपार इत्येताभ्या यथासंख्य घञौ प्रत्ययौ भवत शेषे । (राष्ट्र और अवारपार इन दो शब्दों से क्रमशः घ और ख प्रत्यय होने हैं शेष अर्थों में)

उदा०—राष्ट्रियः । अवारपारीणः । ×अवारपाराद् विगृहीतादपि× अजारीणः । पारीणः ×त्रिपरीताच्च× पारावारीणः ।

ग्रामाद् यखञौ ४।२।६४

प० वि०—ग्रामात् ५।१ यखञौ १।२ स०—यश्च खञ्चेति यखञौ ।

अर्थ—ग्रामशब्दात् यखञौ प्रत्ययौ भवतः शेषे (ग्राम शब्द से य और ख प्रत्यय होते हैं शेष अर्थों में)

उदा०—ग्राम्यः । ग्रामीणः ।

दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् ४।२।६८

प० वि०—दक्षिणापश्चात्पुरसः ५।१ त्यक् १।१ स०—दक्षिणा च पश्चाच्च पुरश्चेति दक्षिणा-पश्चात्पुरस् तस्मात्

अर्थ—दक्षिणा-पश्चात्-पुरसः प्रातिपदिकात् त्यक् प्रत्ययो भवति शैपिकः । (दक्षिणा, पश्चात् और पुरस् प्रातिपदिक से त्यक् प्रत्यय होता है शेष अर्थों में)

उदा०—दक्षिणायां भवः दक्षिणात्यः । पश्चाद् भवः पश्चात्यः । पुरो भवः पौरत्यः ।

द्युप्रागपागुदकप्रतीचो यत् ४।२।१०१

५० वि०—द्युप्राग-अपाग-उदक्-प्रतीच ५।१ यत् १।१ म०—
द्यौरच प्राक्च अपाक् च उदक्च प्रत्यच्चेति द्युप्रागपागुदकप्रत्यक् तस्मात् ।
अर्थ—द्विभू प्राक्-अपाक् उदक् प्रत्यक् इत्येतेभ्य प्रातिपदिकेभ्यो
यत् प्रत्ययो भवति शैपिक । (दिव, प्राक्, अपाक्, उदक्, प्रत्यक् इत प्राति-
पदिका स यत् प्रत्यय होता है शेष अर्थों में)

उदा०—द्विवि भत्र द्विव्यम् । प्राच्यम् । अपान्त्रम् । उदीच्यम्
प्रतीच्यम् ॥

अव्ययात् त्यप् ४।२।१०४

५० वि०—अव्ययात् ५।१ त्यप् १।१

अर्थ—अव्ययात् त्यप् प्रत्ययो भवति शैपिक । (अव्यय स त्यप् प्रत्यय
हाना है नाप अर्थ में)

उदा०—ऋअमेद्वकतसिोम्य ऋऋ अमाय । इहत्य । कृत्य ।
तनस्य । तत्रय ॥ Xत्यन्नेध्रुवेX नित्य ॥

ऐपमोह्य श्वसोऽन्यतरम्याम् ४।२।१०५

५० वि०—ऐपमोह्य-श्वस ५।१ अन्यतरम्याम् अ० । स०—ऐपमश्च
ह्यश्च श्वश्चेति ऐपमोह्यश्च तस्मान् ।

अर्थ—[त्यन्] ऐपमम्-घस्-श्वस प्रातिपदिकान् त्यप् प्रत्ययो भवति
शैपिकोऽन्यतरम्याम् । (ऐपमम् ह्यम् श्वस् इत प्रातिपदिका से विकल्प म
त्यप् प्रत्यय हाना है शेष अर्थों में)

उदा०—ऐपमस्यम् । ऐपमस्तनम् । ह्यस्यम् । ह्यस्तनम् । श्वस्यम् ।
श्वस्तनम् । शीतस्तिकम् ॥

द्विकपूर्वपदादभज्ञायाम् ४।२।१०६

५० वि०—द्विकपूर्वपदान् ५।१ असंज्ञायाम् ७।१ म०—पूर्वच्च
तत्पदञ्चति पूर्वपदम्—द्विक्र्वाची पूर्वपदं यस्य तत् । द्विकपूर्वपदम्
तस्मान् । न संज्ञा असंज्ञा तस्याम् ।

अर्थ—द्विग्याचिन शब्दा पूर्वपदानि यस्य तस्मान् अभज्ञायां यत्-
मानान् प्रातिपदिकान् अ- प्रत्ययो भवति शैपिक । (द्विग्याचि इत्ये है पूर्व-
पद विभक्ता ऐष अज्ञा में वर्तमान प्रातिपदिक स नाप अर्थ में अत्रत्यय होता है)

उदा०—दीर्घशाल । आपरशाल ।

सि०—समासप्रकरणे द्रष्टव्यम्

वृद्धाच्छः ४।२।११४

प० वि०—वृद्धात् ५।१ छः।१॥

अर्थ—वृद्धसंज्ञकप्रातिपदिकात् छः प्रत्ययो भवति शैपिकः। (वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक से छ प्रत्यय होता है शेष ग्रथ में)

उदा०—शालीयः। मालीयः।

भवतष्ठक्छसौ ४।२।११५

प० वि०—भवतः ५।१ ठक्छसौ १।२ स०—ठक् च छरच इति ठक्छसौ।

अर्थ—[वृद्धात्] भवच्छब्दाद् वृद्धान् ठक्छसौ प्रत्ययौ भवतः शैपिकौ। (वृद्धसंज्ञक भवत् शब्द से ठक् और छत् प्रत्यय होते हैं शेष ग्रथ में)

उदा०—भावरकः। भवदीयः।

सि०—भवत् ङस् ठक्। भवत् ठ। भावत् ठ। भावत्क सु^१। भावत्कः। भवदीयः। भवत् छस्। भवत् छ^२। भवत् ईय। भवद्^३ ईय। भवदीय सु। भवदीयः॥

इत्याष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया चतुर्थाध्याये द्वितीयः पादः

युष्मदस्मदोरन्यतरस्या खञ्च ४।३।१

प० वि०—युष्मदस्मदोः ६।२ अन्यतरस्याम् अ० खञ् १।१ च अ०। स०—युष्मच्च अस्मच्चेति युष्मदस्मदो तयोः।

अर्थ—(उत्तरादेशार्थं पठ्ठी) युष्मद्-अस्मद् इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् खञ्चपि प्रत्ययो भवति शैपिकोऽन्यतरस्याम्।

(युष्मद् और अस्मद् प्रातिपदिक से खञ् प्रत्यय भी शेष ग्रथों में विकल्प से होता है)

अत्रेदं ज्ञातव्यम्-वृद्धत्वाच्छः अन्यतरस्यां प्रहणादण खञ् तु साक्षादेव तस्मात् प्रकृतिद्वयं प्रत्ययत्रयमस्मान् कारणान् यथासंख्यं नञ्

उदा०—युवयोर्युष्माकं वा अयं युष्मदीयः, अस्मदीयः।

सि०—युष्मद् ङस् छ। युष्मद् ईय। युष्मदीयः। अस्मदीयः।

१—इमुमुक्तान्तान् ४: (७. १. ५१) २—सिति ४ (१. ५. १६) ३—पदत्वात्, भवा जरोऽन्तं (८. २. ३६)

तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ४।३।२

प० वि०—तस्मिन् ७।१ अणि ७।१ च अ० । युष्माकास्माकौ १।२
स०—युष्माकश्च अस्माकश्चेति युष्माकास्माकौ ।

अर्थ—[युष्मदस्मदो] तस्मिन् सञ्चि अणि च युष्मदस्मदोर्यथा
सत्य युष्माक अस्माक इत्यतावादेशौ भवत ।

(उस सञ्चि और अण क पर रहन पर युष्मद् और अस्मद् के स्थान में
क्रमश युष्माक और अस्माक आदेश होते ह)

उदा०—खञि-यौष्माकीण । अस्माकीन । अणि-यौष्माक ।
आस्माक ।

सि—युष्मद् इस् खञ् । युष्मद् र । युष्माक ईन । युष्माक् ईन ।
यौष्माकीन । यौष्माकीण मु । यौष्माकीण । अस्माकीन । यौष्माक ।
युष्मद् इस् अण् । युष्माक अ । युष्माक् अ । यौष्माक मु । यौष्माक ।
आस्माक ।

तवकममकावेकवचने ४।३।३

प० वि०—तवकममकी १।० एकवचने ७।१ स०—तवकश्च मम-
कश्चेति तवकममकी ।

अर्थ—[युष्मदस्मदो] युष्मदस्मदोरेकवचने तवकममकावादेशौ
भवत । (युष्मद् और अस्मद् शब्द के स्थान में एक वचन म तवक और ममक
आदेश हात ह)

अत्रेदं ज्ञातव्यम् एकवचने आदेशार्थम् इदं वचनम्, प्रत्ययास्तु
पूर्वैर्यैः सिद्धा ॥

उदा०—खञि-तावकीन । मामकीन । अणि-तावक । मामक ।
छे-त्वदीय । मनीय ।

सि०—तव मम चा अयम् इति विग्रह । युष्मद् इस् अण् । तवक
अ । तवक् अ । तावक् अ । तावक मु । तावक । मामक । तावकीन
युष्मद् इस् खञ् । तवक र । तवक् ईन । तवक् ईन । तावक् ईन ।
तावकीन मु । तावकीन । मामकीन । त्वदीय । युष्मद् छ । युष्मद्
ईय । त्व' अद् ईय । त्वद् ईय । त्वदीय मु । त्वनीय । मनीय ।

सि०—समासप्रकरणे द्रष्टव्यम्

वृद्धाच्छ ४।२।११४

प० वि०—वृद्धात् ५।१ छ^१।१॥

अर्थ—वृद्धसज्ञकप्रातिपदिकात् छः प्रत्ययो भवति शैपिक । (वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक से छ प्रत्यय होता है शेष अर्थ में)

उदा०—शालीय । मालीय ।

भवतष्टकछसौ ४।२।११५

प० वि०—भवत् ५।१ ठकछसौ १।२ स०—ठक् च छश्च इति ठकछसौ ।

अर्थ—[वृद्धात्] भवच्छ्रुदाद् वृद्धात् ठकछसौ प्रत्ययो भवत् शैपिकौ । (वृद्धसंज्ञक भवत् शब्द से ठक् और छस प्रत्यय होते हैं शेष अर्थ में)

उदा०—भावत्क । भवदीय ।

सि०—भवत् ङस् ठक् । भवत् ठ । भावत् ठ । भावत्क सु^१ । भावत्क । भवदीय । भवत् छस् । भवत् छ^२ । भवत् ईय । भवद्^३ ईय । भवदीय सु । भवदीय ॥

इत्याष्टाध्यायी-प्रकाशिकायां चतुर्थाध्याये द्वितीय, पाद

युष्मदस्मदोरन्यतरस्या खञ्च ४।३।१

प० वि०—युष्मदस्मदो ६।२ अन्यतरस्याम् अ० खञ् १।१ च अ । स०—युष्मच्च अस्मच्चेति युष्मदस्मदो तयोः ।

अर्थ—(उत्तरादेशार्थं पठ्ठी) युष्मद् अष्मद् इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाम्याम् खञ्चपि प्रत्ययो भवति शैपिकोऽन्यतरस्याम् ।

(युष्मद् और अस्मद् प्रातिपदिक से खञ् प्रत्यय भी शेष अर्थों में विकल्प से होता है)

अत्रेदं ज्ञातव्यम् वृद्धत्वाच्च अन्यतरस्यां ग्रहणादण खञ् तु साक्षादेव तस्मात् प्रकृतिद्वय प्रत्ययत्रयमस्मात् कारणात् यथासख्यं नञ्

उदा०—युवयोर्युष्माक वा अय युष्मदीय, अस्मदीयः ।

सि०—युष्मद् ङस् छ । युष्मद् ईय । युष्मदीय । अस्मदीयः ।

१—इसुमुक्तान्तात् क (७. १. ५१) २—सिति च (१ ४. १६) ३—पदत्वात्, भक्ता जसोऽन्त (८ २. ३६)

तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ४।३।२

५० वि०—तस्मिन् ७।१ अणि ७।१ च अ० । युष्माकास्माकौ १।२ स०—युष्माकश्च अस्माकश्चेति युष्माकास्माकौ ।

अर्थ—[युष्मदस्मदोः] तस्मिन् खञि अणि च युष्मदस्मदोर्वासास्य युष्माक अस्माक इत्यतावादेशौ भवतः ।

(तम खञ् धोर अण् के परे रहन पर युष्मद् धोर अस्मद् के स्यात में क्रमण युष्माक् धोर अस्माक् आदेश हाते हैं)

उदा०—खञि-यौष्माकीण । अस्माकीन । अणि-यौष्माक । आस्माक ।

सि०—युष्मद् इस् खञ् । युष्मद् र। युष्माक ईन । युष्माक् ईन । यौष्माकीन । यौष्माकीण मु । यौष्माकीण । अस्माकीन । यौष्माक । युष्मद् इस् अण् । युष्माक अ । युष्माक् अ । यौष्माक मु । यौष्माक । आस्माक ।

तवकममकावेकवचने ४।३।३

५० वि०—तवकममकौ १।२ एकवचने ७।१ स०—तवश्च ममकश्चेति तवकममकौ ।

अर्थ—[युष्मदस्मदोः] युष्मदस्मदोरेकवचने तवस्ममकावादेशौ भवतः । (युष्मद् धोर अस्मद् गद के स्यात में एक वचन में तवक् धोर ममक् आदेश हाते हैं)

अत्रेदं ज्ञातव्यम्-एकवचने आदेशार्थम् इदं वचनम्, प्रत्ययान्तु पूर्वैरेव सिद्धाः

उदा०—खञि-तावकीनः । मामकीनः । अणि-तावकः । मामकः । छे-त्वदीय । मदीयः ।

सि०—तव मम वा अयम् इति निग्रहः । युष्मद् इस् अण् । तवक् अ । तवक् अ । तावक् अ । तावक् मु । तावकः । मामक । तावकीनः युष्मद् इस् खञ् । तवक् र। तवक् ईन । तवक् ईन । तावक् ईन । तावकीन मु । तावकीन । मामकीनः । त्वदीय । युष्मद् छ । युष्मद् ईय । त्व' अद् ईय । त्वद् ईय । त्वदीय मु । त्वदीय । मदीय ।

मध्यान्म ४।३।८

प० वि०—मध्यात् ५।१ म १।१

अर्थ—मध्यात् प्रातिपदिकात् शेषे म प्रत्ययो भवति । (मध्य प्रातिपदिक स शेष अय में म प्रत्यय होना है)

उदा०—मध्ये भव मध्यम । × आदेशचेति वक्तव्यम् × आदिम ।

कालाट्ठञ् ४।३।११

प० वि०—कालात् ५।१ ठञ् १।१

अर्थ—कालवाचिन प्रातिपदिकात् ठञ् प्रत्ययो भवति शेषेऽर्थे । (कालवाची प्रातिपदिक स शप अय में ठञ् प्रत्यय होता है)

उदा०—मासे भव मासिक । सांवत्सरिक । आर्द्धमासिक ।

श्राद्धे शरद ४।३।१२

प० वि०—श्राद्धे ७।१ शरद ५।१

अर्थ—[ठञ्] श्राद्धे गम्यमाने शरत्प्रातिपदिकान् ठञ् प्रत्ययो भवति शेषे । (श्राद्ध गम्यमान होन पर शप अयमें शरत् प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होता है)

उदा०—शरदि भव श्राद्धम् इति शारदिक श्राद्धम् ।

विभाषा रोगातपयोः ४।३।१३

प० वि०—विभाषा १।१ । रोगातपयो ७।० स०—रोगश्च आतपश्चेति रोगातपयो ।

अर्थ—[शरद] शरत्प्रातिपदिकाद् रोगे आतपे च अभिधेये ठञ् प्रत्ययो विभाषा भवति शेषे । (शरद शब्द से रोग धोर आतप अभिधय होन पर ठञ् प्रत्यय विकल्प से होता है शप अय में)

उदा०—शरदि भवो रोग आतपो वा शारदिको रोग । शारदिक आतप । अणि-शरदो रोग आतपो वा ।

निशाप्रदोषाभ्याञ्च ४।३।१४

प० वि०—निशाप्रदोषाभ्याम् ५।२ च अ० । स०—निशा च प्रदोषश्चेति निशाप्रदोषौ ताभ्याम् ।

अर्थ—[विभाषा ठञ्] निशाप्रदोषाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां विभाषा ठञ् प्रत्ययो भवति ।

(निशा और प्रदोष शब्द से विकल्प करके ठञ् प्रत्यय होता है)

उदा०—निशार्यां प्रदोषे वा भव. नैशिकं प्रादोषिकम् । नैशम् । प्रादोषम् ।

श्वसस्तुट् च ४।३।१५

प० वि०—श्वसः ५।१ तुट् १।१ च अ० ।

अर्थ—[विभाषा ठञ्] श्व शब्दाद् विभाषा ठञ् प्रत्ययो भवति तुट् चागमः शेषे । (श्व शब्द से विकल्प से 'ठञ्' प्रत्यय होता है शेष में और प्रत्यय को तुट् आगम भी ।

उदा०—श्वो भवः शौचस्तिकः ।

सि०—श्वस् तुट् ठञ् । श्वस्तु ठ । श्वस्त इक । शौचस्त' इक । शौचस्तु इक । शौचस्तिकम् ।

प्रावृष एण्य. ४।३।१७

प० वि०—प्रावृष. ५।१ एण्यः १।१

अर्थ—प्रावृष शब्दादेण्यः प्रत्ययो भवति शैपिकम् । (प्रावृट् शब्द से एण्य प्रत्यय होता है शेष में)

उदा०—प्रावृषि भवः यलाहक इति प्रावृषेण्यो यलाहकः ।

सायचिरप्राह्णे प्रगेऽव्ययेभ्यट्युट्युलौ तुट् च ४।३।२३

प० वि०—सायचिरप्राह्णे प्रगेऽव्ययेभ्य. ५।३ ट्युट्युलौ १।२ तुट् १।१ च अ० ।

स०—सायञ्च चिरञ्च प्राह्णे च प्रगे च अत्र्यानि च इति सायचिरप्राह्णे प्रगेऽव्यानि तेभ्य । ट्युश्च ट्युञ्च इति ट्युट्युलौ ।

अर्थ—[कालात्] सायं चिरं प्राह्णे प्रगे इत्येतेभ्योऽव्ययेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्य. कालवाचिभ्यः ट्युट्युलौ प्रत्ययो भवतस्तयोस्तुट् चागमः शैपिकी। (सायम्, चिरम् प्राह्णे प्रगे तथा अव्यय इन कालवाची प्रातिपदिकों से शेष अर्थ में ट्यु और ट्युञ् प्रत्यय होते हैं और इन प्रत्ययों को तुट् का आगम होता है शेष अर्थ में)

उदा०—सायन्तनम् । चिरन्तनम् । प्राह्णेतनम् । प्रागेतनम् । दोषातनम् । दिवातनम् । प्राह्णप्रगयोरेदन्तस्यं निपात्यते ।

× चिरपरूपरादिभ्यस्तनो यत्तल्य. × चिरतनम् । परतनम् । परारितनम् ।

१—द्वारादीना च (७. ३. ४) इत्यनेन न वृद्धिरागमश्च

तत्र जात ४।३।२५

प० वि०—त्र अ० । जातः १।१

अर्थ—त्र इति सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् जात इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । (सप्तमीसमर्थं प्रातिपदिकं से उत्पन्न हुआ इस अर्थ में यथाविहित (अण्) प्रत्यय होता है) । यहा से आगे ४।३।५१ तक इसका अधिकार है ।

उदा०—स्रु घ्ने जातः । स्रौघ्नः । माथुरः । राष्ट्रं जातः । राष्ट्रिय ।

प्रावृषष्ठप् ४।३।२६

प० वि०—प्रावृष ५।१ ठर् १।१

अर्थ—प्रावृषण्डात् सप्तमीसमर्थात् जात इत्येतस्मिन्नर्थे ठप् प्रत्ययो भवति । (सप्तमीसमर्थं प्रावृष् षब्द से उत्पन्न हुआ इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—प्रावृषि जातः प्रावृषिकः ।

प्रायभव ४।३।३६

प० वि०—प्रायभवः १।१ स०—प्रायेण भवः प्रायभवः ।

अर्थ—[तत्र] सप्तमीसमर्थान् प्रातिपदिकात् प्रायभव इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । (सप्तमीसमर्थं प्रातिपदिकसे अधिकतर होने वाला इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—स्रु घ्ने प्रायेण बाहुल्येन भवति स्रौघ्नः ।

संभूते ४।३।४१

प० वि०—संभूते (क्रिया०)

अर्थ—[तत्र] सप्तमीसमर्थप्रातिपदिकात् संभूते इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । सप्तमीसमर्थं प्रातिपदिक से समब होता है इस अर्थ में यथा विहित प्रत्यय होता है)

उदा०—स्रु घ्ने संभवति स्रौघ्नः । माथुरः ।

तत्र भव. ४।३।५३

प० वि०—तत्र अ० । भवः १।१

अर्थ—तत्रेति सप्तमीसमर्थप्रातिपदिकात् भव इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । (सप्तमीसमर्थं प्रातिपदिक से होने वाला इस अर्थ

में यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—शालायां भव शालीयः । मालीयः । स्त्रीघ्नः । माधुरः ॥

दिगादिभ्यो यत् ४।३।५४

प० वि०—दिगादिभ्यः ५।३ यन् १।१ स०—त्रिकृच्छन्द आदिर्येषां
ते दिगादयः तेभ्यः ।

अर्थ—[तत्र भव] दिशावाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यस्तत्र भव इत्येत-
स्मिन्नर्थे यन् प्रत्ययो भवति । दिशावाची प्रातिपदिक स उसमें हान वाला
इस अर्थ में यन् प्रत्यय हाता है)

उदा०—दिश्यम् । वर्ग्यम् । पूज्यम् । गण्यम् ।

शरीरावयवाच्च ४।३।५५

प० वि०—शरीरावयवान् ५।१ च अ० । म०—शरीरस्य अवयव
शरीरावयव तस्मात् ।

अर्थ—[तत्र भव] शरीरावयवाचिनः प्रातिपदिकात् तत्र भव
इत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्यया भवति ।

(शरीर के अङ्ग को कहने वाले प्रातिपदिक स तत्र भव इस अर्थ में यन्
प्रत्यय हाता है)

उदा०—दन्तेषु भव, दन्त्यम् । कर्ण्यम् । ओष्ठ्यम् ।

जिह्वामूलाङ्गुलेश्च ४।३।६०

प० वि० जिह्वामूलाङ्गुले ५।१ छ १।१ स०—जिह्वामूलञ्च
अङ्गुलिश्चेति जिह्वामूलाङ्गुलि तस्मात् ।

अर्थ—[तत्र भव] जिह्वामूल अङ्गुलि इत्येताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां
छ प्रत्ययो भवति तत्र भव इत्येतस्मिन्नर्थे ।

(जिह्वामूल और अङ्गुलि शब्द स तत्र भव इस अर्थ में छ प्रत्यय होता है)

उदा०—जिह्वामूले भव जिह्वामूलीयम् । अङ्गुलीयम् ।

वर्गान्ताच्च ४।३।६३

प० वि०—वर्गान्तान् ५।१ च अ० । स०—वर्गशब्दोऽन्तो यस्येति
वर्गान्त तस्मात् ।

अर्थ—वर्गान्तात् प्रातिपदिकात् तत्र भव इत्येतस्मिन्नर्थे छ
प्रत्ययो भवति । (वर्ग शब्दात् प्रातिपदिक स उसमें हान वाला इस अर्थ में
छ प्रत्यय होना है)

उदा०—कवर्गे भवं कवर्गीयम् । तवगी यम् ।

सोऽस्य निवासः ४।३।८६

प० वि०—स. १।१ अस्य ६।१ निवासः १।१

अर्थ—प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् अस्य निवास इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहित प्रत्ययो भवति । (प्रथमासमर्थं प्रातिपदिकं से 'उसका निवास है' इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—स्र घ्नो निवासोऽस्येति स्रौघ्नः । माथुरः । राष्ट्रियः ।

तेन प्रोक्तम् ४।३।१०२

प० वि०—तेन ३।१ प्रोक्तम् १।१

अर्थ—तृतीयासमर्थं प्रातिपदिकात् प्रोक्तम् इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति ।

(तृतीयासमर्थं प्रातिपदिकं से प्रोक्तं अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—पाणिनीयम् । व्याकरणम् । पातञ्जलम् । पातञ्जलः ।

सि०—पाणिना प्रोक्तम् इति विग्रहः । पाणिनि छ^१ । पाणिन् ईय । पाणिनीय मु । पाणिनीय अम् । पाणिनीयम् । पातञ्जलिना प्रोक्तम् पातञ्जलं महाभाष्यम् । पातञ्जलमधीते वेद वेति पातञ्जलः । पातञ्जल अम् अण् । पातञ्जलः^२ ।

तस्येदम् ४।३।१२०

प० वि०—तस्य ६।१ इदम् १।१

अर्थ—पष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकात् इदमित्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । (पष्ठी समर्थं प्रातिपदिकं से 'यह है उसका' इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है)

विकारादिप्रकरणम्

तस्य विकारः ४।३।१३२

प० वि०—तस्य ६।१ विकारः १।१ ॥

अर्थ—पष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकात् विकार इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । (पष्ठी समर्थं प्रातिपदिकं से विकार अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—अश्मनो विनागः आश्मनः । आश्मः । अश्मनो विकार इति टिलोपः पाचिकः । मास्मनः । मार्तिकः ।

ऋणस्यप्रकरणे तस्येति पुनर्वचनं शेषाधिकारनिवृत्त्यर्थम् ।

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकायां चतुर्थाध्याये तृतीयः पादः ।

ठगाधिकारप्रकरणम्

प्राग्बहतेष्ठक् ४।४।१

प० वि०—प्राक् १।१ बहतेः १।१ ठक् १।१ ।

अर्थ—तद्बहति रथयुगप्रासङ्गम् इत्येतस्मात् प्राग् [नक्ष्यमाणेष्वर्थेषु ठक् प्रत्ययो भवति इत्यविकारो वेदितव्यः ।

(तद् बहति रथयुगप्रासङ्गम् इसके पहले-पहले कहे जाने वाले अर्थों में ठक् प्रत्यय होता है, इस बात का अधिकार ममङ्गना चाहिये)

तेन दीव्यति सनति जयति जितम् ४।४।२

प० वि०—तेन ३।१ दीव्यति क्रिया० । सनति क्रिया० । जयति क्रिया० । जितम् १।१

अर्थ—तेनेति तृतीयासमर्थ्यात् प्रातिपदिकात् दीव्यति सनति जयति जितम् इत्येतेषु अर्थेषु ठक् प्रत्ययो भवति । (तृतीया समर्थं प्रातिपदिकं ते दीव्यति, सनति, जयति और जितम् इन अर्थों में ठक् प्रत्यय होना है)

उदा०—अनैर्दीव्यति, आक्षिकः । शालाक्षिकः । वौदालिकः । अनैर्जयति जितम् वा आक्षिकम् । शालाक्षिकम् ।

मस्कृतम् ४।४।३

प० वि०—मस्कृतम् १।१

अर्थ—[तेन] तृतीयासमर्थप्रातिपदिकात् संस्कृतम् इत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । (तृतीयासमर्थं प्रातिपदिकं ते संस्कार क्रिया गवा इन अर्थों में यथाविहित (ठक्) प्रत्यय होता है)

उदा०—उध्ना संस्कृतम् दाक्षिकम् ।

तरति ४।४।५

प० वि०—तरति क्रिया० ।

अर्थ—[तेन] तृतीयासमर्थप्रातिपदिकात् तरति इत्येतस्मिन्नर्थे

यथाविहितं प्रत्ययो भवति । (तृतीया समर्थं प्रातिपदिक से तैरता है इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हाता है)

उदा०—काण्डप्लवेन तरति काण्डप्लविकः । औडुपिकः ।

गोपुच्छाट् ठक् ४।४।६

प० वि०—गोपुच्छात् ५।१ ठक् १।१

अर्थ—[तेन] तृतीयासमर्थाद् गोपुच्छशब्दात् तरति इत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति ।

(तृतीयासमर्थं गोपुच्छ शब्द स तैरता है, इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है)

उदा०—गोपुच्छेन तरतीति गोपुच्छिकः ।

नीद्व्यच्चण्डन् ४।४।७

प० वि०—नीद्व्यचः ५।१ ठन् १।१ नीश्च द्व्यच्चेति नीद्व्यच् तस्मात् ।

अर्थ—[तेन तरति] नीशब्दात् द्व्यच्चश्च प्रातिपदिकात् तरति इत्येतस्मिन्नर्थे ठन् प्रत्ययो भवति । (नी और दो प्रच् है जिसमें ऐसे प्रातिपदिक से तैरता है, इस अर्थ में ठन् प्रत्यय होता है)

उदा०—नागा तरति नाविकः । द्व्यच-पटेन तरति घटिकः । बाहुकः ।

चरति ४।४।८

प० वि०—चरति क्रिया० ।

अर्थ—[तेन] तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् चरति इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । (तृतीया समर्थं प्रातिपदिक से जाता है और जाता है इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—दध्ना चरति दाधिकः । हास्तिकः । शाकटिकः ।

निवृत्तेऽक्षत्तादिभ्य ४।४।९

प० वि०—निवृत्ते ७।१ अक्षत्तादिभ्यः ५।३ स० - अक्षत्तादि येषान्ते अक्षत्तादयः तेभ्यः ।

अर्थ—[तेन] अक्षत्तादिभ्य तृतीयासमर्थप्रातिपदिकेभ्यो निवृत्ते इत्यग्निन्नर्थे यथाविहित प्रत्ययो भवति । (अक्षत्ता इत्यादि तृतीया समर्थं प्रातिपदिकों से बनाया गया इन अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है)

क्त्रेर्मन्त्रित्यम् ४।४।२०

प० वि०—क्त्रे १।१ मप् १।१ नित्यम् १।१

अर्थ—[निर्वृत्ते] क्विप्रत्ययान्तान् प्रातिपदिकान् निर्वृत्तम् इत्ये-
तस्मिन्नर्थे नित्य मप् प्रत्ययो भवति ।

(क्वि प्रत्ययान्त प्रातिपदिक म वनाया गया इम अथ म निव हा मप
प्रत्यय हाता है) नित्य ग्रहण स क्वि प्रत्ययान्त क्वि प्रातिपदिक क प्रया का
अभाव दशाया है इसीलिए 'तन' की अनुवात्त हान हुए भी उमका मन्त्रित्य इस
सूत्र में नही लगता ।

उदा०—कर्मणा निर्वृत्तम् इति क्विप्रत्ययम् । पक्विप्रत्ययम् ।

व्यञ्जनैरुपसिक्तम् ४।४।२६

प० वि०—व्यञ्जनै ३।३ उपसिक्ते ७।१

अर्थ—[तेन] व्यञ्जनैरादिभ्य प्रातिपदिकेभ्यस्ततीयासमर्थेभ्य
उपसिक्ते इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहित प्रत्ययो भवति । (व्यञ्जनवाची तृतीया
समर्थ प्रातिपदिक स उपसिक्त इत अथ म यथाविहित (ठक्) प्रत्यय हाता है)

उदा०—एवमुपसिक्तम् श्रोत्रनम् इति दाधिकम् । सौपिकम् ।
स्वारिकम् ।

यदधिकारप्रकरणम्

प्रातिहताद्यत् ४।४।७५

प० वि०—प्राक् १।१ हितात् १।१ यत् १।१

अर्थ—इतोऽप्ये तस्मै हितम् इत्येतस्मात् प्राक् वक्ष्यमाणेषु अर्थेषु
यत् प्रत्ययो भवति इत्यधिकारो यद्विद्वय । (तस्मै हितम् इस सूत्र क पहले
पहले कह ज न बाल अर्थों म यत् प्रत्यय हाता है इस वात का अधिकार
समस्त चाहिये)

तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् ४।४।७६

प० वि०—तत् २।१ वहति क्रिया० । रथयुगप्रासङ्गम् २।१ म०—
रथश्च युगश्च प्रासङ्गश्चेति रथयुगप्रासङ्गम् ।

अर्थ—तद् इति द्वितीयासमर्थान् रथयुगप्रासङ्गप्रातिपदिकान्
वहति इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहित (यत्) प्रत्ययो भवति ।

(द्वितीयासमर्थ रथ युग शोर प्रासङ्ग प्रातिपदिक स हाता है इस अथ में

परिपदो ण्य. ४।४।१०१

प० वि०—परिपदः ५।१ एयः १।१

अर्थ—[तत्र साधुः] परिपच्छब्दात् सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् साधु इत्येतस्मिन्नर्थे एयः प्रत्ययो भवति । (परिपद शब्द सप्तमी समर्थं प्रातिपदिक से चतुर इम अर्थ में ण्य प्रत्यय होता है)

सि०—परिपदि साधुः पारिपद्य. ॥

सभाया य ४।४।१०५

प० वि०—सभायाः ५।१ यः १।१

अर्थ—[तत्र साधुः] सभाशब्दात् प्रातिपदिकात् तत्र साधु इत्येतस्मिन्नर्थे यः प्रत्ययो भवति । (सभा शब्द से तत्र साधु इस अर्थ में य प्रत्यय होता है)

उदा०—सभायां साधुः सम्य ॥

समानतीर्थे वासी ४।४।११७

प० वि०—समानतीर्थे ७।१ समानश्चासी तीर्थश्चेति समानतीर्थः तस्मिन् । वसतीति वासी प्रहादित्वाणिनिः ॥

अर्थ—[तत्र] समानतीर्थशब्दात् सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् वासी इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् प्रत्ययो भवति । (समानतीर्थं सप्तमी समर्थं प्रातिपदिक से वासी इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—सतीर्थ्य ।

सि०—समाने तीर्थे गुरो वसतीति विग्रहः । समानतीर्थं ङि यत् । समानतीर्थं य । सतीर्थ्यं य । सतीर्थ्यं मु । सतीर्थ्यः ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणज्ञमहावैयाकरणपण्डितब्रह्मदत्ता-

चार्याणामन्तेवासिना देवप्रकाशपातञ्जलेन विर-

चितायामष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया

चतुर्थाध्याये चतुर्थं पादः

इति चतुर्थोऽध्यायः

यथाविहित (यत्) प्रत्यय होता है)

उदा०—रथ युग प्रासङ्गम् वा वहति इति रथ्य युग्य प्रासङ्ग्य गौ ।

शकटादण् ४।४।८०

प० वि०—शकटात् ५।१ अण् ८।१

अर्थ—[तद्बहति] शकटात् प्रातिपदिकात् द्वितीयासमर्थात् वहतीत्येतस्मिन्नर्थे अण् प्रत्ययो भवति । (शकट प्रातिपदिक से ढोन अथ में अण् प्रत्यय होता है)

उदा०—शकट वहति इति शाकटो गौ ॥

हलसीराट्ठक् ४।४।८१

प० वि०—हलसीरात् ५।१ ठक् १।१ स०—हल च सीर च इति हलसीरम् तस्मात्

अर्थ—[तद्बहति] हलसीरशब्दाभ्यां द्वितीयसमर्थप्रातिपदिकाभ्यां वहतीत्येतस्मिन्नर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । (हल और सीर द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से होता है इस अथ में ठक प्रत्यय होता है)

उदा०—हल सीर वा वहति इति हालिक सैरिको गौ

तत्र साधु ४।४।८८

प० वि०—तत्र अ० । साधु १।१

अर्थ—सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् साधु इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहित (यन्) प्रत्ययो भवति । (सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से 'चतुर है इस अथ में यथाविहित (यत्) प्रत्यय हाता है)

उदा०—सामसु साधु सामन्य । कर्मणि साधु कर्मण्य ।

सि—सामन् यत् । सामन्* य । सामन्य ।

भक्तादण् ४।४।१००

प० वि०—भक्तात् ५।१ अण् १।१॥

अर्थ—[तत्र साधु] भक्तशब्दात् सप्तमीसमर्थप्रातिपदिकात् साधु इत्येतस्मिन्नर्थे अण् प्रत्ययो भवति । (भक्त शब्द से अच्छा अथ में अण् प्रत्यय होता है)

उदा०—भक्ते साधु, भक्त शालि । भक्तास्तण्डुला ॥

१—ये चाभावकमलो (६ ४ १६८)

परिपदो ण्यः ४।४।१०१

प० वि०—परिपदः ५।१ एचः १।१

अर्थ—[तत्र साधुः] परिपदञ्चञ्चात् सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकात् साधु इत्येतस्मिन्नर्थे एचः प्रत्ययो भवति । (परिपद इत्यस्य सप्तमी समर्थं प्रातिपदिकं से चतुर इत्यस्य अर्थं मे एच प्रत्यय होता है)

सि०—परिपदि साधुः पारिपद्यः ॥

सभाया यः ४।४।१०५

प० वि०—सभायाः ५।१ यः १।१

अर्थ—[तत्र साधुः] समाशञ्चात् प्रातिपदिकात् तत्र साधु इत्येतस्मिन्नर्थे यः प्रत्ययो भवति । (सभा इत्यस्य से तत्र साधु इत्यस्य अर्थं मे य प्रत्यय होता है)

उदा०—सभायां साधुः सन्त्यः ॥

समानतीर्थे वासी ४।४।११७

प० वि०—समानतीर्थे ७।१ समानश्चासी तीर्थश्चेति समानतीर्थः तस्मिन् । वसतीति वासी प्रहादित्वाणिनिः ॥

अर्थ—[तत्र] समानतीर्थशञ्चात् सप्तमीसमर्थात् प्रातिपदिकान् वामी इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं यन् प्रत्ययो भवति । (समानतीर्थं सप्तमी समर्थं प्रातिपदिकं मे वासी इत्यस्य अर्थं मे यथाविहितं प्रत्यय होता है)

उदा०—सतीर्थ्यः ।

सि०—समाने तीर्थे गुरो वसतीति विग्रहः । समानतीर्थं हि यन् । समानतीर्थं य । सतीर्थ्यं य । सतीर्थ्यं मु । सतीर्थ्यः ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमहावैयाकरणपण्डितब्रह्मदत्ता-

चार्याणामन्तेवासिना देवप्रकाशपातञ्जलेन विर-

चितायामष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया

चतुर्थाध्याये चतुर्थः पादः

इति चतुर्थोऽध्यायः

प्राक् क्रीताच्छः ५।१।१

प० वि०—प्राक् १।१ क्रीतात् ५।१ छः १।१

अर्थ—इतोऽप्रे तेन क्रीतम् इत्येतस्मात् प्राक् वक्ष्यमाणेषु अर्थेषु छः प्रत्ययो भवति इत्यधिकारो वेदितव्यः । (यहा से तेन क्रीतम् इस सूत्र के पहले पहले कहे जाने वाले अर्थों में छ प्रत्यय होता है, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

उगवादिभ्यो यत् ५।१।२

प० वि०—उगवादिभ्यः ५।२ यत् १।१ स०—उश्च गवादयश्चेति तेभ्यः । गौरादियेषान्ते गवादयः ।

अर्थ—उवर्णान्तात् प्रातिपदिकाद् गवादिभ्यश्च प्राक्क्रीतीयेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति । (उवर्णान्त और गो इत्यादि प्रातिपदिक से क्रीत के पहले पहले अर्थों में यत् प्रत्यय होता है)

उदा०—उवर्णान्तात्—शङ्खे हितम् शङ्ख्यं दारु । विचव्यः कार्पासः । कमण्डलव्य दारु ।

सि०—शङ्खु डे यत् । शङ्खो^१ य । शङ्ख्व^२ य । शङ्ख्य सु । शङ्ख्य अम् । शङ्ख्यम् ॥

तस्मै हितम् ५।१।५

प० वि०—तस्मै ४।१ हितम् १।१

अर्थ—चतुर्थीसमर्थात् प्रातिपदिकात् हितम् इत्येतस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । (चतुर्थी समर्थ प्रातिपदिक से हित इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—वत्सेभ्यो हितम् गोधुक् इति वत्सीय. गोधुक्

शरीरावयवाद् यत् ५।१।६

प० वि०—शरीरावयवात् ५।१ यत् १।१ स० शरीरस्य अवयवः शरीरावयवः तस्मात् ।

अर्थ—[तस्मै हितम्] शरीरस्य अवयववाचिनः प्रातिपदिकात् तस्मै हितम् इत्येतस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति । (शरीर के अवयववाची प्रातिपदिक से तस्मै हितम् इस अर्थ में यत् प्रत्यय होता है)

१—यच्च भम् (१ ४. १८) भस्य (६ ४ १२६) ओष्ठुण. (६. ४. १४६) २—वान्तो वि प्रत्यये (६. १. ७६)

उदा०—दन्तेभ्यो हितम् दन्त्य चूर्णम् । कण्ठ्यम् । ओष्ठ्यम् ।
नाभ्यम् । नस्यम् ।

प्राग्वतेष्ठज् ५।१।१८

प० वि०—प्राक् १।१ वते. १।१ ठञ् १।१

अर्थ—इतोऽप्ये तेन तुल्य क्रिया चेद्वति इत्येतस्मात् प्राक् वक्ष्यमा-
रोषु अर्थेषु ठञ् प्रत्ययो भवति इत्याधिनारो वेदितव्य. । (यहा स तेन तुल्य
क्रिया चेद्वति इत मूत्र के पहले पहल कह जाने वाले अर्थों में ठज प्रत्यय
होता है इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

आर्हादिगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट्ठक् ५।१।१९

प० वि०—आ अ० । आर्हांत् १।१ अगोपुच्छसंख्यापरिमाणात् १।१
ठक् १।१ स०—गोपुच्छं च संख्या च परिमाणं चेति गोपुच्छसंख्यापरि-
माणम् । न गोपुच्छसंख्यापरिमाणम् इति अगोपुच्छसंख्यापरिमाणम्
तस्मात् ।

अर्थ—तद्वहति इत्येतस्मात् प्राक् वक्ष्यमारोषु अर्थेषु ठक् प्रत्ययो
भवति गोपुच्छादीन् वर्जयित्वा । तद्वहति इम मूत्र तक कहे जाने वाले
अर्थों में ठक् प्रत्यय होता है गोपुच्छादि शब्दों का छोड़कर इम बात का
अधिकार समझना चाहिये)

शताच्च ठन्यतावगतं ५।१।२१

प० वि०—शतात् १।१ च अ० । ठन्यती १।२ अशते ७।१ स०—
ठन् च यच्च इति ठन्यती । न शतम् अशत तस्मिन् ।

अर्थ—[आर्हांत्] शतशब्दात् आर्होप्यर्थेषु ठन्यती प्रत्ययो भवतः
अशतेऽभिधेये । (शत शब्द से आर्हाय अर्थों में ठन् और यत् प्रत्यय होने हैं शत
अभिधेय होने पर नहीं ।

उदा०—शतेन क्रीत शत्यम् । शतिकम् ।

सरुषाया अतिशदन्तायाः कन् ५।१।२२

प० वि०—सरुषायाः १।१ अतिशदन्तायाः १।१ कन् १।१ स०—तिश्च
शच्च इति तिशती । अन्तश्च अन्तश्च इति अन्ती । तिशती अन्ती
यस्याः सरुषाया इति तिशदन्ता । न तिशदन्ता इति अतिशन्ता तस्याः
अतिशदन्तायाः ।

अर्थ—[आहान्] संख्यावाचिनः प्रातिपदिकात् आर्हाप्यर्थेषु कन् प्रत्ययो भवति त्यन्तां शब्दन्तां च संख्यां वर्जयित्वा । (गम्यावाची प्रातिपदिन से आर्हाप्य धर्मो मे कन् प्रत्यय होता है त्यन्त प्रौर शब्दत सख्या को छोड़कर)

उदा०—पञ्चभिः क्रीतः पञ्चकः । षट्कः । गणकः ।

तेन क्रीतम् ५।१।३७

५० वि०—तेन ३।१ क्रीतम् १।१

अर्थ—तेनेति तृतीयाममर्थप्रातिपदिकान् क्रीतम् इत्येतिमन्त्रर्थो यथाविहितः प्रत्ययो भवति (तृतीया ममर्थं प्रातिपदिन से मरीदा गया इन धर्म मे यथाविहित प्रत्यय होता है)

उदा०—भक्षारया क्रीतम् माप्ततिकम् । आशीतिकम् ।

सि०—सप्तति टा ठप् । सप्तति इक । माप्तत् इक । माप्ततिक मु । माप्तनिक अय । माप्ततिकम् ।

इत्येतस्मिन्नर्थे यः प्रत्ययो भवति । (दण्ड इत्यादि द्वितीया समर्थं प्रातिपदिकं से योग्य होता है इन अर्थ में य प्रत्यय होता है)

उदा०—दण्डमर्हतीति दण्ड्यः ॥

तेन तुल्य क्रिया चेद्वति ५।१।११५

प० वि०—तेन ३।१ तुल्यम् १।१ क्रिया १।१ चेत् अ० । वतिः १।१

अर्थ—तृतीयासमर्थान् प्रातिपदिकान् तुल्य क्रिया चेद् इत्येतस्मिन्नर्थे वतिः प्रत्ययो भवति । (तृतीया समर्थं प्रातिपदिकं से 'समान क्रिया यदि हो' इन अर्थ में वति प्रत्यय होता है)

उदा०—ब्राह्मणेन तुल्य क्रिया चेत् ब्राह्मणवत् । ग्यानिना तुल्यं क्रिया चेत् स्थानिवत् ॥

तत्र तस्येव ५।१।११६

प० वि०—तत्र अ० । तस्य ६।१ इव अ० ।

अर्थ—सप्तमीसमर्थान् प्रातिपदिकान् षष्ठीसमर्थान् प्रातिपदिकाद् वा इवार्थे वतिः प्रत्ययो भवति । (सप्तमी वा षष्ठी समर्थं प्रातिपदिकं से समान अर्थ में वति प्रत्यय होता है)

उदा०—मधुरायामिव मधुरावत् स्रुद्धे प्राकारः । देवदत्तस्य इव देवदत्तवत् ॥

तस्य भावस्त्वतलो ५।१।११६

प० वि०—तस्य ६।१ भावः १।१ त्वतलो १।२ स०—त्वश्च तलु चेति त्वतलो ।

अर्थ—षष्ठीसमर्थप्रातिपदिकाद् भाव इत्येतस्मिन्नर्थे त्वतलो प्रत्ययो भवतः । (षष्ठी समर्थं प्रातिपदिकं से भाव अर्थ में त्व और तलु प्रत्यय हाते हैं)

उदा०—ऋप्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भावः गोर्भावो गोत्वम् गाता ॥ मनुष्यस्य भावः मनुष्यवम् । मनुष्यता ॥

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया पञ्चमाध्याये प्रथमः पाठः

तदस्य सजातः तारकादिभ्यः इतच् ५।२।३६

प० वि०—तन् १।१ अस्य ६।१ संजातः १।१ तारकादिभ्यः ५।३ इतच् १।१ स०—तारकः आदिर्येपान्ते तारकादयः तैभ्यः ।

अर्थ—प्रथमासमर्थेभ्य तारकादिभ्य प्रातिपदिकेभ्य अस्येति पठ्यथे इत्च् प्रत्ययो भवति, यत्तन् प्रथमासमर्थं सञ्जातश्चेत् तद्भवति । (प्रथमा समर्थं तारकादि प्रातिपदिको स इस का' इस अथ मे इत्च् प्रत्यय होता है यदि प्रथमा समर्थ सजात (हुआ) अथ वो कहता हो)

उदा०—तारका सञ्जाता अस्य नभस्तारकित नभ । पुष्पितो वृक्ष । पण्डित पुरुष ॥

प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच ५।१।३१

प० वि०—प्रमाणे ७।१ द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच १।३ स०—द्वयसच्च दघ्नच्च मात्रच्चेति द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच

अर्थ—[तस्य] प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिवाद् अस्य प्रमाणम् इत्येतस्मिन्नर्थे द्वयसच् दघ्नच् मात्रच् इत्येते प्रत्यया भवति ।

(प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक स इसका प्रमाण है' इस अथ में द्वयसच् दघ्नच् और मात्रच प्रत्यय होते हैं)

उदा०—ऊरु प्रमाणम् अस्येति ऊरुद्वयसम् । ऊरुदघ्नम् । ऊरुमात्रम् । जानुद्वयसम् । जानुदघ्नम् । जानुमात्रम् ।

पुरुपहस्तिभ्याम् अण् च ५।२।३८

प० वि०—पुरुपहस्तिभ्याम् ५।२ अण् १।१ च अ० । स०—पुरुपश्च हस्ती च पुरुपहस्तिनौ ताभ्याम् ।

अर्थ—[प्रमाणे तदस्य] प्रथमासमर्थाभ्याम् पुरुपहस्तिशब्दाभ्या प्रातिपदिवाभ्याम् अस्य प्रमाणम् इत्येतस्मिन्नर्थे अण् प्रत्ययो भवति चकाराद् द्वयसच् दघ्नच् मात्रच् इत्येते प्रत्यया भवन्ति ।

(प्रथमा समर्थं पुरुप और हस्तिन् प्रातिपदिक से 'इसका प्रमाण है' इस अर्थ में अण् और चकार से द्वयसच् दघ्नच् और मात्रच प्रत्यय होते हैं)

उदा०—पुरुपो हस्ती वा प्रमाणम् अस्य उदकस्य इति पौरुष उदकम् । पुरुपद्वयसम् । पुरुपदघ्नम् । पुरुपमात्रम् । हास्तिनम् । हस्तिद्वयसम् । हस्तिदघ्नम् । हस्तिमात्रम् ॥

यत्तदेतेभ्य परिमाणे वतुप् ५।२।३९

प० वि०—यत्तदेतेभ्य ५।३ परिमाणे ७।१ वतुप् १।१ स०—यच्च तच्च एतच्चेति यत्तदेते तेभ्य

अर्थ—[तदस्य] यत्तदेतेभ्य प्रथमासमर्थेभ्य अस्य परिमाणम्

इत्येतस्मिन्नर्थे घतुप् प्रत्ययो भवति । (यद् तद् घौर एतद् प्रथमा समं प्रातिपदिक से इसका परिमाण है इस अर्थ में वतुप् प्रत्यय होता है)

उदा०—यन् परिमाणमस्येति यावान् । तावान् । एतावान् ।

सि०—यत् सु वतुप् । यत् वत् । य आ^१ वत् । यावत्^२ । यावन् सु । यावान् सु । यावानुम्^३ सु । यावान्त् सु । यावान्त् स् । यावान्त् । यावान् । यावन्तौ । यावन्तः । यावन्तम् । यावन्तौ । यावतः । यावता । यावद्भ्याम्^४ । यावद्भिः ॥

किमिदंभ्यां वो घः ५।२।४०

प० वि०—किमिदंभ्याम् ५।२ वः ६।२ घः १।२ स०—किम् च इदम् च इति किमिदमौ ताभ्याम् ।

अर्थ—[तदस्य परिमाणे वतुप्] किम्-इदंभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्य परिमाणम् इत्येतस्मिन्नर्थे वतुप् प्रत्ययो भवति तस्य वतुपो वकारस्य च स्थाने घ इत्ययमादेशो भवति ।

(किम् घौर इदम् प्रातिपदिक से इसका परिमाण है इस अर्थ में वतुप् प्रत्यय होता है घौर वतुप् के वकार के स्थान में घ यह प्रादेश हो जाता है)

उदा०—कियान् । कियन्तौ । कियन्तः । कियन्तम् । कियन्तौ । कियतः । कियता । कियद्भ्याम् कियद्भिः । इदम्-दयान् । इयन्तौ । इयन्तः । इयन्तम् । इयन्तौ । इयतः । इयता । इयद्भ्याम् । इयद्भिः ।

सि०—किम् सु वतुप् । किम् घतुप् । किम् घत् । किम् इय् अन् । किम् इयत् । की इयत् । क् इयत् । कियत् । कियत् सु । कियान् स् । कियान्त् स् । कियान्त् । कियान् ।

इदम् । इदम् वतुप् । इदम् वत् । इदम् घत् । इश्^१ घत् । इ इय् अन् । इ इयत् । इयत् सु । इयात् स् । इया नुम त् स् । इयान्त् स् । इयान्त् । इयान् । इयन्तौ । इयन्तः ॥

१—आ सर्वनाम्नः (६. ३. ६१) अलोऽन्वयस्य (१. १. ५१) २—घकः सवर्णे दीर्घः (६. १. ६७) ३—उगिदचा सर्वनामस्थानेऽधतोः (७. १. ७०) मिदचोऽन्वयात्परः (१. १. ४६) ४—स्वादिष्वसर्वनामस्थाने (१. ४. १७) ऋता जसोऽष्टे (८. १. ३६) ५—इदद्भिःमोरीदकी (६. ३. ६०) घनेकालि-त्सर्वस्य (१. १. ५४)

किमः संख्यापरिमाणे ङिति च ५।२।४१

प० वि०—किमः ५।१ संख्यापरिमाणे ७।१ ङिति १।१ च अ० ।
स०—संख्यायाः परिमाणम् संख्यापरिमाणम् तस्मिन् ।

अर्थ—[तदस्य वतुप् वो घः] किंशब्दान् प्रातिपदिकात् प्रथमासम-
र्थात् अस्य संख्यापरिमाणम् इत्येतस्मिन्नर्थे ङिति प्रत्ययो भवति चका-
रात् वतुप् प्रत्ययोऽपि भवति, तस्य च वकारस्य स्थाने घकारादेशो
भवति । (किम् प्रथमा समर्थं प्रातिपदिक से “इसका संख्यापरिमाण” इस अर्थ
में ङिति प्रत्यय होता है और चकार से वतुप् प्रत्यय भी और उस वतुप् के वकार
के स्थान में घकार आदेश हो जाता है)

उदा०—का संख्या परिमाणम् एपां ब्राह्मणानाम् इति कति कियन्तो
वा ब्राह्मणाः ॥

सि०—कति । किम् ङिति । किम् अति । क् अति । कति । कति
जस् । कति^२ ॥

संख्याया अवयवे तयप् ५।२।४२

प० वि०—संख्यायाः ५।१ अवयवे ७।१ तयप् १ । १ ॥

अर्थ—[तदस्य] तद् इति प्रथमासमर्थात् संख्यावाचिप्रातिपदिकाद्
अस्य अवयव इत्येतस्मिन्नर्थे तयप् प्रत्ययो भवति । (प्रथमा समर्थं संख्या-
वाची प्रातिपदिक से इसका अवयव (भाग) है, इस अर्थ में तयप् प्रत्यय होता है)

उदा०—पञ्च अवयवाः अस्य इति पञ्चतयम् । पञ्चतयी । दश-
तयम् । दशतयी । चतुष्टयम् । चतुष्टयी ।

सि०—पञ्चन् तयप् । पञ्चतय सु । पञ्चतय अम् । पञ्चतयम् ।
पञ्चतयी । पञ्चतय डीप् । पञ्चतय् २ । पञ्चतयी सु । पञ्चतयी ॥

द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ५।२।४३

प० वि०—द्वित्रिभ्याम् ५।२ तयस्य ६।१ अयच् १।१ वा अ० ।

स०—द्वी य त्रयश्चेति द्वित्री ताभ्याम् । ऋ शब्दप्रधानोऽयं-
निर्देशः, नत्वर्थ प्रधानम् अतएव सूत्रे द्विवचनं क्रियते ।

अर्थ—द्वित्रिभ्यां परस्य तयस्य स्थाने अयच् इत्ययमादेशो भवति वा ।

(द्वि और त्रि शब्द के पदवात् तयर् के स्थान में विकल्प से अयच् आदेश

१—टः (६. ४. १४३) २—बहुगणवतुङिति मंथ्या (१. १ २२) पदभ्यो
सुर् (७. १. २२)

होता है)

उदा०—द्वौ अवयवौ अन्येति द्वयम् द्वितयम् । त्रयोऽवयवा अन्येति त्रयम् । त्रितयम् ।

संख्याया गुणस्य निमाने मयट् ५।२।४७

प० वि०—संख्यायाः ५।१ गुणस्य ६।१ निमाने ७।१ मयट् १।१

अर्थ—[तदस्य] गुणो भागः इत्यनर्थान्तरम् । निमानं मूल्यम् इत्यनर्थान्तरम् । तद् इति प्रथमासमर्थान् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकान् अस्य गुणस्य भागस्य वा निमानम् मूल्यम् वा इत्येतस्मिन्नर्थे मयट् प्रत्ययो भवति । (प्रथमासमर्थं संख्यावाची प्रातिपदिक से “दस भाग वा यह मूल्य है” इस अर्थ में मयट् प्रत्यय होता है)

उदा०—यवानां द्वौ भागौ निमानमस्य उदशिवद्भागस्य द्विमयम् उदशिवद् यवानाम् । त्रिमयम् । चतुमेयम् ।

तस्य पूरणे षट् ५।२।४८

प० वि०—तस्य ६।१ पूरणे ७।१ षट् १।१

अर्थ—[संख्यायाः] पूर्यतेऽनेन इति पूरणम् । तस्येति पठ्ठीसमर्थान् संख्यावाचिप्रातिपदिकान् पूरण इत्येतस्मिन्नर्थे षट् प्रत्ययो भवति । (पठ्ठीसमर्थं संख्यावाची प्रातिपदिक से पूरण अर्थ में षट् प्रत्यय होता है)

उदा०—एकादशानां पूरणे, एकादशः । द्वादशः । त्रयोदशः ।

सि०—एकादश षट् । एकादश अ । एकादश सु । एकादशः ।

नान्तादसंख्यादेर्मट् ५।२।४९

प० वि०—नान्तान् ५।१ असंख्यादेः ७।१ मयट् १।१ स०—नः अन्तो यस्य इति नान्तः तस्मान् । मर्यादा आदिर्यस्य इति संख्यादिः न संख्यादिः असंख्यादिः तस्मात् ।

अर्थ—[संख्यायाः पूरणे] असंख्यादेर्नान्तान् प्रातिपदिकान् संख्यावाचिनः षटो मडागमो भवति पूरणेऽर्थे ।

(संख्यावाची षट् प्रादि में नहीं है जिस के ऐसे नकारान्त संख्यावाची प्रातिपदिक से पूरण अर्थ में षट् को मट् का प्रागम होता है)

उदा०—पञ्चानां पूरणं पञ्चमः । सप्तमः ।

सि०—पञ्चन् आम् मट् डट् । पञ्च म अ । पञ्चम सु । पञ्चम

पट्कतिकतिपयचतुरा थुक् ५।२।५१

प० वि०—पट्कतिकतिपयचतुराम् ६।३ थुक् १।१

अर्थ—[तस्य पूरणे डट्] पट् कति ऋपिपय चतुर् इत्येतेषा डटि परतरथुगागमो भवति तस्य पूरणे इत्येतस्मिन्नर्थे ।

ॐ अत्रेदं ज्ञातव्यम् पष्ठीनिर्देशान् पढादीनामागमित्य स्पष्टम् इति तदनुकूत्येनानुयत्तो डट् सप्तम्या विपरिणम्यते ॐ

(पट कति, कतिपय और चतुर शब्द को डट के परे रहन पर थुक् का आगम होता है)

उदा०—पण्णा पूरणो पष्ठ । कतिथ । कतिपयथ । चतुर्थ ।

Xचतुरस्रद्यतावाद्यक्षरलोपश्चX चतुर्णां पूरण, तुरीय । तुर्य ।

सि०—पष्ठ । पप् आम् डट । पप् थुक् अ । पप् थ् अ । पप् ठ् । अ । पष्ठ सु । पष्ठ ।

तुरीय । चतुर् आम् छ । तुर छ । तुर् ईय । तुरीय सु । तुरीय । चतुर् यर् । तुर्य^२ ।

द्वेस्तीय ५।२।५४

प० वि०—द्वे ५।१ तीय १।१

अर्थ—[तस्य पूरणे] द्विशब्दात् तीय प्रत्ययो भवति तस्य पूरणे इत्येतस्मिन्नर्थे (द्वि शब्द से उसकी पूर्ति इस अर्थ में तीय प्रत्यय होता है)

उदा०—द्वयो पूरणो द्वितीय ।

त्रे सम्प्रसारणञ्च ५।२।५५

प० वि०—त्रे ५।१ सम्प्रसारणम् १।१ च अ० ।

अर्थ—[तीय] त्रिशब्दात् तस्य पूरणे इत्येतस्मिन्नर्थे तीय प्रत्ययो भवति तत्सन्नियोगेन त्रे सम्प्रसारण च भवति ।

(त्रि शब्द से उसकी पूर्ति इस अर्थ में तीय प्रत्यय होता है और उसने कथेन च त्रि को सम्प्रसारण भी हो जाता है)

उदा०—त्रयाणां पूरण तृतीय ।

१—पुना प्ठु (न ४. ४०) २—चतुरस्रद्यतावाद्यक्षरलोपश्च (५ २ ५१ वा०)

तदस्यास्त्वस्मिन्निति मत्तुप् ५।२।६४

प० वि०—तत् १।१ अस्य ६।१ अन्ति क्रिया० । अस्मिन् ७।१ इति अ० । मत्तुप् १।१

अर्थ—तदिति प्रथमासमर्थान् प्रातिपदिकात् अन्य अस्मिन् वा अस्ति इत्येतस्मिन्नर्थे मत्तुप् प्रत्ययो भवति । (प्रथमासमर्थं प्रातिपदिकं से 'इसका है' वा 'इंमें है' इन अर्थों में मत्तुप् प्रत्यय होता है)

उदा०—गावोऽस्य सन्ति इति गोमान् देवदत्तः । वृक्षाः अस्मिन् पर्वते सन्ति इति वृक्षान् पर्वतः ।

सि०—वृक्ष जस् मत्तुप् । वृक्ष वन्^१ म् । वृक्षन्त्^२ मु । वृक्षवान्^३ म् । वृक्षवान्^३ स् । वृक्षवान् । वृक्षवान् । वृक्षवन्ती । वृक्षवन्तः । वृक्षवन्तम् । वृक्षवन्ती । वृक्षवतः ।

अत इनिठनौ ५।२।११५

प० वि०—अतः ५।१ इनिठनौ १।२ स०—इनिश्च ठन् च इति इनिठनौ ।

अर्थ—[अन्यतरस्याम् तदस्यास्त्वस्मिन्निति] प्रथमासमर्थान् अकारान्तात् प्रातिपदिकान् अन्य अस्ति अस्मिन् वा इत्यर्थे इनिठनौ प्रत्ययो भवतः अन्यतरस्याम् पक्षे मत्तुप् च ।

(प्रथमासमर्थं अकारान्तं प्रातिपदिकं से 'उसका या इसमें है' इन अर्थों में विवक्ष्य से इनि घोर ट् प्रत्यय होने हैं)

उदा०—गुणा सन्ति अस्य अस्मिन् वा इति गुणी । गुणिकः । गुणवान् । छत्री । छत्रिकः । छत्रवान् । दरडी । दरिद्रकः । दण्डवान् ।

सि०—गुण इनि । गुण इन् । गुण् इन् । गुणिन् । गुणिन् मु । गुणीन्^३ म् । गुणीन् । गुणी^४ । गुणिनी । गुणितः । गुणितम् । गुणिनी । गुणितः । गुणिना । गुणिभ्याम् । गुणिभिः ।

अस्मायामेधाम्रजो विनिः ५।२।१२१

प० वि०—अस्मायामेधाम्रजः ५।१ विनिः १।१ स०—अम् च माया च मेधा च न्नृ च इति अस्मायामेधाम्रज् तस्मान् ।

१—मादुपधायाश्च मनोर्वोश्चवादिभ्यः (८. २. ६) २—गुडनतु मत्वस्य (१. १. ४२) उगिदधा गर्वनामस्यानेऽपानोः (७. १. ७०) ३—नो च (६. ४. १४) ४—नलोः प्रातिपदिकान्तस्य (८. २. ७)

अर्थ—[अन्यतरस्याम् तदस्यास्त्यस्मिन्निति] प्रथमासमर्थात् असन्तान् माया मेवा स्त्रक् इति एतेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्य अस्य अस्ति अस्मिन् वा इत्यर्थे विनि प्रत्ययो भवति अन्यतरस्याम् । (असन्त, माया, मेवा और स्त्रक् शब्द से मत्वर्थ में विनि प्रत्यय होता है)

उदा०—यश अस्ति अस्य अस्मिन्निति चेति यशस्वी । यशस्वान् । मायावी । मायावान् । मेधावी । मेधावान् । स्त्रग्वी ।

सि०—यशस्वी । यशस् सु विन् । यशस्वी । यशस्विनौ । यशस्विन । यशस् मतुप् । यशस् मत् । यशस्वत् । यशस्वत् सु । यशस्वात् स् । यशस्वान् । यशस्वान् । यशस्वन्तौ । यशस्वन्त ।

अर्श आदिभ्योऽच् ५।२।१२७

प० वि०—अर्शआदिभ्य ५।३ अच् १।१ स०—अर्श आदि येषान्ते अर्शादय तेभ्य ।

अर्थ—[तदस्यास्त्यस्मिन्निति] प्रथमान्तेभ्य अर्शस् इत्येवमादिभ्य प्रातिपदिकेभ्योऽस्यास्त्यस्मिन् वा इत्यर्थे अच् प्रत्ययो भवति । (प्रथमासमर्थं अर्शस इत्यादि शब्दो से 'इसका वा इसमें है' इस अर्थ में अच् प्रत्यय होता है)

उदा०—अर्शासि अस्य विद्यन्ते इति अर्शास । आकृतिगणोऽयम् । तेन । पापमस्य अस्मिन् वा विद्यते इति पाप पुरुष । आम्नासि सन्ति अस्य वृक्षस्येति आम्नो वृक्ष ।

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया पञ्चमाध्याय द्वितीय पाद

— — —

प्राग्दिशीयप्रत्ययप्रकरणम्

प्राग्दिशो विभक्ति ५।३।१

प० वि०—प्राक् १।१ दिश ५।१ विभक्ति १।१

अर्थ—इतोऽप्रे दिक्शब्देभ्य सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशानाले-
प्यस्ताति इत्येतस्मात् प्राक् चक्ष्यमाणा प्रत्यया विभक्तिसज्ञा भवन्ति
इत्यधिकारो वेदितव्यः । (यहाँ से दिक्शब्देभ्य इससे पहले पहल कहे जाने
वाले प्रत्ययों की विभक्ति सज्ञा होती है, इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

ॐ अत्रेदं ज्ञातव्यम् समर्थानामिति प्रथमादिति च निवृत्तम् चेति
त्यनुवृत्तं प्य ॥३३

किसर्वनामबहुभ्योऽद्वयादिभ्य ५।३।२

किसर्वनामबहुभ्य ५।३ अद्वयादिभ्य ५।३ किञ्च सर्वनाम च बहुश्चेति किसर्वनामबहुभ्य तेभ्य । द्वि आद्विर्घेपान्ते द्वाद्यः । न द्वाद्य अद्वयाद्य तेभ्य ।

अर्थ—[प्राग्निश] दिग्शादेभ्य इति यावन् वक्ष्यमाणा प्रत्यया किम् सर्वनाम्न बहुशादाच्च द्वायादिभ्यो वर्जितेभ्य भवन्ति इत्यधिकारो ज्ञेयः । (दिक्शादेभ्य इत् मूत्र क पहले पहले कह जान बाल प्रत्यय किम् सबनाम और बहु शद क पश्चात् द्वि इत्यादि को छोड़कर होत है इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

इदम् इश ५।३।३

प० वि०—इदम् ६।१ इश् १।१ ॥

अर्थ—[प्राग्निश] इदम्. स्थाने इश् इत्ययमादेशो भवति प्राग्निशीयेषु प्रत्ययेषु परत । (प्राग्निशीय प्रत्ययों के पर रहन पर इद के स्थान में इश् आदेश हा जाता है)

एतेती रथो ५।३।४

प० वि०—एतेती १।२ रथोः ७।२ स०—एतरश्च इच्छेति एतेती । रश्च यश्चेति, रथो रथो ।

अर्थ—[इदम्] इदशब्दस्य रेफादौ यकारादौ च प्राग्निशीये प्रत्यये परत एत इन् इत्येतो यथासत्यम् आदेशो भवत ।

(इद शब्द का एत और इत् आदेश क्रमश हा जाता है प्राग्निशीय रेफादि और यकारादि प्रत्यय के परे रहने पर)

एतदोऽन् ५।३।५

प० वि०—एतदः ६।१ अन् १।१

अर्थ—[प्राग्निश] एतद् प्राग्निशीये प्रत्यये परतः अन् इत्ययमादेशो भवति । (एतद् के स्थान में अन् आदेश होता है प्राग्निशीय प्रत्यय क परे रहन पर)

अत्रेदं ज्ञातव्यम्—एतद् इति योगविभागं कर्तव्यम् । एतद् 'एत' 'इन्' इत्येतामादेशो भवत रथो । तत अन् । अश्च भवत्ये-तद् इति ।

सर्वस्य सोऽन्यतरस्या दि ५।३।६

प० वि०—सर्वस्य ६।१ स-१।१ अन्यतरस्याम् अ० । ति ७।१

अर्थ—[प्राग्दिश] सर्वस्य स्थाने स इत्ययमादेशो भवति अन्यतरस्या प्राग्दिशीये टकारादौ प्रत्यये परत । (सव के स्थान में स आदेश होता है प्राग्दिशीय टकारादि प्रत्यय के परे रहन पर विकल्प से)

पञ्चम्यास्तसिल् ५।३।७

प० वि०—पञ्चम्या ५।१ तसिल् १।१

अर्थ—पञ्चम्यन्तात् किं सर्वनाम बहुभ्यस्तसिल् प्रत्ययो भवति । (पञ्चम्यन्त किम् सर्वनाम और बहु शब्द से तसिल् प्रत्यय होता है)

उदा०—कुत । कस्मात् । यत । यस्मात् । तत । तस्मात् । अत एतस्मात् । इत । अस्मात् । अमुत । अमुष्मात् । बहुत । बहो ।

सि०—कुत । कस्मात् तसिल् । किम् ङसि तस् । किम् तस । कु तस । कुतस सु । कुतस । कुत । यत । यस्मात् तसिल् । यद् ङसि तस् । अथ तस् । यत् तस् । यत । तत । तद् ङसि तसिल । तद् तस् । त अ तस । ततस् । तत । अत । एतस्मात् तसिल् । एतद् तस् । अन् तस् । अतस् । अत । इत । अस्मात् तसिल् । इदम् ङसि तस् । इदम् तस् । इश तस् । इ तस् । इत । अमुत । अमुष्मात् तसिल् । अत्स तस् । अद् अ तस् । अद् तस् । अमु तस् । अमुतस् सु । अमुतस । अमुत । ङ एते प्रत्यया स्वार्थे भवन्ति चेति ज्ञातव्यम्

पर्यभिभ्या च ५।३।८

प० वि०—पर्यभिभ्याम् ५।२ च अ० । स०—परिश्च अभिश्च इति परिश्चभी ताभ्याम् ।

अर्थ—परि अभि इत्येताभ्याम् च तसिल् प्रत्ययो भवति ।

१—वृत्तद्वितममासाश्च (१ २ ४६) गुणो धानप्रातिपदिकयो (२ ४ ७२) २—कु तिहो (७ २ १०४) मनवालिगत्सवस्य (१ १ ५४) ३—प्राग्दिशो विभक्त (५ ३ १) घट्टन आ विभक्तो (७ २ ८४) त्यदादीनाम् (७ २ १०२) ४—उष्मपदात्तात् (६ १ ६३) मतो गुण (६ १ ६४) ५—एतदाज् (५ ३ ५) ६—इम इग (५ ३ ३) ७—मन्ताज्जदादिदो म (८ २ ८०) ८—तद्वितद्वामवविभक्ति (१ १ ३७) मध्यपदान्पु (२ ४ ८२)

(परि शीर अभिशब्द मे तसिल् प्रत्यय हाता है)

उदा०—परितः । अभितः ।

सप्तम्यास्त्रल् ५।३।१०

प० वि०—सप्तम्याः ५।१ त्रल् १।१ ॥

अर्थ—किसर्वनामबहुभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यस्त्रल् प्रत्ययो भवति ।

(किम् सर्वनाम शीर बहु सप्तम्यन्त शब्दों से त्रल् प्रत्यय होना है)

उदा०—तुत्र । कस्मिन् । यत्र । यस्मिन् । तत्र । तस्मिन् । अत्र ।

एतस्मिन् । इत्र । अस्मिन् । अमुत्र । अमुस्मिन् । बहुत्र ।

इदमो ह ५।३।११

प० वि०—इदमः ५।१ हः १।१ ॥

अर्थ—[सप्तम्याः] इदमः सप्तम्यन्ताद् ह. प्रत्ययो भवति ।

(इदम् सप्तम्यन्त से ह प्रत्यय हाता है)

उदा०—अस्मिन् अस्यां वा इह ।

मि०—अस्मिन् ह । इदम् वि ह । इदम् ह । इश् ह । इह । इह

सु । इह ।

किमाञ् ५।३।१२

प० वि०—किमः ५।१ अन् १।१

अर्थ—[सप्तम्याः] किमः सप्तम्यन्तान् अत् प्रत्ययो भवति स्वार्थे ।

(किम् सप्तम्यन्त स स्वार्थ में अत् प्रत्यय हाता है)

उदा०—क्व । कस्मिन् ।

मि०—किम् हि अन् । किम् अ । क्व' अ । क्व् अ । क्व

सु । क्व ।

इतराभ्योऽपि दृश्यते ५।३।१४

प० वि०—इतराभ्य ५।३ अपि अ० । दृश्यते क्रिया० ।

अर्थ—पञ्चम्यन्तसप्तम्यन्तेभ्य इतराभ्योऽपि विभक्तिभ्यः तसिला-
दयो दृश्यन्ते । (पञ्चम्यन्त शीर सप्तम्यन्त स भिन्न स भी तस्मिन् आदि प्रत्यय
देखे जाते हैं)

उदा०—स भवान् । ततो भवान् । तत्र भवान् । तं भवन्तम् । तत्र

भवन्तम् । ततो भवन्तम् । तेन भवता । ततो भवता । तत्र भवता ।
तस्मै भवते । तत्र भवते । ततो भवते । तस्मात् भवत । ततो भवत ।
तत्र भवत । तस्य भवत । ततो भवत । तत्र भवत । तस्मिन् भवति ।
ततो भवति । तत्र भवति ।

सर्वैकान्यर्कियत्तद् काले दा ५।३।१५

प० वि०—सर्वैकान्यर्कियत्तद् ५।१ काले ७।१ दा १।१

स०—सर्वश्च एकरश्च अन्यश्च करश्च यश्च स चेति सर्व एक अन्य-
किम् यद्-तद् तस्मात् ।

अर्थ—[सप्तम्या] सप्तम्यन्तेभ्य सर्वादिभ्य कालार्थे वर्त-
मानेभ्य स्वार्थे दा प्रत्ययो भवति । (कालविषय में वर्तमान सर्वादि
सप्तम्यन्त प्रातिपदिक से स्वाथ में दा प्रत्यय होता है)

उदा०—सस्मिन् काले, सर्वदा । एस्मिन् काले एकदा । अन्य-
स्मिन् काले अन्यदा । कस्मिन् काले, कदा । यस्मिन् तस्मिन् वा काले
यदा, तदा ।

सि०—कदा । कस्मिन् दा । किम् दा । क^१ दा । कदा सु । कदा^२ ।
तदा । तद् डि दा । तद् दा । त अ दा । तदा । तदा सु । तदा ।

इदमो हिल् ५।३।१६

प० वि०—इदम ५।१ हिल् १।१

अर्थ—[सप्तम्या काले] सप्तम्यन्तात् इदम काले वर्तमानात्
हिल् प्रत्ययो भवति स्वार्थे । (काल प्रथ में वर्तमान सप्तम्यन्त इदम् शब्द
से हिल प्रत्यय होता है स्वाथ में)

उदा०—अस्मिन् काले एतर्हि ।

सि०—अस्मिन् हिल् । एत^३ हिल् । एतर्हि सु । एतर्हि ।

अधुना ५।३।१७

प० वि०—अधुना १।१ यद्वा अव्ययपदम् ।

अर्थ—अधुना इति निपा-यते । (अधुना निपातन से सिद्ध होता है)

ॐ किं निपात्यते इदमोऽस्मावो धुना च प्रत्यय । इदमो वा लोपोऽ-
धुना च प्रत्यय । अस्मिन् काले अधुना । ॐ

१-किम् क (७ २ १०३) २-तद्धितश्चासवविभक्ति (१ १ ३०)
प्रथमवादात्पुन (२. ४. ८७) ३-एततो रषां (१ ३ ४)

(इदम् वा अन् भाव और घुना प्रत्यय निपातन क्रिया है अथवा इदम् वा लोप और अघुना प्रत्यय)

दानी च ५।३।१८

प० वि०—दानीम् १।१ च अ० ।

अर्थ—[सप्तम्या इदम् काले] [सप्तम्यन्ताद् इदम् कालाचिन दानी प्रत्ययो भवति । (सप्तम्यन्त इदम् शब्द स दानीम् प्रत्यय हाता है स्वाथ में)

उदा०—अस्मिन् काले इदानीम् ।

सि०—इदम् हि दानीम् । इदम् दानी । इत् दानी । इदानीम् ।

तदो दा च ५।३।१८

प० वि०—तद् ५।१ दा १।१ च अ० ।

अर्थ—[सप्तम्या काले] सप्तम्यन्तान् काले वर्तमानात् तद् शब्दान् दा प्रत्ययो भवति चान् दानी च । (काल में वर्तमान सप्तम्यन्त तद् शब्द स दा प्रत्यय हाता है और चकार स दानी प्रत्यय भी)

उदा०—तस्मिन् काले तदा, तदानीम् ।

सि०—तद् हि दा । तद् दा । त अ द । तदा सु । तदा । तद् हि दानीम् । तद् दानीम् । त अ दानीम् । तदानीम् । तदानीम् सु । तदानीम् ।

अनद्यतने हिलन्यतरस्याम् ५।३।२१

प० वि०—अनद्यतने ७।१ हिंल् १।१ अन्यतरस्याम् अ० । स०—न अद्यतनम्, अनद्यतनम् तस्मिन् ।

अर्थ—[सप्तम्या काले] किसर्चनामबहुभ्य सप्तम्यन्तेभ्यो अनद्यतने कालविशेषे वर्तमानेभ्यो हिंल् प्रत्ययो भवत्यन्यतरस्याम् ।

(किम् सवनाम और बहु इन सप्तम्यन्त कालवाची प्रातिपदिक स पाठ न हान वाचे वाचविशेष में विकल्प स हिन् प्रत्यय होता है)

उदा०—कहिं । कदा । यहिं । यदा । तहिं । तदा । एतहिं । यदुहिं ।

प्रकारवचने थाल्

प० वि०—प्रकारवचने ७।१ थाल् १।१ स०—उच्यते इति यचनम् प्रसारस्य यचनम् प्रसारयचनम् तस्मिन् ।

कालश्चेति द्विकदेशकालाः तेषु ।

अर्थ—द्विकशब्देभ्यो द्विकदेशकालेषु वर्तमानेभ्यः सप्तमीपञ्चमी-
प्रथमान्तभ्योऽस्तातिः प्रत्ययो भवति स्वार्थे ।

(दिशा, वाच्य घोर देश अर्थ में वर्तमान दिशावाची 'सप्तम्यन्त पञ्चम्यन्त
घोर प्रथमान्त शब्द से स्वार्थ में अस्ताति प्रत्यय होता है)

उदा०—द्विकशब्देभ्य—पूर्वस्यां दिशि वसति पुरस्ताद् वसति । पूर्व-
स्याः आगतः पुरस्तादागतः । पूर्वा दिशा रमणीयम् पुरस्ताद् रमणीयम् ।
देश-पूर्वाग्निन् देशे वसति पुरस्ताद् वसति, पुरस्तादागतः पुरस्ताद्
रमणीयम् । काले-पूर्वाग्निन् काले वसति पुरस्ताद् वसति । पुरस्तादागतः ।
पुरस्ताद् रमणीयम् । एवम् अघस्ताद् वसति । अघस्तादागतः । अघ-
स्ताद् रमणीयम् ।

नि०—पूर्वस्यां दिशि वसति पुरस्ताद् वसति । पूर्वा द्वि अस्ताति ।
पूर्वा अस्तान् । पुर् अस्तान् । पुरस्तान् । अघरा अस्ताति । अघरा
अस्तान् । अघ् अस्तान् । अघस्तात् । अघस्तात् सु । अघस्तान् । अघ-
स्तात् । अघरा द्वि अस्ताति । अघरा अस्तात् । अघर अस्तात् । अघ्
अस्तान् । अघस्तात् ॥ एवं पञ्चम्यन्तेभ्यः प्रथमान्तेभ्योऽपि सावनीयम् ॥

पूर्वाघरावराणामसि पुरधवश्चैषाम् ५।३।३६

प० वि०—पूर्वाघरावराणाम् ६।३ असि ॥ अविभक्तिको निर्देशः ॥
पुरधवः १।३ च अ० । एषाम् ६।३ म०—पूर्वश्च अघरश्च अघरश्चेति
पूर्वाघरावराः तेषाम् । पुर् च अघ् च अघ् च इति पुरधवः । प्रातिप-
दिकप्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि प्रहणं भवति इति दिग्वाचिनः
स्त्रीलिङ्गो अपि गृह्यन्ते ।

अर्थ—[अन्तातेरर्थे] पूर्वाघरावराणाम् असिः प्रत्ययो भवति अन्ता-
तेरर्थे, तत्सन्नियोगने च एषां यथासंख्यं पुर् अघ् अघ् इत्येते आदेशा
भवन्ति । (पूर्व घघर घोर घघर शब्द में घघि प्रत्यय होता है घोर उगके
सन्नियोग में पुर् घघ् घोर घघ् प्रथमः आदेश हो जाते हैं)

उदा०—पूर्वायां दिशि, पूर्वस्याः दिशः, पूर्वा या दिक् इति पुरो
वसति । पुरः आगतः । पुरो रमणीयम् । अघो वसति । अघः आगतः ।
अघो रमणीयम् । अघो वसति । अघः आगतः । अघो रमणीयम् ।

१—पूर्वाघरावराणामसि पुरधवश्चैषाम् (५. ३. ३६)

अर्थ—[किंसर्वनामबहुभ्योऽङ्यादिभ्य] किमादिभ्य प्रकारवचने वर्तमानेभ्य स्वार्थे थाल् प्रत्ययो भवति । (किम , सबनाम प्रौर बहु इन प्रकारवाची शब्दो स थाल् प्रत्यय होता है स्वाय में)

ॐ अत्रेदं ज्ञातव्यम-सप्तम्या काल इति निवृत्तम् । सामान्यस्य विशेषो भेदक प्रकार । प्रकृत्यर्थविशेषण चैतत् ॐ

उदा०—तेन प्रकारेण तथा । यन प्रकारेण यथा । बहुभि प्रकारै बहुथा ।

सि०—तेन थाल् । तद् टा थाल् । तद् थाल् । त अथा । तथा सु । तथा । यथा । बहुथा ।

इदमस्थमु ५।३।२४

प० वि०—इत्म् १।१ थमु १।१

अर्थ—[प्रकारवचने] प्रकारवचने वर्तमानाद् इदमशब्दान् थमु प्रत्ययो भवति । (प्रकारवचन म वर्तमान इदम शब्द स स्वाय में थमु प्रत्यय हाता है)

उदा०—अनेन प्रकारेण इत्थम् ।

सि०—इदम् टा थमु । इत्म् थमु । इदम् थम् । इत् थम् । इत्थम् ।

किमश्च ५।३।२५

प० वि०—किम १।१ च अ० ।

अर्थ—[प्रकारवचने थमु] प्रकारवचने वर्तमानात् किमशब्दात् थमु प्रत्ययो भवति । (प्रकारवचन म वर्तमान किम शब्द से थमु प्रत्यय होता है)

उदा०—कन प्रकारेण कथम् ।

सि०—किम् टा थमु । किम् थम् । क थम् । कथम् सु । कथम् ।

स्वाधिकप्रत्ययप्रकरणम्—

दिवशब्दभ्य सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकाले-
प्वस्ताति ५।३।२७

प० वि०—दिवशब्देभ्य ५।३ सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्य ५।३ दिग्देश कालेषु ७।३ अस्ताति १।१ म०-दिशा शब्द दिक्शब्द तेभ्य । सप्तमी च पञ्चमी च प्रथमा चेति सप्तमीपञ्चमीप्रथमा ताम्य । दिक् च देशश्च

१—एततो रथो (५ ३ ४) २—विम व (७ २ १०३)

कालश्चेति द्विकदेशकालाः तेषु ।

अर्थ—द्विकशब्देभ्यो द्विकदेशकालेषु वर्तमानेभ्यः सप्तमीपञ्चमी-
प्रथमान्तभ्योऽस्तातिः प्रत्ययो भवति स्वार्थे ।

(दिशा, वाच श्रौर देश अर्थ में वर्तमान दिशावाची 'सप्तम्यन्त पञ्चम्यन्त
श्रौर प्रथमान्त शब्द से स्वार्थ में अस्ताति प्रत्यय होता है)

उदा०—द्विकशब्देभ्य—पूर्वस्यां दिशि वसति पुरस्ताद् वसति । पूर्व-
स्याः आगतः पुरस्तादागतः । पूर्वा दिशा रमणीयम् पुरस्ताद् रमणीयम् ।
देश-पूर्वाग्निन् देशे वसति पुरस्ताद् वसति, पुरस्तादागतः पुरस्ताद्
रमणीयम् । काले-पूर्वाग्निन् काले वसति पुरस्ताद् वसति । पुरस्तादागतः ।
पुरस्ताद् रमणीयम् । अथम् अथस्ताद् वसति । अथस्तादागतः । अथ-
स्ताद् रमणीयम् ।

सि०—पूर्वस्यां दिशि वसति पुरस्ताद् वसति । पूर्वा द्वि अस्ताति ।
पूर्वा अस्तान् । पुर् अस्तान् । पुरस्तान् । अथरा अस्ताति । अथरा
अस्तान् । अथ् अस्तान् । अथस्तात् । अथस्तात् सु । अथस्तात् । अथ-
स्तात् । अथरा द्वि अस्तानि । अथरा अस्तात् । अथर अस्तात् । अथ्
अस्तात् । अथस्तात् ॥ एवं पञ्चम्यन्तेभ्यः प्रथमान्तेभ्योऽपि माधनीयम् ॥

पूर्वाधराधराणामसि पुरधवच्चंपाम् ५।३। ३६

प० वि०—पूर्वाधराधराणाम् ६।३ असि ॥ अविभक्तिको निर्देशः ॥
पुरधवः १।३ च अ० । एषाम् ६।३ स०—पूर्वर्धच अधरर्धच अवरर्धचेति
पूर्वाधराधराः तेषाम् । पुर् च अध् च अथ् च इति पुरधवः । प्रातिप-
दिकप्रहणे लिङ्गविशिष्टम्यापि प्रहण भवति इति दिग्वाचिनः
स्त्रीलिङ्गो अपि गृह्यन्ते ।

अर्थ—[अन्तातेरर्थे] पूर्वाधराधराणाम् असिः प्रत्ययो भवति अन्ता-
तेरर्थे, तत्प्रयोगेन च एषां यथासंग्यं पुर् अथ् अथ् इत्येते आदेशा
भवन्ति । (पूर्व अथर श्रौर अथर शब्द में अथि प्रत्यय होता है श्रौर उगळे
सन्निधेय में पुर् अथ् श्रौर अथ् प्रत्ययः आदेश हो जाते हैं)

उदा०—पूर्वायां दिशि, पूर्वस्याः दिशि, पूर्वा चा दिक् इति पुरो
वसति । पुरः आगतः । पुरो रमणीयम् । अयो वसति । अयः आगतः ।
अयो रमणीयम् । अयो वसति । अयः आगतः । अयो रमणीयम् ।

अस्ताति च ५।३।४०

प० वि०—अस्ताति ७।१ च अ० । लुप्तानुबन्धात् सप्तम्यैकप्रचने रूपम्

अर्थ—[पूर्वाघरातराणाम् पुरवघ] अस्ताति प्रत्यये परत पूर्वादीनां यथासख्य पुरादय आदेशा भवन्ति । ॐ अत्रेदं बोध्यम्—आदेशार्थम् इदं सूत्रम् । प्रत्ययस्तु पूर्वैरेव सिद्ध दिक्शब्देभ्य इति ॐ (अस्ताति प्रत्यय के परे रहन पर पूव अघर और अवर शब्द के स्थान में क्रमश पुर अघ् और अव् आदेश होते हैं)

उदा०—पूर्वत्र सूत्रे उदाहृतानि ।

सख्याया विधार्थे घा ५।३।४२

प० वि०—सख्याया ५।१ विधार्थे ७।१ घा १।१ स०—विधत्स्य अर्थ विधार्थे तस्मिन् ।

अर्थ—सख्यावाचिभ्य प्रातिपदिकेभ्यो विधार्थे वर्तमानेभ्यो घा प्रत्ययो भवति । (सख्यावाची प्रातिपदिक से विधाथ अर्थात् क्रिया के प्रकार के मय में घा प्रत्यय होता है)

उदा०—एकधा सादति । द्विधा गच्छति । त्रिधा । चतुर्धा । पञ्चधा ।

ॐ अत्रेदं बोध्यम्—त्रिधायामिति वक्तव्ये अर्थग्रहणस्य प्रयोजन विधा शब्दो यत्र अर्थे प्रसिद्धस्तत्रैव यथा स्यान् । तादृशश्चार्थ प्रकार एव, स च क्रियाविषयक एव गृह्यते । अत एव तत्र 'विधार्थे वर्तमानेभ्य' इत्यनेन क्रियाप्रकारे वर्तमानेभ्य इति ज्ञातव्यम् । कथं तर्हि 'नवधा द्रव्य, बहुधा गुण' इत्यादि । अत्रापि हि अश्रुता क्रिया प्रतीयते इति ज्ञानेन्द्र । उपदिश्यते इति वा, भवति इति वा इति हरद्वच । प्रसार सामान्य इति वयम् । ॐ

अतिशयने तमविष्टनी ५।३।५५

प० वि०—अतिशयने ७।१ तमविष्टनी १।२ स०—अतिपूर्वाच्छे-
तेत्युट् । अतिशयनमेवातिशयनम् अस्मादेव निपातनाद्दीर्घ । तमपु
च इष्टन् च इति तमविष्टनी ॥

अर्थ—अतिशयनविशिष्टेऽर्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् स्थार्थे
तमविष्टनी प्रत्ययो भवतः । (अत्यन्त प्रबलता मय में वर्तमान प्रातिपदिक

से तमप् ओर इष्टन् प्रत्यय होते है)

उदा०—**ऋष्यर्थविशेषणं च स्वार्थिमानां द्योयं भवति** ऋ मर्ये इमे
आह्व्याः, अयमेपामतिशयेन आह्व्य आह्वयतमः । मुष्मारतमः । दर्श-
नीवतमः । सर्वे इमे पटवः, अयमेपामतिशयेन पटुः, पटिष्ठः लविष्ठः ।
गरिष्ठः । ऋष्यदा च प्रकर्षयतां पुनः प्रकर्षो विवक्ष्यते तदा अतिगायि-
कान्ताद् अपरः प्रत्ययो भवत्येव । श्रेष्ठतमाय कर्मणे (यजु० १।१) युधि-
ष्ठिरः श्रेष्ठतमः कुरुणाम्

मि०—पटिष्ठः । पटु सु इष्टन् । पटु इष्ठ । पट इष्ठ । पटिष्ठ
सु । पटिष्ठः ॥

तिष्ठच्च ५।३।५६

प० वि०—तिष्ठः ५।१ च अ० ।

अर्थ—तिष्ठन्ताच्चातिशयने शाल्ये तमप् प्रत्ययो भवति ।

(तिष्ठन्त से अतिशय द्योतित होने पर तमप् प्रत्यय होता है)

उदा०—सर्वे इमे पचन्ति इति अयमेपामतिशयेन पचति इति पच-
तितमाम् । खादतितमाम् । अस्तितमाम् ।

सि०—पचतितमाम् । पचति तमप् । पचतितम आम् । पचतितम्
आम् । पचतितमाम् सु । पचतितमाम् ॥

द्विवचनविभज्योपपदे तरवीयमुनी ५।३।५७

प० वि०—द्विवचनविभज्योपपदे ७.१ तरवीयमुनी । १।२ स०—
द्वयोरर्थयोर्यचनम् इति द्विवचनम् । करणे ल्युट् । कर्मणि षष्ठ्या
समासः ॥ विभक्तव्यम् विभज्यम् । निपातनाद् यत् ॐ विभज्य च
तदुपपदं च विभज्योपपदम् । द्विवचनं च विभज्योपपदं च द्विवचनविभ-
ज्योपपदम् (समा० द्वन्द्वः) तस्मिन् X द्विवचनं च विभज्यं च द्विव-
चनविभज्यं, तच्च तदुपपदं चेति ह्रस्वत्तः । तच्चिन्त्यम्, तथासति उप-
पदप्रहणं द्विवचनेनापि मंसद्भवते । न च तदिष्यते । तस्मान् पूर्वं विभ-
ज्यशब्देन कर्मधारयः ततो द्वन्द्वः । अत्र च 'अन्वर्थं चोपपदमुपोन्चारितं-
पदमुपपदमिति तच्च विभज्यं चात्र एव प्रयुज्यते कृत्वा तु गतार्थं चात्र
प्रयुज्यते इत्यपि ह्रस्वत्तः तदपि चिन्त्यम्, षष्ठं हि 'माथुराः

१—टः (६. ४. १५५) १—विभक्तिद्वयपदासम्बन्धपरं (५. ६. ११)

ॐ दादृष्टन्तष्पाहृत्तातुवार मर्ष्यो पातुष्यो मर्ष्यं चर्षं चर्षं प्रत्यया
भवन्ति इति युधिष्ठिरमीमानरः । ६० क्षीरवर्षिणी षुष्ट ३१ टि० ३।

पाटलिपुत्रकेभ्य आह्वयतराः' इत्यत्र वृत्तावपि (प्रत्यये सत्यपि) पाटलि-
पत्रेभ्यः' इत्यस्य प्रत्यक्ष श्रवणात् ।

अर्थ—[अतिशयने, तिङ्श्च) द्वयोरेकस्यातिशये विभक्तव्ये चोप-
पदे प्रातिपदिकात् तिङन्नाच्च तरवीयसुनौ प्रत्ययौ भवतः ।

(दो में से एक के अतिशय और विभाग किये जाने वाले के उपपद रहने
पर तरप् और ईपसुन् प्रत्यय होते हैं)

उदा०—द्वौ इमौ आह्व्यौ, अयम् अनयो. अतिशयेन आह्व्य. इति
आह्व्यतरः । सुकुमारतरः । पचतितराम् । जल्पतितराम् । ईयसुन्-द्वौ
इमौ पट्ट । अयमनयोरतिशयेन पट्ट, पटीयान् । लघीयान् । विभज्ये
चोपपदे—माथुरा. पाटलिपुत्रकेभ्य आह्व्यतरा । दर्शनीयतराः । पटी-
यांसः । लघीयांसः ।

सि०—पटीयान् । पट्ट ईयसुन् । पट्^१ ईयस् । पटीयस् । पटीयस्
सु । पटीयास्^२ सु । पटीया नुम्^३ स् स् । पठीयान्स् स् । पठीयान्स् ।
पटीयान् । पटीयांसौ । पटीयांस ।

अजादी गुणवचनादेव ५।३।५८

प० वि०—अजादी १।२ गुणवचनात् ५।१ एव अ० । स०—अच
आदिर्ययोस्तौ अजादी (ऋ०)

अर्थ—अजादी इष्टन्नीयसुनौ प्रत्ययौ गुणवचनादेव भवतः ।
(अजादि इष्टन् और ईयसुन् ये दोनों प्रत्यय गुणवाची प्रातिपदिक से ही
होते हैं)

उदा०—लघीयान् । पटीयान् । पटिष्ठः । लघिष्ठः ।

सि०—लघु ईयसुन् । लघ् ईयस् । लघीयस् सु । लघीयास् स् ।
लघीया नुम् स् स् । लघीयान्स् स् । लघीयान्स् । लघीयान् । लघी-
यांसौ । लघीयांसः । लघीयांसम् । लघीयांसौ । लघीयसः ।

तुदृच्छन्दसि ५।३।५९

प० वि०—तुः ५।१ छन्दसि ७।१

अर्थ—[अजादी] तुरिति तृन्तृचौ मामान्येन गृह्येते । (अन्त प्राति-
पदिक से छन्द में अजादि प्रत्यय होने हैं)

१—टे (६. ४. १५५) २—अन्तगन्तस्य चापातोः (६. ४. १५) ३—
उगिदचा सर्वनामस्त्वानेऽपातोः (७. १. ७०)

उदा०—आसुति करिष्ठः । दोहीयमी धेनुः ।

सि०—कृ तृच् । कर्त् इष्ठन् । कर् इष्ठ । करिष्ठ सु । करिष्ठ ।
दोहीयसी । दुह् तृन् डीप् । दोग्ध्री । दोग्धृ ईयमुन् । दोह् ईयस् । दोही-
यस् । दोहीयस् डीप् । दोहीयसी सु । दोहीयसी ।

ऋअत्रेङ् बोध्यम्—इमे उभे दोग्ध्र्यौ इयमनयोरतिशयेन दोग्ध्री
भस्याढे तद्धिते सिद्धश्च प्रत्ययविर्वा इति वचनात् तद्धिते कर्त्तव्ये प्रागेव
पुं'द्वभावात् इति डीपि निवृत्ते दोग्धृशब्दान् प्रत्यय , ततमृचि निवृत्ते
निमित्ताभावात् घत्वजश्वयोरपि निवृत्तिः ॐ

प्रशस्यस्य श्र ५।३।६०

प० वि०—प्रशस्यस्य ६।१ श्रः १।१

अर्थ—[अजाद्यो इति प्रकृतम्य सप्तम्या विपरिणम्यते]
प्रशस्यशब्दस्य श्र इत्ययमादेशो भवति अजाद्यो प्रत्यययोः परतः ।
(प्रशस्य शब्द के स्थान में श्र आदेश हो जाता है अजादि प्रत्यय क पर
रहने पर)

उदा०—उभौ इमौ प्रशस्यौ अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः इति श्रेयान् ।
सर्वे इमे प्रशस्या , अयमेपामतिशयेन प्रशस्य इति श्रेष्ठ ॥

सि०—प्रशस्य ईष्ठन् । श्र ईष्ठ । श्र' ईष्ठ । श्रेष्ठ^२ सु । श्रेष्ठः ॥
श्रेयान् । प्रशस्य ईयमुन् । श्र ईयस् । श्रेयस् । श्रेयस् । श्रेयास् सु । श्रेया
नुम स् स् । श्रेयान्स् स् । श्रेयान्स् । श्रेयान् ।

ज्य च ५।३।६१

प० वि०—ज्य अविभक्तिको निर्देशः । च अ० ।

अर्थ—[प्रशस्यस्य अजाद्यो] प्रशस्यशब्दस्य ज्य इत्यादेशो भवति
अजाद्यो प्रत्यययोः परतः । (प्रशस्य शब्द के स्थान में ज्य आदेश होता है
अजादि प्रत्ययों के पर रहने पर)

उदा०—सर्वे इमे प्रशस्या , अयमतिशयेन प्रशस्यः श्रेष्ठः । उभा-
विभौ प्रशस्यौ, अयमनयोरतिशयेन प्रशस्य इति ज्यायान् । अयमम्मान्
ज्यायान् ।

१—यचि मम् (१. ४. १८) मत्व (६ ४ १२६) यस्येति च (६ ४.
१४८) टे. (६. ४. १५५) प्रकृत्यैवाच् (६ ४. १६३) इति प्रकृतिनाक २—
षादणुण (६ १. ४८)

सि०—ज्यायान् । ज्य इयमुन् । ज्य आयस् । ज्य आयस् । ज्यायस् सु । ज्यायास् स् । ज्याया नुम स् स् ज्यायान्स् स् । ज्यायान्स् । ज्यायान् ज्यायांसी । ज्यायासः ।

विन्मतोलुक् ५।३।६५

प० वि०—विन्मतो ६।० लुक् १।१ स०—विन्च मतुश्चेति विन्मतः तस्य ।

अर्थ—[अजाद्योः] विनो मतुपश्च लुग् भवति अजाद्योः प्रत्यययोः परतः । (विन् प्रौर मतुप् प्रत्यय का लुक् होता है अजादि प्रत्ययके परे रहने पर)

उदा०—सर्वे इमे स्रग्विनः अयमेपामतिशयेन स्रजिष्ठः । उभाविमौ स्रग्विनौ अयमेपामतिशयेन स्रजीयान् । अयमस्मात् स्रजीयान् ।

मतोः—सर्वे इमे त्वग्वन्तः, अयमेपामतिशयेन त्वचिष्ठः । उभौ इमौ त्वग्वन्तौ, अयमनयोरतिशयेन, त्वचीयान् । अयमस्मात् त्वचीयान् ।

प्रशसायां रूपम् ५।३।६६

प० वि०—प्रशंसायाम् ७।१ रूपम् १।१

अर्थ—[तिङ्श्च] प्रशंसा स्तुतिः प्रशंसाविशिष्टेऽर्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे रूपम् प्रत्ययो भवति । (प्रशसाविशिष्ट धर्म में वर्तमान जो प्रातिपदिक उससे स्वार्थ में रूपम् प्रत्यय होता है)

क्वैस्वार्थिकाः प्रत्ययाः प्रकृत्यर्थविशेषस्य द्योतकाः भवन्ति ॥

उदा०—प्रशस्तो वैयाकरणः वैयाकरणरूपम् । याज्ञिकरूपम् । पचतिरूपम् पचतोरूपम्, पचन्तिरूपम् । क्वैक्रियाप्रधानमाख्यातम् । एका च क्रियेति रूपम् प्रथयायन्तात् द्विधचनबहुवचने न भवतः । नपु सकलिङ्गन्तु भवति लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य ॥

ईपदसमाप्ती कल्पदेश्यदेशीयर ५।३।६७

ईपदसमाप्ती ७।१ कल्पदेश्यदेशीयरः १।३ स०—संपूर्णता पदार्थानां समाप्तिः स्तोत्रेणासंपूर्णता, ईपदसमाप्तिः तन्नाम् ।

अर्थ—[तिङ्श्च] ईपदसमाप्तिविशिष्टेऽर्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च कल्पद्-देश्य-देशीयरः प्रत्ययाः भवन्ति ।

(घोडे संपूर्णता धर्म विशिष्ट में वर्तमान प्रातिपदिक घोर तिङन्त से कल्पद् देश्य घोर देशीयर प्रत्यय होने हैं)

उदा०—ईपत्रसमाप्तः पटु, पटुक्-प. । पटुदेश्य. । पटुदेशीयः ।
पचति-न्त्यम् । पचातदेश्यम् । पचनिदेशीयम् ।

विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात् ५।३।६८

प० वि०—विभाषा १।१ सुप. ५।१ बहुच् १।१ पुरस्तान् १।१ तु १।१

अर्थ—[ईपत्रसमाप्तौ] ईपत्रसमाप्तिविशिष्टेऽर्थे वर्तमानान्
पुरस्ताद् विभाषा बहुच् प्रत्ययो भवति, स तु पुरस्तादेन न तु परतः ।

(घोड़े से प्रपूर्णांता विगिट् प्रथं में वर्तमान सुबन्त से विकल्प करने बहुच्
प्रत्यय होता है और वह पहले ही होता है परचात् नहीं)

उदा०—ईपत्रसमाप्तः पटुः बहुपटुः । बहुमृदुः ।

प्रकारवचने जातीयर् ५।३।६९

प० वि०—प्रकारवचने ७।१ जातीयर् १।१

स०—प्रकारो अस्ति अस्मिन्निति प्रकारः । प्रकारस्य वचनप्रकारवचनम्
तस्मिन् ।

अर्थ—[सुप.] पुरस्तात् प्रकारविशिष्टेऽर्थे वर्तमानान् प्रातिपदि-
कान् स्वार्थे जातीयर् प्रत्ययो भवति । (सुबन्त जो प्रकार विगिट् प्रथं में
वर्तमान है उससे स्वाय में जातीयर् प्रत्यय होता है)

उदा०—X प्रकारवति चार्यं प्रत्यय । थाल्पुनः प्रकारमात्रे एव
भवति X । पटुप्रकार पटुजातीयः । मृदुजातीय । दर्शनजातीय ।

प्रागिवात्क. ५।३।७०

प० वि —प्राक् १।१ इवात् ५।१ क १।१

अर्थ—इये प्रतिवृत्तौ इत्येतस्मात्प्राक् वक्ष्यमाणेषु स्वार्थेष्वर्थेषु कः
प्रत्ययो भवति इत्यधिकारो वेदितव्यः ।

(इये प्रतिवृत्तौ इस सूत्र के पहले-पहले कहे जाने वाले स्वार्थों में क
प्रत्यय होता है इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टे ५।३।७१

प० वि०—अव्ययसर्वनाम्नाम ६।३ अवच १।१ प्राक् १।१ टेः ५।१

स०—अव्ययानि सर्वनामानि चेति अव्ययसर्वनामानि तेषाम् ।

अर्थ—[प्रागियान् तिङ्श्च] वक्ष्यमाणेषु स्वार्थेष्वर्थेषु अव्ययनां
सर्वनाम्नां तिङन्तानां च टेः प्राक् अनच् प्रत्ययो भवति प्रागियान् इ-
धिकारो वेदितव्यः ।

(इव प्रनिवृत्तौ इव मून के पहले पहल यहा से भागे बहे जान वाल
स्वाधिक अर्थों में अन्वय तिङन्त और सबभाम के टि के पहल अकच प्रत्यय
होता है इम बाल का अधिकार ममभूता चाहिये)

अज्ञाते ५।३।७३

प० वि०—अज्ञाते ७।१ स—न ज्ञातम् इति अज्ञातम् तस्मिन् ।

अर्थ—[सुप तिङ्श्च] अज्ञातेऽर्थां वर्तमानान् सुवन्तात् तिङ्-
न्ताच्च यथाविहित प्रत्ययो भवति । (अज्ञात अथ म वतमान सुवन्त और
तिङन्त स यथाविहित अकच् या क प्रत्यय होता है ।

उदा०—सर्वनाम्नोऽकच्—सर्वके । विश्वके । उभयके । त्वयना ।
मयना । त्वयकि । मयकि । ×ओऽऱरसभारभकारानौ सुपि सर्वनाम्नष्टे
प्रागकच् ×

युक्कयो । आवक्यो । युष्मकामु । अस्मकामु । युष्मकाभि ।
अस्मकाभि । अव्ययान्कच्—इकै । नीचकै । शनकै । सुवन्तात्
क—अश्वक । उष्ट्रक । गर्दभक । तिङन्तादकच्—पचतकि जल्-
पतकि ।

नि०—सर्वके । सर्वे । सर्वे ण । सर्व् अकच् ण । सर्व् अकृ ए ।
सर्व् अकृ ण । सर्वके । एव सर्वत्र । युक्कयो । युक्क्यो । युक्क्य ओ ।
युक्क्य अकच् ओ । युक्क्य अकच् ओ । युक्कयो । अश्वक । अज्ञात
अश्व इति विमद । अश्व क । अश्वक सु । अश्वक ।

कुत्सिते ५।३।७४

प० वि०—कुत्सिते ७।१

अर्थ—[सुप तिङ्] कुत्सिते अर्थे वर्तमानान् सुवन्तात् तिङन्ताच्च
यथाविहित प्रत्ययो भवति । (कुत्सित अथ म वतमान सुवन्त और तिङन्त स
यथाविहित प्रत्यय होना है)

उदा०—कुत्सितोऽश्व अश्वक । गर्दभक । उष्ट्रक । उच्चके ।
नीचकै । सर्वके । विश्वके । युक्क्यो । आवक्यो । युष्मकाभि । अस्म-
काभि । युष्मकामु । अस्मकामु । पचतकि । जल्पतकि ।

क्रियत्तदो निर्द्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् १।३।६२

प० वि०—क्रियत्तदः १।१ निर्द्धारणे ६।१ द्वयोः ७।२ एकस्य ६।१
डतरच् १।१ स०—किं च यच्च तच्चेति क्रियत्तद् तस्मान् ।

अर्थ—[किम् यद् तद् इत्येतेभ्यः मुञ्जन्तेभ्यः द्वयोरेकस्य निर्द्धारणे
डतरच् प्रत्ययो भवति । (किम् यत् तत् इति मुञ्जन्तो मे दो मे से किमी एक
के निर्द्धारणे के विषय मे डतरच् प्रत्यय हाना है)

उदा०—ऋ जातिगुणक्रियामंज्ञाभिः समुदायादेकदेशस्य

पृथक्करणम् निर्द्धारणम् ऋको भवतोः कठः । कतरो भवतोः कठः ।
यतरः, ततरः ॥ कः कतरो वा भवतोः कारकः । यतरः, ततरः । कः कतरो
वा भवतोः पटुः । यतरः, ततरः । कतरो भवतोः देवदत्तः । यतरः,
ततरः ॥

सि०—कतरः । किम् डतरच् । किम् यतर । कूँ अतर । कतर मु ।
कतरः ॥

वा बहूना जातिपरिप्रश्ने डतमच् १।३।६३

प० वि०—वा अ० । बहूनाम् ६।३ जातिपरिप्रश्ने ७।१ डतमच् १।१
स०—जात्याः परिप्रश्नः इति जातिपरिप्रश्नः तस्मिन् ।

अर्थ—[क्रियत्तदः निर्द्धारणे ऋस्य] बहूनां मये ऋस्य निर्द्धारणे
गम्यमाने जातिपरिप्रश्नविषयेभ्यः किमादिभ्यः मुञ्जन्तेभ्यो वा डतमच्
प्रत्ययो भवति (बहूत मे से किसी एक क निर्द्धारण गम्यमान हाने पर जाति
परिप्रश्नविषय किमादि मुञ्जन्त मे विकल्प से डतमच् प्रत्यय होता है)

उदा०—ऋवाप्रहणमरुजर्थम् । महाविभापया अप्रत्ययोऽपि भवति
अत एव ऋहृष्यम् ऋको भवतां कठः । कतमो भवतां कठ । को भवतां
कठ । ऋ क इति अरुचसहितस्य रूपमेतद् । महाभाष्ये साकृन्कार्यो
वक्तव्योऽयं कादेशः इति किमः क इति सूत्रे निर्णीत अत एव अरुच-
सहितस्य किम इत्येतस्य कठ इति न्न न जायते यो यतमो यको वा
भवतां कठः । सः ततमो सको वा आगच्छतु ॥ परिप्रश्नप्रहण च किम
एव विशेषण, न यत्तदोरसम्भयान् । जातिप्रहण तु सर्वेष्व सम्भयतेः

इवे प्रतिवृत्तौ १।३।६६

प० वि०—इवे ७।१ प्रतिवृत्तौ ७।१

अर्थ—[इन्] प्रतिवृत्तौ इयर्थे मुञ्जन्तान् क्व प्रत्ययो भवति ।

(प्रतिवृत्ति, प्रतिरुक्त, प्रतिद्वन्द्व या इसके सहज इत्तवी प्रावृत्ति है, इस अर्थ में वर्तमान भुवन्त से वन् प्रत्यय होता है)

उदा०—अश्य इव प्रतिवृत्तिः इति अश्यनः । उष्ट्रकः । गर्दभकः ॥

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया पञ्चमाध्याये तृतीय पाद.

किमेत्तिडव्ययघादाम्बद्रव्यप्रकर्षे ५।४।११

प० वि०—किमेत्तिडव्ययघाद् ५।१ आमु १।१ अद्रव्यप्रकर्षे ७।१

स०—किम् च एन्च तिड् च अव्यय चेति किमेत्तिड-व्ययानि तेभ्यो च इति किमेत्तिडव्ययघः तन्मात् । द्रव्यस्य प्रकर्षे द्रव्यप्रकर्षः । न द्रव्यप्रकर्षः अद्रव्यप्रकर्षः तस्मिन् ।

अर्थ—किमः एदन्तात् तिडोऽव्ययाच्च यो घस्तदन्तादामुः प्रत्ययो भवति न तु द्रव्यप्रकर्षे ॥ (किम् एकारान्त तिड् अव्यय के पश्चात् विधान किया गया जो घ (तरप्, तमन्) तदन्त स आम् प्रत्यय होता है द्रव्य प्रकर्ष में नहीं ।

उदा०—कितराम् । कित्ताम् पूर्वाहेतराम् । पूर्वाहेतमाम् । पचतितराम् । पचतितमाम् । उच्चैस्तराम् । उच्चैस्तमाम् ॥

सख्याया क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वमुच् ५।४।१७

प० वि०—सख्याया. ५।१ क्रियाभ्यावृत्तिगणने ७।१ कृत्वमुच् १।१

स०—वर्त्तनं वृत्ति । अभितः आसमन्ताद् वृत्तिरिति अभ्यावृत्तिः पौनः पुन्यमित्यर्थः ॥ तरयाः अभ्यावृत्तिः क्रियाभ्यावृत्तिः तरयाः गणनम् । क्रियाभ्यावृत्तिगणनम् तस्मिन् ।

अर्थ—सख्याशब्देभ्यः क्रियाभ्यावृत्तिगणने वर्तमानेभ्यः स्वार्थे कृत्वमुच् प्रत्ययो भवति । (सख्यावाची भुवन्त से क्रिया के बारबार होने को गिनने में स्वार्थ में कृत्वमुच् प्रत्यय होता है)

उदा०—पञ्चरारान्मुहक्ते पञ्चकृत्यो मुहक्ते । सप्तकृत्यः ।

द्वित्रिचतुर्भ्यः मुन् ५।४।१८

प० वि०—द्वित्रिचतुर्भ्यः ५।३ मुन् १।१ स०—द्वौ च त्रयश्च चत्वारश्चेति द्वित्रिचत्वारः तेभ्यः

अर्थ—[मग्नायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने] द्वि त्रि चतुर् इत्येतेभ्यः मग्नाशब्देभ्य क्रियाभ्यावृत्तिगणने वर्तमानभ्य मुच् प्रत्ययो भवति ।
(क्रियाभ्यावृत्तिगणन ग्रथं में वर्तमान द्वि त्रि चतुर् सख्यावाची मुबन् सें स्वार्थं में मुच् प्रत्यय होता है)

उदा०—द्विः खादति । त्रिः खादति । चतुः खादति ॥

एकस्य सकृच्च ५।४।२६

प० वि०—एकस्य ६।१ सृन् १।१ च अ० ।

अर्थ—[मुच्] एकस्य सकृदित्ययमादेशो भवति मुच्च प्रत्यय. क्रिया-
गणनेऽर्थे वर्तमानात् ॥ (एक शब्द के स्थान में सृन् यह आदेश हो जात
है और मुच् प्रत्यय होता है क्रिया गणनीग्रथ में वर्तमान ।

उदा०—सृन् खादति ॥

बहुवल्पायाञ्छस्कारकादन्यतरस्याम् ५।४।३२

प० वि०—बहुवल्पायाति ५।१ शस् १।१ कारकान् ५।१ अन्यतरस्याम्
अ० । स०—बहुश्च अल्पश्च बहुवल्पो । अर्थश्च अर्थश्चेति अर्थो ।
बहुवल्पो अर्थो यस्य तन् बहुवल्पर्यम् तस्मान् ।

अर्थ—बहुवल्पायाञ्छस्कारकादन्यतरस्याम् । (बहु ग्रथं वा ने तथा अल्प ग्रथं वा ने कारक वा कहते
वाले शब्दों से विकल्प करके शम् प्रत्यय होता है)

उदा०—बहूनि ददाति बहुशो ददाति । अल्प ददाति अल्पशः
ददाति । भूरिशो ददाति ॥ बहुभिः अल्पेन वा ददाति बहुशः अल्पशः
वा ददाति एवं कारकान्तरेषु अपि उदाहार्यम् ।

सन्त्यैकवचनाच्च वीप्सायाम् ५।४।४३

प० वि०—सन्त्यैकवचनात् ५।१ च अ० । वीप्सायाम् ७।१ स०—
मग्ना च एकवचन चेति सन्त्यैकवचनम् तस्मान् ।

अर्थ—[शस् अन्यतरस्याम्] मग्नावाचिभ्यः मुनन्तेभ्य एकवच-
नान्च वीप्सायां वर्तमानेभ्य शस् प्रत्ययो भवति अन्यतरस्याम् ।

(मग्नावाची मुबन् और एकवचन मुबन् स वीप्सा ग्रथं में विकल्प से
शम् प्रत्यय आता है)

उदा०—सग्नाया —द्वौ द्वौ मोदशो ददाति, द्विशः ददाति त्रिशः । -
कार्पाण्य कार्पाण्य ददाति कार्पाण्यशो ददाति । मापश । पादशः ।

कृभ्वस्तियोगे सपद्यकर्त्तरि च्वि ५।४।५०

५० वि०—कृभ्वस्तियोगे ७।१ सपद्यकर्त्तरि ७।१ च्वि १।१
स०—का च भूश्च अस्तिश्चेति कृभूअस्तय तैर्योग इति कृभू-अस्ति-
योग तस्मिन् । सपद्यश्चास्ती कर्त्ता चेति सपद्यकर्त्ता तस्मिन् । न भूत
अभूत ॥ तस्य आत्मनो भाव इति तद्भाव । अभूतस्य तद्भाव इति
अभूततद्भाव तस्मिन् ।

अर्थ—सपद्यकर्त्तरि वर्त्तमानात् सुगन्ताद् अभूततद्भावे गम्यमाने
कृ-भू-अस्तिभिर्धातुभिर्योगे च्वि प्रत्ययो भवति । (सपद्य कर्ता में वतमान
सुगन्त स अभूततद्भाव गम्यमान होन पर कृ भू और अस्ति धातु के योग में
च्वि प्रत्यय होता है)

उदा०—अशुक्ल शुक्ल. क्रियत इति शुक्लीकरोति । शुक्लीभवति ।
शुक्लीस्यात् ।

सि०—शुक्ल सु च्वि करोति । शुक्ली^१ करोति ॥

समासान्तप्रत्ययप्रकरणम्

समासान्ता ५।४।६८

५० वि०—समासान्ता १।३ स०—समासस्य अन्त समासान्त ते
समासान्ता । समासस्य अन्त. चरमावयव इत्यर्थ

अर्थ—आपादपरिसमाप्तेऽर्थे प्रत्यया पिहितास्ते समासस्य अन्ताव-
यवा चरमावयवा एकदेशा वा भवन्ति इत्यधिकारो वेदितव्य ।

(पाद की परिसमाप्ति तक जिन प्रत्यया वा विधान किया गया है व समास
के अन्त अवयव हात हैं इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

न पूजनात् ५।४।६९

५० वि०—न अ० । पूजनात् ५।१

अर्थ—पूजनपदानात् सुगन्तान् समासान्तो न भवति । (पूजनवाची सुवत्
के पदवान् समासात् नहा होता है, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

उदा०—सुराजा । अतिराजा × पूजायां स्वतिग्रहण कर्त्तव्यम् ×
इह मा भून् । परमराज । परमगव ॥

नञस्तत्पुरुषात् ५।४।७१

५० वि०—नञ ५।१ तत्पुरुषान् ५।१

१—मस्य च्चो (७ ४ ३२)

अर्थ—नञः परे वक्ष्यमाणा ये राजादयम्बन्तान् तत्पुत्रान् समा-
सान्तो न भवति इत्यधिकारो वेदितव्यः ।

(नञ् के पश्चात् कहे जाने जाने जा राजन् इत्यादि शब्द तदन्त तत्पुत्र
से समासान्त प्रत्यय नहीं होता है, इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

उदा०—न राजा इति अराजा । न सखा इति असखा ।

ऋक्पूरव्यू.पथामानक्षे ५।४।७८

प० वि०—ऋक्पूरव्यूःपथाम ६।३ अ । लुप्तप्रथमैश्चनान्तम् ।
अनक्षे ७।१ (सम्बन्धिनोऽधिकरणान्विधत्तायां मत्तमां)

स०—ऋक् च पूर च अप् च धूर् च पन्याश्चेति ऋक्पूरव्यू पन्यान
तेषाम् । न अक्षः इति अनक्ष. तस्मिन् ।

अर्थ—ऋक्-पूर-अप्-धूर्-पयिन् इत्येवमन्तानां समासानाम्
अक्षारः प्रत्यया भवति, अक्षसम्बन्धिनी या धृन्तदन्तस्य न भवति ।

(ऋक्, पूर, अप्, धूर्, पयिन् ये शब्द हैं अन्त में जिनके ऐसे समान में
समासान्त अक्षार प्रत्यय होता है, अक्ष सम्बन्धी जो धूर् शब्द है उसको छाटकर)

उदा०—अनृचः । बह्वृच । ललाटपुरम् । नान्दीपुरम् । द्वीपम् ।
अन्तरीपम् । समीपम् । राजधुरा । महाधुरः । जलपथः ।

मि०—अनृचबह्वृचावध्यतयेन । न ऋचोऽस्य सन्ति इति अनृचो
माणकः ।

नञ् ऋच् अ । अ ऋच । अनुट्^१ ऋच । अनृच सु । अनृच ।

बह्वृच ऋचोऽस्य सन्तीति बह्वृचः ।

ललाटस्य पुरम् । ललाटपुरम् । नान्याः पुरम् । नान्दीपुरम् । द्वीपम्,
अन्तरीपम्, समीपम् । द्विर्गता आपो अग्निन्नर्गता आपोऽस्मिन् सङ्गता
आपोऽस्मिन्निति निप्रहः ।

द्वि अप् अ । द्वि ईप्^२ अ । द्वीप् सु । द्वीपम् । अन्तरीपम् । अन्तर
अप् अ । अन्तर ईप् अ । अन्तरीप सु । अन्तरीप अम् । अन्तरीपम् ।
समीपम् । राजधुरा । राजः धूरिति विप्रह । राजन् इम् धूर् अच् ।
राजन् धूर् अ । राजधुर । राजधुर टाप् । राजधुर सु । राजधुरा ।
महाधुरः । महती धूर्यमिति विप्रह । महती धूर् अ । महत् धूर् अ ।
मह आ^३ धुर । महाधुर सु । महाधुर । जलग्न्य जले वा पन्या इति

१—उमानुद्वि (६. ३. ७२) २—इयन्तापसर्गोन्वात् ईप् (६. ३. ६६
आदे परस्य (१.१. ४२) ३—आग्नेहवः समानाधिकरणावातीपवा. (६.३. ४८)

विग्रहः । जल डस् पथिन् अ । जल पथिन् अ । जलपथ् अ ।
जलपथ सु । जलपथः ।

तत्पुरुषस्याङ्गुले. सख्याव्ययादेः ५।४।८६

प० वि०—तत्पुरुषस्य ६।१ अङ्गुलेः ६।१ सख्याव्ययादेः ६।१

स०—संख्या च अव्ययं च संख्याव्ययम् सख्याव्ययम् आदि यस्य
इति संख्याव्ययादिः तस्य ।

अर्थ—[अच् इति प्रत्यन्ववपूर्वात्सामलोम्नः इत्यतः अनुवर्तते]

अङ्गुलिशब्दान्तस्य तत्पुरुषस्य सख्यादेरव्ययादेश्च अच् प्रत्ययो भवति ।
(अङ्गुलि शब्दान्त सख्यादि गौर अव्ययादि तत्पुरुष से समासान्त अच्
प्रत्यय होता है)

उदा०—द्व्यङ्गुलम् । त्र्यङ्गुलम् । निरङ्गुलम् ।

सि०—द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य, तिस्र अङ्गुल्य प्रमाणमस्य इति
विग्रहः । निर्गतमङ्गुलिभ्यो, निरङ्गुलम् । द्वि औ अङ्गुलि औ मात्रच् ।
द्वि औ अङ्गुलि^३ औ अच् । द्वि अङ्गुलि अच् । द्वि अङ्गुल् अ ।
द्व्यङ्गुल सु । द्व्यङ्गुलः ।

राजाहस्सखिभ्यष्टच् ५।४।९१

प० वि०—राजाहस्सखिभ्यः ५।३ टच् १।१ स०—राजा च अहश्च
सखा चेति राजाहस्सखायः तेभ्यः ।

अर्थ—[तत्पुरुषस्य] राजन् अहन् सखि इत्येवमन्तात् तत्पुरुषात्
समासान्तः टच् प्रत्ययो भवति ।

(राजन् अहन् गौर सखि शब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय होता है)

उदा०—मद्रराजः । द्व्यहः । त्र्यहः । राजसख ।

सि०—द्वे अहनी समाहृते । त्रीणि अहानि समाहृतानि इति
विग्रहः ।

द्वि औ अहन् औ टच् । द्वि अहन् टच् । द्वि अह्^३ अ । द्वि अह ।
द्व्यहः । त्र्यहः । मद्रराजः । मद्राणां राजन् टच् । मद्र आम् राजन् सु
टच् । मद्रराजन् अ । मद्रराज्^३ अ । मद्रराज सु ।

१—नस्तद्धिते (६. ४. १४४) अचोऽन्यादि टि (१. १. ६३)

२—प्रमाणे लो द्विगोन्तवम् (५. २. ३७ वा०)

३—नस्तद्धिते (६. ४. १४४)

मद्राजः+। राजसखः । राज्ञः सखा इति विग्रहः । राजन् डस् सखि
मु टच् । राजन् सखि अ । राजसखि अ । राजसख् अ । राजसख
मु । राजसखः ।

गोरतद्धितलुकि ५।४।६२

प० वि०—गोः ५। अतद्धितलुकि ७। स०—तद्धितस्य लुक् इति
तद्धितलुक् तस्मिन् ।

अर्थ—[तत्पुरुषस्य] गोशब्दान्तात् तत्पुरुषान् टच् प्रत्ययो भवति
तद्धितलुकि सति तु प्रत्ययो न भवति । (गोशब्दान्त तत्पुरुष से ममामान्त
टच् प्रत्यय होता है, तद्धित लुक् होने पर प्रत्यय नहीं होता है)

उदा०—दशगवः । पञ्चगवः ।

सि०—तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च इत्यत्र द्रष्टव्या ।

नावो द्विगो. ५।४।६६

प० वि०—नावः ५। द्विगो ५। म०—

अर्थ—[तत्पुरुषस्य टच्] नौशब्दान्तात् तत्पुरुषान् द्विगोष्टच्
प्रत्ययो भवति समासान्तः । (नौशब्दान्त तत्पुरुष द्विगु से समासान्त टच्
प्रत्यय होता है)

उदा०—पञ्च नावः प्रिया यस्येति पञ्चनावप्रियः । दशनावप्रियः ।

द्वन्द्वाच्चुदपहान्तात्समाहारे ५।४।१०६

प० वि०—द्वन्द्वात् ५। चुदपहान्तात् ५। समाहारे ७। म०—
चुरच दश्च पश्च दश्च इति चुदपहम् । चुदपहम् अन्ते यस्य तन् चुदप-
हान्तम् तस्मात् ।

अर्थ—[टच्] द्वन्द्वाच्चवर्गान्ताद् दकारान्तान् पकारान्तान् हकारा-
न्ताच्च टच् प्रत्ययो भवति, स चेद् द्वन्द्वः समाहारे वर्तते ।

(द्वन्द्व समास जो चवर्गान्त दकारान्त पकारान्त और हकारान्त उभये

१—यस्येति च (६ ४. १४६)

+विभाषा ममामान्ता भवति (६ ०. ११७ भा०) इति परिभाषया ममा-
सान्ताभावे 'सवराज्ञाम्' (मादि पर्व १ १०२) इत्येवमादय महाभारते भामनाट-
केषु च प्रयुक्ताः प्रयोगा नाधवा भवन्ति एव च कृत्वा 'धोद्युतमथाराजपि-
राजम्' इति (ऋ० ६० पत्रव्यवहार पृष्ठ ३४० वि० म०) इयामिदानीन्त-
प्रयोगोऽप्युपपद्यते ।

समाहार में प्रत्यय समासान्त टच् हाते हैं)

उदा०—वाक्त्वचम् । स्रक्त्वचम् । श्रीस्रजम् । इहर्जम् । वागूर्जम् ।
समिद्धपदम् । सपद्विपदम् । वाग्विप्रुपम् । छात्रोपानहम् ।
धेनुगोदुहम् ॥

सि०—स्रक्च त्यक् च इति स्रक्त्वचम् । श्रीश्च स्रक् चा इति
श्रीस्रजम् । वाक् च उर्क् च इति वागूर्जम् । समिद्ध पदच्चेति समिद्ध-
पदम् । सम्पच्च विपच्चेति सम्पद्विपदम् । वाग्च त्विट् चेति वाक्-
त्विपम् । वाक्च विप्रट् चेति वाग्विप्रुपम् । छात्रच्च उपानच्चेति छात्रो-
पानहम् । धेनुश्च गोधुक् चेति धेनुगोदुहम् ।

अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्य ५।४।१०७

प० वि०—अव्ययीभावे ७।१ शरत्प्रभृतिभ्य ५।३

अर्थ—[टच्] शरदादिभ्य सुप्रन्तेभ्यष्टच् प्रत्ययो भवति अव्ययी-
भावे । (शरदादि मे अव्ययीभाव समास म म समासात् टच् प्रत्यय होता है)

उदा०—शरद समीपम् । उपशरदम् ॥

अनश्च ५।४।१०८

प० वि०—अन ५।१ च अ० ।

अर्थ—[अव्ययीभावे टच्] अनन्तादव्ययीभावाट् टच् प्रत्ययो
भवति समासान्त । (अनन् अव्ययीभाव स समासात् टच् प्रत्यय होता है)

उदा०—राज्ञ समीपम् न्पराजम् ।

सि०—उपराजन् टच् । उपराज् अ । उपराज सु । उपराज अम्
उपराजम् ॥

बहुव्रीही सक्थ्यक्षणे स्वाङ्गात्पच् ५।४।११३

प्रसम्भ्या जानुनीर्जु ५।४।११६

प० वि०—प्रसम्भ्याम् ५।१ जानुन ६।१ नु १।१ स०—प्रश्च स
चेति प्रसमी ताभ्याम् ।

अर्थ—[बहुव्रीही] प्र सम् इत्येताभ्यामुत्तरस्य जानुशब्दस्य ह्युरादेशो
भवति समासान्ते बहुव्रीही । (प्र सम् व उत्तर जानु शब्द वा नु भावस्य हा
जाता है समासान्त बहुव्रीहि में)

उदा०—प्रष्टे जानुनी अम्य प्रत् । मत् ।

ऊर्ध्वाद् विभाषा ५।४।१३०

प० वि०—ऊर्ध्वात् ५।१ विभाषा १।१

अर्थ—[बहुव्रीही जानुन] ऊर्ध्वशब्दादुत्तरस्य जानुशब्दस्य विभाषा हरित्यादेशो भवति विभाषा बहुव्रीही समासान्त । (ऊर्ध्व शब्द क पश्चात् जानु शब्द का विक्रम से शुभ्रादेश होता है बहुव्रीहि समासान्त में)

उदा०—ऊर्ध्वं जानुनी अस्य, ऊर्ध्वजानु । ऊर्ध्वजु ।

ऊधपोऽनङ् ५।४।१३१

प० वि०—ऊधप ६।१ अनङ् १।१

अर्थ—[बहुव्रीही] ऊध शब्दान्तस्य बहुव्रीहेरनङादेशो भवति समासान्त । (ऊध शब्दात् बहुव्रीहि का समासान्त अनङ आदेश होता है)

उदा०—कुण्डमिव ऊधोऽभ्या, सा कुण्डोऽध्नी । घटोऽध्नी ।

सि०—घटोऽध्न् डीप् । घटोऽध्नी । सु । घटोऽध्नी ॥

जायाया निङ् ५।४।१३२

प० वि०—जायाया ६।१ निङ् १।१

अर्थ—[बहुव्रीही] जायाशब्दान्तस्य बहुव्रीहेर्निङ् आदेशो भवति बहुव्रीही समासान्त । जाया शब्दात् बहुव्रीहि का निङ आदेश होता है समासान्त)

युप्रतिर्जाया यस्य स युप्रजानि । युप्रति जाया निङ् । युप्रजाया नि । युप्रजाय् नि । युप्रजानि सु । युप्रजानि ॥

गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्य ५।४।१३३

प० वि०—गन्धस्य ६।१ इत् १।१ उत्पूतिसुसुरभिभ्य ५।३ स०—उच्च पूतिश्च सुश्च सुरभिश्च इति उत्पूतिसुसुरभय तेभ्य ।

अर्थ—[बहुव्रीही] उच्च पूति सुसुरभि इत्येतेभ्य परस्य गन्धस्य शब्दस्य टकारादेशो भवति समासान्तो बहुव्रीही समासे । (उच्च पूति सुसुरभि इति शब्दों के पश्चात् गन्ध शब्द का टकार होता है बहुव्रीहि समासान्त)

उदा०—उद्गतो गन्धोऽस्येति उद्गन्धि । पूतिगन्धि । सुगन्धि ॥

उपमानाच्च ५।४।१३४

प० वि०—उपमानान् ५।१ च अ० ।

अर्थ—[गन्धस्य बहुव्रीही] उपमानाद् यो गन्धशब्द तस्यैकारादेशो

भवति समासान्तो बहुव्रीही । (उपमान के पश्चात् जो गन्ध शब्द उसको इकार आदेश हा जाता है समासात् बहुव्रीहि में)

उदा०—पद्मस्य इत्त गन्धो यस्येति पद्मगन्धि ।

उर् प्रभृतिभ्य कप् ५।४।१५१

५० वि०—उर् प्रभृतिभ्य ५।३ कप् १।१ स०—उरस प्रभृतय उर् प्रभृतय तेभ्य उर् प्रभृतिभ्य

अर्थ—[बहुव्रीही] उर् प्रभृत्यन्ताद् बहुव्रीहे कप् प्रत्ययो भवति ।

(उर् इतिगि है अत म जिसके एत बहुव्रीहि से समासात् कप् प्रत्यय होता है)

उदा०—मृढमुरोऽस्य व्यूढोरस्क । प्रियसर्पिष्क ।

इत् स्त्रियाम् ५।४।१५१

५० वि०—इत् ५।१ स्त्रियाम् ७।१

अर्थ—[बहुव्रीही] इत्तन्ताद् बहुव्रीही कप् प्रत्ययो भवति स्त्रियां विषये । (इत् बहुव्रीहि स कप् प्रत्यय होता है स्त्रीलिङ्ग क विषय में)

उदा०—बह्वो दण्डिनोऽस्या शालायां बहुदण्डिका शाला ।

नद्यृतश्च ५।४।१५३

५० वि०—नद्यृत ५।१ च अ० । स०—नदी च ऋच्चेति नद्यृत तस्मात् ।

अर्थ—[बहुव्रीही] नद्यन्ताद् बहुव्रीहे ऋकारान्ताच्च कप् प्रत्ययो भवति । (नद्यत् बहुव्रीहि प्रीर ऋकारान्त से कप् प्रत्यय होता है समासात्)

उदा०—बह्व य कुमार्य अस्मिन्देशे इति बहुकुमारीको देश । बहुकनृक ।

सि०—बही जस् कुमारी जस् कप् । बहुकुमारीक^१ क । बहु कुमारीक^२ मु । बहुकुमारीक ।

शेषाद्विभाषा ५।४।१५४

५० वि०—शेषात् ५।१ विभाषा १।१

अर्थ—[बहुव्रीही] यस्माद् बहुव्रीहे समासान्तो न विहित स शेष-

१—स्त्रिया पु वद—(६ ३ ३४) २—केऽण (७ ४ १३) न षपि (७ ४ १४)

स्तस्माद् विभाषा कप् प्रत्ययो भवति । (जिम् बहुव्रीहि में समानान्त विधान नहीं किया गया है ऐसे शेष से विकल्प करके समामान्त कप् प्रत्यय होता है)

उदा०—बह्व्यः खट्वा अस्मिन् देशे म बहुखट्वको देशः । बहुखट्वाको देशः । बहुमालकः । बहुमालाकः ।

सि०—बह्वी जस् खट्वा जस् कप् । बह्वी खट्वा कप् । बहु खट्व क । बहुखट्वाक^२ ॥ बहुखट्वकः । बहुखट्वाकः ।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणज्ञमहावैयाकरणपण्डितब्रह्मदत्ता-
चार्याणामन्तेवासिना देवप्रकाशपातञ्जलेन विर-
चितायामष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया

पञ्चमाध्याये चतुर्थं पादः

इति पञ्चमोऽध्यायः

द्विवचनप्रकरणम्

एकाचो द्वे प्रथमस्य ६।१।१

प० वि०—एकाचः ६।१ द्वे १।२ प्रथमस्य ६।१ स०—एकोऽच् अस्मिन् इति एकाच् (बहु०) तस्य ।

अर्थ—प्रथमस्य एकाचो द्वे भवतः इत्यधिकारो वेदितव्यः आ सम्प्रसारणान् । (प्रथम एकाच् को द्वित्व हो जाता है इन बात का अधिकार समझना चाहिए सम्प्रसारण प्रकरण से पूर्व तक)

अजादेद्वितीयस्य ६।१।२

प० वि०—अजादेः ६।१ द्वितीयस्य ६।१ स०—अच् आदिर्यस्य इति अजादेः तस्य ।

अर्थ—[द्वे प्रथमस्य] अजादेद्वितीयस्यैकाचो द्वे भवतः इत्यधिकारो वेदितव्यः । (अच् है आदि में जिम् क ऐसे के द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है, इन बात का अधिकार समझना चाहिए)

१—स्त्रियाः पुबद्—(६. ३. ३४) २—केऽणः (७. ४. १३) न क्वि (७. ४. १४) भाषाप्रवृत्तस्याम् (७. ४. १५)

न न्द्रा संयोगादयः ६।१।३

प० वि०—न अ० । न्द्राः १।३ संयोगादयः १।३ स०—नश्च दश्च रश्चेति न्द्राः (समासविग्रहे नकारदकारे अकार उच्चारणार्थं । संयोगस्य आदिः । संयोगादिः ते संयोगादयः ।

अर्थ—[द्वितीयस्य एकाचो द्वे] द्वितीयस्य एकाचः । संयोगस्य आदयः नकारदकारेणा न द्विरुच्यन्ते ।

(द्वितीय एक अच् वाले समुदाय के संयोग के नकार, दकार और रेफ को द्वित्व नहीं होता है, इस व त का अधिकार समझना चाहिये)

पूर्वोऽभ्यास ६।१।४

प० वि०—पूर्व १।१ अभ्यासः १।१

अर्थ—[द्वे इति प्रथमान्त पष्ठ्वा विपरिणम्यते] ये द्वे विहिते तयोर्त्यं पूर्वं स अभ्यास सङ्गो भवति ।

(जिस द्वित्व को विधान किया गया है उन दोनों में जो पूर्व उसकी अभ्यास सज्ञा होती है)

उभे अभ्यस्तम् ६।१।५

प० वि०—उभे १।२ अभ्यस्तम् १।१

अर्थ—[द्वे] ये द्वे विहिते ते उभे समुदिते अभ्यस्तसङ्गे भवतः । (जिस द्वित्व का विधान किया गया है उन दोनों इकट्ठे की अभ्यस्त सज्ञा होती है)

लिटि धातोरनभ्यासस्य ६।१।८

प० वि०—लिटि ७।१ धातोः ६।१ अनभ्यासस्य ६।१ स०—न अभ्यास अनभ्यास' तस्य ।

अर्थ—[प्रथमस्य एकाचो द्वे द्वितीयस्य] लिटि परतो धातोः प्रथमस्यैकाचो द्वितीयस्य वा अनभ्यासस्य यथायोगं द्वे भवतः ।

(लिट् के परे रहने पर धातु के प्रथम या द्वितीय एकाच् को यथायोग द्वित्व होता है यदि वह अभ्यास सज्ञक न हो । अर्थात् पहले किसी और निमित्त को मानकर द्वित्व होकर अभ्यास सज्ञक न बना हो)

उदा०—पपाच । पपाठ

सन्यडो. ६।१।९

प० वि०—सन्यडो. ६।२ स०—संश्च यद् च इति सन्यडौ तयोः ।

अर्थ—[धातोरनभ्यासस्य] सनन्तस्य यद्धन्तस्य च धातोरवयवस्य प्रथमस्य एकाचो द्वितीयस्य वा अनभ्यासस्य यथायोगं द्वे भवतः ।

(सनन्त धोर यद्धन्त धातु के अनभ्यास अवयव के प्रथम या द्वितीय एक अच् वाने का यथायोग द्वित्व होता है ।

उदा०—सन.—पिपन्नति । पिपतिपति । अरिपति । अटिपति । अशिपति । उन्दिपति । अडिडिपति । अर्चिचपति । यद्—पाप-च्यते । यायच्यते । अटाट्यते । अरार्यते ।

सि०—अरिपति । अ सन् । अ स । अ ट् स । अर् इ स । अरिप । अरिप् रिप । अरि रिप लट् । अरिपि लृ । अरिपि तिप् । अरिपि शप् ति । अरिपि अ ति । अरिपति । अटिपति । अट् सन् । अट् म । अट् इट् स । अटिम । अटिप । अटिप् टिप । अटि टिप लट् । अटिपि तिप् । अटिपि शप् ति । अटि टिप अ ति । अटिपिपति । अशिपति । अश् स । अशिस । अशिप । अशिप शिप । अशिपि शप् तिप् । अशिपिपति । उन्दिपति । उन्दी क्लेदनं । उन्द् । उन्द् म । उन्दिप । उन्दिप् टिप । उन्दिपि शप् ति । उन्दिपिपति । अडिडिपति । अद्ड अभियोगे । अद्ड् मन् । अडिट् प । अद् डिप । अद् डि डिप । अडिड डिप शप् तिप् । अडिडिपति ।

× अर्त्तेरत्यतिशूनीनामुपमंग्यानम् इति यत् × अरार्यते । अ यद् । अर्त् य । अर्त्त्यत् । अर्त् अ र्य । अर् र्य । अरार्य लट् । अरार्य त । अरार्य गप् त । अरार्य त । अरार्यते ।

श्लो ६।१।१०

अर्थ—[धातोरनभ्यासस्य] श्लो परतोऽनभ्यासस्य धातोरवयवस्य प्रथमस्यैकाचो द्वितीयस्य वा यथायोगं द्वे भवतः । (श्लु क परे रहने पर अनभ्यास धातु के अवयव के प्रथम या द्वितीय एकाचो यथायोग द्वित्व होता है)

उदा०—जुहोति । विभेति ।

चटि ६।१।११

अर्थ—[धातोरनभ्यासस्य] चटि परतोऽनभ्यासस्य धातोरवयवस्य प्रथमस्यैकाचो द्वितीयस्य वा यथायोगं द्वे भवतः । (चट् के परे रहने पर अनभ्यास धातु के अवयव प्रथम या द्वितीय एकाचो यथायोग द्वित्व होता है)

१-यटि च (७. ४. ३०) २-यकारस्य रेकस्य प्रतिषेधो न भवतीति यत्तस्यम् (६. १. ३ बा०)

उदा०—अपीपचत् । अपीपठत् ।

❀ पचादीना एयन्ताना चडि कृते णिलोप उपधाह्रस्वत्व द्विर्वचन मित्येषा प्रवृत्तिक्रम । तथा च सन्वल्लुनि चङ्परे इति सन्वद्भावो विधीयमानो ह्रस्वस्य स्थानिवद्भावान्न प्रतिपिध्यते । यो हि अनादिष्ठाद् अच पूर्वस्तस्य विधि प्रति स्थानिवद्भावो भवति । न चास्मिन् कार्याणा क्रमेणानादिष्ठाच्च पूर्वोऽभ्यासो भवति इति । आटिटत् इति द्विर्वचनेऽचि इति स्थानिवद्भावाद् द्वितीयस्यैकाचो द्विर्वचनं भवति ❀

सम्प्रसारणप्रकरणम्

प्यङ् सम्प्रसारण पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे ६।१।१३

प० वि०—प्यङ् ६।१ सम्प्रसारणम् १।१ पुत्रपत्यो ६।२ तत्पुरुषे ७।१

स०—पुत्रश्च पतिश्च इति पुत्रपती तयो पुत्रपत्यो ।

अर्थ—पुत्रपत्योरुत्तरपदयोस्तत्पुरुषे समासे प्यङ् सम्प्रसारण भवति ।

(तत्पुरुष में पुत्र और पति शब्द के उत्तर पद में परे रहन पर प्यङ् का सम्प्रसारण हो जाता है)

उदा०—कारीपगन्धीपुत्र । कारीपगन्धीपति । कौमुदगन्धीपुत्र । कौमुदगन्धीपति ।

सि०—अन्यत्सर्वं यद्दृश्चाप् इति सूत्रे द्रष्टव्यम् विशेषस्तु कारीप गन्ध्याया पुत्र इति विग्रह । कारीपगन्ध्या पुत्र । कारीपगन्ध् इ आ पुत्र । कारीपगन्ध् ई^१ पुत्र । कारीपगन्धीपुत्र । कारीपगन्धीपुत्र । कारीपगन्धीपति ।

वन्धुनि बहुव्रीहौ ६।१।१४

प० वि०—वन्धुनि ७।१ बहुव्रीहौ ७।१

अर्थ—[प्यङ् सम्प्रसारणम्] वन्धुशब्द उत्तरपदे बहुव्रीहौ समासे प्यङ् सम्प्रसारण भवति । (वन्धु शब्द के उत्तरपद में परे रहन पर बहुव्रीहि समास में प्यङ् को सम्प्रसारण होता है)

उदा०—कारीपगन्धीवन्धु । कौमुदगन्धीवन्धु । कारीपगन्ध्या वन्धुरस्येति विग्रह ।

वचिस्वपियजादीना किति ६।१।१५

प० वि०—वचिस्वपियजादीनाम् ६।३ किति ७।१ स०—यज आदि-

र्येषान्ते यजादयः । वचिश्च स्वपिश्च यजादयश्चेति वचिस्वपियजादयः
तेषाम् । कृ इद् यस्य स किन् तस्मिन् किति ।

अर्थ—[सम्प्रसारणम्] वच परिभाषणे । ब्रूवो वचिरिति च ।
त्रिष्वप् शये । यजादयो, यज देवपूजासंगतिकरणदानेष्वित्यतः प्रभृति
आ गणान्तात् । तेषां वचिस्वपियजादीनां सम्प्रसारणं भवति किति
प्रत्यये परतः । (वच्, स्वप् और यजादि धातुओं का सम्प्रसारण होता है किन्
प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—वचि-उक्तः । उक्तवान् । स्वपि-सुप्तः । सुप्तवान् । यज-
इष्टः । इष्टवान् ।

सि०—वच् क्त । वच् त । उ अ च् त । उच्^१ त । उक्तः^२ ।

ग्रहिय्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छति-

भृज्जतीना डिति च ६।१।१६

प० वि०—ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वष्टि-विचति-वृश्चति-पृच्छति-
भृज्जतीनाम् ६।३ डिति ७।१ च अ० । स०—ग्रहिश्च ज्याश्च वयिश्च
व्यधिश्च वष्टिश्च विचतिश्च वृश्चतिश्च पृच्छतिश्च भृज्जतिश्चेति
ग्रहि-ज्या - वयि-व्यधि-वष्टि - विचति-वृश्चति-पृच्छति-भृज्जतयः
तेषाम् । इ इत् यस्येति डित् तस्मिन् डिति ।

अर्थ—[सम्प्रसारणम् किति] ग्रह उपादाने, ज्या वयोहानी, वेवो
वयि, व्यधि ताडने, वश कान्ती, व्यच व्याजीकरणे, ओग्रश्च छेदने,
प्रच्छ शीप्तायाम्, भ्रस्ज पाके इत्येतेषां धातूनां डिति प्रत्यये परतश्च-
कारात्किति च सम्प्रसारणं भवति । (इन धातुओं को डित् और कित् प्रत्यय
के परे रहने पर सम्प्रसारण होता है)

उदा०—ग्रह डिति—गृह्णाति । जरीगृह्यते । किति—गृहीतः । गृही-
तवान् । ज्या डिति—जिनाति । जेजीयते । किति—जीनः । जीनवान् ।
वयि—लिटि परतो वेवो वयिरादेशस्तस्य डिद्भावात् किदेवोदाहियते ।
ऊयतुः । ऊयुः । व्यधि डिति—विध्यति । वेविध्यते । किति—विद्धः ।
विद्धवान् । वश डिति—वशति । वशन्ति । किति—वशितः । वशितवान् ।
व्यच डिति—विचति । वेविच्यते । किति—विचितः । विचितवान् । व्रश्च
डिति—वृश्चति । वरीवृश्च्यते । किति—वृक्लः । वृक्लवान् । प्रच्छ

डिति—पृच्छति । परिपृच्छयते । प्रश्न , नङि तु प्रश्ने चासन्नकाले इति निपातनाद् असम्प्रसारणम् । किति—पृष्ट । पृष्टवान् । भ्रञ्ज डिति-भृञ्जति । वरीभृञ्जयते । भ्रञ्ज किति—भृष्ट । भृष्टवान् ।

सि०—गृहाति । ग्रह् लट् । ग्रह् ल् । ग्रह् तिप् । ग्रह् श्ना ति । ग्रह् ना ति । गृञ् अ ह् ना ति । गृह् ना ति । गृहाति । ग्रह यङ् । ग्रह य । गृह् य । गृह् गृह् य । गृ गृह् य । गर^१ गृह् य । ग^२ गृह् य । ज^३ गृह् य । ज रीकृ^४ गृह् य । जरीगृह्य लट् । जरीगृह्य शप् । जरीगृह्य अ ते । जरीगृह्यते । ग्रह् क्त । गृह् त । गृह् ईट् । गृहीत । जी^५ ना ति । जि^६ नाति । ज्या क्त । ज्या त । जि त । जी त । जी न^७ । जीन । उयतु । वेञ् । वेञ् लिट् । वय लिट् । वय् अतुस् । उ अ य् अतुस् । उय् अतुस् । उय् उय् अतुस् । उ उय् अतुस् । उयत्स् । उयतु । विद्ध । व्यध क्त । व्यध् त । व इ अ ध् त । वि अ ध् त । वि ध् त । त्रिध् घ^८ । विद्ध । त्रिद्ध । उष्ट । वश् क्त । वश् त । उ अ श् त । उश् त । उप^९ त । उप^{१०} । उष्ट सु । उष्ट । वृक् ण । व्रश्च् क्त । व्रश्च् त । वृश्च त । वृश्क् त । वृक्^{११} न । वृक् ण । वृक् ण । क्लृथमत्र कुच, न व्रश्चभ्रस्जेति सूत्रेण परेण भणितव्यम्—उच्यते X निष्ठादेश पत्वस्वरप्रत्ययविधीड विविपु सिद्धो वक्तव्य X तत्र पत्व प्रति नत्वस्य सिद्धत्वाद् मलादि-निष्ठा न भवति । कुचे तु कर्त्तव्ये तदसिद्धमेवेति प्रवृत्ते कुच्यम्क्लृ

लिट्यभ्यासरयोभयेपाम् ६।१।१७

प० वि०—लिटि ७।१ अभ्यासस्य ६।१ उभयेपाम् ६।३

अर्थ [सम्प्रसारणम्] उभयेपा वच्यादीनां महादीनां च लिटि परत

- १—उरत् (७ ४ ६६) उरण् स्पर (१ १ ५०) २—पूर्वोऽभ्यास (६ १ ४) अत्र लोपोऽभ्यासस्य (७. ४ ५०) ह्लादि शप् (७ ४. ६०)
 ३—कुहोश्चु (७ ४ ७२) ४—रोगुदुपधस्य च (७ ४ ६०) आद्यन्ती टकितौ (१ १ ४५) ५—हल (६ ४. २) ६—न्वादीना ह्रस्व. (७. ३. ८०) ७—त्वादिभ्यश्च (८ २ ४४) ८—भपस्तथोर्धोऽथ (८. २. ४०)
 ९—व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशा प (८. २ ३६) १०—ष्टुना ष्टु (८ ४ ४०) ११—स्को सयोगाद्योरन्ते च (८ २. २६)

अभ्यासस्य सम्प्रसारणं भवति । (वच इत्यादि श्रौर ग्रह इत्यादि इन दोनों के अभ्यास का सम्प्रसारण होता है लिट् के पर रहने पर)

उदा०—वचि—उवाच । उवचिथ । वचप्—सुप्ताय । सुप्तायिथ । यज्—इयाज । इयजिथ । ग्रह्—जग्राह । जग्रहिय । ऋग्रहेरविशेषः ॐ

(धानु के अभ्यास को सम्प्रसारण होकर 'जग्रह्' प्र' 'उरत्' म धरादस करके रेफ की निवृत्ति करने से भी 'जग्राह' रूप बनता है श्रौर सम्प्रसारण बिना किए भी 'ह्लादि शेष' से रेफ की निवृत्ति होने पर वही रूप बनता है ।

ज्या—जिज्यौ । जिज्यिथ । वयि—उवाय । उवयिथ । व्यध—विज्याध । विज्यिथ । वश—उवाश । अवशिथ । व्यच—त्रिव्याच । विव्यचिथ । वश्च—वज्रश्च । वज्रश्चिथ । वृच्छतिभृज्जयोरविशेष पूर्ववत् ।

सिः—वच । वच् लिट् । वच् ल् । वच् णल् । वाच् अ । वाच् वाच् अ । वा वाच् अ । व वाच् अ । उ अ वाच् अ । उवाच । वच् लिट् । वच् थल् । वच् थ । ऋअत्र प्रकरणे इदं बोध्यम्—'ऋदिनियमादित् प्राप्न उदेशेऽवत इति प्रतिपिद्ध', 'ऋतो भारद्वाजस्य इति नियमान् पुनरिह आगमो भवति' वच् ट् थ । वचिथ । वच् वच् थ । व वच् थ । उ अ वचिथ । उवचिथ । उवस्य ॥ ग्रह् लिट् । ग्रह् णल् । ग्राह् अ । ग्राह् ग्राह् अ । ग्रा ग्राह् अ । ग ग्राह् अ । गृ ग्राह् अ । गर् ग्राह् अ । ग ग्राह् अ । जग्राह् ॥ ऋयद्यपि ग्रह्पृच्छतिभृज्जनीनामभ्यासस्य सम्प्रसारणे कृतेऽकृते च विशेषो नास्ति, तथापि पर्जन्यपक्षणं प्रवर्त्तते । जग्राह्, पग्रच्छ, वज्रज, इत्यादिषु सम्प्रसारणे कृते प्रयोगो निष्पादनीयः कृतेऽकृतेऽपि विशेषः । सम्प्रसारणस्य अकरणे वज्रश्च इत्यत्र वज्रस्य सम्प्रसारणं ग्यात् । कृते तु न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम् इति निषेधप्रवृत्तिरिति ॥

विभाषा इवे. ६।१।३०

प० वि०—विभाषा १।१ ज्येः ६।१

अर्थ—[सम्प्रसारणम्, लिट्यहोश्च] दुश्चोरिय इत्येतस्य भाषाः विभाषा सम्प्रसारणं भवति लिटि यदि च परत' । (दुष्पातिव धानु का विव्यन् मे सम्प्रसारण होता है लिट् श्रौर पट् के पर होने पर)

उदा०—शुगाप । शिशवाय । शुगुवतुः । शिग्पयतु' । यदि—शोगु-यते । शैवीयते ।

सि०—दुश्चोरिव । शिव । शिव लिट् । शिव ल् । शिव णल् । श् व् इ णल् । श् व् इ अ । श् उ अ । शु अ । शौ अ । शाव् अ । शु^१ शाव् । शुशाव । शिव णल् । श्वै अ । श्याय् अ । शि^१ श्वाय् अ । शिरवाय ॥

न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम् ६।१।३६

प० वि०—न अ० । सम्प्रसारणे ७।१ सम्प्रसारणम् १।१

अर्थ—सम्प्रसारणे परतः सम्प्रसारणं न भवति (सम्प्रसारण के परे रहने पर सम्प्रसारण नहीं होता है)

उदा०—विद्धः ।

सि०—व्यध् क्त । व्यध् त । व् इ अ ध् त । विध् त । विद्धः ।
 ❀अन्यत्सर्वं साधनं सम्प्रसारणविधायके सूत्रे द्रष्टव्यम् । अत्र चकारस्य सम्प्रसारणे कृते पुनः चकारस्य सम्प्रसारणमनेन सूत्रेण प्रतिपिध्यते ❀

घात्वप्रकरणम्

आदेच उपदेशेऽशिति ६।१।४४

प० वि०—आत् १।१ षच् । ६।१ उपदेशे ७।१ अशिति ७।१ स०—
 न शिन् अशित् तस्मिन् अशिति ।

अर्थ—[घातोः] उपदेशे यां धातुरेजन्तस्तस्य आकारादेशो भवति, शिति तु न भवति । (उपदेश में जो धातु एजन्त उसको आकार आदेश हो जाता है, षकार इत् वाला प्रत्यय परे हो तो नहीं)

उदा०—❀अशीतीति प्रसज्यप्रतिषेधोऽय तेनैतदात्वमनैमित्तिक प्रागेव प्रत्ययोत्पत्तेर्भवति ❀ ग्लाता । ग्लातुम् । ग्लातव्यम् । ग्लाता । ग्लातुम् । ग्लातव्यम् ।

सि०—ग्लै ग्लै हर्यक्षये । ग्लै । ग्ला वृच् । ग्ला वृच् । ग्लावृ सु । ग्लात् अनङ् सु । ग्लातन् स् । ग्लातान् स् । ग्लातान् । ग्लाता । ग्लातारौ । ग्लातारः । ग्लातारम् । ग्लातारौ । ग्लातन् । ग्लात्रा । ग्लावृ-भ्याम् । ग्लावृभिः ।

क्रीड्जीना णी ६।१।४७

प० वि०—क्रीड्जीनाम् ६।३ णी ७।१ स०—क्रीश्च इङ् च जिश्चेति क्रीड्जय' तेषां क्रीड्जीनाम् ।

अर्थ—[आदेच्] डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये, इङ् अच्ययने, जि जये इत्येतेषां धातूनाम् एचः स्थाने णौ परतः आकारादेशो भवति ।

(डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये, इङ् अच्ययने, जि जये इन धातुभ्रं का आकार आदेश हो जाता है णिच् के परे रहने पर)

उदा०—क्रापयति । अध्यापयति । जापयति ।

सि०—डुक्रीञ् । क्री णिच् । क्री इ । का इ । का पुक्^१ इ । कापि लट् । कापि ल् । कापि तिप् । कापि शप् ति । कापि अ ति । कापे अ ति । कापय् अ ति । कापयति । कापयतः । कापयन्ति ॥ इङ् । इ णिच् । इ इ । आ इ । आ पुक्^२ इ । आपि लट् । आपि तिप् । आपि शप् ति । आपे अ ति । आपय् अ ति । आपयति । अधि आपयति । अध्यापयति । जि णिच् । जा इ । जा पुक्^३ इ । जापि । जापि लट् । जापि तिप् । जापि शप् ति । जापे अ ति । जापय् अ ति । जापयति ।

सृजिदृशोर्भक्त्यमकिति ६।१।५७

प० वि०—सृजिदृशोः ६।२ कलि ७।१ अम् १।१ अकिति ७।१ स०—सृजिश्च दृशश्चेति सृजिदृशो तयोः । न किदति अकिन् तस्मिन् ।

अर्थ—सृज त्रिसर्गे, दृशिर् प्रेक्षणौ इत्येतयोर्धात्वोर्भलादावकिति प्रत्यये परतोऽमागमो भवति । (सृज् दृशिर इन धातुभा को भ्रम् वा भागम होता है भलादि भक्ति प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—स्रष्टा । स्रष्टुम् । स्रष्टव्यम् । द्रष्टा । द्रष्टुम् । द्रष्टव्यम् ।
ऋलघूप रगुणस्यापवादोऽयममागमः

सि०—सृज । सृज् टच् । सृ अम् ज् ट । सृज्^१ ट् । स्रप्^२ ट् । स्रष्टु सु । स्रष्टा । द्रष्टा ॥

धात्वादेः पः मः ६।१।६२

प० वि०—धात्वादेः ६।१ पः ६।१ सः १।१ स०—धातोरादिः धात्वादिः तस्य धात्वादेः ।

अर्थ—धातोरादेः पकारस्य सकारादेशो भवति । (धातु के प्रादि पकार का सकारादेश होता है)

उदा०—सहते । सहते । सहन्ते । सहसे । सहथे । सहध्वे । सदे ।

१—धातिहोन्ती० (७. ३. ३६) २—इवो यणचि (६. १. ७५)

३—प्रद्वभ्रस्त्रपुत्रमृजयत्रराजभाजच्छजां प. (८. २. ३६)

सहावहे । सहामहे ।

सि०—पह । पह । सह लट् । सह् त । सह् शप् त । सह् अ त ।
सह् अ ते । सहते ॥

गो नः ६।१।६३

प० वि०—णः ६।१ नः १।१

अर्थ—[धात्वादेः] धातोरादेः णकारस्य नकारादेशो भवति । (धातु
के आदि लुकार का नकार आदेश होता है)

उदा०—नयति । नयतः । नयन्ति । नयसि । नयथः । नयथ ।
नयामि । नयावः । नयामः ॥ नमति । नमतः । नमन्ति ।

सि०—णीञ् । णी । नी लट् । नी ल् । नी तिप् । नी शप् ति ।
नी अ ति । ने अ ति । न्य् अ ति । नयति ।

लोपो व्योर्वलि ६।१।६४

प० वि०—लोपः १।१ व्योः ६।२ वलि ७।१ स०—यश्च यश्चेति
व्यो तयोः व्योः

अर्थ—वकारयकारयोर्लोपो भवति वलि परतः । ('वलि प्रत्याहा' के पने
रहने पर वकार और यकार का लोप होता है)

उदा०—यकारस्य—पचेत् । पचेताम् । पचेयुः । पचेरन् । यजेरन्
वकारस्य—जीरदानुः ।

सि०—हुपचप् पाके । पच् लिङ् । पच् ल् । पच् तिप् । पच् शप्
ति । पच ति । पच यामुट् ति । पच यास् सुट् ति । पच या^१ ति । पच
यात् । पच इय् त् । पचेय् त् । पचेन् । पचेय् ताम् । पचेताम् । पचे-
रन् । पच् शप् क् । पच रन् । पच सीयुट् रन् । पच् ईय् रन् । पचेय
रन् । पचेरन् ॥ जीव् । जीव् रदानुक्^२ । जीव् रदानु । जीरदानु सु ।
जीरदानुः ।

वेरपृक्तस्य ६।१।६५

प० वि०—वेः ६।१ अपृक्तस्य ६।१

अर्थ—[लोपः] अपृक्तस्य वेर्लोपो भवति । (अपृक्त वकार का लोप
होता है)

१—साधनं तु सुट् तियोत्यत्र द्रष्टव्यम् २—महाभाष्यकारसम्मत्या जीव-

उदा०—चित् । चितौ । चित । छिन् । छिदौ । छिद ।

सि०—चिञ् । चि ङिप्^१ । चि विप् । चि वि । चि व् । चि । चि तुक् । चित् सु । चित् स् । चित् । छिदिर् । छिद् ङिप् । छिद् व् । छिद् सु । छित्^२ । छिदौ ॥

हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्वपृक्त हल् ६।१।६६

प० वि०—हल्ङ्याब्भ्य ५।३ दीर्घात् ५।१ सुतिसि १।१ अपृक्त १।१ हल् १।१ स०—हल् च डी च आप् चेति हल्ङ्याप तभ्य । हल्ङ्याब्भ्य । मुश्च तिश्च सिश्च इति सुतिसि (समा० द्वन्द्व)

अर्थ—[लोप] हलन्ताद् ड्यन्ताद् आगन्ताच्च दीर्घान् पर सु ति सि इत्येतद् अपृक्त हल् लुप्यते । (हलन्त ड्यन्त भोर आगत जा दीर्घं उसक पश्चात् सु ति सि जो अपृक्त हल उमका लोप हाता है)

उदा०—हलन्तान् मुलोप -राजा । तच्चा । कर्त्ता । हर्त्ता । ड्यन्तात् मुलोप -कुमारी । गौरी । शाङ्ग रवी । आगन्तात् मुलोप -रटया । लता । मीता । गीता । हलन्तादेव तिलोप मिलोपश्च । तिलोप -अधिभर्भवान् । अजागर्भवान् । सिलोप -अभिनोऽत्र ।

सि०—राजन म् । राजान्^३ म् । राजान् । राजा । तच्चन सु । तच्चान् स् । तच्चान् । तच्चा । अपिभर् । भृञ् लट् । भृ ल् । भृ तिप् । भृ श्लु ति । भृ ति । भर्^४ ति । भर् भर्^५ ति । भ भर्^६ ति । वभर्^७ ति । विभर्^८ न । विभर् । अट् विभर् । अपिभर्भवान् ॥ जागृ निद्राक्षये । जागृ लङ् । जागृ तिप् । जागृ शप् ति । जागृ ति । जागर् न् । जागर् । अट् जागर् । अजागर् भवान् । अजागभवान् । अभिनोऽत्र । भिदिर् । भिद् । भिद् लङ् । भिद् ल् । भिद् सिप् । भिरनमूद् सि । भिनद् स् । भिनद् । भिनर्^९ । अट् भिनर् अभिनर् अत्र । अभिन उ^{१०} अत्र । अभिनो^{११} अत्र । अभिनोऽत्र^{१२} ॥

पातारदानुक् । जीवति प्राणान् धाग्यति इति जोग्गनु । वैदिकं रूपमेतद् (उणा० २. २३) १—क्विव च (३ २ ७६) २—धावसान (८ ५ ५५) ३—सर्वनामस्थान चासम्बुद्धौ (६. ४. ८) ४—मापधातुकापप नृकयो (७ ३. ८४) उरण रपर (१ १ ५०) ५—स्तौ (६. १. १०) ६—चृत्रामिन् (७ ४ ७६) ७—दत्त (८ २. ७५) ८—कृता राट्पुत्रादपुन (६ १ १०६) ९—पादगुण (६ १ ८४) १०—एष पदात्ताशति (६. १. १०५)

एङ्हस्वात्सु बुद्धे ६।१।६७

प० वि०—एङ्हस्वात् १।१ सवुद्धे ६।१ स०—एङ् च ह्रस्वश्चेति एङ्हस्व तस्मात् ।

अर्थ—[लोप हल्] एङन्तात् प्रातिपदिकात् ह्रस्वान्ताच्च परो हल् लुप्यते स चेत् सवुद्धेर्भवति । (एङन्त और ह्रस्वान्त प्रातिपदिक के पश्चात् हल् का लोप होता है यदि वह हल् सम्बुद्धि का हो)

उदा०—एङन्तात्-हे अग्ने । हे वायो । ह्रस्वान्तात्-हे देवदत्त । हे नदि । हे वधु । हे कुण्ड ।

सि०—अग्नि सु । अग्ने^१ स् । अग्ने^२ । हे कुण्ड सु इत्यत्र अतोऽम् इत्यम् आदेशे कृते अग्नि पूर्व इति पूर्वरूपे कृते हल्मात्रस्य मकारस्य लोपो भवति ।

तुगागमप्रकरणम्

ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ६।१।६६

प० वि०—ह्रस्वस्य ६।१ पिति ७।१ कृति ७।१ तुक् १।१ स०—पकार इत् यस्य सोऽय पित् तस्मिन् पिति ।

अर्थ—पिति कृति परतो ह्रस्वस्य तुगागमो भवति ।

(पकार इत् वात् कृतसनात् प्रत्यय के परे रहन पर ह्रस्व का तुक् का आगम होता है)

उदा०—अग्निचित् । सोमसुत् । प्रकृत्य । प्रकृत्य ।

सहिताप्रकरणम्

सहितायाम् ६।१।७०

प० वि०—सहितायाम् ७।१

अर्थ—इतोऽग्ने अनुदात्त पदमेकवर्जम् इति यावत् वक्ष्यमाणानि कार्वाणि सहितायां भवन्ति इत्यधिकारो वेदितव्य । (यहाँ से आगे कहे जान वाले काय सहिता के विषय में होते हैं, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

१ वस्तुतः 'सवविधिम्यो लोपविधिवलीमान्' इतिपरिभाषया अमादेशात् प्रागेव लोप प्रवर्तत ।

१-ह्रस्वस्य गुण (७ ३ १०८) = एङ्हस्वात्सम्बुद्धे (६ १ ६९)

छे च ६।१।७१

प० वि०—छे ७।१ च छ० ।

अर्थ—[ह्रस्वस्य तुक्] छकारे परतः संहितायां विषये ह्रस्वस्य तुगा-
गमो भवति । (छकार के परे रहने पर संहिता के विषय में ह्रस्व को तुक् का
प्रागम होता है)

उदा०—इच्छति । गच्छति । यच्छति ।

सि०—इपुगमियमां छ इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

इको यणचि ६।१।७४

प० वि०—इकः ६।१ यण् १।१ अचि ७।१

अर्थ—[संहितायाम्] अचि परतः इकः स्थाने यण् भवति संहि-
तायां विषये । (अच् के परे रहने पर इक् के स्थान में यण होता है, संहिता के
विषय में)

उदा०—इध्यत्र । मध्यत्र । कर्त्रर्थम् । लाहृतिः ।

सि०—इधि अत्र । इध् य् अत्र । इध्यत्र । मधु अत्र । मध् य्
अत्र । मध्यत्र । कर्त् अर्थम् । कर्त् अर्थम् । कर्त्रर्थम् । ल् आहृतिः ।
ल् आहृतिः । लाहृतिः । ×इकां यणभिर्यनान व्याडिगालयोरिति
वस्तव्यम्× भू आदयः । भून् आदयः । भूनादयः ।

एचोऽयवायाव ६।१।७५

प० वि०—एचः ६।१ अयवायावः १।३ स०—अय् च अन् च आय्
च आय् चेति अयवायावः ।

अर्थ—[संहितायाम् अचि] अचि परतः एचः स्थाने अय् अन्
आय् आय् इयेते आदेगा भवन्ति संहितायां विषये यथामग्यम् ।

(अच् के परे रहने पर एच् के स्थान में अय् अन् च आय् प्रत्ययों के
सादेन संहिता के विषय में होने है)

उदा०—चयनम् । लयनम् । चायनः । लायनः ।

सि०—ये अनम् । य् अय् अनम् । यदनम् । लो अनम् । ल्य-
नम् । यं अकः । य् आय् अकः । चायकः । लो अकः । ल आय् अकः ।
लायकः ।

सहितायामेकादेशप्रकरणम्

एक पूर्वपरयो ६।१।८१

प० वि०—एक १।१ पूर्वपरयो ६।१ स०—व्यत्यात्परस्येति एतस्मात् प्राक् पूर्वस्य परस्य च द्वयोरपि स्थाने एकादेशो भवति इत्यधिकारो वेदितव्य । (स्वत्यात्परस्य इत् मूत्र तक पूव और पर दोनोके स्थान में एकादेश होता है इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

आदगुण ६।१।८४

प० वि०—आत् १।१ गुण १।१

अर्थ—[अचि सहिताया पूर्वपरयो एक] अवर्णादचि पूर्वपूर्यो स्थाने गुण एकादशो भवति सहिताया विषये ।

(अवर्ण के पश्चात् अच के परे रहन पर पूव और पर के स्थान में गुण एकादश होता है सहिता के विषय में)

उ०—खट्वेन्द्र । मालेन्द्र । तवोदकम् । खट्वोदकम् । तवश्य । खत्वश्य ।

सि०—खत्वा इन्द्र । तव उदकम् । खट्वा उदकम् । तव ऋश्य । खत्वा ऋश्य ॥

वृद्धिरेचि ६।१।८५

प० वि०—वृद्धि १।१ एचि ७।१

अर्थ—[आत्] अवर्णादेचि पूर्वपरयो वृद्धिरेकादेशो भवति ।

(अवर्ण के पश्चात् एच के परे रहन पर पूव पर के स्थान में वृद्धि एकादश होता है सहिता के विषय में)

उ०—ब्रह्म एडका, ब्रह्मैडका । खट्वा एडका, खत्वैडका । ब्रह्म ऐतिकायन, ब्रह्मैतिकायन खत्वा ऐतिकायन, खत्वैतिकायन । ब्रह्म ओदनम् ब्रह्मैदनम् । खट्वा ओदनम्, खत्वौदनम् । ब्रह्म औपगव, ब्रह्मैपगव । खत्वा औपगव, खत्वौपगव ।

आटश्च ६।१।८७

प० वि०—आट १।१ च अ० ।

अर्थ—[अचि] आट अचि पूर्वपरयो स्थाने वृद्धिरेकादेशो भवति सहिताया विषये । (आट के पश्चात् अच के परे रहन पर पूव और पर के स्थान में वृद्धि एकादश होता है सहिता के विषय में)

उदा०—ऐवत । ऐवेताम् । ऐवन्त । ऐवथाः । ऐवेथाम् । ऐवध्वम् ।
ऐधे । ऐधावहि । ऐधामहि ।

सि०—एध । एध् ङङ् । एध् ल् । एध् त् । एध् शप् त् । एध् अ
त । एवत । आट् एधत । आ एधत । ऐवत ।

आट् प्रहणेन याटोऽपि प्रहणं भवति तेन 'कुमार या ए' इत्यन्या-
यामनेन वृद्धिर्भवति कुमार्ये ।

श्रोतोऽम्शसोः ६।१।६०

प० वि०—आ १।१ श्रोतः १।१ अम्शसोः ७।२ म०—अम् च
शश्चेति अम्शसो नयोः अम्शसोः ।

अर्थ—श्रोकारादभि शम् च परत' पूर्वपरयोः स्थाने आकारादेशो
भवति । (श्रीकार के परवान् घम् श्रीर वाग् के परे रहने पर पूर्व पर के स्थान
में आकारादेश होता है)

उदा०—गा परय । गाः पर्य । गां परय, गा पर्य ।

सि०—गो अम् । गा अम् । गाम् । गो शम्, गो अम् । गा अम् ।
गाम् । गारु । गार् । गाः ।

एटि [पररूपम्] ६।१।६१

उस्यपदान्तात् ६।१।६२

प० वि०—उसि ७।१ अपदान्तान् १।१ म०—पदस्य अन्त. पदान्तः
तस्मान् पदान्तान् ।

अर्थ—[आन् पररूपम्] अवर्णादपदान्तादुमि पूर्वपरयोः स्थाने
पररूपमेकादेशो भवति । (परदान्त प्रकार के परवान् उम् के परे रहने पर
श्रीर पर के स्थान में पररूप एकादेश होता है)

उदा०—भिन्वः । द्विन्वुः । अगान् । अगागाम् । अगुः ।
अगाः । अगागाम् । अगान् । अगाम् । अगाव । अगाम ।

सि०—भिद्वि । भिद् ङिङ् । भिद् ल् । भिद् ङि । भिद् जुम् ।
भिद् उत् । भि श्नमद् उम् । भिनद् उम् । भिनद् उम् । भिनद् उम् ।
भिन्द् यामुद् उम् । भिन्द् याम् उम् । भिन्द्वा उम् । भिन्वुः । अगुः ।
इत्ययं माघर्न गान्तिग्यापुत्राभूभ्यः सिनः परस्मैरदेषु इत्यत्र इष्टः ।

घतो गुणे ६।१।६४

प० वि०—घतः १।१ गुणे ७।१

अर्थ—[अपदान्तान् पररूपम्] अपदान्तादकाराद् गुणे परतः पूर्व-परयोः स्थाने पररूपमेकादेशो भवति । (अपदान्त अकार के पश्चात् गुण के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान में पररूप एकादेश होता है)

उदा०—पचन्ति । यजन्ति ।

सि०—अदेङ्गुणः इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

अकः सवर्णो दीर्घः ६।१।६७

प० वि०—अकः ५।१ सवर्णो ७।१ दीर्घः १।१

अर्थ—[अचि] अकः उत्तरस्य सवर्णो अचि परतः पूर्वपरयोः स्थाने दीर्घ एकादेशो भवति । (अक् के पश्चात् सवर्ण अच् के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान में दीर्घ एकादेश होता है)

उदा०—दण्ड-अप्रम्, दण्डाप्रम् । दधि-इन्द्रः, दधीन्द्रः । मधु-उदके, मधूदके । होतु-ऋश्यः, होतृश्यः ।

प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ६।१।६८

प० वि०—प्रथमयोः ७।१ पूर्वसवर्णः १।१ स०—प्रथमा च प्रथमा च इति प्रथमे तयोः । पूर्वस्य सवर्णः इति पूर्वसवर्णः (पट्टी तत्पु०)

अर्थ—[अकः दीर्घः अचि] ऋ प्रथमाशब्दो विभक्तिविशेषे रूढस्तरसाहचर्यान् द्वितीयापि प्रथमेत्युक्ता ऋ प्रथमायां द्वितीयायां च विभक्तावचि अक उत्तरस्य पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशो भवति । (अक् के पश्चात् प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के अच् के परे रहने पर पूर्व पर के स्थान में पूर्व सवर्ण दीर्घ एकादेश होता है)

उदा०—अग्नी । वायू । वृक्षाः । प्लक्षाः । वृक्षान् । प्लक्षान् ।

सि०—अग्नि औ । अग्नी । वृक्ष जस् । वृक्ष अस् । वृक्षाः । वृक्ष शस् । वृक्ष अस् । वृक्षास् । वृक्षान् ।

तस्माच्छसो नः पुंसि ६।१।६९

प० वि०—तस्मात् ५।१ शसः ६।१ नः १।१ पुंसि ७।१

अर्थ—[पूर्वसवर्णः दीर्घः] तस्मात् पूर्वसवर्णदीर्घादुत्तरस्य शसो न इत्ययमादेशो भवति पुंसि । (उत्त पूर्वसवर्ण दीर्घ के पश्चात् शस् के स्थान में नकार आदेश होता है पुल्लिङ्ग में)

उदा०—वृक्षान्, पुरुषान्, यान्, तान् ।

सि०—अलोऽन्त्यस्य इत्यत्र ऋष्टव्यम् ।

नादिचि ६।१।१००

प० वि०—न अ० । आत् ५।१ इचि ७।१

अर्थ—अवर्णादिचि यदुक्तं तन्न भवति । पूर्वसवर्णदीर्घो न भवतीत्यर्थः । (अवर्ण के पश्चात् इच् प्रत्याहार के पर रहने पर पूर्व सवर्ण दीर्घ नहीं होता है)

उदा०—रामो । तो । यो । स्वप्ने । कुण्डे ।

सि०—राम औ । रामी । अत्रप्रकरणे इदं बोध्यम्—राम औ इति स्थिते वृद्धिरेचि इति सूत्रेण वृद्धि-एकादेशे प्राप्ते प्रथमयोः पूर्वसवर्ण इत्यस्य सूत्रस्य तदपवादत्वात् प्रवृत्तिः, तस्यापि निषेधः नादिचि इति सूत्रेण । पुनः वृद्धिरेचि इत्यनेनैव सूत्रेण वृद्धिरेकादेशो भवति ।

दीर्घाञ्जसि च ६।१।१०१

प० वि०—दीर्घात् ५।१ जसि ७।१ च अ० ।

अर्थ—[इचि] दीर्घाञ्जसि इचि च परतः पूर्वसवर्णदीर्घो न भवति । (दीर्घ के पश्चात् जम् घोर इच् के परे रहने पर पूर्व पर के स्थान में पूर्व सवर्ण दीर्घ एकादेश नहीं होता है)

उदा०—कुमार्यः । कुमारी । ब्रह्मवन्धु । ब्रह्मवन्धुः ।

सि०—कुमारी जस् । कुमारी अस् । कुमार्यः । कुमारी औ । कुमारी । ब्रह्मवन्धू जस् । ब्रह्मवन्धुः । ब्रह्मवन्धू औ । ब्रह्मवन्धुः ।

वा छन्दसि ६।१।१०२

प० वि०—वा अ० । छन्दसि ७।१

अर्थ—[दीर्घाञ्जसि च] दीर्घाच्छन्दसि विषये जसि इचि च परतः वा पूर्वसवर्णदीर्घो न भवति । (दीर्घ के पश्चात् छन्द के विषय में जम् घोर इच् के परे रहने पर विस्मय से पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता है)

अमि पूर्वः ६।१।१०३

प० वि०—अमि ७।१ पूर्वः १।१

अर्थ—[अरुः] अरु उच्चारस्य अमि परतः पूर्वपरयोः ग्याने पूर्व एकादेशो भवति । (अरु के पश्चात् अम् के परे रहने पर पूर्व पर के स्थान में पूर्वपर एकादेश होता है)

उदा०—रामम् । अग्निम् । वायुम् ।

सि०—राम अम् । रामम् ।

सम्प्रसारणाच्च ६।१।१०४

प० वि०—सम्प्रसारणात् ५।१ च अ० ।

अर्थ—[पूर्वः अचि] सम्प्रसारणादचि परत पूर्वपरयोः स्थाने पूर्व एकादेशो भवति । (सम्प्रसारण के पश्चात् अच् के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है)

उदा०—उक्तम् । साधन सम्प्रसारणसज्ञासूत्रे द्रष्टव्यम् ।

एडः पदान्तादति ६।१।१०५

प० वि०—एडः ५।१ पदान्तात् ५।१ अति ७।१

अर्थ—[पूर्वः] पदान्तादेडेऽति परत. पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वरूपमेकादेशो भवति । (पदान्त एड के पश्चात् अकार के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान में पूर्व रूप एकादेश होता है)

उदा०—वायोऽत्र । अग्नेऽत्र ।

सि०—वायु सु । वायो म । वायो अत्र । वायोऽत्र ।

डसिडसोश्च ६।१।१०६

प० वि०—डसिडसो. ६।२ च अ० । स०—डसिश्च इश्चेति डसिडसौ तयो ।

अर्थ—[एडः अति] एड. उत्तरयोर्डसिडसोरति परतः पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वरूपमेकादेशो भवति । (एड के पश्चात् डमि और डस् के अकार के परे रहने पर पूर्व पर के स्थान में पूर्व रूप एकादेश होता है)

उदा०—वायोः । अग्नेः ।

सि०—वायु डसि । वायु अस् । वायो अस् । वायोस् । वायोः ।

ऋत उत् ६।१।१०७

प० वि०—ऋतः ५।१ उत् १।१

अर्थ—[डसिडसोरति] ऋकारान्तादुत्तरयोर्डसिडसोरति परतः पूर्वपरयोरुकार एकादेशो भवति । (ऋकारान्त के पश्चात् डसि और डस् के अकार के परे रहने पर पूर्व पर के स्थान में उकार एकादेश होता है)

उदा०—पितुरामच्छति । पितुरयं वेदः ।

सि०—पितृ ङसि । पितृ अस् । पित् उर^१ स् । पितुर स् । पितुर^२ पितुः ।

ख्यत्यात्परस्य ६।१।१०८

प० वि०—ख्यत्यान् ५।१ परस्य ६।१ स०—ख्यरच त्यरच इति ख्यत्यं तस्मात् ख्यत्यात् ।

अर्थ—[ङसिङ्सोरति उत्] ख्य् त्य् इत्येताभ्यां परस्य ङसिङ्सो-
रतः स्थाने उकारादेशो भवति । (ख्य् और त्य् के पश्चात् ङसि और ङस् के
अकार के स्थान में उकार आदेश होता है)

उदा०—सख्युरागच्छति । सख्युरयं वेदः । पत्युरागच्छति । पत्यु-
रयं वेदः ।

सि०—सखि ङसि । सखि अस् । सख्य् अस् । सत्य् उर^१ स् ।
सत्युर^२ स् । सख्युः । पति ङसि । पति अस् । पत्य् अस् । पत्य् उर^१
स् । पत्युर^२ स् । पत्युर् । पत्युः ।

अतो रोरप्लुतादप्लुते ६।१।१०९

प० वि०—अतः ५।१ रोः ६।१ अप्लुतात् ५।१ अप्लुते ७।१
स०—न प्लुतः तस्मात् ।

अर्थ—[उन् अति] अप्लुतादकारादुत्तरस्य अप्लुतेऽति परतः रो
रेफस्य उकारादेशो भवति । (अप्लुत अकार के पश्चात् अप्लुत अकार के परे
रहने पर र के रेफ के स्थान में उकार आदेश होता है)

उदा०—वृक्षोऽत्र । प्लक्षोऽत्र ।

सि०—वृक्ष् अत्र । वृक्ष उ अत्र । वृक्षो अत्र । वृक्षोऽत्र ।

ऋरुत्यम् अस्य आभ्रयत्वान् पूर्वत्रासिद्धम् इत्यसिद्धं न भवति । ॐ

हशि च ६।१।११०

प० वि०—हशि ७।१ च अ० ।

अर्थ—[अतो रोः] हशि च परतः अत उत्तरस्य रोरुकारादेशो
भवति । (हन् के परे रहने पर अकारके पश्चात् र के रेफ के स्थान में
उकार आदेश होता है)

उदा०—पुरुषो हसति । पुरुषो याति ।

सि०—पुरुपर् हसति । पुरुष उ हसति । पुरुषो हसति ।

प्रकृतिभावप्रकरणम्

प्रकृत्यान्तः पादमव्यपरे ६।१।१११

प० वि०—प्रकृत्या ३।१ अन्तःपादम् ७।१ अव्यपरे ७।१ स०—पादस्य अन्तः [मध्ये] इति अन्तः पादम् (विभक्त्यर्थे अव्ययीभावः) अव्ययादाप्सुप इति डेलुकि प्राप्ते तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् इति डेरम्भावः) अविद्यमानो वकारयकारौ परौ यस्येति अव्यपरे तस्मिन् ।

अर्थ— ! पादमध्यस्थे अवकारयकारपरेऽति परतः एङ् प्रकृत्या भवति ।

(पाद के मध्य में वर्तमान अकार के परे रहने पर एङ् प्रकृतिभाव से रहता है, यदि अकार से परे य, व न हो)

उदा०—ते अग्रे अश्वमायुञ्जन् । ते अस्मिन् यवमादधुः । अव्यपरे इति किम्-तेऽवदन् । तेऽयस्मयम् ।

सर्वत्र विभाषा गोः ६।१।११८

प० वि०—सर्वत्र १।१ यद्वा अव्ययपदम् । विभाषा १।१ गोः ६।१

अर्थ—[एङोऽति] सर्वत्र यजुषि भाषायां च अति परतो गोरैङ् प्रकृत्या भवति विभाषा (सर्वत्र अर्थात् यजुः या भाषा में गो शब्द का एङ् अकार के परे रहने पर विकल्प करके प्रकृति से रह जाता है)

उदा०—गोऽग्रम् । गो अग्रम् ।

अवङ् स्फोटायनस्य ६।१।११९

प० वि०—अवङ् १।१ स्फोटायनस्य ६।१

अर्थ—[गोः अचि विभाषा] अचि परतो गोः स्फोटायनाचार्यस्य मतेनावहादेशो भवति विभाषा । (अच् के परे रहने पर स्फोटायनाचार्य के मत से गो शब्द का अवङ् आदेश होता है विकल्प से)

उदा०—गवाग्रम् गोऽग्रम् , गवाजिनम्, गोऽजिनम् ।

! अत्र सर्वेऽपि वृत्तिकृतः पादशब्देन ऋक्पादस्यैव ग्रहणमाहूः केचन तदर्थं 'वाच्छन्दसि' इत्यतः छन्दसीत्यनुवर्तयन्ति । यद्यप्यर्थं नियमो वैदिकधुं प्रायेण दृश्यते तथापि नवचित् महाभारतादावपि नियमस्योपलम्भात् सूत्रकृता च 'ऋचि छन्दसि' इत्यादिपदस्यानुवर्तत्वात् सामान्यविषयो'य द्रष्टव्यः इति भीमासकाः ।

॥ उपरिष्ठाद् (६।१।११३) 'यजुषि' इत्यनुवर्तते तत्रिवृत्त्यर्थं सर्वत्रग्रहणम्

इन्द्रे च ६।१।१२०

प० वि०—इन्द्रे ७।१ च अ० ।

अर्थ—इन्द्रशब्दस्याचि परतो गोर्यडादेशो भवति । (इन्द्र शब्द के अच क परे रहन पर गो शब्द का अचङ् आदेश होता है)

उदा०—गो इन्द्र० । गवेन्द्र० ।

प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ६।१।१२१

प० वि०—प्लुतप्रगृह्या १।३ अचि ७।१ नित्यम् १।१ स०—प्लुतारश्च प्रगृह्यारश्चेति प्लुतप्रगृह्या ।

अर्थ—[प्रकृत्या] प्लुतारश्च प्रगृह्यारश्चाचि नित्य प्रकृत्या भवन्ति ।

प्लुत और प्रगृह्य अच के परे रहन पर नित्य ही प्रकृति भाव स रहते हैं)

उदा०—देवदत्ता ३ अत्र न्वसि । प्रगृह्या -अग्नी इति । घायू इति ।

आडोऽनुनासिकश्छन्दसि बहुलम् ६।१।१२२

प० वि०—आड ६।१ अनुनासिक १।१ छन्दसि ७।१ बहुलम् १।१

अर्थ—[अचि प्रकृत्या] आडोऽचि परत सहिताया छन्दसि विषयेऽनुनासिकादेशो बहुल भवति, स च प्रकृत्या भवति । (अच क परे रहन पर सहिता क विषय में छन्द में आड को अनुनासिक आदेश बहुत करके होता है और वह प्रकृतिभाव से रहता है)

उदा०—अभ्र आँ अप । गभीर आँ उग्रपुरे जिघासत । बहुलं किम्—

दिव उत् ६।१।१२७

अर्थ—[पठान्तात्] दिव पदस्य उकारादेशो भवति । (दिव पद का उकारादेश होता है)

उदा०—दिवि कामो यस्येति शुक्लम् । शुभ्याम् । य मि ।

एतत्तदोः सुलोपोऽङ्कोरनञ्समासे हलि ६।१।१२८

प० वि०—एतत्तदो ६।२ सुलोप १।१ अङ्को ६।२ अनञ्समासे ७।१ हलि ७।१ स०—एतच्च तच्चेति एतत्तदौ तयो एतत्तदो । सोर्लोप इति सुलोप । न विशते क० ययो तौ (अक्+ओ) अकौ तयो अको ।

। महाभाष्यानुसारी पाठान्वयम् । अन्ये तु बहुलं न पठति ।

←—बहुलवचनात् षवचिन्म भवति— इदो बाहुभ्यामातरत् (भा + अतरत्) षवचिद् आडोऽन्यत्राप्यनुनासिका भवति । यथा—सवित् सवार्थ एवा (ऋ० १ । १।३ । १) ०—अत्राकार उच्चारणार्थम् । अयथा 'अवयो' इति स्यात् ।

नञः समासः नञ्समासः । (प० तत्पु०) न नञ्समासः इति अनञ्-
समासः (नञ् तत्पु०) तस्मिन् अनञ्समासे ।

अर्थ—अनञ्समासे वर्तमानयोरककारयोरित्तदोः सुलोपो भवति
हलि परतः संहितायां विषये ।

(नञ् समास में वर्तमान नहीं हो, ऐसा जो ककार रहित एतद् और तद्
शब्द उसके सु का लोप होता है हल् के परे रहने पर संहिता के विषय में)

उदा०—एप ददाति । स ददाति ।

सि०—एतद् सु । एत अ० सु । एत सु । एस् स् । एप० ददाति ।
एप ददाति । तद् सु । त अ० सु । त सु । स० सु । स सु ददाति । स
ददाति ॥

सुडागमप्रकरणम्

सुट् कात्पूर्व ६।१।१३१

प० व०—सुट् १।१ कात् १।१ पूर्वः १।१

अर्थ—ककारात् पूर्वः सुडागमो भवति इति पारस्करप्रभृतीनि च
संज्ञायाम् इति यावत् अधिकारो वेदितव्यः । (ककार के पूर्व सुट् का
भागम होता है, पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम सूत्र तक इस बात का अधिकार
समझना चाहिए)

संपरिभ्यां करोती भूपणे ६।१।१३२

प० वि०—संपरिभ्यां १।२ करोती ७।१ भूपणे ७।१ स०—सं च
परिश्च इति संपरी, ताभ्याम् ।

अर्थ—सं परि इत्येताभ्यां भूपाणार्थे करोती परतः सुट् कात् पूर्वो
भवति । (स और परि के पश्चात् भूपण अर्थ में वर्तमान कृ धातु को ककार के
पूर्व सुट् का भागम होता है)

उदा०—संस्कृता । संस्कृत्म् । संस्कृत्व्यम् । परिष्कर्ता । परिष्क-
त्त्म् । परिष्कृत्व्यम् ।

सि०—सं कर्ता । सं सुट् कर्ता । संस्कृता ।

१—व्यदादीनामः (७. २. १०२) असौजस्यस्य (१. १. ५१) २—तदोः
सः सावतन्त्ययोः (७. २. १०६) ३—घादेशप्रत्यययोः (८. ३. ५६)

स्वरप्रकरणम्

अनुदात्त पदमेकवर्जम् ६।१।१५२

प० वि०—अनुदात्तम् १।१ पदम् १।१ एकवर्जम् १।१

अर्थ—एकवर्जं पदं सर्वमनुदात्तं भवति । (एक को छोड़कर सारा पद अनुदात्त होता है)

अत्रेदं बोध्यम्—यत्र क्वचिदपि केनापि सूत्रेण उदात्त स्वरितो वा निधीयते, तमेव उदात्त स्वरित वा स्वरं वर्जयित्वा अन्यत्सर्वमनुदात्तं भवतीत्यर्थः । अपि चात्र मुप्तिङन्तं पदमिति पारिभाषिक पद न ग्राह्यम्, धात्वादात्रस्य सूत्रस्य अप्रवृत्तेः । अत्र एव पद्यते गम्यते अर्थो येन तत्पदम् । तत्र एव प्रकृतिप्रत्ययगमादिषु विगृहीतेष्वपि स्वरविधि सिध्यति । (जहाँ कहीं भी किसी मूल से भी उदात्त या स्वरित का विधान किया जाता है, उसी उदात्त या स्वरित को छोड़कर शेष पद सारा अनुदात्त होता है । यहाँ यह भी जानने योग्य बात है कि मुप्तिङन्त पदम्' इस मूल से जो पद सज्ञा की जाती है उस पारिभाषिक पद सज्ञा का यहाँ ग्रहण नहीं होता है क्योंकि यदि उस पद का ग्रहण हो तो धातु इत्यादि में उदात्त या स्वरित स्वर का विधान होने पर शेष में अनुदात्त स्वर की प्रवृत्ति ही नहीं होगी, क्योंकि केवल धातु (प्रकृति) या केवल प्रत्यय की पद सज्ञा ही नहीं होनी । इसलिये जिससे अर्थ का ज्ञान हो उसको पद कहते हैं । ऐसा करने से धातु प्रत्यय आगम इत्यादि को अलग अलग उदात्त या स्वरित स्वर सिद्ध हो जाता है, यह परिभाषा मूल है)

उदा०—कर्त्तव्यम् । गोपायति । अत्रेदं बोध्यम्—सतिशिष्टः स्वरो वलीयान् । उत्तरोत्तर स्वरो वलीयान् भवतीत्यर्थः यथा कर्त्तव्यम् इत्यत्र घातोस्त्वित्यनेन सूत्रेण (६१. १५६) कृ धातोस्त्वित्यनेन भवति । ततस्तद्व्यक्त्यानीयरः इत्यनेन सूत्रेण तद्व्यप्रत्ययः । सोऽप्याद्युदात्तो भवति । केन प्रकारेण भवेत् स्वरव्यप्रस्था इत्यस्ति अत्र विचारणा । सतिशिष्टः स्वरो वलीयान् इति नियमान् सतिशिष्टत्वान् प्रत्ययस्वरो भवति । अतएव आगु दात्तश्च इत्यनेन प्रत्ययस्य आगु दात्तत्वं भवति । तथा च सति कर्त्तव्यम् इत्यत्र तत्तारोत्तरवर्ती अकार एव उदात्तो भवति । एवं सर्वत्र

(यहाँ पर जानना है—जो वा स्वर आगे आता जायेगा वही वलीयान् होता जायेगा । जैसे कर्त्तव्यम् यहाँ पर पाठोः (६१ १५६) इस मूल से कृ धातु अनोदात्त होता है । उसके परवान् तद्व्य प्रत्यय आता है । अब वह धातुदात्त

होता है। यद्वा पर किस प्रकार से स्वर की व्यवस्था हो यही विचार उपस्थित है। अब इस स्थिति में आगे आगे आने वाला स्वर बलवान् होता है इस नियम से प्रत्यय का ही स्वर होगा। अब आद्युदात्तश्च इस सूत्र से त में अकार आद्युदात्त हुआ)

ॐविऋणस्वरस्तु सतिशिष्टोऽपि सार्धधातुकस्वरं न बाधते ॐ लुनीत इति तस एव स्वरो भवति ।

अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः ६।१।१५५

प० वि०—अनुदात्तस्य ६।१ च अ० । यत्र अ० । उदात्तलोपः १।१ स०—उदात्तस्य लोपः उदात्तलोपः ।

अर्थ—[उदात्तः] यत्र यस्मिन्ननुदात्ते परत उदात्तस्य लोपो भवति तस्यानुदात्तस्यादिरुदात्तो भवति । (जिस अनुदात्त के पगे रहने पर उदात्त का लोप होता है उस अनुदात्त का आद्युदात्त होता है)

उदा०—कुमारी । कुमार इ, कुमारी । कुमारशब्दोऽन्तोदात्तस्तस्य ङीप्यनुदात्तो उदात्तो लुप्यते । अनुदात्तो ङीव् उदात्तः ।

धातोः ६।१।१५६

प० वि०—धातो ६।१

अर्थ—[कर्पात्त्वतो घञोऽन्त उदात्तः ६।१।१५३ इत्यतः अन्त इत्यनुयर्त्तते] धातोःन्तोदात्तो भवति । (धातु अन्तोदात्त होता है)

उदा०—पचति । पठति । गोपायति ।

चितः ६।१।१५७

प० वि०—चितः ६।१ स०—चकार इद्वयस्येति चित् तस्य चितः ।

अर्थ—[अन्तः] चितोऽन्तोदात्तो भवति । (चकार इत्वाला प्रत्यय अन्तोदात्त होता है)

उदा०—भञ्जभासमिदो वुरच । भङ्गुर्म् । भासुरम् । मेदुरम् ।

तद्धितस्य ४।१।१५८

अर्थ—[अन्तः चितः] तद्धितस्य चितोऽन्तोदात्तो भवति । (चकार इत्वाला तद्धित अन्तोदात्त होता है)

उदा०—गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ् । कौञ्जायनाः ।

कितः ६।१।१५९

प० वि०—कितः ६।१ ककार इत् यस्येति कित् तस्य कितः ।

अर्थ—[तद्धितस्य अन्तः] तद्धितस्य भितः अन्तोदात्तो भवति ।
(ककार इत्वात् तद्धित अन्तोदात्त होता है)

उदा०—नडादिभ्यः फृ । नाडायनः । चारायणः ।

तित्स्वरितम् ६।१।१७०

प० वि०—तित् १।१ स्वरितम् १।१ स०—तकार इत् यस्येति तित् ।

अर्थ—तित्स्वरितं भवति । (तकार इत् वाना स्वरित हाता है)

उदा०—सन्नन्ताद्यत् । चिकीर्ष्यम् । जिहीर्ष्यम् । ऋहलोर्ष्यत् ।

हार्यम् ॥

भीह्लीभृहुमदजनधनदरिद्राजागरा

[प्रत्ययात्पूर्वं] पिति ६।१।१८६

लिति ६।१।१८७

प० वि०—लिति ७।१

अर्थ—[प्रत्ययात्पूर्वं] लिति प्रत्ययात्पूर्वमुदात्त भवति ।

(लकार इत्वात् प्रत्यय के परे रहने पर पूर्व को उदात्त होता है)

उदा०—चिकीर्षकः । जिहीर्षकः ॥

न्नित्यादिनित्यम् ६।१।१९१

प० वि०—न्निति ७।१ आदिः १।१ नित्यम् १।१ स०—अरुच
नश्चेति न्नो । इच्च इच्चेति इतो । न्नो इतो यस्येति न्नित् तस्मिन्
न्निति ।

अर्थ—न्निति निति च नित्यमादिस्त्रात्तो भवति । (अकार धोर
नकार इत् पात् प्रत्यय के परे रहने पर नित्य प्रादि उदात्त होता है)

उदा०—गार्ग्यः । शाल्यः । वामुदेवाजुर्नाभ्यां जुन् । वामुदेवरः ।
अजुर्नकः ।

श्रामन्त्रितस्य च ६।१।१९२

अर्थ—श्रामन्त्रितस्यादिस्त्रात्तो भवति । (श्रामन्त्रित वा प्रादि उदात्त
होता है)

उदा०—देवदत्तः । देवदत्ती । देवदत्ताः ॥

उपोत्तम रिति ६।१।२११

प० वि०—उपोत्तमम् १।१ रिति ७।१ स०—रेफः इत् यस्येति त्त्
तस्मिन् रिति ।

अर्थ—रिदन्तस्योपोत्तममुदात्त भवति । (रफ है इत् जिसका ऐसे तदन्त का उपोत्तम उदात्त होता है)

उदा०—त्रिप्रभृतीनामन्यमुत्तमम् । तस्य समीपमपोत्तमम् । तन्न्यत्त-
व्यानीयर । करणीयम् । हरणीयम् । इत्यत्र शौरिकार उदात्तो भवति ।

समासस्य ६।१।२।१७

प० वि०—समासस्य ६।१

अर्थ—समासस्यान्तोदात्तो भवति । (समास का अन्तोदात्त होता है)

उदा०—राजपुरुष । ब्राह्मणकम्बल । ब्राह्मणसमित् । स्वरविधौ
न्यञ्जन्तमविद्यमानवदिति हलन्तेऽप्यन्तोदात्तत्व भवति ।

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया षष्ठाध्याये प्रथम पाद

अनुक्प्रकरणम्

अलुगुत्तरपदे ६।३।१

प० वि०—अलुक् १।१ उत्तरपदे ७।१ स०—न लुक् अलुक् । उत्तरं
च तत् पद च इति उत्तरपदं तस्मिन् उत्तरपदे ॥

अर्थ—अलुगिति प्रागानङ्, उत्तरपदे इति प्रागङ्गस्य अधिकारो
वेदितव्य । (अलुक् इस पद का आनङ् श्रुतो द्वन्द्व इस सूत्र तक तथा उत्तरपद
इस पद का अङ्गस्य इस सूत्र तक अधिकार समझना चाहिये)

पञ्चम्या स्तोकादिभ्य ६।३।२

प० वि०—पञ्चम्या ६।१ स्तोकादिभ्य ५।३ स०—स्तोकमादि-
येषां ते स्तोकादयः तेभ्यः ।

अर्थ—स्तोकादिभ्य उत्तरस्य पञ्चम्या अलुगभवति उत्तरपदे
परत । (स्तोक इत्यादि शब्दों के पश्चात् पञ्चमी का अलुक् होता है उत्तरपद
के परे रहने पर)

उदा०—स्तोकान्मुक्त । अन्यान्मुक्त । अन्तिरादागत । अभ्या-
शाद्आगत । दूरादागत । विप्रवृष्टान्मागत । वृच्छान्मुक्त ।

श्रोज सहोम्भस्तमसस्तृतीयाया ६।३।३

प० वि०—श्रोज सहोम्भस्तमस ५।१ तृतीयाया ६।१ स०—
श्रोजस्य सहस्रं च अम्भसश्च तमश्चेति श्रोज सहोम्भस्तम तस्मात् श्रोज
सहोम्भस्तमस

अथ—ओजस् सहस् अम्भस् तमस् इत्येतेभ्य उत्तरन्यास्तृतीयाया अलुक् भवति उत्तरपदे परतः । (ओजस् सहस् अम्भस् तमस् इन शब्दों के परवान् तृतीया का अलुक् होता है उत्तरपद के परे रहने पर)

उदा०—ओजसाकृतम् । सहसाकृतम् । अम्भसाकृतम् । तमसाकृतम् ।

[आत्मनश्च] ६।३।६

वैयाकरणस्याया चतुर्थ्याः ६।३।७

प० वि०—वैयाकरणस्यायाम् ७।१ चतुर्थ्याः ६।१ म०—वैयाकरणस्य आग्या (मंज्ञा) वैयाकरणस्या तम्याम् ।

अर्थ—[आत्मनः] वैयाकरणस्य आग्यायां वर्तमानायाम् आत्मनः चतुर्थ्या अलुक् भवति उत्तरपदे परतः । (वैयाकरण की मज्ञा में वर्तमान आत्मन् शब्द के चतुर्थी का अलुक् होता है, उत्तरपद के परे रहने पर)

उदा०—आत्मनेपदम् । आत्मनेभाषा ।

परस्य च ६।३।८

प० वि०—परस्य ६।१ च अ० ।

अर्थ—[वैयाकरणस्यायां चतुर्थ्याः] वैयाकरणस्यायां वर्तमानायां परस्य चतुर्थ्याः अलुग्भवति उत्तरपदे परतः । (वैयाकरण की आग्या में वर्तमान पर शब्द की चतुर्थी का अलुक् होता है उत्तरपद के परे रहने पर)

उदा०—परस्मैपदम् । परस्मैभाषा ।

हलदन्तात् सप्तम्याः मंज्ञायाम् ६।३।९

प० वि०—हलदन्तान् ५।१ सप्तम्याः ६।१ मंज्ञायाम् ७।१ म०—हल् च अच्च इति हलतो । अन्तश्च अन्तश्चेति अन्तो । हलतो अन्तो यस्येति हलदन्तम् तस्मान् हलदन्तान् ।

अर्थ—हलन्ताद्दन्ताच्चोत्तरम्याः सप्तम्याः मंज्ञायामलुग् भवति उत्तरपदे परतः । (हलन्त और दन्तारान्त के परे मज्ञा के वर्तमान होने पर सप्तमी का अलुक् होता है, उत्तरपद के परे रहने पर)

उदा०—युधि ग्धिरः इति युधिष्ठिरः । गविष्ठिरः । अदन्तान्—अरण्येति लका । अरण्येभाषा ॥

प्रावृट्शरत्कालदिव्या जे ६।३।१५

प० वि०—प्रावृट्शरत्कालदिव्याम् ६।३ जे ७।१ म०—प्रावृट् च

शरच्च कालश्च द्यौश्चेति प्रावृट्शरत्कालद्याव तेषाम् प्रावृट्शरत्काल-
दिवाम् ।

अर्थ—[सप्तम्या] प्रावृट् शरत् काल दिव् इत्येतेषां सप्तम्या अलु-
ग्भवति जशब्दे उत्तरपदे परत । (प्रावृट्, शरत् काल और दिव शब्द की
सप्तमी का अलुक् होता है जशब्द के उत्तरपद में पर रहन पर)

उदा०—प्रावृषिज । शरदिज । कालेज । दिविज ।

घकालतनेषु कालनाम्न ६।३।१७

प० वि०—घकालतनेषु ७।३ कालनाम्न ५।१ स०—घश्च कालश्च
तन चेति घकालतनानि तेषु घकालतनेषु । कालस्य नाम कालनाम
तस्मात् कालनाम्न ।

अर्थ—[विभाषा वर्षक्षरशरवरान् इत्यत्र विभाषा अनुवर्तते]
घसज्ञके प्रत्यये कालशब्दे तनप्रत्यये च उत्तरपदे परत कालनाम्न-
उत्तरस्या सप्तम्या विभाषा अलुग्भवति । (घ सज्ञा वाले प्रत्यय काल शब्द
और तन प्रत्यय के उत्तरपद के पर रहन पर कालवाची शब्द के पश्चात्
सप्तमी का विकल्प से अलुक् होता है)

उदा०—घ—पूर्वाह्नेतर । पूर्वाह्णतर । पूर्वाह्णेतम । पूर्वाह्णतम ।
काल-पूर्वाह्णेकाल । पूर्वाह्णकाल । तन-पूर्वाह्णेतन । पूर्वाह्णतन ।

आनङ् ऋतो द्वन्द्वे ६।३।२५

प० वि०—आनङ् १।१ ऋत ६।१ द्वन्द्वे ७।१

अर्थ—ऋकारान्तानां द्वन्द्वे समासे उत्तरपदे परत आनङ् आदेशो
भवति [पूर्वपत्स्य] । (ऋकारान्तों के द्वन्द्व समास में [पूर्वपद को] आनङ्
आदेश होता है उत्तरपद पर रहन पर)

उदा०—मातापितरौ

सि०—माता सु पिता सु । माहृ पितृ । मात् आन् पितृ । मातापितृ ।
मातापितृ औ । अग्नेः पूर्वपत् ।

पु वदभावप्रकरणम्

स्त्रिया पु वद्भाषितेषु स्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियाम्-
पूरणीप्रियादिषु ६।३।३४

प० वि०—स्त्रिया ६।१ पु वद् १।१ भाषितेषु स्कात् ५।१ अनूङ् १।१
(पठ्यर्थे प्रथमति हरत्) समानाधिकरणे ७।१ स्त्रियाम् ७।१ अपूरणी-
प्रियादिषु ७।३ स०—भाषित पुमान् येन समानायामाकृतौ एकस्मि-

प्रवृत्तिनिमित्ते स भाषितपुंस्कः तस्मात् भाषितपुंस्कात् । समानाधिकरणं यस्य स समानाधिकरणं तस्मिन् समानाधिकरणे । पूरणी च प्रियादयश्चेति पूरणीप्रियादयः । न पूरणीप्रियादय इति अपूरणीप्रियादयः तेषु अपूरणीप्रियादिषु । ऊङोऽभावः अनूङ् तस्य अनूङ् (अनूङ् डसोलुक्)

अर्थ—भाषितपुंस्काद् ऊङ्वर्जितायाः स्त्रियाः पुंषद् भवति स्त्रीलिङ्गे समानाधिकरणे उत्तरपदे पूरणीप्रियादिवर्जिते ।

ॐभाषितपुंस्कादनूङ्ः स्त्रीशब्दस्य पुंशब्दस्य इव रूपं भवतीत्यर्थः ॐ
(एक ही आकृति अर्थात् एक प्रवृत्ति निमित्त में कह दिया है पुल्लिङ्ग को जिस ने, ऐसे ऊङ् प्रत्ययान्त वर्जित स्त्रीलिङ्ग शब्द को पुल्लिङ्गवत् हो जाता है, स्त्रीलिङ्ग समानाधिकरण शब्द के उत्तर पद के परे रहने पर पूरणी और प्रियादिगण पठित शब्दों को उत्तर पद में छोड़कर)

उदा०—दर्शनीयभार्यः ।

सि०—दर्शनीया भार्या यस्य स दर्शनीयभार्यः । दर्शनीया सु भार्या सु । दर्शनीया^१ भार्या । दर्शनीय भार्या । दर्शनीयभार्य^२ सु । दर्शनीय-भार्यः ।

तसिलादिप्वाकृत्वमुचः ६।३।३५

प० वि०—तमिलादिषु ७३ आ अ० । कृत्वमुचः ११ स०—तसिल् आदिर्येषां ते तसिलादयः तेषु तसिलादिषु ।

अर्थ—[स्त्रियाः पुंषद्भाषितपुंस्कादनूङ्] कृत्वमुजिति एतस्मान् प्राक् तसिलादिषु प्रत्ययेषु परतो भाषितपुंस्कादनूङ्स्त्रियाः पुंषद् भवति ।
(कृत्वमुच् प्रत्यय के पहले-पहले तसिल् इत्यादि प्रत्ययों के परे रहने पर कह दिया है पुल्लिङ्ग शब्द को जिस ने ऐसा ऊङ् प्रत्ययान्तवर्जित स्त्रीलिङ्ग शब्द पुल्लिङ्ग शब्दवत् हो जाते हैं)

उदा०—तस्याः शालायाः सतः । तस्यां शालायां तत्र । × भस्याडे तद्वित्ते पुंषद्भावो वक्तव्यः × हस्तिनीनां समूहः हस्तिनम् ।

पुंषत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु ६।३।४२

प० वि०—पुंषत् ११ कर्मधारयजातीयदेशीयेषु ७३ स०—कर्म-धारयश्च जातीयश्च देशीयश्च इति कर्मधारयजातीयदेशीयाः तेषु ।

अर्थ—[स्त्रियाः भाषितपुंस्कादनूङ्] कर्मधारये समामे उत्तरपदे

परतः जीतीये प्रत्यये देशीये प्रत्यये च भापितपुंस्कादनुङ्स्त्रियाः पुंब्द् भवति । (कर्मधारय समाम में जातीय और देशीय प्रत्ययो के उत्तरपद में परे रहने पर कह दिया है पुल्लिङ्ग को जिसने ऐसा ऊङ् वर्जित स्त्रीलिङ्ग शब्द पुल्लिङ्गवत् ही जाता है)

उदा०—कर्म—पाचकवृन्दारिका । पाचकजातीया । पाचकदेशीया ।

सि०—पाचिका^१ चासौ वृन्दारिका चेति विग्रहः । ईसद् असमाप्ता पाचिका इति पाचकजातीया, पाचकदेशीया ।

घरूपकल्पचलद्ब्रुवगोत्रमतहतेषु ड्योनेकाचो ह्रस्व ६।३।४३

प० वि०—घ-रूप-कल्प-चेलट्-ब्रुव-गोत्र-मत-हतेषु ७।३ इयः ६।१ अनेकाचः ६।१ ह्रस्वः १।१

स०—घश्च रूप च कल्पश्च चेलट् च ब्रुवश्च गोत्रश्च मतश्च हतरश्च इति घरूपकल्पचेलट्ब्रुवगोत्रमतहताः तेषु । एकश्चासौ अच् इति एकाच् न एकाच् इति अनेकाच् तस्य अनेकाचः ।

अर्थ—[भापितपुंस्मात्] घ-रूप-कल्प इत्येतेषु प्रत्ययेषु चेलट्-ब्रुव गोत्र-मत-हत् इत्येतेषु च उत्तरपदेषु परतो भापितपुंस्काद् यो ङीप्रत्यय-स्तदन्तस्य अनेकाचो ह्रस्वो भवति । (घ रूप कल्प इन प्रत्ययो तथा चेलट्-ब्रुव-गोत्र मत-हत् इन शब्दों के उत्तरपद में परे रहने पर वह दिया है पुल्लिङ्ग को जिस ने ऐसे शब्द के पश्चात् जो ङी प्रत्यय तदन्त अनेकाच् को ह्रस्व होता है)

उदा०—ब्राह्मणितरा । ब्राह्मणितमा । ब्राह्मणिरुपा । ब्राह्मणिकम्पा । ब्राह्मणिचेली । ब्राह्मणिनुवा । ब्राह्मणिगोत्रा । ब्राह्मणिमता । ब्राह्मणिहता ।

नद्या शेषस्यान्यतरस्याम् ६।३।४४

प० वि०—नद्या. ६।१ शेषस्य ६।१ अन्यतरस्याम् अ० ।

अर्थ—[घ-रूप-कल्प-चेलट्-ब्रुव-गोत्र मत-हतेषु ह्रस्व.] शेषस्य घादिषु उत्तरपदेषु परतः नद्याः अन्यतरस्याम् ह्रस्वो भवति ।

ॐ कश्च शेषः । अङी च या नदी ह्रस्वन्तं च यत्रेकाच् ॐ (पादि उत्तरपद के परे रहने पर शेष नदी को ह्रस्व होता है विभक्त करने)

उदा०—ब्रह्मन्धुतरा । ब्रह्मन्धुतरा । स्त्रितरा । स्त्रीतरा । स्त्रितमा । स्त्रीतमा ।

उगितश्च ६।३।४५

प० वि०—उगितः ६।१ च अ० । स०—उक् इन् यस्येति उगित् तस्य ।

अर्थ—[नद्याः घादिषु अन्यतरस्यां ह्रस्वः] उगितश्च परस्य घादिषु अन्यतरस्यां ह्रस्वो भवति । (घादि उत्तरपद के परे रहने पर उगिन् का विकल्प करके ह्रस्व होता है)

उदा०—श्रेयसितरा श्रेयसीतरा श्रेयस्तरा । श्रेयसितमा, श्रेयसीतमा श्रेयस्तमा । विदुपिनरा विदुपीतरा विद्वत्तरा ।

आन्महतः समानाधिकरणजातीययो ६।३।४६

प० वि०—आत् १।१ महतः ६।१ समानाधिकरणजातीययोः ७।२

स०—समानाधिकरण च जातीयश्च इति समानाधिकरणजातीयौ तयोः ।

अर्थ—समानाधिकरण उत्तरपदे जातीये च प्रत्यये परतो महत आकारादेशो भवति । (समानाधिकरण उत्तरपद के परे रहने पर तथा जातीय प्रत्यय के परे रहने पर महत् शब्द का आकार हो जाता है ।

उदा०—महान् चासौ देवश्च इति महादेवः । महात्राक्षणः । महाबाहुः । महाजातीयः ।

द्व्यष्टन. सख्यायामवहुव्रीह्यशीत्योः ६।३।४७

प० वि०—द्व्यष्टनः ६।१ सख्यायाम् ७।१ अवहुव्रीह्यशीत्योः ७।२

स०—द्विश्व' अष्टश्च' इति द्वि-अष्टन तभ्य । न बहुव्रीहिः अशुव्रीहिः । न शीतिः अशीतिः । अशुव्रीहिश्च अशीतिश्चेति अशुव्रीहि-अशीती तयोः अशुव्रीह्यशीत्योः ।

अर्थ—[आत्] द्वि-अष्टन् इत्येतयोरात्मदेशो भवति संख्यायामुत्तरपदे परतः अशुव्रीह्यशीत्योः ।

(द्वि और अष्टन् शब्द का आकार आदेश होता है मख्यावाची उत्तरपद के परे रहने पर बहुव्रीहि में और अशीतिशब्द के उत्तर पद में न परे रहने पर)

उदा०—द्वादश । द्वाविंशतिः । द्वात्रिंशत् । अष्टादश । अष्टाविंशतिः । अष्टात्रिंशत् ।

ॐ द्वाभ्यामधिका द्वादश इति समानाधिकरणधिकारे शाकनाथिवा-

दीनामुपसंख्यानमुत्तरपदलोपरचेत्युत्तरपदलोपी (२. १. ६० वा०) तत्पुरुष-
समासः।॥

त्रैस्त्रयः ६।३।४८

प० वि०—त्रेः ६।१ त्रयः १।१

अर्थ—[संख्यायाम् अबहुव्रीह्यशीत्योः] त्रि इत्येतस्य त्रयस् इत्ययमा-
देशो भवति संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः ।

(त्रि शब्द के स्थान में त्रयस् यह आदेश हो जाता है संख्यावाची उत्तर-
पद के परे रहने पर, बहुव्रीहि समास में तथा अशीति शब्द के उत्तर पद में
परे रहने पर नहीं)

उदा०—त्रयोदश । त्रयोविंशतिः । त्रयस्त्रिंशत् ।

विभाषा चत्वारिंशत्प्रभृतौ सर्वेषाम् ६।३।४९

प० वि०—विभाषा १।१ चत्वारिंशत्प्रभृतौ ७।१ सर्वेषाम् ६।३ स०—
चत्वारिंशतः प्रभृतिः इति चत्वारिंशत्प्रभृतिः तस्याम् चत्वारिंशत्प्रभृतौ ।

अर्थ—[संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः सर्वेषां द्वयष्टन् त्रि इत्येतेषां
यदुक्तं तद् विभाषा भवति ॥ (चत्वारिंशत् इत्यादि संख्यावाची शब्दों के
उत्तरपद में परे रहने पर सभी द्वि अष्टन् और त्रि शब्द को जो कुछ कहा गया
है, वह विकल्प से होता है, बहुव्रीहि समास तथा अशीति उत्तरपद के परे
रहने पर नहीं होता)

उदा०—द्विचत्वारिंशत् । द्वाचत्वारिंशत् । त्रिपञ्चाशत् । त्रयःपञ्चा-
शत् । अष्टपञ्चाशत् । अष्टापञ्चाशत् ।

हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु ६।३।५०

प० वि०—हृदयस्य ६।१ हृत् १।१ लेखयदण्लासेषु ७।३ स०—
लेखश्च यच्च अण् च लासश्चेति लेखयद्अण्लासाः तेषु ॥

अर्थ—हृदयस्य हृद् इत्ययमादेशो भवति लेख यत् अण् लास इत्ये-
तेषु परतः । (हृदय शब्द के स्थान में हृत् यह आदेश होता है लेख, यत् अण्
और लास शब्द के परे रहने पर)

उदा०—हृदयं लिखतीति हृल्लेखः । हृदयम् । हार्दम् । हृल्लासः ।

सि०—हृल्लेखः । हृदय लिख् अण्^१ । हृदयाय हितम् हृद्यम्^२ ।
हृदयस्य इदम् हार्दम्^३ । हृदयस्य लासः । लसनं लासः । लस् घञ्^४

१—कर्मण्यण् (३. २. १) २—घरीरावयवाद्यत् (५. १. ६) ३—
प्राग्शीघ्यतोऽण (४. १. ८३) तस्येदम् (४. ३. १२०) ४—मावे (३. ३. १८)

× कृद्योगा च पष्ठी समस्यते इति (२।२।२० वा०) ×

खित्यनव्ययस्य ६।३।६६

प० वि०—खिति ७।१ अनव्ययस्य ६।१ स०—ख् इत् यस्येति खित् तस्मिन् । न अन्वयम् इति अनव्ययम् तस्य अनव्ययस्य ।

अर्थ—[ह्रस्वः] खिदन्त उत्तरपदेऽनव्ययस्य ह्रस्वो भवति ।

(खिदन्त उत्तरपद के परे रहने पर अव्ययमिन्न का ह्रस्व होता है)

उदा० कालिमन्या । हरिणिमन्या ।

सि०—कालीमात्मान मन्यते । हरिणीमात्मानं मन्यते इति विग्रहः । कालीम् मन् स्वश्^१ । कालीम् मन् श्यन् अ । कालीम् मन्य । काली मन्य । काली मन्य टाप् । काली मन्या । कालि मन्या । कालि मुम् मन्या । कालिमन्या ॥

मुमागमप्रकरणम्

अरुद्विपदजन्तस्य मुम् ६।३।६७

प० वि०—अरुद्विपदजन्तस्य ६।१ मुम् १।१ स०—अरुस् च द्विपत् च अजन्तश्च इति अरुद्विपदजन्तं तस्य ।

अर्थ—अरुम् द्विपत् इत्येतयोरजन्तानां चानव्ययानां खिदन्त उत्तरपदे मुमागमो भवति । (अरुम् द्विपत् और अव्ययमिन्न अजन्त को मुम् का प्रागम होता है खिदन्त उत्तरपद के परे रहने पर)

उदा०—अरुत्तुदः । द्विपंतपः । अजन्तस्य—कालिमन्या ।

सि०—अरुस्तुदतीति विग्रहः । अरुस् तुद् स्वश्^२ । अरुस् तुद् ख अ । अरुस् तुद् अ अ । अरुम् तुद् ! अरु मुम् स् तुद् । अरुस् तुद् । अरुम् तुद् । अरुं तुद् मु । अरुत्तुदः । द्विपन्तं तापयतीति विग्रहः । द्विपत् अम् तापि स्वच्^३ । द्विपत् अम् तपि^४ अ । द्विपत् अम् तप । द्विपत् तप । द्विप मुम् त् तप । द्विपमत् तप । द्विपम् तप । द्विपंतप मु । द्विपन्तपः ॥

नलोपो नञः ६।३।७३

प० वि०—नलोपः १।१ नञः ६।१ स०—नस्य लोपः । नलोपः

१—प्रात्ममाने खद् (६।३. २. ८३) २—विध्वंसोस्तुदः (३. २. ३५)

३—द्विपत्परस्योस्तापेः (३. २. ३६) ४—चचि ह्रस्वः (६. ४. ६४)

अर्थ—नञो नकारस्य लोपो भवति उत्तरपदे परत । (नञ् के नकार का लोप होता है उत्तरपद के पर रहन पर)

उदा०—न ब्राह्मण अब्राह्मण ।

तस्मान्नुडचि ६।३।७४

प० वि०—तस्मात् १।१ नुद् १।१ अचि ७।१

अर्थ—[नञ्] तस्मान्नलोपात्रञ्च नुडागमो भवति अजादावुत्तर-पदे परत । (उस नकार लोप के पश्चात् नञ् को नुट का आगम होता है अजादि उत्तरपद के पर रहा पर)

उदा०—न अज । अनज । न अरज । अनश्न

सि०—नञ् इति समासत्रिधायनसूत्रे सावन द्रष्टव्यम् ॥

नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम् ६।३।७७

प० त्रि०—नग १।१ अप्राणिषु ७।३ अन्यतरस्याम् अ० । स०—
न प्राणी अप्राणी तेषु अप्राणिषु ।

अर्थ—नग इति अप्राणिषु निपात्यते अन्यतरस्याम् । (नग यह प्राणिवानक न हो तो विकल्प से निपातन से सिद्ध होता है)

उदा०—नगा वृक्षा । अगा वृक्षा । नगा प्लक्षा । अगा प्लक्षा ॥

[सहस्य सः] सज्ञायाम् ६।३।७८

अव्ययीभावे चाकाले ६।३।८१

प० वि०—अव्ययीभावे ७।१ च अ० । अकाले ७।१

अर्थ—[सहस्य स] अव्ययीभावे च समासेऽनालवाचिन्युत्तरपदे सहस्य स इत्ययमादेशो भवति । (अव्ययीभाव समास में अकालवाची सद् के उत्तरपद में रहन पर सह के स्थान में स यह आदेश होता है)

उदा०—सचक्रं धेहि ।

सि०—अव्यय विभक्तिसमीपेति सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

वोपसर्जनस्य ६।३।८२

प० वि०—वा अ० । उपसर्जनस्य ६।१

अर्थ—[सहस्य स] उपसर्जनस्य सहस्य स इत्ययम् आदेशो भवति विकल्पेन उत्तरपदे परत । (उपसर्जन सह के स्थान में स यह आदेश विकल्प से होता है उत्तरपद के पर रहन पर)

उदा०—पुत्रेण सह । सपुत्र । सहपुत्र । साधन तेन सहेति तुल्य-

योगे (०. ०. ०८) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवचन-

वन्धुषु ६।३।८५

प० वि०—ज्योतिस्-जनपद-रात्रि-नाभि-नाम गोत्र-रूप-स्थान-वर्ण-
वचन वचन-वन्धुषु ७।३ स०—स्पष्टम् (इतरं द्वन्द्व)

अर्थ—[समानस्य स] ज्योतिस्-जनपद-रात्रि-नाभि-नाम-गोत्र-रूप
स्थान वर्ण प्रथम-वचन-वन्धुषु उत्तरपदेषु परत समानस्य स इत्ययमादेशो
भवति । (इत ग०दों क उत्तरपद में परे रहन पर समान क स्थान में स यह
प्रादाग हाता है)

उदा०—स ज्योति । स जनपद । सरात्रि । सनाभि । सनामा ।
सगोत्र । सम्य । समान । सवर्ण । सप्रथा । सवचन । सवन्धु ।

सि.—समान ज्योतिर्यस्येति निग्रह । तत्पुरुषेऽपि भवित स्वयमेव
एव सवत्र निग्रह कर्त्तव्यम् ॥

दृग्दृशवतुषु ६।३।८६

प० वि०—दृग्दृशवतुषु ७।३ स०—दृक् च दृशश्च वतुश्च इति
दृग्दृशवतुषु तेषु ।

अर्थ—[समानस्य स] दृक् दृश वतु इत्येतेषु उत्तरपदेषु परत समा-
नस्य स इत्ययमादेशो भवति । (दृक् दृग वतु क उत्तरपद में पर रहन पर
समान क स्थान में स यह प्रादाग हाता है)

उदा०—स दृक् स दृश । ×दृने चेति वस्तुव्यम् × सदृश ।

सि.—समानमात्मान पश्यतीति सदृक् सदृशो वा । समान अम्
दृश् चिन्वन् । समान अम् दृश् । समान अम् दृक् । समान दृक् ।
सदृक् । सदृग् कम् । सदृश ।

इदकिमोरीशुकी ६।३।८७

प० वि०—इदकिमो ६।० ईशुकी अविभ० । स०—इत् च किंच इति
इदकिमो तयो । ईश् च का च इति ईशुकी ।

अर्थ—[दृक्दृशवतुषु] इद किम् इत्येतयोरीशु की इत्येतावादेशो

१—त्यदादिषु दृगोऽज्ञातोचन कञ्च (३ २. ६०) २—चिन्वन् इत्ययस्य कु
(८ २ ६२)

भवतः यथासत्य दृक्दृशवतुषु । (इदं गौर किम् के स्थान में जम्भत, ईस् गौर की आदेश होते हैं दृक् दृश वतु के पर रहने पर)

उदा०—इदमिष पश्यतीति ईदृक् । ईदृशः । किमिव पश्यतीति कीदृक् । कीदृशः । ❀ व्युत्पत्तिमात्रार्थो विग्रह कृतः । नात्रावयवार्थो विग्रहवाक्योपदर्शितो विद्यते तथा हि ईदृक् ईदृश इत्यनेन तुल्य इत्ये-पोऽर्थः समुदायादेव प्रतीयते । कीदृक् कीदृश इत्यापि केन तुल्य इति ❀ किं परिमाणमस्येति कियान् । इदं परिमाणमस्येति श्यान् ।

सि०—साधनं कृतप्रकरणे तद्धितप्रकरणे च द्रष्टव्यम् ।

आ सर्वनाम्न ६।३।६१

प० वि०—आ १।१ सर्वनाम्नः ६।१

अर्थ—[दृक्दृशवतुषु] सर्वनाम्न आकारादेशो भवति दृक्दृशवतुषु । (सर्वनाम को आकारादेश होता है दृक् दृश वतु के परे रहने पर)

उदा०—तादृक् । तादृशः । तावान् । यादृक् । यादृशः । यावान् ।

× दृक्ते चेति वक्तव्यम् × तादृक् । यादृक् ।

द्वयन्तरूपसर्गोभ्योऽप ईत् ६।३।६७

प० वि०—द्वयन्तरूपसर्गोभ्यः ५।३ अप ६।१ ईत् १।१

स०—द्विरच अन्तरश्च उपसर्गश्चेति द्वयन्तरूपसर्गाः तेभ्यः ।

अर्थ—द्वि अन्तर उपसर्ग इत्येतेभ्य उत्तरस्य अप ईकारादेशो भवति । (द्वि, अन्तर, गौर उपसर्ग क पश्चात् षप गन्ध का ईकार आदेश हाता है)

उदा०—द्वीपम् । अन्तरीपम् । नीपम् । समीपम् ।

सि०—ऋक्पूरुधूपथामानच्चे (५. ४. ७४) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् ६।३।१०६

प० वि०—पृषोदरादीनि १।३ यथोपदिष्टम् १।१ स०—आदिशब्दः

प्रकारवचन इति । पृषोदर आदि येषां तानि पृषोदरादीनि (बहु०) यानि यानि शिष्टैरुपदिष्टानि इति यथोपदिष्टम् । (यथासादृश्ये इति धीप्सा-यामव्ययीभावः)

अर्थ—❀ दिशिरत्रोच्चारणक्रियः उपदिष्टान्पुञ्जारितानिःस्यः ❀ पृषोदरप्रकाराणि शिष्टैर्यथोच्चारितानि तथैव साधूनि भवन्ति ।

(पृषोदर इस प्रकार के शब्द जैसे शिष्टो द्वारा उच्चारित होते हैं वैसे ही साधु मान जाते हैं)

उदा०—पृपदुदर यस्य, पृपोदरम् । पृपद् उद्वान यस्य, पृपोद् वानम् । तकारलोप । वारिवाहिको, बलाहक । पूर्वपदस्य व, उत्तर-पदादेश्च लत्वम् । जीवनस्य मूत, जीमूत । वनशब्दस्य लोप । शवाना शयन, श्मशानम् । शय शब्दस्य श्मादेश । शयनशब्दस्यापि शानशब्दा देश । ऊर्ध्वं स्वम् यस्येति उलूखलम् ऊर्ध्वरश-दयोरुलूखल इत्येता-वादेशौ । मह्या रीतीति मयूर । रीतेरचि टिलोप, महीशब्दस्य मयूभाव ।

भवेद्वर्णागमाद्धश सिद्धोवर्णविपर्ययात् ।

गूढोत्मा वर्णविहृतेर्वर्णनाशात्पृपोदरम् ।

ॐ के शिष्टा ? एतस्मिन्नायावत्तं निगमसे ये ब्राह्मणा कुम्भीवान्या अलोलुपा अगृह्यमाणकारणा किञ्चिन्तरेण कस्याश्चिद्-विद्याया पारङ्गतास्तत्र भवन्त शिष्टा (महाभाष्य) ॐ

ढलोप पूर्वस्य दाघोऽण ६।३।१११

प० वि०—ढलोपे ७।१ पूर्वस्य ६।१ दीर्घ १।१ अण ६।१

स०—ढश्च रश्चेति ढी (द्वन्द्व) । ढ्योलोपो यस्मिन् इति ढलोप (बहु०) तस्मिन् ।

अर्थ—ढलोपे पूर्वस्याणो ङीर्घो भवति ।

(ढकार और रफ का लोप हो जिसमें उसके पूर्व अण का दीघ होता है)

उदा०—लीढम् । मीढम् । उपगूढम् । रलोपे—नीरक्तम् । अग्नी रथ । इन्दुरथ । पुनारक्तं पास । अन्ताराष्ट्रीय ।

सि०—लिह् क्त^१ । लिह् त । लिढ्^२ त । लिढ् ध^३ । लिढ ढ^४ । लि^५ ढ । ली ढ^६ सु । लीढ अम् । लीढम् । मिह क्त । मिह् त । मिढ् त । मिढ् ध । मिढ् ढ । मि ढ । मीढ सु । मीढ अम् । मीढम् । उपगूढ् क्त । उपगूढ् त । उपगूढ् ध । उपगूढ् ढ । उप गूढ । उपगूढ सु । उपगूढ अम् । उपगूढम् । निर् रक्तम् । नि रक्तम्^७ । नी रक्तम्^८ । अग्नि रथ । अग्नि रथ । अग्नीरथ । इन्दुर रथ । पुनर रक्तम् । अन्तराष्ट्रीय ।

१—भूते (३ २ ८४) निष्ठा (३ २ १०२) नतक्तवत्तु निष्ठा (१ १ २६)
२—हो ढ (८ २ ३१) ३—अपस्तथोघोऽघ (८ २ ४०) ४—पुना प्ठु (८ ४ ४०) ५—ढो ढे लोप (८ ३ १३) ६—ढलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽण (६ ३ १११) ७—री रि (८ २ १४)

सहिवहोरोदवर्णस्य ६।३।११२

प० वि०—सहिवहो ६।० ओत् १।१ अवर्णस्य ६।१ स०—सहिवच
यहश्चेति सहिवहौ तयो ।

अर्थ—[ढलोपे] सहि वह इत्येतयोरवर्णस्य ओभारादेशो भवति
ढलोपे । (सह और वह धातु के प्रकार व स्थान में आकार आदेश होता है
ढकार और रेफ के ताप होने पर)

उदा०—सोडा । सोडुम् । सोढव्यम् । घोडा । वोडुम् । वोढव्यम् ।

सि०—सह् वृच् । सह् वृ । सढ् वृ । सढ् घृ । सढ् ङ । स ङ सु ।
सोडा । एव सर्वत्र स्वयमेव अन्यास. कर्त्तव्य ।

सहितायाम् ६।३।११४

प० वि०—सहितायाम् ७।१

अर्थ—सहितायाम् इत्यधिकारो वेदितव्य ।

(अब महा स प्रागे सहिता का अधिकार समझना चाहिये)

अचि तुनुघमक्षुतङ्कुत्रोरुप्याणाम् ६।३।१३३

प० वि०—अचि ७।१ तुनुघमक्षुतङ्कुत्रोरुप्याणाम् ६।३

अर्थ—[दीर्घ] अचि विषये तु-नु-घ-मक्ष-तङ्-कु-त्र उरुय
इत्येतेषां दीर्घा भवति सहितायां विषये । (ऋक ऋचा में) तु नु, घ, मक्षु
(सीघ्र) तङ् कु, ङ, उरुय इनको दीर्घ हाता है सहिता के विषय में)

उदा०—आ तू न इन्द्र वृत्रहन् । नू करणे । उत वा धा स्थालात् ।
मक्षु गोमन्तमीमहे । तङ्—भरता जातवेदसम् तडिति थादेशस्य
डित्पक्षे प्रहण, तेनेह न भवति शृणोत प्रावाण । कूमन । अत्रा गौ ।
उरुप्या णोम्ने ।

निपातस्य ६।३।१३६

प० वि०—निपातस्य ६।१

अर्थ—[अचि दीर्घ] अचि विषये सहितायां निपातस्य दीर्घो
भवति । (ऋचा के विषय में सहिता में निपात का दीर्घ हाता है)

उदा०—णा ते ।

अन्येषामपि दृश्यते ६।३।१३७

प० वि०—अन्येषाम् ६।३ अपि अ० । दृश्यते (त्रिया०)

अर्थ—[दीर्घ.] अन्येषामपि दीर्घो दृश्यते । ❀ स दीर्घ शिष्ट-
प्रयोगादनुगन्तव्य । यस्य दीर्घत्वं न विहितं दृश्यते च प्रयोगे तदनेन
कर्त्तव्यम् ❀ (मन्यो को भी दीर्घ देखा जाता है)

उदा०—केशाकेशि । कचानचि । जलापाट् । नारक पूरुप. ।

सि०—केशेषु केशेषु गृहीत्या इदं युद्धं धृत्तमिति विग्रह । केश सुप्
केश सुप् । केशकेश^१ । केशाकेश । केशाकेश इच्^२ केशाकेश इ । केशा-
केशि सु । केशाकेशि^३ । जल सहते इति विग्रह । जल अम् सह
एव^४ । जल सह वि । जल सह व् । जला^५ साह । जला साह^६ ।
जलासाह^७ । जलासाट्^८ । जलापाट्^९ ।

चौ ६।३।१३८

प० वि०—चौ ७।१

अर्थ—[पूर्वस्य दीर्घः] चौ परत पूर्वपदस्य दीर्घो भवति ।

(चु क परे रहने पर पूर्व पद का दीर्घ होना है)

उदा०—दधीच पश्य । दधीचा । दधीचे । मधूच पश्य । मधूचा ।
मधूचे ।

सि०—अच (६. ४. १३८) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

सम्प्रसारणस्य ६।३।१३९

प० वि०—सम्प्रसारणस्य ६।१

अर्थ—[पूर्वस्य दीर्घः] सम्प्रसारणान्तस्य पूर्वपदस्य उत्तरपदे परतो
दीर्घो भवति । (सम्प्रसारणान्त पूर्वपदका दीर्घ हाता है, उत्तरपद के परे
रहन पर)

उदा०—कारीपगन्वीपुत्र । कीमुदगन्वीपुत्र ।

सि०—प्यङः सम्प्रसारणम् (६. १. १२) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया पष्ठाध्याये तृतीय पाद

१—तत्र तेनर्दामति सरूपे (२ २ २७) २—इच् कमव्यतीहारे (५. ४. १२७) ३—इषोऽप्ययत्तम् अत एव प्रथयादाप्सुप (२ ४ ८१) ४—एदमि सह (३ २. ६३) ५—अन्येषामपि दृश्यते (६. ३ १३७) ६—हो ङ (८. २. ३१) ७—कला जगोऽन्ते (८. २. ३६) ८—वावसान (८. ४. ५८) ९—सहे साह पः (८. ३ ५६)

अङ्गाधिकारप्रकरणम्—

अङ्गस्य ६।४।१

प० वि०—अङ्गस्य ६।१

अर्थ—आ सप्तमाध्यायपरिसमाप्ते 'अङ्गस्य' इत्यधिकारो वेदितव्य । (सप्तमाध्यायपर्यन्त अङ्गस्य का अधिकार समझना चाहिए । अर्थात् अगले सूत्रों में यह पद उपस्थित होता है)

हल ६।४।२

प० वि०—हल ५।१

अर्थ—[अणु सम्प्रसारणस्य दीर्घ] हल उत्तरस्य अङ्गस्यावयवस्य अणो दीर्घो भवति । (हल के उत्तर अङ्ग के अवयव सम्प्रसारण अणु का दीर्घ होता है)

उदा०—जीन । जीनान् ।

सि०—प्रहिज्येति (६ ? १६) सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

नामि ६।४।३

प० वि०—नामि ७।१

अर्थ—[दीर्घ] नामि परतोऽङ्गस्य दीर्घो भवति ।

(नाम् के परे रहन पर अङ्ग का दीर्घ होता है)

उदा०—अग्नीनाम् । वायूनाम् । कण्टाम् । हृत्णाम् ।

न तिसृचतसृ ६।४।४

प० वि०—न अ० । तिसृचतसृ (सुपा सुलुगिति पष्ठीद्विवचनस्य लुक कृत्वा निर्देश कृत इति न्यास)

अर्थ—[नामि दीर्घ] तिसृ चतसृ इत्येतयोर्नामि दीर्घो न भवति ।

(तिसृ और चतसृ अङ्ग का नाम के परे रहन पर दीर्घ नहीं होता है)

उदा०—तिसृणाम् । चतसृणाम् ।

छन्दस्युभयथा ६।४।४

प० वि०—छन्दसि ७।१ उभयथा १।१ अथवा अव्ययपदम् ।

अर्थ—[तिसृ चतसृ नामि दीर्घ] तिसृ चतसृ इत्येतयोर्नामि परत उभयथा दृश्यते छन्दसि विषये । (छन्द के विषय में तिसृ और चतसृ को दीर्घ और अदीर्घ दोनों प्रकार से देखा जाता है नाम के पर रहन पर)

उदा०—तिसृणाम् मध्यदिने तिसृणा मध्यदिने । चतसृणा मध्यदिने

चतमृणां मन्थन्तिने ॥

सि०—त्रि आम् । तिस्र^१ आम् । तिस्र^२ नुद्^३ आम् । तिस्रनाम् ।
तिस्र नाम् । तिस्रणाम् । चतुर्^४ नाम्^५ । चतस्रणाम् ।

नृ च ६।४।६

प० वि०—नृ (लुप्तपष्ठीर पदम्) च अ० ।

अर्थ—[नामि उभयथा] नृ इयेतस्य च नामि परत उभयथा
भवति । (नाम् के परे रहने पर नृ शब्द का दोनों प्रकार स दीर्घ और घटित
होता है)

उदा०—त्वं नृणां नृपते । त्वं नृणां नृपते ॥

नोपघाया ६।४।७

प० वि०—नः ६।१ ङसौत्रयान्निर्देशस्य यकारलोपस्यासिद्धत्वम्
अनाश्रित्वाद् गुणः कृत ङोपघाया ६।१

अर्थ—[नामि दीर्घः] नान्तस्याङ्गम्योपघाया नामि परतो दीर्घो
भवति । ङ न इति वर्णप्रहरणम् । तत्र वर्णप्रहरणे मर्त्रे तदन्तविधि प्रयो-
जयन्ति इति नशास्त्रेण नकारान्तस्य प्रहरणं क्रियते । ङ

(नकारान्त षट् की उपधा को दीर्घ होता है नाम् के परे रहने पर)

उदा०—पञ्चानाम् । मज्जानाम् । नयानाम् । दशानाम् ।

सि०—पञ्चन आम् । पञ्चन् नुद्^३ आम् । पञ्चन् नाम् । पञ्चान्^५
नाम् । पञ्चानाम्^६ ॥

सर्वनामस्थाने चामम्बुद्धौ ६।४।८

प० वि०—सर्वनामस्थाने ७।१ च अ० । असम्बुद्धौ । ७।१

अर्थ—[नोपघायाः दीर्घः] सम्बुद्धिभिन्ने सर्वनामस्थाने च परतो
नान्तम्योपघाया दीर्घो भवति । (सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान विभक्ति के परे
रहने पर नकारान्त षट् की उपधा को दीर्घ होता है)

उदा०—राजा । राजानी राजान् । राजानम् । राजानी ।
मामानि तिष्ठन्ति । मामानि पश्य ॥ असम्बुद्धौ इति किन्-हे राजन् ।

१—त्रिचतुरा म्बिन्ना तिसृषुषु (७ २. ६६) २—हस्वनघानो नुद् (७
१ २४) ३—पञ्चाना पट् (१ १ २३) पञ्चानुषुषुषु (७.१. २३) ४—नोपघायाः
(६. ४. १७) ५—स्वार्थस्य सर्वनामस्थान (१. ४ १७) पश्य (८ १. १६) नभो-
प्रातिपदिकान्तस्य (८ २. ४)

हे तद्धन् । हे सामन् ।

सान्तमहत्तः संयोगस्य ६।४।१०

प० वि०—सान्तमहत्तः ६।१ संयोगस्य ६।१ स०—सकारोऽन्तो यस्येति सान्तः । सान्तरच महच्चेति सान्तमहत्त् तस्य सान्तमहत्तः ।

अर्थ—[नोपधायाः सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ] सान्तसंयोगस्य महत्तरच यो नकारस्तस्योपधाया दीर्घो भवति सम्बुद्धिभिन्नसर्वनामस्थाने परतः । (सकारान्त गौर महत्त शब्द के संयोग वा ओ नकार उसकी उपधा को दीर्घ होता है, सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान विभक्ति के परे रहने पर)

उदा०—श्रेयान् । श्रेयांसी । श्रेयांस । श्रेयांसम् । श्रेयांसी ॥

पयांसि । यशांसि । मनांसि ॥ महत्तः—महान् । महान्ती । महान्तः । महान्तम् । महान्ती ॥ असम्बुद्धौ इति किम्—हे श्रेयन् । महन् ।

सि०—साधनं प्रशास्यस्य श्र इत्यत्र घप्रकरणे द्रष्टव्यम् ॥

अप्त्तृत्त्स्वसृन्त्तृनेष्टृत्वष्टृक्षतृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम् ६।४।११

प० वि०—अप्-तृन्-तृच्-स्वसृ-नष्टृ-नेष्टृ-त्वष्टृ-क्षृ-होतृ-पोतृ-प्रशास्तृणाम् ६।३

अर्थ—[उपधायाः दीर्घः सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ] अप्-तृन्-तृच्-स्वसृ-नष्टृ-नेष्टृ-त्वष्टृ-क्षृ-होतृ-पोतृ-प्रशास्तृ इत्येतेपामङ्गानामुपधाया दीर्घो भवति सम्बुद्धिभिन्नसर्वनामस्थाने परतः (अप् इत्यादि अङ्गो की उपधा को दीर्घ होता है सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान विभक्ति के परे रहने पर)

उदा०—अप्—आपः । ऋत्तुमनसमासिकतावर्षाणां बहुत्व च (लिङ्ग० १।२६) इत्येतेषां बहुत्वं अत एव एक्यचनद्विवचने न संभवतः ऋत्तृन्—कर्ता । कर्तारौ । कर्तारः । कर्तारम् । कर्तारौ ॥ तृच्—कर्ता । कर्तारौ । कर्तारः । कर्तारम् । कर्तारौ । ऋत्तृचः अर्थे वैशिष्ट्यम् ऋत्तृस्वसृ—स्वसा । स्वसारौ । स्वसारः । स्वसारम् । स्वसारौ । नष्टृ—नप्ता । नप्तारौ । नप्तारः । नप्तारम् । नप्तारौ । नेष्टृ—नेष्टा । नेष्टारौ । नेष्टारः । नेष्टारम् । नेष्टारौ ॥ त्वष्टृ—त्वष्टा । त्वष्टारौ । त्वष्टारः । त्वष्टारम् । त्वष्टारौ ॥ क्षृत्तृ—क्षृत्ता । क्षृत्तारौ । क्षृत्तारः । क्षृत्तारम् । क्षृत्तारौ । होतृ—होता । होतारौ । होतारः । होतारम् । होतारौ ॥ पोतृ—पोता । पोतारौ । पोतारः । पोतारम् । पोतारौ । प्रशास्तृ—प्रशास्ता । प्रशास्तारौ । प्रशास्तारः । प्रशास्तारम् । प्रशास्तारौ । ऋत्तृन्-आदीनां

अर्थ—[उपधायाः सावसम्बुद्धौ दीर्घः] धातुभिन्नस्य अत्वन्तस्य असन्तस्य च अङ्गस्योपधायाः सावसम्बुद्धौ दीर्घो भवति । (धातुभिन्न अत्वन्त और असन्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ हाना है सम्बुद्धिभिन्न सु के परे रहने पर)

उदा०—अत्वन्तस्य, डवतु—भवान् । क्तवतु—गतवान् । मतुप्—गोमान् । यवमान् ॥ क्लृपरं नित्यं च नुम् बाधित्वा वचनसामर्थ्यादादौ दीर्घः, ततो नुम्क्लृअसन्तस्य—सुपयाः । सुयशाः ॥ असम्बुद्धावित्येव गोमन् । हे सुपयः ।

अनुनासिकस्य क्विभ्रलोः क्विडति ६।४।१५

प० वि०—अनुनासिकस्य ६।१ क्विभ्रलोः ७।२ क्विडति ७।१

अर्थ—[उपधायाः दीर्घः] अनुनासिकान्तस्याङ्गस्योपधाया दीर्घो भवति क्विप्रत्यये परतो भ्रलादौ च क्विडति । (अनुनासिकान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ होता है क्वि प्रत्यय के परे रहने पर और भ्रलादि क्वि डित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—क्वौ—प्रशान् । प्रतान् । भ्रलादौ क्विति—शान्तः । शान्तवान् । शान्तिः । भ्रलादौ डिति—शंशान्त । तन्तान्तः ॥

सि०—शमु उपशमे । शम् क्विप्^१ । प्रशम् । प्रशाम्^२ । प्रशान्^३ । तमु काङ्क्षायाम् । प्रतम क्विप् । शम् क्त । शान्तः^४ । शमु यङ् य । शम् शम् य । श शम् य । श नुक्^५ शम् य । शन् शम् य । शशम्य । शंशम्^६ लट् । शंशम् तस् । शंशम् शप् तस । शंशम्^७ तस् । शंशान्तस् । शंशांतस् । शंशान्तः ॥

अज्भ्रनगमा सनि ६।४।१६

प० वि०—अज्भ्रनगमाम् ६।३ सनि ७।१ स०—अच्च हन् च गम्

१—क्विप् च (३ २ ७२) २—अनुनासिकस्य क्विभ्रलोः क्विडति (६. ४. १५) ३—क्विब्रन्त धातुत्व न जहाति इति वचनाद् ० मो नो धातो. (८. २. ६४) ४—नश्चापदान्तस्य क्विति (८. २. २४) अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः (८. ४. ५७) ५—तुगतोऽनुनासिकान्तस्य (७. ४. ८५) आद्यन्तो टकितौ (१. १. ४५) ६—यङोऽचि च (२. ४. ७४) सनाद्यन्ता धातवः (३. १. ३२) धातोः (३. १. ६१) वर्तमाने लट् (३ २. १२३) प्रत्यय (३ १. १) परसच (३. १. १) ७—अदिप्रभृतिभ्यः शपः (२. ४. ७२)

चेति अजन्मगमः तेषाम् ।

अर्थ—[मूलि दीर्घः] अजन्म-हन्-गम इत्येतेषामङ्गानां मलादी मनि दीर्घो भवति । (अजन्त, हन् गम्, इन अङ्गा वा दीर्घं होता है मन्नादि मन् के परे रहने पर)

उदा०—अजन्तस्य-चिकीर्षति । जिडीर्षति । हन्-जिघांसति । गम्-अधिजिघांसते । Xगमेरिडादेशस्येति वक्तव्यम् / इह मा भून् मजि-गंसते वामो मात्रेति ।

मि०—चिकीर्षति इति मायन सन्निवायसमूहे इष्टव्यम् । जिघांसति । हन् । हान् । मन् । हान् । हान् । स । इ हान् । मा । म् । हान् । म । ज । हान् । स । ज घान् । स । जघान् । म । जिघान् । स । जिघान्म लट् जिघांस शप् ति । जिघांसति ॥ अधिजिघांसते । इह । गम् । गन् । गम् । गम् । स । ग गम् । स । ज गम् । म । जि । गम् । म । जिगाम् । स । जिगाम् लट् । जिगाम् । त । जिगाम् । शप् । त । जिगाम् । अ । त जिगाम् । जिगाम् । अधिजिघांसते ।

च्छ्रयो. गूढनुनासिके च ६।८।१६

प० मि०—च्छ्रयोः ६।२ शृङ् १।१ अनुनासिके ७।१ च अ० । म०—च्छ्रयश्च वरचेति च्छ्रयो तयोः च्छ्रयो । गश्च उठ्चेति शृङ् ।

अर्थ—[क्विसलोः क्विदिति] च्छ्र य् इत्येतयोः स्थाने यथासक्यं श् उठ् इत्येतावादेशो भवतः, अनुनासिकादी प्रथमे परतः क्वी मलादी च क्विदिति ।

(च्छ्र घोर क्व के स्थान में क्रमशः च् घोर उठ् आदेश होते हैं अनुनासिकादि प्रथमे के परे रहने पर क्व के परे रहने पर घोर मलादि क्विदिति के परे रहने पर)

उदा०—अनुनासिके-प्रश्नः । विद्मः । वकारस्य उठ्-स्थानः । क्वी च्छ्रस्य-शब्दप्राट् । वकारस्य क्वी-अक्षयः । द्विरक्षयः । मलादी च्छ्रस्य क्विति-शृष्टः । शृष्टवान् । शृष्ट्वा । वकारस्य मलादी क्विति-शृतः । शृतवान् । शृत्वा ।

१—सन्धयोः (६. १. ६) २—पूर्वोऽभ्यासः (६. १. ४) अथ सोऽस्योऽभ्यासस्य (७. ४. २८) कुशोश्च (७. ४. ६२) ३—अभ्यासं चर्षं (८. ४. २१) ४—अभ्यासाच्च (७. ३. २६) ५—इहश्च (२. ४. ४८) ६—अक्षयः (७. ४. ७६)

सि०—प्रच्छ नङ् । प्रश्नः, साधनन्तु नङ्विधिसूत्रे द्रष्टव्यम् ।
स्योनः । सिव् न^१ । सि उठ् न । स्यू न । स्योन^२ सु । स्योनः । अक्षै-
र्दीव्यति इति अक्षयूः । अक्ष भिस् दिव् क्विप् । अक्ष भिस् दि उठ् ।
अक्षयू सु । अक्षयू ।

राल्लोप ६।४।२१

प० वि०—रात् ५।१ लोप १।१

अर्थ—[च्छ्वो० किरम्लो क्विडति] रेफादुत्तरयोश्छ्वोलोपो
भवति क्वौ परतो मलादौ च ङिडति ।

(रेफ के पश्चात् च्छ और व का लोप हो जाता है किं और मलादि
कित् डित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—मुर्छा । मू । मुरौ । मुरः । मूर्त्तिः । राल्लोपे सतुक्कस्य
द्यस्याभावात्फेबलो गृह्यतेऽक्कारस्य-तुर्वा-त् । तुरौ । तुर । तूर्ण ।
तूर्णवान् । तूर्त्तिः । धुरी । धू । धुरौ । धुरः । धूर्णः । धूर्णवान् ।
धूर्त्तिः ।

सि०—मुर्छा । मुर्छ् क्विप् । मुर् सु । मूर्^३ । मू । मुर औ ।
मुरौ । एव सर्वत्र ॥

श्नान्नलोप ६।४।२३

प० वि०—श्नात् ५।१ नलोप १।१

अर्थ—श्नादुत्तरस्य नकारस्य लोपो भवति ।

(श्न के पश्चात् नकार का लोप होता है)

उदा०—अनक्ति । मनक्ति । हिनस्ति ।

सि०—अन्जू व्यक्तिस्रक्षणाकान्तिगतिषु । भन्जो आमर्हने । हिंसि
हिंसायाम् ।

अन्जू । अन्ज् लट् । अन्ज् तिप् । अ शनम् न्ज् तिप् । अनन्ज्
ति । अनज् ति । अनज्^४ ति । अनक्ति^५ ।

अनिदिता हल उपधाया विडति ६।४।२४

प० वि०—अनिदिताम् ६।३ हलः ६।१ उपधाया. ६।१ विडति ७।१

१—धापवस्यज्यतिभ्यो न इति (उए ३. ६) धादिभ्यो विधीय-
मानो न प्रत्ययो बहुलवचनात् सिवरेषि भवति । २—सावंधातुकावधातुकयो
(७. ३. ८४), ३—गोल्पधाया दीर्घ इक (८. २ ५६) ४—घोः कु (८. २.
३०) ५—खरि च (८. ४. ५४)

सः—इन् इन् यन्वेति इतिन् । न इतिन् अनितिन् तेषा अनितिताम् ।

अर्थ—[नलोपः] अनितितामज्ञानां हलन्वानाम् उपवाया नकारस्य लोपो भवति किञ्चित् प्रत्यये परत ।

(इकार इत् त्रिसृका नहीं है ऐसे हलन्व भङ्ग की उपवा नकार का लोप होता है, किन्ति प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—किति-स्रस्तः । ध्वस्तः । म्रम्यते । घृत्यते । मनीस्रत्यते । दनीस्रम्यते ।

मि०—म्रं सु ध्वं सु अचःपतने । स्रम् स्त । स्रम् यक्^१ ते । स्रम् यङ् । स्रम् य । स म्रम्य । म नीक्^२ म्रम्य । मनीस्रम्य शप्^३ ते मनीस्रम्यते । × रजकरजनरजःमु रज्जेम्यसम्व्यानम् < रजज । रजनम् । रज ।

शाम इदट् हलो ६।४।३४

प० मि०—शासः ६।१ इन् १।१ अट् हलो ७।०

अर्थ—[किञ्चित्] शाम् उपवाया इकारादेशो भवति अटि परतो हलादी च किञ्चित् ।

(शाम को उपवा का इकारादेश होता है अट् के शोर हलादि किन्ति के परे रहने पर)

उदा०—अन्वशिपन् । अन्वशिपताम् । अन्वशिपन् । अन्वशिपः । अन्वशिपन्तम् । अन्वशिपत । अन्वशिपन् । अन्वशिप्व । अन्वशिप्म । हलादी किति-शिष्ट । शिष्टान् । हलादी किति-नो शिष्ट । च शिप्म ।

शा ही ६।४।३५

प० मि०—शा १।१ ही ७।१

अर्थ—[शाम्] शासो ही परतः शा इयमादेशो भवति ।

(शाम् के स्थान में शा प्रादेश होता है हि के पर रहने पर)

उदा०—अनुशाधि । प्रशाधि ।

मि०—शान् लोट । शाम् ल् । शाम् मिप् । शाम् दि । शा हि^१ । शाधि ।

१—शार्वाणानुक्ते यद् (३. १. ६३) २—नीवञ्चुत्तमुष्ममुष्मंमुष्मन्त-पदस्यन्दाम् (७. ४. ८६) ३—प्रसिद्धवद्वामान् (६. ४. ००) इन्मन्मन्धि. (६. ४. १०१)

हन्तेर्ज ६।४।३६

प० वि०—हन्ते ६।१ ज १।१

अर्थ—[हौ] हन्तेर्घांतोर्ज इत्ययमादेशो भवति हौ परत ।
(हन् घातु के स्थान में ज आदेश होता है हि के परे रहने पर)

उदा०—जहि शत्रून् ।

सि०—हन् सिप् । हन् हि । ज^१ हि । जहि ।

अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो

भ्रलि किडति ६।४।३७

प० वि०—अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनाम् ६।३ अनुनासिक-
लोप १।१ भ्रलि ७।१ किडति ७।१ स०—अनुदात्तो य उपदेशे स अनु-
दात्तोपदेश । तनोति आदि येषां ते तनोत्यादयः । अनुदात्तोपदेशश्च
वनतिश्च तनोत्यादयश्च इति अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादयः तेषाम् ।
अनुनासिकस्य लोप अनुनासिकलोप ।

अर्थ—उपदेशे अनुदात्तानां वनते तनोत्यादीनां चाङ्गानां भ्रलि
किडति अनुनासिकस्य लोपो भवति । (उपदेश में जो अनुदात्त घातुए, वनति
श्रीर तनोति आदि अङ्गों के अनुनासिक का लोप होता है भ्रनादि किन् डित्
प्रथम परे रहने पर)

उदा०—यत्वा । यत । यतवान् । रत्वा । रत । रतवान् ।

वनति—वति (त्तिनो रूपम्) । तनोत्यादयः—तत—ततवान् । त्तत ।
त्ततवान् । ङिति—अतत । अतथा ।

ॐ अनुनासिक इत्यत्र सिद्धान्तकौमुदीकारस्तु यल्लुप्तपष्ठीरु मन्यते
तच्चिचन्त्यम् । अत्र तत्प्रवोधिनीव्याख्यायां—यद्यत्र एतेषामनुनासिकस्य
लोप इति व्याख्यायते तदा मन्यतेर्नम्निहमिहमुचमस्ज्जादीनां चानन्त्य-
स्यापि लोप स्यात्, तथा च मत नत नद्ध मीढ मग्न इत्यादि न सिध्येत्
इत्येतदपि तथैव चिचन्त्यम्—तस्मिन्निति निदिष्टे पूर्वस्येति भ्रलि किडति
इति सप्तमीनिर्देशेन त्रिधीयमानम् अनुनासिकलोपकार्यं वर्णान्तरेणाव्य
वहितस्य पूर्वस्य अलोऽन्यस्यैव सरलतया बोध्यत्वात् ।

आर्धघातुके ६।३।४६

प० वि०—आर्धघातुके ७।१ ॥

अर्थ—आ न ल्यपे उद्यमानानि कार्याणि आर्धधातुके परतः भवन्ति इत्यभिप्रायो वेदितव्य ।

(न ल्यपि इमं सूत्रं तत्र यथा न आगे कहे जाने वाले वाय आर्धधातुक के परे रहने पर हात है, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

अतो लोप ६।४।४८

प० वि०—अतः ६।१ लोप १।१

अर्थ—अङ्गस्य अकारस्य लोपो भवति आर्धधातुके ।

(अङ्ग के अकार का लोप होता है आर्धधातुक के परे रहने पर)

उदा०—चिकीर्षिता । चिकीर्षितुम् । चिकीर्षितव्यम् ।

यस्य हल ६।४।४९

प० वि०—यस्य ६।१ हलः ५।१

अर्थ—[लोपः] हल उत्तरस्य यशब्दस्य आर्धधातुके लोपो भवति ।

(हलन्त अङ्ग के पश्चात् य शब्द का लोप होता है)

उदा०—वेभिदिता । वेभिदितुम् । वेभिदिव्यम् ।

सि०—भिदिर् । भिद् यङ् । वेभिद्य् वृच् । वेभिद् अ वृ । वेभिद् वृ । वेभिदिता । ❀ अत्र आदेः परस्येति सूत्रेण य् इत्येतस्य लोपः कर्त्तव्यः पश्चात् अतो लोप इत्यनेन अकारस्य लोपः ❀

णेरनिटि ६।४।५१

प० वि०—णे ६।१ अनिटि ७।१ स०—न इट् अनिट् तस्मिन् अनिटि ।

अर्थ—[लोप] अनिडादाचार्यधातुके णेलोपो भवति ।

(अनिडादि आर्धधातुक के परे रहने पर णि का लोप होता है)

उदा०—अततत्तन् । अररत्तन् । आशिशन् । आटिटत् । कारण । हारणा । हारकः । हार्यते । हार्यते ।

निष्ठाया सेटि ६।४।५२

प० वि०—निष्ठायां ७।१ सेटि ७।१ स०—इटा सह इति सेट तस्मिन् ।

अर्थ—[णे.] निष्ठायां सेटि परतो णेलोपो भवति ।

(सेट् निष्ठा के परे रहने पर णि का लोप होता है)

उदा०—कारितम् । हारितम् ।

सि०—कृ णिच् इट् क्त । कारि इत् । कार् इत् । कारित सु।
कारित अम् । कारितम् ।

स्यसिच्सीयुट्तासिपु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशा वा
चिण्वदिट् च ६।४।६२

प० वि०—स्यसिच्सीयुट्तासिपु ७३ भावकर्मणो ७० उपदेश ७।४
अज्झनग्रहदृशाम् ६।३ वा अ० । चिएत् १।१ इट् १।१ च अ० ।

स०—स्यश्च सेच्च सीयुट् च तासि चेति स्यसिच्सीयुट्तासय
तेपु । भात् च कर्म च भावकर्मणी तयो । अच्च ह्नश्च ग्रहश्च दृट् च
इति अज्झनग्रहदृश तेपाम् ।

अर्थ—स्य सिच् सीयुट् तासि इत्येतेषु भात्कर्मविषयेषु परत उपदे
शेऽज्झनानामङ्गाना हन् ग्रह् दृश् इत्येतेषा च चिएवत् कार्यं भवति,
इडागमश्च । तेन यदा चिएवत् कार्यं तदा इडागम । (भाव और कर्म
विषयक स्य सिच् सीयुट् और तासि के परे रहन पर उपदेश में जो अज त धानु
उसको और हन ग्रह तथा दृश को विकल्प से चिएवत् काय होता है और इट् का
आगम भी होता है । जब चिए होता है तभी इट् का आगम भी होता है एसा
समझना चाहिए)

चिएवद् वृद्धियुक् च हन्तेश्च घत्व दीर्घश्चोवतो यो मित्ता वा चिणीति ।
इट् चासिद्धस्तेन मे लुप्यते णिर्नित्यश्चाय वलनिमित्तो विधाती ॥

इमान्येवास्य सूत्रस्य प्रयोजनानि । यथा चिणि णिच्त्वाद् 'अचो-
ऽञ्जिणति' इति वृद्धिर्भवति तथैव चिएवद्भावेऽपि भवति । यथा चिणि
'आतो युक् चिण्कृतो' इत्याकारान्तस्य युग् भवति तथा चिएवद्
भावेऽपि भवति । यथा चिणि 'हो हन्तेऽञ्जिण्नेप' इति हन्तेर्हकारस्य
घत्व भवति तथैव चिएवद्भावेऽपि भवति । यथा चिणि 'चिएणमुलो
दीर्घोऽन्यतरस्याम्' इति मित्ता वा दीर्घत्व भवति तथैव चिएवद्भावे-
ऽपि भवति । अपर चैतत् प्रयोजनम्—अनेन विहितमिट् 'असिद्धवद्
ग्राभात्' नियमेनासिद्धो भवति अत एरनिटि' इत्यनेन सत्यपीटि
इटोऽसिद्धत्वेन श्लोपो भवति ।

ननु चानेनेडागमे विधीयमानेऽपि 'आर्धधातुकस्येड्वलादे' इत्यने-
नेट् प्राप्नोति चिएवद्भावेन च तत्र पदत्वात् साप्तमिकेन इटा भवित-

व्यम्, तस्मिंश्च सति तस्यामिद्धवत्त्वाभावात् श्लोपो न प्राप्नोति । उच्यते—आर्धधातुकस्येति विहितं नाप्तमिक वलादिं निमित्तमाश्रयते, अयं पुनः निर्निमित्तकः न किञ्चिन्निमित्तमाश्रयते । तेन वलादिलक्षणै इटि कृतेऽपि प्राप्नोति अकृतेऽपि । 'यः कृतेऽपि प्राप्नोति अकृतेऽपि स नित्यः' इति नियमान् चिण्वद्भावसहचरितमिट् नित्यम् । परत्वाच्च नित्यं बलवान् भवति इति न्यायान् पूर्वं चिण्वद्भावसहचरितमिट् भवति । सति चाभिन्निटि वलादित्वाभावात् वलादिनिमित्तकं साप्त-मिक इट् न प्राप्नोति । अर्थान् वलादिलक्षणस्येदः अयमिट् निमित्त विहन्ति ।

इस सूत्र के निम्नलिखित प्रयोजन हैं—१. जिस प्रकार चिण् व परे रहने पर 'अचोऽञ्जिति' इत्यादि में 'अचाधि' आदि में वृद्धि होती है वैसे चिण्वद् भाव में भी हो जाती है—चायिष्यते । २. जिस प्रकार चिण् परे रहने पर 'घातो युक् चिण्वदोः' से 'अदायि' इत्यादि में आकारान्त अग को युक् का प्रागम होता है, वैसे चिण्वद् भाव में भी हो जाता है—दायिष्यते । ३. जिस प्रकार चिण् परे रहने पर हन् धातु के हकार को 'हो हन्तेऽञ्जिन्नेषु' सूत्र से षत्व हो जाता है वैसे चिण्वद् भाव में भी होता है—धामिष्यते । ४. जिस प्रकार णि में चिण् परे रहने पर 'चिण्णमुलो दीर्घोऽन्यतरस्याम्' में 'अशामि अशमि' में मित् सज्ञको विकल्प से दीर्घ होता है वैसे चिण्वद् भाव में भी विकल्प से दीर्घ हो जाता है—शामिष्यते, शमिष्यते । ५. ध्वन्त धातु में चिण्वद् भाव के साथ इस सूत्र के साथ जो इट् का प्रागम होता है वह 'अमिड-वदनाभात्' नियम में असिद्धवत् हो जाता है इसलिए स्यादि को अनिडादि म'नकर 'एरनिटि' से णि वा लोर हो जाता है यथा—शामिष्यते, शमिष्यते, चिण्वद् अभाव में—शमयिष्यते ।

प्रश्न—'शम् णिच् स्य ते' इस अवस्था में इस सूत्र में भी इट् प्राप्त होता है, 'आर्धधातुकस्येड्वततादे' में भी । परत्व में 'आर्धधातुकस्य' में इट् होगा इस से नहीं, तब णि का लोप कौन होगा ?

उत्तर—इस सूत्र में जो इट् होता है वह नित्य है । 'आर्धधातुकस्य' सूत्र में विहित इट् तभी होता है जब वलादि प्रत्यय हों । इस इट् के लिए कोई निमित्त नहीं है चाहे वह वनादि हो चाहे अजादि । इसलिए परत्वान् वनादि निमित्तक इट् के हो जाने पर भी इस सूत्र से पुनः इट् की प्राप्ति होती है । जो कार्य किसी कार्य के न करने पर भी प्राप्त हो और कर लेने-कर भी वह नित्य होता है । इस कारण यह इट् नित्य है । इस इट् के कर लेने पर प्रत्यय

बलादि नहीं रहता अत बलादि लक्षण इट् नहीं होता । इस प्रकार वह इट् अनित्य है । पर से भी नित्य बलवान् होता है अत पहले यही चिह्नवद् भाव वाला इट् होगा, इसके हो जाने पर सप्तमाध्याय वाला बलादि लक्षण इट् नहीं होगा और यह इट् शिलोप के करन में 'असिद्धवदत्राभाव' नियम से असिद्धवत् हो जाता है अत 'शामिप्यते' में शि का लाप हा जाएगा

उदा०—अजान्तानाम्—चायिप्यते । चेप्यते । अचायिप्यत । अचेप्यत । दायिप्यते । दास्यते । अदायिप्यत अदास्यत । शामिप्यते । शमिप्यते । शमयिप्यते । अशामिप्यत । अशमिप्यत । अशमयिप्यत । हन्—वानिप्यते । हनिप्यते । अघानिप्यत । अहनिप्यत । ग्रह—ग्राहिप्यते । ग्रहीप्यते । अग्राहिप्यत । अग्रहीप्यत । ग्रहोऽलिति दीर्घ इति प्रकृतस्येदो दीर्घत्वम् न त्वस्य । दृश—दर्शिप्यते । द्रक्ष्यते । अदर्शिप्यत । अद्रक्ष्यत । सिच्यजन्तानाम्—अचायिपाताम् । अचेपाताम् । अदायिपाताम् । अदिपाताम् । अशामिपाताम् । अशमिपाताम् । अशमयिपाताम् । हन्—अघानिपाताम् । अवधिपाताम् । अहसाताम् । ग्रह—अग्राहिपाताम् । अग्रहीपाताम् । दृश्—अदर्शिपाताम् । अदृक्षाताम् । सीयुटि अजान्तानाम्—चायिपीष्ट । चेपीष्ट । दायिपीष्ट । दासीष्ट । शामिपीष्ट । शमिपीष्ट । शमयिपीष्ट । हन् । घानिपीष्ट । वधिपीष्ट । ग्रह—ग्राहिपीष्ट । ग्रहीपीष्ट । दृश्—दर्शिपीष्ट । दृक्षीष्ट । तासावजन्तानाम्—चायिता । चैता । दायिता । दाता । शामिता । शमिता । शमयिता । हन्—घानिता । हन्ता । ग्रह—ग्राहिता । ग्रहीता ।

दीडो युडचि किडति ६।४।६३

प० वि०—दीड. ५१ युट् १।१ अचि ७।१ किडति ७।१

अर्थ—दीडो युडागमो भवति अजादौ किडति प्रत्यये परत ।

❀ दीड् इति पञ्चमीनिर्देशाद् अजादेयुडागमो भवति ❀

(दीड् के पश्चात् अजाद कित्डित् को युट् का भागम होता है)

उदा०—उपदिदीये । उपदिदीयाते । उपदिदीयिरे ।

आतो लोप इटि च ६।४।६४

प० वि०—आत. ६।१ लोपः १।१ इटि ७।१ च अ० ।

अर्थ—[आर्धधातुके किडति] युडादावार्धधातुके किडति च आकारान्तस्याङ्गस्य लोपो भवति ।

(अत्रादि आर्धघानुक्तं मोरं किन् दिन् प्रत्यय के परे रहने पर आकारान्त अङ्ग वा लोप होता है)

उदा०—पपिथ । तस्थिथ । किति—पपतुः । पपुः । तस्थतुः । तस्थुः । गोदः । कम्बलदः । किति—प्रदा । प्रधा ।

सि०—पा । पा लिट् । पा थल् । पा थ । पा इट् थ । प् इ थ । पा प् इ थ । प प् इ थ । पपिथ । प्र दा अट् । प्रद टाप । प्रदा सु । प्रदा ।

ईद्यति ६।४।६५

प० वि०—ईन् १।१ यति ७।१

अर्थ—[आतः] आकारान्तस्याङ्गस्य ईकारादेशो भवति यति परतः । (आकारान्त अङ्ग को ईकार आदेश होता है, यन् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—देयम् । धेयम् । हेयम् ।

घुमास्थानापाजहातिसा हलि ६।४।६६

प० वि०—घु-मा-स्था-गा-पा-जहाति-साम् ६।३ हलि ७।१

अर्थ—घु-मा-स्था-गा-पा-हा-सा इत्येतेषामङ्गानाम् ईकारादेशो भवति हलादी किञ्चित् प्रत्यये परतः ।

(घु (दा धा) मा, स्था, गा, पा, घोहाइ त्यागे पो अन्तरमंणि इन अङ्गों को ईकार आदेश होता है हलादि किञ्चित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—दीयते । धीयते । देदीयते । देधीयते । मीयते । मेमीयते । ग्थीयते । तेष्ठीयते । गीयते । जेगीयते । पीयते । पेपीयते । हीयते । जेहीयते । अत्रसीयते । अत्रसेसीयते ।

एल्लिंति ६।४।६७

प० वि०—एः १।१ लिटि ७।१

अर्थ—[घुमाग्धागापाजहातिसां किरति] घुमाग्धागानाजहातिमा-मङ्गानामेकारादेशो भवति लिटि किरति परतः ।

(किञ्चित् लिट् के परे रहने पर इन अङ्गों को एकार आदेश होता है)

उदा०—देयान् । धेयान् । मा माने । मेयान् । ग्थेयान् । कै गो राच्चे । मेयान् । पेयान् । हेयान् । अत्रमेयान् । किरति—इत्येव । दासोष्ट । धापीष्ट ।

१-अत्रो भारद्वाजस्येति (७ २. ६३) निष्कारिणः २-इत्येवनेः (१. १. ५८) ३-दातःपोरुपे (१. ३. १०९)

वाऽन्यस्य सयोगादे ६।४।६८

प० वि०—वा अ० । अन्यस्य ६।१ सयोगादे ६।१

अर्थ—[लिङि आत्] घ्रादिभ्योऽन्यस्य सयोगादेराकारान्त-
स्याङ्गस्य विकल्पेन एकारादेशो भवति लिङि षिङिति ।

(घ्रु इत्यादि से भिन्न अन्य आकारान्त अङ्गो का विकल्प से एकार
आदेश होता है 'लिङ् कित्ठित् प्रत्यय क पर रहन पर)

उदा०—ग्लायत् । ग्लेयात् । म्लायत् । म्लेयात् ।

न ल्यपि ६।४।६९

अर्थ—न्यपि परतो घुमास्थागापाजहातिसा यदुक्तं तन्न भवति ।

(ल्यप के पर रहन पर घ्वादि धातुघो को जो कहा गया सो नही होता)

उदा०—प्रदाय । प्रघाय । प्रमाय । प्रश्नाय । प्रगाय । प्रपाय । प्रहाय ।

अवसाय ।

लुङ् लङ् लृङ् क्ष्वडुदात्त ६।४।७१

प० वि०—लुङ् लङ् लृङ्क्षु ७।३ अट् १।१ उदात्त १।१

स०—लुङ् च लङ् च लृङ् चेति लुङ् लङ् लृङ्, तेषु ।

अर्थ—लुङ् लङ् लृङ् इत्येतेषु परतोऽङ्गस्य अडागमा भवति,
उदात्तश्च स भवति । (इनक पर रहन पर अङ्ग को अट का आगम होता
है और वह उदात्त होता है)

उदा०—लुङ्—अकार्षीत् । अहार्षीत् । लङ्—अकरोत् । अहरत् ।

लृङ्—अकरिष्यत् । अहरिष्यत् ।

आडजादीनाम् ६।४।७२

प० वि०—आट् १।१ अजादीनाम् ६।३

अर्थ—[लुङ् लङ् लृङ् क्ष्वडुदात्त] अजादीनामङ्गानामाङ्गमो
भवति एतेषु परत उदात्तश्च स भवति ।

(इनक पर रहने पर अजादि अङ्गो को आट का आगम होता है और वह
उदात्त होता है)

उदा०—लुङ्—ऐधिष्ट । लङ्—ऐधत । लृङ्—ऐधिष्यत् ।

न माङ्योगे ६।४।७४

अर्थ—[लुङ् लङ् लृङ्क्षु] माङ्योगे लुङ् लङ् लृङ्क्षु यदुक्तं

‘तन्न भवति । (माङ् के योग में इनके परे रहने पर जो कुछ कहा गया है, सो नहीं होता है)

उदा०—मा भवान् कार्पात् । मा स्म करोत् ।

अचि श्नुधातुभ्रुवा ख्वोरियडुवडौ ६।४।७७

प० वि०—अचि ७।१ श्नुधातुभ्रुवाम् ६।३ ख्वो ६।२ इयडुवडौ १।२
स०—श्नुश्च धातुश्च भ्रूश्च श्नुधातुभ्रुवः तेषाम् । इश्च उश्चेति यूतयो
ख्वोः । इयड् च उवड् च इयडुवडौ ।

अर्थ—श्नु-धातु भ्रू इत्येतेषाम् इवणोवर्णयोः स्थाने इयड् उवड् इत्येतावादेशो भवतोऽचि परतः । (श्नुप्रत्ययान्त इवर्णान्त उवर्णान्त धातु घोर भ्रू अङ्ग के इवर्ण घोर उवर्ण के स्थान में इयड् घोर उवड् प्रादेश होता है अजादि प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—आप्नुवन्ति । धातोः—चिञ्जियतुः । चिञ्जियुः । लुलुवतुः । लुलुवुः । नियौ । नियः । लुवौ । लुवः । ङ् किरन्तं धातुत्वं न जहाति इति परिभाषया धातुत्वम् भ्रू—भ्रुवौ । भ्रुवः ।

सि०—आप्लु । आप कि । आप् अन्ति । आप् श्नु अन्ति । आप् न् उवड् अन्ति । आप्नुव् अन्ति । आप्नुवन्ति ।

अभ्यासस्यामवर्णौ ६।४।७८

प० वि०—अभ्यासस्य ६।१ असवर्णौ ७।१।।

अर्थ—[ख्वोरियडुवडौ अचि] अभ्यासस्येवर्णोऽर्णान्तस्य असवर्णौ-
ऽचि परत इयड् उवड् इत्येतावादेशो भवतः । (इवर्णान्त घोर उवर्णान्त अभ्यास को असवर्ण अजादि प्रत्यय के परे रहने पर इयड् घोर उवड् प्रादेश होता है)

उदा०—इयेप । उवोप ।

सि०—इप् । इप् लिट् । इप् तिप् । इप् णल् । एप् अ । इप् एप् अ । इ एप् अ । इयड् एप । इय् एप । इयेप ॥ उप् ॥ उवोप ।

स्त्रियाः ६।४।७९

प० वि०—स्त्रियाः ६।१

अर्थ—[अचि इयड्] स्त्री इत्यंतरयाजादौ प्रत्यये परतः इयडादेशो भवति । (स्त्री शब्द को अजादि प्रत्यय के परे रहने पर इयड् प्रादेश होता है)

उदा०—स्त्री । स्त्रियौ । स्त्रियः । स्त्रियम् स्त्रीम् । भ्रियौ । भ्रियः

स्त्रीः । स्त्रिया । स्त्रीभ्याम् । स्त्रीभिः । स्त्रियै । स्त्रीभ्याम् । स्त्रीभ्यः ।
स्त्रियाः । स्त्रीभ्याम् । स्त्रीभ्यः । स्त्रियाः । स्त्रियोः । स्त्रीणाम् । स्त्रियाम् ।
स्त्रियोः । स्त्रीषु । हे स्त्रि । हे स्त्रियो । हे स्त्रियः ॥

सि०—स्त्रियै । स्त्री ङे । स्त्री आट् ए । स्त्री आ ए । स्त्री ऐ । स्त्र
इयङ् ऐ । स्त्रिय् ऐ । स्त्रियै । स्त्रीणाम् । परत्वानुडागमः ॥ ॐहलादौ
नहि किञ्चिद् वैशिष्ट्यम् अमि शसि च अप्रिभेण सूत्रेण विकल्पः ॐ

वाऽम्शसोः ६।४।८०

प० वि०—चा अ० । अमशसोः ७।२

अर्थ—[स्त्रियाः इयङ्] अमि शसि च परतो वा इयडादेशो
भवति स्त्रियाः* (अम् और शस् के परे रहने पर स्त्री शब्द को विकल्प से इयङ्
आदेश होता है)

उदा०—स्त्रियम् । स्त्रीम् । स्त्रियः । स्त्रीः ॥

इणो [यण्] ६।४।८१

एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य ६।४।८२

प० वि०—एः ६।१ अनेकाचः ६।१ असंयोगपूर्वस्य ६।१ न एक इति
अनेकः । अनेकोऽच यस्मिन् इति अनेकाच् तस्य अनेकाचः । अदिद्य-
मानः संयोगः पूर्वः यस्मात् स असंयोगपूर्वः तस्य ॥

अर्थ—[अचि धातोः यण्] असंयोगपूर्वस्यानेकाच इवर्णान्तस्य
धातोर्ङस्य यण् आदेशो भवति अचि परतः । (नहीं है संयोग पूर्व जिसका
ऐसे अनेक अच् वाले इवर्णान्त धातु अङ्ग का यण् आदेश होता है अजादि
प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—निन्यतुः निन्युः । ग्रामण्यौ । ग्रामण्यः ।

सि०—णीच् । णी । नी लिट् । नी अतुस् । नी नी अतुस् । नि
नी अतुस् । निन्य् अतुस् । निन्यतुः ॥

ह्रशुवोः सार्वधातुके ६।४।८३

प० वि०—ह्रशुवोः ६।२ सार्वधातुके ७।१

अर्थ—[अनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य अचि यण्] हु इत्येतस्य अङ्गस्य
शुप्रत्ययान्तस्यानेकाचोऽसंयोगपूर्वस्याजादौ सार्वधातुके परतो यणादेशो
भवति । (हु और शु प्रत्ययान्त अनेक अच् वाला जो असंयोग पूर्व उसका

गमनहनखनघसां लोपः किडत्यनङि ६।४।९८

प० वि०—गमहनजनखनघसाम् ६।३ लोपः १।१ किडति ७।१ अनङि ७।१ स०—गमश्च हनश्च जनश्च खनश्च घश्चेति गमहनजन-खनघसः तेषाम् । न अङ् इति अनङ् तस्मिन् ।

अर्थ—[उपधायाः अचि लोपः] गह-हन-जन-खन-घस इत्येतेषा-मङ्गानामुपधाया लोपो भवति अजादौ किडति अनङि परतः । (इन् अङ्गो की उपधा का लोप होता है, अङ् भिन्न अजादि किन् इत् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—जग्मतुः । जग्मु । जघ्नतुः । जघ्नुः । जज्ञे । जज्ञाते । जज्ञिरे । चस्नतु । चस्नुः । जक्षतुः । जक्षुः । अनङि इति किम् । अगमत् । अघसत् ।

सि०—गम्ल । गम् लिट् । गम् अतुस् । ग्म् अतुस् । गम्^१ ग्म् अतुस् । ग ग्म् अतुस् । जग्मतुस् । जग्मतुः । हन् अतुस् । हन् अतुस् । हन् हन् अतुस् । ह् ह्न् अतुस् । क^२ हन् अतुस् । ज^३ हन् अतुस् । जघ्नतुस्^४ । जघ्नतुः । जन् लिट् । जन् त । जन् एश् । ज्न् ए । जन् ज्न् ए । जञ् ए । ज ज्न्^५ ए । जज्ञ् ए । जज्ञे । अद् लिट् । घस्ल^६ लिट् । घस् अतुस् । घ्स् अतुस् । घस् घ्स् अतुस् । घ घ्स् अतुस् । क घ्स् अतुस् । क घ्स् अतुस् । ज घ्स् अतुस् । जक्प्^७ अतुस । जक्पतुस् । (जक्षतुः) अथवा चस्ल अदने इत्यस्यैतद्रूपम् ।

घसिभसो [हंलि] च ६।४।१००

हुभलभ्यो हेधिः ६।४।१०१

प० वि०—हुभलभ्यः १।३ हेः ६।१ धिः १।१ स०—हुश्च भल्ल् चेति हुभलः तेभ्यः ।

अर्थ—[हंलि] हु इत्येतस्माद् भल्लन्तेभ्यश्चोत्तरत्य हलादेर्हेः स्थाने धिः आदेशो भवति । (हु घोर भल्लन्त अङ्ग के पश्चात् हलादि हि के स्थान

१—द्विवचनेऽचि (१. १. ५८) २—कुहोश्चुः (७. ४. ६२) ३—अभ्यासे चर्चं (८. ४. १४) ४—अभ्यासाच्च (७. ३. ५५) ५—स्तोः इक्षुना इक्षुः (८. ४. ३९) ६—लिट्यन्वतरस्याम् (२. ४. ४०) ७—शासिवासिघसीवाञ्च (८. ३. ६०)

में धि मह आदेग हांता है)

उदा०—जुहुवि । भिन्दि । छिन्दि । टलि इति मिम-रुदिदि ।

चिणो लुक् ६।४।१०८

प० वि०—चिणः ५।१ लुक् १।१

अर्थ—चिण उत्तरस्य प्रत्ययस्य लुक् भवति ।

(चिण् के उत्तर प्रत्यय का लुक् होता है)

उदा०—अहारि । अहारि । चिणभावस्मरणोरित्यत्र द्रष्टव्यम् ।

अतो हेः ६।४।१०५

प० वि०—अतः ५।१ हेः ६।१

अर्थ—[लुक्] अदन्ताद्द्वाउत्तरस्य हेर्लुक् भवति ।

(अदन्त अद् के पश्चात् हि वा लुक् हाता है)

उदा०—पच । पठ । खाड ।

उतश्च प्रत्ययादसयोगपूर्वान् ६।४।१०३

प० वि०—उतः ५।१ च अ० । प्रत्ययान् ६।१ असंयोगपूर्वान् ५।१

स०—अविद्यमानः संयोग पूर्वः यस्मान् स असंयोगपूर्वः तस्मान् ।

अर्थ—[हेर्लुक्] असंयोगपूर्वाद्युकारान्तात् प्रत्ययाद्द्वादुत्तरस्य हेर्लुक् भवति । (नहीं है संयोग पूर्व जितका एम उकारान्ता प्रत्यय के पश्चात् हि वा लुक् होता है)

उदा०—चिनु । मुनु ।

लोपश्चम्यान्यतस्या म्यो ६।४।१०७

प० वि०—लोपः १।१ च अ० । अस्य ६।१ अन्यतरस्याम् । अ०

म्योः ७।२ स०—मश्च यश्चेति म्यो तयो म्यो ।

अर्थ—[उतः असंयोगपूर्वान्] मामभ्यान् षष्ठीभ्यां विपरिणम्येते एते पदे] अस्य असंयोगपूर्वम्योशरस्य प्रत्ययात् अन्यतरस्यां लोपो भवति मकारादौ वकारादौ च प्रत्यये परत । इ-लुगिति वर्तमाने लोप प्रहणम् अन्यलोपार्थम् (नहीं है संयोग पूर्व जितका एम उकारान्ता प्रत्यय का विकल्प में लोप होता है मकारादि घोर वकारादि प्रत्यय के परे ग्हे पर)

उदा०—मुन्यः । मुनुयः । मुन्मः । मुनुमः । तन्यः । तनुयः । तन्यः ।

तनुमः ।

सि०—पुञ् । सु लट् । सु ल् । सु वम् । सु श्नु वस् । सु तु वस् । मुन्वः । मुनुवः ।

नित्य करोते: ६।४।१०८

प० वि०—नित्यम् १।१ करोते: ५।१

अर्थ—[उतः स्वीः] करोतरुत्तरस्य उकारप्रत्ययस्य यकारमकारादौ प्रत्यये परतो नित्य लोपो भवति । (कृ अङ्ग क पश्चात् उकार प्रत्यय का नित्य ही लोप होता है यकारादि और मकारादि प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—कुर्यः । कुर्मः । उकारलोपस्य दीर्घविधायस्थानिवद्भावाद् हलि चेति दीर्घत्वं प्राप्तं न भवत्युक्त्वा इति प्रातिपिथ्यतेः

ये च ६।४।१०९

प० वि०—ये ५।१ च अ० ।

अर्थ—[उतः लोपः नित्यम्] करोतेरुत्तरस्योकारप्रत्ययस्य नित्यं लोपो भवति यकारादौ च प्रत्यये परतः । (कृ अङ्ग के पश्चात् उकार प्रत्यय का नित्य लोप होता है यकारादि प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—कुर्यात् । कुर्याताम् । कुर्युः विध्यादिलिङि अयं विधिः आशिपि तु रिङ्शायम्लिङ्क्षु इत्यनेन रिङादेशे कृते क्रियात् । क्रिया-स्ताम् । क्रियासुः इति रूपाणि भवन्तिः

अत उत्सार्वधातुके ६।४।११०

प० वि०—अतः ६।१ लृ १।१ सार्वधातुके ७।१

अर्थ—[करोतेः क्ङिति] करोतेरकारस्य स्थाने उकारादेशो भवति । सार्वधातुके क्ङिति परतः । (कृ अङ्ग के अकार के स्थान में उकारादेश होता है सार्वधातुक क्ङिति प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—कुरुतः । कुर्यन्ति ।

सि०—सार्वधातुनमपित् इत्यत्र ढृष्टव्या ॥

श्नसोरल्लोपः ६।४।१११

प० वि०—श्नसोः ६।२ अल्लोपः १।१ स०—श्नश्च अश्चेति श्नसौ तयोः श्नसोः (अकारस्य पररूपत्वम् शकञ्चादित्वात्) अतो लोपः अल्लोपः (प० वत्पु०)

अर्थ—[सार्वधातुके क्ङिति] श्नस्यास्तेश्च अकारस्य लोपो भवति

सार्वधातुके क्विप्ति परत । (इत्त श्रीर अस्ति क अकार का लोप हाता है सावधातुक क्त्वि डित् प्रत्यय के पर रहन पर)

उदा०—इन्द्र इन्द्र । म्रियति । भिन्त । भिन्दन्ति ॥ अग्ने —न्त । सन्ति । स्य । स्थ । स्य । स्म ॥

इनाभ्यस्तयोरात् ६।८।११०

प० वि०—इनाभ्यस्तयो ६।० आत् ६।१

अर्थ—[सार्वधातुके क्विप्ति लोप] इना अभ्यस्त इत्येतयोराकार्म्य लोपो भवति सार्वधातुके क्विप्ति । (इत्ता श्रीर अभ्यस्त आकार का लोप हाता है सावधातुक क्त्वि डित् प्रत्यय के पर रहन पर)

उदा०—लुनते । लुनताम् । अलुनत । पुनते । पुनताम् । अपुनत । अभ्यन्तस्य—मिमते । मिमताम् । अमिमत । सजिह्वते । सजिह्वताम् । समाजिह्वत ॥

सि०—लून् । लू लट् । लू म । लू इना क् । लू ना अत्^१ । लुन्^२ अत् । लुनत । लुनते । लू लोट् । लू इना म । लु ना अत् । लुन् अत् । लुनत । लुनते । लुनन् आम^३ । लुनताम् । लून् लट् । अट् लू इना म । अ लु न् अत् । अलुनत ॥ माच् माने । मा लट् । मा क् । मा मा क् । म मा अत् । म म् अत् । म मत । मि^४ मत । मिमते ॥ ओहाच् गतौ इत्यस्य रूपम् सजिह्वते इति ॥

ई हल्यघो ६।४।११३

प० व०—ई १।१ हलि ७।१ अघो ६।१ स०—न घु इति अघु तस्य अघो

अर्थ—[इनाभ्यस्तयोरात् सार्वधातुके क्विप्ति] इना अभ्यस्तयोरात् स्थाने इनारादेशो भवति ह्लादी सार्वधातुके क्विप्ति । (इत्ता श्रीर अभ्यस्त अङ्ग क आकार के स्थान में इकार आदेश हाता है सावधातुक ह्लादि क्विप्ति डित् प्रत्यय के पर रहन पर)

उदा०—लुनीत । लुनीथ । पुनीत । पुनीथ । अभ्यस्तानाम्—मिमिते । मिमीपे । मिमीचे । सजिह्वीते । सजिह्वीपे । सजिह्वीचे । हलि इति ऋम्—लुनन्ति । पुनन्ति ॥

१—आत्मनपदध्वनत (७ १ ५) २—प्रादाना ह्रस्व (७ ३ ८०)

३—प्रापेत (३ ४ १०) ४—मृगामिन् (७ ४ ७६)

[इद्]दरिद्रस्य ६।४।१।१४

भियोजन्यतरस्याम् ६।४।१।१५

प० वि०—भियः ६।१ अन्यतरस्याम् अ० ।

अर्थ—[सार्वधातुके हलि किञ्चिद् इत्] भी इत्येतस्य अङ्गस्यान्यतरस्याम् इकारादेशो भवति सार्वधातुके हलादौ किञ्चिद् परतः ।

(भी इस अङ्ग का इकार आदेश होता है विकल्प से सार्वधातुक हलादि कित् डित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—विभितः । विभीतः । विभिथः । विभीथः । विभियः । विभीवः । विभिमः । विभीमः । हलि इति किम्—विभ्यति । किञ्चितीति किम्—विभेति ॥

जहातेश्च ६।४।१।१६

प० वि०—जहातेः ६।१ च अ० ।

अर्थ—[सार्वधातुके हलि किञ्चिद् इत् अन्यतरस्याम्] जहातेश्च इकारादेशो भवति अन्यतरस्यां सार्वधातुके हलादौ किञ्चिद् ।

(आहोक् त्यागे अङ्ग को इकारादेश होता है विकल्प से सार्वधातुक हलादि कित् डित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—जहितः । जहीतः । जहित्यः । जहीथः । हलादित्येव जहति । हा भि ॥ किञ्चितीत्येव । जहाति । सार्वधातुक इत्येव । हीयते । जेहीयते ॥

आ च हौ ६।४।१।१७

प० वि०—आ १।१ च अ० । हौ ७।१

अर्थ—[इत् अन्यतरस्याम् जहाते] जहातेराकारश्चान्तादेशो भवति इकारश्चान्यतरस्यां हौ परतः । पच्चे ई । (आहोक् त्यागे अङ्ग को आकार और इकार अन्तादेश, विकल्प से होता है हि के परे रहने पर और पक्ष में इकार)

उदा०—जहाहि । जहिहि । जहीहि । भट्टिकाव्ये—“जहिहि जहीहि जहाहि रामभार्याम्” ।

लोपो यि ६।४।१।१८

प० वि०—लोप १।१ यि ७।१

अर्थ—[जहातेः किञ्चिद् सार्वधातुके] जहातेर्लोपो भवति यकारादौ सार्वधातुके किञ्चिद् परतः । (आहोक् अङ्ग का लोप होता है सार्वधातुक

यकारादि क्तिङ् इत् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—जह्यात् । जह्याताम् । जह्युः । ऋषिध्यादीं लिङि अय विवि-
न तु आशिपि तस्यार्थधातुक्त्वात् तत्र तु हंयात् । हेयास्ताम् । हेयामु ।
हेयाः । हेयास्तम् । हेयास्त । हेयासम् । हेयास्य । हेयास्म । एलिङि
इत्येत्वमः

ध्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ६।४।११६

प० वि०—ध्वसो ६।० एन् १।१ हौ ७।१ अभ्यासलोप १।१
च अ० ।

अर्थ—धु-अस् इत्येतयोरेकारादेशो भवति हौ परतोऽभ्यासलोपश्च ।
(धु सज्ञक और अस् अज्ञ का एकार आदेश हाता है हि के पर रहन पर
और अभ्यास का लोप भा होता है)

उदा०—ऋलोपश्चेत्यत्र हौ शकारो निर्दिष्टौ । तत्रेको लोपभ्य
सम्बन्धी । द्वितीयस्तु विभक्ते अत एव लोपश् इत्यत्र लोपश् इत्यत्र
विक्षेपम् । तथा च सति लोपस्य शिन्वान् सर्वस्य अभ्यासस्य लोपो
भवति, न अलोऽन्त्यस्यः देहि । वेहि । अस्ते । एरि ।

सि०—ऋभावाभ्यांरेते रूपे । अन्येषां तु घुमज्जानानुदाहरण न
सम्भवति । प्रिकरणेन हेर्व्यवधानान् अस् लोट् । अस् हि । म् हि ।
ए हि । ए वि० । सकारान्य एते ऋने असिद्धवदत्राभात् अविचारसूत्रेण
तस्य एत्वभ्यासिद्धत्वात् हुमन्म्योहेर्विरिति विभावः

अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिङि ६।४।१००

अत ६।१ एकहल्मध्ये ७।१ अनादेशादे ६।१ लिङि ७।१ स०—
एकशब्दोऽयमसहायवाची । एक्श्च एक्श्च एकी । एकी च तौ हलौ च
इत्येकहलौ । एकहलोर्मध्ये इति द्विवचनान्तस्य पष्ठीसमास ॥ अविद्य-
मान आदेश आदिर्यस्येति अनादेशादि तस्य अनादेशादेरङ्गस्य ॥

अर्थ—[किङिति एन् अभ्यासलोपश्च] अनादेशादेरङ्गस्य असहाय-
योर्हलोर्मध्ये वर्तमानस्य एकारादेशो भवति लिङि किङिति परतोऽभ्यास-
लोपश्च । (नही हुआ है आदि आदेश में जिसके एक् अज्ञ के अस् हला के
बीच में वर्तमान अकार क स्थान में एकार आदेश होता है और अभ्यास का

लोप भो, लिट् कित् डित् प्रत्यय के पर रहन पर)

उदा०—रेणुत् । रेणु । येमत् । येमु । पेचत् । पेचु ॥

सि०—रण् शब्दार्थे, यम उपरमे ॥ पच् लिट् । पच् पच् अतुस ।
पेच् अतुस । पेचतु ।

थलि च सेटि ६।४।१२१

प००—थलि ७।१ च अ० । सेटि ७।१

अर्थ—[सर्व सूत्रमनुवर्त्तते] अनादेशादेरङ्गस्य असहाययोर्हलोर्मध्ये-
वर्त्तमानस्याकारस्य स्थाने एकारादेशो भवति सेटि थलि परतोऽभ्यास-
लोपश्च । (इट् के साथ थल के पर रहने पर अनादेशादि अङ्ग के असहाय हलो
के बीच में वर्तमान अकार क स्थान में एकार आदेश होता है और अभ्यास का
लोप भी होता है)

उदा०—पेचिथ । शेचिथ । सेटीति किम्—पपञ्च ॥

सि०—पच् लिट् । पच् थल् । पच् इट् थ । पच् पच् इथ । पेच्
इथ । पेचिथ ।

अर्वणस्त्रसावनञ्ज ६।४।१२८

मघवा बहुलम् ६।४।१२८

प वि० मघवा (पष्ठ्यर्थे प्रथमा) बहुलम् १।१

अर्थ—[वृ] मघवन्शब्दस्य बहुल वृ इत्ययमादेशो भवति ।

(मघवन् अङ्ग का बहुल करके वृ यह आदेश होता है)

उदा०—मघवान् । मघवन्तो । मघवन्त । मघवन्तम् । मघवन्ती ।
मघवत । मघवता । मघवद्भ्याम् । मघवद्भि । मघवते । मघवद्-
भ्याम् । मघवद्भ्य । मघवत । मघवद्भ्याम् । मघवद्भ्य । मघवत
मघवतो । मघवताम् । मघवति । मघवतो । मघवत्सु । हे मघवन् ।
हे मघवन्ती । हे मघवन्त । न च भवति । मघवा । मघवानो । मघ-
वान् । मघवानम् । मघवानौ । मघोन । मघोना । मघवभ्याम् । मघ
वभि । मघोने । मघवन्भ्याम् । मघवन्भ्य । मघोन । मघवभ्याम् ।
मघवभ्य । मघोन । मघोना । मघोनाम् । मघोनि । मघोनो । मघ
वसु । हे मघवन् । हे मघवानो । हे मघवान ।

सि०—मघवन् । मघवत् । मघवत् । मघवान् । इतोऽग्रे सर्वेषा

रूपाणां साधनं निष्क्रेति^१ सूत्रे द्रष्टव्यम् । मय्या इत्यत्र तु मघवन् सु । मघवन् स् । मघवान् । मघवा । मघोन् । इत्यत्र तु मघवन् शस् । मघवन् अस् । मघ उ^२ अन् अस् । मघ उन्^३ अन् । मघोन्^४ अस् । मघोन् । ष्वं सर्वं साधनं पुन पुन अभ्यसनीयम् ।

उस्तुतस्तु द्विविधमेतच्छब्दरूपम् ष्वमौणादिक कनिन प्रत्ययान्त मघवन् प्रातिपदिकम्, तस्य अनन्तप्रातिपदिकवन् रूपाणि, अजाती मुपि तु 'श्वयुजमघोनामतद्विते' इति सम्प्रसारणम् । अपर मघमस्यास्तीति मघवन् मतुपप्रत्ययान्तम्, तस्य अन्यमतुपप्रत्यया तवदरूपाणि द्रष्टव्यानि । एव च सति विनाप्येतत्सूत्रेणोभयप्रकारकाणि रूपाणि सिद्ध्यन्ति इति मीमांसना ।

भस्य ६।४।१२६

अर्थ—इतोऽप्ये आ अन्यायपरिसमाप्ते वक्ष्यमाणानि कार्याणि ग्रहस्य भस्य भवन्ति इत्यधिकारो वेदितव्यः ।

(यहा स प्रागे कह जान वाले, अब्धाय को परिसमाप्ति तक, वाय भस जक के हाते ह इम बात का अधिकार समझना चाहिए)

वसो सम्प्रसारणम् ६।४।१३१

प० वि०—वसा ६।१ सम्प्रसारणम् १।१

अर्थ—वसन्तस्य भस्य सम्प्रसारणं भवति ।

(वसु है अ त में जिनके एम मनजक अङ्ग वा सप्रसारण होता है)

उदा०—विद्वान् । विद्वासौ । विद्वास । विद्वासम् । विद्वासौ । विदुष । विदुषा । विद्वद्भ्याम् । विद्वद्भि । विदुषे । विद्वद्भ्याम् । विद्वद्भ्य । विदुष । विद्वद्भ्याम् । विद्वद्भ्य । विदुष । विदुषो । विदुषाम् । विदुषि । विदुषो । विद्वत्सु । हे विद्वन् । हे विद्वासौ । हे विद्वान्स ॥

१—सवनामस्थान चासम्बुद्धौ (६ ४ ८) २—इत्यादिष्वसवनामस्थान (१. ४. १७) यच्च मम् (१ ४ १८) भस्य (६ ४ १२६) इत्युजमघोनामतद्विते (६ ४ १२३) इष्यण सम्प्रसारणम् (१ १ ४५) ३—पर सत्रिकर्षं सहिता (१ ४ १०७) सहितायाम् (६ १. ७०) एक पूर्वपरयो (६ १ ८१) अग्नि पूर्व (६ १ १०३) सम्प्रसारणाच्च (६ १ १०४) ४—आदुष्टुण. ६ १ ८४)

सि०—विद्वान् । विद् शट्^१ । विद् वसु^२ । विद्वस् । विद्वस् सु ।
विद्वस्^३ सु । विद्वान् नुम्^४ स् स । विद्वान्स् । विद्वान् । विदुप् ।
विद्वस् शस् । विद्वस् अस् । विद् उ^५ यस् अस् । विद् उस्^६
अस् । विदुस अस् । विदुप्^७ अस् । विदुप् । विद्वस् भ्याम् । विद्वद्^८
भ्याम् । विद्वद्भ्याम् । विद्वत्सु । विद्वस सुप् । विद्वद्^९ सु । विद्वत्^{१०}
सु । विद्वत्सु । अन्यत्सर्पं साउनमुच्चारणमात्रेण सरलतया एव
कर्त्तव्यम् ।

श्वयुवमघोनामतद्धिते ६।४।१३३

प वि०—श्वयुवमघोनाम ६।३ अतद्धिते ७।१

अर्थ—[अल्लोपोऽन इत्यत अन अपकृष्यते] अन्न-ताना भसङ्गकाना
श्वन् युवन् मघयन् इत्येपामङ्गानामतद्धिते सम्प्रसारण भवति ।

(अन् है अत म जिसके एमे भ सना वाले श्वन् युवन् और मघयन् अङ्गो
का ताद्धित भिन्न प्रत्यय के पर रहन पर सम्प्रसारण होता है)

उत्प०—श्वा । श्वानौ । श्वान । श्वानम् । श्वानौ । शुन । शुना ।
श्वभ्याम् । श्वभि । शुने । श्वभ्याम् । श्वभ्य । शुन । श्वभ्याम् ।
श्वभ्य । शुन । श्वानो । श्वानाम् । शुनि । श्वानो । श्वसु । हे श्वन् । हे
श्वानौ । हे श्वान । युवा । युवानौ । युवान् । युवानम् । युवानौ ।
यून । यूना । युवभ्याम् । युवभि । यूने । युवभ्याम् । युवभ्य । यून ।
युवभ्याम् । युवभ्य । यून । यूनो । यूनाम् । यूनि । यूना ।
युवसु ॥ हे युवन् । युवानौ । युवान् ।

सि०—श्वा इत्यस्य साधन मघया इतिवत् कर्त्तव्यम् । शुन इत्यत्र
श्वन् शस् । श्वन् अस् । श् उ अन् अस् । शुन् अस् । शुन । यून
इत्यत्र तु युवन् शस् । युवन् अस् । यु उ अन् अस् । यु उन् अस् । यून
अस् । यून

१—सट् शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरण (३ २ १२४) ०—विदे
शतृवमु (७ १ ३६) ३—अवसत्तस्य चाघातो (६ ४ १४) ४—उगिदघा
सवनामस्थानऽघातो (७ १ ७०) मिदघोऽ यात्पर (१ १ ४६) ५—स्वादि
प्वसवनामस्थान (१ ४ १७) यचि भम (१ ४ १८) भस्व (६ ४ १२९)
वसो सम्प्रसारणम् (३ ४ १३१) इग्यण सम्प्रसारणम् (१ १ ४५) ६—
सम्प्रसारणाच्च (६ १ १०४) ७—आदक्षप्रयययो (८ ३ ५६) ८—वसुसु नुम्
श्वन्नुहा ९ (८ २ ७२) ९—खरि च (८ ४ ५५)

अल्लोपोऽनः ६।४।१३४

प० वि०—अल्लोपः १।१ अनः ६।१ स०—अतः लोपः अल्लोपः ।
अर्थ—अनन्तस्य भस्य अकारलोपो भवति । (अन् है अन्त में जिसके
ऐसे मसजकप्रज्ञ के प्रकार का लोप होता है)

उदा०—(राजा । राजानी । राजानः । राजनम् । राजानी) राज्ञः
राज्ञा । राजभ्याम् । राजभिः । राज्ञे । राजभ्याम् । राजभ्यः । राज्ञः ।
राजभ्याम् । राजभ्यः । राज्ञः । राज्ञोः । राज्ञाम् । राज्ञि । राजनि ।
राज्ञोः । राजसु । हे राजन् । हे राजानी । हे राजनः । तद्वा । तद्वाणौ ।
तद्वाणः ॥ तद्वाणम् । तद्वाणौ । तद्वाणः ।

सि०—राज्ञः । राजन् शस् । राजन् अस् । राजन् अस् । राज् व् ।
अस् । राज् अस् । राज् अस् । राज्ञः ॥

विभाषा द्विश्यो. ६।४।१३६

प० वि०—विभाषा १।१ द्विश्योः ७।२ स०—द्विश्च शीश्चेति द्विश्यौ
तयोः द्विश्योः ।

अर्थ—[अनः अल्लोपः] द्विश्योः अनो विभाषा अकारलोपो
भवति । (द्वि और शी के परे रहने पर अनन्त जो अङ्ग उसके प्रकार का
लोप विकल्प से होता है)

उदा०—राज्ञि, राजनि । साम । सामनी । साम्नी । (सामानि) ।
साम । सामनी । साम्नी । (सामानि) । अन्यत्सर्वं राजन् इतिवत् । सप्त-
म्यामपि तथैव सामनि । साम्नि इति । (हे साम । हे सामन्) ।

सि०—सामन् औ । सामन् शी । सामन् ई । साम्न् ई । साम्नी ।
सामन् ई । सामान् ई । सामानी । हे सामन् । हे साम^२ ।

न संयोगाद्वमन्तात् ६।४।१३७

प० वि०—न अ० । संयोगान् १।१ वमन्तान् १।१ स०—वश्च
मश्चेति वमौ । अन्तश्च अन्तश्चेति अन्तौ । वमौ अन्तौ यस्य तत् वमन्तं
तस्मान् वमन्तात् ।

अर्थ—[अल्लोपऽनः] वकारान्तात् मकारान्तात् संयोगादुरत्तस्य
अनोऽकारस्य लोपो न भवति । (वकार और मकार है अन्त में जिसके ऐसे
संयोग के पश्चात् अन् के अकार का लोप नहीं होता)

उदा०—(यज्वा । यज्वानी । यज्वान । यज्वानम् । यज्वानी)
 यज्वन । यज्वना । यज्वभ्याम् । यज्वभि । मकारान्तात्—(आत्मा ।
 आत्मानौ । आत्मान । आत्मानम् । आत्मानौ) आत्मन । आत्मना ।
 आत्मभ्याम् । आत्मभि । आत्मने । आत्मभ्याम् । आत्मभ्य । आत्मन ।
 आत्मभ्याम् । आत्मभ्य । आत्मन । आत्मनो । आत्मनाम् । आत्मनि ।
 आत्मनो । आत्मसु । हे आत्मन् । हे आत्मानौ । हे आत्मान ।

आतो घातो ६।४।१४०

प० वि०—आत ६।१ घातो ६।१

अर्थ—[लोप] आकारान्तस्य घातोर्भस्य लोपो भवति ।

(भक्तक आकारात् घातु का लोप होता है)

उदा०—(सोमपा । सोमपौ । सोमपा । सोमपाम् । सोमपौ)
 सोमप । सोमपा । सोमपाम्याम् । सोमपाभि । सोमपे । सोमपाभ्याम् ।
 सोमपाभ्य । सोमप । सोमपाभ्याम् । सोमपाभ्य । सोमप । सोमपौ ।
 सोमपाम् । सोमपि । सोमपो । सोमपासु । हे सोमपा । हे सोमपौ । हे
 सोमपा ।

सि०—सोमप । सोमपा शस । सोमप^१ अस् । सोमपस । सोमप ।

ति विशतेर्डिति ६।४।१४२

प० वि०—ति (लुप्तपट्टीन्म्) विशते ६।१ डिति ७।१

अर्थ—[लोप] भस्य विशतस्तिशब्दस्य लोपो भवति डिति प्रत्यये
 परत । (भक्तक विशति के ति शब्द का लोप होता है डित् प्रत्यय क पर
 रहन पर)

उदा०—विशक । विश शतम् । एकविश शतम् ।

सि०—विशत्या क्रीत विशन् । विशति टा ड्वुन्^२ । विशति वु ।
 विशति अक । विश अक । विशक^३ । विशक सु । विशन् ।
 विशम्^२ । विशतिरधिका अस्मिन् शते इति विश शतम् । एषविशति
 रधिका अस्मिन् शते इति एकविश शतम् । विशति ड^४ । विशति अ ।
 विश अ । विश अ । विश^३ सु । विश अम् । विशम् । एकविशम् ।

१—विबन्त धातु च न जहाति इयन् एव धातु चम् । २—विगतिविगद्भ्या
 ड्वुत्सज्ञायाम् (५ १ १४) ३—अतो गुण (६ १ ६४) ४—गदतविगतेश्च
 (५ २ ४६)

टे ६।४।१४३

प० वि०—टे ६।१

अर्थ—[डिति लोप] भसन्नस्याङ्गस्य टे लोपो भवति डिति प्रत्यये परत । (भसन्नक षङ्ग की टि का लोप होता है डिन् प्रत्यय के परे रहन पर)

उदा०—कति ।

सि०—किम मर्यापरिमाणे डिति च इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

नस्तद्धिते ६।४।१४४

प० वि०—न ६।१ तद्धिते ७।१

अर्थ—[टें लोप] नकारान्तस्य भन्त्य टेर्लोपो भवति तद्धिते परत । (नकारान्त भमनक षङ्ग की टि का लोप होता है तद्धित के परे रहन पर)

उदा०—अग्निशर्मणोऽपत्यम् आग्निशमिः ।

सि०—अग्निशर्मन् इत् । अग्निशर्म इ । आग्निशर्म इ । आग्निशर्मि मु । आग्निशर्मि ।

अह्लष्टखोरेव ६।४।१४५

प० वि०—अह् ६।१ टखो ७।२ ण्य अ० ।

अर्थ—[टे लोप] अहन् इत्येतस्य टखोरेव परतष्टेर्लोपो भवति । (अहन् ण् की टि का लोप हाता है ट और ख के ही पर रहन पर ही)

उदा०—द्वयह । इयह । अहीन क्रतु ।

सि०—अह्ना समूह क्रतु अहीन क्रतु । अहन् ख × अह् समूहे खो यक्तय × अहन् ईन । अह् ईन । अहीन मु । अहीन ।

ओर्गुणा ६।४।१४६

प० वि०—ओ ६।१ गुण १।१

अर्थ—[तद्धिते] उवर्णांतस्य भस्य गुणो भवति तद्धिते परत । (उवर्णांत भमनक षङ्ग का गुण होता है तद्धित क पर रहन पर)

उदा०—ओपगत्र । सात्रनं वृद्धिरात्रैच् इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

ढे लोपोऽकद्रवा ६।४।१४७

प० वि०—ढे ७।१ लोप १।१ अकद्रवा ६।१

अर्थ—[उ] उवर्णांतस्य भस्य अकद्रवा लोपो भवति ढे परत ।

(ढ प्रत्यय के परे रहने पर उवर्णान्त भसन्न प्रज्ञ का लोप होता है, कद्रु शब्द को छोड़ कर)

उदा०—कामएडलेयः । शैतवाहेयः ।

सि०—कमएडलु ढञ्^१ । कमएडल एय । कामएडल् एय । कामएडलेयः ।

यस्येति च ६।४।१४८

प० वि०—यस्य ६।१ ईति ७।१ च अ० । स०—इश्च अश्च इति यम् सस्य यस्य ।

अर्थ—[तद्धिते] इवर्णान्तस्य अवर्णान्तस्य च भस्य अङ्गस्य ईकारे तद्धिते च परतो लोपो भवति । (इवर्णान्त और उवर्णान्त भसन्न प्रज्ञ का लोप होता है ईकार और तद्धित के परे रहने पर)

उदा०—इवर्णान्तस्य ईकारे—दाक्षी । प्लाक्षी । इवर्णान्तस्य तद्धिते-दीलेयः । अवर्णान्तस्य ईकारे—गौरी । शुमारी । अवर्णान्तस्य तद्धिते-दाक्षिः । प्लाक्षिः ।

दाक्षी । दाक्षि ङीप्^२ । दाक्षि ई । दाक्ष् ई । दाक्षी सु । दाक्षी । दुलि ढक्^३ । दुलि ढ । दुलि एय । दुल् एय । दौल् एय । दीलेय सु । दीलेयः । गौर ङीप्^४ । गौर् ई । गौरी सु । गौरी । दक्षस्य अपत्यम् दाक्षिः । दक्ष इञ्^५ । दक्ष् इञ् । दाक्ष् इ । दाक्षि सु । दाक्षिः ।

सूर्वतिष्यागस्त्यमत्स्याना [य उपधायाः] ६।४।१४९

हलस्तद्धितस्य च ६।४।१५०

प० वि०—हलः ५।१ तद्धितस्य ६।१ च अ० ।

अर्थ—[उपधायाः यः लोपः ईति] भसन्नकस्याङ्गस्य हल उत्तरस्य तद्धितस्य यकारस्य उपधाया ईति परतो लोपो भवति । (भसन्नक अग के हल् तद्धित के यकार की उपधा का लोप होता है ईकार के परे रहने पर)

उदा०—गार्गी । वात्सी ।

सि०—गर्ग यञ् । गर्ग् य । गार्ग्य ङीप्^६ । गार्ग्य् ई । गार्ग्य् ई ।

१—चतुष्पादम्पो ढञ् (४. १. १३५) २—इतो मनुष्यजातेः (४. १. ६५)

३—इतश्चानिञ् (४. १. ११२) ४—पिद्गौरादिभ्यश्च (४. १. ४१)

५—अत इञ् (४. १. १५) ६—यञश्च (४. १. १६)

गार्गी सु । गार्गी ।

तुरिष्ठेमेयस्मु ६।४।१५४

प० वि०—तुः ६।१ इष्ठेमेयस्मु ७३

अर्थ—तृ इत्येतस्याङ्गस्य इष्ठन् इमनिच् ईयमुन् इत्येतेषु परतो लोपो भवति । (तृ इस् भङ्ग का लोप होता है इष्ठन् इमनिच् प्रीर ईयमुन् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—आमुर्ति करिष्ठः । विजयिष्ठः । दोहीयसी धेनुः ।

❀ इमनिग्प्रदणमुत्तरार्थम् इतरो तु तुरच्छन्दसीति भवतः ❀

सि०—करिष्ठः । कृ तृन् । कर्तृ इष्ठन्^१ । कर् इष्ठ । करिष्ठ सु । करिष्ठः । विजि तृन् । विजेतृ । विजेतृ इष्ठन्^२ । विजे इष्ठ । विजय इष्ठ । विजयिष्ठ सु । विजयिष्ठः । दुहृ तृच् । दोहृ तृ ङीप् ईयमुन्^३ । दोहृ^३ तृ ईयस् । दोहीयस् ङीप्^३ । दोहीयसी सु । दोहीयसी ।

❀ लोपविधिः सर्वविधिम्यो वलीयान् इति पूर्वं लोपः प्रवर्तते न तु दादेर्धातोर्धः इति घत्वम् तेन पूर्वं लोपे कृते घत्व न भवति निमित्ताभावात् ।

टैः ६।४।१५४

प० वि०—टैः ६।१

अर्थ—[इष्ठेमेयस्मु लोपः] भस्य टेलोपी भवति इष्ठन् इमनिच् ईयमुन् इत्येतेषु परतः । (इन प्रत्ययों के परे रहने पर भसजक् टि का लोप होता है)

उदा०—पटु । पटिष्ठः । पटिमा । पटीयान् । लघु । लघिष्ठः । लघिमा । लघीयान् । × णाविष्ठवत्प्रातिपदिकस्य कार्यं भवतीति वक्तव्यम् × पटुमाचष्टे पटयति ।

सि०—पटु इमनिच्^४ । पट् इमन् । पटिमन् सु । पटिमान् स् । पटिमान् । पटिमा । पटिमानौ । पटिमानः ।

ज्यादादीयसः ६।४।१६०

—प० वि०—ज्यात् ५।१ आत् १।१ ईयसः ६।१

१—तुच्छन्दसि (५. ३. ५६) २—घृतिशायने तमषिष्ठनी (५. १. ५५) उगितश्च (५. १. ६) ३—मस्याडे तद्धिते इति पुंलक्ष्माये कृत्रे तुरिष्ठिमेव-
स्त्विति तृचो निवृत्तिः । ४—गुप्त्वादिभ्य इमनिज् वा (५. १. १२२) ।

अर्थ—ज्यादुत्तरस्य ईयस् आकार आदेशो भवति ।

(ज्य के पश्चात् ईयस् का आकार आदेश होता है)

उदा०—ज्या ईयसुन् । ज्या आयस्^१ । ज्यायम्^२ । ज्यायास् सु । ज्याया-
स् सु । ज्यायान्स् । ज्यायान् । ज्यायांसौ । ज्यायासः ।

प्रकृत्यैकाच् ६।४।१६३

प० वि०—प्रकृत्या ३।१ एकाच् १।१

अर्थ—[इष्टमेयस्सु] एकाच् भसंज्ञकं प्रकृत्या भवति इष्टमेयस्सु परतः । (एक अच् वाला भसंज्ञक अग प्रकृति से रह जाता है इन प्रत्ययों के परे रहने पर)

उदा०—स्रजिष्ठः । स्रजीयान् ।

सि०—स्रग्निन्^३ इष्टन् । स्रज्^४ इष्टन् । स्रजिष्ठ सु । स्रजिष्ठः ।

इनर्ण्यनपत्ये ६।४।१६४

प० वि०—इन् १।१ अणि ७।१ अनपत्ये ७।१

अर्थ—[प्रकृत्या] इन्नन्तम् अनपत्ये अणि परतः प्रकृत्या भवति । (इन्नन्त भसंज्ञक अङ्ग अपत्य से भिन्न अर्थ में अण् के परे रहने पर प्रकृति से रह जाता है)

उदा०—सांकूटिनम् । सांराविणम् । कूट दाहे । रु शब्दे ।

सि०—सम् कूट् इनुण्^५ । सांकूटिन् अण्^६ । सांकूटिनम् ।

गाथिविदथिकेशिगणपणिनश्च ६।४।१६५

प० वि०—गाथिविदथिकेशिगणपणिनः १।३ च अ० ।

अथ—[अणि प्रकृत्या] गाथिन्, विदथिन्, केशिन्, गणिन्, पणिन् इत्येते च अणि प्रकृत्या भवन्ति । ये भसंज्ञक अङ्ग अण् के परे रहने पर प्रकृति से रहते हैं)

उदा०—गाथिनोऽस्त्यम् गाथिनः । वैदथिनः । केशिनः । गणिनः ।
पणिनः । ❀ अपत्यार्थोऽयमारम्भः ❀

१—आदे. परस्व (१. १) २—प्रकृत्यैकाच् (४. ३. १६२) अक सवर्णे दीर्घः (६. १.) ३—प्रत्यायामेधात्रजा विनिः (५. २. १२१) ४—विन्म-
तोडुंक् (५. ३. ६५) प्रकृत्यैकाच् (६. ४. १६२) ५—अभिविधौ भाव इनुण्
(३. ३. ४३) ६—प्रणिनुण्. (५. ४. १५)

सयोगादिश्च ६।४।१६६

अर्थ—[इनणि प्रकृत्या] सयोगादिश्च इनणि प्रकृत्या भवति ।

(सयोग है आदि जिस का ऐसा इन्नन्त, भ्रण के परे, रहने पर प्रकृति से रहता है)

उदा०—शद्विनोऽपत्यं, शाद्विनः । माद्रिणः । घात्रिणः ।

ॐ अयमपि अपत्यार्थः । शद्वमद्रवञ्जशब्देभ्यो मत्वर्थे इनिः ।

तदन्तादण ॐ

अन् ६।४।१६७

अर्थ—[प्रकृत्या अणि] अन्नन्तमणि प्रकृत्या भवति ।

(अन्नन्त प्रकृति से रहता है अण् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—ॐ सामान्येनाण्मात्रे त्रिधिः अपत्ये अन्नपत्ये च ॐ

सि०—सामन् इदम्^१ सामन् अण् । सामनः ।

ये चाभावकर्मणोः ६।४।१६८

प० वि०—ये ७।१ च अ० । अभावकर्मणोः ।

अर्थ—[तद्धिते] यकारादौ च तद्धितेऽभावकर्मणोरर्थयोरन् प्रकृत्या भवति । (मात्र और कर्म अर्थ को छोड़कर यकारादि तद्धित के परे रहने पर अन्नन्त प्रकृति से रह जाता है)

उदा०—सामसु साधु, सामान्यः^२ । ब्रह्मण्यः ।

आत्माध्वानी खे ६।४।१६९

प० वि०—आत्माध्वानी १।२ से ७।१

अर्थ—[प्रकृत्या] आत्मन् अध्वन् इत्येती खे परतः प्रकृत्या भवतः ।

(आत्मन् और अध्वन् शब्द ख के परे रहने पर प्रकृति से रहते हैं)

उदा०—आत्मने हितम् । अध्वने हितम् । आत्मनीनः^३ [अध्वनीनम्^४] ।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणजमहावैयाकरणपण्डितब्रह्मदत्ता-

चार्याणामन्तेवासिना देवप्रकाशपातञ्जलेन विर-

चितायामष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया

षष्ठाध्याये चतुर्थः पादः

इति षष्ठोऽध्यायः

१—नस्येदम् (४. ३. १२०) २—तत्र साधु (४. ४. ९८) ३—आत्मन-
विश्वजनमोगोत्तरपदात् खः (५. १. ९) ४—अध्वनी यत्खी (५. २. १६)

प्रत्ययस्य विकारप्रकरणम्

युवोरनाकौ ७।१।१

प० वि०—युवोः ६।१ (समाहारद्वन्द्वे सौत्र पुंस्त्वम्) अनाकौ १।२

स०—युश्च युश्चेति युवुः तस्यः युवाः । अनश्च अकश्च इति अनाकौ ॥

अर्थ—अनुनासिकयण्विशिष्टयोर्युवोः स्थाने यथासंख्यं अन-अकौ भवतः । (अनुनासिक यण्विशिष्ट जो यु और वु उसके स्थान में क्रमशः अन और अक आदेश होते हैं)

उदा०—प्रतिज्ञानुनासिक्या. पाणिनीयाः नन्दनः^१ । रमणः^१ । सायंतनः^२ । चिरंतनः^२ । कारकः^३ । हारकः^३ । अनुनासिक्यणोरिति किम् । ऊर्णांयुः । उर्णाया युस् (५. २. १२३)

सि०—साधनं प्रत्ययोत्पादकसूत्रे द्रष्टव्यम् ।

आयनेयीनीयियः फढखच्छघा प्रत्ययादीनाम् ७।१।२

प० वि०—आयनेयीनीयियः १।३ फढखच्छघाम् ६।३ प्रत्ययादीनाम्

६।३ स०—आयश्च ऐच् च ईश्च ईय् च इय् चेति आयन्-एय्-ईन्-ईय्-इयः ॥ फश्च ढश्च खश्च छश्च घश्च इति फढखच्छघः तेषाम् । प्रत्ययस्य आदिः प्रत्ययादिः तेषाम् प्रत्ययादीनाम् ॥

अर्थ—प्रत्ययादीनां फढखच्छघाम् आयन्-एय्-ईन्-इय इय् इत्येते आदेशा यथासंख्यं भवन्ति । (प्रत्यय के आदि जो फ ढ छ ख घ उनके स्थान में क्रमशः आयन् एय्, ईन्, ईय् और इय् आदेश होते हैं)

उदा०—फस्य^१—नाडायनः । चारायणः । ढस्य^२—सौपर्ण्य । चैन-तेयः । खस्य^३—युष्माकीणः । अस्माकीनः ॥ छस्य—रालीयः^४ । मालीयः । घस्य—कियान्^५ इयान् । प्रतिसूत्रे साधनं द्रष्टव्यम् ॥

भोऽन्तः ७।१।३

प० वि०—भः ६।१ अन्तः १।१

अर्थ—[प्रत्ययस्य] प्रत्ययस्य अद्ययवस्य भस्य स्थाने अन्त इत्ययमादेशो भवति । (प्रत्यय के अद्ययव भकार के स्थान में अन्त यह आदेश होता है)

१—नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्घचः (३. १. १३४) २—सायञ्चिरमित्यादिना (४. ३. २३) जातादौ शैपिकेऽर्थे तद्धितः ३—ण्वुत्तृचो (३. १. १३३)

४—नडादिभ्यः फक् (४. १. ६६) ५—स्त्रीभ्यो ढक् (४. १. १२०) ६—युष्मदस्मदोरन्घतरस्या खच्च (४. ३. १) तस्मिन्घणि च युष्माकास्माकौ (४. ३. १) ७—वृद्धाच्छः (४. २. ११३) ८—किमिदंभ्या वो घः (५. २. ४०)

उदा०—पठन्ति । खादन्ति । पथन्ते । स्पृहन्ते ।

अदभ्यस्तात् ७।१।४

प० वि०—अत् १।१ अभ्यस्तात् ५।१

अर्थ—[भ्र] अभ्यस्ताद्भ्रादुत्तरस्य भ्रकारस्य स्थाने अत् इत्ययमादेशो भवति । (अभ्यस्त भ्रङ्ग के पश्चात् भ्र के स्थान में अत् आदेश होता है)

उदा०—ददति । ददतु । दधति । दधतु ॥

उदा०—दुदाञ् दाने । दा लृट् । दा फि । दा शप् फि । दा दा फि । द दा फि । द दा अत् इ । द दा अति । द द् अति । ददति ॥

आत्मनेपदेष्वनत ७।१।५

प० वि०—आत्मनेपदेषु ७।३ अनत ५।१ स०—न अत् इति अनत् तस्मात् अनतः ॥

अर्थ—[अत् भ्र] अनकारान्ताद्भ्रादुत्तरस्य आत्मनेपदेषु वर्तमानस्य भ्रकारस्य अत् इत्ययमादेशो भवति । (अनकारान्त भ्रङ्ग क पश्चात् आत्मनेपद में वर्तमान भ्रकार के स्थान में अत् आदेश होता है)

उदा०—चिन्वते^३ । चिन्वताम्^४ । अचिन्वत^५ । लुनते^३ । लुनताम्^४ । अलुनत^५ । अनत इति किम् । च्यवन्ते । प्लवन्ते । क्लिनित्यन्तादत्र विकरणे कृते भ्रोऽन्तादेशेन भवितव्यम् इति अन् आदेशो न भवतिः

शीडो रुट् ७।१।६

प० वि०—शीड. ५।१ रुट् १।१

अर्थ—शीडोऽङ्गादुत्तरस्य भ्रकारस्य आदेशस्य अतो रुडागमो भवति । (शीड भ्रङ्ग के पश्चात् जा भ्र क स्थान में अत् उसका रुट का प्रागम होता है)

उदा०—शेरते^३ । शेरताम्^४ । अशेरत^५ ।

अतो भिस ऐस् ७।१।६

प० वि०—अत ५।१ भिस ६।१ ऐस् १।१

१—बुहोत्यादिभ्य. इत् (२. ४ ७५) इती (६ १ ११) पूर्वाऽभ्यास. (६ १. ४) २—उभे अभ्यस्तम् (६ १ ५) श्नाभ्यस्तथोरात (६. ४ ११२) ३—वर्तमाने लृट् (३. २ १२३) ४—लोट च (३ ३. १६२) ५—अनद्यतने लृट् (३. १. १११)

अर्थ—अदन्तादङ्गादुत्तरस्य भिस्: स्थाने ऐसादेशो भवति । (अदन्त
अङ्ग के पश्चात् भिस् के स्थान में ऐस् आदेश होता है)

उदा०—रामै । बालकैः । तैः । यै । कैः । ण्तैः । अत इति किम् ।
अग्निभिः । वायुभिः । तपरकरणमिति किम् । खट्वाभिः । मालाभिः ।
ताभिः । याभिः । काभिः । एताभिः ।

सि०—राम भिस् । एम ऐस् । रामैस् । रामैः । तद् भिस् । त अ^१
भिस् । त^२ भिम् । त ऐम् । तै^३ । यद् भिम् । य अ भिस् । य भिस् ।
य ऐस् । यैः । किम् भिस् । क^४ भिस् । क ऐस् । कैस् । कैः ॥ एतद्
भिस् । एत अ भिस् । एत भिस् । एत ऐर् । एतैस् । एतैः । ताभिः ।
तद् भिस् । त अ भिस् । त भिस् । त टाप्^५ भिस् । त आ भिस् ।
ताभिः^६ ॥

बहुल छन्दसि ७।१।१०

प० वि०—बहुलम् १।१ छन्दसि ७।१

अर्थ—छन्दसि विषये बहुलमैसादेशो भवति । (छन्दसि के विषय में
बहुल कर ऐस् आदेश होता है)

उदा०—अनतोऽपि भवति । नचैः । देवेभिः । सर्वेभिः ।

टाडसिडसामिनात्स्याः ७।१।१२

प० वि०—टाडसिडसाम् ६।३ इनात्स्या १।३ स०—टाश्च डंसिश्च
डश्चेति टाडसिडस तेषाम् । इनश्च आश्च स्यञ्चेति इनात्स्याः ।

अर्थ—[अतः] अदन्तादङ्गादुत्तरेषां टा-डस्-डसाम् इन-आत्-
स्याः आदेशो भवति । (अदन्त अङ्ग के पश्चात् टा, डसि डस् के स्थान में
क्रमशः इन आत् स्य आदेश होते हैं)

उदा०—ट.—रामेण । बालकेन । तेन । येन । केन । एतेन ।
अनेन । फलेन । डसेः—रामान् । बालकान् । फलान् ।
डस—रामस्य । बालकस्य । तस्य । यस्य । कस्य । एतस्य । अस्य । फल-
स्य । अत इत्येव । टः—अग्निना । वायुना । पत्या । सख्या । तपर-
करणमिति किम् । रमया । बालिभ्या । तया । यया । कया । अनया ।

१—त्यदादीनामः (७. २. १०२) २—अतो गुणौ (६. १. ६७) ३—
वृद्धिरेचि (६. १. ८८) ४—किमः कः (७. २. १०३) ५—पञ्चाक्षरप्राप् (४. १.
४) ६—अकः सवर्णो दीर्घः (६. १. ६७)

एतथा । डसं—अग्ने । वायो । पत्यु । सत्यु । तपरकरणमिति किम् ।
रमाया । वालिकाया । तस्या । यस्या । कस्या । अस्या । एतस्या ।
डसं—अग्ने । वायो । पत्यु । सत्यु । तपरकरणमिति किम् ।
रमाया । वालिकाया । तस्या । यस्या । कस्या । एतस्या ।

सि०—रामेण । राम टा । राम इन । रामन^१ । रामेण^२ । तद् टा ।
त अ टा । त इन । तेन । अनेन । इदम् टा । इद अ टा । इद टा । अन्^३
अ टा । अन टा । अन टन । अनेन । राम ष्मि । राम आन । रामान ।
राम् डम् । राम स्य । रामस्य । तद् ष्स् । त अ अस् । त स्य । तस्य ।
अस्य । इदम् डत् । इत् अ अम् । इत् अम् । इद स्य । अ^४ स्य ।
अस्य । अग्नि टा । अग्नि ना^५ । आयुना । पति टा । पति आ । पत्या^६ ।
सखि टा । सत्या । रमा टा । रमे^७ आ । रमय आ । रमज । त्या ।
तद् टा । त अ आ । त आ । ता^८ आ । ते^९ अ । तय् आ । तथा ।
अनया । इदम् टा । इद अ आ । अन्^३ अ आ । अन आ । अना^८
आ । अने^९ आ । अनय् आ । अनया । अग्ने । अग्नि डसि । अग्नि
अस् । अग्ने^६ अस् । अग्नेस्^{१०} । अग्न । पति ष्मि । पति अस ।
पत्युरस्^{११} । पत्यु^{१२} । रमा डसि । रमा अस् । रमा यात्^{१३} अस् । रमा
या अस् । रमा यास् । रमाया । तद् डसि । तद् अम । त अ अस् ।
त अस् । ता^८ अस् । ता यात्^{१४} अस् । त स्या अस् । त स्यास् ।
तस्या । ॥

डेर्य ७।१।१३

प० वि०—डे ६।१ य १।१

अर्थ—[अत] अकारान्तादद्वाद्वात्तरस्य डे इत्येतस्य य इत्ययमादेशो
भवति । (अकारान्त भङ्ग के पश्चात् ड के स्थान में य प्रादेग हावा है)

उदा०—रामाय । वालिकाय । अत इत्येव । अग्नये । वायवे । पये ।

१—प्रादप्रस (६ १ ८४) २—अत्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि (८ ४ २)
३—अनाप्यक (७ २ ११२) ४—हलि लाप (७ २ ११३) ५—घाडा
नाऽस्त्रियाम् (७ ३ ११९) ६—इको यणचि (६ १ ७४) ७—घाडि च।प
(७ ३ १०५) ८—अजाघतप्राप् (४ १ ४) ९—घपो घवसलि (१ ४ ७)
वेडिति (७ ३ १११) १०—डसिडसोश्च (६ १ १०६) ११—ह्यत्यात्परम्य
(६ १ १०८) १२—रात्सस्य (८ २ २४) १३—घाडाप (७ ३ ११३)
१४—सवनाम्न स्यादडस्वश्च (७ ३ ११४)

सख्ये । तपरकरणमिति किम्-रमायै । वालिकायै । तस्यै । यस्यै । कस्यै । अस्यै । एतस्यै ।

सि०—राम डे । राम थ । रामाय^१ । अग्नि डे । अग्नि ए । अग्ने^२ ए । अग्नय् ए । अग्नये । पति डे । पति ए । पत्ये । सख्ये । रमायै । रमा डे । रमा याट्^३ ए । रमा या ए । रमा यै । रमायै । तस्यै । तद् डे । त अ ए । त ए । ता^४ ए । ता स्याट् ए । त स्या ए । तस्यै ।

सर्वनाम्नः स्मै ७।१।१४

प० वि०—सर्वनाम्नः ५।१ स्मै (अविभक्तिको निर्देशः)

अर्थ—[अतः डेः] अकारान्तात् सर्वनाम्न उत्तरस्य डेः स्थाने स्मै इत्ययमादेशो भवति । (अकारान्त सर्वनाम के पश्चात् डे के स्थान में स्मै प्रादेश होता है)

उदा०—तस्मै । यस्मै । कस्मै । अस्मै । एतस्मै । सर्वस्मै । अत इत्येव । तस्यै । यस्यै । कस्यै । अस्यै । एतस्यै । सर्वस्यै । भवते ।

सि०—तद् डे । त अ डे । त डे । त स्मै । तस्मै ।

डसिड्योः स्मात्स्मिनी ७।१।१५

प० वि०—डसिड्योः ६।२ स्मात्स्मिनी १।२

अर्थ—[अतः सर्वनाम्नः] अदन्तात् सर्वनाम्नः उत्तरेयोः डसि डि इत्येतयोः स्थाने स्मात् स्मिन् इत्येतावादेशौ भवतः । (अकारान्त सर्वनाम के पश्चात् डसि और डि के स्थान में स्मात् और स्मिन् प्रादेश होते हैं)

उदा०—डसेः-तस्मात् । यस्मात् । कस्मात् । अस्मात् । एतस्मात् । सर्वस्मान् । विश्वस्मात् । डौ-तस्मिन् । यस्मिन् । कस्मिन् । अस्मिन् । एतस्मिन् । सर्वस्मिन् । विश्वस्मिन् । अत इत्येव । डसेः- तस्याः । एतस्याः । सर्वस्याः । विश्वस्याः । भवतः । डौ-तस्याम् । यस्याम् । कस्याम् । अस्याम् । एतस्याम् । भवतः ।

सि०—तद् डसि । त अ डसि । त स्मान् । तस्मात् । तद् डि । त अ डि । त स्मिन् । तस्मिन् । तस्याम् । तद् डि । त अ डि । त डि । ता^५ डि । त स्याट् इ । तस्या आम्^६ । तस्याम् ।

१—स्थानिवदादेशोऽनविक्रमो (१. १. ५५) सुपि च (७. ३. १०२)

२—तोषो घ्यमसि (१. ४. ७) वेडिति (७. ३. १११) ३—पाठापः (७. ३.

११३) ४—मजाघनट्टाप् (४. १. ४) ५—डेरान्नघाम्नीभ्यः (७. ३. ११६)

पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ७।१।१६

स०—पूर्व आदिर्येपा ते पूर्वाद्वय पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स, अन्तर शब्दा ।

अर्थ—[सर्वनाम्नः डसिङ्यो स्मात्मिनी] पूर्वादिभ्यो नवभ्य सर्वात्मन उत्तरयोर्डसिङ्यो स्मान् स्मिन् इत्येतावादेशी वा भवत ।

(पूर्वं इत्यादि नव सर्वनाम के पश्चात् डसि और डि के स्थान में स्मान् और स्मिन् विकल्प से हाते हैं)

उदा०—पूर्वात् । पूर्वस्मात् । पूर्वस्मिन् । पूर्वे ।

जस शी ७।१।१७

प० वि०—जस ६।१ शी (अविभक्तिको निर्देश)

अर्थ—[अत सर्वात्मन] अकारान्तान् सर्वात्मन उत्तरस्य जस शी इत्ययमादेशो भवति । (अकारान्त सर्वनाम क पश्चात् जस् के स्थान में शा प्रादेश हाता है)

उदा०—ते । ये । के । इमे । एते । सर्वे । विश्वे । पूर्वे । अत इत्येव—ता । या । का । इमा । एता । सर्वा । विश्वा । पूर्वा । भवन्त ।

सि०—तद् जस् । त अ अस् । त अस् । त शी । त इ । ते । तद् जस । त अ जस् । त अस् । त टाप् अस् । ता अस् । ता ॥

श्रीड आप ७।१।१८

प० वि०—श्रीड ६ १ आप १।१

अर्थ—[जस शी] आपन्तादङ्गादुत्तरम्य श्रीड स्थाने शी इत्ययमादेशो भवति । श्रीड् इति श्री ओट् इत्येतयो पूर्वाचार्यसज्ञा । (भावन्त अङ्ग क पश्चात् श्रीड् के स्थान में शी यह प्रादेश हाता है)

उदा०—खट्वे । खट्वे । रमे । रमे । ते । ये । के । इमे । एते । सर्वे । विश्वे ॥

सि०—खट्वा श्री । खट्वा शी । खट्वा ई । खट्वे । रमं । तद् श्री । त अ श्री । त टाप् श्री । ता शी । ता ई । ते ॥ इदम् श्री । इद अ श्री । इद श्री । इदा श्री । इमा शी । इमे ॥

नपु सकाच्च ७।१।१६

प० वि०—नपुंसकात् ५।१ च अ० ।

अर्थ—[औडः शी] नपुंसकादङ्गादुत्तरस्य औडः शी इत्ययमादेशो भवति । (नपुंसक अङ्ग के पश्चात् औड् के स्थान में शी यह आदेश होता है)

उदा०—फले । कुण्डे । वने । ये । ते । के । इमे । एते । ऋयस्येति लोपः प्राप्तः ×श्यां प्रतिषेधो वक्तव्यः× इति न भवतिः दधिनी । मधुनी । त्रपुणी । जतुनी ॥

सि०—फल औ । फल औ । फल शी । फल ई । फले । तद् औ । त अ औ । त औ । त शी । त ई । ते । दधि औ । दधि शी । दधि ई । दधि नुम्^१ ई । दधि नू ई । दधिनी ।

जश्शसोः शिः ७।१।२०

प० वि०—जश्शसोः ६।२ शिः १।१

अर्थ—[नपुंसकात्] नपुंसकादुत्तरयोर्जश्शसोः शि इत्ययमादेशो भवति । (नपुंसक अङ्ग के पश्चात् जस् और शस् के स्थान में शि यह आदेश होता है)

उदा०—फलानि । कुण्डानि । दधीनि तिष्ठन्ति । दधीनि पश्य । त्रपूणि । जतूनि । तानि । यानि । कानि । इमानि । एतानि ।

सि०—फल जस् । फल शि । फल नुम्^२ इ । फलन् इ । फलान्^३ ड । फलानि । तद् जस् । त अ जस् । त शि । त नुम् इ । तान् इ । तानि ॥

अष्टाभ्य औश् ७।१।२१

प० वि०—अष्टाभ्यः ५।३ औश् १।१

अर्थ—[जश्शसोः] ऋअष्टाभ्य इति कृताकारोऽष्टशब्दो गृह्यते अष्टन आ विभक्तौ इति ऋअष्टाभ्य उत्तरयोः जश्शसोरोशादेशो भवति । (अष्ट शब्द के पश्चात् जस् और शस् के स्थान में औश् आदेश होता है)

उदा०—अष्टन् जस् । अष्ट आ जस् । अष्ट औश् । अष्टा औ । अष्टौ । अष्टौ ॥ कृताकारस्य प्रहरणं किम् । अष्ट तिष्ठन्ति । अष्ट पश्य ।

पड्भ्यो लुक् ७।१।२२

प० वि०—पड्भ्यः ५।३ लुक् १।१

१—इवोपि विभक्तौ (७. १. ७३) मिदचोऽन्त्यात्पर. (१. १. ४६) २—नि सर्वनामस्थानम् (१. १. ४१) नपुंसकस्य मूलचः (७. १. ७२) मिदचोऽन्त्यात्परः (१. १. ४६) ३—सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ (६. ४. ८)

अर्थ—[जश्शसोः] पट्सङ्गकेभ्य उत्तरयोर्जश्शसोर्लुक् भवति ।

(पट् संज्ञक अङ्ग के पश्चात् जम् और शस् का लुक् हो जाता है)

उदा०—पट् तिष्ठन्ति । पट् पश्य । पञ्च । नय । दश ।

सि०—पप् जस् । पप्^१ । पङ्^२ । पट्^३ । पङ् ॥ पञ्चन् जस् । पञ्चन्^४ । पञ्च^५ ॥

स्वमोर्नपुंसकात् ७।१।२३

प० वि०—स्वमोः ६।२ नपुंसकान् १।१

अर्थ—[लुक्] नपुंसकादुत्तरयोः स्वमोर्लुक् भवति । (नपुंसक के पश्चात् सु और अम् का लुक् हाता है)

उदा०—मधु तिष्ठन्ति । मधु पश्य । दधि । त्रपु । जतु । तत् । यन् । किम् । इदम् । एतन् ।

अतोऽम् ७।१।२४

प० वि०—अतः १।१ अम् १।१

अर्थ—[स्वमोः] अदन्तान्नपुंसकादुत्तरयोः स्वमोः स्थाने अम् इत्ययमादेशो भवति । (अदन्त नपुंसक के पश्चात् सु और अम् के स्थान में अम् आदेश होता है)

उदा०—फलम् । कुण्डं पश्य । कुण्डं तिष्ठति ।

युष्मदस्मद्भ्या उमाऽश् ७।१।२७

प० वि०—युष्मदस्मद्भ्याम् १।२ डस् ६।१ अश् १।१

अर्थ—युष्मद् अस्मद् इत्येताभ्यामुत्तरस्य डसः स्थाने अश् इत्ययमादेशो भवति । (युष्मद् और अस्मद् के पश्चात् डम् के स्थान में अश् आदेश हाता है)

उदा०—तव । मम ।

सि०—युष्मद् डस् । युष्मद् अश् । तव^१ अद् अ । तव अ^२ । तव^३ ।

डे प्रथमयोरम् ७।१।२८

प० वि०—डे । इत्यभिहितको निर्देश । प्रथमयोः । ६।२ अम् १।१

अर्थ—[युष्मदस्मद्भ्याम्] युष्मद्-अस्मद्भ्यामुत्तरयोः डे इत्येतस्य

१—प्लुता पट् (१. १. २३) २—भक्ता जसोऽन्ते (८. २. ३६) ३—वावमाने (८. ४. ५५) ४—नलोपः (८. २. २) ५—तवममौ डसि (७. २. ६६) ६—शेषे लोप (७. २. ६०) ७—अता गुरो (६. १. ६४)

प्रथमाद्वितीययोश्च विभक्त्योरम् इत्ययमादेशो भवति ।

(युष्मद् और अस्मद् अङ्ग के पश्चात् डे, प्रथमा और द्वितीया विभक्त के स्थान में अम् यह आदेश होता है ।

उदा०—डे—तुभ्यम् । मह्यम् । प्रथमाया —त्वम् । युवाम् । यूयम् । अहम् । आवाम् । वयम् । द्वितीयाया —त्वाम् । माम् । आवाम् ।

सि०—युष्मद् डे । तुभ्य^१ अद् डे । तुभ्य अम् । तुभ्यम्^२ । मह्यम् । त्वम् । युष्मद् सु । त्व^३ अद् अम् । त्व अम् । त्वम् । युष्मद् औ । युष्मद् अम् । युव^४ अद् अम् । युव आ^५ अम् । युवा^६ अम् । युवाम्^७ । युष्मद् जस् । युष्मद् अम् । यूय अद् अम् । यूय अम् । यूयम् । युष्मद् अम् । युष्मद् अम् । त्व अद् अम् । त्व अ आ अम् । त्व आ^८ अम् । त्व आम् । त्वाम् । युष्मद् औद् । युव अद् औ । युव अ आ^९ अम् । युव आम् । युवाम् ।

शसो न ७।१।२६

प० वि०—शस ६।१ न (अभिभक्तिरुक्)

अर्थ—[युष्मदस्मद्भ्याम्] युष्मदस्मद्भ्यामुत्तरस्य शसो नकारादेशो भवति । (युष्मद् और अस्मद् के पश्चात् सस् के स्थान में नकार आदेश होता है)

उदा०—युष्मान् । अस्मान् ।

सि०—युष्मद् शस् । युष्म अ अस् । युष्म अस् । युष्मास् । युष्मान् । अस्मान् ।

भ्यसोऽयम् ७।१।३०

प० वि०—भ्यस ६।१ भ्यम् अभ्यम् वा १।१ (उभयथा त्रिहः सम्भवति)

अर्थ—[युष्मदस्मद्भ्याम्] युष्मदस्मद्भ्यामुत्तरस्य भ्यसो भ्यम् (अभ्यम् वा) आदेशो भवति । (युष्मद् और अस्मद् के पश्चात् भ्यत् के स्थान में भ्यम् (वा अभ्यम्) आदेश होता है)

उदा०—युष्मभ्यम् । अस्मभ्यम् ।

१—तुभ्यमहो ङि (७. २ ६५) २—अभि पूर्व. (६. १. १०३) ३—त्वाहो सो (७ २ ६४) ४—युवायो द्विवचने (७ २ ६२) ५—प्रथमायाश्च द्विवचने नापायाम् (७ २. ८८) ६—प्रकः सवर्णो दीर्घः (६ १ ६७) ७—अभि पूर्वः (६ १ १०३) ८—द्वितीयाया च (७ २. ८७)

सि०—ऋभ्यमादेशान्ते शेपे लोप इत्यन्त्यलोपः अम्यमादेशपक्षे तु अन्त्यलोपे टिलापे वा पञ्चद्वयपि साधु ऋ युष्मद् भ्यस् । युष्मद् म्यम् । युष्म' भ्यम् । युष्मन्म्यम् । युष्मद् भ्यस् । युष्मद् अभ्यम् । युष्म युष्म वा अभ्यन् । युष्मभ्यम् युष्मन्म्यम् । ऋभ्यमादेशे कृते शेपे लोपे च बहुवचने भ्रान्त्येदिति एवम प्राप्नोति । तदङ्गदृष्टे पुनर्घृतावधिर्निष्ठितस्य इति न भवति ऋ

पञ्चम्या अत् ७।१।३१

प० वि०—पञ्चम्याः ६।१ अत् १।१

अर्थ—[युष्मद्भ्यस्मद्भ्याम् भ्यसः] युष्मद्अस्मद्भ्यामुत्तरस्य पञ्चम्याः भ्यमा अन् इत्ययमादेशो भवति । (युष्मद् और अस्मद् के पश्चात् पञ्चमी भ्यस् के स्थान में अत् आदेश होता है)

उदा०—युष्मन् । अस्मत् ।

सि०—अस्मद् भ्यस् । अस्मद् अन् । अस्म् अद् अन् । अस्म् अत् । अस्मत् ।

एकवचनस्य च ७।१।३२

प० वि०—एकवचनस्य ६।१ च अ० ।

अर्थ—[युष्मद्भ्यस्मद्भ्याम् पञ्चम्याः अत्] युष्मद्अस्मद्भ्यामुत्तरस्य पञ्चम्याः एकवचनस्य अन् इत्ययमादेशो भवति ।

(युष्मद् और अस्मद् अङ्ग के पश्चात् पञ्चमी एकवचन के स्थान में अत् यह आदेश होता है ।

उदा०—त्वत् । मत् ।

सि०—अस्मद् ङसि । म^२ अद् अत् । म अत् । मत् ।

साम आकम् ७।१।३३

प० वि०—सामः ६।१ आकम् १।१

अर्थ—[युष्मद्भ्यस्मद्भ्याम्] युष्मद्अस्मद्भ्यामुत्तरस्य साम आकम् इत्ययमादेशो भवति । (युष्मद् और अस्मद् अङ्ग के पश्चात् साम के स्थान में आकम् यह आदेश होता है)

उदा०—युष्माकम् । अस्माकम् ।

सि०—ऋसाम इति पृष्ठीबहुवचनमागतमुट्कं गृह्यतेः

अस्मद् आम् । अस्म्^१ सुद्^२ आम् । अस्म साम । अस्म आकम् ।
अस्म आकम् । अस्माकम् ।

आत औ णलः ७।१।३४

प० वि०—आतः ५।१ औ (अविभक्तिको निर्देशः) णलः ६।१

अर्थ—आकारान्ताद्ङादुत्तरस्य णलः स्थाने औकारादेशो भवति ।

(आकारान्त ऋङ्ग के पश्चात् णल् के स्थान में औकार आदेश होता है)

उदा०—पपौ । तस्थौ ।

सि०—पा णल् । पा औ । प्^३ औ । पा प्^४ ओ । पा पौ । पपौ ।

प्टा । स्था^५ णल् । स्था औ । स्था स्था औ । स्थ स्था औ । थ स्था

तस्था औ । औ । तस्थौ ।

तुह्योस्तातङ्गशिष्यन्यतरस्याम् ७।१।३५

प० वि०—तुह्योः ६।२ तानङ् १।१ आशिपि ७।१ अन्यतरस्याम् अ० ।

अर्थ—तु हि इत्येतयोराशिपि विषये तातङ्गादेशो भवति अन्यतर-
स्याम् । (तु और हि के स्थान में तातङ् आदेश होता है आशीस् अर्थ में विकल्प
करके)

उदा०—भवतु । भवतात् । भव । भवतात् ।

विदेः शतुर्वसु ७।१।३६

प० वि०—विदेः ५।१ शतुः ६।१^६वसुः १।१

अर्थ—विद् ज्ञाने इत्यस्माद्घातोरुत्तरस्य शतुर्वसुरादेशो भवति ।

(विद् घातु के पश्चात् शतु के स्थान में वसु आदेश होता है ।

उदा०—विद्वान् । साधनन्त वसो सम्प्रसारणमित्यत्र (६. ४. १३१)
द्रष्टव्यम् ।

समासेऽनञ्पूर्वो क्त्वो ल्यप् ७।१।३

प० वि०—समासे ७।१ अनञ्पूर्वो ७।१ क्त्वः ६।१ ल्यप् १।१ स०—

अविद्यमानो नञ् पूर्वो यस्मात् सः अनञ्पूर्वः समासः तस्मिन्ने
अनञ्पूर्वो ।

अर्थ—अनञ्पूर्वो समासे क्त्वा इत्येतस्य स्थाने ल्यप् इत्ययमादेशो

१—घोषे लोपः (७. २. ६०) २—आमि सर्वनाम्नः सुट् (७. १. ५२)

३—घातो लोप इटि च (६. ४. ६४) ४—द्विवचनेऽचि (१. १. ५८)

५—घात्वादेः प. स. (६. १. ६२)

भवति । (नहीं है नत्र पूर्व जिससे ऐसे समास में क्त्वा के स्थान में ल्यप् प्रादेश होता है)

उदा०—प्रहृत्य । प्रहृत्य । अनञ्पूर्वे इति किम्—अहृत्या ।

सि०—ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् इत्यत्र (६. १. ६६) द्रष्टव्यम् ।

[आज] जसेरमुक् ७।१।५०

आमि सर्वनाम्नः सुट् ७।१।५८

प० वि०—आमि ७।१ सर्वनाम्नः ५।१ सुट् १।१

अर्थ—[आत्] अवर्णात्सर्वनाम्न उत्तरम्यामः सुडागमो भवति ।

(अवर्णान्त सर्वनाम के परचात् आम् को सुट् का आगम होता है)

ॐआमीति सप्तमीनिर्देश उत्तरार्थः । इह तु सर्वनाम्न इति पञ्च-
मीनिर्देशात्तस्मादित्युत्तरस्येति पष्ठीप्रकल्पित्भवतिॐ

उदा०—तेपाम् । देपाम् । केपाम् । एपाम् । एतेपाम् । शुष्माकम् ।

अम्माकम् । तासाम् । यासाम् । कासाम् । आसाम् । एतासाम् ।

सि०—तेपाम् । तद् आम् । त अ आम् । त आम् । त सुट् आम् ।

त साम् । ते^१ साम् । तेपाम् ।

त्रेस्त्रयः ७।१।५३

प० वि०—त्रेः ६।१ त्रयः १।१

अर्थ—[आमि] त्रेस्त्रय इत्ययमादेशो भवति आमि परतः ।

(त्रि के स्थान में आम् के परे रहने पर त्रय यह प्रादेश होता है)

उदा०—त्रयाणाम् । त्रीणाम् इत्यपि छन्दसि दृश्यते ।

ह्रस्वनद्यापो नुट् ७।१।५४

प० वि०—ह्रस्वश्च नदी च आप्चेति ह्रस्वनद्याप् तस्मात् ।

अर्थ—[आमि] ह्रस्वान्तान्नद्यन्तादावन्ताच्च उत्तरस्य आमो नुडा-
गमो भवति । (ह्रस्वान्त, नद्यन्त और द्यावन्त अङ्ग के परचात् आम् को नुट्
का आगम होता है)

उदा०—ह्रस्वान्तात्—वृक्षाणाम् । प्लक्षाणाम् । अग्नीनाम् । वायूनाम् ।
कनराणाम् । नद्यन्तात्—कुमारीणाम् । गौरीणाम् । शार्ङ्गरीणाम् ।
लक्ष्मीणाम् । ब्रह्मव्यूनाम् । आपन्तात्—खट्वानाम् । मालानाम् ।

बहुराजानाम् ।

पट्चतुर्भ्यश्च ७।१।५५

प० वि०—पट्चतुर्भ्यः ५।३ च अ० ।

अर्थ—[आमि नुट्] पट्संज्ञकेभ्यश्चतुःशब्दाच्चोत्तरस्य आमो नुडागमो भवति । (पट् सज्ञक प्रौर चतुर् शब्द के पश्चात् आम को नुट् का भागम होता है)

उदा०—पणाम् । पञ्चानाम् । सप्तानाम् । नवानाम् । दशानाम् । चतुर्णाम् ॥

सि०—पप् आम् । पप् नुट् आम् । पप नाम् । पङ् नाम् । पण् नाम् । पणाम्^३ ॥ पञ्चन् आम् । पञ्चन् नुट् आम् । पञ्चन् नाम् । पञ्चान्^४ नाम् । पञ्चानाम्^५ ॥

नुमागप्रमकरणम्

इदितो नुम् घातोः ७।१।५८

प० वि०—इदितः ६।१ नुम् १।१ घातोः ६।१ स०—इत् इत् यस्य स इदित् तस्य इदितः । अर्थ—इदितो घातोर्नुमागमो भवति । (इकार, है इत् जिसका ऐसे घातु को नुम् का भागम होता है)

उदा०—नन्दनः । साधनन्तु नन्दिप्रहिपचादिभ्यः (३. १. १३४) इति सूत्रे द्रष्टव्यम् ॥

शे मुचादीनाम् ७।१।५६

प० वि०—शे ७।१ मुचादीनाम् ६।३

अर्थ—[नुम्] मुचादीनां घातूनां नुमागमो भवति शे परतः । (मुचादि^१घातुमो को श के परे रखने पर नुम का भागम होता है)

उदा०—मुञ्चति । लुम्पति । विन्दति ।

सि०—मृच्छ् । मुच् लट् । मुच् तिप् । मु नुम् च् शंति । मुन्च् अ ति । मुंच्^२ अ ति । मुञ्चनि^३ ॥

१—भ्रूना जसोऽन्ते (८. २. ३९) २—परोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा (८. ४. ४५) ३—ष्टुना ष्टुः (८. ४. ४१) ४—भोत्रघायाः (६. ४. ७)
५—नसोप श्रातिपदिकान्तस्य (८. २. ७) ६—नदचानदान्तस्य भ्रूति (८. ३. २४) ७—अनुस्वारस्य ययि परमवर्णः (८. ४. ५७)

उगिदच्चा सर्वनामस्थानेऽघातोः ७।१।७०

प० वि०—उगिदचाम् ६।३ सर्वनामस्थाने ७।१ अघातो ६।१ स०—
उरू डत् यस्य स उगिन् । उगिन्च अच्चेति उगिदच तेषाम् उगिद-
चाम् । न घात अघात् तस्य अघातः ।

अर्थ—[नुम्] धातुवर्जितानामुगितामङ्गानामञ्चतेश्च नुमागमो
भवति सर्वनामस्थाने परतः । (धातु वर्जित उगित् और अञ्चु धातु को
नुम् वा आगम हाना है मवनामस्थान के परे रहन पर)

उदा०—उरुत्तुप्—भवान्^१ । भवन्ती । भवन्त । भवन्तम् । भवन्ती ।
ईयसुन्—श्रेयान्^२ । श्रेयासी । श्रेयास । श्रेयासम् । श्रेयासी । शत् । पचन् ।
पचन्ती । पचन्त । पचन्तम् । पचन्ती । अञ्चते प्राट् । प्राञ्चौ ।
प्राञ्च । प्राञ्चनीति प्राङ् । प्राञ्क् क्विन्^३ ।

युजेरसमासे ७।१।७१

प० वि०—युजे ६।१ असमासे ७।१

अर्थ—[सर्वनामस्थाने नुम्] युजेरसमासे सर्वनामस्थाने परतो नुमा-
गमो भवति । (सममाम में युज को नुम् का आगम होता है मवनामस्थान
विभक्ति के परे रहन पर)

उदा०—युङ् । युङ्जो । युञ्ज । युञ्जम् । युञ्जो ।

सि०—युजिर् । युज् क्विन्^३ । युज् सु । यु नुम् ज् सु । युञ्ज्
स् । यु न् ज् । युन् । युङ्^४ । युज् औ । यु नुम् ज् औ । युञ्ज् औ ।
य ज् औ । युञ्जो ।

नपु सकस्य भल्लच ७।१।७२

प० वि०—नपु सकस्य ६।१ भल्लच ६।१ स०—मल् च अच्चेति
मल्लच् तस्य ॥

अर्थ—[नुम् सर्वनामस्थाने] भजन्तस्य अजन्तस्य च नपु सकस्य
नुमागमो भवति सर्वनामस्थाने विभक्तौ परतः । (भजन्त और अजन्त
नपु सक को मवनामस्थान विभक्ति के परे रहन पर नुमागम होता है)

उदा०—भजन्तस्य—यशासि । यशासि । अजन्तस्य—कुण्डानि ।

१—अत्वसत्तस्य चाघातो (६ ४ १४) २—सा तमहत् सयोगस्य (६
४, १०) ३—ऋत्विगादिभूषण (३ २ ६६) क्विन् । ४—क्विन्प्रत्यस्य कु
(८ २ ६२)

वनानि । ऋडगितो म्लान्तस्य नपु सकस्य परत्वाद्नेनैव नुम्भवतिः
श्रेयासि । भूयासि ।

सि०—यशस् जस् । यशस् शि^१ । यशास्^२ इ । यशा नुम् स् इ ।
यशान्स् इ । यशासि^३ । कुण्ड जस् । कुण्ड शि । कुण्ड नुम् शि
कुण्डन् इ । कुण्डान्^४ इ । कुण्डानि ।

इकोऽचि विभक्तौ ७।१।७३

प० वि०—इक ६।१ अचि ७।१ विभक्तौ । ७।१

अर्थ—[नपु सकस्य नुम्] इगन्तस्य नपु सकस्य अजादौ विभक्तौ
नुमागमो भवति । (इग त नपु सक को अजादि विभक्ति के परे रहन परे
नुम् का आगम होता है)

उदा० - वारि औ । वारि औ । वरि शी । वारि ई । वारि नुम् ई ।
वारि न् ई । वारि ण् ई । वारिणी ॥ ऋवारीणाम् इत्यत्र तु नुमचिरवृ-
ज्वद्भावेभ्यो नुद् पूर्वविप्रतिषेधेन इत्यनेन नुडेव भवति । ततो नामि
दीर्घ ऋ

तृतीयादिपु भापितपु स्क पु वद्गालवस्य ७।१।७४

प० वि०—तृतीयादिपु ७।३ भापितपु स्क १।१ पु वद् १।१ गाल-
वस्य ६।१ स —तृतीया आदि येषां ते तृतीयादय तेषु तृतीयादिपु ।
भापित पुमान् येन समानायामाकृतौ एकस्मिन् प्रवृत्तिनिमित्ते तत्
भापितपुस्कम् ।

अर्थ—[इकोचि विभक्तौ] तृतीयादिपु अजादिपु विभक्तिपु भापित-
पु स्कं नपु सकम् इगन्त गालवाचार्यस्य मतेन पुं वद् भवति ।

(तृतीया आदि अजादि विभक्ति के परे रहन पर भापितपु स्क इगन्त नपु सक
गालवाचार्य के मत में पु वद् हो जाता है)

उदा०—ऋयथा पु सि ह्रस्वनुमौ न भवतस्तद्वन्त्रापि न भवत
इत्यर्थ ऋ ग्रामणी ब्राह्मण । ग्रामणि ब्राह्मणकुलेन । ग्रामण्या ब्राह्मण-
कुलेन । ग्रामणिना ब्राह्मणकुलेन । ग्रामण्ये, ग्रामणिने । ग्रामण्य, ग्राम-
णिन । ग्रामण्य । ग्रामणिन । ग्रामण्यो, ग्रामणिनो । ग्रामण्या ।
ऋनुमचिरेति पूर्वविप्रतिषेधेन नुट ऋ ग्रामणीनाम् । ग्रामण्या,
ग्रामणिनि ।

१—जग्गतो सि (७ १ २०) २—घत्वसतस्य चापातो (६ ४ १४)
नदचापदान्तस्य भलि (८ ३ २४) सवनामस्यान चासम्बुद्धौ (६ ४ ८)

अस्थिदधिसक्थ्यक्षणासनडुदात्त ७।१।७५

प० वि०—अस्थि दधि-सक्थि अक्षणाम् ६।३ अनड् १।१ उदात्त १।१

अर्थ—[नपु सक्थ्य तृतीयादिपु विभक्ती] अस्थि-दधि सक्थि अक्षणाम् नपु सप्तमा तृतीयादिप्यजादिपु विभक्तिपु परतोऽनड् इत्ययमादेशो भवति, स चोदात्त भवति । (अस्थि दधि, सक्थि और अक्षि इन नपु सक अङ्गा को अनड् आदेश हाता है तृतीयादि अजादि विभक्ति के पर रहन पर और वह उदात्त होता है)

उदा०—अस्थि । अस्थना । अस्थने । अस्थन् । अस्थन् । अस्थनो । अस्थनाम् । अस्थिन् । अस्थनि । दधि । दध्ना । दध्ने । दधन् । दधन् । दध्नो । दध्नाम् । दधिन् । दधनि । सक्थि । सक्थना । सक्थने । सक्थन् । सक्थन् । सक्थनो । सक्थनाम् । सक्थिन् । सक्थनि । अक्षि । अक्षणा । अक्षणे । अक्षण । अक्षण । अक्षणो । अक्षणाम् । अक्षिण । अक्षणि ।

सि०—अस्थना । अस्थि दा । अस्थ् अनड दा । अस्थन् दा । अस्थन्' आ । अस्थना ॥

नाभ्यस्ताच्छतु ७।१।७६

प० वि०—न अ० । अभ्यस्तात् ५।१ शतु ६।१

अर्थ—[नुम्] अभ्यस्तादङ्गादुत्तरम्य शतुनुम्न भवति । (अभ्यस्त अङ्ग के पश्चान् जो शतु उसको नुम् का प्रागम नहा होता है)

उदा०—ददत् । ददतो । ददन् । दधत् । दधतो । दधन् ।

वा नपु सकस्य ७।१।७६

प० वि०—वा अ० । नपु सकस्य ६।१

अर्थ—[अभ्यस्ताच्छतु नपु सकस्य नुम्] अभ्यस्तादङ्गादुत्तरो य शतुप्रत्ययस्तन्तस्य नपु सकस्य वा नुमागमो भवति । (अभ्यस्त अङ्ग के पश्चात् जा शतु प्रत्यय तदन्त नपु सक को विकल्प से नुम् का प्रागम होता है)

उदा०—ःसर्वनामस्थानेऽय विकल्प ः ददति कुलानि । ददन्ति कुलानि । दधति कुलानि । दधन्ति कुलानि ॥

सि०—दा लट् । दा शतु । दा अत् । दा दा अत् । दा दत् ।

१—प्र लोपोज (६ ४ १३४)

ददत् । ददत् जस् । ददत् शि । ददति । ददत् शि । दद नुम् त् इ ।
ददन्त् इ । ददत् इ । ददन्ति ।

आच्छीनद्योर्नुम् ७।१।८०

प० वि०—आत् ५।१ शीनद्योः ७।२ नुम् १।१

अर्थ—[शतुः वा नुम्] अर्धर्णादङ्गादुत्तरस्य शतुर्वा नुमागमो भवति शीनद्योः परतः । (अर्धर्णात् अङ्ग के पश्चात् जो शतृ प्रत्यय उसको नुम् विकल्प से होता है शी और नदी पर रहने पर)

उदा०—शौ—तुदती कुले । तुदन्ती कुले ॥ याती कुले । यान्ती कुले । करिष्यती कुले । करिष्यन्ती कुले । नद्याम्—तुदन्ती ब्राह्मणी । तुदती ब्राह्मणी । याती ब्राह्मणी । यान्ती ब्राह्मणी । करिष्यती ब्राह्मणी । करिष्यन्ती ब्राह्मणी ॥

सि०—तुद् लट् । तुद् शवृ । तुदत् औ । तुदत् शी । तुदती । तुदन्ती ॥

शप्श्यनोर्नित्यम् ७।१।८१

प० वि०—शप्श्यनो ६।२ नित्यम् १।१

अर्थ—[शतुः शीनद्योः नुम्] शप् श्यन् इत्येतयोः शतुः शीनद्योः परतो नित्यं नुमागमो भवति । (शतृ और श्यन् का जो शतृ प्रत्यय उसको नित्य ही नुम् का प्रागम होता है शी और नदी के पर रहने पर)

उदा—शौ—पचन्ती कुले । [पचन्ति कुलानि] ।

सावनडुह ७।१।८२

प० वि०—सौ ७।१ अनडुहः ६।१

अर्थ—[नुम्] सौ परतोऽनडुहोऽङ्गस्य नुमागमो भवति ।

(अडुह् अङ्ग को नुम् का प्रागम होता है सु के परे रहने पर)

उदा०—अनड्वान् । अनड्वाहौ । अनड्वाह । हे अनड्वन् । हे अनड्वाहौ । हे अनड्वाह । अनड्वाहम् । अनड्वाहौ । अनडुह । अनडुहा । अनडुद्भ्याम् । अनडुद्भिम् । अनडुहे । अनडुद्भ्याम् । अनडुद्भ्यः । अनडुह । अनडुद्भ्याम् । अनडुद्भ्य । अनडुहः । अनडुहोः । अनडुहाम् । अनडुहिम् । अनडुहो । अनडुह्मु ।

सि०—अनडुह् सु । अनडु नुम् ह् स् । अनडुह् स् । अनडुह् ।

अनडुन् । अनडु आम^१ न् । अनड्व्^२ आ न् । अनड्वान् । अनडुद्-
भ्याम्^३ । अनडुद्भ्याम् । अनडुद्स्^४ मु । अनडुनुम्^५ ह् स । अन डुन्-
म् । अनडुन् । अनडु अम्^६ न । अनड्वन् ।

दिव औत् ७।१।८४

प० वि०—दिव ६।१ औत् १।१

अर्थ—[सौ] सौ परतो दिव् इत्येतस्य औदित्ययमादेशो भवति ।
(मु के परे रहने पर दिव अङ्ग को औकार आदेश होता है)

उदा०—द्वीः । द्वी । दिवो । दिवम् । दिवो । दिव । दिवा ।
द्युभ्याम् । द्युभिः । दिवे । द्युभ्याम् । द्युभ्यः । दिवः । द्युभ्याम् ।
द्युभ्यः । दिवः । दिवोः । दिवाम् । दिवि । दिवोः । द्युपु । हे द्वी । हे
दिवो । हे दिव ।

सि०—द्वी । दिव् मु । दि औ स् । द्वी । :दिव् भ्याम् । दि उ^१
भ्याम् । द्युभ्याम् ।

पथिमय्यृभुक्षामात् ७।१।८५

प० वि०—पथि-मथि-ऋभुक्षाम् ६।३ आन् १।१

अर्थ—[सौ] पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन् इत्येतेषामङ्गानाम् सौ
परत आकारादेशो भवति । (पथिन्, मथिन् और ऋभुक्षिन् अङ्गों का
आकार आदेश होता है मु के पर रहत पर)

उदा०—पन्था. [पन्थानौ । पन्थानः । पन्थानम् । पन्थानौ । पथः ।
पथा । पथिभ्याम् । पथिमि । पथे । पथिभ्याम् । पथिभ्यः । पथः ।
पथिभ्याम् । पथिभ्यः । पथः । पथाः । पथाम् । पथि । पथो । पथिपु]
मन्था. । मन्थानौ । मन्थान. । ऋभुक्षाः । ऋभुक्षाणी । ऋभुक्षाण ।

सि०—पथिन् सु । पथि आ^१ मु । पथ् अ^२ आ स् । पन्थ^३ आ स् ।
पन्थाः । पथिन् शस् । पथ्^४ अस् । पथ. । ऋ स्थानिन्यनुनासिकेऽपि

१—चतुरस्रदुहोरापुदात्त (७ १ ९८) मिद्वोऽन्त्यात्परः (१ १. ७४)
२—इको यणचि (६. १. ७४) ३—वसुन् मुध्वस्वनट्टा द (८. २. ७२)
४—अम्सम्बुद्धौ (७ १. ६६) ५—दिव उन् (६ १. १२७)
६—पथिमय्यृभुक्षामात् (७. १ ८५) अनोऽन्त्यस्य (१. १. ५१) ७—
इतोऽसर्वन्तामस्वानि (७ १. ८६) ८—योग्य (७ १. ८७) ९—यचि भम्
(१. ४. १८) मस्य टेलोप. (७ १. ८८) अचोऽन्त्यादि टि (१ १. ६३)

आकारोऽनुनासिको न भवति । भाव्यमानेन सवर्णाना ग्रहण न भव-
तीति शुद्धो ह्यमुच्चार्यते ॥

इतोऽत्सर्वनामस्थाने ७।१।८६

प० वि०—इत् ६।१ अत् १।१ सर्वनामस्थाने ७।१

अर्थ—[पथिमथि ऋभुत्ताम्] पथ्यादीनाम् इकारस्य स्थाने अका
रादेशो भवति सर्वनामस्थाने परत । (पथि इत्यादि अङ्गो के इकार के
स्थान में अकार आदेश होता है सवनामस्थान के परे रहत पर)

उदा०—पन्था । पन्थानौ । पन्थान् । पन्थानम् । पन्थानौ । मन्था ।
मन्थानौ । मन्थान् । मन्थानम् । मन्थानौ । ऋभुत्ता । ऋभुत्ताणी ।
ऋभुत्ताण । ऋभुत्ताणम् । ऋभुत्ताणौ ।

थोन्य ७।१।८७

प० वि०—थ ६।१ न्य १।१

अर्थ—[सर्वनामस्थाने पथिमथ्यृभुत्ताम्] पथिमथोस्थकारस्य
स्थाने न्य इत्ययमादेशो भवति सर्वनामस्थाने परत ।

(पथि और मथि अङ्ग के थकार के स्थान म य आदेश होता है सर्वनाम-
स्थान विभक्ति के परे रहत पर)

उदा०—पन्था । पन्थानो । पन्थान् इत्याद्य ।

भस्य टेलोप ७।१।८८

प० वि०—भस्य ६।१ टे ६।१ लोप १।१

अर्थ—[पथिमथ्यृभुत्ताम्] पथ्यादीना भसङ्गकाना टेलोपो
भवति । (पथि इत्यादि भसङ्गक अङ्गो की टि का लोप होता है)

उदा०—पथ । पथा । पथे । पथ । पथ । पथो । पथाम् । पथि ।
पथो । मथ । मथा । मथे । मथ । मथ । मथो । मथाम् । मथि ।
मथो । ऋभुत्त । ऋभुत्ता । ऋभुत्ते । ऋभुत्त । ऋभुत्त । ऋभुत्तो ।
ऋभुत्ताम् । ऋभुत्ति । ऋभुत्तो ।

॥ सर्वनामस्थान इत्यनुवर्तमानमपि विरोधादिह न सवद्भ्यते ॥

पु सोऽसुड् ७।१।८९

प० वि०—पु स ६।१ असुड् १।१

अर्थ—[सर्वनामस्थाने] पु स इयेतस्य असुड् इत्ययमादेशो भवति
सर्वनामस्थान विभक्तौ परत ।

(पु स के स्थान में प्रमुड यह आदाग हाता है सबनामस्थान विभक्ति के परे रहन पर)

उदा०—पुमान् । पुमासौ । पुमास । पुमासम् । पुमासी । सप्तनाम-
स्थाने इति किम् । पु स । पु सा । पु भ्याम् । पु भि । पु से । पु भ्याम् ।
पु भ्य । पु स । पु भ्याम् । पु भ्य । पु स । पु सा । पु साम् । पु सि ।
पु सो । पु सु । हे पुमन् । हे पुमासो । हे पुमास ।

सि०—पुम्स् सु । ॐ पुम् असुङ् सु । पुमास्^१ सु । पुमा नुम्^२ स्
स् । पुमान्स्^३ । पुमान्^४ । पुम्स् शस् । पुस् अस् । पु स । पु भ्याम् ।
पुम्स् भ्याम् । पुम् भ्याम् । पु भ्याम् । पु सु । पुम्स् सुप् । पुम् सु । पु सु ।

गोतो गित् ७।१।६०

अर्थ—[सर्वनामस्थाने] ॐसामर्थ्यान् प्रथमा विभक्ति ॐ गोशब्दात्
पर सर्वनामस्थाने शिद् भवति । (गोशब्द के पश्चात् सर्वनामस्थान विभक्ति
गित् हो जाती है)

उदा०—गो । गावो । गाव । गाम् । गावो । [गा । गवा ।
गोभ्याम् । गोभि । गव । गोभ्याम् । गोभ्य । गा । गाभ्याम् । गोभ्य ।
गो । गवो । गवाम् । गवि । गवो । गापु] हे गो । ह गावो ।
हे गाव ।

सि०—गो सु । गो स् । गो । गो आ । गो औ । गाव् औ ।
गावो । गाम् । गो अम् । ग् आ^१ अम् । गा अम् । गाम् । गा शस् ।
गा^२ अस् । गा । गो दा । गो आ । गव् आ । गवा । गो आम् ।
गवाम् ॥

एलुत्तमो वा ७।१।६१

प० वि०—एल् १।१ उत्तम १।१ वा अ० ।

अर्थ—[गित्] उत्तमो एल् वा शिद् भवति । (उत्तम पुल्लिङ्ग का एल
विकल्प से गित् होता है)

उदा०—चकार । चकर । पपाठ । पपठ ।

१—सात्तमहत सयोगस्य (६ ४ १०) २—उदिदचा सबनामस्थानऽ
घातो (७. १. ७०) ३—हल्डयाभ्यां दीर्घात्पुंसिपृक्त्वात् हल (६ १ ६६)
४—सयोगान्तस्य लोप (८ २ २३) ५—सौतोऽन्तसो (६ १. ६३)

सख्युरसबुद्धौ ७।१।६२

प० वि०—सख्युः १।१ असबुद्धौ ७।१

अर्थ—[सर्वनामस्थान णिन्] असबुद्धौ यः सखिशब्दः तस्मात् पर सर्वनामस्थान णिद् भवति । (असबुद्धि के परे रहने पर जो सखि शब्द उसके पश्चात् सर्वनामस्थान विभक्ति णित् होती है)

उदा०—सखा । सखायौ । सखायः । सखायम् । सखायौ । [सखीन् । सख्या । सखिम्याम् । सखिभिः । सख्ये । सखिभ्यः । सख्युः^१ । सख्योः । सखीनाम् । सख्याम् । सख्योः । सखिपु । हे सखे] हे सखायौ । हे सखायः ।

सि०—सखि सु । सख् अनङ्^१ सु । सखन् सु । सखान्^२ स । सखान् । सखा । सखि औ । सखै^३ औ । सखाय् औ । सखायौ । सखि शस् । सखीस्^४ । सखीन् । सखि डसि । सखि अस् । सख्युर्^५ र् । सख्युर्^६ । सख्युः । सखि आम् । सखि नुद् आम् । सखि नाम् । सखीनाम् । सखि ङि । सखि आद्^७ इ । सखि आ आम्^८ । सखि आम् । सख्याम् । हे सखे । सखि सु । सखे स् । सखे ।

अनङ् सौ ७।१।६३

प० वि०—अनङ् १।१ सौ ७।१

अर्थ—[सख्युः असम्बुद्धौ] सखिशब्दस्य सावसम्बुद्धौ अनङ् इत्ययमादेशो भवति । (सम्बुद्धिभिन्न मु के परे रहने पर सखि शब्द को अनङ् यह आदेश होता है)

उदा०—सखा । असम्बुद्धाविति निम्-हे सखे ।

ऋदुशनस्पुरुदशोऽनेहसा च ७।१।६४

प० वि०—ऋदुशनस्पुरुदशोऽनेहसाम् ६।३ च अ० । स०—ऋच्च उशनश्च पुरुदशश्च अनेहश्चेति ऋदुशनस्पुरुदशोऽनेहसः तेषाम् ऋदुशनस्पुरुदशोऽनेहसाम् ।

१—अनङ् सौ (७. १. ६३) २—सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ (६. ४. ८)
३—अथो द्विगुणित (७. २. ११५) ४—प्रथमयोः पूर्वसवर्णः (६. १. ६८)
५—इको यणचि (६. १. ७५) स्वत्यात्परस्य (६. १. १०८) ६—रात्वस्य (८. २. २३) ७—शेषो ध्यसखि (१. ४. ७) आणद्याः (७. ३. ११२) ८—डेराग्नयान्नीभ्यः (७. ३. ११६)

अर्थ—[अनङ् असम्बुद्धी सी] ऋकारान्तानामङ्गानामुशनम् पुरुदंशस् अनेहस् इत्येतेषां च असम्बुद्धी सी परतोऽनङ् आदेशो भवति ॥

(ऋकारान्त उगनम् पुरुदंशम् अनेहम् अङ्ग को सम्बुद्धिमित्र सु के परे रहने पर अनङ् आदेश होता है)

उदा०—ऋतः—कर्त्ता । हर्त्ता । माता । पिता । भ्राता । उशना । पुरुदंशा । अनेहा । असम्बुद्धाविनि किम्—हे कर्त्तः । हे हर्त्तः । हे मातः । हे पितः । हे पुरुदंशः । हे अनेहः । हे उशनः ।

चतुरनडुहोरामुदात्त ७।१।१८८

प० वि०—चतुरनडुहोः ६।२ आम् १।१ उदात्तः १।१

अर्थ—[मवनामस्थाने] चतुर् अनडुह् इत्येतयोः सर्वनामस्थाने परत आमागमो भवति, स चाशान् ।

(चतुर् और अनडुह् प्रज्ञो को मवनामस्थान विभक्ति के परे रहने पर आम् का आगम होता है, वह उदात्त होता है)

उदा०—वत्वारः । अनङ्गान । अनङ्ग्याही । अनङ्ग्याह् । अनङ्ग्याहम् । अनङ्ग्याही ॥

ऋत्त इद्धातोः ७।१।१००

प० वि०—ऋत्तः ६।१ इन् १।१ धातोः ६।१

अर्थ—ऋकारान्तस्य धातोर्ऋत्तस्य इकारादेशो भवति । (ऋकारान्त धातु जो अङ्ग उम का इकारादेश जाना है)

उदा०—किरति । गिरति । चिकीपेति । जिहीर्षेति ।

सि०—कृ विक्षेपे । गृ निगरणे । कृ लट् । कृ तिप् । कृ श न । किर अ ति । किरति ॥

उपधायाश्च ७।१।१०१

प० वि०—उपधायाः ६।१ च अ० ।

अर्थ—[ऋत्तः इन्] उपधायाश्च ऋत्तस्य इकारादेशो भवति ।

(उपधा जो ऋत्त उमका इकारादेश जाना है)

उदा०—कीर्त्तयति । कीर्त्तयतः । कीर्त्तयन्ति ।

सि०—कृत्त संशब्दने चुरादिः । कृत्त लिप् । किर न ड । कीर्त्त ड । कीर्त्ति लट् । कीर्त्ति तिप् । कीर्त्ति गप् ति । कीर्त्तयति ।

उदोष्ठ्यपूर्वस्य ७।१।१०३

प० वि०—उत् १।१ ओष्ठ्यपूर्वस्य ६।१ स०—ओष्ठ्यः पूर्वा यस्मात् असौ ओष्ठ्यपूर्वः तस्य ओष्ठ्यपूर्वस्य ।

अर्थ—[धातोः] ओष्ठ्यः पूर्वा यस्माद् ऋकारात् तदन्तस्य धातो- रङ्गस्य उकारादेशो भवति । (ओष्ठ्य वरुं है पूवं जिस ऋकार से ऐसे तदन्त धातु का उकार आदेश होता है)

उदा०—पुपूर्पति । मुपूर्पति ।

सि०—प पालनपूरणयोः । प सन्^१ । पुर् स । पूर्^२ स शप तिप् । पूर् पूर् स अ ति । पुपूर् पति । पुपूर्पति ॥ व वरणे । इत्वोत्वाभ्यां गुणवृद्धी भवतो विप्रतिपेधेन तेनेह विपत्तिं कुणो भवत्येव न उत्त्वम् इति ।

विपत्तिं इत्यस्य साधनमर्त्तिपिपत्योश्चेति (७. ४. ७७) द्रष्टव्यम् ।

इत्याष्टाध्यायी-प्रकाशिकायां सप्तमाध्याये प्रथमः पादः



सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु ७।२।१

प० वि०—सिचि ७।१ वृद्धिः १।१ परस्मैपदेषु ७।३

अर्थ—परस्मैपदेषु परेषु सिचि परत इगन्तस्य अङ्गस्य वृद्धिर्भवति । (परस्मैपद है परे जिसके ऐसे सिच् के परे रहने पर इगन्त अङ्ग को वृद्धि होती है)

उदा०—अचैपीत् । अनैपीत् । अलावीत् । अपावीत् । अकार्पीत् । अहार्पीत् ।

सि०—संज्ञाप्रकरणे द्रष्टव्या ।

अतो ल्रान्तस्य ७।२।२

प० वि०—अतः ६।१ ल्रान्तस्य ६।१ स०—लश्च रश्च इति ल्रौ । अन्तश्च अन्तश्च इति अन्तौ । ल्रौ अन्तौ यस्येति ल्रान्तः तस्य ।

अर्थ—लकारान्तस्य रेफान्तस्य च अकारस्य स्थाने वृद्धिर्भवति परस्मैपदेषु परेषु सिचि परतः ।

१—सति ग्रहग्रहोश्च (७. २. १२) इको ऋत् (१. २. ६) उदोष्ठ्यपूर्वस्य (७. १. १०३) उरण् स्वरः (१. १. ४६) २—इति च (८. २. ७७)

(लकारान्त भ्रोर रेफान्त प्रकार के स्थान में वृद्धि होती है परस्मैपद है परे जिसके ऐसे सिच् के परे रहने पर)

उदा०—क्षर । अक्षारीत् । त्सर । अत्सारीत् । ज्वल । अज्जालीत् । ह्यल । अह्यालीत् ।

वदव्रजहलन्तस्याच ७।२।३

प० वि०—वदव्रजहलन्तस्य ङ। अच. ङ। हल् अन्ते यस्य इति हलन्तः । वदश्च व्रजश्च हलन्तश्च इति वदव्रजहलन्तं तस्य ।

अर्थ—[सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु] वद व्रज हलन्त इत्येतेषामङ्गानामचः स्थाने वृद्धिर्भवति सिचि परस्मैपदेषु परतः । (वद व्रज भ्रोर हलन्त अङ्गो के अच् के स्थान में वृद्धि होती है परस्मैपदपरक सिच् के पर रहने पर)

उदा०—अवादीत् । अत्राजीत् । हलन्तस्य-अभैत्सीत् । अच्यैत्सीत् ।

नेटि ७।२।४

प० वि०—न अ० । इटि ७।

अर्थ—[सिचिः वृद्धिः परस्मैपदेषु हलन्तस्य] इडादौ सिचि परस्मैपदेषु परतः हलन्तस्य अङ्गस्य वृद्धिर्न भवति । (इडादि सिच् परस्मैपद के परे रहने पर हलन्त अङ्ग की वृद्धि नहीं होती है)

उदा०—अदेवीत् । असेवीत् ।

हृम्यन्तक्षराश्वसजागृणिश्व्येदिताम् ७।२।५

प० वि०—हृ-म्-यन्त क्षण-श्वस जागृ-णि-श्व्य-एदिताम् ङ।३

अर्थ—[सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु नेटि] हकारान्तानां मकारान्तानां यकारान्तानामङ्गानां क्षण श्वस जागृ णि श्व्य इत्येतेषामेदितां च इडादौ सिचि परस्मैपदेषु परतो वृद्धिर्न भवति । (हकारान्त, मकारान्त, यकारान्त, क्षण, श्वस, जागृ, णिजन्त, श्व्य षो एकार इन् वाले अङ्गो की वृद्धि नहीं होती है, इडादि सिच् परस्मैपद के परे रहने पर)

उदा०—हकारान्तस्य-मह उपादने । अप्रहीन् । स्यमु स्वन ध्वन शब्दे । अस्यमीन् । व्यय वित्तसमुत्सर्गे । अव्ययीन् । क्षणु द्विसायाम् । अक्षणीन् । श्वस प्राणने । अश्वसोन् । जागृ निद्राक्षये । अजागरीन् । णि । उन परिहाणे ईल प्रेरणे । चुरादिणिच् । औनयीन् । ऐनयीन् । टुआंरिन् गतिवृद्धयो । अश्वयीन् । एदिताम् । रगे लगे सद्ने । अरगीन् । फरे । अफरीन् ।

उदोष्ठ्यपूर्वस्य ७।१।१०३

प० वि०—उत् १।१ ओष्ठ्यपूर्वस्य ६।१ स०—ओष्ठ्यः पूर्वो यस्मात् असौ ओष्ठ्यपूर्वः तस्य ओष्ठ्यपूर्वस्य ।

अर्थ—[धातोः] ओष्ठ्यः पूर्वो यस्माद् ऋकारात् तदन्तस्य धातो-रङ्गस्य उकारादेशो भवति । (ओष्ठ्य वरुणं हे पूवं जिस ऋकार से ऐसे तदन्त धातु का उकार आदेश होता है)

उदा०—पुपूर्पति । मुपूर्पति ।

सि०—प पालनपूरणयोः । पू सन्^१ । पुर् स । पूर्^२ स शप तिप् । पूर् पूर् स अ ति । पुपूर् पति । पुपूर्पति ॥ व वरणे । ऋइत्वोत्वाभ्यां गुणवृद्धी भवतो विप्रतिषेधेन तेनेह विपत्तिं गुणो भवत्येव न उच्यम इति ॥

विपत्तिं इत्यस्य साधनमस्तिविपत्योश्चेति (७ ४. ७७) द्रष्टव्यम् ।

इत्याष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया सप्तमाध्याये प्रथम. पाद.

—200—

सिचि वृद्धि परस्मैपदेषु ७।२।१

प० वि०—सिचि ७।१ वृद्धिः १।१ परस्मैपदेषु ७।३

अर्थ—परस्मैपदेषु परेषु सिचि परत इगन्तस्य अङ्गस्य वृद्धिर्भवति । (परस्मैपद है परे जिसके ऐसे सिच् के परे रहने पर इगन्त अङ्ग को वृद्धि होती है)

उदा०—अचैपीत् । अनेपीत् । अलावीत् । अपावीत् । अकार्षीत् । अहापीत् ।

सि०—संज्ञाप्रकरणे द्रष्टव्या ।

अतो लूरान्तस्य ७।२।२

प० वि०—अतः ६।१ लूरान्तस्य ६।१ स०—लश्च रश्च इति लूरी । अन्तश्च अन्तश्च इति अन्तौ । लूरी अन्तौ यस्येति लूरान्तः तस्य ।

अर्थ—लकारान्तस्य रेफान्तस्य च अकारस्य स्थाने वृद्धिर्भवति परस्मैपदेषु परेषु सिचि परतः ।

१—मनि प्रहृष्टहोदच (७. २. १२) इतो भन् (१. २. ६) उदोष्ठ्यपूर्वस्य (७ १. १०३) उरण् रपरः (१. १. ४६) २—इति च (८. २. ७७)

(लकारान्त प्रीर रेफान्त अकार के स्थान में वृद्धि होती है परस्मैपद है परे जिम्के ऐसे सिच् के परे रहने पर)

उदा०—क्षर । अक्षारीत् । त्सर । अत्सारीत् । जल । अज्वालीन् । हल । अझालीत् ।

वदव्रजहलन्तस्याच ७।२।३

प० वि०—वदव्रजहलन्तस्य ६।१ अचः ६।१ हल् अन्ते यस्य इति हलन्त । वदश्च व्रजश्च हलन्तरश्च इति वदव्रजहलन्तं तस्य ।

अर्थ—[सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु] वद व्रज हलन्त इत्येतेषामङ्गानामचः स्थाने वृद्धिर्भवति सिचि परस्मैपदेषु परतः । (वद व्रज प्रीर हलन्त अङ्गो के अच् के स्थान में वृद्धि होती है परस्मैपदपरव सिच् के परे रहने पर)

उदा०—अवादीत् । अत्राजीन् । हलन्तस्य-अभैत्सीत् । अच्यैत्सीत् ।

नेटि ७।२।४

प० वि०—न अ० । इटि ७।१

अर्थ—[सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु हलन्तस्य] इडादौ सिचि परस्मैपदेषु परतः हलन्तस्य अङ्गस्य वृद्धिर्न भवति । (इडादि सिच् परस्मैपद के परे रहने पर हलन्त अङ्ग की वृद्धि नहीं होती है)

उदा० अदेवीत् । असेवीत् ।

हृम्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्वयेदिताम् ७।२।५

प० वि०—हृ-म्-यन्त-क्षण श्वस जागृ-णि-शिव-एदिताम् ६।३

अर्थ—[सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु नेटि] हकारान्तानां मकारान्तानां यकारान्तानामङ्गानां क्षण श्वस जागृ णि शिव इत्येतेषामेदितां च इडादौ सिचि परस्मैपदेषु परतो वृद्धिर्न भवति । (हकारान्त, मकारान्त, यकारान्त, क्षण, श्वस, जागृ, णिजन्त, शिव प्री एकार इत् वाले अङ्गो की वृद्धि नहीं होती है, इडादि सिच् परस्मैपद के परे रहने पर)

उदा०—हकारान्तस्य-ग्रह उपादने । अप्रहीत् । स्यमु स्वन ध्वन शब्दे । अस्यमीन् । व्यय वित्तसमुत्सर्गे । अव्ययीन् । क्षणु द्विसायाम् । अक्षणीन् । श्वस प्राणने । अश्वसीन् । जागृ निद्राक्षये । अजागरीत् । णि । उन परिहाणे ईल प्रेरणे । चुरादिणिच् । औनयीत् । ऐलयीत् । दुओरिण गतिवृद्धयो । अश्वयीन् । एदिताम् । रणे लगे सङ्गे । अरगीन् । कृते । अकररीन् ।

ऊर्णोति [विभापा ७।२।६]

अतो हलादेर्लघो. ७।२।७

प० वि०—अतः ६।१ हलादेः ६।१ लघो ६।१

अर्थ—[इटि सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु न विभापा] हलादेरङ्गस्य लघोरकास्य इडादौ सिचि परस्मैपदेषु परतो विभापा वृद्धनं भवति ।

(हलादि अङ्ग के लघु अकार की विकल्प से वृद्धि नहीं होती है इडादि सिच् परस्मैपद के परे रहने पर)

उदा०—अकणीत् । अकाणीत् । अरणीत् । अराणीत् ।

इट्प्रकरणम्

नेड्वशि कृति ७।३।८

प० वि०—न अ० । इट् १।१ वशि ७।१ कृति ७।१

अर्थ—वशादौ कृति प्रत्यये परत इडागमो न भवति । (वशादि कृत् प्रत्यय के परे रहने पर इट् का आगम नहीं होता है)

उदा०—ईशिता । ईशितुम् । ईश्वरः । दीपिता । दीपितुम् । दीप्तः ।

तितुत्रतथसिमुसरकसेषु च ७।२।९

प० वि०—ति-तु-त्र-त-थ-सि-मु-सर-क-सेषु ७।२ च अ० ।

अर्थ—[नेट कृति] ति-तु-त्र-त-थ-सि-मु-सर-कस इत्येतेषु कृत्सु इडागमो न भवति । (इन कृत् प्रत्ययो के परे रहने पर इडागम नहीं होता है)

उदा०—कितच् । तनिता । तनितुम् । तन्तिः । कितन् । दीपिता । दीपितुम् । दीपितः । तु । सचिता । सचितुम् । सक्तुः । त्र । तनिता । तनितुम् । तन्त्रम् । त । हसिता । हसितुम् । हस्तः । लविता । लवितुम् । लोतः । ऋत्रौणादिकस्यैव तशब्दस्य ग्रहणमिष्यते न पुनः क्तस्यः हसितुम् इत्येव तत्र भवति । कोपिता । कोपितुम् । कुष्ठम् । सि । कोपिता । कोपितुम् । कुक्षिः । सुक् च इपेः । पपिता । पपितुम् । इञ्जुः । सर । अशिता । अशितुम् । अक्षरम् । क । शलिता । शलितुम् । शल्कः । स । वदिता । वदितुम् । यत्स ।

एकाच् उपदेशेऽनुदात्तात् ७।२।१०

प० वि०—एकाच् १।१ उपदेशे ७।१ अनुदात्तात् १।१

अर्थ—[इट् न] उपदेशे यो घातुरेकाच् अनुदात्तरश्च तस्माद् इडा-

गमो न भवति । (उपदेश में जो धातु एक अच् वाले और अनुदात्त उसके पश्चात् इट् का आगम नहीं होता है)

उदा०—दाता । नेता । चेता । स्तोता ।

उपदेशे के घातवोऽनुदात्ता इति घातुपाठाञ्जेयम् ।

श्र्युक किति ७।२।११

प० वि०—श्र्युकः ६।१ किति ७।१ स०—अश्रिच उक् च इति श्र्युक-
तस्य ।

अर्थ—[नेट्] श्रि इत्येतस्य उगन्तानां च किति प्रत्यये परत इडा-
गमो न भवति । (श्रि और उगन्त धातु को कित् प्रत्यय के परे रहने पर इट्
का आगम नहीं होता है)

उदा०—श्रित्वा । श्रितः । श्रितवान् । उगन्तानां च । युत्वा । युतः ।
युतवान् । लूना । लूनः । लूनवान् ।

सनि ग्रहगृहोश्च ७।२।१२

प० वि०—सनि ७।१ ग्रहगृहोः ६।२ च अ० ।

अर्थ—[उक् नेट्] ग्रह गृह इत्येतयोरुगन्तानां च सनि प्रत्यये
परत इडागमो न भवति । (ग्रह, गृह और उगन्त अङ्ग को इट् का आगम
नहीं होना है सन् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—जिघृक्षति । जिघृक्षतः । जिघृक्षन्ति । जुघुक्षति । जुघुक्षतः ।
जुघुक्षन्ति । उगन्तानां च—रूपति । रूपतः । रूपन्ति । लुलूपति ।

सि०—ग्रह । ग्रह् सन् । गृह् स । गृह् गृह् स^२ । गृ^३ गृह् स ।
गर्^४ गृह् स । ज^५ गृह् स । जि^६ गृह् स । जि घृह्^७ स । जि घृह्^८
स । जिघृक्^९ स । जिघृक्ष^{१०} शप् तिप् । जिघृक्षति ।

१—हृदविदमुपग्रहिस्वपिप्रच्छः सश्च (१. २. ८) इति सन कित्त्वे
सति ग्रह्यादिसूत्रेण (६. १. १६) सम्प्रसारणम्, इग्यणः सम्प्रसारणम् (१. १.
४४) २—सन्त्यडोः (६. १. १०) ३—गूर्वोभ्यामः (६. १. ४) अत्र लोपो-
ऽभ्यासस्य (७. ४. ५८) हलादिः शेषः (७. ४. ६०) ४—उरत् (७. ४. ६६)
उरए रपर. (१. १. ४९) हलादि संप. (७. ४. ६०) ५—कुहोश्चुः (७. ४.
६२) ६—सन्त्यतः (७. ४. ७६) ७—एकाचो वशो भू भूपन्नस्य स्वोः (८.
२. ३८) ८—हो ङः (८. २. ३१) ९—पहोः कः सि (८. २. ४१) १०—
आदेशप्रत्यययोः (८. ३. ५९)

कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि ७।२।३१

प० वि०—कृ-सृ-भृ-वृ-स्तु-द्रु-स्रु-श्रु-व. ६।१ लिटि ७।१

अर्थ—[नेट्] कृ-सृ-भृ-वृ-स्तु-द्रु-स्रु-श्रु इत्येतेषां लिटि प्रत्यये इडागमो न भवति । (कृ-सृ-भृ-वृ-स्तु-द्रु-स्रु-श्रु इनको लिट् प्रत्यय के परे रहने पर इट् का आगम नहीं होता है)

❖ सिद्धे सति आरम्भो नियमार्थः । ऋादय एष लिट्यनितस्ततोऽन्ये सेट इति ❖

उदा०—कृ । चकृव । चकृम । सृ । ससृव ससृम । भृ । वभृव । वभृव । वृव् । ववृव । ववृम । वृड् । ववृवहे । ववृमहे । स्तु । तुष्टुव । तुष्टुम । द्रु । दुद्रुव । दुद्रम । स्रु । सुस्रुव । सुस्रुम । श्रु । शुश्रुव । शुश्रुम ।

श्वीदितो निष्ठायाम् ७।२।१८

प० वि०—श्वीदित ६।१ निष्ठायाम् ७।१ स०—शिवश्च ईदित्श्च इति श्वीदित् तस्य ।

अर्थ—[नेट्] शिव इत्येतस्य ईदितश्च निष्ठायामिडागमो न भवति । (शिव और ईकार इव वाले धातु को निष्ठा के परे रहने पर इट् का आगम नहीं होता है)

उदा०—शूनः । शूनवान् । ईदित् । ओलस्जी । लग्नः । लग्नवान् ।

यस्य विभाषा ७।२।१५

प० वि०—यस्य ६।१ विभाषा १।१

अर्थ—[नेट् निष्ठायाम्] यस्य धातोः विभाषा क्वचिदुक्तस्तस्य निष्ठायां परत इडागमो न भवति ।

(जिस धातु को कही भी इट् का विधान विकल्प से विधा गया है, उस को निष्ठा के परे रहने पर इट् का आगम नहीं होता है)

उदा०—धूल् । विधूत् ! । विधूतवान् । गुह् । गृढः । गृढवान् ।

सि०—गुह्^१ त । गुह्^२ ध^२ । गुह्^३ ढ^३ । गु^४ ढ^४ । गृढ^५ सु । गृढः ।

! स्वरतिमूतिसूयतिधूत्दिता वा (७. २.) से विकल्प कहा है ।

१—हो ढः (८. २. ३१) २—भगस्तषोर्षोऽध. (८. २. ४०) ३—पुना षुः (८. ४. ४०) ४—डो ढे लोपः (८. ३. १३) ५—ड्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः (६. ३. १११)

आदितश्च ७।२।१६

प० वि०—आदितः ६।१ च अ० ।

स०—आन् इत् तस्य इति आदित् तस्य ।

अर्थ—[नेट् निष्ठागम्] आदितश्च धातोर्निष्ठागमिडागमो न भवति । (आकार इत् वागे धानु को निष्ठा के परे रहने पर इट् का आगम नहीं होता है)

उदा०—त्रिमिदा । मिन्नः । मिन्नवान् ।

आर्धधातुकस्येड्वलादे ७।२।३५

प० वि०—आर्धधातुकस्य ६।१. इट् १।१ वलादे. ६।१ स०—बल् आर्धिर्यस्य इति वलादिः तस्य वलादे ।

अर्थ—वलादेरार्धधातुस्य इडागमो भवति ।

(बल् प्रत्याहार में आन वागे कोई अक्षर है आदि में जिस आर्धधातुक प्रत्यय के समको इट् का आगम होता है)

उदा०—लविता । लवितुम् । लवितव्यम् ।

ग्रहोऽलिति दीर्घ ७।२।३७

प० वि०—ग्रहः ५।१ अलिति ७।१ दीर्घ १।१।

अर्थ—ग्रह उत्तरस्य इट्. अलिति दीर्घो भवति ।

(ग्रह धानु ने पश्चात् इट् का दीर्घ होता है, लिट् के परे रहने पर नहीं ।

उदा०—ग्रहीता । ग्रहीतुम् । ग्रहीतव्यम् । अलिटीति क्रिम् । जगृहिव । जगृहिम् ।

❀ प्रकृतस्य इटो दीर्घत्वमिदं तेन चिण्वद्विदो न भवति ❀
ग्राहिता : ग्राहिप्यते ।

वृत्तो वा ७।२।३८

प० वि०—वृत्त. ५।१ या अ० । स०—वृ च ऋन् च इति वृत् तस्मात् वृत्त. ।

अर्थ—[इट् दीर्घ] अलिति वृ इति वृह्वृञो सामान्यने ग्रहण तस्मादुत्तरस्य ऋकारान्तेभ्यश्चेदो वा दीर्घो भवति अलिति ।

वृ (वृह्वृञ्) और ऋकारान्त धातुओं के पश्चात् इट् का विकल्प से दीर्घ होता है लिट् के परे रहने पर नहीं)

उदा०—वृङ्—वरिता । वरीता । वृञ् । प्रावरिता । प्रावरीता ।
 ऋकारान्तेभ्य -त्-तरिता । तरीता । मृञ् । आस्तरिता । आस्तरीता ।
 सि०—वृजन्तानि रूपाणि इमानि ।

न लिङि ७।२।३६

प० वि०—न अ० । लिङि ७।१

अर्थ—[वृत्तः इट् दीर्घः] वृत्त उत्तरस्य इटो लिङि दीर्घो न भवति ।
 (वृत् के पश्चात् इट् का दीर्घ नहीं होता है लिङ् के परे रहने पर)

उदा०—विवरिपीष्ट । प्रावरिपीष्ट । आस्तरिपीष्ट । विस्तरिपीष्ट ।

सि०—वृङ्—ट् लिङ् । वृ ल् । वृ त् । वृ सोयुट् सुट् । वृ सीय् स्
 त । वृ सी स् त । वृ इट् सीस् त । वर् इ पीप् त । वरिपीष्ट । वि उप-
 सर्गान् विवरिपीष्ट । एवं सर्वम् ।

सिचि च परस्मैपदेषु ७।२।४०

प० वि०—सिचि ७।१ च अ० । परस्मैपदेषु ७।३

अर्थ—[वृत्तः इटः दीर्घः न] परस्मैपदेषु परत्. सिचि वृत्त उत्तरस्य
 इटो दीर्घो न भवति । (परस्मैपदपरक सिच के पर रहने पर वृत् के पश्चात्
 इट् का दीर्घ नहीं होता है)

उदा०—प्रावारिष्टाम् । प्रावारिषु । अवारिष्टाम् । अवारिषु । अन्त-
 रिष्टाम् । अन्तारिषु । परस्मैपदेष्विति ऋम् । प्रावरिष्ट । प्रवरीष्ट । प्र
 वृञ् । वृ सिच् लुङ् । वृ इट् स् तस् । वृ इम् ताम् । वार् इत् ताम् ।
 वारिष्टाम् । अट् वारिष्टाम् । अवारिष्टाम् । प्र अवारिष्टाम् । प्रावा-
 रिष्टाम् ।

ॐ वृङ् उदाहरणं नोपन्यस्तम् तस्य परस्मैपदासम्भवात् । प्रावरिष्ट ।
 प्रावरीष्ट ।

इट् सनि वा ७।२।४१

प० वि०—इट् १।१ सनि ७।१ वा अ० ।

अर्थ—[वृत्तः] वृत्त उत्तरस्य सनो वा इडागमो भवति ।

(वृत् के पश्चात् सन् को विकल्प से इडागम होता है)

उदा०—वृङ्—वुवूर्पते । वुवूर्पते । वुवूर्पन्ते । विवरिपते । विवरी-
 पते । वृञ्—प्रावुवूर्पति । प्रावुवूर्पति । प्रावुवूर्पन्ति । प्राविवरिपति ।
 प्राविवरीपति । ऋकारान्तेभ्य —तितीर्पति । तित्तरिपति । तित्तरीपति ।

उदा०—ध्वृपीष्ट । ध्वरिपीष्ट । स्मृपीष्ट । स्मरिपीष्ट । सिच
खल्पपि—अध्वृपाताम् । अध्वरिपाताम् । अस्मृपाताम् । अस्मरिपाताम् ।
सि०—ध्वृ हूच्छर्न । भावकर्मणोरित्यात्मनेपदम् । एतमन्यत्रापि
आत्मनेपद वेदितव्यम् ।

स्वरतिसूतिसूयतिधूञ्जदितो वा ७।२।४४

प० वि०—स्वरतिसूतिसूयतिधूञ्जदित ५।१ वा अ० । स०—स्वरति-
श्च सूतिश्च सूयतिश्च धूञ् च ऊदिच्च इति स्वरतिसूतिसूयतिधूञ्-
ऊदित् तस्मात् । ऊत् इत् यस्य स ऊदित् ।

अर्थ—[आर्धधातुकस्येड्वलादे] सृष्ट शब्दोपतापयो पूङ् प्राणि
गर्भविमोचन इत्यादादिक । पूङ् प्राणिप्रसव इति दैवादिक । धूञ् कम्पने
इति सौवानिक । क्र यादिश्चौरादिक । तत्रैकाच् इत्यधिकारादाद्यारग्रह
णम् नेतरस्य चौरादिकस्य ऊदित् गाहू विलोडने गुपू रक्षणे इत्यादय ।
एतेभ्य उत्तरस्य वलोदरार्धधातुकस्य वा इडागमो भवति । (इत् धातुभोके
पश्चात् वलादि आधधातुक को विकल्प से इट् का आगम होता है)

उदा०—स्वर्ता । स्वरिता । सूति । प्रसोता । प्रसविता । सूयति
सोता । सविता । धूञ् । धोता । धविता । ऊदित् । विगाढा । विगा-
हिता । गोप्ता । गोपिता ।

रधादिभ्यश्च ७।२।४५

प० वि०—रधादिभ्य ५।३ च अ० ।

अर्थ—[आर्धधातुकस्येड्वलादे वा] रधादिभ्य उत्तरस्य वलादे-
रार्धधातुकस्य वा इडागमो भवति । (रधादि धातुभोके पश्चात् वलादि आध-
धानुक को विकल्प से इट् का आगम होता है)

उदा०—रविता । रद्धा । नष्टा । नशिता ।

सि०—रध् रृच् । रध् इट् रृ । रधिरृ सु । रधिता । रधितारौ ।
रधितार । णश् अदर्शने । नश् रृच् । न नुम^१ रृ । नन्श् रृ । नश्
रृ । नप्^२ रृ । नष्ट^३ सु । नष्टा । नष्टारौ । नष्टार ।

तीपसहलुभरुपरिप ७।२।४८

प० वि०— ति ७।१ इपसहलुभरुपरिप ५।१ स०—इपश्च हश्चस

१—मस्जिनगोभ्रति (७ १ ३०) २—वश्चादिसूत्र ए० (८ २ ३६)
३—पुग प्ठु (८ ४ ४०)

लुभश्च रूपश्च रिट् चेति इपसहलुभरूपरिट्, तस्मात् ।

अर्थ—[आर्धधातुकस्य इट् वा] इपु इच्छायाम् । पह मर्पणे । लुभ गाढे । लुभ विमोहने । द्वयोरपि ग्रहणम् । रूप रोपे । रूप रिप हिंसायाम् । ऐतेभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य तकारादेरार्धधातुभ्य इड् आगमो वा भवति । (इन धातुओं के पश्चात् तकारादि प्राघधातुव को विकल्प से इडागम होता है)

उग०—इपु । एप्टा । एपिता । सह । सोढा । सहिता । लुभ । लोभ्या । लोभिता । रूप । रोप्टा । रोपिता । रिप् । रेप्टा । रेपिता । तीति क्रिम् । णपिप्यति ।

सि०—सोढा । पह । पह् । सह^१ वृच् । सढ्^२ वृ । सढ् धृ^३ । सढ् ढृ^४ । सढ्^५ । सोढृ^६ । सोट सु । सोढ् अनढ् सु । सोढन् स् । सोढान् स् । सोढान् । सोढा । सोढारी । सोढार । लो-या । लुभ् वृच् । लोभ् वृ । लोभ् धृ । लोव् धृ । लोव्या । लोव्यारी । लो-धार ।

सनीवन्तर्द्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वयूगुं भरजपिसनाम् ७।२।४६

प० वि०—सनि ७।१ इवन्तर्द्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वयूगुं भरजपिसनाम् ६।३ स०—इच् अन्ते यस्य स इवन्त । इवन्तश्च ऋधुश्च भ्रस्जश्च दम्भुश्च श्रिश्च स्वा चि युश्च ऊगुंश्च भरश्च क्षपिश्च सश्च इवन्तर्द्धसन, तेषा ।

अर्थ—[वा इट्] इवन्ताना धातूनाम् ऋधु वृद्धौ, भ्रस्ज पाके, दम्भु ऋभे, श्रिञ् सेवाया, सृ शन्तेपतापयो, यु मिश्रणे, ऊगुव् आच्छादने, भृञ् भरणे, मारणतोपणनिशामनेषु क्षपिश्यन्त, पणु वाने, वन पण सम्भत्तौ (द्वयोरपि ग्रहण) इत्येतेपाञ्च सनि वा इडागमो भवति । (इन धातुओं के पश्चात् सन् को विकल्प से इट् वा आगम होता है)

उग०—इवन्तानाम्—दिदेरिपति । दुगुपति । सिसेरिपति । मुस्युपति । ऋध् । अर्दिपति । ईर्सेति । भ्रस्ज । मिभ्रजिपति । मिभ्रञ्जति । मिभ्रजिर्जपति । मिभ्रञ्जति । दम्भु । मिभ्रिभपति । धीप्मति । धिप्सति । श्रि । उन्दिभ्रयिपति । उच्चिभ्रिपति । स्यु । सिग्वरिपति । मुस्युर्पति ।

१—पात्वद प स (६ १ ६२) २—हा ढ (८ २ ३१) ३—भय-
स्त्रापोऽप (८ २ ४०) ४—पुना पु (८ ४ ४०) ५—दो ढ सा
(८ ३ १३) ६—महिवहारोऽणम् (६ ३ ११२)

यु । यियविपति । युयूपति । उगुं । प्रोगुं नविपति । प्रोगुं नुविपति । भर इति भृञित्येतस्य भौवादिकस्य ग्रहण शपा निर्देशात् । विभरिपति । बुभूर्पति । झपि । जिह्वपयिपति । झीप्सति । सन् । ससनिपति । सिपा सति । × तनिपतिदरिद्राणामुपसरयानम् × तितनिपति । तितसति । तितासति । पिपतिपति । पित्सति । दिदरिद्रिपति । दिदरिद्रासति ।

सि —दिवु । निव् सन्^१ । दिव् स^२ । दि ऊठ्^३ स । ति ऊ स । द्यू^४ स । द्यू द्युप । दू द्युप । दुगुप शप तिप् । दुद्यु पति ।

ऋध् सन् । ऋध् इट् स । ऋव् इस । अर्ध्व् इस । अर्धिप । अर्ध्वि^१ धिप । अर्ध्व् दिधिप^२ । अर्ध्विधिप शप् तिप् । अर्ध्विधिपति । ईर्त्सति । ऋध् सन् । ऋध्स । ईर्त्स^३ स । ईर्त्स ध्स^४ । ईर्त्स^५ । ईर्त्स^६ । ईर्त्स^७ शप् तिप । ईर्त्स अ ति । ईर्त्सति । भ्रस्ज सन् । भ्रस्ज इट् स । भ्रस्ज इस । भ्रस्ज् भ्रस्जिस । भ भ्रस्जिस । व भ्रस्जिस । विभ्रस्जिप । विभ्रस्जिप^१ । विभ्रस्जिप^२ शप् तिप् । विभ्रस्जिपति । विभ्रस्जति । भ्रस्ज् सन् । भ्रस्ज् स^३ स । भ्रस्ज^४ स । भ्रस्ज^५ स । भ्रस्ज^६ स । विभ्रस्ज^७ स । विभ्रस्ज^८ शप् तिप् । विभ्रस्जति^९ । विभ्रस्जिपति । भ्रस्ज् सन् । भ्रस्ज इस । भ्रस्ज् इ स । भ्रस्ज^३ भ्रस्ज^४ इ स । भ्रस्ज^५ इ स । भ्रस्ज^६ इ स । विभ्रस्जिस । विभ्रस्जिप शप् तिप् । विभ्रस्जिपति । विभ्रस्जति । भ्रस्ज् । भ्रस्ज सन् । भ्रस्ज् भ्रस्ज् सन् । भ्रस्ज् सन् । वभ्रस्ज स । विभ्रस्ज^{१०}

१—यदा इ गमो न भवति तदा—हल ताच्च (१ २ १०) २—विडति च (१ १ ५) ३—च्छवो धूडनुनासिके च (६ ४ १६) अलोऽत्यस्य (१ १ ५१) ४—इको यणचि (६ १ ७४) ५—न द्रा सपोपादय (६ १ ३) ६—अभ्यास चच (८ ४ ५४) ७—आवज्ञप्यधामीत (७ ४ ५५) उरण रपर (१ १ ५०) ८—अजादद्वितीयस्य (६ १ २) ९—अत्र लोपोऽभ्यासस्य (७ ४ ५८) १०—खरि च (८ ४ ५५) ११—वतमान लट (३ २ १२३) १२—भ्रस्जा जग भ्रस्जि (८ ४ ५३) इति सकारस्य दकार. १३—स्तो इचुना इचु (८ ४ ३६) इति दकारस्य जकार १४—भ्रस्जो रोपधयोरभयतरस्याम् (६ ४ ५७) इयकारान् परो रमागमो रोपधयोरिति षष्ठीनिर्द्वाद् फस्योपधा याश्च सकारस्य निवसक १५—चो कु (८ २ ३०) १६—अतो शुर्णे (६ १) १७—वश्चभ्रस्जादिदूत्रण पत्वम्

स। विभ्रप्^१ स। विभ्रक्^२ स। विभ्रक्प। विभ्रक् शप् तिप्। विभ्रक्
 ति। ॐ इटि तद्भावे च रमागमविकृपाञ्चत्वारि रूपाणि भवन्ति ॐ
 दम्भ् सन्। दम्भ् इट् स। दम्भिस। दम्भ् दम्भिप। ददम्भिप। दिद-
 म्भिप शप् तिप्। दिदम्भिपति। वीप्सति। विप्सति। दम्भ् सन्। दिम्भ्^३
 स। दिम्भ्^४ स। दिप्^५ स। दिप् दिप् स। दिप् स शप् तिप्। धिप्^६
 स शप् तिप्। धिप्सति। धीप्सति। उच्छिथ्रीपति। शिन्। शि स^७ श्री^८
 श्री श्री स। शि^९ श्री प शप् तिप्। शिश्रीपति। उन् शिश्रीपति। उच्^{१०}
 शिश्रीपति। उच्छिथ्रीपति^{११}। सिस्वरिपति। सृ सन्। सृ सृ स। सृ सृ इट्
 स। सृ सृ इस। स सृ इस। सर् सृ इस। सृ इस। सि सृ इ स।
 सि स्वरिप शप् तिप्। सिस्वरिपति। सृ स। स्वृ स। स्वु स। सुर् स।
 स्वृ स। स्वृ प। स्वृ स्वृप। सू स्वृप। सु स्वृप शप् तिप्। सु स्वृपति
 यु। यु स। यु इट् स। योडम। यत्रिप। यु यविप^{१२}। यि^{१३} यत्रिप शप्
 तिप्। यि यत्रिपति। उर्णुन्। उर्णु सन्। उर् नू^{१४} नूस। उर्णु नू-
 पति^{१५}। उर्णु स। उर्णु इट् स। उर्णु इस। उर्णु डनड्^{१६} इप।
 उर्णु व् डप। उर्णु विप। उर् नु लुविप। उर्णु लुविपति। उर्णु सन्।
 उर्णु इट् स। उर्णो इस। उर्णु इप। उर्णु विप। उर् नु नुविप। उर्णु
 नुविपति ॥ क्षीप्सति। क्षिपि^{१७} स। क्षीपि^{१८} स। क्षीप्स^{१९}। क्षीप क्षीप्

१—स्वा० (८ २ २६) इति भति सकार लाप २—पडा व वि (८
 २ ४१) ३—दम्भ इच्च (७ ४ ५६) ४—तरि च (८ ४ ५५) ५—हनन्ताच्च
 (१ २ १०) इति कि वम् अनिदिना हल उपधाया विडिति (६ ४ २४)
 ६—एकावो वसो भप् ऋपतस्य स्थवा (८ २ ३७) ७—इको भन् (१ २
 विडिति च (१ १ ५) ८—अज्भनगना सान (६ ४ १६) ९—यू वौ
 खय (७ ४ ६१) १०—स्तो स्तुना इनु (८ ४ ३६) ११—शरदाजटि (८ ४
 ८२) १२—द्विवचनर्चि (१. १ ५८) १३—घ्रा पुयण्ज्यपर (७ ४ ८०)
 १४—अज्ञादेर्द्वितीयस्य (६ १. २) नद्रा सयागादय (६ १ ३) १५—
 रपाभ्या ना रा समानपद (८ ४ १) १६—विभाषाणो (१ २ ०) इति
 यदा इत्वं तदा-अचि स्तुपातुभ्रुवामिति (६ ४ ७७) उवडादस, अयथा लु
 शुण. डिच्च (१. १ ५२) १७—हतुमति च (३ १ २६) भतिह्यान्वोत्या-
 दिना (७. ३ ३६) पुक् १८—माव्यापृषामीव (७ ४ ५५) १९—गरनिटि

स । जि झीप् स । झीप्स^१ शप् ति । झीप्सति ॥ सिपासति । सन्
सन् । स आ^२ सन् । सा सन् । सा सा स । स सा स । सि पा
स । सिपासति । तिपासति । पित्सति । पत् स । पित् त्^३ स ।
पित्^४ स । पित् पित् स । पित्स शप् तिप् । पित्सति । दिदरिद्रिपति ।
दिदरिद्रासति । ऋदिरिद्रातेरार्धघातुके लोपो वक्तव्य ऋ विकल्पेन आका-
रलोप ।

जृन्नश्च्यो क्त्वि ७।२।५५

उदितो वा ७।२।५६

प० वि०— उदित ५।१ वा अ० ।

अर्थ—[क्त्वि] उदितो धातोरुत्तरस्य क्त्व वा इडागमो भवति ।
(उकार इत वाले घातु के पश्चात् क्त्वा को इट का आगम होता है विकल्प
करके)

वदा०—शमु । शमित्वा । शान्त्वा ।

सि०—शम् क्त्वा । शम् त्वा । शाम्^५ त्वा । शान्त्वा^६ । शान्त्वा
सु । शान्त्वा ।

सेऽसिचि कृतचृतच्छृदत्तृदन्तृ ७।२।५७

प० वि०—से ७।१ असिचि ७।१ कृतचतच्छृदत्तृदन्तृ ५।१

अर्थ—[वा इट् आर्धघातुकस्य] कृती छेदने इति तौदादिक । कृती
वेष्टन इति रौवादिक (द्वयोरपि ग्रहणम्) चृती हिंसासग्रन्थयो । उच्छ
दिर् दीप्तिदेवनयो उत्तरि हिंसादानयो नृती गात्रविच्छेपे इत्येतेभ्य
उत्तरस्य असिचि सकारादेरार्धघातुकस्य वा इडागमो भवति । (इन
घातुमो के पश्चात् सिचि चि न सकारादि आधघातुक को विकल्प मे इट का
आगम होता है)

कृन् । कर्त्स्यति । कर्त्तिष्यति । अकर्त्स्यत् । अकर्त्तिष्यत् । चिकृत्सति ।
चिकृत्तिपति । । चन् । चर्त्स्यति । चर्त्तिष्यति । अचर्त्स्यत् ।

(६ ४ ५१) १—अत्र लोपोऽभ्यासस्य (७ ४ ५८) २—जनसदस्यना
सञ्ज्ञानो (६ ४ ४२) इत्यात्वम् । ३—सनि मीमाधुरभलभशक्तपतपदागच
इस (७ ४ ५४) ४—स्को सयोगाद्योरते च (८ २ २६) ५—घ्रतुनासिचस्य
क्विभ्रलो विडति (६ ४ २४) ६—नदचापदातम्य भलि (८ ३ २४)
घ्रतुस्वारस्य ययि परसवण (८ ४ ५७)

अचर्त्तिष्यत् । चिचृत्सति । चिचर्त्तिषति । छट् । छर्त्सति । छर्त्तिष्यति ।
अच्छत्स्यन् । अच्छर्त्तिष्यन् । चिच्छत्सति चिच्छर्त्तिषति । कृट् । कर्त्सति ।
कर्त्तिष्यति । अकर्त्स्यन् । अकर्त्तिष्यन् । कितृत्सति । कितर्त्तिषति । कृन् ।
कर्त्सति । कर्त्तिष्यति । अकर्त्स्यन् । अकर्त्तिष्यन् । कितृत्सति । कितर्त्तिषति ।

गमेरिट् परस्मैपदेषु ७।२।५८

गमे १।१ इट् १।१ परस्मैपदेषु ७।३

अर्थ—[से आर्धधातुकस्य] गमेन्तारस्य सकारादेरार्धधातुस्य पर-
स्मैपदेषु इडागमो भवति । (गम् धातु क पश्चात् सकारादि आधधातुक को
परस्मैपद के परे रहने पर इट् का प्रागम हाता ह)

उदा०—गमिष्यति । अगमिष्यन् । जिगमिषति ।

न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यं ७।२।५९

प० वि०—न अ० । वृद्भ्यश्चतुर्भ्यं १।३ चतुर्भ्यं १।३

अर्थ—[से आर्धधातुकस्य इट् परस्मैपदेषु] वृधादिभ्यश्चतुर्भ्यं
उत्तरस्य सकारादेरार्धधातुस्य परस्मैपदेषु इडागमो न भवति । (वृत् वृष्
शृष्त्स्यन् इत् चार धातुओं क पश्चात् सकारादि आधधातुक का इट् का प्रागम
नहीं होता है परस्मैपद के परे रहने पर)

उदा०—वृत्-वर्त्सति । अवर्त्स्यन् । विवृत्सति । वृष्-वर्त्सति ।
अवर्त्स्यन् । विवृत्सति । शृष्-शर्त्सति । अशर्त्स्यन् । शिवृत्सति । म्यन्द-
स्यन्त्यति । अस्यन्त्यन् । सिष्यन्त्यति ॥

तासि च क्लृप ७।२।६०

प० वि०—तासि (अप्रिभक्तिर्नो निर्देश) च अ० । क्लृप १।१

अर्थ—[से आर्धधातुस्य परस्मैपदेषु नेट्] कृप उत्तरस्य तासे
सकारादेशाधधातुस्य परस्मैपदेषु इडागमो न भवति ।

(कृप् सामर्थ्ये इत् धातु क पश्चात् ताम् का और सकारादि आधधातुक
का इट् का प्रागम नहीं हाता है परस्मैपद क पर रहने पर)

उदा०—क्लृप्ता श्व । क्लृप्स्यति । अक्लृप्स्यन् । चिक्लृप्सति ।

अचस्नास्वत्यल्पनिटा नित्यम् ७।२।६१

प० वि०—अच १।१ तास्वन् १।१ थलि ७।१ अनिट् १।१

नित्यम् १।१

अर्थ—[इट् न उपदेशे इत्यपकर्षणात्] उपदेशे ऽजन्तो यो धातु-
स्तासौ नित्यानिट्, तस्मादुत्तरस्य तासाविव थल इट् आगमो न भवति ।
(उपदेश में अजन्त जो धातु, तास् के परे पर नित्य अनिट्, उसके पश्चात्,
तास् के समान थल् को इट् का आगम नहीं होता है)

उदा०—याता । ययाय । चेता । चिचेथ ।

उपदेशोऽवतः ७।२।६२

प० वि०—उपदेशे ७।१ अत्वतः ५।१

अर्थ—[तास्त्वथल्यनिटो नित्यम्] उपदेशे यो धातुर् अकारवान्
तासौ नित्यमनिट्, तस्मात् उत्तरस्य थल तासाविव इडागमो न भवति ।
(उपदेश में जो धातु अकारवान् और तास् के परे रहने पर नित्य अनिट्
उमके पश्चात् थल् को तास् के समान इट् का आगम नहीं होता है)

उदा०—पक्ता । पपक्थ । शक्ता । शशक्थ ।

ऋतो भारद्वाजस्य ७।२।६३

प० वि०—ऋत ५।१ भारद्वाजस्य ६।१

अर्थ—[तास्त्वथल्यनिटो नित्यम्] ऋकारान्ताद् धातोर्भारद्वाज-
स्याचार्यस्य मतेन तासाविव नित्यानिट्स्थल इडागमो न भवति ।
(ऋकारान्त जो धातु तास् के परे रहने पर नित्य अनिट् उसके पश्चात्
तास् के समान थल् को इट् का आगम नहीं होता है भारद्वाज आचार्य के
मत से)

उदा०—स्मर्त्ता । सस्मथ । ध्वर्त्ता । द्ध्वर्थ । * सिद्धे सत्यारम्भो
नियमार्थः । ऋत एव भारद्वाजस्य नान्येषां धातूनाम् । अन्येषां तु क्रादि-
नियमात् क्राद्यन्यो धातुर्निटि सेङ् भवत्येव ।

न च ऋतो भारद्वाजस्य इत्येतत् सूत्रं तेषां स्तुद्रवादीनामपि थलि
इतिनियमस्य निवर्त्तकमिति वाच्यम् अनन्तरस्य विधिर्वा प्रतिषेधो वा
इति नियमात् अचस्तास्त्वथल्यनिटो नित्यम्, उपदेशोऽवतः इति सूत्र-
द्वयस्यैव निवर्त्तकत्वात् । अयमेव नियमो यैयाकरणनिकाये भारद्वाज-
नियमनाम्ना प्रसिद्ध इत्यपि बोध्यः)

(अचस्तासत्वथल्यनिटो नित्यम् तथा उपदेशोऽवतः इन दोनों सूत्रों से ही
यह ऋकारान्त धातु थल् के परे रहने पर अनिट् सिद्ध हो ही जाता है पुनः
जो इस ऋतो भारद्वाजस्य सूत्र का आरम्भ आचार्य ने किया है वह इसलिए कि
यह सूत्र नियम सूत्र हो जाय । अर्थात् दूसरे सूत्रों से कार्य के सिद्ध हो जाने पर

मीं जो मूत्र का आरम्भ किया जाता है वह नियमायं हो जाता है। यहाँ पर इस मूत्र में यह नियम निकलना है कि यदि भारद्वाज आचार्य के मत में किसी घातु को यत् के परे रहने पर इट् का आगम न हो तो केवल वह ऋकारान्त घातु को ही अन्य घातुओं का यत् के परे रहने पर उनके मत से इट् का आगम हो ही जाता है, ऐसे करने से 'ययिथ' में इट् का आगम हा गया।

“स्तु ड्रु स्रु इत्यादि घातु को भी यत् के परे रहने पर भारद्वाज के मत से इट् का विकल्प होता है, ऐसा यदि कोई सङ्का कर सा ठीक नहीं है क्योंकि व्याकरण की परिभाषा है अनन्तरस्य विधिर्वा प्रतिषेधा वा अर्थात् पाश में रहने वाले मूत्रों का ही निषेध या विधान जाना है अन् अच तथा उपदेश इन दोनों मूत्रों का ही विकल्प इस नियम में हा सकता है, स्तु ड्रु इत्यादि घातुओं का विकल्प नहीं हा सकता। उसका तो यत् में निषेध हा ही जाता है। यह नियम व्याकरणों के समूह में भारद्वाज नियम में प्रसिद्ध है।

इत्तपरकरणमृकारान्तस्य निवर्त्यर्थम् तथा हि सति विध्यर्थमेत-
त्स्यात् ॐ

विभाषा मृजिदृशो ७।२।६५

प० वि०—विभाषा १।१ सृजिदृशो ६०

अर्थ—[यत्लि नेट्] मृजि दृशि इत्यन्त्यामुत्तरस्य थलो विभाषा इडागमो न भवति। (मृज् और दृग् घातु के पश्चात् यत् को विकल्प में इट् का आगम नहीं होता है)

उदा०—सस्रज्थ । सस्रजिथ । ददृष् । ददर्शिय ।

सि०—मृज् थल् । मृ अम^१ ज् थ । म्रज् थ । स्रज् स्रज् थ । स स्रज् थ । सस्रप् थ । सस्रष् ।

इत्त्यर्त्तित्व्ययतीनाम् ७।२।६६

प० वि०—इट् १।१ अत्यर्त्तित्व्ययतीनाम् ६।३

अर्थ—[थलि] अट् भक्षणे, ऋ गती, व्येम् संवरणे इत्येतेभ्यः घातुभ्य उत्तरस्य थल इडागमो भवति।

(इन घातुओं के पश्चात् यत् को इट् का आगम होता है)

उदा०—आदिथ । आरिथ । सवित्र्यथि ।

सि०—अट् थल् । अट् अट् इ थ । अ अट् इ थ । आ^२ अट् इ

थ । आदिथ^२ । ऋ थल । ऋ इट् थ । अर् इ थ । अर् अर् इथ । अ
अरिथ । आ^१ अरिथ । आरिथ । व्येञ् । व्ये । व्ये^३ थल् । व्ये इट् थ ।
व्ये व्ये इथ । व् इ^४ ए व्ये इथ । वि ए व्ये इथ । विव्यथ^५ इथ । विव्य
यिथ । सम् विव्ययिथ । सविव्ययिथ ।

वस्वेकाजादघसाम् ७।२।६७

प० धि०—वसु (अविभक्तिको निर्देश) एकाजादघसाम् ६।३

स०—एकञ् आञ् घश्च इति एकाजादघस तेषाम् ।

अर्थ—[इट्] कृतद्विर्चनानामेकाञ्चा धातूनाम् आकारान्ताना
घसेश्च वसाविडागमो भवति । (द्विवचन कर लन क पश्चात् जो एक
अच वाता धातु उसस तथा आकारात् धातु से तथा घसू क पश्चान् जो वसु
उसका इट् का आगम होता है)

उत्प०—आदिवान् । आशिवान् । पेचिवान् । शेकिवान् । आत्
ययिवान् । तस्थिवान् । घस्—जज्ञिवान् ।

सि०—अद् लिट् । अद् क्वसु^६ । अद् वस् । अद् अद् वस् ।
अ अद् वस् । आ^१ अद् वस् । आद्^२ वस् । आद् इट् वस् । आदिवस्
सु । आदिथस स । आदिवानुमस् स् । आदिवान्स्^३ स् । आदिवान्स ।
आदिवान् । आन्विसौ । आदिवास । आदिवासम् । आदिवासौ ।
आदुप^४ । आदुपा । आदिवद्भ्याम्^५ । आदिवद्भिः ॥ अश भोजने ।
अश् लिट् । अश् क्वसु^६ । अश् अश् वस् । अ अश् वस् । आ अश
वस् । आश् वस् । आश् इट् वस् । आशिवस् सु । आशिवन्स् स ।
आशिवान्स् स् । आशिवान् स् । आशिवान् । आशिवसौ । आशिवस ।
पच् लिट् । पच् वस् । पच् पच् वस । प पच् वस् । पेच्^७ वस् । पेच्
इट् वस । पेचि वस् । पेचिवस सु । पेचिवन्स् स । पेचिवान्स् स् ।
पेचिवान्स् । पेचिवान् । पेचिवसौ । पेचिवस । या या लिट् । या

१—अत आदे (७ ४ १०) २—प्रक सवर्णे दीघ (६ १ ६७) ३—न
व्यो लिटि (६ १ ४६) इत्यात्व न ४—लिदयम्यासस्योभयेषाम् (६ १
१७) ५—सम्प्रसारणाच्च (६ १ १०४) ६—क्वसुइष (३ २ ११७)
७—सातमहत् सयागस्य (६ ४ १०) ८—वसो सम्प्रसारणम् (६ ४ ३१)
९—वसुस सुध्वस्वनडुहा द (८ २ ७२) १०—अत एकहल्मध्येऽनादेशा
देर्लिटि (६ ४ १२०)

इट् वस् । आ इत्स् । य् इत्स् । या^१ यिवस् । य यित्स् । ययिवान् ।
 अद् । घल्लु । घस् लिट् । घस् क्तमु । घस इट् वस् । घस् इवस् ।
 घस्^२ इत्स् । घस् ३^३ इवस् । घक्स्^३ इवस् । घक्^४ इवस् ।
 म्^५ इवस् । ज^६ चित्स् । जचित्स् ।

ऋकादिनियमान् सिद्धे सति आरम्भाऽय नियमार्थं ण्य वेदितव्य ।
 एकाजाद्घसामेय धमाग्निडागमो भवति नान्येषाम् । एतेन नियमेन
 त्रिभिद्वान् इत्यादय सिध्यन्तिः

(कादिनियम म इन धातुओं के पश्चात् लिट् को इट् का प्रागम सिद्ध है
 फिर जो इट् का विधान किया गया, इनमें यह नियम निकलता है कि इन
 धातुओं के पश्चात् ही वन् को इट् का प्रागम नहीं होता, अथ को होता है ।
 इसमें विभिद्वान् इत्यादि सिद्ध हो जाते हैं)

विभाषा गमहनविदविशाम् ७।२।६८

प० त्रि०—विभाषा १।१ गमहनविदविशाम् ६।३

अर्थ—[इट् वसु] गम, हन, विशिना साहचर्याद् विदल्ल लाभे,
 विश प्रवेशने इत्येतेषा धातूनां वसी विभाषा इडागमो भवति ।

(गम् हन् विद विश इन धातुओं के पश्चात् वन् को विकल्प से इट् का
 प्रागम होता है)

उदा०—गम—जग्मिन् । जगन्वान् । हन—जघ्निवान् । जघ-
 न्वान् । विद—विविद्वान् । विविद्विवान् । ज्ञानार्थस्य विद् धातोस्तु
 नित्य विविद्वान् इत्येव भवति । विश—विशिशिन् । विशिश्वान् । ऋ
 दशेश्चेति व-स्तव्यम् ददृशिवान् ददृश्वान् ।

सि०—गम् लिट् । गम् वस् । गम् इट् वस् । गम्^१ इवस् । गम्
 ग्म^२ इत्स् । ग ग्म इवस् । जग्मिन्स्सु । जग्मिन्नुम्स्सु । जग्मि-
 वान्स्सु । जग्मिवान्स्सु । जग्मिन् । जग्मिवासी । जग्मिवास ।
 जग्मिवांसुम् । जग्मिवांसौ । जग्मुप । जग्मुपा । जग्मिवद्भ्याम्^३ ।

- १—द्विवंचनेऽचि (१. १ ५८) २—गमहनजवखनघसा विडत्यनडि (६.
 ४. ६८) ३—स्तरि च (८ ४. ५४) ४—शासिवसिषसीना च (८ ३. ६०)
 ५—बुहोश्चु (७ ४. ४२) ६—प्रम्यासे चर्चं (८. ४ ५३) ७—गमहनजन-
 खनघसा लोष विडत्यनडि (६ ४ ६८) ८—द्विवंचनेऽचि (१ १. ५८) लिटि
 धातोरनभ्याहस्य (६ १ ८) ९—मान्तमहन सयोगस्य (६ ४ १०)
 १०—वसुत्त सुध्वन्वन्नुहा द. (८ २ ७२)

जग्मिवद्भि । जगन्वान् । जगम्बान् । जगन्वान् । जगन्वान् । हन्-
वस् । हन् इट् वस् । हन् इवस् । हन् हन् इवस् । ह हन् इवस् । ह
हन्^१ इवस् । म्^२ हन् इवस् । ज्^३ हिनवस् । जहिनवान् ।

ऋद्धनो स्ये ७।२।७०

प० वि०—ऋद्धनो ६।२ स्ये ७।१ स०—ऋञ्च हश्चेति ऋद्धनी
तयो. ऋद्धनो ।

अर्थ—[इट्] ऋकारान्तानां धातूनां हन्तेश्च स्ये इडागमो भवति ।
(ऋकारान्त और हन् धातु के पश्चात् स्य को इट् का आगम होता है)
उदा०—कृ । करिष्यति । ढ । हरिष्यति । हन् । हनिष्यति ।

अञ्जे [सिचि] ७।२।७१

स्तु सुधुञ्भ्य परस्मैपदेषु ७।२।७२

प० वि०—स्तुसुधुञ्भ्य ५।३ परस्मैपदेषु ७।३

अर्थ—[सिचि इट्] स्तु सु धुञ् इत्येतेभ्य उत्तरस्य सिचि इडा-
गमो भवति परस्मैपदेषु परत । (स्तु पु और धुञ् धातुओं के पश्चात् सिचि
को इट् का आगम होता है परस्मैपद क परे रहने पर)

उदा०—अस्तावीन् । असावीन् । अधानीन् ।

ऋ ष्टुञ् स्तुतौ । पुञ् अभिपचे । अनयोऽनुदात्तत्वात् प्रतिषेधे
प्राप्ते धूञ्स्तु स्वरत्यादिसूत्रेण (७ ० ४४) विकल्पे प्राप्ते सती इदमा-
रभ्यते ऋ

परस्मैपदेषु इति किम् । अस्तोष्ट । असोष्ट । अयोष्ट । अधविष्ट ।

यमरमनमाता सक् च ७।२।७३

प० वि०—यमरमनमाताम् ६।३ सक् १।१ च अ० ।

स०—यमश्च रमश्च नमश्च आश्चेति यमरमनमात तेषाम् यम-
रमनमाताभ् ।

अर्थ—[सिचि इट्] परस्मैपदेषु यम उपरमे रमु क्रीडायाम् एम
ग्रहत्वे शब्दे च इत्येतेभ्य आकारान्तेभ्यश्च धातुभ्य सिचि इडागमो
भवति परस्मैपदेषु परत. तत्सन्नियोगेन एतेषां धातूनां सक् च आगम ।

(यमु रमु एम तथा आकारान्त धातुओं के पश्चात् सिचि को इट् का

१—अभ्यासाच्च (७ ३ ५५) २—पूर्वोऽभ्यास (६ १ ४) अत्र लोपोऽभ्यासस्य
(७ ४ ५८) कुहोश्च (७ ४ ६२) ३—अभ्यासे चच (८ ४. ५३)

आगम होता है परस्मैपद के परे रहने पर तथा इस इट् के सन्नियोग से इन धानुघो को सक् का आगम होता है)

उदा०—यमु—अयसीन् । अयसिष्टाम् । अयसिपु । रमु—व्यर-
सीन् । व्यरसिष्टाम् । व्यरसिपु । एम—अनमीत् । अनमिष्टाम् ।
अनसिपु । आन्—या । अयासीन् । अयासिष्टाम् । अयासिपु ।
ऋमर्षेणामनुदात्तत्वाद्दिट्प्रतिषेधे प्राप्तेऽयमारम्भ । यमादीनां हलन्त-
लक्षणा वृद्धिः प्राप्ता सा नेटोति प्रतिषिध्यते ॥

स्मिपूङ् रञ्ज्वशा सनि ७।२।७४

प० वि०—स्मिपूङ् रञ्ज्वशाम् ६।३ मनि ७।१

अर्थ—[इट्] स्मिपूङ् इपद्बहने, पूङ् पवन, ऋ गतिप्रापणयोरिति
भ्यादिः । ऋ गतादिति जुहोत्यादि. (उभयोरपि ग्रहणम्) अञ्जू
प्रचुरे, अशू व्याप्तौ इत्येतेभ्य उत्तरस्य सन इडागमो भवति ।

(इन धानुघो के परचान् सन् को इट् का आगम होता है)

उदा०—सिस्मयिपते । विपयिपते । अरिरिपति । अञ्जिजिपति ।
अशिशिपते ।

किरश्च पञ्चभ्यः ७।२।७५

प० वि०—किरः ५।१ च अ० । पञ्चभ्य ५।३

अर्थ—[सनि इट्] किरादिभ्य पञ्चभ्य उत्तरभ्य सन इडागमो
भवति । (इ विशेष इत्यादि पाच धानुघो के परचान् सन् को इट् का आगम
होता है)

उदा०—क्-चिकरिपति । ग-जिगरिपति । ऋअत्रेटो दीर्घो नेष्ट ऋ
इट्-दिदरिपते । घृङ्-दियरिपते । प्रच्छ-पिष्टच्छिपति ।

सि०—प्रच्छ् सन्^१ । पृच्छ्^२ स । पृच्छ् पृच्छ् स । पृ पृच्छ स ।
प^३ पृच्छ स । पर्^४ पृच्छ् स । प^५ पृच्छ् स । पि^६ पृच्छ् स । पि पृच्छ्
इट् म । पिष्टच्छिपति । जिगरिपति । जिगलिपति ॥

रुदादिभ्यः सार्वधातुके ७।२।७६

प० वि०—रुदादिभ्यः ५।३ सार्वधातुके ७।१

१—इदविदेत्यादिना (१ २ ८) सन कित्त्वम् २—ग्रहियेत्यादिना (१
१. १६) सम्प्रसारणम् ३—उरत् (७. ४. ६६) ४—उरण् स्पर् (१. १.
५०) ५—ह्लादि. धोप. (७. ४. ६०) ६—सन्धनः (७. ४. ७६)

अर्थ—[वलादेः इट्] ॐ उभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो वलीयान् इति रुदादिभ्य इत्येपा पञ्चमी सार्वधातुक इत्यस्याः सप्तम्या पठ्ठीत्य प्रकल्पयति ॐ

रुदिर् अश्रुविमोचने, विष्वप् शये, श्वस प्राणने अन च, जह् अदने इत्येतेभ्यो रुदादिभ्य उत्तरस्य वलादे सार्वधातुकस्य इडागमो भवति । (इन रुदादि धातुओ के पश्चात् वलादि सार्वधातुक को इट् का आगम होता है)

उदा०—रोदिति । स्वपिति । श्वसिति । प्राणिति । जहिति ।

(१) ईश से ७।२।७७

(२) ईङ्जनोर्ध्वे च ७।२।७८

! (३) [ईशीङ्जना सध्वे]

प० वि०—(१) ईश. ६।१ से ७।१ (२) ईङ्जनोः ६।२ ध्वे ७।१ च अ० । (३) ईशीङ्जनाम् ६।३ सध्वे ७।१ स०—(३) ईश्च ईट् च जन् चेति ईशीङ्जिन तेषाम् । सश्च ध्रश्चेति सध्वम् तस्मिन् स्व्ये ।

अर्थ—[सार्वधातुके इट्] ईश ऐश्वर्ये, ईङ् स्तुतौ जनो प्रादुर्भावे, जन जनने (उभयोरपि प्रहणम्) इत्येतेभ्यो धातुभ्य. सकाराटे. ध्वादेश्च सार्वधातुकस्य इडागमो भवति । (ईश् इङ् जन् इन धातुओ के पश्चात् सकारादि और ध्वादि सार्वधातुक को इट् का आगम होता है)

उदा०—ईश्-ईशिपे । ईशिष्व । ईशिध्वे । ईशिध्वम् ईङ्-ईङ्घिपे । ईङ्घिष्व । ईङ्घिध्वे । ईङ्घिध्वम् ।

लिङ् सलोपोऽनन्त्यस्य ७।२।७९

प० वि०—लिङ् ६।१ सलोप. १।१ अनन्त्यस्य ६।१ स०—सस्य लोप सलोपः । अन्ते भव अन्त्य । न अन्त्य' अनन्त्य. तस्य अनन्त्यस्य ।

अर्थ—[सार्वधातुके, सामर्थ्यात् पठ्या विपरिणम्यते] लिङ्-लकारसम्बन्धिनोऽनन्त्यस्य सार्वधातुकस्य सकारस्य लोपो भवति । (लिङ् लकार सम्बन्धी जो अन्त में न हाने वाला सार्वधातुक लकार होता है, उसका लोप हो)

उदा०—कुर्यात् । कुर्याताम् । कुर्युः । कुर्वीत । कुर्वीयाताम् । कुर्वी-
रन् । अनन्यस्य इति किम् । कुर्युः । कुर्याः । सार्वधातुक इत्येव ।
क्रियास्ताम् । क्रियासुः । कृषीष्ट । कृषीयास्ताम् । कृषीरन् ।

ॐसार्वधातुके लिङि सकारद्वयस्यापि निवृत्तिः मुटः श्रवणं तु
आशीर्लिङि । स्फुटतरं तु तत्राप्यात्मनेपदेः

अतो येय ७।२।८०

प० वि०—अतः १।१ या [सुपां मुलुगिति पठ्याः लुक्]
इयः १।१

अर्थ—[सार्वधातुके, अत इति पञ्चमीसामर्थ्यादिह पठ्या विपरि-
णम्यते] अकारान्ताद्गद्गदुत्तरस्य या इत्येतस्य सार्वधातुकस्य इय् इत्ययमा-
देशो भवति । (अकारान्त अङ्ग के पश्चात् या सार्वधातुक के स्थान में
इय् प्रादेश होता है)

उदा०—पचेत् । पचेताम् । पचेयुः ।

सि०—लिङ् विधायस्सूत्रे साधनं द्रष्टव्यम् ।

आतो डितः ७।२।८१

प० वि०—आतः ६।१ डितः (अप्रयवपठ्ठी)

अर्थ—[अतः इयः सार्वधातुकस्य] अकारान्ताद्गद्गदुत्तरस्य डितव-
यस्य आकारस्य सार्वधातुकस्य इय् इत्ययमादेशो भवति ।

(अकारान्त अङ्ग के पश्चात् डित् सार्वधातुक के अयव आकार के
स्थान में इय् यह प्रादेश होता है)

उदा०—पचेते । पचेथे । पचेताम् । पचेथाम् ।

सि०—पच् लट् । पच् आताम् । पच् शप् आताम् । पच् आताम् ।
पच् इयाताम् । पच्यंताम् । पचेताम् । एवं सर्वत्र ॥

आने मुक् ७।२।८२

प० वि०—आने ७।१ मुक् १।१

अर्थ—[अतः] ॐअतो येयः इति पूर्वसूत्रादनुवृत्तं पञ्चम्यन्तमपि
अत इति पदं पठ्या विपरिणम्यते, आने इति सप्तमीबलात् । न च
अत इति पञ्चमीबलाद् आने इति सप्तम्यन्तं पदं पठ्या विपरिणम्य-
ताम् इति शङ्क्यम्, पञ्चम्याः पूर्वसूत्रे चरितार्थत्वात् सप्तम्यारच

अचरितार्थत्वात् ॥ अकारान्तस्य अङ्गस्य मुगागमो भवति आने परत
(प्रकारान्त अङ्ग को मुक् का आगम होता है, आन के परे रहन पर)
उदा०—पचमान । यजमान ।

ईदास ७।२।८३

प० वि०—ईत् १।१ आस ५।१

अर्थ—[आने] ॥ आने इति पद पठ्या विपरिणम्यते आस इति
पञ्चमीप्रलात् ॥ आस उत्तरस्य आनस्य ईकारादेशो भवति ।

उदा०—आसीनो यजते ।

(आस् के पश्चात् आन वा ईकारादेश होता है)

सि०—आस् लट् । आस् शानच् । आम् आन । आस् शप्^१
आन । आम्^२ आन । आस् ई^३ न । आसीन सु । आसीन स् ।
आमीन स् यजते । आसीन रु यजते । आसीन र् यजते । आसीन
उ यजते । आसीनो यजते ।

अष्टन आ विभक्तो ७।२।८४

प० वि०—अष्टन ६।१ आ १।१ विभक्ती ७।१ ॥ अष्टन इत्यत्र
सोत्रादल्लोपऽन इति न ॥

अथ—[रायो हलि इत्यत, हलि इत्यपहृष्यते] अष्टनो हलादी विभक्ते^१
परत आकारादेशो भवति । (अष्टन शब्द को आकार आदेश हो जाता है
हलादि विभक्ति क परे रहन पर)

उदा०—अष्टाभिः । अष्टाभ्यः ।

सि०—अष्टन् भिस् । अष्ट आ^२ भिस् । अष्टा^३ भिस् । अष्टाभिः ।
॥ अथ अष्टानाम तदुच्यते—अष्टन् आम् । अष्टन् नुट्^४ आम् । अष्टन
नाम् । अष्ट आ नाम् । अष्टानाम् ॥

रायो हलि ७।२।८५

प० वि० राय ६।१ हलि ७।१

१—तिङ्गित् सावधानुक्त्वं (३. ४ ११३) सावधानुक्ते यक् (३. १. ६७)
वर्त्तन्ति शप् (३. १. ६८) २—अदिप्रभृतिभ्य षष् (२. ४. ७२) ३—ईदाम
(७. २. ८३) आदे परस्य (१. १. ५३) ४—मलोऽन्यस्य (१. १. ५१)
५—अव सवर्णे दीर्घ (६. १. १७) ६—प्लान्ता पट् (१. १. २३) पटप्लु-
म्यन्श्च (७. १. ५५) आद्यन्तो ढक्त्वि (१. १. ४५) ७—अव सवर्णे दीर्घ
(६. १. ६७)

अर्थ—[आ विभक्तौ] रै इत्येतस्य हलादी विभक्तौ परत आकारादेशो भवति । (रै को आकार आदेश होता है हलादि विभक्ति के परे रहन पर)

उदा०—रा । राभ्याम् । राभि । राम्य । रासु । हलि इति किम् । रायौ । राय । राया । राये । राय । राया । रायो । रायाम् । रायि । विभक्ताविति किम् । रैत्वम् । रैता ।

युष्मदस्मदोरनादेशे ७।२।८६

प० वि०—युष्मदस्मदो ६।२ अनादेशे ७।१ स०—युष्मच्च अस्मच्चेति युष्मदस्मदौ तयो युष्मदस्मदो' । न आदेश अनादेश तस्मिन् अनादेशे ।

अर्थ—[आ विभक्तौ] युष्मदस्मदोरनादेशे विभक्तौ परत अनादेशो भवति । (युष्मद् और अस्मद् अङ्ग का, जिसका आदेश नहीं हुआ है ऐसी विभक्ति क परे रहन पर, आकार आदेश हाना है)

उदा०—युष्माभि । अस्माभि । युष्मासु । अस्मासु । अनादेश इति किम्—युष्मन् । अस्मन् ।

सि०—युष्मद् भिस् । युष्म आ भिस् । युष्माभि ।

द्वितीयाया च ७।२।८७

प० वि०—द्वितीयायाम् ७।१ च अ० ।

अर्थ—[युष्मदस्मदो आ विभक्तौ] युष्मदस्मदोरानारादेशो भवति द्वितीयाया विभक्तौ परत । (युष्मद् और अस्मद् अङ्ग को आकार आदेश होता है द्वितीया विभक्ति के परे रहन पर)

उदा०—त्वाम् । माम् । युवाम् । आवाम् । युष्मान् । अस्मान् ।
ॐ आदेशार्थं वचनम् ॐ

सि०—मावन तु एतेषा सर्वेषा पदानां सप्तमाध्यायस्य प्रथमे पाठे विस्तृतरूपेण दत्तम् अत एव तत्रैव द्रष्टव्य तस्य च नियन्त्रणमपि कर्तव्यम् ।

प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् ७।२।८८

प० वि०—प्रथमाया ६।१ च अ० । द्विवचने ७।१ भाषायाम् ७।१

अर्थ—[युष्मदस्मदो आ] प्रथमायाश्च द्विवचने विभक्तौ परतो युष्मदस्मदोरानारादेशो भवति । (प्रथमा की द्विवचन विभक्ति क परे रहने

पर युष्मद् भौर भस्मद् भङ्ग को भ्रकार भ्रादेश होता है भाषा में)

उदा०—युवाम् । आवाम् ।

योऽन्ति ७।२।८६

प० वि०—य. १।१ अचि ७।१

अर्थ—[युष्मद्भस्मदोः अनादेशे विभक्तौ] अजादावनादेशे विभक्तौ परतो युष्मद्भस्मदोर्यकारादेशो भवति ।

(भ्रादेश जिस का नहीं हुआ है ऐसी भ्रजादि विभक्ति के परे रहने पर युष्मद् भौर भस्मद् भङ्ग को यकार भ्रादेश होता है)

उदा०—त्वया । मया । त्वयि । मयि । युवयोः । आवयोः ।

सि०—युष्मद् टा । त्व अद् टा । त्व अय् आ । त्वया । एवं सर्वं सूत्रपूर्वकं साधनीयम् ।

शेषे लोप ७।२।९०

प० वि०—शेषे ७।१ लोप. १।१

अर्थ—[विभक्तौ युष्मद्भस्मदोः] शेषे विभक्तौ युष्मद्भस्मदोलोपो भवति । कश्च शेष. यत्र आकारो यकाररच न विहितः ।

(शेष विभक्ति के परे रहने पर युष्मद् भौर भस्मद् का लोप होता है) शेष का अर्थ है जहाँ यकार और भ्रकार का विधान नहीं किया गया है । पञ्चमो चतुर्थी पष्ठी और प्रथमा के एकवचन और बहुवचन में लोप का विधान होता है)

उदा०—त्वत् । मत् । युष्मत् । भस्मत् । तुभ्यम् । मङ्गम् । युष्म-
ग्यम् । भस्माभ्यम् । तत्र । मम । युष्माङ्म् । भस्माङ्म् । त्वम् । अहम् ।
यूयम् । ययम् ।

सि०—साधने त्रय पक्षा. सन्ति—(१) स्वामिनो दयानन्दा. शेषे लोप इति टिलोपम् इच्छन्ति । (२) सिद्धान्तकीमुदीकारास्तु शेषे लोप इति अलोन्यस्यैव लोपम् इच्छन्ति । तथा च सति अतो गुणे, अमि पूर्वः इति सूत्रद्वयं प्रयुञ्जन्ति । (३) नव्यास्तु त्वाही सौ इत्यादिषु मपर्यान्तानामादेशानां सर्वत्रैव अकार उच्चारणार्थं इति मन्यन्ते तस्माद् अतो गुणे इति पररूपप्रयासो व्यर्थ इत्याहुः । तथैव क्रमेण साधनं प्रदर्शयते—(१) युष्मद् सु । त्व अद् सु । एत् अम् । (२) युष्मद् सु । एत् अद् सु । त्व अम् । त्व अम् । त्वम् । (३) युष्मद् सु । त्व् अद् अम् । त्वम् । अस्मिन् पक्षे टिलापो वा स्यात् अन्यलोपो वा स्यात् नहि कश्चिद्

विशेष भ्यसोऽभ्यम् इत्यत्र तु टिलोपपत्ते अभ्यमादेश कर्त्तव्यः अन्यथा युष्मभ्यम् इत्येव रूप जायते ।

मपर्यन्तस्य ७।२।६१

प० त्रि०—मपर्यन्तस्य ६।१

अर्थ—इतोऽप्रे वक्ष्यमाणा आदेशा मपर्यन्तस्यैव भवन्ति इत्यधिकारो वेदितव्यः । (यहा से आगे मकार पयत का ही आदेश हाते है, इस बात का अधिकार समझना चाहिए)

युवावौ द्विवचने ७।२।६२

प० वि०—युवावौ १।२ द्विवचने ७।१

अर्थ—[युष्मदस्मदो विभक्तौ मपर्यन्तस्य] द्विवचने विभक्तौ परतो युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य स्थाने युव आत्र इत्येतावादेशो भवत)

(द्विवचन विभक्ति के पर रहने पर युष्मद् और अस्मद् अङ्ग के स्थान में युव (युव्) आत्र (आव्) मपयत आदेश हाते है)

उदा०—युवाम् । आवाम् । युवाभ्याम् । आत्राभ्याम् । यवयो । आवयो ।

यूयवयौ जसि ७।२।६३

प० त्रि०—यूयवयौ १।२ जसि ७।१

अर्थ—[युष्मदस्मदो मपर्यन्तस्य] युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य जसि परतो यूय वय इत्येतावादेशो भवत । (युष्मद् और अस्मद् अङ्ग क मपयत यूय और वय आदेश हाते है जस क परे रहने पर)

उदा०—यूयम् । वयम् ।

त्वाही सौ ७।२।६४

प० वि०—त्वाहौ १।२ सौ ७।१

अर्थ—[युष्मदस्मदो मपर्यन्तस्य] युष्मदस्मदो मपर्यन्तस्य त्व अह् अत्येतावादेशो भवत सौ परत । (युष्मद् और अस्मद् क स्थान में मपयत त्व और अह् आदेश हाते है सु क परे रहने पर)

उदा०—त्वम् । अहम् ।

तुभ्यमहौ डयि ७।२।६५

प० त्रि०—तुभ्यमहौ १।२ डयि ७।१

अर्थ—[युष्मदस्मदो मपर्यन्तस्य] युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य तुभ्य महा

इत्येतावादेशौ भवतः ङसि परतः । (युष्मद् भ्रोर अस्मद् के स्थान में मपर्यन्त तुभ्य भ्रोर मह्य आदेश होते हैं ङे के परे रहने पर)

उदा०—तुभ्यम् । मह्यम् ।

तवममौ ङसि ७।२।१६

प० वि०—तवममौ १।२ ङसि ७।१

अर्थ—[युष्मदस्मदोः मपर्यन्तस्य] युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य तव मम इत्येतावादेशौ भवतः ङसि परतः ।

(युष्मद् भ्रोर अस्मद् के स्थान में मपर्यन्त तव भ्रोर मम आदेश होते हैं ङस् के परे रहने पर)

उदा०—तव । मम ।

त्वमावेकवचने ७।२।१७

प० वि०—त्वमौ १।२ एकवचने ७।१

अर्थ—[युष्मदस्मदोः मपर्यन्तस्य] युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य त्व म इत्येतावादेशौ भवतः एकवचने विभक्तौ परतः । (युष्मद् भ्रोर अस्मद् के मपर्यन्त स्थान में त्व भ्रोर म क्रमश आदेश होते हैं, एकवचन विभक्ति के परे रहने पर)

उदा०—त्वाम् । माम् । त्वया । मया । त्वत् । मत् । त्वयि । मयि ।

प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ७।२।१८

प० वि०—प्रत्ययोत्तरपदयोः ७।२ च अ० । स०— उत्तरं च तत् पदं चेति उत्तरपदम् । प्रत्ययश्च उत्तरपदं चेति प्रत्ययोत्तरपदे तयोः प्रत्ययोत्तरपदयोः ।

अर्थ—[युष्मदस्मदोः मपर्यन्तस्य एकवचने] प्रत्यये उत्तरपदे च परत एकार्थयोर्युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य त्व म इत्येतावादेशौ भवतः । (प्रत्यय भ्रोर उत्तरपद के परे रहने पर एक अर्थ वाले युष्मद् भ्रोर अस्मद् के स्थान में त्व भ्रोर म आदेश होते हैं)

उदा०—तवायं त्वदीयः । मदीयः । अतिशयेन त्वम् । त्वत्तरः । मत्तरः । उत्तरपदे । तव पुत्रस्यत्पुत्रः । मत्पुत्रः ।

सि०—युष्मद् छ । त्व अद् छ । तद् ईय । त्वदीयः । त्वत्पुत्रः । युष्मद् ङम् पुत्र सु । युष्मद् पुत्र । त्व अद् पुत्र । त्वद् पुत्र । त्वत्पुत्र सु । त्वत्पुत्रः ॥

त्रिचतुरो स्त्रिया तिसृचतसृ ७।२।६६

प० वि०—त्रिचतुरो ६।२ स्त्रियाम् ७।१ तिसृचतसृ (अभिभक्ति०)

अर्थ—त्रि चतुर इत्येतयो स्त्रिया तिसृचतसृ इत्येतात्रादेशो भवतो विभक्तौ परत । (त्रि और चतुर क स्थान में तिसृ और चतसृ प्रादस होत हैं विभक्ति क पर रहन पर)

उदा०—तिस्र । तिस्र । तिसृभि । तिसृभ्य । तिसृभ्य । तिसृणाम् । तिसृषु । चतस्र । चतस्र । चतसृभि । चतसृभ्य । चतसृभ्य । चतसृणाम् । चतसृषु ।

अचि र ऋत ७।२।१००

प० वि०—अचि ७।१ र १।१ ऋत ६।१

अर्थ—[तिमृचतसृ विभक्तौ] तिमृचतसृ इत्येतयोऽर्द्धत म्थाने रेफादेशो भवति अजादौ विभक्तौ परत । (तिमृ और चतसृ क ऋकार के स्थान में रफ प्रादस हाता है अजादि विभक्ति क पर रहन पर)

उदा०—तिस्र तिष्ठन्ति । तिस्र पश्य । चतस्र तिष्ठन्ति । चतस्र पश्य ।

जराया जरमन्यतस्याम् ७।२।१०१

प० वि०—जराया ६।१ जरम् १।१ अन्यतरस्याम् अ० ।

अर्थ—[अचि विभक्तौ] जरा इयनस्य जरम् इययमादेशो भवति अन्यतरस्याम् अजादौ विभक्तौ परत । (जरा क स्थान में अजादि विभक्ति क पर रहन पर जरम यह प्रादस हाता है विकल्प करव)

उदा०—जरा । जरे । जरा । जराम् । जर । जरा । जरया । जराभ्याम् । जरामि । जरयै । जराभ्याम् । जराभ्य । जराया । जराभ्याम् । जराभ्य । जराया । जरयो । जराणाम् । जरायाम् । जरयो । जरामु । हे जरे । हे जरे । हे जरा । जरसो । जरस । जरसम् । जरसो । जरस । जरमा । जरमे । जरस । जरस । जरसो । जरसाम् । जरसि । जरसो । हे जरसो । हे जरस ।

त्यदादीनाम् ७।२।१०२

प० वि०—त्यदादीनाम् ६।३ अ १।१ स०—त्यद् आन्वियेपा ते त्यदादय तेषाम् त्यदादीनाम् ।

अर्थ—[विभक्तौ] त्यदादीनामप्रादेशो भवति विभक्तौ परत ।

(त्यद् इत्यादि को प्रकार आदेश होता है विभक्ति के परे रहन पर)

उदा०—त्यद् । स्य । त्री । त्ये । तद् । स । ती । ते ।

किम् क ७।२।१०३

प० वि०—किम् ६।१ क १।१

अर्थ—[विभक्तौ] किम् इत्येतस्य स्थाने क इत्ययमादेशो भवति विभक्तौ परत । (किम् के स्थान में क आदेश होता है विभक्ति के पर रहने पर)

उदा०—क । की । ने ।

कु तिहो ७।२।१०४

प० वि०—कु १।१ तिहो ७।०

अर्थ—[किम् विभक्तौ] तकारादौ हकारादौ च विभक्तौ परत किम् कु इत्ययमादेशो भवति । (तकारादि और हकारादि विभक्ति के परे रहन पर किम् के स्थान में कु यह आदेश होता है)

उदा०—कुत । कुत्र । कुह । क्षितिहोरितीमार उच्चारणार्थं क्ष

क्वाति ७।२।१०५

प० वि०—क्व । अविभ । अति ७।१

अर्थ—[किम् विभक्तौ] अन् इत्यस्या विभक्तौ परत किम् क्व इत्ययमादेशो भवति । (अन् विभक्ति के पर रहन पर किम् क स्थान में क्व आदेश होता है)

उदा०—क्व गमिष्यसि ।

सि०—साधन तु तद्धितप्रकरणे द्रष्टव्यम् ॥

तदो स सावनन्ययो ७।२।१०६

प० वि०—तदो ६।२ स १।१ सो ७।१ अनन्ययो ६।० स०—
तच्च दृचेति तदो तयो तदो ।

अर्थ—[त्यदादीनाम्] त्यदादीनाम् अनन्ययोस्तदो स्थाने सकारादेशो भवति सो परत । (त्यदादियों के अनन्त्य=जा अन्त में न हों उन तकार और दकार के स्थान में सकार आदेश होता है सु क परे रहने पर)

उदा०—तनारस्य—त्यद् । स्य । तद् । स । एतद् । ण्य । अदस् असौ ।

अदस औ मुलोपञ्च ७।२।१०७

प० वि०—अदस ङ।१ औ (अभिभ०) मुलोप १।१ च अ० ।

अर्थ—[सौ] अदस सौ परत औनारादेशो भवति सोरच लोपो भवति । (अदम् शब्द क अतिम सकार क स्थान में ओकार प्रादस होता है, मु क परे रहन पर ओर मु का ताप होता है)

उदा०—असौ ।

सि०—अदम् । अदस् मु । अद औ । अद औ । अस औ । असौ ।

इदमो म ७।२।१०८

प० वि०—इदम ङ।१ म १।१

अर्थ—[सौ] इदम सौ परतो मकारान्तादेशो भवति ।

(इदम शब्द का मकारान्त प्रादस होता है मु क पर रहन पर)

इमकारस्य मकाररचन त्यदाद्रीनाम इति अत्रप्राथम्यार्थमृष्ट

उदा०—इयम् । अयम् ।

ददच ७।२।१०९

प० वि०—द ङ।१ च अ० ।

अर्थ—[इदम विभक्ती म] इदमा दकारस्य स्वाने मकारान्तादेशो भवति विभक्ती परत । (इदम क दकार क स्थान में मकार प्रादस होता है विभक्ति के परे रहन पर)

उदा०—डमो । डमे । डमम् । डमो । डमान ।

य मौ ७।२।११०

प० वि०—य १।१ मौ ७।१

अर्थ—[इदम द] इदमा दकारस्य स्वाने यकारान्तादेशो भवति मौ परत । (इदम् क दकार क स्थान में यकार प्रादस होता है मु क पर रहन पर)

उदा०—इयम्

इदोऽय् पु मि ७।२।१११

प० वि०—इद ङ।१ अय १।१ पु मि ७।१

अर्थ—[इदम मौ] इदम इदकारस्य पु मि मौ परतोऽय् इत्ययनादेशो भवति । (इदम् क इद् भाग का अय प्रादस होता है मु क पर रहन पर पुस्विङ्ग में)

अर्थ—[वृद्धि ङिति] उपधाया. अकारस्य स्थाने वृद्धिर्भवति ङिति ङिति च प्रत्यये परत । (अित् और ङित् प्रत्यय क पर रहन पर उपधा के अकार क स्थान में वृद्धि हाती है)

उदा०—ङिति—नाम् । त्याग. । ङिति—पाचम् । पाठक ।

सि०—साधन तु एतुल्लृचो इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

तद्धितेष्वचामादे ७।२।११७

प० वि०—तद्धितेषु ७।३ अचाम् ६।३ आदे ६।१

अर्थ—[अच. ङिति वृद्धि] तद्धिते ङिति ङिति च प्रत्यये परतो-ऽङ्गस्याचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्भवति । (तद्धित ङित् ङित् प्रत्यय क पर रहने पर अङ्ग क अच के आदि अच् के स्थान में वृद्धि होनी है)

उदा०—ङिति—गाग्य । वात्म्यः । ङिति—श्रीपगमः ।

किति च ७।२।१८

प० वि०—किति ७।१ च अ० ।

अर्थ—[तद्धितेषु अचामादेरच वृद्धिः] किति च तद्धिते परनाऽङ्ग-भ्याचामादेरच. स्थाने वृद्धिर्भवति । (तद्धित ङित् प्रत्यय क पर रहने पर अचो के आदि अच् के स्थान में वृद्धि होनी है)

उदा०—नाडायन । चारायणः

सि०—साधनं तु नडादिभ्यो फक् इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया सप्तमाध्याये द्वितीयः पाद

न द्वाभ्या पदान्ताभ्या पूर्वी तु ताभ्यामैच् ७।३।३

प० वि०—न अ० । द्वाभ्याम् १।० पदान्ताभ्याम् १।२ पूर्वी १।० तु अ० । ताभ्याम् १।० ऐच् १।१

अर्थ—[अचोऽङ्गिति वृद्धिः तद्धितेष्वचामादे किति च] पदान्ताभ्याम् अकारवकाराभ्यामुत्तरस्य न वृद्धि किन्तु ताभ्यां पूर्वी क्रमाद-चावागमो भवति तद्धिते ङिति ङिति च परत. । (पदान्त अकार अकार के पूर्व क्रमात्, एच् प्रागम होत है ङित् एत् किन्तु तद्धित प्रत्यय के पर रहने पर)

उदा०—यैवाहरणः । मौवरय ।

सि०—ध्याकरणमधीते वेद वा इति विभक्ते—वि आहरण=

व्याकरण अम् अण्^१ । व्योकरण अ । व् ऐ याकरण अ । वै याकरण
अ । वैयाकरण सु । वैयाकरणः । शोभनोऽश्वः स्वश्वः इति विप्रहे-
स्वश्वस्य अपत्यम् इति विग्रहः । स् औ श्व अ^२ । सौश्वः ।

द्वारादीना च ७।३।४

अर्थ—द्वार इत्येवमादीनां खाभ्याम् उत्तरस्याचामादेरच. स्थाने
वृद्धिर्न भवति किन्तु पूर्वो^१ तु ताभ्यामैजागमो भवत. तद्धिते बिति णिति
मिति च प्रत्यये परत । (द्वार इत्यादि के यकार वकार के पश्चात् अचो के
आदि अच् के स्थान म वृद्धि नहीं होती है किन्तु उसके पूर्व ऐच का आगम
होता है)

उदा०—द्वारपालस्पयेद द्वीवारपालम्^३ । शौचस्तिक.^४ ।

हनस्तोऽचिण्णलो ७।३।३२

प० वि०—हन ६।१ तः १।१ अचिण्णलोः ७।२

अर्थ—[ञिणति] हनस्तकारादेशो भवति बिति णिति च प्रत्यये
परत चिण्णलो वर्जयित्वा । (हन् को तकारादेश होता है बित् णित् प्रत्यय
के परे रहने पर चिण्ण और लो को छोड़कर)

उदा०—घातयति । घातकः । बित्—घातो वर्त्तते ।

सि०—हन् णिच्^५ । हन् इ । हान्^६ इ । हात् इ । घात्^७ इ ।
याति शप् तिप् । घातयति । हन् एबुल् । घातक । हन् घन् । घातः ।
अचिण्णलोरिति किम्—अघानि^८ । जघान^९ ।

आतो युक्चिण्णकृतो. ७।३।३३

प० वि०—आतः ६।१ युक् १।१ चिण्णकृतोः ७।२

अर्थ—[ञिणति] आकारान्तस्य अङ्गस्य चिण्ण कृति ञिणति च
प्रत्यये परतः युगागमो भवति । (आकारान्त अङ्ग को युक् का आगम होता
है चिण्ण तथा बित् णित् कृत प्रत्यय के परे रहने पर)

१—तदधीते तद्वेद (४. २. ५६) २—शिवादिभ्योऽण् (४. १. ११२)
३—तत्त्वेदम् (४. ३. १२०) ४—इवस्तुद् च (४. ३. १५) ५—हेतुमति
च (३. १. २६) ६—घत उपधायाः (७. २. ११६) ७—हो हृतेऽण्णनेषु
(७. ३. ५४) ८—चिण्ण भाववर्मणोः (३. १. ६६) भाववर्मणो. (१. ३.
१३) ९—चिणो युक् (६. ४. १०४)

उदा०—चिण—अदायि भवता । अधायि भवता । कृति विति—
दाय । धायः । कृति णिति—दायकः । धायकः ।

नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्थानाचमे ७।३।३४

प० वि०—न अ० । उदात्तोपदेशस्य ६।१ मान्तस्य ६।१ अनाचमे.
६।१ स०—उदात्तः उपदेशे य स उदात्तोपदेशः । तस्य । मोऽन्ते यस्य स
मान्त तस्य मान्तस्य क्मकारोऽन्ते यम्य इति मन्त तम्य मन्तस्य इति
पाठः साधुतरः प्रतिभाति । यतः अशामि इत्यादीनि उदाहरणानि मका-
रानानि सन्ति न तु मान्ताति । अप्र अकार उच्चारणार्थोऽपि न मन्तव्यो
भवतीति 'त्रेचिदाहुः', तच्चिन्त्यम अनो ल्रान्तम्य इति निर्देशान् आचार्यस्य
हि एतादृशी शैली वर्तते अत मकारे अकार उच्चारणार्थ एव ।

न आचमि. अनाचमिः तस्य अनाचमे ।

अर्थ—[चिणकृतोः ङिति] उदात्तोपदेशस्य मकारान्तस्य अङ्गस्य
आचमिवर्जितस्य चिण कृति च ङिति यदुक्तं तत्र भवति ।

(उपदेश में उदात्त पदा गया है ऐसे मकारान्त धातुओं को जा भी कुछ
कहा गया है वह चिण घोर जिन् णिन् इन् के परे रहने पर नहीं हाना आचम्
धातु को छोड़कर)

उदा०—अशामि । अतमि । अदमि । कृति—शमकः । दमकः ।
तमकः । शमः । तमः । दमः । क् अत उपधाया इति वृद्धिर्न भवति क्
अनाचमेरिति किम्—आचामकः ।

जनिवध्योश्च ७।३।३५

प० वि०—जनिवध्यो ६।० च अ० ।

अर्थ—[चिणलोः ङिति यदुक्तं तत्र भवति ।

(जन् घोर वप् धातु को चिण तथा जिन् णिन् कृत् के परे रहने पर जो
कुछ कहा गया है सा नहीं होगा)

उदा०—अर्पयति । ह्येपयति । ज्ञेपयति । रंपयति । वनोपयति ।
दमापयति । दारयति । वापयति ।

क् वनि. प्रतृन्त्यन्तरमस्ति व्यञ्जनान्तः, तस्याय प्रतिषेधः न षधः
इति आदेशस्य तस्य तु अदन्तरमादेय वृद्धेरभावः क्

उदा०—अजनि । जनकः । प्रजन । अयधि । वयकः । वधः ।

शो प्रागमप्रकरणम्

अत्ति ह्रीव्लीरीकन्यूयीक्ष्माय्याता पुग्णी ७।३।३६

प० वि०—अत्तिह्री लीरीकन्यूयीक्ष्माय्याताम् ६।३ युक् १।१ शो ७।१
स०—अर्तिश्च ह्रीश्च व्लीश्च रीश्च क्रूयीश्च क्ष्मायीश्च आश्चेति
अत्ति-क्ष्मायात तेषाम् ।

अर्थ—ऋ गतिप्रापणयो, ऋ गतौ (इति द्वयोरपि ग्रहणम्) ह्री
लञ्जायाम्, व्ली वरणे, री गतिशोपणयो, रीड् अरणे (इति द्वयोरपि
ग्रहणम्) कन्यूयी शब्दे, क्ष्मायी निधनने इत्येतेषामङ्गानाम् आकारान्त्वानां
च पुगागमो भवति शो परतः ।

(इन धातुधा का णिच क परे रहन पर पुक का प्रागम होता है)

शाच्छासाह्वाच्यावेपा युक् ७।३।३७

प० वि०—शाच्छासाहायावेपा ६।३ युक् १।१

अर्थ—[शो] शो तन्करणे, छो छेदने, पोऽन्तकर्मणि, हेच
स्पर्द्धादा, व्यञ् सवरणे, वेञ् तन्तुसन्ताने, पा पाने, पै ओवै शोपण
(इति द्वयोरपि ग्रहणम्) इत्येतेषामङ्गानां युगागमो भवति शो परतः ।
(इन धातुधा का युक् का प्रागम हाना है णिच क पर रहन पर)

उदा०—निशाययति । अत्रच्छाययति । अयसाययति । ह्याययति ।
सचाययति । वाययति । पाययति ।

सि०—शो । शो णिच् । शा^१ युक् इ । शायि । शायि लट् । शायि
शप् तिप् । शाययति । ण्व सर्वत्र ।

भियो हतुभये पुक् ७।३।४०

प० वि०—भिय ६।१ हेतुभये ७।१ पुक् १।१

स०—हेतु स्वतन्त्रम्य कर्तुं प्रयोजक । विभेत्परमादिति भयम् ।
हेतोर्भय हेतुभयम् तस्मिन् हेतुभय ।

अर्थ—[शो] भी इत्येतस्य हतुभयेऽर्थं पुगागमो भवति शो परतः ।
(स्वतन्त्रकर्ता वा प्रयोजक हतु उससे भय इसके अर्थ में भी वो पुक् का
प्रागम हाना है)

उदा०—मुएडो भीपयते ।

स्फायो व ७।३।४१

प० वि०—स्फाय ६।१ व. १।१

अर्थ—[खौ] स्फाय् इत्येतस्य अङ्गस्य वकारादेशो भवति खौ परत ।
(स्फाय् का वकार प्रादेश हावा है खिच् क पर रहन पर)

उदा०—स्फाययति ।

शद्वेरगती त ७।३।४२

प० वि०—शद्वे ६।१ अगती ७।१ त १।१

अर्थ—[खौ] शद्वेरङ्गस्य अगती अर्थे वर्तमानस्य तकारादेशो भवति खौ परत । (अगति अर्थ में वर्तमान शब्द धातु को तकार प्रादेश होता है खिच् क पर रहन पर)

उदा०—पुष्पाणि शातयति । फलानि शातयति ।

रुह् पाञ्च्यतरस्याम् ७।३।४३

प० वि०—रुह् ६।१ प १।१ अन्यतरस्याम् अ० ।

अर्थ—[खौ] रुह् इत्येतस्य पकारादेशो भवति अच्यतरस्याम् खौ परत । (रुह् का विकल्प स पकार प्रादेश होता है खिच् न पर रहन पर)

उदा०—व्रीहीन् रोषयति । व्रीहीन् रोहयति ।

प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात् इदाप्यमुप ७।३।४४

प० वि०—प्रत्ययस्थान् १।१ कात् १।१ पूर्वस्य ६।१ अत ६।१ इन् १।१

आपि ७।१ अमुप १।१

अर्थ—प्रत्ययस्थान् फकारान् पूर्वस्य अकारस्य स्थाने इकारादेशो भवति आपि परत न चैताप्सुप परा न भवति ।

(प्रत्यय में मित्रत वकार क पूर्व अकार क स्थान में इकार प्रादेश होता है आप् के परे रहन पर, यदि वह आप् मुर क पदवान् नग हा ता)

उदा०—जटिलिना । मुलिडना । कारिका । हारिका ।

सि०—जटिल क । जटिलिन्ना । कारक टाप् । कारिका ।

ठम्येकः ७।३।४५

प० वि०—ठस्य ६।१ इक १।१

अर्थ—[अङ्गस्य इति सम्बन्धे पठ्ठी] अङ्गस्य सम्बन्धिनपठ्ठा-
रस्य स्थाने इक इत्ययमादेशो भवति ।

(अङ्ग का सम्बन्धी का वकार ठमके स्थान में इक प्रादेश हाता है)

उदा०—ताक्षिणम् ।

सि०—लाच्चा ठक्^१ । लाच्चा ठ । लाच्चा इक्^२ । लाच्^३ इक् ।
लाच्चिक् । लाच्चिक् मु । लाच्चिक् अम्^४ । लाच्चिक् पत्त्रम् ।

इसुसुक्तान्तात्क ७।३।५१

प० वि०—इसुसुक्तान्तात् ५।१ क १।१ स०—इस् च उस् च उक्
च तश्चेति इसुसुक्तम् । इसुसुक्तम् अन्ते यत्येति इसुसुक्तान्त तस्मात् ।

अर्थ—[ठय] इसन्तात् उसन्तात् उगन्तात् तभारान्ताच्च अङ्गाद्
उत्तरस्य ठस्य स्थाने क इत्ययमादेशो भवति । (इसन्त, उसन्त, उगत प्रौर
तकारान्त अङ्ग के पश्चात् ठ क स्थान में क आदेश होता है)

उदा०—इस्—सर्पिष्क । उस्—वानुष्क । याजुष्क । उक्—
नैपादकपुं क । शारजम्बुक । मावृन्म् । पैवृक्म् । तान्तात्—
श्रीदशिवत्क ।

सि०—सर्पिस् ठक्^१ । सर्पिस् ठ । सर्पिस् क^२ । सर्पिर्^३ क ।
सर्पिर्^४ क । सर्पि^५ क । सर्पिष्क^६ मु । सापिष्क । धनुस् ठक्^७ ।
धानुस् क । धानुर्^८ क । धानु क । धानुष्क^९ सु । धानुष्क । यजुम्
ठक्^{१०} । याजुम् क^{११} । याजुर्^{१२} क । याजु क । याजुष्क मु । याजुष्क ।
निपादकपूर्^{१३} । शारजम्बु^{१४} । निपादकपूर्वा^{१५} शारजम्बुवा जात इति विग्रह
निपादकपूर्^{१६} ठक्^{१७} । निपादकपूर्^{१८} क । निपादकपूर्के^{१९} । नैपादकपूर्के^{२०} ।
मातुरागत पितुरागतमिति विग्रह । मावृ^{२१} ठक्^{२२} । मावृ क । मावृन् ।
पैवृक् । उदशिवन् ठक्^{२३} । उदशिवन् क । श्रीदशिवत्क मु । श्रीद-
शिवत्क ॥

चजोः कु घिण्यतो ७।३।५२

प० वि०—चजो ६।२ कु १।१ घिण्यतो ७।२ स०—चश्च

१—लक्षारोचनाट्टक (४ २ ०) २—टस्येक (७ ३ ५०) ३—पस्वति
च (६ ४ ११८) ४—घतोऽम् (७ १ २४) ५—तस्य पण्यम् इति (४ ४
५१) प्राग्वहतीयष्टक ६—इसुसुक्तान्तात्क (७ ३ ५१) ७—ससजुपा ४
(८ २ ६६) ८—खरवसानयाविस्तत्रनीय (८ ३ १५) ९—इमुसा सामर्थ्यं
(८ ३ ४४) १०—तेन दाव्यति स्तनति जयति जितम् (४ ४ २) ठक् ११—
तेन दीव्यतीति (४ ४ ०) ठक् १२—विति च (७ २ ११७) १३—घोर्ह्य
ठक् (४ २ ११६) १४—हृष्ण (७ ४ १३) ह्रस्व १५—ऋतपृत् (४
३ ७३) १६—उदशिवतोऽन्यतरस्याम् (४ २ १६)

जश्चेति चजी तयो चजो । घिश्च एयच्च इति घिएण्यती षोः
घिएण्यतो ।

अर्थ—चकारजकारयोः कर्मादेशो भवति घिति एयति च प्रत्यये
परत । (चकार और जकार क स्थान में कर्मा पादस हाता है चिन और
ष्यत प्रत्यय क परे रहन पर)

ॐ अत्र यथासत्य नास्ति ॐ

उदा०—विति-पाक । राग । त्याग । एयति-पाक्यम् । वाक्यम् ।

सि०—हुपचप् । पच् घञ् । पच् अ । पाच् अ । पाक् अ । पाक ।
पाक सु । पाक् । राग । त्याग इति भात्रे सूत्रे साधनं द्रष्टव्यम् ।
पच् एयन् । पाक्यम् । वच् एयत् । वाक्यम् ।

हो हन्तेऽङ्गिण्नेषु ७।३।५४

प० वि०—ह ६।१ हन्ते ६।१ ङ्गिण्नेषु ७।३ स०—अश्च एश्चेति
व्यङ्गो । इ च इच्चेति इतो । ङ्गी इतो यस्येति ङ्गिण् । ङ्गिच्च
नश्चेति ङ्गिण्ना तेषु ङ्गिण्नेषु ।

अर्थ—[कु] हन्तेर्हकारस्य भ्रान्ते कर्मादेशो भवति विति णिति
च प्रत्यये परतो नकार च । (हन् धातु क हकार के स्थान में कवग पादस
हाता है, त्रित् णित् प्रत्यय क पर रहन पर और नकार क पर रहन पर)

उदा०—विति-घातो वर्तते । णिति-घातयति । घातक । साधु-
घाती । नशारे-घ्नन्ति । घ्नन्तु । अघ्नन् ।

अभ्यासाच्च ७।३।५५

प० वि०—अभ्यासान् ५।१ च अ० ।

अर्थ—[हो हन्ते कु] अभ्यासादुत्तरस्य हन्तेर्हकारस्य कर्मादेशो
भवति । (अभ्यास क पश्चात् हन् धातु क हकार का कवग पादस हाता है)

उदा०—जिघासति । जङ्घन्यते । अहं जघन ।

सि०—जिघासति इति अस्य साधनं अङ्गनगर्मा सनि इत्यप्र
द्रष्टव्यम् । जङ्घन्यते । हन् यङ् । हन् हन् य । हं हन् य । कं
हन् य । जं हन् य । ज घन् य । जनुक् घन् य । जन् घन्य ।

१—घातारवाची ह्नादे क्रियासमिहारे यङ् (३ १. २२) २—सायडो
(६ १ ६) ३—पूर्वोऽभ्यास (६ १ ४) घत्र सापोऽभ्यासस्य (७ ४. ५८)
ह्नादि षोष (७. ४ ६०) ४—कुटोरु (७. ४. ६२) ५—अभ्यास षत्
(८ ४ ५३) ६—अभ्यासाच्च (७ ३ ५५) ७—नुगतो (७ ४. ८५)

जघ्न्य^१ । जङ्घ्न्य^२ शप् त । जङ्घ्न्यते । जघ्न । उत्तमपुरुषे णाल
यदा णिच्त्वं नास्ति तदैतदुदाहरणम् । णिच्वपक्षे तु पूर्वेष्व
सिद्धम् ।

हेरचडि ७।३।५६

प० वि०—हे. ६।१ अचडि ७।१

अर्थ—[हः अभ्यस्तात् कु] हिनोतेर्हकारस्य अभ्यासादुत्तरस्य
कवर्गादेशो भवति अचडि । (हि मती धातु के हकार के स्थान में कवर्ग
आदेश होता है, अभ्यास के पश्चात् चङ् परे रहने पर नहीं)

उदा०—प्रजिघीपति । प्रजेघीयते । प्रजिघाय । अचडीति किम्
प्राजीहयत् दृत्तम् ।

सि०—हि सन् । हि सन्^३ । ही स^४ । ही ही स । मि ही स । जि
ही स । जि घी^५ स । जिघीप शप् तिप् । जिघीपति । प्रजिघीपति । हि
यङ् । ही य^६ । ही ही य । हि ही य । मि ही य । जि ही य । जि घी
य^७ । जे घीय^८ शप् त । जेघीयत । जेघीयते । प्रजेघीयते । हि णल् । हि
हि णल् । मि हि अ । जि धि अ । जि घै अ । जिघाय ॥ प्रजिघाय ।
प्राजीहयन् । हि णिच् । हे इ^९ । हाय^{१०} इ । हाय् इ चङ्^{११} । ह्य^{१२} इ अ ।
ह्य^{१३} अ । हि ह्य^{१४} अ । मि ह्य् अ । जि ह्य् अ । जी ह्य^{१५}
तिप् । जीहयन् । अट् जीहयत् ।

सन्लिटोर्जे ७।३।५७

प० वि०—सन्लिटोः ७।२ जेः ६।१

अर्थ—[अभ्यासात् कु] अभ्यासादुत्तरस्य जेरङ्गस्य कवर्गादेशो
भवति सनि लिटि च प्रत्यये परतः । (अभ्यास के पश्चात् जि जये इन धातु

- १—नश्चापदान्तस्य ऋलि (८. ३. २२) २—अनुस्वारस्य० (८. ४. ५७)
३—एकाच् उपदेशेऽनुदात्तात् (७. २. १०) इको ऋल् (१. २. ९)
विडति च (१. १. ५) ४—अजङ्गनगमा सनि (६. ४. १६) ५—हेरचडि (७.
३. ५६) ६—प्रकृतसार्वधातुकयोर्दीर्घं (७. ४. २५) ७—गुणो यङ्बुको (७.
४. ३२) ८—अचो ङ्णिति (७. २. ११५) ९—एचोऽयथायाव (६. १. ७५)
१०—णिधोत्यादिना चडादेश (३. १. ४८) ११—णो चङ्युपधाया ह्रस्व.
(७. ४. १) १२—जेरनिटि (६. ४. ५१) १३—णो कृत स्थानिवद् भवतीति हि-
शब्दस्य द्विवचनम् १४—दीर्घो लघो (७. ४. ६४)

का कवर्गं घादेशं ह्यं जाता है मन् घौर निट् के परे रहने पर)

ऋलक्षणप्रतिपदोस्तयोः प्रतिपदोक्त्वात् प्रहणमिति परिभाषया
ज्या वयोहानी इति एतस्य न प्रहणं भवतिः

उदा०—सनि-जिगीपति लिटि-जिगाय । ऋआदे. परस्येति परस्या-
देर्जकारस्य कुन्वमः

विभाषा चैः ७।३।५८

प० वि०—विभाषा १।१ चै. ६।१

अर्थ—[अभ्यामान् कु सन्निटोः] अभ्यासादुत्तरस्य चिनोत्तेरङ्गस्य
विभाषा कवर्गोदेशो भवति सनि लिटि च परतः । (अभ्यास के पश्चात्
चि को विकल्प से कवर्गं घादेश होता है मन् घौर निट् के परे रहने पर)

उदा०—चिचोपति । चिकीपति । चिचाय । चिकाय ।

घो[लोपो] लेटि वा ७।३।७०

श्रोत. श्यनि ७।३।७१

प वि०—श्रोतः ६।१ श्यनि ७।१

अर्थ—[लोपः] ओकारान्तस्य अङ्गस्य लोपो भवति श्यनि परतः ।
(ओकारान्त अङ्ग का लोप होता है, श्यन् के परे रहने पर)

उदा०—शो—निश्चति । श्रो—अवच्छ्रियति । श्रो—अवच्यति ।

सो—अवस्यति ।

कसस्याचि ७।३।७२

प० वि०—कसस्य ६।१ अचि ७।१

अर्थ—[लोपः] कसस्य अजादी प्रत्यये परतो लोपो भवति ।
(कग का लोप होता है अजादि प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—अधुत्ताताम् । अधुत्तायाम् । अधुत्ति । अचि इति किम्—

अधुत्तन् । अधुत्ताताम् ।

लुग्या दुहृदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये ७।३।७३

प० वि०—लुरू १।१ वा अ० । दुहृदिहलिहगुहाम् ६।३ आत्मनेपदे
७।१ दन्त्ये ७।१

अर्थ—[कसस्य] दुहृ दिह लिह गुह इत्येतेषामात्मनेपदे दन्त्यादी
परतः कसस्य या लुगभ्यति । (इत पाठुषो के पश्चात् कग का विकल्प न

लुक् होता है आत्मनपद में दात से उच्चारण किये जान वाले वण है आदि में जिसके, ऐसे प्रत्यय के परे रहन पर)

उदा०—दुह—अदुग्ध । अधुक्षत । अदुग्धा । अधुक्षथा । अधु-
ग्धम् । अधुक्षन्म् । अदुह्वहि । अधुक्षावहि । दिह—अदिग्ध । अधि-
क्षत । लिह—अलीढ । अलिक्षत । गृह—न्यगूढ । न्ययुक्षत । आत्मनेपद
इति किम्—अधुक्षत् । दन्त्य इति किम् । अधुक्षामहि । ऋदन्त्यौष्ठ्योऽपि
वकारो दन्त्ये इति गृह्यते । यदि स न गृह्येत ततस्तौ ग्रहणमेव कृत
स्यात् (द त से महा दात और ओष्ठ्य से उच्चारण किये जान वाले वकार
का भी ग्रहण करना चाहिये) । क्योंकि आचाय का यही अभिप्राय है, यदि दात
वाले वण का करना अभिष्ट होता तो, 'तु का सप्तमी एकवचन 'तो' से ही निर्देश
करते जिससे केवल तवर्गादि का बोध होता परन्तु एसा नहीं किया अतएव महा
वकार का भी ग्रहण करना चाहिये)

सि०—अदुग्ध । दुह् । दुह् लुङ् । दुह् त । दुह् क्स^१ त । दुह्
स त । दुष्^२ स त । दुष्^३ त । दुष् ध^४ । दुग्ध । अट् दुग्ध । अदुग्ध ।
अधुक्षत । दुह् त । दुह् क्स त । दुह् स त । दुष् स त । धुष्^५ स त ।
धुक्^६ स त । धुक्पत । अट् धुक्षत । अधुक्षत । अदुग्धा । दुह् थास् ।
दुह् क्स थास् । दुह् थास् । दुष् थास् । दुष् धास् । दुग्धा । अट्
दुग्धा । अदुग्धा । ऋअत्र एकाचो यशो भप् इत्यनेन भप्भावो न
भवति पूर्वत्रासिद्धम् इति धकारस्य असिद्धत्वात्

शमामष्टाना दीर्घ श्यनि ७।३।७४

प० वि०—शमाम् ६।३ अष्टानाम् ६।३ दीर्घ १।१ श्यनि ७।१

अर्थ—शमाम् अष्टानाम् दीर्घो भवति श्यनि परत । (शप् इत्यादि
आठ धातुओं को दीर्घ होता है श्यन् के परे रहन पर)

उदा०—शाम्यति । शाम्यत । शाम्यन्ति ।

ष्ठिवुक्लम्याचमा शिति ७।३।७५

प० वि०—ष्ठिवुक्लमु-आचमाम् ६।३ शिति ७।१

अर्थ—[दीर्घ] ष्टिवुक्लमु आचम् इत्येतेषा दीर्घो भवति शिति
परत । (इन धातुओं का दीर्घ होता है शित् प्रत्यय के परे रहन पर)

१—सल इगुपधादनिट वम (३ १ ४५) २—दादेषातोष (= २ ३२)

३—सुगवा० (७ ३ ७३) ४—ऋपस्तथोर्धोऽध (= २ ४०) ५—एकाचो
वशो० (= २ ३७) ६—स्तरि च (= ४ ५६)

उदा०—ष्ठीति । क्लामति । आचामति ।

क्रम. परस्मैपदेषु ७।३।७६

प० वि०—क्रमः ६।१ परस्मैपदेषु ७।३

अर्थ—[शिति दीर्घः] क्रमः परस्मैपदेषु शिति परतो दीर्घो भवति ।
(अमु पादविक्षेपे इम घातु वा दीर्घे होना है परस्मैपद में शित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—क्रामति । क्रामतः । क्रामन्ति ।

इपुगमियमा छः ७।३।७७

प० वि०—इपुगमियमाम ६।३ छः १।१

अर्थ—[शिति] इपु गमि यम इत्येतेषां शिति परतरछकारादेशो भवति । (इपु, गम शोर यम घातुषो वा छकारादेश होता है शित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—इच्छति । गच्छति । यच्छति ।

सि०—इपु । इप् लट् । इप् तिप् । इप् [गप् ति । इप् अ ति । इच्छ् अ ति । इ तुक् छ् अ ति । इच्छति ।

पाघ्राध्मास्याम्नादाण्दृश्यत्तिसत्तिगदमदा पिवजिघ्रघम-

तिष्ठमनयच्छपश्यच्छ्घ्रीशीयमीदा ७।३।७८

प० वि०—पा-प्रा-ध्मा-स्या-म्ना-दाण्-दृशि-अर्ति-सर्ति-शद-मदाम्
६।३ पिव-जिघ्र-घम-तिष्ठ-मन-यच्छ-पश्य-अच्छ-घ्री-शीय-मीदा. १।३

अर्थ—[शिति] पा पाने, घ्रा गन्धोपादाने, ध्मा शब्दाग्निर्मयोगयो, घ्रा गतिनिवृत्तौ, म्ना अभ्यामे, दाण् दाने, दृशिर् प्रेक्षणै, अ गतिप्राप-
ण्योः, अ सृ गती च, शट् विगरणे, पट् विगरणगत्ययमा-
दनेषु भौतादिकः इत्येतेषां घातूनां स्थाने पियादयः आदेशा भवन्ति
शिति (इन घातुषो के स्थान में पिव इत्यादि घादन होते है शित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—ऋपिव इत्यकारान्तोऽयमादेशः, अन्येषाम् अकार उच्चार-
णार्थःः

उदा०—पिबति । जिघ्रति । घमति । तिष्ठति । मनति । यच्छति ।
परयति । अच्छति । घायति । शीयते ऋ शदेः शित् १।३।६० इत्यामने-
पदम् ऋ मीदति ।

ज्ञानोर्जा ७।३।७६

९० वि०—ज्ञानोर्जा ६।२ जा अविभ० ।

अर्थ—[शिति] ज्ञा, जनी प्रादुर्भावे (द्वैवादिक्तस्य ग्रहणम्) इत्ये-
त्तयोः स्थाने जा इत्ययमादेशो भवति शिति । (जा और जनी धातु क स्थान
में जा यह आदेश हाना है, शित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—जानाति । जायते ।

प्वादीना ह्रस्व ७।३।८०

९० वि०—प्वादीनाम् ६।३ ह्रस्व. १।१

अर्थ—[शिति] पूञ् पवने इत्यादीनां ह्रस्वो भवति शिति परतः ।
(पूञ् इत्यादि धातुओं का ह्रस्व होता है शित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—पुनाति । लुनाति ।

गुणप्रकरणम्—

मिदेर्गुण ७।३।८२

९० वि०—मिदेः ६।१ गुण १।१

अर्थ—[शिति] मिदेरङ्गस्य गुणो भवति शिति प्रत्यये परतः ।

(शित् प्रत्यय के परे रहने पर मिद् मङ्ग का गुण होता है)

उदा०—मेद्यति । मेद्यत । मेद्यन्ति । ऋलघूपधगुणस्य प्रतिषेधस्य
पुन. गुणस्य विधानार्थमिद् वचनम्॥

जुसि च ७।३।८३

९० वि०—[गुणः अचि] अजादौ जुसि च प्रत्यये परतोऽङ्गस्य
गुणो भवति । (अजादि जुस् के परे रहने पर अङ्ग का गुण होता है)

उदा०—अजुह्वुः । अविभयु । अजादौ इति किम्—जागृयुः,
चिनुयुः, सुनुयु । आशिपि तु जागर्यात् । जागर्यास्ताम् । जागर्यासु

सार्वधातुकार्धधातुकयो ७।३।८४

९० वि०—सार्वधातुकार्धधातुकयो ७।२ स०—सार्वधातुक च
आर्धधातुक चेति सार्वधातुकार्धधातुके तयो सार्वधातुकार्धधातुकयोः ।

अर्थ—[गुण] सार्वधातुके आर्धधातुके च प्रत्यये परतो अङ्गस्य
गुणो भवति । (सार्वधातुक और आर्धधातुक प्रत्यय के परे रहने पर अङ्ग
का गुण होता है)

उदा०—तरति । नयति । भयति । आर्धधातुके-भयिता । भवितुम् ।

जाग्रोऽविचिण्णल्लिडत्सु ७।३।८५

प० वि०—जाग्रः ६।१ अविचिण्णल्लिडत्सु ७।३

अर्थ—[गुणः] जागृ इत्येतस्य अद्गस्य गुणो भवति अविचिण्ण-
ल्लिडत्सु परतः । (जागृ अद्ग वा गुण होता है वि, चिण्, ल्ल् और लिड्
प्रत्ययों को छोड़ कर अन्य प्रत्ययों के परे रहने पर)

उदा०—जागरयति । जागरक । साधुजागरी । जागरो वर्तते ।
कथम् अजागरुः । अहं जजागर इति । अविचिण्णल्लिडत्सु इति प्रति-
पेधान् अजागरुस्त्वत्र जुमि च इत्यनेनापि प्राप्नस्य गुणस्य प्रतिपेधः
प्राप्नोति एवमहं जजागर इत्यत्र एतुत्तमो वेति (७।१।६१) वचना-
णिवं यदा नास्ति तदा सार्वधातुकार्थधातुकर्योरिति प्राप्नस्यापि गुणस्य
प्रतिपेधः प्राप्नोति एलि निपेधान् इति कथं ? तदुच्यते—प्रतिपेधो द्विधा
भवति । प्रमन्यप्रतिपेधः पर्युदासप्रतिपेधश्च । प्रसज्यप्रतिपेधे हि लक्षण-
न्तरेणापि प्रसक्तस्य प्रतिपेधो भवति, प्रतिपेधार्थस्य प्राधान्यात् । पर्युदा-
सप्रतिपेधे तु विधानस्य प्राधान्यं भवति न तु प्रतिपेधस्य तेन सचपि-
पर्युदासे यदि केनचित् अन्येन मूत्रेण कार्यं प्राप्नोति तद् भवत्येव । एवं
प्रकृते पर्युदासप्रतिपेधः । अतः यदि अन्येन मूत्रेण गुणो प्राप्नुयान् तदा
भवेदेव । तथा च मति अजागरुः इत्यत्र जुमि चेति गुण, अहं जजागर
इत्यत्रापि सार्वधातुकार्थधातुकर्योरिति गुणो भवत्येव ।

पुगन्तलघूपधस्य च ७।३।८६

प० वि०—पुगन्तलघूपधस्य ६।१ च अ० । म०—पुकि अन्तः पुगन्तः
मुप्सुपा इति समाम इति नागेशः । सप्तमी इति योगपिभागान् समास इति
न्यासः । लघ्या चामी उपधा चेति लघूपधा (वर्मवारयममाम) । पुग-
न्तरच लघूपधा चेति पुगन्तलघूपधम् (समा० द्वन्द्वः) तस्य पुगन्तलघू-
पस्य । ङ् नाचं बहुव्रीहिः । लघु उपधायां यस्य स लघूपध इति । वट्ट-
व्रीही तु भिनत्ति इत्यत्रापि गुणः प्राप्नोति, लघूपध इत्यस्य अद्गवरीश-
ण्णान् ।

अर्थ—[सार्वधातुकार्थधातुकर्योः] अद्गस्य पुकि परतोऽन्ते पुगन्तर
इक्, उपधायाच्च लघुमशक इन् तस्य गुणो भवति सार्वधातुके सार्वधातुके
च प्रत्यये परतः । (अद्ग वा पुक् परे रहा पर जो इक् और उपधा में वा
सधु मशक इक् उगरो गुण होता है सार्वधातुके और पाधपानुक् प्रत्यय के परे
रहने पर)

उदा०—व्लेपयति । ह्येपयति । लघूपधस्य—भेदनम् । छेदनम् ।
भेत्ता । छेत्ता ।

नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके ७।३।८७

प० वि०—न अ० । अभ्यस्तस्य ६।१ अचि ७।१ पिति ७।१ सार्व-
धातुके ७।१

अर्थ—[लघूपधस्य गणः] अभ्यस्तसज्ञकस्य अङ्गस्य लघूपधस्य
अजादौ पिति सार्वधातुके गुणो न भवति । (अभ्यस्य सज्ञक अङ्ग की जो
लघु उपधा उसको अजादि पित् सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहने पर गुण नहीं
होता है)

उदा०—नेनिजानि । अनेनिजम् ।

सि०—णिजिर् शौचपोपणयोः । णिज् । निज् लोट् । निज् मिप् ।
निज् नि । निज् आट् नि । निज् शप् आनि । निज् आनि । निज्
आनि । निज् निज् आनि । नेनिजानि ।

भूसुवोस्तिडि ७।३।८८

प० वि०—भूसुवोः ६।२ तिडि ७।१

अर्थ—[सार्वधातुके गुणः न] भू सू इत्येतयोस्तिडि सार्वधातुके
गणो न भवति । (भू सू अङ्ग का तिडि सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहने
पर गुण नहीं होता है)

उदा०—अभूत् । अभूताम् । अभूयन् । सुवे । सुवावहे । सुवामहे ।

सि०—अभूत् इत्यस्य साधनं गातिस्थेति सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

ॐ सूतेर्लुग्विकरणस्येदं ग्रहणम् ॐ पृङ् प्राणिगर्भविमोचने । पू ।
सू लोट् । सू वहि । सू वहे । सू वहे । सू आट् वहे । सू आ वहे । सू
उवङ् आवहे । सुव् आवहे । सुवावहे ।

उतो वृद्धिर्लुकि हलि ७।३।८९

प० वि०—उतः ६।१ वृद्धिः १।१ लुकि ७।१ हलि ७।१

अर्थ—[सार्वधातुके पिति] उकारान्तायाङ्गस्य वृद्धिर्भवति लुकि
सति ह्लादौ पिति सार्वधातुके । (लुक् हो जाने पर ह्लादि पित् सार्वधातुक
के परे रहने पर उकारान्त अङ्ग की वृद्धि होती है)

उदा०—यौति । यौपि । यौमि । नोति । नीपि । नौमि । स्तौति
स्तौपि । स्तौमि ।

सि०—यु मिश्रणे अमिश्रणे च । गु स्तुती । प्लुञ् स्तुती ।

ॐ नाभ्यस्तस्य इत्येतदनुवर्त्तते योयोति नोनोति इत्येवमाद्यथम् ॐ

ऊर्णोतिर्विभाषा ७।३।१०

प० वि०—ऊर्णोति ६।१ विभाषा १।१

अर्थ—[वृद्धि हलि पिति सार्वधातुके] ऊर्णोतिर्विभाषा वृद्धि-
भवति हलादी पिति सार्वधातुके । (हलादि पित् सावधातुक क परे रहन पर
उगुञ्च आच्छादन धातु की विकल्प स वृद्धि हाता है)

उदा०—प्रोर्णोति । प्रोर्णोति ।

गुणोऽपृक्ते ७।३।११

प० वि०—गुण १।१ अपृक्ते ७।१

अर्थ—[ऊर्णोति हलि पिति सार्वधातुके] ऊर्णोतेर्धातोरपृक्ते
हलादी पिति सार्वधातुके गुणो भवति । (ऊर्णञ्च धातु का गुण होता है
अपृक्त हलादि पित् सावधातुक प्रत्यय के पर रहन पर)

उदा०—प्रौर्णोत् । प्रौर्णोत् ।

ब्रुव ईट् ७।३।१२

प० वि०—ब्रुव ५।१ ईट् १।१

अर्थ—[हलि पिति सार्वधातुके] ब्रुव उत्तरम्य हलादे पित् सार्व-
धातुस्य ईडागमो भवति । (ब्रुञ् चक्रताया वाचि इस धातु क परचात
हलादि पित् सावधातुक को ईट् का आगम होता है)

उदा०—ब्रवीति । ब्रवीपि । ब्रवीमि । अब्रवीन् । हलीत्येव ब्रवाणि ।

यडो वा ७।३।१४

प० वि०—यड ५।१ वा अ० ।

अर्थ—[हलि पिति सार्वधातुके ईट्] यड उत्तरस्य हलादे पित्
सार्वधातुकस्य ईडागमो भवति वा । (यड के परचात हलादि पित् साव-
धातुक को विकल्प स ईट् का आगम होता है)

ॐ हलादे पित् सार्वधातुस्य यडन्तस्याभाये यड लुगन्तस्योपा-
हरणम् ॐ

उदा०—बोभवीमि । बोभोमि । लालपीति । लालप्ति । वाचवीति । वावत्ति ।

सि०—भू यङ् । भू भू यङ् । वृ भू य । बु भू य । वो भू य । वो भू । वोभू लट् । वोभू तिप् । वो भू ईट् ति । वो भो ईति । वो भव् ईति । बोभवीति । साधकम्शाणि वर्तमाने लट् इत्यत्र द्रष्टव्यानि ।

तुरुस्तुशाम्यम सार्वधातुके ७।३।६५

प० वि०—तु रुस्तु-शामि अम ५।१ सार्वधातुके ७।१

अर्थ—[हलि] तु इति सौत्रो धातुवृद्धर्थ इत्येके । हिंसार्थ इत्यपरे । अस्य च लुग् विकरणत्व स्मर्यते, रु श-दे, ष्टुब् स्तुतौ, शम् उपशमे, अम गत्यादिषु, इत्येतेभ्य उत्तरस्य हलादे सार्वधातुकस्य वा ईडागमो भवति । (इन धातुयो के पश्चात् हलादि सावधातुक को विकल्प से ईट् का आगम होता है)

उदा०—उत्तवीति । उत्तौति । उपरवीति । उपरौति । उपस्तवीति । उपस्तौति । शमीध्वम् । शाम्यध्वम्* अभ्यमीति* । अभ्यमति । ङ् शम्यमोर्वेहुल छन्दसीति २।४।७३ इत्यनेन विकरणस्य लुकि सति हलादिसार्वधातुकमनन्तर सम्भवति । आपिशलास्तु शाम्यम सार्वधातुका-सुच्छन्दसीति पठन्ति । तत्र सर्वेषामेव छन्दसि विषये विधिरय भवतिः

अस्तिसिचोऽपृक्ते ७।३।६६

प० वि०—अस्तिसिच ५।१ अपृक्ते ७।१

अर्थ—[हलि सार्वधातुके ईट्] अस्तेरङ्गात् सिजन्ताच्च उत्तरस्य अपृक्तस्य हलादे सार्वधातुकस्य ईडागमो भवति । (अस धातु और तिच के पश्चात् अपृक्त हलादि सावधातुक को ईट् का आगम होता है)

उदा०—अस्ने—आसीत् । आसी । सिजन्तात्—अकार्पात् । अहार्पात् ।

* ईडाभावे उदाहरणमि-म यवृत्तिकारमतानुसारम् । वस्तुतस्तु अननङ् विकल्पे यथा स्तीते स्तीति रीतेष्व रीति इत्युदाह्रियते तथा अत्रापि विकरण-लुक्पक्ष एव ईडाभावोऽपि उदाहाय । शन अमोरदादौ पाठो नास्तीति चेत् यथा सूत्रवचनप्रामाण्यात् तीतेरादादिष्व प्रमाणीक्रियते तथानवारपि एतत् सूत्रप्रामा-ण्यादादादिष्व स्वीकृतव्यम् । तथा सति शमीध्वम् श-ध्वम्, अभ्यमीति, अभ्यति इत्येवमुदाहृतव्यम् इति मीमांसका

सि०—अस् लङ् । अस् ल् । अस तिप् । अस् त् । अस् ईट् त् ।
अस् ईत् । आट् असीत् । आसीन् । डुट् । कृ लुङ् । कृ तिप् । कृ
सिच् ति । कार् स् ति । कार् स् त् । कार् स् ईट् त् । कार्
प् ईत् । कार्पीत् । अट् कार्पीत् । अकार्पीन् ।

रुदश्च पञ्चभ्य. ७।३।६८

प० वि०—रुद्. ५।१ सुब्ध्यययेन बहुवचनस्यैकत्वम् । पञ्चभ्य ५।३
अर्थ—[सार्वधातुके हलि अपृक्ते] रुदादिभ्यः पञ्चभ्य उत्तरस्य
हलादेः सार्वधातुस्य अपृक्तस्य ईडागमो भवति । (रुदिर् इत्यादि पाच
धातुश्लोके पश्चात् हतादि अपृक्त सावधातुक प्रत्यय का ईट् का आगम
होता है)

उदा०—अरोदीत् । अरोदी ।

अङ्गार्ग्यगालवयो ७।३।६९

प० वि०—अट् १।१ गार्ग्यगालवयो ६।२

अर्थ—[सार्वधातुके अपृक्ते रुदादिभ्यः] रुदादिभ्यः पञ्चभ्य उत्त-
रस्य अपृक्तस्य सार्वधातुस्य अडागमो भवति गार्ग्यस्य गालवस्य च
मतेन । ऋगार्ग्यगालवग्रहणं पूजार्थम् (रुद् इत्यादि पाच धातुश्लोके
पश्चात् अपृक्त सावधातुक का अट् का आगम हाता है)

उदा०—आरोदत् । आरोद ।

अद सर्वेषाम् ७।३।१००

प० वि०—अद ५।१ सर्वेषाम् ६।३

अर्थ—[सार्वधातुके अपृक्ते अट्] अद भक्षणे इत्यस्मादुत्तरस्य
अपृक्तस्य सार्वधातुस्य अडागमो भवति सर्वेषामाचार्याणां मतेन ।
(अद धातु के पश्चात् अपृक्त सावधातुक प्रत्यय का अट् का आगम हाता है
सभी आचार्यों के मत में)

उदा०—आदत् । आद ।

अतो दीर्घो यजि ७।३।१०१

प० वि०—अत. ६।१ दीर्घ १।१ यजि ७।१

अर्थ—[सार्वधातुके] अकारान्तस्नाद्भ्यः दीर्घो भवति यत्रादीं सर्व-
धातुके परतः । (यकारान्त अद्भ्यः का दीर्घ हाता है यत्र प्रत्याहार में आने वाला
कोई अक्षर है प्रादि में जिसके ऐम सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहन पर)

उदा०—पचामि । पचाव । पचाम ।

सुपि च ७।३।१०२

प० वि०—सुपि ७।१ च अ० ।

अर्थ—[अतो दीर्घो यञि] अकारान्तरयाङ्गस्य दीर्घो भवति यच्चादा सुपि परत । (अकारान्त अङ्ग का दीर्घ होता है यच्चादि सुप के परे रहन पर)

उदा०—वृक्षाय । प्लक्षाय । रामाय ।

सि०—वृक्ष डे । वृक्ष य । वृक्षा य । वृक्षाय ।

बहुवचने भ्रूय्येत् ७।१।१०३

प० वि०—बहुवचने ७।१ भ्रूयि ७।१ एत् १।१

अर्थ—[सुपि अत] अकारान्तस्य अङ्गस्य एकारादेशो भवति भ्रूयादौ सुपि परत बहुवचने । (अकारान्त अङ्ग का बहुवचन में भ्रूयादि सुप के पर रहन पर एकार आदेश होता है)

उदा०—वृक्षेभ्य । प्लक्षेभ्य । रामेभ्य । वृक्षेषु । प्लक्षेषु । रामेषु ।

ओसि च ७।३।१०४

प० वि०—ओसि ७।१ च अ० ।

अर्थ—[अत एत्] ओसि च परतोऽकारान्तस्य अङ्गस्य एकारादेशो भवति । (ओस के परे रहन पर अकारान्त अङ्ग का एकार आदेश होता है)

उदा०—रामयो धनम् । तयो । कयो ।

आडि चाप ७।३।१०५

प० वि०—आडि ७।१ च अ० । आप. ५।१

अर्थ—[एत्] आडिति पूर्वाचार्यनिर्देशेन तृतीयैकवचनम् । आडि चकाराद् ओसि च परत आनन्तस्य अङ्गस्य एकारादेशो भवति ।

(टा और ओस् के परे रहन पर आनन्त अङ्ग का एकारादेश होता है)

उदा०—खट्वया । मालया । लतया । बालिकया । खट्वयो । मालयो । लतयो । बालिकयो ।

सि०—लता टा । लते आ । लतया । लता ओस् । लते ओस् । लतय् ओस् । लतयो ।

सम्बुद्धौ च ७।३।१०६

प० वि०—सम्बुद्धौ ७।१ च अ० ।

अथ—[आप ण्] सम्बुद्धौ च परत आबन्तम्याङ्गस्य एकारादेशो भवति । (सम्बुद्धि क पर रहन पर आबन्त अङ्ग का एकारादेश होता है)

उदा०—हे लते । हे बालिने ।

सि०—लता मु । लते म् । लते ।

आम्बार्थनद्योह्रस्व ७।३।१०७

प० रि०—अम्बार्थनद्यो ङा० ह्रस्व १।१

अर्थ—[सम्बुद्धौ] अम्बार्थाना नद्यन्ताना चाद्गाना ह्रस्वो भवति सम्बुद्धौ परतः । (अम्बा अथ वाले धोर नद्य सङ्ग अङ्ग का ह्रस्व हाता है सम्बुद्धि क पर रहन पर)

उदा०—हे अम्ब । हे अक्क । हे अल्ल । नद्या—हे कुमारी ।

सि०—अम्बा मु । अम्ब स् । अम्ब । कुमारी मु । कुमारी स । कुमारी ।

ह्रस्वस्य गुणः ७।३।१०८

प० वि —ह्रस्वस्य ङा० गुण १।१

अर्थ—[सम्बुद्धौ] ह्रस्वान्तस्य अङ्गस्य गुणो भवति सम्बुद्धौ परतः । (सम्बुद्धि क पर रहन पर ह्रस्वात् अङ्ग का गुण हाता है)

उदा०—हे अग्ने । हे वायो ।

सि०—वायु मु । वायो म् । वायो ।

जमि च ७।३।१०९

प० रि०—जसि ङा० च अ० ।

अर्थ—[ह्रस्वस्य गुण] जसि च परतो ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणो भवति । (जस् क पर रहन पर ह्रस्वात् अङ्ग का गुण हाता है)

उदा०—अग्नय । वायव । पृथ्व । वेनव । बुद्धव । X जसादिपु छन्दसि वाचनं प्राप्त्वा णी चद्दुग्धाया ह्रस्व X इत्येतस्मान् परवे । परावे ।

सि०—अग्नि जस् । अग्ने अस् । अग्नय् अम् । अग्नय ।

ऋतो ङिसर्वनामस्थानयो ७।३।११०

प० रि०—ऋत ङा० ङिसर्वनामस्थानयो ङा०

अर्थ—[गुण] (ऋतान्तस्याङ्गस्य ङी सर्वनामस्थाने च परतो गुणो भवति । (ऋतान्त अङ्ग का गुण हाता है ङि धोर सर्वनामस्थान विभक्ति के पर रहन पर)

उदा०—डौ—मातरि । पितरि । भ्रातरि । कर्त्तरि । सर्वनामस्थाने—
कर्त्तारौ । कर्त्तारः । कर्त्तारम् । कर्त्तारौ ॥

घोडिति ७।३।१११

प० वि०—घेः ६।१ डिति ७।१

अर्थ—[गुणः] घ्यन्तस्याङ्गस्य गुणो भवति डिति प्रत्यये परतः ।
(पि हे अन्त में जिस के ऐसे अङ्ग का गुण होता है डित् प्रत्यय के परे
रहने पर)

उदा०—अग्नये । अग्नेः । अग्नेः । वायवे । वायोः । वायोः ।

सि०—अग्नि डे । अग्ने ण । अग्नय ए । अग्नये । अग्नि डसि ।
अग्नि अस् । अग्ने अस् । अग्नंस् । अग्नेः ।

आणनद्या. ७।३।११२

प० वि०—आट् १।१ नद्या ५।१

अर्थ—[डिति] नद्यान्तादङ्गादुत्तरस्य डितः प्रत्ययस्य आडागमो
भवति । (नद्यन्त अङ्ग के पश्चात् डित् प्रत्यय को आट् का आगम होता है)

उदा०—कुमार्यै । कुमार्या । कुमार्या ।

सि०—कुमारी डे । कुमारी आट् ण । कुमारी ऐ^१ । कुमार्यै । कुमारी
आट् अस् । कुमारी आ. । कुमार्या. ।

याडाप. ७।३।११३

प० वि०—याट् १।१ आप ५।१

अर्थ—[डिति] यावन्तादङ्गादुत्तरस्य डितः प्रत्ययस्य याडागमो
भवति । (यावन्त अङ्ग के पश्चात् डित् प्रत्यय का याट् का आगम होता है)

उदा०—लतायै । लताया । लतायाः ।

सि०—लता डे । लता याट् ण । लता यै^२ । लतायै ।

सार्वनाम्न स्याद्ब्रुस्वश्च ७।३।११४

प० वि०—सर्वनाम्न ५।१ स्याट् १।१ ह्रस्वः १।१ च अ० ।

अर्थ—[आपः डिति] सर्वनाम्न यावन्तादङ्गादुत्तरस्य डितः
प्रत्ययस्य स्याडागमो ह्रस्वश्च भवति । (यावन्त सर्वनाम के पश्चात् डित्
प्रत्यय को स्याट् का आगम होता है और उस यावन्त सर्वनाम का ह्रस्व
होता है)

उदा०—सर्वस्यै । सर्वस्याः । सर्वस्याः । तस्यै । तस्याः । तस्याः ।

सि०—सर्वा ङे । सर्वा म्याट् ए । सर्व स्या ए । सर्वस्यै ।
सर्वस्यै ।

विभाषा द्वितीयातृतीयाभ्याम् ७।३।११५

प० वि०—विभाषा १।१ द्वितीयातृतीयाभ्याम् ५।२

अर्थ—[ङिति स्याट्] द्वितीया तृतीया इत्येताभ्यामुत्तरस्य ङितः प्रत्ययस्य विभाषा स्याडागमो भवति । (द्वितीया और तृतीया अङ्ग के पश्चात् ङित् प्रत्यय को विकल्प से स्याट् आगम हाना है)

उदा०—द्वितीयायै । द्वितीयस्यै । तृतीयायै । तृतीयस्यै ।

डेराम्नद्याम्नीभ्य ७।३।११६

प० त्रि०—ङे ६।१ आम् १।१ नद्याम्नीभ्यः ५।३ स०—नदी च
आप् च नीश्च इति नद्याम्नीभ्यः ।

अर्थ—नद्यन्तादानन्तान् नी इत्येतस्माच्चोत्तरस्य डेराम् इत्ययमादेशो भवति । (नद्यन्त आद्यन्त और नी अङ्ग व पश्चात् ङि के स्थान में ग्राम् यह आदेश होता है)

उदा०—कुमार्याम् । गौर्याम् । ब्रह्मण्ध्याम् । आप । खट्वायाम् ।
मालायाम् । लतायाम् । नी । राजन्याम् । सेनान्याम् ।

सि०—कुमारी ङि । कुमारी आम् । कुमारी आट् आम् । कुमारी
आम् । कुमारीम् । खट्वा याट् आम् । खट्वायाम् ।

इदुद्भ्याम् ७।३।११७

प० वि०—इदुद्भ्याम् ५।२

अर्थ—[नद्याः डेराम्] इकारोकाराभ्यामुत्तरस्य डेरामादेशो भवति ।
(इकारान्त और उकारान्त नदी सङ्ग के पश्चात् ङि के स्थान में ग्राम् आदेश होता है)

उदा०—कृत्याम् । घेन्याम् ।

सि०—कृति आट् ङि । कृति आट् आम् । कृत्याम् ।

ओत् ७।३।११८

प० वि०—ओत् १।१

अर्थ—[इदुद्भ्याम् ङेः] इदुद्भ्यामुत्तरस्य डेरामादेशो भवति ।
ॐ यत्र नदीसङ्गं नापि चिसङ्गमिनारान्तं तदिहोदाहरणम् ॐ (इकारान्त

उकारान्त ऋङ्ग के पश्चात् डि के स्थान में भ्रीकार प्रादेश होता है)

उदा०—सख्यौ । पत्यौ ।

सि०—सखि डि । सखि औ । सख्यौ । पति डि । पति औ । पत्यौ ।

अच्च घे ७।३।११६

प० वि०—अत् १।१ च अ० । घे ६।१

अर्थ—[डे औत्] घि सङ्गकादुत्तरस्य डेरोऽप्रादेशो भवति तस्य च घेरकारादेशो भवति । (घि सङ्गक ऋङ्ग के पश्चात् डि के स्थान में भ्रीकार प्रादेश होता है और उस घि का अकारादेश होता है)

उदा०—अग्नौ । वायौ । मुनी । सायौ । कृती । धेनौ । पटी ।

सि०—अग्नि डि । अग्न औ । अग्नौ ।

आडो नाऽस्त्रियाम् ७।३।१२०

प० वि०—आड ६।१ ना १।१ अस्त्रियाम् ७।१

अर्थ—[घे] घेरुत्तरस्य आडो ना इत्ययमादेशो भवति । अस्त्रियाम् । (घि सङ्गक ऋङ्ग के पश्चात् आड के स्थान में ना यह प्रादेश होता है स्त्रीलिङ्ग शब्द को छोड़कर)

उदा०—अग्निना । वायुना । अस्त्रियामिति किम् । कृत्या । धेन्वा ।

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया सप्तमाध्याये तृतीय पाद

शौ चड्युपधाया ह्रस्व ७।४।१

प० वि०—शौ ७।१ चडि ७।१ उपधाया ६।१ ह्रस्व १।१

अर्थ—चड् परे शौ यदङ्ग तस्योपधाया ह्रस्वो भवति ।

(चड परे है जिस के ऐसे शिच् के परे रहन पर ऋङ्ग की उपधा को ह्रस्व होता है)

उदा०—अचीकरत् । अजीहरत् । अलीलयत् । अभीपठत् ।

सि०—कृ शिच् । कार् इ । कारि लुङ् । कारि ल् । कारि तिप् । कारि चड् तिप् । कर् इ च ति । कर् कर् इ अ ति । क करि अ ति । च कर् अ ति । चि^१ कर ति । ची^२ करत् । अट् चीकरत् । अचीकरत् ।

ॐ अत्र द्विर्वचनोपधाह्रस्वत्वयो प्राप्तयो परत्यादुपधाह्रस्वत्व तत्र कृते द्विर्वचनम् ॐ

नाग्लोपिशास्वृदिताम् ७।४।२

प० वि०—न अ० । अग्लोपि-शामु-ऋदिताम् ६।३ म०—अको लोपऽग्लोपः । स अस्यास्तीति अग्लोपी । ऋत् इत् यस्येति ऋदित् । अग्लोपी च शामुश्च ऋदिच्चेति अग्लोपिशास्वृदितः तेषाम् ।

अर्थ—[णी चङ्युपधाया ह्रस्वः] अग्लोपिनामङ्गानां शासेऽर्द्ध-दितां च णी चङ्युपधाया ह्रस्वो न भवति ।

(अक् प्रत्ययाहार में धान वाले कोई अक्षर लोप होने वाले अङ्ग, धामु अनुशिष्टी धामु तथा ऋकार इत् वाले का चङ् परे है जिस के ऐसे णिच् के परे रहने पर ह्रस्व नहीं होता है)

उदा०—अग्लोपिनाम्—मालामारयन् इति अममालत् । मातरमारयन् इति अममातरत् । शामु—अशशासन् । ऋदिताम्—आम् । अननाचन् ।

सि०—माला णिच् । माल् इ । मालि लुङ् । मालि तिप् । मालि चङ् । माल् अति । माल् माल् अत् । मा मालत् । म मालत् । अट् ममालत् । अगमालत् ।

भ्राजभासभापदीपजीवमीलपीडामन्यतरस्याम् ७।४।३

प० वि०—भ्राज-भास-भाप-दीप-जीव-मील-पीडाम् ६।३ अन्यतरस्याम् अ० ।

अर्थ—भ्राज् दीप्ती, भास् दीप्ती, भाप व्यक्तायां वाचि, दीपी दीप्ती, जीव प्राणधारणे, मील निमेषणे, पीड अरगाहने इत्येतेषामङ्गानां णी चङ्युपधाया ह्रस्वो भवति अन्यतरस्याम् । (इन धानुषां की उपधा का ह्रस्व होता है, चङ् परक णिच् के परे रहने पर विकल्प करके)

उदा०—अभिभ्रजन् । अभ्रभ्राजत् । अमीभसन् । अभ्रभासन् । अमीमपन् । अभ्रभापन् । अदिदीपन् । अदीदिपन् । अजीजिजन् । अजिजीवन् । अमिमीलन् । अमीमिलत् । अपिपीडत् । अपिपीडन् । × काण्यदीनां वेति वक्तव्यम् × अचकाण् । अचीकण् ।

लोपः पिवतेरीच्चाभ्यासस्य ७।४।४

प० वि०—लोपः १।१ पिवते ६।१ ईत् १।१ च अ० । अभ्यासस्य ६।१

अर्थ—[णी चङ्युपधायाः] पिवतेरङ्गस्य णी चङ्युपधाया लोपो

भवति अभ्यासस्य चेकारादेशो भवति । (पा घातु की उपधा का चङ् परक णिच् के परे रहने पर लोप, होता है, और ग्रन्थास का ईकार आदेश होता है)

उदा०—अपीप्यन् । अपीप्यताम् । अपीप्यन् ।

सि०—पा णिच् । पा युक् इ । पाय् इ । पाय् इ लुङ्—पाय् इ तिप् । पाय् इ चङ् तिप् । पाय् अ त् । प्य् अ त् । पा प्य् अ त् । पीप्यन् । अट् पीप्यत् । अपीप्यत् ।

ॐ उपधालोपे कृते ओः पुण्यवचनं (७ ४. ८०) ज्ञापकं शौ स्थानिवद्भावास्येति स्थानिवद्भावाद् द्विर्वचनम् ॐ

तिष्ठतेरित् ७।४।५

प० वि०—तिष्ठतेः ६।१ इत् १।१

अर्थ—[शौ चङ्युपधायाः] तिष्ठतेरङ्गस्य शौ चङ्युपधायाः इकारादेशो भवति । (स्था घातु को चङ् परक णिच के परे रहने पर इकारादेश होता है)

उदा०—अतिष्ठिपत् । अतिष्ठिपताम् । अतिष्ठिपत् ।

जिघ्रतेर्वा ७।४।६

प० वि०—जिघ्रतेः ६।१ वा अ० ।

अर्थ—[शौ चङ्युपधायाः इत्] जिघ्रतेरङ्गस्य शौ चङ्युपधायाः वा इकारादेशो भवति । (घा गन्धोपादाने इस घातु का विकल्प से इकारादेश होता है चङ्परक णिच् के परे रहने पर)

उदा०—अजिघ्रिपत् । अजिघ्रिपताम् । अजिघ्रिपत् । अजिघ्रपत् । अजिघ्रपताम् । अजिघ्रपत् ।

उर्ध्वत् ७।४।७

प० वि०—उः ६।१ ऋत् १।१

अर्थ—[शौ चङ्युपधायाः वा इत्] शौ चङ्युपधायाः ऋवर्णस्य स्थाने वा ऋकारादेशो भवति । (चङ्परक णिच् के परे रहने पर ऋवर्ण के स्थान में विकल्प से ऋकार आदेश होता है)

उदा०—ॐ इररामपवादः ॐ इट्—अचिकीर्त्तत् । अचिकृतत् । अर्—अववर्त्तत् । अवोवृत्तत् । आर्—अममार्जत् । अमीमृजत् ।

दयतेदिगि [लिटि] ७।८।६

ऋतदच मयोगादगुण ७।४।१०

प० वि०—ऋत ६।१ च अ० । मयोगादे ६।१ गुण १।१

अर्थ—[लिटि] ऋकारान्तस्याङ्गन्त्र मयोगादेर्गुणा भवति लिटि परत । (इयागादि ऋकारात् अङ्ग वा गुण हाता है लिट् क पर रहत पर)

उदा०—स्मृ—मस्मरतु । मम्मरु । स्मृ—सम्परतु । सम्पर । ऋदृद्धिप्रिये तु पूर्वप्रतिषेधेन वृद्धिरेप्यते । मन्वार । मन्मारः

मि०—स्मृ लिट् । स्मृ प्रतुम् । स्मृ स्मृ अतुम् । स्मृ स्मृ अतुम् । स स्मृ अतुम् । स स्मृ अतुम् । स स्मर अतुम् । स स्मर अतुम् । मन्मारतु ।

ऋच्छन्वनाम् ७।४।११

प० वि०—ऋच्छत्यताम् ६।३

अर्थ—[लिटि गुण] ऋच्छतेरङ्गन्त्र ऋच्चेतन्य ऋकारान्ताना च लिटि परतो गुणो भवति । (ऋच्छ गति इन्द्रिय प्रत्य मूर्तिभावतु, ऋ, ऋकारान्त क विभेव न निगरणे इथादि धातुभों का गुण हाता, है लिट् क परे रहत पर)

उदा०—आनच्छ । आनच्छतु । आनच्छ । ऋ—आर । आरतु । आरु । ऋकारान्तानाम्—उकरतु । चकरु । जगरतु । जगरु ।

मि०—ऋच्छ अतुम् । अच्छ अतुम् । अच्छ अच्छ अतुम् । अ अच्छ अतुम् । आ अच्छ अतुम् । आ अच्छ अतुम् । आ अच्छ अतुम् । आ अच्छ अतुम् ।

आनच्छतु ऋदृद्धिप्रिये तु पूर्वप्रतिषेधेन वृद्धिरेप्यते । चकार । जगारः

शदप्रा ह्रस्वो वा ७।८।१०

प० वि०—शदप्रांम् ६।३ ह्रस्व १।१ वा अ० ।

अर्थ—[लिटि] श हिमाया, ष विचारणे, प पालनपूरणयो इत्येते-पामद्धानां लिटि परतो वा ह्रस्वो भवति । (श द्वाँ शोर प धातु का ह्रस्व हा जाना है लिट् क पर रहत पर. विकल्प करके)

उदा०—विशप्रतु । विशप्रु । विशशरतु । विशशरु । विन्दतु । विन्दः । विन्दरतु । विन्दरु । निषप्रतु । निषप्रु । निषरतु । निषरु ।

ऋयाचनात् पने गुणो भवत्येव । असति ह्रस्वमहो धावच-

नेन विकल्पिते यस्मिन् पक्षे गुणो नास्ति तस्मिन् पक्षे ऋत इद्घातो-
रितीत्वं प्रसज्येत, उदोष्ठ्यपूर्वस्येत्युत्वं च (७. १. १०२) तस्मात् तन्नि-
वृत्त्यर्थं ह्रस्व इत्युच्यतेः

केऽणः ७।४।१३

प० वि०—के ७।१ अणः ६।१

अर्थ—[ह्रस्वः] के प्रत्यये परतोऽणो ह्रस्वो भवति । (क प्रत्यय के परे
रहने पर अण् का ह्रस्व होता है)

उदा०—कुमारिका । किशोरिका ।

सि०—कुमारीका । कुमारिक टाप् । कुमारिका मु । कुमारिका ।

न कपि ७।४।१४

अर्थ—[अणः ह्रस्वः] कपि प्रत्यये परतोऽणो ह्रस्वो न भवति ।

(कप् प्रत्यय के परे रहने पर अण् का ह्रस्व नहीं होता है)

अणिगिति पूर्वण एकारेण प्रत्याहारग्रहणम्

उदा०—बहुकुमारीकः । साधनं तु नद्युत्तश्चेति (५.४.१५३) द्रष्टव्यम् ।

आपोऽन्यतरस्याम् ७।४।१५

अर्थ—[न कपि ह्रस्वः] आबन्तस्याङ्गस्य कपि ह्रस्वो न भवति अन्य-
तरस्याम् । (आबन्त अङ्ग का विकल्प से ह्रस्व नहीं होता है, कप् प्रत्यय के
परे रहने पर)

उदा०—बहुखट्वाकः । बहुखट्वाक ।

ऋदृशोऽङि गुणः ७।४।१६

प० वि०—ऋदृशः ६।१ अङि ७।१ गुणः १।१

अर्थ—ऋवर्णान्तानां दृशश्च अङि परतो गुणो भवति ।

(ऋवर्णान्त शीर इस् धातु का गुण होता है अङ् के परे रहने पर)

उदा०—ऋ—अकरत् । अकरताम् । अकरन् । दृश्—अदर्शात् ।

अदर्शाताम् । अदर्शन् ।

अस्यतेस्थुक् ७।४।१७

अर्थ—[अङि] असु क्षेपणे इत्यस्य धातोः थुक् आगमो भवत्यङि
परतः । (अस् धातु को थुक् का आगम होता है अङ् के परे रहने पर)

उदा०—आस्थत् । आस्थताम् । आस्थन् ।

श्वयतेरः ७।४।१८

अर्थ—[अडि] टुओस्वि गतिवृद्धयोः इत्यस्याङ्गस्य अकारादेशो भवत्यडि । (टुओस्वि अङ्ग का अकार आदेश होता है, अच् के परे रहने पर)
उदा०—अश्वन् । अश्वताम् । अश्वन् । अश्वः । अश्वतम् ।
अश्वत । अश्वम् । अश्वाव । अश्वाम ।

पतः पुम् ७।४।१९

अर्थ—[अडि] पल् गती इत्येतस्याङ्गस्य पुमागमो भवत्यडि परतः
(पन् घातु को पुम् का आगम होता है अड् के परे रहने पर)
उदा०—अपप्तत् । अपप्तताम् । अपप्तन् ।

वच उम् ७।४।२०

अर्थ—[अडि] वच परिभाषणे इत्येतस्याङ्गस्य अडि परतः उमा-
गमो भवति । (वच् घातु को पुम् का आगम होता है अड् के परे रहने पर)
उदा०—अवोचन् । अवोचताम् । अवोचन् ।

शीङ् सार्वधातुके गुणः ७।४।२१

अर्थ—शीङोऽङ्गस्य सार्वधातुके परतो गुणो भवति ।
(शीङ् घातु को सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहने पर गुण होता है)
उदा०—शेते । शयाते । शेरते । सार्वधातुक इति किम्-शिश्ये ।

अयङ् यि क्किति ७।४।२२

प० वि०—अयङ् १।१ यि ७।१ क्किति ७।१

अर्थ—[शीङः] यकारादी क्किति प्रत्यये परतः शीङोऽङ्गस्य अयङ्
इत्ययमादेशो भवति । (यकारादि कित् द्विन् प्रत्यय के परे रहने पर शीङ्
घातु को अयङ् यह आदेश होता है)
उदा०—शाप्यते । शाशप्यते । प्रशप्य ।

अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः ७।४।२५

प० वि०—अकृत्सार्वधातुकयोः ७।२ दीर्घः १।१ स०—कृच्च सायं-
धातुकं चेति कृत्सार्वधातुके, न कृत्सार्वधातुके अकृत्सार्वधातुके तयोः
अकृत्सार्वधातुकयोः ।

अर्थ—[यि क्किति] अकृद्प्रकारे असार्वधातुकप्रकारे च क्किति
प्रत्यये परतोऽजन्तस्याङ्गस्य दीर्घो भवति । (कृद् और सार्वधातुक भिन्न यत्ना-

रादि क्त् डित् प्रत्यय के परे रहने पर अजन्त अङ्ग का दीर्घ होता है)

उदा०—चीयते । चीयेते । चीयन्ते । चेचीयते । चेचीयेते । चेची-
यन्ते । स्तूयते । स्तूयेते । स्तूयन्ते ।

सि०—चिञ् यक् ते । चि यङ् । ष्टुञ् यक् ते । अकृदिति किम् ।
प्रकृत्य । प्रहृत्य । असार्वधातुक इति किम्—चिनुयात् ।

च्वी च ७।४।२६

अर्थ—[दीर्घ] च्विप्रत्यये परतोऽजन्तस्याङ्गस्य दीर्घो भवति ।

(च्वि प्रत्यय के परे रहने पर अजन्त अङ्ग को दीर्घ होता है)

उदा०—पट्टकरोति । पट्टभवति । पट्टस्यात् ।

रीङ् ऋत. ७।४।२७

प० वि०—रीङ् १।१ ऋतः ६।१

अर्थ—[अकृतसार्वधातुकयोः यि] ऋकारान्तस्याङ्गस्य अकृतकारेऽसार्व-
धातुक्यकारे च परतो रीङ् इत्ययमादेशो भवति ।

(कृत् और सार्वधातुक भिन्न यकारादि प्रत्यय के परे रहने पर ऋकारान्त
अङ्ग के स्थान में रीङ् यह आदेश होता है)

उदा०—मात्रीयति । मात्रीयते । पित्रीयते । चेक्रीयते ।

सि०—माट् क्यच् । माट् य । मात् रीङ् य । मात्रीय । मात्रीय शप्
तिप् । मात्रीयति । माट् क्यङ् । पिट् क्यङ् । कृ यङ् ।

रिङ् शयग्लिङ् क्षु ७।४।२८

प० वि०—रिङ् १।१ शयग्लिङ् ७।३

अर्थ—[असार्वधातुके यि ऋत.] ऋकारान्तस्याङ्गस्य श यक् इत्ये-
तयोर्लिङि च यकारादौ असार्वधातुके परतो रिङ् इत्ययमादेशो भवति ।

(श यक् और सार्वधातुक भिन्न यकारादि लिङ् के परे रहने पर ऋका-
रान्त अङ्ग को रिङ् यह आदेश होता है)

उदा०—श-आद्रियते । आद्रियते । यक्—क्रियते । ह्वियते । लिङ्-
क्रियात् । ह्वियात् ।

सि०—दृङ् आदरे । धृङ् अवस्थाने । आङ् पूर्वः । धृ श त ।
ध् रिङ् अ ते । धि अ ते । ध्र् इयङ् अ ते । ध्रियते । आद्रियते ।

गुणोत्तिसंयोगाद्योः ७।४।२९

प० वि०—गुण १।१ अर्त्तिसंयोगाद्योः ६।२

अर्थ—[ऋतः यकि लिङि; श इत्यत्रासंभवान्नानुवर्त्तते] अर्त्तः संयोगादीनामृकारान्तानां च यकि असार्वधातुके चकारादौ लिङि च परतो गुणो भवति । (ऋ घोर सयोग आदि है जिसका ऐंमे ऋकारान्त भद्र वा गुण होता है यक् घोर सार्वधातुक भिन्न यकारादि लिट् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—ऋ—यकि—अर्यते । अर्यते । अर्यन्ते । लिङि—अर्यान् । अर्यास्ताम् । अर्यासुः । अर्याः । अर्यास्तम् । अर्याम्न । अर्यामम् । अर्याम्ब । अर्याम्भ । संयोगादेः ऋतः—यकि—स्मर्यते । स्मर्यते । स्मर्यन्ते । लिङि—स्मर्यात् । स्मर्यास्ताम् । स्मर्यासुः । स्मर्याः । स्मर्यास्तम् । स्मर्यास्त । स्मर्यासम् । स्मर्यास्व । स्मर्यास्म ।

यङि च ७।४।३०

अर्थ—[अत्तिसंयोगादोः ऋतः गुणः] अर्त्तः संयोगादेश्च ऋतो गुणो भवति यङि च परतः । (ऋ घोर सयोगादि ऋकारान्त भद्र को गुण होता है, यङ् के परे रहने पर)

उदा०—ऋ—अर्यते । स्मृ—सास्मर्यते । धृ—दाध्यर्यते । स्तृ—सास्तर्यते । × हन्तेर्हिंसायां घ्नीभावो वक्तव्यः × जेघ्नीयते ।

सि०—अर्यते इत्यस्य साधनं सन्वोडोरिति सूत्रे द्रष्टव्यम् । स्मृ यङ् । स्मर् य । स्मर् स्मर् य । स स्मर् य । सा स्मर्य शप् त । साम्मर्यते । सास्मर्यते । सास्मर्यन्ते । हन् यङ् । घ्नी य । घ्नी घ्नी य । घ्नी घ्नी य । वि घ्नी य । मि घ्नी य जि घ्नी य । जेघ्नीय शप् ते । जेघ्नीयते । हिंसायामिति किम्—जङ्घन्यते । हन् यङ् । हन् हन् य । ह हन् य । क हन् य । ज हन् य । ज घ्न य । ज नुक् घ्न य । ज प्न्य । जङ्घन्य शप् ते । जङ्घन्यते ।

ई घ्राध्मोः ७।४।३१

१० वि०—ई (अविभ०) घ्राध्मोः ६।२

अर्थ—[यङि] घ्रा ध्मा इत्येतयोर्यङि परत ईकारादेशो भवति । (घ्रा घोर ध्मा ध्रग को ईकार आदेश होगा है यङ् के परे रहने पर)

उदा०—जेघ्नीयते । जेध्मीयते ।

अस्य च्चो ७।४।३२

अर्थ—[ई] अघर्णान्तस्याद्गस्य च्चो परत ईकारादेशो भवति ।

(प्रवर्णान्त भ्रग को ईकार आदेश होता है च्वि प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—शुल्कीभवति । शुल्कीकरोति । शुल्कीस्यात् ।

सि०—साधनमिति अभूत्तद्भावे इति सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

क्यच्चि च ७।४।३३

अर्थ—[अस्य ई] क्यच्चि परतोऽवर्णान्तस्याङ्गस्य ईकारादेशो भवति ।

(क्यच् के परे रहने पर प्रवर्णान्त ङङ्ग को ईकार आदेश होता है)

उदा०—पुत्रीयति । घटीयति ।

सि०—सिद्धिस्तु सुपः आत्मनः क्यच् इत्यत्र द्रष्टव्या ।

द्यतिस्यतिमास्थामिति किति ७।४।४०

प० वि०—द्यति-स्यति-मा-स्थाम् ६।३ इत् १।१ ति ७।१
किति ७।१

अर्थ—दो अवखण्डने, पो अन्तर्कर्मणि, मा माने, माङ् माने शब्दे च, माङ् माने, मेङ् प्रणिदाने, ऋगामादाग्रहणेऽवविशेषः (परि०) इति चतुर्णामपि^१ ग्रहणम्) ष्ठा गतिनिवृत्तौ इत्येतेपामङ्गानाम् इकारादेशो भवति तकारादौ किति प्रत्यये परत । (इन् घातुघो को इकार आदेश होता है, तकारादि कित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—निर्दितः । निर्दितवान् । अवसितः । अवसितवान् । मितः । मितवान् । स्थितः । स्थितवान् । तीति किम् । अवदाय । कितीति किम् । अवदाता ।

ऋत्राद्यस्य दो द्घोः (७. ४. ४६) इति इत्वे प्राप्ते शेषाणां घुमास्थेति सूत्रेण (६ ४ ६६) ईत्वे प्राप्ते इत्वं विधीयतेः

शाछोरन्यतरस्याम् ७।४।४१

प० वि०—शाछोः ६।२ अन्यतरस्याम् अ० ।

अर्थ—[इत् ति किति] शो तनूकरणे, छो छेदने इत्येतयोरङ्गयोः तकारादौ किति प्रत्यये परत इकारादेशो भवति अन्यतरस्याम् । (शो और छो इनको इकार आदेश होता है तकारादि कित् के परे रहने पर विकल्प करके)

उदा०—शा-निशितम् । निशातम् । निशितवान् । निशातवान् । छा-अवच्छिन्नम् । अवच्छातम् । अवच्छितवान् । अवच्छातवान् ।

१माङ् माने इति देवादिकः न सर्वसम्मत, भ्रतस्तद्भावे त्रयाणाम् ।

सि०—शो । शा क्त । शात । निशात सु । निशात अम् ।
निशातम् । निशितम् ।

दघातेर्हिः ७।४।४२

प० वि०—दघातेः ६।१ हिः १।१

अर्थ—[ति किति] दघातेरङ्गस्य हि इत्ययमादेशो भवति तकारादौ किति प्रत्यये परतः । (या घातु को हि यह भादेश होता है तकारादि कित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—हितः । हितवान् । हित्वा ।

ॐ अत्रेदं बोध्यम्—शितपा शपातुब्धेन निर्दिष्टं यद् गणेन च ।
यत्रैकाञ् प्रहण चैव पञ्चैतानि न यद्भुक्ति ।

दघातेर्हिः इत्यत्र शितपा निर्देशः, अत एव यद्भुगन्तस्य हिरादेशो न भवति, दाधीतम्, दाधीतवान्, दाधीत्वा ।

जहातेश्च कित् ७।४।४३

अर्थ—[हिः] जहातेश्चाङ्गस्य क्त्वाप्रत्यये परतो हि इत्ययमादेशो भवति । (जहाति घातु का हि भादेश होता है क्त्वा प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—हित्वा राज्य धन गतः । हित्वा गन्धति ।

दो दद्घो ७।४।४६

प० वि०—दः ६।१ दद् १।१ घोः ६।१

अर्थ—[ति किति] घुसङ्गस्य दा इत्येतस्य दद् इत्ययमादेशो भवति तकारादौ किति प्रत्यये परतः । (घु सङ्ग दा घातु के स्थान में दद् यह भादेश होता है तकारादि कित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—दत्तः । दत्तवान् । दत्त्वा ।

सि०—दा क्त । दा त । दत् त । दत् त । दत्त सु । दत्त ।

अच उपसर्गति ७।४।४७

प० वि०—अचः ५।१ उपसर्गान् ५।१ तः १।१

अर्थ—[दद् घोः ति किति] अजन्तादुपसर्गादुत्तरस्य दा इत्येतस्य घुसङ्गस्य त इत्ययमादेशो भवति तकारादौ किति प्रत्यये परतः ।

(अजन्त उपसर्ग के पश्चात् घुसङ्ग दा के स्थान में त यह भादेश होता है तकारादि कित् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—त इत्यत्र अकार उच्चारणार्थः । प्रत्तम् । अयत्तम् ।

सि०—प्र दा क्त । प्र दा त । प्र त् त । प्रत्त सु । प्रत्त अम् ।
प्रत्तम् ।

अपो भि ७।४।४८

प० वि०—अप ६।१ भि ७।१

अर्थ—[त] अप् इत्येतस्याङ्गस्य भकारादौ प्रत्यये परतस्त इत्यय
मादेशो भवति । (अन् का तकार आदेश होता है भकारादि प्रत्यय के पर
रहन पर)

उदा०—अद्भि । अद्भ्य । भीति किम्—अप्सु ।

स स्याधधातुके ७।४।४९

प० वि०—स ६।१ सि ७।१ आर्धधातुके ७।१

अर्थ—[त] सकारान्तस्याङ्गस्य सकारादावर्धधातुके परतस्तका-
रादेशो भवति । (सकारान्त अङ्ग को तकार आदेश होता है सकारादि
आधधातुक प्रत्यय के पर रहन पर)

उदा०—वत्स्यति । अवत्स्यत् । विवत्सति ।

सि०—वस् लृट् । वस तिप् । वस् स्य ति । वल्यति ।

तासस्त्योर्लोप ७।४।५०

प० वि०—तासस्त्यो ६।२ लोप १।८

स०—तास् च अस्तिश्चेति तासस्ती तयो ।

अर्थ—[सि स] तासेरस्तेश्च सकारस्य सकारादौ प्रत्यये परत
लोपो भवति । (तन् और अस् धातु के सकार का लोप होता है सकारादि
आधधातुक प्रत्यय के पर रहन पर)

उदा०—भवितासि । कर्त्तासि । कर्त्तासे । अस्ते । त्वमसि ।
व्यतिसे । ❀ अस्तेरकारसकारयोर्लुप्तयो से इति प्रत्ययमात्रमेव
पदम् ।

रि च ७।४।५१

अर्थ—[तासस्त्योर्लोप स] तासेरस्तेश्च सकारस्य लोपो भवति ।
रेफानौ च प्रत्यये परत ।

(तास् और अस् के सकार का लोप होता है रेफादि प्रत्यय के पर रहन पर)

उदा०—भवितारौ । भवितार । ❀ लोके अस्ते रेफादिप्रत्ययो न
सम्भवति इति नास्ति उदाहरणम् ❀

ह एति ७।४।५२

प० वि०—हः १।१ एति ७।१

अर्थ—[तासस्त्योः सः]-तासस्त्योः सकारस्य हकारादेशो भवति एति परतः । (ताम् घोर भम् के सकार के स्थान में हकार आदेन होता है एकार के के परे रहने पर)

उदा०—भविताहे । अस्तेः—व्यतिहे ।

सि०—व्यति अस् इट् । व्यति अस् ए । व्यति स् ए । व्यति ह् ए । व्यतिहे ।

सनि मीमाधुरभलभशकपतपदामच इस् ७।४।५४

प० वि०—सनि ७।१ मी-मा-धु-रभ-लभ-शक-पत-पदाम् ६।३ अचः ६।१ इस् १।१

अर्थ—[सि] मीम् हिंसायां, डुमिब् प्रक्षेपणे (उभयोरपि प्रहणम्) मा (इति गामादाप्रहणेष्वविशेष इति परिभाषया मेड् प्रभृतीनां चलु-खांमपि^१ प्रहणम्) घु, रभ राभस्ये, डुलभप् प्राप्ती, शकल शक्ती, शल डुल पत्नल गती, पद गती इत्येतेषामङ्गानामचः स्थाने इस् इत्ययमादेशो भवति सनि सकारादौ प्रत्यये परतः । (इन घातुभो के भच् के स्थान में इम् यह आदेश होता है साकरादि मन् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—मीनाति । मित्सति । मिनोति । प्रमित्सति । मित्सते । अप-मित्सते । दित्सति । धित्सति । रभ—आरिप्सते । लभ—आलिप्सते । शक—शिञ्जति । पत—पित्सति । पद—प्रपित्सते ।

सि०—मित्सति । मी सन् । म् इस् सन् । मित् स । मित्स^२ । मिन् मिन् स । मि मिन् स । मित्स शप् तिप् । मित्सति । आरिप्सति । रम् सन् । र् इस् भ् स । रिस् भ् स । रि भ् स । रिप्स । रिप्स शप् तिप् । रिप्सति । आरिप्सति । पित्सति, पिपतिपति × तनिपतिदृष्टाणाम् (७।२।४६ घा०) × इति वेट् ।

आप्लप्युधामीत् ७।४।५५

प० वि०—आप्-क्षपि-धाम् ६।३ ईन् १।१

अर्थ—[अचः सि सनि] आप्ल व्याप्ती, क्षा पुक् शिञ्, ऋधु पृद्धी, इत्येतेषामङ्गानामचः स्थाने ईकारादेशो भवति सनि सकारादौ प्रत्यये परतः । (मा-ट्, क्षपि घोर ऋधु धृत्त वा ईकार आदेन होता है सकार-

रादि सन् प्रत्यय के परे रहने पर)

उदा०—आप्—ईप्सति । झपि—झीप्सति । ऋध्—इत्सति ।

सि०—ईप्सति । आप् सन् । ईप् स । ईप् ईप् स । ई ईप् स । ईप्स शप् तिप् । ईप्सति । ईत्सति, झीप्सति इत्येतयोः साधनं सनीवन्तर्धेति (७. २. ४६) सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

दम्भ इच्च ७।४।५६

प० वि०—दम्भ. ६।१ इत् १।१ च अ० ।

अर्थ—[अच सि सनि] दम्भेश्च स्थाने इकारः चकाराद् ईकारश्च आदेशा भवति सनि सकारादौ परतः । (सकारादि सन् के परे रहने पर दम् का इकार और चकार से ईकार आदेश होता है)

उदा०—धीप्सति । विप्सति ।

सि०—सिद्धिस्तु सनीवन्तेति (७. २. ४६) सूत्रे द्रष्टव्या ।

अभ्यासप्रकरणम्—

अत्र लोपोऽभ्यासस्य ७।४।५८

प० वि०—अत्र अ० । लोपः १।१ अभ्यासस्य ६।१ ॥

अर्थ—अत्र यदेतन् प्रकान्त सनिमीमेत्यारभ्य मुचोऽन्मकस्येति यावन् तस्य अभ्यासस्य लोपो भवति । (यहा अर्थात् सनि मीमा० से मुचोऽन्मकस्य पयन्त जिनको इसादि कहा है उसके अभ्यास का लोप होता है)

उदा०—पूर्वेषु सूत्रेषुदाहृतानि ॥

❀ 'अभ्यासस्य' पदस्य स्वरितवचनादा अभ्यासपरिसमाप्तेरधिकारो द्रष्टव्यः❀ (इस सूत्र में 'अभ्यासस्य' पद स्वरित है अतः इस पद का अभ्यास की समाप्ति पर्यन्त अधिकार' जाता है)

ह्रस्व ७।४।५९

अर्थ—अङ्गस्याभ्यासस्य ह्रस्वो भवति । (अङ्ग के अभ्यास को ह्रस्व होता है)

उदा०—डुढीकिपते । तुत्रोकिपते ।

सि०—डौकृ, तौकृ । डौक् सन् । डौक् इट् स । डौकि स । डौकिप । डौक् डौकिप । डौ डौकिप । डु डौकिप । डु डौकिप । डुडौकिप शप् ते । डुडौकिपते ।

हलादिः शेषः ७।४।६०

प० वि०—हल् १।१ आदिः १।१ शेषः १।१

१. स्वरितेनाधिकारः (१. ३. ११)

वृ वृत् त । व वृत् त । वर वृत् त । व वृत् पश् । ववृत्ते । एतानि त्रीणि
 रूपाणि यङ्लुगन्तस्य सन्ति । नृत् यङ् । नृत् नृत् य । नृ नृत्
 य । न नृत् य । नर् नृत् य । न नृत् य । न रुक् नृत् ।
 नर् नृत् शप् तिप् । नर् नृत् ति । नर्न अर् त् ति । नर्नर्त्ति । न रिक्
 नर्त्ति । नरिनर्त्ति । न रीक् नर्त्ति । नरीनर्त्ति । ॐइत्यत्रेदं बोध्यम्—
 अभ्यासविकारेषु अपवादो नोत्सर्गान्विधीन्वाधत् इत्युरदत्वे कृते स्मादय
 आगमाः क्रियन्तेः

(अभ्यास के विकार में अपवाद सूत्र उत्सर्ग सूत्र का बाधक नहीं होता ।
 अतः यहाँ पर रक् रिक् रीक् इनके विधायक अपवाद सूत्र इस सूत्र के पश्चात्
 में है, इसलिये परे होने से यदि वे यहाँ पर लग जायें तो उरत् सूत्र की प्रवृत्ति
 अवर्णान्त न रहने से नहीं होती । इन बातों के लिये यह परिभाषा है, इससे
 पहले उरत् सूत्र लग जायेगा, उसके पश्चात् स्मादि का आगम वरज (चाहिये)

द्युतिस्वाप्यो. सम्प्रसारणम् ७।४।६७

व्यथो लिटि ७।४।६८

प० वि०—व्यथः ६।१ लिटि ७।१

अर्थ—[सम्प्रसारणम्] व्यथ भयचलनयोरित्येतस्य लिटि परतो-
 ऽभ्यासस्य सम्प्रसारणं भवति । (व्यथ के अभ्यास का सम्प्रसारण होता है
 लिटि के पर रहने पर)

उदा०—विद्यथे । विद्यथाते । विद्यथिरे ।

सि०—व्यथ् लिट् । व्यथ् त । व्यथ् व्यथ त । य् इ अ य्
 व्यथ् त । विथ व्यथ् त । वि व्यथ् ण । विव्यथे ।

दीर्घ इणः किति ७।४।६९

प० वि०—दीर्घः १।१ इणः ६।१ किति ७।१

अर्थ—[लिटि] इणोऽभ्यासस्याङ्गस्य दीर्घो भवति किति लिटि परतः ।
 (इण् धातु के अभ्यास का दीर्घ होता है किन्तु लिटि के परे रहने पर)

उदा०—ईयतुः । ईयुः । किनीति किम् । इयाय । इययिथ ।

सि०—ईयतुः । इण् । इ लिट् । इ अतुम् । य् अतुम् । इय्
 अतुम् । ईयतुः । इयाय । इ यत् । ऐ अ । आय अ । इ आय् अ ।
 इयद् आय् अ । इय् आय । इयाय ।

अत आदे ७।४।७०

प० वि०—अत ६।१ आदे ६।१

अर्थ—[लिटि दीर्घ] अभ्यासस्यादेरकारस्य दीर्घो भवति लिटि परत । (अभ्यास के आदि अकार का दीर्घ हाता है लिटि के परे रहन पर)

उदा०—आट् । आटतु । आटु । आदेरितिक्म्—पपाच ।

सि०—अट् अट् एल् । अ आट् अ । आ आट् अ । आट् अ । आट् ।

तस्मान्नुड् द्विहल ७।४।७१

प० वि०—तस्मात् ५।१ नुट् १।१ द्विहल ६।१ स०—द्वौ हलौ यस्य तद् द्विहल् तस्य द्विहल ।

अर्थ—तस्माद् दीर्घोभूतादभ्यासादुत्तरस्य द्विहलोऽङ्गावयवस्य नुडागमो भवति । (उस अभ्यास के दो हल वाल अङ्ग अवयव का नुट् का आगम हाता है)

उदा०—आनर्च । आनर्चतु । आनर्चु ।

सि०—अर्च एल् । अर्च अर्च अ । अ अर्च अ । आ अर्च अ । आ अर्च अ । आ नुट् अर्च अ । आनर्च । ङ्कारैकदेशो रेफो हल्यद्वयेन गृह्यते । तेनेहापि द्विहलोऽङ्गस्य नुडागमो भवति । आनर्थतु । आनृषु ङ्

अश्नोतेश्च ७।४।७२

अर्थ—[नुट्] अश्नोतेश्च दीर्घोभूतादभ्यासादुत्तरस्य नुडागमो भवति । (अग व्याप्ती घानु के दीर्घ हुए हुए अभ्यास के पश्चात् नुट् का आगम हाता है)

उदा०—व्यानशे । व्यानशाते । व्यानशारे ।

भवतेर ७।४।७३

प० वि०—भवते ६।१ अ १।१

अर्थ—[लिटि] भवतेरभ्यासस्वारादेशो भवति लिटि परत ।

(भवति घानु के अभ्यास को अकार आदेश हाता है लिटि के परे रहन पर)

उदा०—बभूव । बभूवतु । बभूवु । बभूवे । बभूवाते । बभूवारे ।

निजा तयासा गुणः इली ७।४।७५

र्थ—णिजिर् शौचपोषणयो, निजिर् पृथग्भावे, निष्ठु व्याप्ती

इत्येतेषां निजादीनां त्रयाणां गुणो भवति श्लो सति ।

(इन घातुओ के अम्यास को गुण होता है श्लु में)

उदा०—नेनेक्ति । नेनक्ति । नेनिजति । नेनेत्ति । नेनिकथ ।
नेनिकथ । नेनेञ्मि । नेनिञ्ज । नेनिञ्मः ॥ वेवेक्ति । वेवेष्टि ।

भृजामित् ७।४।७६

प० वि०—भृजाम् ६।३ इत् १।१

अर्थ—[त्रयाणाम् श्लौ] डुभृञ् धारणपोषणयो, माङ् माने,
ओहाङ् गतौ इत्येतेषां त्रयाणां भृजाम् अम्यासस्य इकारादेशो भवति
श्लो सति ।

(इन घातुओ के अम्यास को इकारादेश होता है श्लु में)

उदा०—विभर्ति । विभृत । विभ्रति । विभर्षि । विमृथः । विभृथ ।
विभर्मि । विभृवः । विभृम । मिमीते । मिमाते । मिमते । मिमीपे ।
मिमाथे । मिमीध्वे । मिमे । मिमीवहे । मिमीमहे । जिहीते । जिहाते ।
जिहृते । जिहीपे । जिहाथे । जिहीध्वे । जिहे । जिहीवहे । जिहीमहे ।

सि०—भृ लट् । भृ तिप् । भृ शप् तिप् । भृ श्लु ति । भृ ति । भृ भृ
ति । भर् भृ ति । भ भृ ति । व भृ ति । विभर्त्ति । विभर्ति ।

अर्त्तिपिपत्योश्च ७।४।७७

प० वि०—अर्त्ति-पिपत्यो ६।२ च अ० ।

अर्थ—[इत् श्लौ] ऋ गतौ, ष् पालनपूरणयो. इत्येतयोरम्यासस्य
इकारादेशो भवति श्लो ।

(ऋ ओर ष घातु के अम्यास का इकार आदेश होता है श्लु में)

उदा०—इयर्त्ति । इयृत । इयति । इयर्षि । इयथः । इयृथ । इयर्मि ।
इयवः । इयमः । पिपर्त्तिः । पिपूर्तः । पिपुरति । पपर्षि । पिपूर्यः । पिपूर्य ।
पिपर्मि । पिपूर्यः । पिपूर्यः ।

सि०—ऋ लट् । ऋ श्लु तिप् । ऋ ति । ऋ ऋ ति । अर् ऋ ति । अ
ऋ ति । इ ऋ ति । इर् ऋ ति । इ ऋ ति । इयङ् ऋ ति । इय् अर्
ति । इयर्त्ति । इयर्त्ति । पिपूर्तः । ष् तस् । पुर् तस् । पूर् तस् । पूर् पूर्
तस् । पू पूर् तस् । पु पूर् तस् । पिपूर्तः ।

सन्यतः ७।४।७८

प० वि०—सनि ७।१ अतः ६।१

अर्थ—[इत] अकारान्तस्य अभ्यासस्य सनि परतः इकारादेशो भवति । (सन् के परे रहने पर अकारान्त अभ्यास के स्थान में इकार प्रादेश होता है)

उदा०—पिपासति । तिष्ठासति ।

गुणो यङ्लुकोः ७।४।२

प० वि०—गुणः १।१ यङ्लुकोः ७।२

अर्थ—यङि यङ्लुकि च परतोऽभ्यासस्य गुणो भवति ।

(यङ् और यङ्लुक् के परे रहने पर अभ्यास को गुण होता है)

उदा०—यङि—चेचीयते । चेचीयंते । चेचीयन्ते । यङ्लुकि—शो-
मयीति । बोभोति । बोभृतः । बोभुवति ।

दीर्घोऽकितः ७।४।३

प० वि०—दीर्घः १।१ अकितः । स०—न क्किति अकित् तस्य अकितः ।

अर्थ—[यङ्लुकोः] अकितोऽभ्यासस्य दीर्घो भवति यङि यङ्लुकि च परतः । (अकित् अभ्यास को दीर्घ होता है यङ् और यङ्लुक् के परे रहने पर)

उदा०—पापच्यते । पापचीति । पापकित । पापक्तः । पापचिति ।
पापचीपि । पापक्षि । पापक्थः । पापक्थ । पापचीमि । पापक्षिम् । पापच्यः ।
पापक्ष्मः ।

सि०—साधनं तु धातोरेवाच इदिसूत्रे द्रष्टव्यम् ।

नीग्वञ्चुस्त्रं सुध्वसुभ्रं सुकसपतपदस्कन्दाम् ७।४।४

प० वि०—नीक् १।१ वञ्चु-स्त्रं सु-ध्वसु-भ्रं सु-कस पत-पद-स्क-
न्दाम् ६।३

अर्थ—[यङ्लुकोः] वञ्चु, (चञ्चु, तञ्चु, ल्वञ्चु, म्रञ्चु, मुञ्चु गत्यर्थाः) स्त्रं सु ध्वसु अवसंस्त्रने, कस गती, (शल हुल) पत्लु गती, स्कन्दिर् गतिशोषणयोः इत्येतेषामभ्यासस्य नीगागमो भवति यङि यङ्लुकि च परतः । (इन धातुओं के अभ्यास को नीक् वा आगम होता है यङ् और यङ्लुक् के परे रहने पर)

उदा०—वनीवच्यते । वनीवञ्चीति । सनीस्त्रस्यते । सनीस्त्रंसीति ।
दनीध्वस्यते । दनीध्वंसीति । वनीभ्रस्यते । वनीभ्रंसीति । चनीक्स्पते ।

चनीकसीति । पनीपच्यते । पनीपतीति । पनीपद्यते । पनीपदीति । चनी-
रुद्यते । चनीस्कदीति ।

सि०—ॐ वनीवच्यते इत्यत्र अनिद्रितामित्यादिनानुनासिकलोपः ।
वनीवच्यतीति । अत्र न भवत्यनुनासिकलोपः । यडो लुक्त्वान्न लुमताङ्ग-
स्येति प्रत्ययलक्षणनिषेधात् । अथ नीकि कृतेऽभ्यासस्य ह्रस्वत्वं कस्मान्न
भवति । दीर्घोच्चारणसामर्थ्यात् ॥ॐ

नुगतोऽनुनासिकान्तस्य ७।४।८५

प० वि०—नुक् १।१ अतः ६।१ अनुनासिकान्तस्य ६।१

अर्थ—[यङ्लुकोः] अनुनासिकान्तस्याङ्गस्ययोकारान्तोऽभ्यास-
स्तस्य नुगागमो भवति यङि यङ्लुकि च परतः ।

(अनुनासिका-न्त अङ्ग का जो अकारान्त अभ्यास, उसको यङ् और यङ्-
लुक् के परे रहने पर नुक् का आगम होता है)

उदा०—तन्—तंतन्यते । ततनीति । तंतन्ति । तन्तान्तः । तंतनति ।
तंतनीपि । तंतसि । तन्तान्थः । तन्तान्थ । तन्मनीमि । तन्तन्मि । तन्त-
न्वः । तन्तन्मः । गम्—जंगम्यते । जगमीति । जंगन्ति । जंगतः ।
जगमति । जंगमीपि । जगंसि । जंगथ । जगथ । जंगमीमि । जगन्मि ।
जंगन्वः । जगन्मः ।

सि०—तन्तान्तः । तन्तान्थः । जगतः । जंगमति । जंगन्मि ।

ॐ अत्र महाभाष्येः—नुकि ययम्यते ररम्यते इति र्पाऽसिद्धि-
× अनुस्वारागात्तु सिद्धम् × एवमपीदमेव रूपं स्यात्—यद्येयम्यते इदं न
स्यात् ययम्यते । × पदान्तवञ्च × वा पदान्तस्य ॐ अत्रेदं बोध्यम्-
यंयम्यते इत्यत्र नुकि आगमे कृते नकारस्य नश्चापदान्तस्य भलि इत्ये-
तेन सूत्रेण भलपरत्वाभावान्मो अनुस्वारः । अत एव स्थानिनाऽत्रा-
देशोऽनुस्वार उपलक्ष्यते । तस्मादनुस्वार एवागमोऽत्र विधीयते न तु
नुक् । सत्यप्येवं यद्येयम्यते इत्येव प्राप्नोति अपदान्ते नित्यं परसर्वण-
त्वात्, न तु यंयम्यते इति तदुच्यते—अयं नुगागमो पदान्तवच्येति
भवति इति वक्तव्यं तेन वा पदान्तस्य इति सूत्रेण परसर्वणदेशो
विकल्प्यते तेने उभयमेव रूपं सिध्यति ययम्यते यद्येयम्यते इति ।

जपजभदहृदशभञ्जपशाञ्च ७।४।८६

अर्थ—[नुक् यङ्लुकोः] जप जल्प व्यस्तायां वाचि, जभि जृभी
गात्रविनामे, दह भस्मीकरणे, दश दशने, भञ्जो आमर्दने, पशि

सौत्रो धातु इत्येतेषामभ्यासस्य नुगागमो भवति यद्धि यङ्लुकि च परत । (इन धातुघो क अभ्यास वा नुक का धागम होता है यङ और मङ्लुक के परे रहन पर)

उदा०—जजप्यते । जजपीति । जजभ्यते । जजभीति । ददह्यते । ददहीति । ददश्यते । ददशीति । ङ् दश इति ङशिरस्य नकार लोपार्थमेव निदिष्ट ङ् वमज्यते । वमञ्जीति । पपश्यते । पपशीति । गत्यर्थकोऽय धातु । ङ् पस धातुर्नयान्त सौत्रो गत्यर्थ इति स्पर्श बाधनस्पर्शनयो-रिति अत्र माधव ङ् तत्पक्षे सूत्रेऽपि भञ्जपसा च इति पाठ । पपस्यते । पसस् कण्ठादि , तस्य पपस्यते हुखायते इत्यर्थ ।

चरफलोश्च ७।४।८७

५० वि०—चरफलो ङ् च अ० ।

अर्थ—[नुक् यङ्लुको] चर गतौ, निफला विशारणे, फल निष्पत्तौ (द्वयोरपि प्रहरणम्] इत्येतेषामभ्यासस्य नुगागमो भवति यद्धि यङ्लुकि च परत । (चर और फल धातुघो के अभ्यास को नुक वा धागम हाता है यङ और मङ्लुक के परे रहन पर)

उदा०—चचूर्यते । चचूर्यते । चचूर्यन्ते । चचुरीति । चचूर्ति । चचूर्त । चचरति । पफुल्यते । पफुलीति । पफुलित । पफुलन्त । पफुलति ।

सि०—चर् यङ् । चर् चर् य । च चर् य । च नुक चर् य । च चूर् य । च चूर् य शप्ते । चचूर्यते ।

उत्परस्यात् ७।४।८८

५० वि०—उत् १।१ परस्य ङ् अत ङ् ।

अर्थ—[चरफलो यङ्लुको] चरफलोर्भ्यासात् परस्य अकारस्य स्थाने उकारादेशो भवति यद्धि यङ्लुकि च परत ।

(चर् और फल क अभ्यास क पश्चात् प्रकार क स्थान में उकार आदेश होता है यङ और मङ्लुक क रहन पर)

उदा०—चचूर्यते । चचुरीति । पफुल्यते । पफुलीति ।

सि च ७।४।८९

५० वि०—सि ७।१ च अ० ।

अर्थ—[चरफलो अत उत्] चरफलोर्कारस्य स्थाने उकारादेशो भवति तकारादौ प्रत्यये परत । (चर और फल धातु क अकार क स्थान में उकार आदेश होता है तकारादि प्रत्यय के परे रहन पर)

उदा०—चूर्ति । प्रफुल्लिः ।

सि०—चर् क्तिन् । चूर् ति । चूर् ति । चूर्तिः । फल् क्तिन् । फल् क्तिन् । फल् ति । फुल् ति । फुल्लि सु । प्रफुल्लिः ।

रीगृदुपधस्य च ७।४।६०

प० वि०—रीक् १।१ ऋदुपधस्य ६।१ च अ० ।

स०—ऋदुपधायां यस्य तद् ऋदुपधम् तस्य ऋदुपधस्य ।

अर्थ—[यङ्लुकोः] ऋकारोपधस्याङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्य रीगागमो भवति यङि यङ्लुकि च परतः । (ऋकार उपधा वाले अङ्ग के अभ्यास को रीक् का आगम होता है यङ् और यङ्लुक् के परे रहने पर)

उदा०—वरीवृत्त्यते । वरीवृतीति । वरीवर्त्ति । वरीवृतः । वरी-
वृतति । नरीनृत्यते । नरीनृतीति । नरीनर्त्ति । नरीनृतः । नरीनृतति ।
×रीगृत्वत इति वक्तव्यम् × वरीवृश्च्यते । वरीवृश्चीति । परीपृच्छ्यते ।
यङ्लुकि यङो लुक्त्वात् संप्रसारणं न भवति । तेन पाप्रच्छीति,
पाप्रष्टि ।

रुप्रिकौ च लुकि ७।४।६१

प० वि०—रुप्रिकौ १।० च अ० लुकि ७।१

अर्थ—[ऋदुपधस्य] ऋकारोपधस्याङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्य रुप्रिकावा-
गमौ भवत यङ्लुकि परतः । (ऋकार उपधा वाले अङ्ग के अभ्यास को रुक्
रिक् का आगम होता है यङ्लुक् के परे रहने पर)

उदा०—वर्षतीति । वर्षर्त्ति । वरिवृतीति । वरिवर्त्ति । वर्षत । वरि-
वृतः । वर्षतति । वरिवृतति ।

ऋतश्च ७।४।६२

प० वि०—ऋतः ६।१ च अ० ।

अर्थ—[लुकि] ऋकारान्तस्याङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्य रीक् रुक् रिक्
इत्येते आगमा भवन्ति यङ्लुकि परतः । (ऋकारान्त अङ्ग का जो अभ्यास
उक्तो रोक् रुक् और रिक् ये तीन आगम होत हैं यङ्लुक् के परे रहने पर)

अत्र चकारः सम्बुचयार्थः । ऋकारान्तस्यापि एते आगमा भवेयु-
रिति एवमर्थम् । आतश्चैव विज्ञेयम् अन्यथा रुप्रिकौ च लुकि इत्यत्र
चकारेण रीक् इत्येतस्य अनुवृत्तौ अत्र रोर्नाऽनुवृत्तिर्न स्यात् चानुवृष्ट
नोत्तरत्र इति नियमात्

उदा०—कृ—चरीकरीति । चर्करीति । चरिकरीति । चरीकर्त्ति । चर्कर्त्ति । चरिकर्त्ति । चरीकृतः । चर्कृतः । चरिकृतः । चरीकृति । चर्कृति । चरिकृति ।

सि०—चरीकरीति ङइत्यत्र नाभ्यस्तन्याचि पिति सावधातुक इत्यनेन गुणस्य निषेधो न, तस्य सूत्रस्य लघुस्यत्र गुणस्य निषेधपरकत्वान् अत्र सार्वधातुकार्थधातुकयोरिति गुणो भवत्येवः

किरति चर्करीतान्तं च पचतीत्यत्र यो नयेत् ।

प्राप्तिञ्च तमहं मन्ये प्रारब्धस्तेन सप्रहः ॥

अर्थ—किरतिमिति ऋकारान्तोपलक्षणं, चर्करीतमिति यङ्लुकः पूर्वोच्चार्यसत्रा, पचतीति लट् उपलक्षणम् । तेन चरीकर्त्तव्यादीनि रूपाणि किरतेर्यो नयेदित्यर्थः । प्राप्तिञ्चं रूपादीनां विषयविभागेन या प्राप्तिस्तञ्चं, संप्रहः साधुशब्दसंप्रहः । इति पदमञ्जरी ॥ इत्थं शब्दशास्त्रे व्युत्पन्नस्यैव व्याडिप्रणीते संप्रहप्रत्ययेऽविकार इति मीमांसकाः ।

सन्वल्लघुनि चङ् परेऽनग्लोपे ७।४।६३

प० वि०—मन्वत् १।१ लघुनि ७।१ चङ् परे ७।१ अनग्लोपे ७।१

स०—चङ् परो यस्मात् तच्चङ् परम् तस्मिन् चङ् परे । अत्रो लोपः अग्लोपः । नास्ति अग्लोपो यस्य तदनग्लोपम् तस्मिन् अनग्लोपे ।

अर्थ—लघुनि घात्वक्षरे परतो योऽभ्यासस्तस्य चङ् परे णौ परतः समीप कार्यं भवति अनग्लोपे । (लघु घात्वक्षर के परे रहने पर जो अभ्यास, उसका सन् के समान कार्य होता है चङ् परे ही जिससे ऐसे णिच् के परे रहने पर । अर्थात् सन् के परे रहने पर जो कार्य होता वंसा ही उसको कार्य होता है)

उदा०—अपीपचत् । अपीपचताम् । अपीपचन् । अचीकरन् । अचीकरताम् । अचीकरन् । लघुनीति किम्—अततचन् । अररचन् । अनग्लोप इति किम् । अचरुथत् । ङकथ वाक्यप्रयोग इति अयं घातुः चुरादावदन्त ङ

दीर्घो लघो ७।४।६४

अर्थ—[लघुनि चङ् परेऽनग्लोपे] दीर्घो भवति लघोरभ्यासस्य लघुनि णौ चङ् परेऽनग्लोपे । (लघु घात्वक्षर के परे रहने पर लघु अभ्यास को दीर्घ होता है, चङ् परे है जिससे ऐसे णिच् के परे रहने पर)

उदा०—अचीकरत् । अपीपठत् ।

अत्स्मृदृत्वरप्रथमदस्तस्पशाम् ७।४।६५

प० वि०—अत् १।१ स्मृ-दृ-त्व-र-प्रथ-म-द-स्त-स्-पशाम् ६।३

अर्थ—[चङ्पर] स्मृ चिन्तायाम्, दृ भये, वित्वरा सभ्रमे, प्रथ प्रख्याने, म्रम महने, स्तञ् आच्छादने, स्परा बाधनस्पर्शनयोः इत्येतेषामभ्यासस्य अकारादेशो भवति चङ्परं शौ परतः । (इत घातुप्रो के अभ्यास का अकार आदेश होता है, चङ्परक णिच के परे रहने पर)

उदा०—असस्मरत् । अददरत् । अतत्वरत् । अपप्रथत् । अमम्रदत् । अतस्तरत् । अपस्पशत् ऋसन्वद् भावादिन्त्वं प्राप्तमनेन बाध्यते । तपरकरणसामर्थ्यात् अति कृते दीर्घो लघोरित्येतदपि न भवति अददरत् इतिः

विभाषा वेष्टिचेष्टयोः ७।४।६६

प० वि०—विभाषा १।१ वेष्टिचेष्टयोः ६।२

अर्थ—[अत् चङ्पर] वेष्टि चेष्टि इत्येतयोरभ्यासस्य विभाषा अकारादेशो भवति चङ्परं शौ परतः । (वेष्टि और चेष्टि घातुप्रो के अभ्यास को विन्यसे से अकार होता है चङ्परक णिच् के परे रहने पर)

उदा०—अचवेष्टत् । अविचेष्टत् । अचचेष्टत् । अचिचेष्टत् ।

ई च गणः ७।४।६७

प० वि०—ई (अधिम०) च अ० । गणः ६।१

अर्थ—[चङ्पर] गणोरभ्यासस्य ईकारादेशो भवति चकारादच्च चङ्परं शौ परतः । (गण के अभ्यास को ईकार और चकार से अकार आदेश होता है, चङ्परक णिच् के परे रहने पर)

उदा०—अजीगणत् । अजगणत् ।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणजमहाविद्याकरणपण्डितब्रह्मादत्ता-

चार्याणामन्तेवासिना देवप्रकाशपातञ्जलेन विर-

चितायामष्टाध्यायी-प्रकाशिकाया

सप्तमाध्याये चतुर्थं पादः

इति सप्तमोऽध्यायः

पदस्य ङ।१।१६

अर्थ—प्रागपदान्ताविभाराद् इतोऽप्रे वक्ष्यमाणानि कार्याणि पदस्य भवन्ति इत्यधिकारा वेदितव्यः । (अपदान्त अधिकार के पहल पहल यहा से प्रागे कहे जाने वाले कार्य पद को हाते है, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

पदात् ङ।१।१७

अर्थ—कुत्सने च मुप्यगोत्रादौ इत्येतस्मात्प्राक् इतोऽप्रे वक्ष्यमाणानि कार्याणि पदान् पदस्य भवन्ति इत्यधिकारो वेदितव्यः ।

(कुत्सने च मुप्यगोत्रादौ (न. १ ६६) इस सूत्र के पहल पहल यहा से प्रागे कहे जाने वाले कार्य पद के पदचात् पद के होते है, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

युष्मदस्मदो. पष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वाङ्मावौ ङ।१।२०

५० वि०—युष्मदस्मदो. ६।२ पष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयो ६।२ वाङ्मावौ १।२ स०—युष्मच्च अस्मच्चेति युष्मदस्मदो तयोः युष्मदस्मदोः । पष्ठी च चतुर्थी च द्वितीया चेति पष्ठीचतुर्थीद्वितीया. तामु तिष्ठति य. स पष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थ. तयो. पष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयो । वाम् च नौ च वाङ्मावौ ।

अर्थ—[पदस्य पदात्] पदादुत्तरयो पष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्युष्मदस्मदोः पदयो वाम् नौ इत्यथावादेशौ भवतः । (पद स उत्तर पदयन्त चतुष्मन्त द्वितीयान्त युष्मद् और अस्मद् पद के स्थान में वाम् और नौ यथास्य प्रादेश होते है)

उदा०—पष्ठी—ग्रामो वां स्वम् । ग्रामा नौ स्वम् । चतुर्थी—ग्रामो वां वीयते । ग्रामो नौ वीयते । द्वितीया—ग्रामो वां पश्यति । ग्रामो नौ पश्यति । स्थग्रहण श्रूयमाणविभक्त्यर्थम् । इह मा भून् । इति युष्मत्पुत्र इति ।

बहुवचनस्य अस्मदो ङ।१।२१

अथ—[युष्मदस्मदो पष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः] पदादुत्तरयो-युष्मदस्मदोः पष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वाङ्मावौ वाम् नस् इत्यथावा-देशौ भवतः । (पद से उत्तर पष्ठी चतुर्थी द्वितीया विभक्ति में स्थित बहुवच-नान्त युष्मद् और अस्मद् पद के स्थान में वाम् वस् और नस् प्रादेश होते है)

उदा०—ग्रामो वः स्वम् । जनपदो नः स्वम् । ग्रामो वो दीयते ।
जनपदो नो दीयते । ग्रामो वः पश्यति । जनपदो नः पश्यति ।

तेमयावेकवचनस्य ८।१।२१

प० वि०—तेमयौ १।२ एकवचनस्य ६।१ स०—ते च मे चेति
तेमयो ।

अर्थ—[युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः] युष्मदस्मदोरेक-
वचनान्तयो. षष्ठीचतुर्थीस्थयोर्यथासंख्य ते मे इत्येतावादेशौ भवतः।

(षष्ठी चतुर्थी विभक्ति में स्थित एकवचनान्त युष्मद् और अस्मद् पद के
स्थान में क्रमशः ते और मे आदेश होने हैं, किसी पद के पश्चात्)

उदा०—ग्रामस्ते स्वम् । ग्रामो मे स्वम् ॥ ग्रामस्ते दीयते । ग्रामो मे
दीयत ॥ ॐद्वितीयान्तस्यादेशान्तरविधानसामर्थ्यात्षष्ठीचतुर्थीरेव अय
योग ॐ

त्वामी द्वितीयाय ८।१।२३

अर्थ—[एकवचनस्य युष्मदस्मदोः] द्वितीयायाः एकवचनान्तयोर्द्वि-
ष्मदस्मदोरेयथासंख्य त्वा मा इत्येतावादेशौ भवतः । (द्वितीया एकवचनान्त
युष्मद् और अस्मद् के स्थान में त्वा और मा क्रमशः आदेश होते हैं)

उदा०—ग्रामस्त्वा पश्यति । ग्रामो मा पश्यति ।

इत्याष्टाध्यायी-प्रकाशिकायामष्टमाध्याये प्रथम. पाद

—X—

असिद्धप्रकरणम्—

पूर्वत्रासिद्धम् ८।२।१

प० वि०—पूर्वत्र अ० । असिद्धम् १।१

अर्थ—इतोऽप्रे आ अध्यायपरिसमाप्ते यद्यमानं कार्यं पूर्वेषु सूत्रेषु
असिद्धं भवति इत्यधिकारो वेदितव्यः । (यहा से आगे अध्याय की परिम-
माप्ति तक बहने जाने वाले कार्यं कार्यविधायक न पूर्व सूत्रों की दृष्टि में असिद्ध
समझे जाते हैं, इस बात का अधिकार सम्भन्ता चाहिये)

न मु ने ८।२।३

प० वि०—न अ० । मु अविभ० ने ७।१ इति तृतीयैकवचनयस्य
नाशब्दस्य सप्तम्यैकवचनम् ।

अर्थ—मुभावो नाभावे कर्त्तव्ये नासिद्धो भवति । (ता के स्थान में ना

करने में मु का होना असिद्ध नहीं होता है)

उदा०—अमुना । Xसिज्लोप ग्गादेशे सिद्धो वक्तव्य. X अला-
वीन् ।

सि०—अदम् टा । अद अ टा । अद टा । अमु टा । अनुना ।

नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य ८।२।७

५० वि०—नलोपः १।१ प्रातिपदिकान्तस्य ६।१ स०—नम्य लोप
नलोपः । प्रातिपदिकस्य अन्तः प्रातिपदिकान्तः तस्य प्रातिपदिकान्तस्य ।

अर्थ—[पदस्य] प्रातिपदिकान्तस्य पदस्य यो नशरन्तस्य लोपो
भवति पूर्वप्रसिद्धं च । (प्रातिपदिकान्त पद के नशर का नाश होता है
पौर पूर्व की दृष्टि में असिद्ध होता है)

उदा०—राजा । राजभ्याम् । राजभिः राजता । राजतर ।
राजतमः । कर्ता* ।

न टिमवदध्यो. ८।२।८

(डि और सम्बुद्धि के परे रहने पर नकार का लोप नहीं होता है)

उदा०—आत्रे चर्मन् । लोहिते चर्मन् । मबुद्धौ-हे राजन् ।
हे तक्षन् । × वा नपु सकानामिति वक्तव्यम् × हे चर्मन् । हे चर्म ।

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्य ८।२।९

प० वि०—मात् ५।१ उपधाया ५।१ च अ० । मतो. ६।१ वः १।१
अयवादिभ्यः ५।३ स०—मश्च अश्चेति म तस्मात् मात् ।

अर्थ—मकारान्ताद् मकारोपधादवर्णान्तादवर्णोपधाच्च उत्तरस्य
मतोर्व इत्ययमादेशो भवति, यवादिभ्यस्तु परतो न भवति ।

(मकारान्त, मकारोपध, अवर्णान्त, अवर्णोपध के पश्चात् मतुप् के स्थान
में वकार प्रादेश होता है, यवादि शब्द को छोड़कर)

उदा०—मकारान्तात्-किवान् । शिवान् । मकारोपधात्-शमीवान् ।
दाडिमीवान् । अवर्णान्तात्-वृक्षवान् । प्लक्षवान् । अवर्णोपधात्-पय-
स्वान् । यशस्वान् । भास्वान् ।

सि०—किमस्यास्ति इति मतुप् । किम् मतुप् । किम् मत् । किम्
वत् । किम् वत् सु । किम् वत् सु । किम् घात् स् । किं वा नु म् त् स् ।
किंवान् स् । किंवान् । किंवान् ।

भय ८।२।१०

अर्थ—[मतोर्वः] भयन्तादुत्तरस्य मतोर्व इत्ययमादेशो भवति ।
(भयन्त प्रातिपदिक के पश्चात् मतुप् के स्थान में वकार प्रादेश
होता है)

उदा०—अग्निचित्वान् ग्रामः । विद्युत्वान् घलाहकः ।

कृपो रो ल. ८।२।१८

प० वि०—कृपः ६।१ रः ६।१ लः १।१

अर्थ—[पूर्वत्रासिद्धम्] कृपेर्घातोः रेफस्य लकारादेशो भवति
पूर्वत्रासिद्धं च । (कृप् घातु के रेफ के स्थान में लकार प्रादेश होता है और पूर्व
की दृष्टि में प्रसिद्ध होता है)

उदा०—कल्पता । कल्पतारो । कल्पतारः । कल्प्तः । कल्प्तवान् ।

उपसर्गस्यायतो ८।२।१९

प० वि०—उपसर्गस्य ६।१ अयतो ७।१

अर्थ—[सस्य] मल उत्तरस्य सकारस्य लोपो भवति मलि परत ।
 (मल के पश्चात् सकार का लोप होता है मल के पर रहन पर)
 उ०—अभित्त । अभित्था ।

ह्रस्वादङ्गात् ८।२।२७

अर्थ [सस्य मलि] ह्रस्वात्तादङ्गादुत्तरस्य सकारस्य लोपो भवति मलि परत । (ह्रस्वात्त मङ्ग के पश्चात् सकार का लोप हाता है मल के पर रहन पर)
 उ०—अकृत । अइत । अकृथा । अइथा ।

इट ईटि ८।२।२८

अर्थ— [सस्य] इट उत्तरस्य सकारस्य लोपो भवति ईटि परत ।
 (इट के पश्चात् सकार का लोप होता है ईट के पर रहन पर)
 उ०—अलावीत् । अपावीत् ।

स्को सयोगाद्योरन्ते च ८।२।२९

प० वि —स्का ६।२ सयोगाद्यो ६।२ अन्ते ७।१ च अ० । स०—
 सश्च ऋश्च इति स्को तयो स्का । सयोगस्य आदि सयोगादि तयो
 सयोगाद्यो ।

अर्थ—[मलि] सयोगाद्यो सकारककारयोर्लोपो भवति मलि
 परत प०न्ते च । (सयोग के आदि जो सकार और ककार उसका
 लोप हाता है मल के परे रहन पर और पदात्त में)

उ०—ओलस्जी । लग्न । लग्नवान् । साधुलक् । ककारस्य-
 तच् । तष्ट । तष्टवान् । काष्ठतट् ।

सि०—लस्ज् क्त । लस्ज् त् । लज् त् । लज् न् । लग्न सु । लग्न ।
 साधुलक् । लस्ज् क्विप् । लस्ज् । लज् । लग् । लक् । साधुलक् ।
 तच् । तच् क्विप् । तक्प् । तप् । तप् सु । तप् । तड् । तट् ।

चो कु ८।२।३०

अर्थ—[मलि अन्ते च] चवर्गस्य चवर्गादेशो भवति मलि परत
 प०न्ते च । (चवर्ग के स्थान में चवर्ग आदेश होता है मन् के परे रहन पर
 और पदात्त में)

उ०—पक्ता । पक्तुम् । पक्तव्यम् । ओदनपक् । यक्ता ।
 यक्तुम् । यक्तव्यम् । याक् ।

रादेशो भवति ऋलि पदान्ते च । (नह् क हकार क स्थान में घकार प्रादेश होता है ऋल् के पर रहन पर ओर पदात्त में)

उदा०—नद्धा । नद्धुम् । नद्धव्यम् ।

आहस्थ ८।२।३५

अर्थ—[ह ऋलि] आहो हकारस्य थकारादेशो भवति ऋलि परत । (आह व हकार क स्थान में थकार प्रादेश होता है ऋलि क परे रहन पर)

उदा०—आथ ।

त्रश्चभ्रस्जसृजमृजयज राज भ्राजच्छशा प ८।२।३६

अर्थ—[मलि अन्ते च] ओत्रश्चू छेदने, भ्रस्जो पाके, सृज विसर्गे, मृजू शुद्धौ, यज देवपूजासगतिकरणदानेषु भ्राजू दीप्तौ इत्येतेषां छकारान्तानां शकारान्तानां च पकार आदेशो भवति ऋलि परत पदान्ते च ।

(इन धातुषो व तथा छकारान्त ओर शकारान्तो के पकार प्रादेश होता है ऋल् के पर रहन पर ओर पदात्त म)

उदा०—त्रश्च—त्रष्टा । त्रष्टुम् । त्रष्टव्यम् । मूलवृट् । भ्रस्ज—भ्रष्टा । भ्रष्टुम् । भ्रष्ट यम् । धानाभृट् । सृज—स्रष्टा । स्रष्टुम् । स्रष्टव्यम् । रज्जुसृट् । मृज—मार्ष्टा । मार्ष्टुम् । मार्ष्टव्यम् । कसपरिमृट् । यज—यष्टा । यष्टुम् । यष्ट यम् । उपयट् । राज—सम्राट् । स्वराट् । विराट् । ऋराजभ्राजो पदान्तार्थं ग्रहण मलादिराभ्यामिटा व्ययधीयते ऋकेचिच्चाष्टिभ्राष्टिरिति क्तित्रन्तमिच्छन्ति ।

× क्तित्रायादिभ्यश्च वक्तव्य × (३।३।६४ वा०) छकारान्तानाम्—प्रच्छ । प्रष्टा । प्रष्टुम् । प्रष्टव्यम् । शब्दप्राट् । छ्वो शुद्धनुनासिके चेत्यत्र ऋडितीत्यनुवर्त्तते इति छग्रहणमिह क्रियते ऋ शकारान्तानाम्—लिश । लेष्टा । लेष्टुम् । लेष्टव्यम् । लिट् । विश् । वेष्टा । वेष्टुम् । वेष्टव्यम् । विट् ।

मि०—त्रश्च कृच् । त्रष् कृ । त्रप् कृ । त्रष्ट् । त्रष्टु सु । त्रष्ट् अनड सु । त्रष्टन् स् । त्रष्टन् स् । त्रष्टन् । त्रष्ट । मूलं दृश्चति इति मूलवृट् । मूल अम् त्रश्च ऋवप् । मूलवृश्च । मूलवृष् । मूलवृप् । मूलवृप् सु । मूलवृप । मूलवृड् । मूलवृट् । मूलवृषी । मूलवृप । मूलवृपम् । मूलवृषी । मूलवृप । मूलवृषा । मूलवृड्याम् । मूलवृडिभ । त्रष्टा । सम्राट् ।

एकाचो वशो भप् भपन्तस्य स्वो ८।२।३७

५० वि०—एकाच (अत्रयत्रपट्टा) वश ६।१ भप् १।१ भपन्तस्य ६।१ स्वो ७।२ स०—एकोऽच् यस्मिन् इति एकाच् तस्याचयवग्य एसाच । भप् अन्ते यस्येति भपन्त तस्य भपन्तस्य । सरच ध्वञ्च इति स्वो तयो स्वो ।

अर्ध-धातोरवयवो य एकाच् भपन्त तदवयवस्य उग स्थाने भप् आदेशो भवति भलि सकारे धशङ्गे च परत प्तान्ते च ।

(धातु वा अवयव जा एव अच् वाला क्तान्ते उक्त अवयव क् वा क स्थान में भप् आदेश हाता है क्नादि सकार और क्नादि ध्व शब्द क पर रहन पर धीर पदात्त में)

उदा०—बुग्—भोत्स्यन्ते । अमुद्ध्वम् । अर्थमुत् । गुह—निषो-
दयते । न्यगूढ्वम् । पर्णमुट् । दुह—धादयन्त । अघुग्ध्वम् । गोधुग् ।
अजर्षा ।

सि०—बुध अवगमने—बुध् लृट् । बुग् क् । बुध् अन्त । बुग् अन्ते ।
बुध् स्य अन्ते । मुध् स्यन्ते । भोध् स्यन्ते । भोत्स्यन्ते । बुध् लृट् । बुग्
ध्वम् । बुध् सिच् ध्वम् । बुध् स् ध्वम् । बुध् ध्वम् । मुध् ध्वम् । मुद्-
ध्वम् । मुद्ध्यम् । अट् मुद्ध्यम् । अमुद्ध्यम् । अर्थमुत् । अथ अम् बुध्
क्विप् । अर्थबुध् । अर्थमुध् । अथमुध् सु । अर्थमुध् । अर्थमुद् ।
अर्थमुत् ॥

गुह । गुह् लृट् । गुह् त । गुह् तं । गुह् स्य ते । गोह् स्यते ।
घोह् स्यते । घोह् स्यते । घोक् स्यत । घोक्प्यते । घोदयते ।
निषोदयते ।

गुह् लृट् । गुह् ध्वम् । गुह् सिच् ध्वम् । गुह् ध्वम् । गुद् ध्वम् ।
गुद् द्यम् । गुद्ध्यम् । गूढ्वम् । अट् गूढ्वम् । अगूढ्वम् । नि अगू-
द्ध्यम् । न्यगूढ्वम् । दुह् । दुह् स्यते । दुप् स्यते । दोप् स्यते । घोप्
स्यते । घोक्प्यते । घोदयते । गोधुक् । गोदुह् क्विप् । गोदुह् ।
गोधुह् । गोधुक् । गोधुप् सु । गोधुप् । गोधुग् । गोधुक् ।

अजर्षा । गृधु अभिकाङ्क्षायाम् । गृध् यट् । गृध् गृध् य । गृ
गृध् य । गृ गृध् य । गर गृध् य । गृ गृध् य । जगृध् । जग्

गृध् । जर् गृध् । जर् गृध् लङ् । जर् गृध् सिप् । जर् गृध् स । जर्
गर्ध् स् । जर् गर्ध् १ । जर्धर्ध् २ । जर्धर्ध् ३ । जर्धर् र् ४ जर्धर् ५ ।
जर्धा ६ । अट् जर्धा । अजर्धा ।

दधस्तथोश्च ८।२।३८

प० वि०—दध ६।१ तथो ७।० च अ० ।

अर्थ—[वशो भप् भ्रपन्तस्य स्धो] ऋद्ध इति दधाति कृतद्विर्वचनो
निर्दिश्यतेऽदध इत्येतस्य भ्रपन्तस्य वश स्थाने भप् आदेशो भवति
तकारथकारयो परतश्चकारात् स्धोश्च परत । (दध जो भ्रपत उसक बस
क स्थान में भप आदेश होता है तकार थकार क परे रहन पर धोर चकार
से स् धोर घ्व के परे रहने पर)

उदा०—धत्त । धत्थ । धत्से । धद्धम् ।

सि०—धा लट् । धा तस् । धा श्लु तस् । धा तस् । धा धा तस ।
ध धा तस् । द धा तस् । दध् तस । धध् तस् । धत्तस । धत्त । धध
थास् । धध् से । धत्से । धध् धम् । धध् ध्वे । धध् ध्वम् । धद्धम् ।

भ्रला जशोऽन्ते ८।२।३९

प० वि०—भ्रनाम् ६।३ जश १।३ अन्ते ७।१

अर्थ—पदस्य भ्रना जश आदेशा भवन्ति पदस्यान्ते । (पदान्त
भ्रनो का जश् होता है)

उदा०—वागत्र । श्रलिङ्गत्र । अग्निचिदत्र ।

सि०—वाक् अत्र । वाग् अत्र । वागत्र ।

भ्रपस्तथोद्धोऽध ८।२।४०

प० वि०—भ्रप ५।१ तथो ६।२ ध १।१ अध ५।१

अर्थ—भ्रप उत्तरयोस्तनारथकारयो स्थाने घकारादेशो भवति ।
दधाति वर्जयित्वा । (भ्रपन्त धातु के पश्चात् त् धोर थ के स्थान में घ्
आदेश होता है, धा धातु को नहीं हाता है)

उदा०—लट्घ्या । लट्घुम् । लट्घ्यम् । अलट्घ्य । अलट्घ्या । दुह् ।
दोग्घ्या । दोग्घुम् । दोग्घ्यम् । अदुग्घ्य । अदुग्घ्या । लिह । लेढा । लेडुम् ।

१—हृङ्घ्या०गा० (६ १ ६६) २—एवावा० (८ २. ३७) ३—भ्रना०
(८ २ ३६) ४—दश्च (८ ३ ७५) ५—रो रि (८ ३ १५) ६—डृलाप०
(६. ३ १०६)

लेढव्यम् । अलीढ । अलीढाः । वुघ । वोढा । वोढुधुम् । वोढव्यम् ।
अबुढ । अबुढा । अघ इति क्रिम् । घत्तः । घत्यः ।

सि०—लभ् वृच् । लभ् वृ । लभ् धृ । लब्धु मु । लब्ध् अनङ् स् ।
लब्धन् स् । लब्धान् स् । लब्धान् । लब्धा । लब्धारौ । लब्धारः ।
अलब्ध । लभ् लुङ् । लभ् त । लभ् सिच् त । लभ् स् त । लभ् त । लभ्
त । लभ् घ । लब्ध । अट् लब्ध । अलब्ध । अलीढ । लिह् लुङ् । लिह्
सिच् त । लिह् त । लिह् व । लिह् ध । लिह् ढ । लि ढ । लीढ ।
अट् लीढ । अलीढ ।

पढो. कः सि ८।२।४१

प० वि०—पढोः ष।२ क. १।१ सि ७।१ स०—यश्च ढश्चेति पढो
तयो. पढो. ।

अर्थ—पकारढकारयो ककारादेशो भवति सकारे परत ।

(प और ढ के स्थान में क् आदेश होता है सकार के रहन पर)

उदा—पकारस्य—विप्—वेद्यति । अवेद्यत् । विविक्षति । ढका-
रस्य—लिह्—लेद्यति । अलेद्यन् । लिलिक्षति । सीति किम्—पिनाष्टि ।

सि०—विप् । विप् लुट् । विप् तिप् । विप् स्य ति । वेप् स्य ति ।
वेक् स्य ति । वेक्प्य ति । वेद्यति । विप् लुङ् । अवेद्यन् । विप् सन् ।
विप् विप् स । वि विप् स । वि विक स । विविक्षप शप् तिप् ।
विविक्षति ।

रदाभ्या निष्ठातो नः पूर्वस्य च द. ८।२।४२

प० वि०—रदाभ्याम् १।२ निष्ठात. ६।१ न. १।१ पूर्वस्य ६।१ च
अ० । द. ६।१ स०—रश्च ढश्चेति रदौ ताभ्याम् रदाभ्याम् । निष्ठायाः
तकारः निष्ठान् तस्य निष्ठात ।

अथ—रेफढकारभ्यामुत्तरस्य निष्ठातकारस्य नकार आदेशो भवति
पूर्वस्य च ढकारस्य । (रेफ और ढकार के पश्चात् निष्ठा के तकार के स्थान में
नकार आदेश होता है और पूर्व ढकार के स्थान में भी (नकार) आदेश होता है)

उदा०—रेफान्तात्—आस्तीर्णम् । विस्तीर्णम् । विरीर्णम् । निगी-
र्णम् । अयगूर्णम् । ढकारात्—भिन्न, भिन्नयान् । द्विन्नः, द्विन्नयान् । स्त
क्त । स्त त । स्तिर् त । स्तीर् त । स्तीर् न । स्तीर्ण । आ स्तीर्ण ।
आस्तीर्णम् । आस्तीर्णम् । अम् । आस्तीर्णम् । ण्वं मर्त्र । रृ । ग ।
भिदिर् । द्विदिर् ।

संयोगादेरातो धातोर्यण्वत्. ८।२।४३

प० वि०—संयोगादेः ५।१ आतः ५।१ धातोः ५।१ यण्वतः ५।१
स०—संयोगः आदिर्व्यस्मात् सः संयोगादि. तस्मात् संयोगादेः ।

अर्थ—[निष्ठातः नः] संयोगादिर्यो धातुराकारान्तो यण्वान् तस्मा-
दुत्तरस्य निष्ठातकारस्य नकारादेशो भवति । (संयोगादि जो धातु आका-
रान्त यण् वाला ऐसे के पश्चात् निष्ठा के तकार के स्थान में नकार आदेश
होता है)

उदा०—प्रद्राणः । प्रद्राण्वान् । ग्लानः । ग्लानवान् ।

सि०—द्रा कुत्सायां गतौ । द्रा क्त । द्रा न । प्रद्रा न । प्रद्राण सु ।
प्रद्राणः । ग्लै ग्लै । हर्षक्षये । ग्ला क्त । ग्ला न । ग्लान सु । ग्लानः ।

ल्वादिभ्य ८।२।४४

अर्थ—[निष्ठातः नः] ल्वादिभ्यरुत्तरस्य निष्ठातकारस्य स्थाने नका-
रादेशो भवति । (सूज् इत्यादि धातुप्रो के पश्चात् निष्ठा के तकार के स्थान
में नकार आदेश होता है)

उदा०—लूनः । लूनवान् । धूनः । धूनवान् । जीनः । जीनवान् ।

सि०—ज्या क्त । ज् इ आ त । जि त । जीन सु । जीनः ।

ओदितश्च ८।२।५०

अर्थ—[निष्ठातः नः] ओकारेतो धातोरुत्तरस्य निष्ठातकारस्य
नकारादेशो भवति । (ओकार इत् वाले धातु के पश्चात् निष्ठा के तकार के
स्थान में नकार आदेश होता है)

उदा०—ओलस्जी । लग्नः, लग्नवान् । ओविजी । उद्विग्नः, उद्वि-
ग्नवान् । ऋस्वादय ओदितः ऋ पूङ् । सूनः । सूनवान् । दूङ् । दूनः ।
दूनवान् । दीङ् । दीनः । दीनवान् । डीङ् । डीनः । डीनवान् । धीङ् ।
धीनः । धीनवान् । मीङ् । मीनः । मीनवान् ।

शुपः कः ८।२।५१

अर्थ—[निष्ठातः] शुप शोपणे इत्यस्माद्धातोरुत्तरस्य निष्ठातका-
रस्य स्थाने ककारादेश भवति । (शुप् धातु के पश्चात् निष्ठा के तकार के
स्थान में ककार आदेश होता है)

उदा०—शुप्कः । शुप्कवान् ।

पचो व. ८।२।५२

अर्थ—[निष्ठातः] पचेर्घातोर्त्तरस्य निष्ठातकारस्य वकारादेशो भवति । (पच् घातु के पश्चात् निष्ठा के तकार के स्थान में वकार आदेश होता है)

उदा०—पक्वः । पम्बान् ।

क्षायो म ८।२।५३

अर्थ—[निष्ठातः] क्षै जै पै क्षये इत्यस्माद् घातोर्त्तरस्य निष्ठा-तकारस्य स्थाने मकारादेशो भवति । (क्षै घातु के पश्चात् निष्ठा के स्थान में मकार आदेश होता है)

उदा०—क्षाम । क्षामवान् ।

सि०—क्षै । जा क्त । क्षाम सु । क्षाम ।

क्विन्प्रत्ययस्य कु ८।२।६२

प० वि०—क्विन्प्रत्ययस्य ६।१ कु १।१ स०—क्विन् प्रत्ययो यस्माद् घातोः स क्विन्प्रत्ययः । तस्य क्विन्प्रत्ययस्य ।

अर्थ—क्विन् प्रत्ययस्य पदस्य क्वर्गादेशो भवति ।

(क्विन् प्रत्यय का विधान किया गया है जिस घातु से उस पद को वक्व आदेश होता है)

उदा०—वृत्स्पृक् । जलस्पृक् ।

नशोर्वा ८।२।६३

प० वि०—नशो ६।१ वा अ० ।

अर्थ—[कुः] नशो पदस्य वा क्वर्गादेशो भवति ।

(नश् पद का विकल्प करके क्वर्ग आदेश होता है)

उदा०—जीवस्य नाशो जीवनक् । जीवनट् ।

सि०—जीव नश् क्विन् । जीवनक् । जीवनप् । जीवनप् सु । जीवनप् । जीवनट् । जीवनट् । जीवनड् ।

मो नो घातो. ८।२।६४

प० वि०—मः ६।१ नः १।१ घातो. ६।१

अर्थ—मकारान्तस्य घातोः पदस्य नकारादेशो भवति ।

(मकारान्त घातु पद का नकार आदेश होता है)

उदा०—प्रतान् । प्रशान् । साधनं तु अनुनासिकस्य०(६।१।१५)इत्यत्र

द्रष्टव्यम् ।

म्बोश्च ८।२।६५

प० वि०—म्बोः ङर च अ० ।

अर्थ—[मो नो धातोः] मकारे वकारे च परतः मकारान्तस्य धातो-
र्नकारादेशो भवति । (मकार और नकार के परे रहने पर मकारान्त धातु को
नकार आदेश होता है)

उदा०—क्ष्मूप् । चक्ष्ण्वहे । चक्ष्णमहे ।

सि०—क्ष्मू लिट् । क्ष्मू वहि । क्ष्मू धहे । क्ष्मू क्ष्मू वहे । च क्ष्म
वहे । चक्ष्ण्वहे । चक्ष्णमहे ।

ससजुपो रुः ८।२।६६

प० वि०—ससजुपः ६।१ रुः १।१ स—सरश्च सजुप् चेति ससजुप्
तस्य ससजुपः ।

अर्थ—[पदस्य] सकारान्तस्य पदस्य सजुप् इत्येतस्य च रुर्भवति ।
(पदान्त सकार और सजुप् शब्द के पकार के स्थान में रु आदेश होता है)

उदा०—सकारस्य-अग्निरत्र । वायुरत्र । सजुपः । सजुर्ऋपिभिः ।

सि०—अग्निस् अत्र । अग्निरु अत्र । अग्निरत्र । सजुप् ऋपिभिः ।
सजुरु ऋपिभिः । सजुर् ऋपिभिः । सजूर्ऋपिभिः ।

अहन् ८।२।६८

अर्थ—[रुः] अहन् इत्येतस्य पदस्य रुर्भवति । (अहन् पद को रु
होगा है)

उदा०—अहोभ्याम् । अहोभिः ।

सि०—अहन् भ्याम् । अहरु भ्याम् । अहरु भ्याम् । अह उ भ्याम् ।
अहोभ्याम् ।

रोऽमुपि ८।२।६९

प० वि०—रः १।१ अमुपि ङर

अर्थ—[अहन्] अहन् इत्येतस्य रेफादेशो भवति अमुपि परतः ।
(अहन् के परे रहने पर अहन् पद को रेफ आदेश होता है)

उदा०—अहर्द्वाति । अहर्मु इवते ।

वसुस्त्रसुध्वस्वनडुहा दः ८।२।७२

प० वि०—वसु-त्र-सु-ध्व-सु-अनडुहाम् ६।३ दः १।१

अर्थ—[ससजुषो रु इत्यत्र स इति दर्शते] वन्वस्तस्य पदस्य सकारान्तस्य स्रंमु ध्वसुं अनड्ह् इत्येतेषां च दकारादेशो भवति ।

(वन्वन्त पद सकारान्त, सनु, ध्वनु और अनड्ह् क स्थान में दकार आदेश होता है)

उदा०—वमु—विद्वामि । स्रंमु—स्वान्नाद्भ्याम् । ध्वसु—पर्य-
ध्वद्भ्याम् । अनड्ह्—अनट्द्भ्याम् ।

निप्यनन्ते ८।१।८३

प० पि०—तिपि ७।१ अनन्ते ६।१

अर्थ—[सः पदस्य ट्] तिपि परत सकारान्तस्य पदस्य अनन्ते-
दकार आदेशो भवति । (जिन् क पर रहन पर भस्ति का द्वावर
सकारान्त पद का ट्कार आदेश होता है)

उदा०—अचक्राद्भवान् । अन्वशाद्भवान् ।

मि०—चक्रान् दीप्तौ । चक्राम् लट् । चक्राम तिप् । चक्रास् ति ।
चक्रास् गप् ति । चक्राम् न् । चक्रास् । अट् चक्राम् । अचक्रास् ।
अचक्राद् ।

मिपि घातान्वा ८।१।७४

प० वि०—मिपि ७।१ घातो ६।१ रु १।१ वा अ० ।

अर्थ—[स पदस्य ट्] सिपि परत सकारान्तस्य पदस्य घातो रु
इत्ययमादेशो भवति दकारो वा । (सिपि क पर रहन पर सकारान्त पद जो
घातु उसक स्थान में रु आदेश होता है और दकार भी)

उदा०—अचक्रास्त्वम् । अचक्रात्त्वम् । अन्वशास्त्वम् । अन्वशा-
स्त्वम् ।

सि०—अचक्राम् । अचक्राह् । अचक्रार् । अचक्रा । अचक्रा त्वम् ।
अचक्रास्त्वम् । अचक्रास् । अचक्राद् त्वम् । अचक्रास्त्वम् ।

दश्च ८।१।७५

अर्थ—[सिपि रु घातो वा ट्] दकारान्तस्य घातो पदस्य सिपि
परतो रुर्भवति दकारा वा । (दकारान्तघातु जो पद उसको रु होता है
और विवल्प म दकार भी सिपि के परे रहन पर)

उदा०—अजर्वा । साधन तु एजाचो वशो भप् इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

वोरुपधाया. दीर्घ इकः ८।२।७६

प० वि०—वोः ६।२ उपधायाः ६।१ दीर्घः १।१ इकः ६।१

स०—रश्च वश्च इति वोँ तयोः वोँः ।

अर्थ—रेफान्तस्य वकारान्तस्य च धातोः पदस्य उपधाया इको दीर्घो भवति । (रेफान्त धोर वकारान्त जो धातु पद उसकी उपधा इक् को दीर्घ होता है)

उदा०—गीः । गिरी । गिरः । पूः । पुरी । पुरः ।

सि०—गिर् सु । गिर् । गीर् । गीः ।

हलि च ७।२।७७

अर्थ—[वोँ धातोः उपधाया इक दीर्घः] हलि च परतः रेफान्तान्तयोः धातोरुपधाया इको दीर्घो भवति । (हल् के परे रहने पर रेफान्त धोर वकारान्त धातु की उपधा जो इक् उसको दीर्घ होता है)

उदा०—आस्तीर्णम् । विस्तीर्णम् । विशीर्णम् ।

सि०—रदाभ्यामित्यत्र द्रष्टव्यम् ।

उपधाया च ८।२।७८

अर्थ—[धातोः हलि वोरुपधायाः दीर्घः इक] हलि परतो या धातोरुपधा तस्यां यो रेफवकारो तयोरुपधाया इको दीर्घो भवति ।

(हल् के परे रहने पर जो धातु की उपधा में रेफ धोर वकार उसकी उपधा के इक् को दीर्घ होता है)

उदा०—हुर्त् । हुर्त् वृच् । हूर्त्तिता । मुर्त्ता । मूर्त्तिता ।

न भकुर्त्तु राम् ८।२।७९

अर्थ—रेफस्य वकारान्तस्य च भस्य कुर् छुर् इत्येतयोश्च दीर्घो न भवति । (रेफ धोर वकारान्त जो भ धोर कुर् छुर् उनको दीर्घ नहीं होता है)

उदा०—धुरं वहति धुर्य् । दिव्यम् । कुर् । कुर्यात् । छुर्यात् ।

ॐ हलि चेति दीर्घत्वे प्राप्ते प्रतिषेधोऽयमारभ्यते ॐ

अदसोऽपेदाद्दु दो म ८।२।८०

प० वि०—अदसः ६।१ असेः ६।१ दान् ५।१ उ । अविम० । दः ६।१ मः १।१

अर्थ—असकारान्तस्य अदसो दादुत्तरस्य उवर्णादेशो भवति दकारस्य च मकार । (असकारान्त जो अदम् शब्द उसके दकार के परदातु उवर्ण

भादेश होता है और दकार के स्थान में मकार आदेश होता है)

उदा०—पु सि-असौ । अमू । अमी । अमुम् । अमू । अमून् ।
अमुना । अमूभ्याम् । अमीभिः । अमुष्मै । अमूभ्याम् । अमीभ्यः ।
अमुष्मात् । अमूभ्याम् । अमीभ्यः । अमुष्य । अमुयो । अमीपाम् ।
अमुष्मिन् । अमुयो । अमीपु ।

तपु सके—अदः । अमू । अमूनि । अद । अमू । अमूनि । अन्य-
त्सर्व पुल्लिङ्गवत् ।

त्रोलिङ्गे—असौ । अमू । अमू । अमूम् । अमु । अमू । अमूया ।
अमूभ्याम् । अमूभिः । अमुष्मै । अमूभ्याम् । अमूभ्यः । अमुष्या ।
अमूभ्याम् । अमूभ्यः । अमुष्या । अमुयो । अमूपाम् । अमुष्याम् ।
अमुयो । अमूपु ।

सि०—असौ, अदस् औ मुनोपरच इत्यत्र द्रष्टव्यम् । अदस् औ ।
अद अ औ । अद औ । अमु औ । अमू । अदम् जस् । अद अ अस् ।
अद अस् । अद शी । अद ई । अदे । अमी । अदस् अम् । अद अ
अम् । अद अम । अमु अम् । अमुम् । अमू । अमून् । अदस् रास् ।
अद शस् । अमु अस् । अमूस् । अमून् । अदस् दा । अद टा । अमु
ना । अमुना । अदस् भ्याम् । अद भ्याम् । अदा भ्याम् । अमूभ्याम् ।
अदस् भिस् । अद भिस् । अदे भिस् । अमीभिः । अदस् डे । अदस्
अ डे । अद डे । अमु डे । अमू स्मे । अमुष्मै । ऋपूर्वनासिद्धम् इति
असिद्धत्वात् अदन्तत्वादेव स्मैभाव ऋ अमीपाम् । अदस् आम । अद
आम् । अद सुट आम् । अदे साम् । अमीपाम् । अदस् मु । अदस्
अदस् । अदर । अद । अमू । अदम् जस् । अदस् शि । अद इ ।
अद नुम् इ । अदन् इ । अदानि । अमूनि । अमूया । अदस् दा । अद
आ । अदे आ । अदया । अमुया । एव सर्व सर्वत्रैव सूत्रपूर्वमाचेष्ट-
व्यम् ।

एत ईद् बहुवचने ८।२।८१

प० वि०—एत ६।१ ईन् १।१ बहुवचने ७।१

अर्थ—[अदसोऽमेदादु दो म] अदसो दकारादुत्तरस्य एकारस्य
ईकारादेशो भवति दकारस्य च मकार बहुवचने नूनामर्थानामुक्ती ।
(असकारान्त अदस् के दकार क पश्चात् एकार के स्थान में ईकार आदेश
होता है और दकार क स्थान में मकार आदेश होता है बहुवचन में)

उदा०—अमी । अमीभिः । अमीभ्यः अमीषाम् । अमीषु ।

तयोर्वावचि [सहितायाम्] ८।२।१०८

अर्थ—संहितायाम् आ अध्यायपरिसमाप्तेरधिकारः (अध्याय की परिसमाप्ति तक अधिकार है)

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकायामष्टमाध्याये द्वितीयः पादः

ढो ढे लोपः ८।३।१३ ।

प० वि०—ढः ६।१ ढे ७।१ लोपः १।१

अर्थ—ढकारस्य ढकारे लोपो भवति ।

(ढकार के परे रहने पर ढकार का लोप होता है)

उदा०—लीढम् । उपगूढम् । साधन ढूलोपा० (६ ३. १०६) इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

रो रि ८।३।१४

प० वि०—रः ६।१ रि ७।१

अर्थ—[लोप] रेफस्य रेफे परतो लोपो भवति । (रेफ वा रेफ के परे रहने पर लोप होता है)

उदा०—नीरक्तम् । दूरक्तम् । अग्नी रथः । इन्दू रथः । पुना रक्तं वासः । ऋषदस्य इत्यस्य विशेषणौ पठ्ठी तेन पदस्य अवयवस्य यो रेफस्तस्य रेफे परतो लोपो भवतीति अपदान्तस्यापि लोपो विज्ञायते तेन अजर्घाः अपास्पाः इति सर्वं सिध्यतिः

सि०—निर्रक्तम् । नि रक्तम् । नीरक्तम् । अजर्घाः । ऋकाचो वशो भप् इत्यादौ सूत्रे इदं व्युत्पादितम् । स्पर्द्ध यद् । स्पर्द्ध स्पर्द्ध य । प स्पर्द्ध य । पा स्पर्द्ध य । पास्पर्द्ध लङ् । पास्पर्द्ध सिप् । पास्पर्द्ध स् । पास्पर्द्ध शप् स् । पास्पर्द्ध स् । पास्पर्द्ध । पास्पर्द्ध । पास्पर्द्ध र् । पास्पर्द्ध । पास्पर्द्ध । अद् पाभ्याः । अपास्पाः ।

खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५

प० वि०—खरवसानयोः ७।२ विसर्जनीयः १।१ स०—खर् च खरवसान चेति खरवसाने तयोः खरवसानयोः ।

अर्थ—[रः पदस्य] रेफान्तस्य पदस्य खरि परतोऽवसाने च विसर्जनीयादेशो भवति । (पदान्त रेफ का विसर्जनीय आदेश होता है खर् के

सि०—वृत्तस् छादयति । वृत्तरु छादयति । वृत्तर् छादयति ।
वृत्तः छादयति । वृत्तम् छादयति । वृत्तश् छादयति । वृत्तरु छादयति ।
राम सु । राम स् । राम रु । राम र् । रामः ।

रोः मुपि ८।३।१६

प० वि०—रोः ६।१ मुपि ७।१

अर्थ—[रः विसर्जनीयः] रु इत्येतस्य रेफस्य मुपि परतो विसर्जनी-
यादेशो भवति । (रु के रेफ के स्थान में विसर्जनीय प्रादेश होना है
मुपु के परे रहने पर)

उदा०—ऋमुपीति सप्तमीप्रबुधचनं गृह्यते । पयमु । सर्षिपु । यशः
सु । ऋसिद्धे सति आरम्भो नियमार्थं रोरेव मुपि विसर्जनीयादेशो
नान्यस्य गीर्षु, धूपु ।

भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽग्नि ८।३।१७

प० वि०—भो-भगो-अघो-अपूर्वस्य ६।१ यः १।१ अग्नि ७।१

स०—भोश्च भगोश्च अघोश्च अश्चेति भोभगोअघोआः । भोभगो-
अघोआः पूर्वाः यस्य स भोभगोअघोअपूर्वः, तस्य ।

अकारस्य च पूर्वरूपं न भवति स्वल्पनिर्देशपरत्वात्

अर्थ—[रो रः] भो भगो अघो इत्येवं पूर्वंस्य अर्णपूर्वस्य च
रोरेफस्य यकारादेशो भवति अग्नि परतः ।

(भो भगो अघो अोर अर्ण पूर्वक जो रु उमके रेफ के स्थान में यकार
प्रादेश होता है अर्ण के परे रहने पर)

उदा०—भो अत्र । भगो अत्र । अघो अत्र । भो ददाति । भगो द-
दाति । अघो ददाति । अर्णपूर्वस्य रु आस्ते । क्य् आन्ते । प्राण्णा
ददाति । पुरुषा ददाति ।

सि०—भोस् अत्र । भोरु अत्र । भोर् अत्र । भोय् अत्र । भो
ददाति । भोम् ददाति । भोरु ददाति । भोर् ददाति । भोय् ददाति ।
भो ददाति ।

व्योर्लघु प्रयत्नतर. शाकटायनस्य ८।३।१८

प० वि०—व्योः ६।१ लघुप्रयत्नतरः १।१ शाकटायनस्य ६।१ स०—

एश्च यश्चेति व्यो तयोः व्योः । लघुः प्रयत्नो यस्य स लघुप्रयत्नः ।
एतिशयेन लघुप्रयत्नो लघुप्रयत्नतर. एनलघुप्रयत्नतरत्वम् ग्यानं ताचादि-
एरुणं जिहामनादि तयोरुच्चारणे शैथिल्यम्, मन् प्रयत्नता

सि०—वृत्तस् द्वाद्दयति । वृत्तरु द्वाद्दयति । वृत्तर् द्वाद्दयति ।
वृत्तः द्वाद्दयति । वृत्तम् द्वाद्दयति । वृत्तश् द्वाद्दयति । वृत्तरद्वाद्दयति ।
राम सु । राम म् । राम रु । राम र् । राम ।

रो. सुपि ८।३।१६

प० रि०—रो० ६।१ सुपि ७।१

अर्थ—[रः विसर्जनीय] रु इत्येतस्य रेफस्य सुपि परतो विसर्जनी-
यादेशो भवति । (र के रेफ के स्थान में विसर्जनीय घादेश होना है
सुप् के परे रहने पर)

उदा०—ऋसुपीति सप्तमीत्रहुवचनं गृह्यते । पयमु । मर्धिपु । यश
सु । ऋसिद्धे सति आरम्भो नियमार्य रोरेव सुपि विसर्जनीयादेशो
नान्यस्य गीर्षु, धृषु ।

भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽग्नि ८।३।१७

प० वि०—भो-भगो-अघो-अपूर्वस्य ६।१ च १।१ अग्नि ७।१
स०-भोश्च भगोश्च अघोश्च अश्चेति भोभगोअघोश्चा । भोभगो-
अघोश्चा पूर्वा यस्य स भोभगोअघोअपूर्व, तस्य ।

अकारस्य च पूर्वहर्षं न भवति स्वरूपनिर्देशपरत्वात् ॐ

अर्थ—[रो र] भो भगो अघो इत्येवं पूर्वस्य अर्गपूर्वस्य च
रोरेफस्य यकारादेशो भवति अग्नि परत ।

(भा भगो प्रपा घोर भरणं पूर्वक जो रु उमने रफ क स्थान में यकार
घादेश हाता है प्रस् के परे रहने पर)

उदा०—भो अत्र । भगो अत्र । अघो अत्र । भो ददाति । भगो द-
दाति । अघो ददाति । अर्गपूर्वस्य च आस्ते । पय् आस्ते । प्राद्वणा
ददति । पुण्या ददति ।

सि०—भोम् अत्र । भोरु अत्र । भोर् अत्र । भोय् अत्र । भो
ददाति । भोम् ददाति । भोरु ददाति । भोर् ददाति । भोय् ददाति ।
भो ददाति ।

व्योर्लघु प्रयत्नतर शकटायनस्य ८।३।१८

प० रि०—व्यो ६।१ लघुप्रयत्नतर १।१ शकटायनस्य ६।१ म०—
दृश्च यश्चेति व्यो तयो व्यो । लघु प्रयत्नो यस्य स लघुप्रयत्न ।
७ निशयेन लघुप्रयत्नो लघुप्रयत्नतर लघुप्रयत्नतरश्चमन्थान तात्पार्ति-
त्येन जिह्वाभ्यादि तयोर्नकारो शैथिल्येन, मन्द प्रयत्नता

इत्यर्थं ❀

अर्थ—[अशि^१] वकारयकारयो पदान्तयोर्लघुप्रयत्नतर आदेशो भवति अशि परत. शाकटायनाचार्यस्य मतेन । (पदान्त में जो वकार और वकार उसको लघुप्रयत्नतर आदेश होता है अश् के परे रहने पर शाकटायनाचार्य के मत से)

उदा०—भोयत्र । भगोयत्र । अघोयत्र । क्य् आस्ते । अस्मायत्र असावादित्य । द्वावत्र ।

सि०—भोस् अत्र । भोरु अत्र । भोर् अत्र । भोय् अत्र । ❀शाकटायनग्रहण विकल्पार्थम्❀

लोप शाकल्यस्य ८।३।१६

अर्थ—[व्यो अशि^२] वकारयकारयो पदान्तयोरवर्णपूर्वयोर्लोपो भवति शाकल्यस्य आचार्यस्य मतेन अशि परत । (अवर्णपूर्वक पदान्त यकार और वकार वा लोप होता है शाकल्यचार्य के मत से अश् के परे रहने पर)

उदा०—क^२ आस्ते । क्य् आस्ते । काक आस्ते । काक्य् आस्ते । अस्मा उद्धर । अस्माय् उद्धर । द्वा अत्र । द्वाव् अत्र । ❀शाकल्यग्रहण विकल्पार्थम्❀

ओतो गार्ग्यस्य ८।३।२०

प० वि०—ओत ५।१ गार्ग्यस्य ६।१

अर्थ—[व्यो लोप अशि] ओकारावुत्तरस्य यकारस्य^३ लोपो भवति गार्ग्यस्य आचार्यस्य मतेन अशि परत ।

(ओकार के पश्चात् यकार का लोप होता है गार्ग्य आचार्य के मत से अश् के परे रहने पर)

उदा०—❀गार्ग्यग्रहण पूजार्थम्❀ भो अत्र । भगो अत्र । अघो अत्र । ❀अत्रेऽ बोध्यम्—योऽय लघुप्रयत्नस्य लोप शाकल्यस्य इति सूत्रेण विकल्पेन लोपो विधीयते सोऽनेन निवर्त्यते, नित्यलोपार्थोऽयमा-

१ अत्र काशिकाकार 'भोभगोअघोअपूर्वस्य' इत्यनुवर्तयति, तदनावश्यकम् ।

२ अत्र काशिकाकार 'अपूर्वस्य' इत्यनुवर्तयति, तदनावश्यकम् । ओकारान्तेषु भो भगो अघो प्रभृतिषु उत्तरसूत्रेण नित्यलोपविधानात् ।

३. व्योरनुवृत्तावपि ओकारान्तपरस्य वकारस्यासम्भवात् वृत्तो न सम्बध्यते ।

रम्भ इत्यर्थः ॥

(जो लघु प्रत्यन्तर आदेश नहीं हुआ है, उस पक्ष में उमका लोप 'लोपः साकल्यस्य, इस मूत्र से विकल्प से कहा है, लेकिन ओकार के पश्चान् नित्य लोप हो, इसलिये इस मूत्र का आरम्भ किया गया है। अतः भो अत्र यहा पर भ्रौंतां गार्ग्यस्य से यकार का लोप होता है और जिस पक्ष में लघुप्रत्यन्तर होता है, वहा भोय् अत्र उदाहरण बनता है)

हलि सर्वेषाम् ८।३।२२

५० वि०—हलि ७।१ सर्वेषाम् ६।३

अर्थ—[भाभगोश्चोअपूर्वस्य पदान्तस्य यः पदस्य लोप] हलि परतो भाभगोश्चोअपूर्वस्य पदान्तस्य यकारस्य लोपो भवति सर्वेषामाचार्याणां मतेन। (हल् के परे रहने पर भो, भगो अचो और भवणपूर्वक पदान्त यकार का लोप होता है सभी आचार्यों के मत से)

उदा०—भो हसति। भगो हसति। अचो हसति। वृत्ता हसन्ति। ॥ सर्वेषां इत्यस्य प्रहणं शाकटायनस्यापि लोपो यथा म्यान्, लघुप्रत्यन्तरो मा भूदिति ॥

मोऽनुस्वार ८।३।२३

५० वि०—मः ६।१ अनुस्वारः १।१

अर्थ—[पदस्य हलि] पदान्तस्य मकारस्य अनुस्वार आदेशो भवति हलि परतः। (पदान्त मकार का अनुस्वार आदेश होता है, हल् के परे रहने पर)

उदा०—कुरुडम् हसति।। कुरुडं हसति। यनम् हसति। यन हसति।

नश्चापदान्तस्य ऋलि ८।३।२४

५० वि०—नः ६।१ च अ०। अपदान्तस्य ६।१ ऋलि ७।१

अर्थ—[मः अनुस्वारः] नकारस्य मकारस्य चापदान्तस्यानुस्वारादेशो भवति ऋलि परतः। (अपदान्त मकार और नकार का अनुस्वार होता है ऋल् के परे रहने पर)

उदा०—पयांसि। यशांसि। मकारस्य—गस्यते। गंस्येते। गंस्यन्ते।

सि०—पयम् जम्। पयस् अम्। पयाम् शि। पया नुम् म् इ। पयान्म् ड। पयांसि। गम्। कर्मणि। गम् लट्। गम् त। गम् ते। गम् स्य ते। गंस्यते।

मो राजि सम क्वौ ८।२।२५

प० वि०—म ६।१ राजि ७।१ सम ६।१ क्वौ ७।१

अर्थ—[म] समो मकारस्य मकार आदेशो भवति राजतौ क्विप्प्रत्ययान्ते परत । (क्विप प्रत्यया त राज् दीप्तो धातु के पर रहन पर सम् के मकार के स्थान में मकार ही आदेश होता है)

उदा०—सम् राट् । सम्राट् । साधन व्रश्चभ्रस्जेति सूत्रे द्रष्टव्यम् ।

डमो ह्रस्वादचि डमुणित्यम् ८।३।३२

प० वि०—डम ५।१ ह्रस्वात् ५।१ अचि ७।१ डमुट् १।१ नित्यम् १।१

अर्थ—ह्रस्वात्परो यो डम् तदन्तात्पदादुत्तरस्याचो डमुडागमो भवति नित्यम् । (ह्रस्व के पश्चात् जो डम् तद त पद के पश्चात् अच को नित्य डमुट का आगम होता है)

उदा०—ङ्ङणनेभ्यो यथासरय ङणना भवन्ति ङकारान्तान्ङुट् । प्रत्यङ् आस्ते । प्रत्यङ्ङ् आस्ते । ङकारान्ताण्णुट् । वण् आस्ते । वण्णास्त । नकारान्तान्नुट् । कुर्वन् आस्ते । कुर्वन्नास्ते ।

विसर्गसत्वप्रकरणम्—

विसर्जनीयस्य स ८।३।३४

प० वि०—विसर्जनीयस्य ६।१ स १।१

अर्थ—[खरि] विसर्जनीयस्य सकारादेशो भवन्ति खरि परत ।

(खर के परे रहन पर विसर्जनीय को सकार आदेश होता है)

उदा०—वृक्षश्छादयति । प्लक्षश्छादयति । वृक्षप्लक्षकार । प्लक्षप्लक्षकार । वृक्षश्चिनोति । प्लक्षश्चिनोति ।

सि०—साधन तु स्तो र्चुना र्चु , ष्टुना ष्टु इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

शर्परे विसर्जनीय ८।३।३५

प० वि०—शर्परे ७।१ विसर्जनीय १।१ स०—शर् परो यस्मात् स शर्पर तस्मिन् शर्परे ।

अर्थ—[खरि] शर्परे खरि परतो विसर्जनीयस्य विसर्जनीयादेशो भवति । (शर पर है जिससे एख खर के पर रहन पर विसर्जनीय के स्थान में

१—नित्यशब्दोऽत्र प्रायोवाची नित्यप्रहसितो नित्यप्रज्वलित (महामाष्ये पस्पशाह्निके) इति यथा तन क्वचिन्नापि भवति यथा अणुदितसवणस्य चाप्रत्यय ।

विसर्जनीय आदेश होता है)

उदा०—शशाः चरम् । पुरुषः कपुरम् (चरम्) । अद्भिः प्सातम् ।

वा शरि ८।३।३६

प० वि०—वा अ० । शरि ७।१

अर्थ—[विसर्जनीयस्य विमर्जनीयः] विसर्जनीयस्य विसर्जनीयादेशो वा भवति शरि परतः । (शर् के परे रहने पर विमर्जनीय के स्थान में विकल्प से विसर्जनीय आदेश होता है)

उदा०—वृक्षः शेते । वृक्षशेते । वृक्ष साये । वृक्षम्साये ।

× खपरै शरि वा लोपा वक्तव्य × वृक्षा स्थातार' । वृक्षाः स्थातारः । वृक्षास्थातारः ।

कुप्वो क पी च ८।३।३७

प० वि०—कुप्वोः ७।२ क पी १।२ च अ० ।

स०—कुप्च पुश्चेति कुप् तयो. कुप्वो ।

अर्थ—[विमर्जनीस्य] स्वर्गे परगे च परतो विसर्जनीम्य यथा-मंस्य (जिह्वामूलीय. ') (उपध्मानीय ') इत्येतावादेशौ भवतः, चकाराद्विसर्जनीयश्च ।

(क्वर्गं और परगं के परे रहने पर विमर्जनीय का क्रम (जिह्वामूलीय) (उपध्मानीय) आदेश होता है और चकार से विसर्जनीय भी)

उदा०—वृक्ष करोति । वृक्ष करोति । वृक्ष स्वनति । वृक्षः

१—इमो जिह्वामूलीयोपध्मानीयो भ्रूयोगवाट्पु परिगणितो तैत्तिरीय-प्रातिशाख्यस्य परे पट्टप्माणः (१।१०) सूत्रानुसारं पुरा पट्टप्माण आसन् तेषां च क्रमः जिह्वामूलीयं घ ष स उपध्मानीयं हकार इत्येवमासीत् । तेष्वप्यापञ्च यथाक्रमं पञ्चवर्गसमानस्थाना मन्त सस्याना इत्युच्यन्ते । यथा क्वर्ग-मस्थाना उप्मा जिह्वामूलीयं चवर्गमस्थानीयं शकार । एवमुत्तरत्र । तेन सस्या-नेन द्वितीया इति शिक्षामुपस्थायमर्षं वर्गाणां द्वितीया वर्गा मस्थानेनोप्मणा (तदीयप्रयत्नेन दृशता) भवति । हकारेण चतुर्थी—वर्गाणां चतुर्थवर्णां हकारस्योप्मणा युक्तता भवन्ति । अत्र ऋवप्रातिशाख्यस्य त्रयोदशपटलस्य षोडश-सप्तदशे सूत्रे तयाद्वर्तीयं व्याख्यानं चानुशीलनीयम् । ऋवप्रातिशाख्ये उत्तरेऽप्या उप्माणः (१।१०) सूत्रं अष्टादशपटल उक्ता । तेषु विमर्जनीयोऽनुस्वारश्चाधि-कावृक्तो इति मीमांसकाः ।

खनति । वृत्त ऽ पचति । वृत्त पचति । वृत्त ऽ फलति । वृत्त फलति ।

सोऽपदादौ ८।३।३८

प० वि०—स ६।१ अपदादौ ७।१॥

अर्थ—[विसर्जनीयस्य कुप्वो] सकारादेशो भवति विसर्जनीयस्य कुप्वोरपदाद्यो परत । (विसर्जनीय का सकार आदेश होता है अपदादि कवग और पवग के पर रहन पर)

उदा०—❀ पाशकल्पककाम्येषु ❀ पयस्कल्पम् । पयस्कम् । पयस्का म्यति ।

इण प ८।३।३९

अथ—[अपदादौ विसर्जनीयस्य कुप्वो] इण उत्तरस्य विसर्जनीयस्य पकारादेशो भवति कुप्वोरपदाद्यो परत । (इण के पश्चात् विसर्जनीय का पकारादेश होता है अपदादि कवग और पवग के पर रहन पर)

उदा०—❀ पाशकल्पककाम्येषु ❀ पाश—शर्पिष्पाशम् । यजुष्पा शम् । कल्प—सर्पिष्कल्पम् । यजुष्कल्पम् । क—सर्पिष्कम् । यजुष्कम् । काम्य—सर्पिष्काम्यति । यजुष्काम्यति । अपदादाविति किम्—अग्नि करोति । वायु करोति । अग्नि पचति । वायु पचति ।

इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य ८।३।४१

प० वि०—इदुदुपधस्य ६।१ च अ० । अप्रत्ययस्य ६।१

स०—इच्च उच्चति इदुतौ । इदुतौ उपधा यस्य तद् इदुदुपधम् तस्य इदुदुपधस्य । न प्रत्यय अप्रत्यय तस्य अप्रत्ययस्य ।

अर्थ—[विसर्जनीयस्य प कुप्वो] इकारोपधस्य उकारोपधस्य च अप्रत्ययस्य विसर्जनीयस्य पकारादेशो भवति कुप्वो परत ।

(इकार और उकार उपधा वाले प्रत्यय भिन्न विसर्जनीय का पकार आदेश होता है कवग और पवग के पर रहन पर)

उदा०—❀ निर्दुर्बहिराविश्चतुर प्रादुस् ❀ निस् । निष्कृतम् । निष्पीतम् । दुस् । दुष्कृतम् । दुष्पीतम् । बहिस्—बहिष्कृतम् । बहिष्पीतम् । आविस्—आविष्कृतम् । आविष्पीतम् । चतुस्—चतुष्कृतम् । चतुष्पीतम् । प्रादुस्—प्रादुष्कृतम् । प्रादुष्पीतम् । अप्रत्ययस्येति किम्—अग्नि करोति । वायु करोति । अग्नि पचति । वायु पचति ।

तिरसोऽन्यतरस्याम् ८।३।४२

द्विस्त्रिश्चतुरिति कृबोर्थे ८।३।४३

स०—द्विश्च त्रिश्च चतुश्च द्विस्त्रिचतु । कृत्स अर्थ कृत्वोऽर्थ तस्मिन् कृत्वोऽर्थे ।

अर्थ—[विमर्जनीयस्य प कुप्वो अन्यतरस्याम्] द्विस् त्रिस् चतुर् इत्येतेषां कृत्वोऽर्थे वर्त्तमानानां विमर्जनीयस्य पसार आदेशो भवति अन्यतरस्याम् कुप्वो परत ।

(द्विम तिस चतुर इनके इत्वसुच् के अथ म वतमान होन पर विसर्जनीय का प्रकार आदश हाता है विकल्प करक कवग और पवग के प रहन पर)

उदा—द्वि करोति । द्विष्करोति । त्रि करोति । त्रिष्करोति । चतु करोति । चतुष्करोति । द्वि पचति । द्विष्पचति । त्रि पचति । त्रिष्पचति । चतु पचति । चतुष्पचति ।

द्रमुमा सामर्थ्ये ८।३।४४

अर्थ—[विसर्जनीयस्य अन्यतरस्या प कुप्वो] इस् उस् इत्यतयोर्विसर्जनीयस्यान्यतरस्या पकारादेशो भवति सामर्थ्ये कुप्वो परत ।

(इन और उन क विसर्जनीय का विकल्प म प्रकार आदश हाता है सम्बन्धित कवग और पवग क पर रहन पर)

उदा—सर्पिं करोति । सर्पिष्करोति । सामर्थ्ये इति किम्—तष्टतु सर्पिं पिबतु उत्कम ॐ इत्यत्र सर्पिं इत्येतस्य पिबतु इत्यनेन सह सम्बन्धो नास्ति ॐ

मन्त्राया मूर्द्धन्यप्रकरणम्—

अपदान्तस्य मूर्द्धन्य ८।३।५५

अर्थ—आ पाठपरिसमाप्ते अपदान्तस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति इत्यधिकारो वेदितव्य । (पाठ को परिमपाप्ति तक अपदांत का मूर्द्धन्य आदेश होता है, इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

सहे साड म ८।३।५६

प० वि०—सहे ६।१ साड ६।१ स ६।१

अर्थ—सहेर्धातो साड्पस्य सफारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति ।

(सह् धातु का जा बना हुआ साड यह रूप उत्क सकार क स्थान में मूर्द्धन्य आदश होता है)

उदा०—जलापाट् ।

सि०—जलं सहते इति विग्रह । जल अम् सह णिय । जल सह् । जलसाह् । जलसाढ् । जलसाड् । जलासाड् । जलापाड् मु । जलापाड् । जलापाट् ।

इणको ८।३।५७

प० वि०—इणको ५।१ स०—इण् च कुरचेति इण्कु तस्मात् इणको । (समा० द्वन्द्व) ।

अर्थ—इतोऽप्रे आ पादपरिसमाप्ते वक्ष्यमाणानि कार्याणि इरक वर्गाभ्या उत्तरस्यभवन्ति इत्यधिकारो वेदितव्य ।

(यहा से पाद की समाप्ति तक कह जान वाले काय इण ग्रीर ववग के पश्चात् होते हैं इस बात का अधिकार समझना चाहिये)

नुम्बिसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ८।३।५८

प० वि०—नुम्बिसर्जनीयशर्व्यवाय ७।१ अपि अ० ।

स०—नुम् च विसर्जनीयश्च शर्चेति नुम्बिसर्जनीयशर । नुम्बिसर्जनीयशर्भि व्ययाय नुम्बिसर्जनीयश र्यवाय तस्मिन् ।

अर्थ—[इणको अपदान्तस्य स मद्धन्य] व्यवयशात् प्रयक मभिसम्बध्यते नुम्ब्यवायेऽपि विसर्जनीयव्यवायेऽपि शर्व्यवायेऽपि इणकोरुत्तरस्य सकारस्य मद्धन्यान्देशो भवति ।

(नुम् विसर्जनीय ग्रीर शर के द्वारा व्यवधान रहन पर भी इण ग्रीर ववग क पश्चात् प्रपदान्त सकार के स्थान में मूढ य आदाग होता है)

उदा०—नुमा—सर्पीपि यजूपि । विसर्जनीयेन—सर्पिपु । यजुपु । शरा—सपिप्यु । यजुप्यु ।

सि०—सर्पिस । सर्पिस् जस । सर्पिस् शि । सर्पिस ड । सर्पि नुम् स इ । सर्पिन्स् ड । सर्पिन्सि । सर्पीपि । सर्पिपु । सर्पिस्तु । सर्पिस् पु सर्पिप्यु ।

ॐ नुमादिभि प्रत्येक व्यवाये पत्रमिण्यते न समस्तै ॐ

(नुम् इत्यादि केवल एक के ही व्यवधान रहन पर पत्र होता है यदि इसमें से कोई दो या तीन का एक साथ मिलकर व्यवधान हो तो पत्र नहीं होगा)

१—प्रायेण समाहारद्व द्वो नपु सक्लिङ्गो भवति । सूत्रकारवचनप्रामाण्यात् पु क्लिङ्गोऽपि इष्टव्य । एव युवोरनाको (७।१।१) इत्यत्रापि ज्ञेयम्

आदेशप्रत्यययो ८।३।५६

प० वि०—आदेशप्रत्यययोः ६।२ स०—आदेशश्च प्रत्ययरचेति आदेश-
प्रत्ययो तयो आदेशप्रत्यययो ।

अर्थ—[म इएके मूर्द्धन्य.] इएजगाम्यामुत्तरस्य आदेशो य
सकार. प्रत्ययस्य च य. मकारस्तस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति ।

(इण् घोर कवग क पश्चान् आदेश जा सकार घोर प्रत्यय का जा मकार
उभवा मूर्द्धन्य आदेश हाता है)

उदा०—आदेशस्य-सिपेय । मुष्वाप । प्रत्ययस्य-अग्निपु ।
वायुपु ।

सि०—पितु । पिव् । सिव् लिट् । सिव् ल् । सिन् णल् । सिन्
अ । सिन् सिन् अ । सि मिन् अ । सि सेव । सि पेय । सिपियु ।
सिपितु । अग्नि मुप् । अग्नि मु । अग्निपु ।

शासिवसिघसीना च ८।३।६०

प० वि०—शासि-वसि-यमीनाम् ६।३ च अ० । स०—शासिश्च
वसिश्च वसिश्चेति शासिवसिघसीनाम् ।

अर्थ—[इएके म मूर्द्धन्य] शासि वसि घसि इत्येतेषां च इएके-
रुत्तरस्य सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो भवति ।

(इण् घोर कवग क पश्चान् शाम् वस् घोर वम क मकार वा मूर्द्धन्य
आदेश होता है)

उदा०—शामि । अन्यशिपन् । अन्यशिपताम् । अन्यशिपन् ।
शिष्ट । शिष्टवान् । वसि । उपित । उपितवान् । उपित्वा । वसि ।
जक्षतु । जक्षु ।

सि०—शामु । शाम् । शाम् लुङ् । शाम् ल् । शाम् तिप् । शाम्
अह् ति । शिम् अ ति । शिप् अ त् । शिपा । अट शिपन् । अशिपन् ।
अनु अशिपन् । अन्यशिपन् । वम निवामे । वम् क्त । वम् त । उ अ
म् त । उप् इट् त । उपित मु । उपित । जक्षतु । गमदनेति सूत्रे
उप्यम् ।

इण् पीध्वलुङ् लिटा घोऽद्वात् ८।३।७८

प० वि०—इण् ५।१ पीध्वलुङ् लिटाम् ६।३ घ ६।१ अद्वात् ५।१

अर्थ—[मूर्द्धन्य] इण्ताद्वाद्वात्तरेषां पीध्वलुङ् लिटां यो घकार-

स्तस्य स्थाने मूर्द्धन्यादेशो भवति । (इणन्त अङ्ग के पश्चात् पीध्वम्, लुङ् और लिट् का जो धकार उसके स्थान में मूर्द्धन्य आदेश होता है)

उदा०—च्योपीढ्वम् । प्लोपीढ्वम् । लुङ्-अच्योढ्वम् । अप्लो-
ढ्वम् । लिट्-चकृढ्वे ॥

सि०—च्युङ् । च्यु लिङ् । च्यु ल् । च्यु ध्वम् । च्यु सीयुद् ध्वम् ।
च्यु सीय् ध्वम् । च्यो सी ध्वम् । च्योपीढ्वम् ।

विभाषेतः ८।३।७६

प० वि०—विभाषा १। इटः ५।

अर्थ—[इण पीध्वंलुङ्लिताम् ध मूर्द्धन्यः] इण. परस्माद्विटः
उत्तरपां पीध्वलुङ्लितां यो धकारस्तस्य स्थानं मूर्द्धन्य आदेशो भवति ।
(इण के पश्चात् जो इट् उसके पश्चात् पीध्व, लुङ् और लिट् के धकार
के स्थान में मूर्द्धन्य आदेश विकल्प से होता है)

उदा०—लविपीढ्वम् । लविपीध्वम् । लुङ्-अलविध्वम् । अल-
विढ्वम्—लिट्-लुलुविढ्वे । लुलुविध्वे ।

इत्यष्टाध्यायी-प्रकाशिकायामष्टमाध्याये तृतीय. पाद.

सहिताया एतत्प्रकरणम्—

रपाभ्या नो एा समानपदे ८।४।१

प० वि०—रपाभ्याम् ५।२ नः ६।१ एाः १।१ समानपदे ७।१ स०—
समानं च तत्पदं चेति समानपदं (कर्म०) तस्मिन् समानपदे । रश्च
पश्चेति रपौ ताभ्याम् रपाभ्याम् ।

अर्थ—समानम् एकम् इति अनर्थान्तरम् । रेफपकाराभ्यामुत्तरस्य
नकारस्य एकारादेशो भवति एकस्मिन् पदे । ऋसमानपदस्थौ वेन्निमि-
त्तनिमित्तिनौ भवतःः । (एक पद में स्थित रेफ और पकारके पश्चात् नकार
के स्थान में एकार आदेश होता है) ऋरेफ और पकार तथा न एकपद में रहना
चाहिए अर्थात् कार्यं और कारण एक ही पद में होना चाहिए)ः

उदा०—आस्तीर्णम् । विस्तीर्णम् । पकारात्-कुष्णाति । पुष्णाति ।
× ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम् × मातराणाम् । पितराणाम् ।

सि०—आस्तीर्णम् । संयोगादेरातो धातोर्यएवतः इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।
पश्ना ति । कुष्णाति ।

प्राणिदाने इत्येतयोर्ग्रहणम् ।

गद् नद् पत् पद् घु मा स्यति याति बाति द्राति प्साति चपति वहति शाम्यति चिनोति देग्धि इत्येतेषु परतः उपसर्गस्थाभ्यां रेफपकाराभ्यामुत्तरस्य नेर्नकारस्य एकारादेशो भवति । (उपसर्ग में स्थित रेफ प्रौर पकार के पश्चात् नि के नकार के स्थान में एकारादेश होता है गदादि के परे रहने पर)

उदा०—प्रणिगदति । परिणिगदति । प्रणिनदति । प्रणिपतति । प्रणिपवते । प्रणिद्दाति । प्रणिद्धाति । माङ् । प्रणिमिमीते । मेङ् । प्रणिमयते । प्रणिष्यति । प्रणिहन्ति । प्रणिचाति । प्रणिवाति । प्रणिद्राति । प्रणिप्साति । प्रणिवपति । प्रणिवहति । प्रणिशाम्यति । प्रणिचिणोति । प्रणिदेग्धि ।

उपसर्गादनोत्पर । ८।४।२७

कृत्यच्. ८।४।२६

प० वि०—कृति ७।१ अच् ५।१

अर्थ—[उपसर्गात् रपाभ्याम् नो ए] अच् उत्तरस्य कृत्स्थस्य नकारस्य उपसर्गस्थाभ्यां रेफपकाराभ्यामुत्तरस्य एकारादेशो भवति ।

(उपसर्ग में स्थित रेफ प्रौर पकार के पश्चात् जो अच् प्रौर उस अच् के पश्चात् जो कृत में स्थित नकार उस नकार के स्थान में एकार आदेश होता है)

उदा०—अन मान अनीय अनि इनि निष्ठादेशा एते एत्व प्रयोजयन्ति । अन—प्रयाणम् । परियाणम् । प्रमाणम् । परिमाणम् । प्रयायमाणम् । प्रयाणीयम् । अप्रयाणि । इनि—प्रयायिणौ । निष्ठादेशः—प्रहीण । प्रहीणवान् ।

सि०—प्र या यक् शानच् । प्रयायमाणम् ।

[न] भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपाम् ८।४।३३

पात्पदान्तात् ८।४।३५

प० वि०—पात् ५।१ पदान्तात् ५।१

अर्थ—[नो ए न] पकारात् पदान्तादुत्तरस्य नकारस्य एकारादेशो न भवति । (पदान्त पकार के पश्चात् नकार के स्थान में एकारादेश नहीं)

। अयमेव मूलपाठ । अनोत्पर स्थान बहुलम् इति पाठस्तु भाष्यकार-कल्पितः । काशिकादिषु च स एव स्वीकृत ।

हावा है)

उदा०—निष्पानम् । दुष्पानम् ।

नशे पान्तस्य ८।४।३६

अर्थ—[न] पकारान्तस्य नशे एकारादेशो न भवति ।

(पकारान्त नश का एकारादेश नहीं होता है)

उदा०—प्रनष्ट । परिनष्ट । पान्तस्यति किम्—प्रणश्यति ।

पदान्तस्य ८।४।३७

अर्थ—[न] पदान्तस्य नकारस्य एकारादेशो न भवति ।

(पदान्त नकार का एकारादेश नहीं होता है)

उदा०—वृक्षान् । प्लक्षान् ।

संहितावाच्यप्रकरणम्—

स्तो श्चुना श्चु ८।४।४०

प० रि०—स्तो ६।१ श्चुना ३।१ श्चु १।१ स०—शश्च तुश्चेति श्चु तस्य स्तो । (समा० द्वन्द्व १) शश्च चुश्चेति श्चु तेन श्चुना ।

अर्थ—सकारतवर्गयोः शकारवर्गाभ्यां योगे शकारवर्गो आदेशी भवति । (सकार और चवर्ग के योग में सकार और तवर्ग के स्थान में शकार और चवर्ग आदेश होता है)

उदा०—ऋयथासत्य नेप्यतेः वृक्षम श्रेते । वृक्षश्रेते । प्लक्षश्रेते । प्लक्षश्चिनोति । वृक्षश्चिनोति । वृक्षश्चिनोति । प्लक्षश्चिनोति । वृक्षश्चिच्छेते । वृक्षश्चिच्छेते । प्लक्षश्चिच्छेते । वृक्षश्चिच्छेते । अग्निचित् श्रेते । अग्निचित् श्रेते । अग्निचित्च्छेते । सोममुच्छेते । अग्निचित् छादयति । अग्निचित्छादयति । सोममुच्छादयति । अग्निचित् जयति । अग्निचित्जयति । सोममुज्जयति ।

प्टुना प्टु ८।४।४१

प० वि०—प्टुना ३।१ प्टु १।१ स०—पश्च तुश्चेति प्टु तेन प्टुना ।

अर्थ—[स्तो] सकारतवर्गयोः पकारवर्गाभ्यां योगे पकारवर्गो आदेशी भवति । (पकार तवर्ग के योग में सकार और तवर्ग के स्थान में पकार

और टवर्ग आदेश होता है)

उदा०—वृक्षस् पण्डे । वृक्षण्यण्डे । वृक्षस् टीकते । वृक्ष्ण्टीकते ।
पेष्टा । पेष्टुम् । पेष्टव्यम् । कृषीष्ट । कृषीष्ठाः । अग्निचित् टीकते ।
अग्निचित् टीकते ।

सि०—पिप्लु वृच् । पेष्टा ।

• न पदान्ताट्टोरनाम् ८।४।४२

प० वि०—न अ० । पदान्तान् ५।१ टोः ५।१ अनाम् (लुप्तपट्टी०)

अर्थ—पदान्ताट् टवर्गाद् उत्तरस्य स्तोः ष्टुः न भवति नाम्
इत्येतद् वर्जयित्वा । (पदान्त टवर्ग के पश्चात् सकार और तवर्ग का पकार
और टवर्ग नहीं होता है नाम् को छोड़कर)

उदा०—मधुलिट् साये । मधुलिट् तरति । ×अनाम्नवतिनगरी-
णाम् इति वाच्यम् × पण्णाम् । पण्णयति । पण्णगरी ।

तोः पिः ८।४।४३

अर्थ—[न] तवर्गस्य पकारे यदुक्तं तन्न भवति । (तवर्ग का पकार के
परे रहने पर जो कुछ कहा गया है सो नहीं होता है)

उदा०—अग्निचित् पण्डे । भवान् पण्डे ।

शात् ८।४।४४

अर्थ—[न तो.] शकारानुत्तरस्य तवर्गस्य यदुक्तं तन्न भवति । (शकार
के पश्चात् तवर्ग के स्थान में जो कुछ कहा गया है सो नहीं होता है)

उदा०—प्रश्नः । विश्नः ।

यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ८।४।४६

प० वि०—यः ६।१ अनुनासिके ७।१ अनुनासिकः १।१ वा
अ० ।

अर्थ—[पदान्तस्य] पदान्तस्य यरोऽनुनासिके परतो वा अनुना-
सिकादेशो भवति । (पदान्त यर् का अनुनासिक आदेश विवल्प से होना
है अनुनासिक के परे रहने पर)

उदा०—वाग्नयति । वाङ्नयति । श्वलिङ्नयति । श्वलिङ्नयति ।
अग्निचिद्नयति । अग्निचिद्नयति ।

अचो रहाभ्या द्वे ८।४।८६

प० वि०—अच ११ रहाभ्याम १२ द्वे १३ स०—रश्च हश्च इति रहो ताभ्या रहाभ्याम् ।

अर्थ—[वा यर] अच उत्तरो यो रफहकारो ताभ्यामुत्तरस्य यरो द्वे भवत । (अच क उत्तर जा रफ गौर हकार उसक पश्चात् यर का विकल्प स द्वित्व हाता है)

उदा०—अक । अर्क । मर्क । मर्क । ब्रह्मा । ब्रह्मा ।

अनचि च ८।४।४७

प० वि०—अनचि ७१ च अ० । स०—न अच् इति अनच् तस्मिन् अनचि ।

अर्थ—[अच यर वा द्वे] अच उत्तरस्य यरा वा द्वे भवत न तु अचि । (अच के पश्चात् यर् का विकल्प स द्वित्व हाता है अच पर रहन पर नहीं)

उदा०—दधि अत्र । दध् अत्र । दध् अत्र । दध् अत्र । दध्यत्र । दध्यत्र ।

भलाम् जश्भशि ८।४।५३

प० वि०—भलाम् ६३ जश् ११ भशि ७१

अर्थ—भलाम् स्थाने भशि परत जश् आदेशो भवति । (भल क स्थान म भश् के परे रहन जश् आदेश हाता है)

उदा०—ल-ग । ल-धुम् । ल-यम् ।

सि०—साधन तु भयस्तथावाऽध इत्यत्र द्रष्टव्यम् ।

अभ्यास चर्च ८।४।५४

प० वि०—अभ्यासे ७१ चर् ११ च अ० ।

अर्थ—[भलाम्] अभ्यासे धर्त्तमानाना भला चरादेशो भवति चकाराज्जश् च । (अभ्यास में वतमान भल क स्थान म चर् आदेश हाता है गौर चकार स जस भी)

उदा०—X प्रवृत्तिचरा प्रवृत्तिचरो भवन्ति । प्रवृत्तिजशा प्रवृत्तिजशो भवन्ति X चिचिपति । जिजनिपति ।

खरि च ८।४।५५

अर्थ—[भलाम् चर्] खरि च परतो भला चरादेशो भवति ।

(खर् के पर रहन पर भल क स्थान म चर आदेश हाता है)

उदा०—भेत्ता । भेत्तुम् । भेत्तव्यम् ।

वावसाने ८।४।५६

प० वि०—वा अ० । अवसाने ७।१

अर्थ—[मलां चर्] अवसाने वर्त्तमानानां मलां वा चर् आदेशो भवति । (अवसान में मल का विकल्प से चर् आदेश होता है)

उदा०—वाच् । वाक् । वाग् । वाक् ।

अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः ८।४।५७

प० वि०—अणः ६।१ अप्रगृह्यस्य ६।१ अनुनासिकः १।१

अर्थ—[अवसाने वा] अप्रगृह्यस्य अणो वावसाने अनुनासिकादेशो भवति । (अप्रगृह्य अणु का अवसान में विकल्प से अनुनासिक आदेश होता है)

उदा०—दधि । दधिं । मधु । मधुं ।

अनुस्वारस्य ययि परसवर्णा ८।४।५८

अर्थ—अनुस्वारस्य ययि परतः परसवर्णादेशो भवति । (अनुस्वार का यय् के परे रहने पर परसवर्ण आदेश होता है)

उदा०—नन्दिता । नन्दितुम् । नन्दितव्यम् । शङ्किता । शङ्कितुम् । शङ्कितव्यम् ।

सि०—टुनदि । नद् । न तुम् द् । नन्द् । नद् । नन्द् वृच् । नन्द् इट् वृ । नन्दिता । शकि । शक् । श तुम् क् । शन्क् । शंक् । शङ्क् वृच् । शङ्क् इट् वृ । शङ्कित् । शङ्किता । शङ्कितारौ ।

वा पदान्तस्य ८।४।५९

प० वि०—वा० अ० । पदान्तस्य ६।१ ।

स०—पदस्य अन्तः पदान्तः तस्य पदान्तस्य ।

अर्थ—[अनुस्वारस्य ययि परसवर्णाः] पदान्तस्यानुस्वारस्य ययि परतो वा परसवर्णादेशो भवति । (पदान्त अनुस्वार का यय् के परे रहने पर विकल्प से परसवर्ण आदेश होता है)

उदा०—तं कथं चित् । तङ्कथञ्चित् ।

तोलि ८।४।६०

प० वि०—तोः ६।१ लि ७।१

अर्थ—[परसवर्णः] तवर्गस्य लकारे परतः परसवर्णादेशो भवति ।

(लकार के परे रहने पर तवर्ग का परसवर्ण आदेश होता है)

उदा०—अग्निचित् लुनाति । अग्निचिल्लुनाति । भवान् लुनाति । भवाँल्लुनाति ।

उद. स्थास्तम्भोः पूर्वस्य ८।४।६१

प० वि०—उदः ५।१ स्थास्तम्भो. ६।२ पूर्वस्य ६।१

अर्थ—[सवर्णः] उद उत्तरयो. स्थास्तम्भ इत्येतयोः पूर्वसवर्णादेशो भवति । (उत् के पश्चात् स्था और स्तम्भ का पूर्वसवर्ण आदेश होता है)

उदा०—उत्थ्याता । उत्थ्यातुम् । उत्थ्यातव्यम् । उत्थाता । उत्थातुम् । उत्थातव्यम् । स्तम्भेः । उत्तम्भिता । उत्तम्भितुम् । उत्तम्भितव्यम् ।

सि०—उन् स्थाता । उन्थ्याता । उत्थाता । ॐ अत्राघोपस्य महाप्राणस्य सस्य तादृशः एव थकार तस्य ऋरो ऋरि सवर्णे इति पाचिको लोपः लोपाभावपक्षे तु थकारस्यैव श्रवणं भवति । न तु खरि च इति चर्त्वम् । चर्त्वम्प्रति थकारभ्यासिद्धत्वान् ॐ

भयो होऽन्यतरस्याम् ८।४।६२

प० वि०—भय० ५।१ हः ६।१ अन्यतरस्याम् अ० ।

अर्थ—[पूर्वस्य सवर्ण.] भय उत्तरस्य हकारस्य पूर्वसवर्णादेशो भवति अन्यतरस्याम् ।

(भय के पश्चात् हकार का विकल्प से पूर्वसवर्ण आदेश होता है)

उदा०—वाग् हसति । वाग्घसति । ॐ घोपवतो नादवतो महाप्राणस्य हस्य तादृशो वर्गचतुर्थ एवादेशः ।

शश्छोऽटि ८।४।६३

प० वि०—शः ६।१ छः १।१ अटि ७।१

अर्थ—[भय अन्यतरस्याम्] भय उत्तरस्य शकारस्य अटि परतरङ्गकारादेशो भवत्यन्यतरस्याम् । (भय के पश्चात् शकार के स्थान में विकल्प से छकार आदेश होता है अट् के परे रहने पर)

उदा०—अग्निचित् शोते । अग्निचिच् शोते । अग्निचिच्छेते ।
× छत्वममीति वक्तव्यम् × तच्छ्लोकेन ।

[हलो] यमा यमि लोपः ८।४।६४

ऋरो ऋरि सवर्णे ८।४।६५

प० वि०—ऋः ६।१ ऋरि ७।१ सवर्णे ७।१

अर्थ—[हलः अन्यतरस्याम्] हल उत्तरस्य सवर्णे, भरि परतो मरो लापो भवति अन्यतरस्याम् । (हल् के पश्चात् सवर्णं भरु के परे रहने पर भरु का विकल्प से लोप होता है)

उदा०—उत्थाता । उत्थातुम् । उत्थातव्यम् । उत्थ्याता । उत्थ्यातुम् । उत्थ्यातव्यम् ।

उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित ८।४।६६

प० वि०—उदात्तात् ५।१ अनुदात्तस्य ६।१ स्वरित. १।१

अर्थ—उदात्तात्परस्य अनुदात्तस्य स्वरितो भवति ।

(उदात्त क पश्चात् अनुदात्त का स्वरित हाता है)

उदा०—क॒र्त्त॒व्य॑म् । प॒च॑ति, प॒ठ॑ति, चि॒की॑र्षति । भ॒ङ्ग॒रु॒ भा॒सुर॑म् ।
कौ॒ञ्जा॒य॒ना । ना॒डा॒य॒न । चि॒की॑र्ष्यम् जि॒ही॑र्ष्यम् । चि॒की॑र्षक जि॒ही॑
र्ष॒ । रा॒ज॒पु॒रु॒ष ।

सि०—कृ॑ । कृ॒ तव्य॑ । कृ॒ तव्य॑ । क॒र्त्त॒व्य॑ । क॒र्त्त॒व्य॑ । क॒र्त्त॒व्य॑
सु । क॒र्त्त॒व्य॑ अ॒म् । क॒र्त्त॒व्य॑म् । प॒च॑ । प॒च् शप् तिप् । प॒च॑ अ॒
ति॑ । प॒च॒ति॑ । प॒च॒ति॑ । प॒च॒ति॑ । भास् । भास् घुरच् ।

१—भ्रूवादयो धातव (१. ३. १) धातोरित्यन्तोदात्त (६. १. १५६)
२—प्रत्यय, परस्व, आद्युदात्तश्चेति (३. १. ३) प्रत्ययस्वरेण आद्युदात्त ।
३—धानुस्वर प्रत्ययस्वरो वा भवन् इति विचारणायां सति शिष्ट स्वरो
श्लेषान् इति परिभाषया प्रत्ययस्वरो भवति । उदात्तस्य किमपि चिह्न नास्ति ।
इति कृते, अनुदात्त पदमकवर्जम् (६. १. १५२) इति अनन परिशिष्यमाणा
ककारयकारोत्तरवसिनोरकारयोरनुदात्त कर्त्तव्य । चिह्नमपि यद्वत् तदनुदा-
त्तस्य । ४—उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित (८. ४. ६५) इति यकारोत्तरवसिन
अकारस्य स्वरितत्वम् । कथ व्यञ्जनस्य व्यवधान स्वरो न भवति इति
तदुच्यते—स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवदिति वचनात् ५—अनुदात्तो
मुष्पिनी (३. १. ४) ६—स्वरितोदात्तयारेकादेश स्थानतरतम (१।१।४६)
इत्यनन उभयधमविशिष्ट स्वरिता भवति । ७—अनुदात्तो मुष्पिनी
(३. १. ३) ८—धानुस्वर एव भवति । ९—उदात्तादनुदात्तस्य
स्वरित, (८. ४. ६५) स्वरितात्सहितायामनुदात्तानाम् (१. २. ३६) इति एक-
श्रुति, एकश्रुतेरपि उदात्तवत् किमपि चिह्न नास्ति । यदि एकश्रुते किमपि
चिह्न नास्ति तदा कथ ज्ञापेत क उदात्त वा एकश्रुति, तदुच्यते—स्वरितात्
परस्य एकश्रुतिरेव भवति न तु उदात्त इति नियम साधारणतया ज्ञातव्य ।

भासुरम् । कुञ्ज । कुञ्ज एकम् । कुञ्ज आयन । कौञ्जायन ।
 नड । नड एकम् । नड आयन । नडायायन । ऋ । ऋ सन् ।
 चिकीर्ष । चिकीर्ष यन् । चिकीर्ष्यम् । चिकीर्ष अक । चिरी
 र्षक । चिकीर्षक । राजपुरुष ।

अ अ ८।८।६८

प० त्रि०—अ अ० । अ अ० ।

अर्थ—अमारो विवृत सवृतो भवति । (विवृत प्रकार सवृत हाता है)

ॐ एकोऽऽ विवृतोऽपर मवृतस्तत्र विवृतम्य सवृत क्रियते । सवृत
 स्त्रकार इति शिवासूत्रेण यमारस्य सवृतप्रयनत्वमुक्तम् । तीर्ष यमार
 प्लुनश्च विवृतकरणाश्चरा इत्यनेन विवृतप्रयनत्वम् । तयो ह्रस्वतीर्षयो
 प्रयनभेदान् सवर्णसङ्घा न प्राप्नोति तत अ इ उ णे सूत्रे कार्योर्वमारां
 विवृत प्रतिज्ञातस्तस्य तथाभूतस्यैव प्रयोगो मा भूद् इति सवृतप्रत्यापत्ति-
 रिय क्रियते ॐ

उदा०—वृत् । प्लत् ।

इतिथीमत्पदवाक्यप्रमाणज्ञमहावैयाकरणपण्डितब्रह्मदत्ता-

चार्याणामन्तेवासिना देवप्रकाशपातञ्जलेन विर-

चितायामष्टाध्यायी-प्रकाशिकायाम्

अष्टमाध्याय चतुर्थ पाद

इति अष्टमोऽध्याय

१—चित (६ १ १५६) २—फिपोत् उदात्त (फिद् सूत्रम् १) ३—
 तद्धितस्व (६ १ १५८) ४—चित (६ १ १५६) ५—ङित्यादिनि-
 त्यम् (६ १ १६१) ६—तित्स्वरितम् (६ १ १७६) ७—लिति (६ १
 १८०) साधन न पदान्तेति० (१ १ ५७) सूत्रे द्रष्टव्यम् ८—समासस्य
 (६. १. २१७)

नामप्रकरणम्

(अजन्तपुल्लिङ्गा)

१—कृत १ एव पुरुषादयोऽयदन्ता । २—सर्व, सर्वौ, सर्वे २ । एव विश्वाद्योऽप्यदन्ता ॥ ३—उभशब्दो नित्य द्विवचनात् । उभो २ । उभाभ्याम् ३ । उभया ॥ उभयशब्दस्य द्विवचन नास्ति । उभय—उभय । उभयम्—उभयान् । उभयेन—उभयै । उभयस्मै—उभयेभ्य । उभयस्मात् उभयेभ्य । उभयस्य उभयेषाम् । उभयस्मिन्—उभयेषु ॥ ४—विश्वपा, हे विश्वपा, विश्वपौ, विश्वपा, विश्वपाम्, विश्वपौ, विश्वप ३ ॥ ५—मुनि^५, मुनी, मुनय एव ऋष्यादय ॥ साधु, साधू, साधव एव भान्वादय ॥ ६—सखि^६—सखा, सखायौ, सखाय ॥ पति^६—पति, पती, पतय ॥ ७—कति^७—कति, कतिभि, कतिभ्य २ कतीनाम्, कतिषु ॥ कतिश दो नित्य बहुवचनान्त ॥ ८—त्रि—त्रय । त्रीन । त्रिभि । त्रिभ्य २ । त्रयाणाम्^८ । त्रिषु ॥ द्वौ २ । द्वाभ्याम् ३ । द्वयो २ ॥ ९—ग्रामणी । ग्रामणी । ग्रामण्य १ ॥ १०—पितृ^{१०}—पिता, पितरौ, पितर ॥ ११—घातृ—घाता । घातारौ^{११} । घातार । हे घात ॥ १२—ना । नरी । नर । नृणाम्—नृणाम्^{१२} ॥ १३—गो^{१३}—गौ । गावौ । गव । गाम् । गावौ । गा ॥ १४—रा^{१४} । रायौ । राय ।

(अजन्तस्त्रीलिङ्गा)

१५—रमा^{१५}—रमा । रमे । रमा । लताद्योऽप्यादन्ता । १५—सर्वा ।

१—निष्ठा (३ २ १०२) कृतवद् रामशब्दस्य रूपाणि । २—ब्रह्मसो ति (७. १. २०) ३—घातो घातो (६ ४. १४०) ४—उणादयो बहुलम् (३ ३ १) साधुवत् साधनम् ५—सव्युरसम्बुद्धो (७. १ ९२) स्वत्यात्परस्य ६—स्वत्यात्परस्य (६ १ १०८) ७—पठम्यो लुक (७ १ २२) ८—त्रस्रय (७ १ ५३) ९—उरामनद्याम्नीभ्य (७ ३. ११६) १०—ऋदुगन० (७ १. ६४) ऋतो डिस्वनामस्थानयो (७ ३. ११०) ११—मपृन्तृव० (६ ४ ११) १२—नृ च (६ ४ ६) १३—गोतो एित् (७ १ ६०) प्रीतो मशपो (६ १. ६०) १४—राया हलि (७. २ ८५) १५—द्व्याप्प्रातिपदि

सर्वे । सर्वाः । १७—जरा^१ । जरसौ । जरसः । जरा । जरे । जराः ॥
 १८—मतिः^२ ॥ १९—तिस्रः^३ २ तिसृभिः । तिसृभ्यः । तिसृणाम् ।
 तिसृषु ॥ द्वि । द्विभ्यो । द्विभ्यः । द्विभ्यो । द्विभ्यो । द्विभ्यो । द्विभ्यो । द्विभ्यो । द्विभ्यो ।
 द्वाभ्याम् ॥ द्वयोः २ ॥ २०—कुमारी^४ ॥ एवं नद्यादयोऽपीदन्ताः ।
 लक्ष्मीः (अड्यन्तस्वाप्न मुलोप) शेष गौरीवत् ॥ २१—स्त्री^५—स्त्री—
 द्वे स्त्रि । स्त्रियो । स्त्रियः ॥ २२—श्री^६—श्री । श्रियो । श्रियः ॥ २३—
 स्वस्^७—स्वसा । स्वसारी । स्वसारः ॥ मातृ—माता । मातरौ । मातरः ।
 मातरम् । मातरी । मातः । शेषस्तु पितृवत् ॥

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा ।

याता मातेति सप्तैते स्वस्मादय उदाहृताः ॥

(अजन्तनपु सकलिङ्गाः)

२४—फल^८—फल । फले । फलानि । एवं ज्ञानादयोऽप्यदन्ताः ॥
 २५—वारि^९—वारि । वारिणी । वारीणि ॥ दधि^{१०}—अन्य-
 रस्यं वारिवत् विशेषस्तु दध्ना । दध्ने । दध्न २ । दध्नोः २ । दधनि^{११}—
 दध्नि । २५—मधु—मधु । मधुनी । मधूनि ॥ २६—पातृ—पातृ ।
 पातृणी । पातृणि ॥

(हलन्तपुल्लिङ्गा)

२७—लिह^{१२}—लिह । लिहो । लिहो । २८—दुह^{१३}—धुक्^{१४}—
 धुग् । दुहो । दुह ॥ धुग्भ्याम् ॥ धुक्त् ॥ १९—अनडुह^{१५}—अनड्वान् ।
 अनड्वाहो ॥ ३०—दिव^{१६}—दिवो । दिवो । दिवः । ३१—चतुर्^{१७}—
 चत्वारः । चतुरः । चतुर्भिः ॥ चतुर्णाम्—चतुर्णाम् ॥ चतुर्षु ॥

वात् (४. १. १)

१—जराया जरसन्वतरस्याम् (७ २. १०१) २—स्त्रिया
 वितन् (३. ३. ६४) ३—त्रिषुनुरो स्त्रिया तिसृचतम (७ २. ६६)

४—ड्याप्प्रातिपदिकात् (४. १. १) ५—स्त्रिया (६. ४. ७६) ६—
 षचि इनुषात् (६. ४. ७७) ७—अत्तुत् (६. ४. ११) ८—षतोऽन्
 (७. १. २४) ९—इकोऽचि विभक्तौ (७. १. ७३) १०—षन्धिदधि
 (७. १. ७५) ११—विभाषा द्विषो (६. ४. १३६) १२—हो ष (८. २. ३१)
 १३—एकाचो (८. २. ३७) १४—चतुरत्तदुद्गोरामुदात्त (७. १. ९८)
 १५—दिव षोत् (७. १. ८४)

३२—त्रिम्^१—रु । की । के ॥ ३३—उदम्—अयम् । इमौ । इमं ॥ ३४—
 राजन्—राजा । राजानो । राजान । राजानम् । राजानौ । राज्ञ^२ ॥
 ३५—यञ्जन्—अन्यत्सर्वं राजन् इति यत् विशेषस्तु यञ्जन । यञ्जना ।
 यञ्जभ्याम् ॥ ३६—गुणिन्—गुणी^३ । गुणिनी । गुणिन । गुणिनम्
 गुणिनी । गुणिन । गुणिना । गुणिभ्याम् ॥ एव यशस्विनादयोऽपि
 इन्नन्ता ॥ ३७—मघन्^४—मघवा । मघवानौ । मघवान । मघवानम् ।
 मघवानौ । मघोत ॥ ३८—श्वन्—शवा । शवानौ । शवान ॥ युवन्—
 युवा । युवानौ । युवान ॥ ३९—पथिन्^५—पन्था । पन्थानौ । पन्थान ॥
 ४०—पञ्चन् । पञ्चन्शब्दो नित्य बहुवचनान्त । पञ्च । पञ्च ।
 पञ्चभि । पञ्चभ्य । पञ्चानाम् । पञ्चसु ॥ अष्टन् । अष्ट । अष्ट ।
 इति सर्वं पञ्चवत् ॥ आत्पे कृते तु—अष्टा । अष्टा^६ । अष्टाभि ।
 अष्टानाम् ॥ ४१—ऋत्विग्—ऋत्विग्—ऋत्विक् । ऋत्विजौ । ऋत्विज ॥
 युज्^७—युङ् । युञ्जौ । युञ्ज । युञ्जम् । युञ्जौ । युज । युग्भ्याम् ।
 राज्—राट्—राड् । राजौ । राज । राजम् । राजौ । राज । राजा ।
 राड्भ्याम् ॥ ४२—तद्^८—स । ती । ते ॥ ४३—युष्मद्^९—अस्मद्—
 त्वम् । युवाम् । यूयम् । अहम् । आवाम् । वयम् ॥ ४४—प्राच्^{१०}—
 प्राङ् । प्राञ्चौ । प्राञ्च । प्राञ्चम् । प्राञ्चौ । प्राच । प्राग्भ्याम् ।
 प्रत्यच्—प्रत्यङ् । प्रत्यञ्चौ । प्रत्यञ्च । प्रत्यञ्चम् । प्रत्यञ्चौ । प्रतीच ।
 उदच्—उदङ् । उदञ्चौ । उदञ्च । उदञ्चम् । उदञ्चौ । उदीच ।
 उदीचा । उदग्भ्याम् । ४५—महत्^{११}—महान् । महान्तौ । महान्त ।
 महान्तम् । महान्तौ । महत् ॥ ह महन् ॥ धीमन्—धीमान् । धीमन्तौ ।
 धीमन्त । धीमत । धीमद्भ्याम् । धीमत्सु ॥ हे धीमन् ॥ भवन्—
 भवान्^{१२} । भवन्तौ । भवन्त । ४६—ताटश्—ताटक् ताट्ग् । ताटशौ ।
 ताटश । विश्^{१३}—विट्—विड् । विशौ । विश । विड्भ्याम् विट्सु ॥

१—त्यादादीनामस्य प्रकरणं द्रष्टव्यम् २—घल्लापाञ्ज (६.४.१३४) ३—सौ
 च (६.४.१३) ४—इवयुवमपानामतद्धिने (६.४.१३३) ५—पयिमपि०
 (७.१.८५) ६—अष्टन् घा विभक्तौ (७.१.८४) ७—युजरममाश (७.१.७१)
 ८—तदो म० (७.२.१०६) ९—त्यादादीनामस्य प्रकरणं द्रष्टव्यम् १०—
 उगिदघा० (७.१.७०) घञ् (६.४.१३७) ११—सातमहत् सपास्य (६.
 (६.४.१०) १२—घत्वसन्तस्य चाषाठा (६.४.१४) १३—अदृषधस्त्र० (८

घृतस्पृश्—घृतस्पृक्—घृतस्पृग् । घृतस्पृशी ॥ ४७—पप्—पट्—पड् ।
 पड्भि ॥ पणाम् । पट्सु ॥ ४८—विद्वस्—विद्वान् ॥ विदुपः ॥
 ४९—पुसि^३—पुमान् । पुमांसौ । हे पुमन् ॥ ५०—अदस्—असौ ।
 अम् । अमी ॥

(हलन्तस्त्रीलिङ्गा)

५१—उपानह्—उपानत्—उपानद् । उपानही । उपानहः ॥ ५२—
 दिन् । द्यौः । दिवौ । दिव ॥ द्युभ्याम् ॥ ५३—गिर्—गी^१ । गिरी ।
 गिर । ५८—चतस्—चतस्र ॥ ५६—स्मिटा । का । के । का ॥ ६०—
 इदम्—इयम् ॥ ६१—वाच्—वाक् । वाचौ । वाच ॥ ६२—अप्^२ शब्दो
 नित्यं बहुवचनान्तः । आप । अप । अदिभ् । अपाम् । अप्सु ॥ ६३—
 दिश्—दिक्—दिग् । दिशी । दिश । दिग्भ्याम् । दिग्भिः ॥ दिशाम् ।
 दिक्षु ॥ ६४—अदस्—असौ । अम । अम् ॥ ६५—आशिप्—आशी ।
 आशिपी । आशीभ्याम् ॥

(हलन्तनपुंसकलिङ्गा)

६६—वार् जलार्थे—वा । वारी । वारि ॥ वाभ्याम् ॥ चतुर्^८—
 चत्वारि ॥ शेषं पुं वत् ॥ इदम्—उदम् । इमे । इमानि । इदम् । इमे ।
 इमानि । शेषं पुं वत् ॥ ६७—तद्—तत् । ते । तानि । एतत् । एते ।
 एतानि ॥ यत् । ये । यानि ॥ ७६—ददत्^९—ददत् । ददति । ददन्ति—
 ददति । तुदत्—तुदत् । तुदन्वी—तुदती । तुदन्ति ॥ पचत्—पचत् ।
 पचन्ती । पचन्ति ॥ दीव्यन्^{१०}—दीव्यन् । दीव्यन्ती । दीव्यन्ति ॥ ७८—
 धनुप्—धनुः । धनुपी । धनूपि ॥

२. ३६)

१—पड्भ्यो लुक् (७ १ २२) २—वसो सम्प्रसारणम् (६ ४
 १३१) ३—पुसोऽमुद् (७ १. ८९) ४—अदसोऽनेदादुदो म (८. २ ८०)
 ५—नहो ष (८ २. ३४) ६—हति च (८ २. ७७) ७—पपो मि (७
 ४ ४८) ८—चतुरनहुहोरामुदात्त (७ १ ९८) ९—नाभ्यस्तच्छ्रु (७. १.
 ७८) वा नपुंसकस्य (७. १. ७९) १०—दाप्यनोनित्यम् (७ १. ८१)

आख्यातप्रकरणम्

भू सत्तायाम् (होने मे) उदात्तः उदात्तेत्

(शुद्धकर्तृप्रक्रियायाम्)

लटि^१ । लिटि^२ लुटि^३ । लृटि^४ । लेटि^५ लोटि^६ । । लडि^७ ।
लिडि^८ । आशिपि लिडि^९ । लुडि^{१०} । लृडि^{११} ।

(कर्मप्रक्रियायाम्)

लटि—(अङ्गकोऽप्युपसर्गवशात्सकर्मकं) अनुभूयते मुरु प्रकाशेन ।
अनुभूयेते । अनुभूयन्ते । त्वमनुभूयसे मया । अहमनुभूये त्वया ।

लिटि—अनुभूवे^{१२} । अनुभूवाते । अनुभूविरे । अनुभूविपे ।
अनुभूयाथे । अनुभूविध्वे । अनुभूविडवे^{१३} ।

लुटि—अनुभाविता^{१४} अनुभविता ।

लृटि—अनुभाविष्यते-अनुभविष्यते ।

लेटि—अनुभविपते, अनुभविपाते । अनुभविपते-अनुभविपाते ।
अनुभूयते-अनुभूयाते । अनुभूयते अनुभूयाते ।

लोटि—अनुभूयताम् । अनुभूयेताम् । अनुभूयन्ताम् । अनुभूयस्व ।
अनुभूयेथाम् । अनुभूयध्वम् । अनुभूये । अनुभूयावहि । अनु-
भूयामहे ।

लडि—अन्वभूयत । अन्वभूयेताम् । अन्वभूयन्त । अन्वभूयथा ।
अन्वभूयेथाम् । अन्वभूयध्वम् । अन्वभूये । अन्वभूयावहि । अन्वभूया-
महि ।

त्रिध्यादिलिडि—अनुभूयेत । अनुभूयेयाताम् । अनुभूयेरन् । अनु-

१—वर्तमान लट् (३ २.१२३) २—परोक्षे लिट् (३.२ ११५) ३—प्रन-
चतन लृट् (३. ३ १५) ४—लृट् षोप च (३ ३ १३) ५—लिट् षे लेट् (३.४७)
६—लोट् च (३. ३ १६०) ७—प्रनचतन लडि (३ २.१११) ८—विधिविमन्त्रण०
(३ ३ १६१) ९—आशिपि लिट् लटो (३ ३ १७३) १०—लुड् (३ २ ११८)
११—त्रिङ्निमत्तो० (३. ३ १३६) १२—भुवो भुक् लुङ् लटो (६ ४ ८०)
१३—विभाषेत (८ ३. ७६) १४—स्वमिष्मीषुट् (६. ४. ६२)

भूयेथा । अनुभूयेयाथाम । अनुभूयेध्वम् । अनुभूये । अनुभूयावहि ।
अनुभूयामहि ।

आशिषि लिङि—अनुभाविपीष्ट अनुभविपीष्ट ।

लुङि—अन्वभावि^१ । अन्वभाविपाताम्—अन्वभविपाताम् । अन्व
भविपत—अन्वभविपत । अन्वभविपथा—अन्वभाविपथा । अन्व-
भविपाथाम्—अन्वभाविपाथाम् । अन्वभविध्वम्—अन्वभाविध्वम्^२,
अन्वभविद्वम्—अन्वभाविद्वम् । अन्वभविपम्—अन्वभविपम् । अन्वभ-
विष्यहि, अन्वभविष्यहि । अन्वभविमहि—अन्वभाविमहि ।

अन्वभविष्यत—अन्वभविष्यत ।

(भावप्रक्रियायाम्)

अत्र प्रत्ययेन कर्त्तरन्निधानात् कर्त्तृकरणयोस्तृतीया । तत्र भावस्य
युष्मदस्मदर्थान्निशेष्यत्वात्प्रथमपुरुष एवात्र व्याख्याने, स्वतः क्रियाया
निवृत्तभेदाया अभिधानादेकवचनमेव भवति ।

(भ्रूद्भ्या, भवद्भ्य, त्वया, युवाभ्या, युष्माभि, मया, आवा
भ्यामस्माभिर्वा भूयते)

भूयते । वभरे । भविता—भाविता । भविष्यते भविष्यते । भावि
पते भाविपते, भविपते—भविपते, भूयते भूयाते, भूयते भूयाते । भय
ताम् । अभूयत । भूयेत । भविपीष्ट भविपीष्ट । अभवि । अभ-
विष्यत—अभविष्यत ।

(कर्मकर्त्तृप्रक्रियायाम्)

शत्रु देवदत्तमभिभवति । शत्रुणा देवदत्त अभिभूयते । देवदत्त
अभिभूयते^३ स्वयमेव । एव सर्वत्र कर्मवदुदाहरणानि । लुङि तशब्दे तु
“अच कर्मकर्त्तरि” इति चिणादेशविकल्पनात् पक्षे सिच्, तस्य पूर्व
वन्चिण्वदिट् तत्पक्षे वृद्धो (अभ्यभावि) । (अभ्यभाविष्ट अभ्य-
भविष्ट इति त्रैरूप्यम् ।

(कर्मव्यतिहारे)

कर्मव्यतिहारस्तु^४ प्रक्रियाशब्देन नोच्यते । अत्र केवलमात्मनेपदत्वमेव

१—चिण्भावकमणो (३. १ ६६) २—धि ष (८ २. २५) ३—कर्म-
वत्कमणा तुन्धिक्रिय (३ १ ८७) कर्मस्यभावकाना कर्मस्यक्रियाणा च कर्त्ता-
वमवद् भवति । ४—वर्त्तरि कर्मव्यतिहारे (१. ४ ११४)

वैशिष्ट्यम् । अत एव सर्वत्र आत्मनेपद कृत्वा कर्तृवद् रूपाणि ज्ञेयानि ।
 दिङ्मात्रमुदाह्रियते—व्यतिभवते । व्यतिभवेते । व्यतिभवन्ते । व्यति-
 भवसे । व्यतिभवेथे । व्यतिभवध्वे । व्यतिभवे । व्यतिभवावहे ।
 व्यतिभवामहं । व्यतिभविता । व्यतिभविष्यते । व्यतिभविपते-व्यति-
 भविपाते, व्यतिभाविपते-व्यतिभाविपाते, व्यतिभविपतै-व्यतिभविपातै,
 व्यतिभाविपतै-व्यतिभाविपातै, व्यतिभवते-व्यतिभवाते, व्यतिभवतै-
 व्यतिभवातै । व्यतिभवताम् । व्यत्यभवत । व्यतिभवेत । व्यतिभवि-
 पीष्ट । न्यतिभविपीयास्ताम् । व्यतिभविपीरन् । व्यतिभविपीष्ठा ।
 व्यतिभविपीयास्थाम् । व्यतिभविपीध्वम्, व्यतिभविपीड्वम् ।
 व्यतिभविपीय । व्यतिभविपीवहि । व्यतिभविपीमहि । व्यत्यभविष्ट ।
 व्यत्यभविष्यत ।

(सन्नन्तस्य-बुभूप)

भृ सन् = बुभूप^१—कर्तृ प्रक्रियायाम्—बुभूपति । बुभूपाञ्चकार^२ ।
 बुभूपामास । बुभूपाम्बभूव । बुभूपिता । बुभूपिष्यति । बुभूपिपति-
 बुभूपिपाति, बुभूपिपत्-बुभूपिपात्, बुभूपिपद्-बुभूपिपाद् । बुभूपति-
 बुभूपाति, बुभूपत्-बुभूपात्, बुभूपद्-बुभूपाद् । बुभूपतु । अबुभपत् ।
 बुभूपेत् । बुभूप्यात् । अबुभूपीत्^३ । अबुभपिष्यत् ।

(भावकर्मकर्मकर्तृ प्रक्रियासु)

बुभूप्यते त्वया । अनुबुभूप्यते सुखम् । अभिबुभूप्यते देवदत्तः
 स्यमेव । अन्यत्सर्वं कर्तृवद्भेद्यम् ।

(कर्मव्यतिहारे)

व्यतिबुभूपते । व्यतिबुभूपां चक्रे-व्यतिबुभूपां वभूव—व्यतिबुभूपा-
 मास । व्यतिबुभूपिता । व्यतिबुभूपिष्यते । व्यतिबुभूपिपते-व्यतिबुभू-
 पिपाते । व्यतिबुभूपताम् । व्यत्यबुभूपत । व्यतिबुभूपेत । व्यतिबुभूपि-
 पीष्ट । व्यत्यबुभूपिष्ट । व्यत्यबुभूपिष्यत । ॐ सर्वत्र पूर्ववरसन इति
 तद् इति धातुवृत्तौ सायण । तन्न, बुभूप धातोः कर्मव्यतिहारसंबन्धात् ।
 तेन कर्तरि कर्मव्यतिहारे इत्यनेनैव तद् ॐ ।

१-धातो कर्मण समान० (३ १७) २-कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि (३ १
 ३५) ३-इट ईटि (८. २ २८) × एकादेशे सिञ्जलोप सिद्धो वक्तव्यः ×
 (८. २. १) भक सवर्णो दीर्घं ६ १. ६७)

(यडन्तस्य-वोभूय)

म् यड् = वोभूय^१

कर्त्तरि—वोभूयते । भावे—वोभूयते^२ । कर्मणि—अनुवोभूयते
सुखम् । कर्मकर्त्तरि—अभिवोभूयते शत्रु स्वयमेव । लुङि तश-ङे तु
अच कर्मकर्त्तरि इत्यनेन अभ्यवोभूयि शत्रु स्वयमेव, अभ्यवोभूय इति
च । एव सर्वान्मु प्रक्रियासु सनन्तवत्प्रक्रिया ।

(यड् लुङन्तस्य वोभू)

लटि—वाभवीति—वोभोति^३ । वोभृत् । वोभुति^४ । वोभयीपि—
वोभोपि । वाभूय । वोभूथ । वोभवीमि—वोभोमि । वोभूत् । वोभम ।
लिटि—वोभवाचकार । लुटि—वाभविता । लुटि—वोभनिष्यति ।

लेटि—वोभविपति—वोभविपाति, वोभनिपत्—वोभविपात्, वोभविपद्
वोभनिपाद्, वोभवति—वोभवति, वोभवत्—वोभवात् वोभवद्-
वोभवाद् । लोटि—वोभोतु वोभूतात् । वोभूताम् । वोभुवतु । वोभूहि—
वोभूतम् । वोभूत् । वोभवानि । वोभवाव । वोभवाम । लङि—अवो-
भवीत्—अवोभोत्—अवोभवु । अवोभवम् । अवोभवात् । अवोभवाम ।
लिङि—वोभूयान् । वोभूयाताम् । वोभूयु । वोभूया । वोभूयातम् ।
वोभूयात् । वोभूयाम् । वोभूयाव । वोभूयाम ।

आशिपि लिङि—वोभूयात् । वोभूयास्ताम् । वोभूयासु । वोभूया ।
वोभूयास्तम् । वोभूयास्त । वोभूयाम् । वोभूयास्व । वोभूयास्व ।

लुङि—अवोभूरीत्—अवोभोत् । अवोभताम् अवोभवु । लुङि—
अवोभविष्यन् ।

भाष्यम्—कर्मकर्त्तृषु प्रक्रियासु (वोभूयते त्वया इत्यादि) सर्वं यड्-
वञ्जेयम् । कर्म-यतिहारे—व्यतिवोभूते, व्यतिवोभुवते इत्यादीनि रूपाणि
अवगन्तव्यानि ।

(णिजन्तस्य भावय)

लटि—भाषयति ।

१—घातारेकाच्वा हनादे० (३ १ २२) २—घतो लोप (६ ४ ४८)
३—यडो वा ७ ३ ६४ वतमान लट (३ २ १२३) भ्रुवोस्तिङि (७ ३ ८८)
इति गुणनिषेधोऽन न भवति दासति (७ ४ ६५) इति सूत्रे वोभूतु इति गुणा-
भावाद्यानिपातनाञ्ज् जापचात् । इदमेव प्रकृति ग्रहणे यङ्लुगन्तस्यापि ग्रहण
भवति इत्यत्र ज्ञापकम् । ४—घचिन्नुघातु० (६ ४ ६५)

लिटि भावयां^१चकार । भवायांभवू । भावयामास ।

लुटि—भावयिता इत्यादि प्रकृतवत् । आशिषि लिङि—भाष्यात्^२ ।
लुङि—अधीभवत् ।

(भावकर्मकर्मकर्तृ प्रक्रियासु)

सकर्मकत्वाद्भावासंभवः । तत्र लट्लोट्लङ्विध्यादिलिङ्ङु यकि
विकरणे णिलोपः (भाव्यते । भाव्यताम् । अभाव्यत । भाव्येत) अतो-
ऽन्येऽपु लुङ्व्यतिरिक्तेषु कर्तृ षद्वरूपम् । लुङि तु चङः कर्त्तरि विधानात् ।
अन्यत्र सिजेव । तशब्दे तु चिणि (अभावि । अभावयिपाताम् इत्यादि)
स्यादिषु चिण्वदिट्पत्ते असिद्धवदत्राभात् इति चिण्वदिटोऽसिद्धत्वा-
रिणलोपे (भाविष्यते । अभाविष्यत । अभाविपाताम् । भाविपीष्ट ।
भाविता । कर्मकर्त्तरि तु यकिचणो प्रतिषेधे × णिअन्धिप्रन्धिअन्धात्मने-
पदाकर्मकारणामुपसंख्यानम् × इति यकिचणोर्निषेधाद्यथायोगं सर्वत्रकर्तृ-
वद्रूप स्यादिषु तु कर्मवत् ।

२. (एध वृद्धौ उदात्तः अनुदात्तेत्)

लटि^३—लिटि—लुटि—लुटि—लेटि—लेटि—लङि—लिङि—आशिषि लिङि—
लुङि—लुङि भावे लट्लोट्लङ्विध्यादिलिङ्ङु यगुदाहार्यः । (एध्यते
भवता) इत्यादि । लुङि तशब्दे एधि भवता । शेषे तु कर्त्तृ षद्वरूपम् ।

सनि (एदिधिपते) इत्यादि सर्वत्र प्रकृतवत् एदिधिष्यत इत्यादि
कर्त्तृ षत् । णिचि एध्यते—एध्यति । लङि ऐदिधत—ऐदिधत् ।

कर्मणि लुङि तशब्दे ऐधि । ऐधयिपाताम् इत्यादि ।

३. (अत सातत्यगमने)

अतति । आत । आततुः । आतुः । आतिथ । आतथुः । आत ।
आत । आतिव । आतिम । अतिता । अतिष्यति । अतिपति-आतिपति ।
अततु-अततात् । सिषि-अत—अततात् । आतत् । अतेत् । अत्यात् ।
आतीन् । आतिष्टाम् । आतिषुः । आतीः । आतिष्टम् । आतिष्ट ।
आतिषम् । आतिष्व । आतिष्म । अतिष्यत् ।

१—अयामन्तात्वाद्येत्विष्णुषु । २—नेर-
निति (६. ४. ५१) ३—लडादोः
द्रष्टव्यानि ।

४ (पित्र गत्याम्)

मेवति ॥ सिपेत्^१ । सिपित्तु^२ । सिपिधु । सिपेदिय । सिपिधु ।
सिपिध । सिपेध । सिपिविध । सिपिधिम ॥ सेविता ॥ सेधिष्यति ॥
मेधियति । मेधिवाति । मेधिपत् । मेधिपान् । मेधिपत् । मेधिपाद् ।
सेधति । मेधानि । सेधत् । मेधान् । सेधद् । मेधाद् ॥ मेधतु-मेध-
तान् ॥ असेधत् । मेधेत् । मिध्यान । असेधीन् । असेधिष्यन् ॥

५ (खाद् भक्षण)

खादति ॥ चखाद् ॥ चखादतु । चखादु । चखादिय । चखादधु ।
चखाद । चखाद । चखादिय । चखादिम ॥ खादिष्यति । अखादीन् ।

६ (गद व्यक्ताया वाचि)

गदति । जगाद् । जगदतु । जगदु । जगदिय । जगाद्—
जगद्^३ ॥ अगादीन्^४ । अगादीन् ॥ अगदिष्यन् ।

७ (णद् अव्ययने शब्दे)

नदति । ननाद् । नेदतु^५ । नेदु । नेदिय^६ । नेदधु । नद । ननाद्-
ननद् । नेदिय ॥ नेदिम ॥ अनदीन् अनदीन्^७ ॥

८ (टुनदि समृद्धौ)

नन्दति । ननन्द ॥ अनन्दीन् ॥

९ (टदि परमेश्वर्ये)

इन्दति । इन्दाञ्चकार^८ । इन्दाभूव । इन्दाभास ॥ इयुदात्ता
उदात्तेन ॥

१० (लोट् दर्शन)

लोफते ॥ लुलोफे ॥ लोकिषीष्ट । अलोकिष्ट ॥

१—षादगप्रत्ययस्य (८ ३ ५९) २—षतशतशक्ति द्वित् (१. २ ५)
विति ष (१ १. ५) इति दुर्गाय निदप ३—एषुसमा वा (७ १ ९१) ४—
यता हलादस्यो. (८. २ ७) ५—एत एवम्मध्ये० (६ ४. १२०) ६—विति ष
मेदि (१ ४ १२१) ७—इदितो मुष्णतो (३. १. ४८) ८—इवादेश०
(७ १ १६)

लिटि भावयां^१चकार । भवायांभूव । भावयामास ।

लुटि—भावयिता इत्यादि प्रकृतिवत् । आशिपि लिङि—भाष्यात्^२ ।
लुङि—अग्नीभवत् ।

(भावकर्मकर्मकर्तृ प्रत्रियासु)

सङ्गमत्वाद्भावासभवः । तत्र लट्लोट्लङ्ग्विध्यादिलिङ्ङु चकि
विकरणे णिलोप (भाव्यते । भाव्यताम् । अभाव्यत । भाव्येत) अतो-
ऽन्येषु लुङ्व्यतिरिक्तेषु कर्तृवद्वरूपम् । लुङि तु चङ्. कर्त्तरि विधानात् ।
अन्यत्र सिजेव । तशब्दे तु चिणि (अभावि । अभावयिपाताम् इत्यादि)
स्यादिषु चिण्प्रतिष्पत्ते असिद्धवदत्राभात् इति चिण्वदिटोऽसिद्धत्वा-
णिलोपे (भाविष्यते । अभाविष्यत । अभाविपाताम् । भाविपीष्ट ।
भाविता । कर्मकर्त्तरि तु यक्चिणो प्रतिषेधे × णिअन्थिप्रन्धिन्नृवात्मने-
पदाकर्मकारणामुपसंख्यानम् × इति यक्चिणोर्निषेधावधायोग सर्वत्रकर्तृ-
वद्वरूप स्यादिषु तु कर्मवत् ।

२ (एध वृद्धौ उदात्त अनुदात्तेत्)

लटि^३—लिटि—लुटि—लृटि—लेटि—लोटि—लङि—लिङि—आशिपि लिङि-
लुङि—लृङि भावे लट्लोट्लङ्ग्विध्यादिलिङ्ङु यगुदाहार्य । (एध्यते
भवना) इत्यादि । लुङि तशब्दे एधि भवता । शेषे तु कर्त्तृवद्वरूपम् ।

सनि (एदिधिपते) इत्यादि सर्वत्र प्रकृतिवत् एदिधिप्यत इत्यादि
कर्त्तृवत् । णिचि एधयते—एधयति । लङि ऐदिधत—ऐदिधत् ।

कर्मणि लुङि तशब्दे ऐधि । ऐयिपाताम् इत्यादि ।

३ (अत सातत्यगमने)

अतति । आत । आततु । आतु । आतिथ । आतथु । आत ।
आत । आतिव । आतिम । अतिता । अतिप्यति । अतिपति आतिपति ।
अततु अवतात् । सिपि—अत—अततात् । आतत् । अतेत् । अत्यात् ।
आतीत् । आतिष्ताम् । आतिपु । आती । आतिष्टम् । आतिष्ट ।
आतिपम् । आतिप्व । आतिप्म । अतिप्यन् ।

१—प्रथमन्तात्वाद्येत्वेषु (६. ४. ५५) इति अयं आदेशः । २—नेर-
निति (६. ४. ५१) ३—लडादीनामुदाहारणानि भूधातुवत् तत्तद्विधायकसूत्रेषु
द्रष्टव्यानि ।

४ (पित्र गत्याम्)

सेत्रति ॥ सिपेव^१ । सिपिधतु^२ । सिपिधु । सिपेधिथ । सिपिधथु ।
सिपिध । सिपेध । सिपिधिव । निपिधिम ॥ सेधिता ॥ सेधिष्यति ॥
सेधिपति । मेधिपाति । सेधिपत् । मेधिपात् । मेधिपद् । सेधिपाद् ।
सेधति । सेधाति । सेधत् । सेधान् । सेधद् । सेधाद् ॥ मेधतु-सेध-
तान् ॥ असेधत् । सेधेत् । मिध्यात् । असेधीत् । असेधिष्यन् ॥

५ (खाद् भक्षण)

खादति ॥ चखाद् ॥ चखादतु । चखादु । चखादिथ । चखादथु ।
चखाद । चखाद । चखादिव । चखादिम ॥ खादिष्यति । अखादीत् ।

६ (गद व्यक्ताया वाचि)

गदति । जगाद । जगदतु । जगदु । जगदिथ । जगाद—
जगद^३ ॥ अगदीत्^४ । अगादीत् ॥ अगदिष्यन् ।

७ (णद् अव्यक्ते शब्दे)

नदति । ननाद । नेदतु^५ । नेदु । नेदिथ^६ । नेदथु । नेद । ननाद-
ननद । नेदिथ । निदिम ॥ अनदीत् अनानीत्^७ ॥

८ (टुनदि समृद्धौ)

नन्दति । ननन्द ॥ अनन्दीत् ॥

९ (इदि परमैश्वर्ये)

इन्दति । इन्दाञ्चसार^८ । इन्दाभूत् । इन्दामास ॥ इन्दुदासा
न्दात्तेन ॥

१० (लावृ दर्शन)

लोकते ॥ लुलोके ॥ लोकिपीष्ट । अलोकिष्ट ॥

१—घादिप्रत्ययमा (८ ३ ५९) २—घतयागल्लिट् कित् (१. २. ५)
किति च (१ १ ५) इति गुणस्य निषध ३—एतुत्तमा वा (७ १ ९१) ४—
घटा हनादस्यो (८ २ ७) ५—घत एकह्रस्वध्वे० (६ ४. १२०) ६—घति च
षेति (६ ४ १२१) ७—इदितो नुगधातो (७ १. ४८) ८—इनादेश०
(७ १ ३६)

११ (शक्ति शकायाम्)

शक्ते ॥ शशक्ते ॥ शक्किपीष्ट । अशक्किष्ट ॥ इत्युदात्ता
अनुदात्तेत

१२ (वर्च दीप्रौ)

वर्चते ॥ ववर्च ॥ वर्चिपीष्ट ॥ अवर्चिष्ट ॥ अवर्चिष्यत ।

१३ (लोचृ दर्शने)

लोचते ॥ लुलोचे ॥ लोचिपीष्ट । अलोचिष्ट । इत्युदात्तो अनुदात्तो

१४. (अर्च पूजायाम्)

अर्चति ॥ आनर्च^१ । आनर्चतु । आनर्चु । आनर्चिथ । आन-
र्चथु । आनर्च । आनर्च । आनर्चिथ । आनर्चिम ॥

१५ (कूज अव्यक्त शब्दे)

कूजति । चुकूज ॥ चोकूजते । कूजर्यति अचुकूजत ।

१६ (व्रज गतौ)

व्रजति । वव्राज । अव्राजीत्^२ ॥ इत्युदात्ता उदात्तेत ॥

१७ (वेष्ट वेष्टने)

वेष्टते ॥ विवेष्टे ॥ अवेष्टीत् अवेष्टिष्ट ॥

१८ (चेष्ट चेष्टायाम्)

चेष्टते ॥ विचेष्टे ॥

१९ (पडि गतौ)

पण्डते । पण्डे । पण्डिपीष्ट ॥ अपण्डिष्ट ॥ इत्युदात्ता
अनुदात्तेत ॥

२० (कटे वपावर्णयो) २१ (रट परिभाषणो)

रटति चकाट । अरटीत्^३ ।

रटति ॥ रराट । रेटु । रेटु । रेटिथ । रेटथु । रेट । रराट-रराट ।
रेटिथ । रेटिम ॥ रट्यात् । रट्यास्ताम् । रट्यामु । अरटीत्-

१—अत आदे (७ ४ ७०) तस्मान्नुद्दिहल (७.४ ७१) २—वदवज-
हस तस्याच. (७. ३. ३) ३—ह्यत्तथाणस्वसं (७ २ ५)

अरुटीत् ॥

२२ (मडि भूपायाम्)

मरुडति ॥ ममरुड ॥

२३ (पठ व्यस्ताया वाचि)

पठति । पपाठ । पठेतु । पेटु । पेटिथ । पेटथु । पेट । पपाठ—
पपठ । पेटिथ । पेटिम । अपठीन्—अपाठीन् ।

२४ (नीडू विहारे)

कीडति । चिक्रीडतु । चिक्रीडु । इत्युदात्ता उदात्तेत

२५ (टुवेपृ कम्पन)

वेपते । विपे ।

२६ (ऋपूप् लज्जायाम्)

ऋते । रेपे^१ । रेपाते । रेपिरे । रेपिपे । रेपाथे । रेपिध्वे ।
ऋपे । रेपिध्वे । ऋपिमहे । ऋपिता-ऋप्ता^२ । ऋपिप्यते-ऋप्यते । ऋपिपते-
ऋप्यते, ऋपिपते-ऋप्साते । ऋपते-ऋपाते । ऋपने-ऋपाते । ऋपताम् ।
अऋपत । ऋपेत । ऋपिपाष्ट । ऋप्सीष्ट । अऋपि-अऋपत ।

तिऋपिपत-तिऋप्यते । ताऋप्यत । ताऋर्पाति । ताऋप्ति । ऋपयति^३ ।
अतिऋपन् । कृ-प्रत्यया —ऋपित्वा । ऋप्त्वा । ऋपत । ऋप्यवान् ।

२७ (कपि चलन)

कम्पते । चम्पे । इत्युदात्ता उदात्तेत ।

२८ (पण व्यवहारे स्तुती च)

पणत । पेणो । पेणाते । पणिरे । पणिता । पणिप्यते । पणिपते ।
पणिपाते । पाणिपते । पाणिपाते । पणिपते । पणिपाने । पाणिपते ।
पाणिपाते । पणते । पणाते । पणने । पणाते । पणताम् । अपणत ।
पणिपीष्ट । अपणिष्ट । अपणिप्यत । विपणिपते । पम्पयते^४ । पम्प-

१—तपनभजप्रपञ्च (६ ४ १२२) एतपामत एत्वमभ्याससापञ्च किति
लिटि सटि पति च । २—स्वरतिमूर्ति० (७.२ ४४) इतीडुविहारे ३—पटा-
दिष्वामित्त्वम्, मिठा ह्रस्व (६ ४. १२) ४—नुगताशुनासिवात्त्वस्य (७ ४. ८५)

णीति । पम्पण्टि । पम्पाण्ट । पम्पण्णति^१ । अपम्पणीत् । अपम्पण् ।
पाण्णयति । अपीपण्णत् । इति उदात्त अनुदात्तेत्

२६ (चर गतिभक्षणयो)

चरति । चचार । चेरतु । चेरु । चेरिथ । चेरथु । चेर । चचार-
चचर । चेरिथ । चेरिम । चरिता । चरिष्यति । चरिपति-चारिपति ।
चरतु-चरतात् । अचरत् । चरेत् । चर्यात् । अचारीत्^२ । अचरिष्यत् ।
चिचरिपति । चञ्चूर्यते^३ । चञ्चुरीति-चञ्चूर्ति । चञ्चूर्त । चञ्चूरति ।
चारयति । अचीचरत् । इति उदात्त उदात्तेत् ।

३० (जि जये)

जयिर्जयाभिभवयोराद्योऽर्थोऽसावकर्मक ।

उत्कर्षप्राप्तिराद्योऽर्थोऽद्वितीयेऽर्थे सकर्मक ॥

जयति । जिगाय^४ । जिग्यतु.^५ । जिग्युः । जिगयिथ-जिगोथ^६ ।
जिनियव । जेता । जेष्यति । जेषति-जेपाति । जैपति-जैपाति । जयतु ।
अजयत् । जयेत् । जीयात् । अजैपीत् । जिगीपति । जेजीयते । जेज-
यीति-जेजेति । जेजित । जेज्यति । जापयति^७ । अजीजपत् । विजयते^८ ,
पराजयते । इति अनुदात्त अनुदात्तेत् ।

३१ (शिक्ष विद्योपदाने)

शिक्षते । शिशिक्षे ।

३२ (भिक्ष भिक्षायामलाभे लाभे च)

भिक्षते । अय द्विकर्मक ॥

३३ (ईक्ष दर्शने)

ईक्षते । ईक्षांचक्रे । ईक्षिता । ईक्षिष्यते । ईक्षताम् । एक्षत ।
ईक्षेत । ईक्षिषीष्ट । ऐक्षिष्ट । ईचिक्षिषते । ईक्षयति । ऐचिक्षत् ।

१—अद्भ्यस्तात् (७. १. ४) २—मता त्रान्तस्य (७. २. २)

३—वरफलोश्च (७. ४. ८७) उत्परस्यात् (७. ४. ८८) हलि च (८. २. ७७)

४—सन्निटोर्जे (७. ३. ४७) ५—एरनेवाचो (६. ४. ८२) इति अजारी

निहति यण् ६—अजन्तत्वाद्दिदृशे आदिनिधमादिद् विकल्पः ७—क्रीड्जीना

स्त्री (६. १. ४७) इत्येष स्मान् घ्रात्वे पुणागमः ८—विपरार्थ्यां जेः (१. ३. १६)

३४. (भाप व्यक्ताया वाचि)

भापते । वभापे । भापिता । भापिष्यते । वाभाष्यते । भापयति ।
अवभापत्^१ । अवीभपत् ।

(कासृ शब्दकुत्सायाम्)

कासते । कासांचक्रे^२ । इति उदात्ता अनुदात्तेतः ।

३६. (द्युत दीप्तौ)

द्योतते । दिद्युते^३ । द्योतिता । द्योतिष्यते । द्योतिपते । द्योतिपाते ।
द्योतिपतै । द्योतिपातै । द्योतते । द्योनाते । द्योततै । द्योतातै । द्योतताम् ।
अद्योतत । द्योतेत । द्योतिपीष्ट । अद्योतिष्ट । अद्युतन्^४ ।

३७. (त्रिमिदा स्नेहने)

मेदते । मिमिदे । मेदिता । अमिदत्^५ ।

३८. (वृत् वृत्तने)

वर्त्तते । ववृते । वर्त्तिता । वर्त्तिष्यते । वर्त्स्यति^६ । वर्त्तिपते । वर्त्ति-
पाते । वर्त्तताम् । अवर्त्तत । वर्त्तत । वर्त्तिपीष्ट । अवृत्तत । अवर्त्तिष्ट ।
अवर्त्तिष्यत । अवर्त्स्यत् ।

३९. (वृधु वर्धने)

पूर्ववत् । वृत् । इति द्युतादय उदात्ता अनुदात्तेतः ।

४०. (राजू दीप्तौ)

राजते । रराजे । इत्यादि पूर्ववत् । राजति । रराज । रेजतुः^७ ।

१—भाजभाप० (७. ४. ३५) इति वा णो चङ्पुषाघा ह्रस्वः २—
कासप्रत्ययादाममन्त्रे लिटि (३. १. ३५) ३—द्युतिस्वाप्योः सप्रसारणम् (७. ४.
६७) इति हलादिशेष वाधित्वा सम्प्रसारणमभ्यासस्य ४—द्युद्भ्यो लुङि (१.
३. ९१) इति लुङि वा पदस्मैपम् । पुषादि० (३. १. ५५) इति षङ् ।
५—वृद्भ्यः स्यसन्तो (१. ३. ६२) वा परस्मैपदम् । न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः
(७. २. ५६) ६—फला च सप्तानाम् (६. ४. १२५) इति एतेषा धातूनाम-
बणस्य स्थाने व एकारादेशो भवति, अभ्यासलोपश्च लिटि षिङिति परतस्थ-
सि च सेटि ।

रराजतुः । रेजुः । । रेजिथ । रराजीति । रराजिष्ट^१ । राजयति ।
अरराजत्^२ । उदात्तः स्वरित्तेदुभयतोभापः ।

४१. (पत्लृ गती)

पतति । पपात । पेततुः । पेतुः । पतिता । पतिप्यति । पातिपति ।
पातिपाति । पततु—पततात् । पतताम् । पतन्तु । पत-पततात् । पततम् ।
पतत । पतानि । पताय । पताम । पतेत् । पत्यात् । अपप्तत्^३ । पिप-
तिपति* । पित्सति* । पनीपत्यते* । पनीपत्ति । इति उदात्त उदात्तेत् ।

४२. (पद्लृ विशरणागत्यवसादनेपु)

सीदति* । समाद् । सेदतुः । ससत्य*—सेद्विथ । सेद्विथ । सेदिम ।
सत्ता । सत्स्यति । असीदत् । सीदेत् । सद्यात् । असदत्^४ । सिसप्तति ।
सासद्यते । सासदीति—सासत्ति । सादयति । असीपदत् ।

४३. (वुध अवगमने)

४४ (रुह वीजजन्मनि प्रादुर्भावे च)

योधति । इति उदात्ता उदात्ततः सहिस्तु अनुदात्तः ।

४५. (श्रिञ् सेवायाम्]

श्रयति । शिभाय । शिश्रियतुः । शिश्रियुः । शिश्रियिथ । शिभाय ।
शिश्रय । शिश्रियिथ । शिश्रियिम । श्रयिता । श्रयिप्यति । श्रयतु । अश्र-
यन् । आशिपि-श्रीयान^५ । लुडि-अशिश्रियत्*^६ । तडि-श्रयते । शिश्रिये
इत्यादि । शिश्रियिपति*^७ । शिश्रीपति । शिश्रीयते । शिश्रयीति । शिश्रेति ।
श्राययति । अशिश्रयन् ।

१—अइगभ्रस्ज० (८. २. ३६) प्ठुना प्ठु (८. ४. ४०) २—माग्लोपि०
(७. ४. २) इति ऋदित्वादुरषाह्रस्वनिर्णयः । ३—पत. पुम् (७.
४. १६) पुपादिद्युतादिलृडित परस्मैपदेषु (३. १. ५५) इति अद् ४—तनिपति-
दरिद्राणांमुपमस्यानम् इति वेट । अनिट्पक्षे सनि मीमाषु० (७. ४. ५४)
इति इत् भाव । इम्भावे सः स्यार्थपातुके इति तत्त्वे पितृशब्दस्य द्विवचनम्
५—नोष्कञु० (७. ४. ८४) इति अम्पासस्य नोक् । ६—पाप्ता० (७. ३. ७८)
७—सरि थ (८. ४. ५४) ८—पुपादि० (३. १. ५५) ९—अहृत्० (७. ४.
२५) १०—णिवि० (३. १. ४८) ११—सनी० (७. २. ४६)

४६ (भृञ् भरणे)

भरति । बभार । बभ्रतु । बभर्थ । बभृव । क्रादिनियमान्दिभाष ॥
भर्त्ता । भरिष्यति । भरतु । अभरत् । भरेत् । आशिपि भ्रियात्^१ ।
अभार्षीत् ॥

भरते । बभ्रे । भर्त्तासे । भरिष्यते । भरनाम् । अभरत । भरेत
आशिपि भृपीष्ट^२ । अभृत^३ । विभरिपति । वुभूर्पति । वेभ्रीयते^४ ।

४७ (हृञ् हरणे) ४८ (वृञ् धारणे)

हरति । जहार । हारयति । अजीहरत् ॥ धरति । धरते ।

४९ (णीञ् प्रापणे)

नयति । निनाय (वृद्ध्यायो) 'द्विर्वचनेऽचि' इति स्थानिवद्भा
वात्रीशाब्दो द्विरुच्यते । निन्यतु । निन्यु । निनयिथ निनथ । निन्यथु ।
निय । निनाय निनय । निन्यव । निन्यिम । (क्रादिनियमान्दि । थलि
भारद्वाजनियमाद्विकल्प) नेता । नेप्यति । नयतु । अनयत् । नयत् ।
नीयात् । अनैपीत् । निनीपति । नेनीयते । नेनीयति । नेनेति ।
नेनीत । नाययति अनीनयत् । इति भरत्यादयोऽनुदात्ता स्वरित्तेत ॥

५० (घट पाने)

धयति । ऋधौ^१ । ऋधु । दधु । दधाथ । दधिय । दधिव ।
धाता । धास्यति । धयतु । अधयत् । धयेत् । आशिपि-धेयात्^२ ।
अदधत्^३ । अदधताम् । चङभाषे अधासीत्^४ । अधासिष्टाम् । अधा
सिपु । यद्वा विभाषा घटेश्चोऽस्य^५ अधात् । अधाताम् । अधु ।
आत (३ ४ ११०) इति भेजुस् ।

१—रिङ्घायग्लिहक्षु (७ ४ २८) २—उच्च (१ २ १२) इति कित्वा-
दगुण । ३—उच्च (१ २ १२) ह्रस्वादङ्गात् (८ २ २७) ४—रीङ् कृत
(७ ४ २७) इति परत्वाद् रीङि कृते द्विवचनम् ।

५—आदेच उपदेशगति (६ १ ४४) आत औ गुल (७ १ ३४)
इति औत्वे वृद्धि अयत्र विडति अजादावाद् घातुके आतो लोप इत्याल्लोप ।
इति च तस्य द्विवचनञ्चि इति स्थानिवत्त्वाद् घा शब्दस्य द्विवचनम् । ६—
एलिङि (६ ४ ६७) ७—विभाषा घटेश्चो इति विभाषा चङ् । चङि आतो
लोपः (६ ४ ६४) इति आल्लोपे स्थानिवत्त्वाद् घाशब्दस्य द्विवचनम् ।
८—चङभाषे सिचि यमरमनमाताम् इति सक ।

५१. (ग्लं म्लै हर्षक्षये)

ग्लायति । जग्लो । जग्लतु । जग्लुः । जग्लाथ । जग्लिथ । जग्लधुः ।
जग्ल । जग्लो । जग्लिव । जग्लिम । ग्लाता । ग्लास्यति । ग्लायतु ।
अग्लायत् । ग्लायेत् । आशिपि-ग्लायत्^१—ग्लेयात् । अग्लासीत् ।

५२. (पा पाने)

पिथति । पपी । पपतुः । पपुः । पपिथ । पपथुः । पप । पपी । पपिय ।
पपिम । पाता । पान्यति । पिथतु । अपिथत् । पिथेत् । पेयात्^२ । अपात्^३ ।
पिपामति । पेपीयने^४ । पापेति । पापाति । पापीतः^५ । पापति । पाप-
यति^६ । अपीपयत् ।

५३. (घ्रा गन्धोपादाने, ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः ष्ठा गति-
निवृत्ती म्ना अभ्यामे, दाण् दाने)

जिघ्रति । धमति । तिष्ठति । मनति । यच्छति ॥

५४. (मृ गर्ता)

सरति । ससार । सम्रतुः । सम्रुः । ससर्थ । ससृथ । कादिपाठा-
दन्तिट्त्वम् । सर्ता । सरिष्यति । अद्धनोस्ये इतीट् । असरत् । सरत् ।
स्रियात्^१ । असार्पात् । असार्पाम् । मीपीर्पति । अम्मनडति दीर्घे ऋतः^२
इति इत्ये रपरे ह्राल घेति दीर्घे द्विर्वचने षृते । मेस्रियते । सर्सति ।
सर्मतः । सारयति । अमीसरत् ।

५५. (अष्ट गतिप्रापणयोः)

प्राच्छति^३ । आर^४ । आरतुः । आरुः । आरिथ । आरिय । अर्ता ।

१—वाग्यस्य गन्धोपादे (६ ४. ६८) २—एलिङ्घि (६. ४. ६७) ३—नाति
स्या० (२. ४. ७५) ४—पुमात्पा० (६ ४. ६६) इत्यनेनेत्वे इति द्विर्वचनम् ।
५—ई ह्रस्वपी (६ ४ १११) ६—शास्त्रात्पा० (७. ३. ३७) इति
गुत् । ७—रिङ्गण्यणिङ्गुत् (७ ४. २८) ८—पाप्मा० (७. ३. ७८) ९—
नाति षृतिः, स्यानिदमात्, असास्य द्विर्वचनम्, उरत् इति ध्रुवं राग्यं,
ह्रादिभ्योः, मन् पादेः इति दीर्घश्च, मन्पादादीर्घं घेति एण् इयः । इत्यत्र
मन्धं च्छृत्त्वताम् (७. ४. ११) इति गुलुः कादिनिचमादिट् षति गु
अतो भातदास्यं इति निचम पाणिषा इत्यनिच्ययीताम् (७. ३. ११)
इति इट् ।

५१ (ग्लै म्लै हर्षक्षये)

ग्लायति । जग्लौ । जग्लतु । जग्लुः । जग्लाय । जग्लिथ । जग्लथु ।
जग्ल । जग्लौ । जग्लिव । जग्लिम । ग्लाता । ग्लास्यति । ग्लायतु ।
अग्लायत् । ग्लायेत् । आशिपि-ग्लायत्^१—ग्लेयात् । अग्लासीत् ।

५० (पा पाने)

पिषति । पपौ । पपतु । पपु । पपिथ । पपथु । पप । पपौ । पपिव ।
पपिम । पाता । पास्यति । पित्रतु । अपित्रत् । पिषेत् । पेयात्^२ । अपात्^३ ।
पिपासति । पेपीयते^४ । पापेति । पापाति । पापीत^५ । पापति । पाय-
यति^६ । अपीपयत् ।

५३ (घ्रा गन्धोपादाने, ध्मा शब्दाग्निसयोगयो ष्ठा गति-
निवृत्तौ म्ना अभ्यासे, दाण दाने)

जिघ्रति । धमति । तिष्ठति । मनति । यच्छति ॥

५४ (सृ गतौ)

सरति । ससार । सस्रतु । सस्रुः । ससर्थ । सस्र । क्रादिपाठा-
दनिट्त्वम् । सस्रा । सरिष्यति । ऋद्धनो स्ये इतीट् । असरत् । सरेत् ।
स्रियात्^१ । असार्पात् । असार्पात् । सीपीर्पति । अम्मनच्छति दीर्घे 'ऋत्'
इति ईस्ये रपरे हलि चेति दीर्घे द्विर्यचने कृते । सेस्रियते । सस्रत्ति ।
सस्रत् । सारयति । असरीसरत् ।

५५ (अृ गतिप्रापणयो)

अृच्छति^१ । आर^२ । आरतु । आरुः । आरिथ । आरिय । अर्ता ।

१—वाग्यस्य सयोगाद् (६ ४ ६८) २—एतिडि (६ ४ ६७) ३—नानि
स्या० (२ ४ ७७) ४—धुमास्या० (६ ४ ६६) इत्यनेनेत्वे कृते द्विवचनम् ।
५—ई ह्रस्वधो (६ ४ ११३) ६—शाच्छासा० (७ ३ ३७) इति
सुद् । ७—रिड्गयन्निड्क्षु (७ ४ २८) ८—पाघ्ना० (७ ३ ७८) ९—
गति घटि, स्थानिपत्वाद् ऋद्धस्य द्विवचनम्, उरु इति अर्थ रपरत्त्वं,
ह्लादिधेय, घत धारे इति दीर्घत्व, मवर्णदार्पणं चेति एष क्रमः । वाग्यत्र
मवर्ण ऋच्छयताम् (७ ४ ११) इति गुणः क्रादिनियमादिट् घति तु
ऋद्धो भारद्वाजस्य इति नियमं याधित्वा इहत्वनिव्ययतीनाम् (७ २ ६३)
इति इट् ।

अरिप्यति^१। ऋच्छतु । आर्च्छेत् ऋच्छेत् । आशिपि अर्यात्^२ । आर्षात् ।
आर्षांम् । अरिर्पति^३ । अरायते । अर्षयति^४ । मा भवानर्षिपत् ।
इति धेटादेयाऽनुदाता ।

५६ त् (प्लवनसतरणयोः)

तरति । ततार । तेरतु^१ । तेरिव । तेरिम । ऋच्छत्यताम् इति
गुण । तरिता^२ तरीता । तरिप्यति । तरतु । अतरत् । तग्तेत् । आशिपि
तोर्यात्^३ । अतारीत् । अतारिषाम् । अतारिषु । अतारी । अता-
रिष्टम् । अतारिष्ट । नित्तीर्षति^४ । नित्तरिपति । नित्तरीपति इति उदात्ता
परस्मैमाप ॥

५७ (गम्ल् सृप्लृ गती, त्यज हानी)

गच्छति । अगमत् । त्यजति । तत्याज ।

५८ (दृशिर प्रक्षणे, दह भस्मीकरणे)

पश्यति । ऽहति । इति अनुदात्ताऽऽत्तेत् ॥

५९ (डुपचप् पाके)

पचति । पपाच । पेचतु । पेचु । पपयथ । पेचिथ । पक्ता । पचयति ।
पचतु । अपचत् । पचेत् । पच्यात् । अपाक्षीत् । तडि पचते । पेचे ।
पेचात् । पेचिरे । पक्ता । पच्यते । पचताम् । अपचत् । पचेत् । पक्षीष्ट ।
अपयत् । अपक्षाताम् । अपचयत् । पिपक्षति । पिपक्षते । पापच्यते ।
पापचीति । पापक्षित् । पापयत् । पापयति । पाचयति । अपीपचत् ।

१—ऋद्धनो स्ये (७ ० ७०) २—गुणोति सयोगाद्यो (७ ४ २९)
इति गुण ३—स्मिपूङ्गश्च (७ २ ७४) ४—प्रतिहो (७ ३.
३६) ५—दृश्लभजप्रश्च (६ ४ १११) ६—वता वा (७ ३ ३८)
७—ऋत् इडाता (७ १ १००) इति इत्वरपरत्वया हति चति दीप ८—
दृ सनिवा (७ ० ४१) इति इटा विकल्पनात् सनि महद्गुहाश्च (७ २ १०)
इति सन विश्वादिगुणत्व ऋत् इडातारिति इत्व हनि चति दीपत्व तीर शब्दस्य
द्विवचनम् ।

६० (यज दवपूजासगतिकरणादानेषु)

यजति—यजते । इयाज । ईजतु । ईजु । इयजिथ । इयष्ठ ।
ईजिव^१ । यष्टा^२ । यद्यति । आशिपि—इज्यात् । अयाक्षीत् । अयाष्टाम् ।
तद्धि—यजते । ईजे ।

६१ (वह प्रापरणे)

वहति । उवाह । उहतु । ऊहु । उवहिय—उवोढ । उहथु । उह ।
उवाह—उरह । उहिव । उहिम । कादिनियमादिट्, थलि भारद्वा-
जनियमादिढभावे । धत्वढत्वप्दुत्वढलोपेषु “सहिप्रहोरोदवर्णस्य”
इत्योत्वे उवोढेति भवति । एवमन्यत्रापि तवर्गादौ ढत्वादि ।
यजिवत्सप्रसारणम् । वोढा । वक्ष्यति । वहतु । अवहत् । वहन्त् ।
आशिपि किन्त्रात्सप्रसारणे उह्यात् । अवाक्षीत् । अवोढाम् ।
तद्धि—तहते । उहे । उहिपे । वोढा । वक्ष्यते । वहताम् । अवहत् ।
वहेत् । वक्षीष्ट । अयोढ । अवक्षताम् । अवक्षत । अवोढा । अवोढम् ।
विवक्षते । वावह्यते । इति पचान्योऽनुदात्ता स्वरितेत्

६२ (वस निवासे)

वसति । उवास । ऊपतु । ऊपु । उवसिय—उवक्य । उपिव ।
सप्रसारणम् यजिवत् । वस्ता ।

वत्स्यति^३ । वसतु । अवसत् । वसेत् । उप्यात् । अवात्सीत् । अव-
त्ताम् । अवात्सु । अवत्स्यत् । विवत्सति । वावस्यते । वावसीति । वाव
स्ति । वासयति । अवीवसत् । इति अनुदात्त उदात्तेत् ।

६३ (वद व्यक्ताया वाचि)

वदति । उवाद । उवतु । उदु । उवन्थि । उवाद—उवद् ।
ऊदिव । यजादित्वात्किति सम्प्रसारणम् । वदिता । वदिप्यति । वदतु ।
अवदत् । वदेत् । उद्यात् । अवादीन्^४ । (इति यजादिर्गण समाप्त)
इति उदात्त उदात्तेत् ।

१—कादिनियमादिट्, भारद्वाजनियमाद् इड्विकल्प किति वचिस्त्वपि-
यजादीना किति (६ १ १५) इति सप्रसारणम्, सप्रसारणे च कृते लिट्प्र्या
सस्य० (६ १ १७) इति यकिति प्रम्यासस्य सप्रसारणम् । २—अवभ्रज्ज०
(८ २ ३६) प्लुता प्लु (८ ४. ४०) ३—स स्याद्घातुके (७ ४ ४६)
४—वदप्रजहन्तस्याच (७ २ ३)

अथादादिर्गणः

१. (अद भक्षणे)

अत्ति । अत्तः । अदन्ति । अत्सि । अत्थः । अत्थ । अत्थिम ।
अद्वयः । अद्वमः । आद्^१ । आदतुः । आदुः । आद्विथ । आद्वथुः ।
आद् । आद । आद्विथ । आद्विम ।

जयाम । जयतुः । जयूः^२ । जयसिथ । जयथुः । जयु । जयास—
जयम । जयिय । जयिम^३ । अत्ता । अत्स्यति । अत्सति । अत्माति ।
अत्सन । अत्सान । अत्सद् । अत्साद् । आत्सति । आत्माति । आत्सन ।
आत्मान । आत्माद् । आत्माद् । अत्तु—अत्तान । अत्ताम् ।
अदन्तु । अद्वि—अत्तान । अत्तम् । अत्त । अदानि । अदाव । अदाम ।

आदन्^३ । आत्ताम् । आदन । आदः । अत्ताम् । अत्त । आदम् ।
आद्वि । आद्वम । अद्यान । अद्याताम् । अद्युः । अद्यान् । अद्यान्ताम् ।
अद्यामुः । अद्यमन्^४ । अद्यमताम् । अद्यमन् । आत्स्यन् ।

२. (हन हिमागत्यो)

हन्ति । हतः^५ । हन्ति । हंसि । हथः । हथ । हन्मि । हन्थः । हन्मः ।

जघान । जघतुः^६ । जघनुः । जघनिथ^७—जघन्थ । जघन्थुः ।
जघ्न । जघान—जघन । जघनिथ । जघिम । हन्ता । हनिप्यति^८ ।

हंसति । हंसाति । हंसन् । हंसान् । हंसद् । हंसाद् । हंसति ।
हंसाति । हंसन् । हंसान् । हंसद् । हंसाद् ।

हन्तु—हतात् । हताम् । हन्तु । जहि^९ । हतम् । हत । हतानि ।

१—मत भादेः (७. ४. ७०) =-निद्वयन्तराद्याम् (२. ४. ४०) न पञ्च-त०
(१. १. ४७) आदिनियमादि । घनि भारद्वाजनियमः इतरयति० इत्यनन्
वाध्यने । ३.—घद. सर्वेषाम् (७. ३. १००) ४—मुद्मन्तोः घतु (२. ४. ३७)
मुदिवाद्दद् । ५—घतुशास्त्रादेश० (१-४-३४)

६—गणहन्० (६. ४. ६८) ७—भारद्वाजनियमाद् विबन्धः घ—अदन्तो
स्ये (७. २. ७०) ८—हन्तेभ्यः (६. ४. ३६.) इति षादेशः । घन्थ घसिद्धव-
नामात् (६. ४. २२) इत्यकिडायात् घतो हेरिति मुद्म न भवति ।

हनाव हनाम् । अहन् । अहताम् । अधन् । अहन् । अहतम् । अहत ।
 अहनम् । अहन्व । अहन्म । हन्यान् । हन्याताम् । हन्युः । वध्यात्^१ ।
 वध्यास्ताम् । वध्यासुः । अवधीत्^२ । अवधिष्टाम् । अवधिपुः । अहनिष्यत्
 जिधांसति^३ । जह्वन्यते^४ । जह्वनीति-जह्वन्ति । जह्वतः । जह्व-
 घ्नति । ×हन्तेर्हिसायां घ्नीभावो वक्तव्यः । × जेघ्नीयते । घातयति ।
 अजाघतत् । कर्मणि-हन्यते । जघ्ने । हन्ता-घानिता^५ । हनिष्यते-घानि-
 ष्यते । हन्यताम् । अहन्यत । हन्येत । आशिपि-घानिपीष्ट-वधिपीष्ट ॥
 लुङि-अवधि-अघानि । अवधिपाताम्-अहसाताम्-अघानिपाताम् ।
 इति उदात्तावनुदात्तौ ॥

३. (ईड स्तुती)

ईष्टे । ईडाते । ईडते । ईडिपे^१ । ईडाथे । ईडिध्वे । ईडे । ईड्वहे ।
 ईड्महे । ईडांचक्रे । ईडिता, ईडितासं । ईडिताहे । ईडिष्यते । ईष्टाम् ।
 ईडाताम् । ईडिष्य । ईडिध्वम् । ईडे । ऐट् । ऐडाताम् । ऐट्ठाः । ऐड्ध्वम् ।
 ऐडि । ऐड्वहि । ऐड्महि । ईडीत । ईडीथाः । ईडिध्वम् । ईडिय ।
 आशिपि-ईडिपीष्ट । ईडिपीष्ठाः । ईडिपीध्वम् । ईडिपीय । ऐडिष्ट ।
 ऐडिध्वम् । ऐडिपि । कर्मणि-ईड्यते । सनि-ईडिडिपते । ईड्यति ।
 मा भवान् ईडिडत् ।

४ (आस उपवेसने)

आस्ते । आसाते आसते । आस्से । आसाथे । आध्वे । आसे ।
 आम्वहे । आस्महे । आसांचक्रे ।

५. (आडः शासु इच्छायाम्)

आशास्ते । आशासाते । आशासते । आशास्से । आशासाथे ।
 आशाध्वे । आशासे । आशास्वहे आशास्महे ॥ इति उदात्ता अनुदात्ततः

१-इतो वव निङि (२. ४. ४२) २-शुडिष (२. ४. ४३) ३-घग्मत-
 गमो घनि (६. ४. १६) ४-नृपतोऽनुनासिकात्तस्य (७. ४. ८५) ५-त्यसिष्^०
 (६. ४. १२) ६-ईड्यतोर्ध्वे ष (७. २. ७८)

६ (पूङ् भ्राणिगभंविमोचने)

मूत्ते । मुषाते^१ । मुषते । मूषे । मुषाये । मूषे । मुषे । मूषहे ।
मूमहे । मुषुषे । मुषुषाते । मुषुषिरे । मुषुषिये । मुषुषिष्ये—मुषु-
षिष्ये ।

७ (शीट् स्वप्ने)

शोते । शयाते^१ । शोते^२ । शोषे । शयाये । शोष्ये । शय । शोषहे ।
शोमहे । शिरये । गिग्याते । शिश्चिरे । शिश्चिये । गिश्चयाये । शिश्चिय्ये—
शिश्चिय्ये । शिरये । शिश्चिय्यहे । शिश्चिय्यहे^३ । गयिता । शयिष्यते ।
शोताम् । शयाताम् । शेरताम् । शोष्य । गयायाम् । शोष्यम् । शयै ।
शयायहे । शयामहे । अशोत । अगयानाम् । अशरत । अशोथा ।
अगयायाम् । अशोष्यम् । अशयि । अशोषहि । शयात । गयीयाताम् ।
शयारन् । गयीथा । गयीथ ॥ आशिपि—शयिपीष्ट । शयिपीड्वम्—
शयिपीड्वम् । गायरीथ । अगायिष्ट । अशयिष्टा । अगयिड्वम्—
अगयिड्वम् ॥ अगयिषि । शिशयिषते । शाशय्यते^४ । शोशयीति ।
शोशानि । गशान । शोशयति । शाययति । अशीशयन् ॥ इति उदात्ताव-
नुदात्तेर्ती ॥

८ (प्लुञ् स्तुती)

स्तुते । स्तुयाते । स्तुयते । स्तुपे । स्तुष्ये । स्तुये । स्तुयहे । तुष्टुये ।
तुष्टुयाते । तुष्टुयिरे । तुष्टुपे^१ । तुष्टुष्ये । तुष्टुयहे ।

स्तोता । स्तोप्यते । स्तोताम् । स्तुवाताम् । स्तुप्य । स्तुष्यम् । स्तपे ।

अस्तुत । अस्तुवाताम् । अस्तुथा । अस्तुवि । स्तुवीत । स्तुवीया-
ताम् । स्तुवीथा । स्तुवीथ । आशिपि—स्तोपीष्ट । लुहि—अस्तोष्ट ।
अस्तोपानाम् । अस्तोष्ठा^२ । अस्तोड्वम् । अस्तोपि । यदा “तुस्तु-
शाम्यम ” इतीट् नदा स्तुवीते । स्तुवीपे । स्तुवीष्ये । स्तुवीयहे । स्तु-
वीताम् । स्तुवीष्य । स्तुवीष्यम् । अस्तुवीत । अस्तुवीथा । अस्तुवीष्यम् ।
अस्तुवीरहि । परमेवरेषु—स्तोति^३—स्तवीति । स्तुत—स्तुवीतः । स्तोपि-

१—प्रवि श्रुषातु० (६ ४ ७७) २—शीट् सावधानुके शुल
(७ ४ २१) ३—शीट् स् (७. १ ६) ४—एतेकावी० (६ ४ १२)
५—प्रपङ् वि विडति (७. ४. २२) ६—क्रादिपाठादिद्वयव । ७—तुस्तुग-
म्यमः सावधानुके (७. ३ ६५)

स्तवीपि । स्तोमि^१ स्तवीमि । स्तुवः—स्तुवीवः । तुष्टाव । तुष्टोथ । तुष्टव । स्तोता । स्तोप्यति । स्तोतु—स्तवीतु । स्तुतात्—स्तुवीतात् । स्तुताम्—स्तुवीताम् । स्तुवन्तु । स्तुहि—स्तुवीहि । स्तवानि । अस्तोत्^१—अस्तवीत् । अस्तुताम्—अस्तवीताम् । अस्तुवन् । अस्तौः । अस्तवीः । अस्तवम् । अस्तुव । अस्तुवीव । स्तुयात् । स्तुवीयात् ।

स्तुयाताम्—स्तुवीयाताम् । स्तुयुः—स्तुवीयुः । स्तुयाः—स्तुयावीः । स्तुयानाम्—स्तुवीयानाम्—स्तुवीयुः । स्तुयाम्—स्तुवीयाम् । आशिपि—स्तुयात् । अस्तावोत्^२ । अस्ताविष्टाम् ।

९. (ब्रून् व्यक्तायां वाचि)

ब्रूते, ब्रूवाते, ब्रूवते । ब्रूये, ब्रूवाये, ब्रूध्वे । ब्रूवे, ब्रूवहे, ब्रूमहे । ऊच^३, ऊचाते, ऊचिरे । ऊचिये, ऊचाथे, ऊचिध्वे । ऊच, ऊचिवहे, ऊचिमहे । वक्ता, वक्तासे, वक्ताहे । वक्ष्यते । ब्रूताम्, ब्रूवाताम्, ब्रूध्वम्, ब्रूवै, ब्रूवावहे । अब्रूत्, अब्रूथाः, अब्रूवि । ब्रूवीत्, ब्रूवीयाताम्, ब्रूवीय, ब्रूवीयहि । आशिपि—वक्षीष्ट । वक्षीष्टाः, वक्षीय । अब्रूचत्^४, अब्रूचेताम्, अब्रूचन्त ।

ब्रूवति^५, ब्रूतः, ब्रूवन्ति । ब्रूवीपि, ब्रूथः, ब्रूथ । ब्रूमीमि, ब्रूवः, ब्रूम् । आह^६, आहनुः, आहुः । आत्थ, आहथु ।

उवाच^७, ऊचतुः, ऊचु । अब्रूचिथ—उवकथ, ऊच । उवाच—उवच, ऊचिथ । वक्ता । वक्ष्यति । ब्रूवीतु—ब्रूनात्, ब्रूताम्, ब्रूह, ब्रूत्म्, ब्रूयाणि । अब्रूवीन् अब्रूनाम्, अब्रूवीः, अब्रूवम्, अब्रूव । ब्रूयात्, ब्रूयाताम् । उच्यात्^८, उच्चास्ताम् । अब्रूचत्, अब्रूचताम्, अब्रूचन् । अनुदात्तो उभयतोभाषी ।

१०. (इण् गतो)

एति, इतः, यन्ति^९ । एपि, इथः, इथ । एमि, इवः, इमः ।

१—उतो वृद्धिर्लुकि हलि (७. ३. ८७) २—स्तुमुष्म्यः परस्मैांस्तु (७. २. ७२) इति इट्, सिचि वृद्धिः (७. २. १) इति वृद्धिः ३—युवो वचिः (२. ४. ५३) वचिस्त्वपि० (६. १. १५) ४—वच उम् (७. ४. २०) ५—ब्रूव ईट् (७. ३. ६३) ६—ब्रूव पञ्चनामादित० (३. ४. ८४) ७—लिट्प्रथमासप्त० (६. १. १७) ८—किदाशिपि (३. ४. १०४) वचिस्त्वपि० (६. १. १५) ९—इणो एण (६. ४. ८१)

इयाय, ईयतुः, ईयुः । इययिथ—इयेथ । ईययुः, इय । इयाय—इयय, ईयिय । एता । एप्यति । एतु-इतात्, इताम्, यन्तु । इडि, अयानि । ऐन्, ऐनाम्, आयन् । ऐः, आयम् । इयान्, इयाताम् । ईयान्^१, ईयास्ताम् । अगात्^२, अगाताम्, अगुः । अगा, अगातम्, अगात । अगाम्, अगाव, अगाम । ऐप्यत् । इत्यनुदात्त परस्मैभाष ।

११. (इड् अध्ययने)

अधीते, अधीयाते, अधीयते । अधिजगे^३, अधिजगाते, अधिजगिरे । अध्येता अध्येप्यते ।

अधीताम्, अधीयाताम्, अधीयताम् । अधीप्व, अधीयाथाम्, अधीप्वम् । अध्ययै, अध्ययावहे, अध्ययामहे । अध्यैत, अध्यैयाताम्, अध्यैयत । अध्यथा, अध्यैयायाम्, अध्यैध्वम् । अध्यैयि, अध्यैवहि, अध्यैमहि । अधीयीत, अधीयीयाताम् अधीयीरन् । अध्यपीष्ट । लुडि-अध्यगीष्ट^४—अध्यैष्ट । अध्यगीप्यत—अध्यैप्यत । इति अनुदात्त-आत्मनेभाषः ।

१२. (अस भुवि)

अस्ति, स्तः^५, सन्ति । असि^६, स्थ, स्थ । अस्मि, स्व^७, स्म^८ । वभूव^९, वभूवतुः, वभूवुः । भविता । भविप्यति । अम्तु—स्तात्, स्ताम्, सन्तु । ण्वि^{१०}—स्तात्, स्तम्, स्त । असानि, असाव, असाम । आसात्^६, आस्ताम्, आसन्, आसीः, आस्तम्, आस्त, आसम, आस्व, आस्म । स्यात्, स्याताम्, स्युः । भूयात्, भूयास्ताम् । अभूत्^{१०} । अभ-विप्यत् । चकरोतञ्च । यङ्लुगन्तमप्यदादिकम् ।



१—प्रकृत्सर्वधातु० (७ ४ २५) २—गातिस्था० (२ ४ ७७) ३—गाड् लिटि (२. ४. ४६) घातो लोप० (६ ४. ६४) ४—विभाषा मुड्लुडो. (२ ४ ५०) ५—स्नसोरलोप (६ ४. १११) ६—तासस्त्योलोप (७ ४. ५०) ७—मस्तेमू^० (२. ४. ५२) ८—ध्वगोरेढावभ्यासलोपश्च (६. ४. ११६) ९—अस्लिसिचोऽप्यवने (७ ३. ६६) १०—गातिस्थापु० (२. ४ ७७)

अथ जुहोत्यादिर्गणः

१ (हु दानादादयो)

लटि^१ । जुहाय, जुह्वतु^२, जुहुवु । जुह्विथ—जुहोथ, जुह्वथु, जुहुव । जुहाय—जुह्व, जुह्विथ ।

जुह्वाचकार^३ । होता । होप्यति । जुहोतु, जुहुताम्, जुह्वतु । जुह्वि^४ । जुह्वानि । अजुहोत्, अजुहुताम्, अजुहुवु^५ । अनुहो, अजुहुताम्, अजुहुत । अजुह्वम् । जुहुयात्, जुहुयाताम्, जुह्वयु । आशिपि—हूयात्, हूयास्ताम् । अहोपीत्, अहोष्टाम्, अहोपु । अहोपी, अहोष्टम्, अहोष्ट । अहोपम्, अहोप्य ।

जुहूपति^६ । जोहूयते । जोहवीति जोहोति । हायति । अजुह्वत ।

० (त्रिभी भये)

त्रिभेति, विभित —त्रिभीत^०, त्रिभ्यति । विभयाचकार^३—त्रिभाय । भेता । भेप्यति । विभेतु—त्रिभितात्—त्रिभीतात्, त्रिभ्यतु—त्रिभीहि—त्रिभिहि—त्रिभितात् विभीतम् । त्रिभयानि । आत्रभेत् अविभीताम् । अत्रिभयु । अत्रिभे, अत्रिभातम्—अत्रिभितम् । अत्रिभयम्, अत्रिभीव—अत्रिभिव ॥ त्रिभिरात्—त्रिभीयात् त्रिभिराताम्, विभीयाताम् त्रिभिरात्—त्रिभीया । विभिराम् त्रिभीराम् ॥ आशिपि—भीयात्, भीयास्ताम्, भीयासु । अभैपीत्, अभैष्टाम्, अभैपु । अभैपी, अभैपम् । त्रिभीपति । वेभीयते । वेभयीति वेभेति, वेभीत—वेभित । (प्रकृतिग्रहणे यद्भ्रुगन्तस्यापि ग्रहणं भवतीति चेत्त्वम्) ।

३ (ह्री लज्जायाम्)

जिह्वेति, जिह्वीत जिह्वियति । जिह्वयाचकार—‘जिह्वाय । ह्येता । ह्येप्यति । जिह्वेतु । अजिह्वेत ।

जिह्वीयात् । ह्रीयात् । अह्रैपीत् । अह्रैप्यत् । इत्यनुत्तात् परस्मैभाषा ।

१—जुहात्यादिभ्य स्तु (२ ४ ७५) ०—प्रचिन्तु० (६ ४ ७७)

३—भीहामूहवा इत्युवच्च इति पक्षे भ्याम् प्रथम इत्युवद्भावाद्द्विवचन च । ४—ह्रमन्त्या हेधि (६ ४ १०१) ५—इत्यनुतो सावधानुक्ते (६ ४ ८७) ६—प्रकृतनगमा सति (६ ४ १६) ७—भियोज्यतरस्याम् (६ ४ ११५)

४ (पृपालनपूरणयो)

लटि^१ । पपार, पप्रतु^२—पपरतु पप्रु—पपरु । पपरिभ । पप्रथु,
पपरथु पप्र—पपर, पपार—पपर, पप्रिन्न—पपरिव । परिता^३—परीता ।
परिप्यति—परीप्यति । विपतु^४—विपृतांतु, विपृतांम् । विपुरतु । विपूर्हि,
विपूर्तम् विपूर्त । विपराणि, विपरात्र । अपिप अपिपूर्तांम्, अपिपरु,
अपिप, अपिपूर्णम्, अपिपूर्त । अपिपरम्, अपिपूर् । विपूर्यात् विपू-
र्याताम्, विपूर्यु^५ ॥

आशिपि—पूर्यात्^६, पूर्यास्ताम् । पूर्यामु । अपारोन्, अपारिष्टाम्,
अपारिषु । अपारी, अपारिष्टम्, अपारिष्ट । अपारिपम्, अपारिप्व,
अपारिप्म ।

विपूर्पति, विपरिपति—पपरीपति । पोपूर्यते । पापरीति—पापति,
पापूर्त, पापुरति । इत्युत्त परम्भैभाष

५ (दुभञ् धारणपोषणयो)

विभर्ति, विभृत^१, विभ्रति । वभार, वभ्रतु, वभ्रु । वभर्त्य, वभ्रिर ।
विभरात्कार । भर्ता । भरिप्यति । विभर्तु, विभृताम्, विभराणि ।
अविभ, अविभृताम्, अविभरु । विभ्रयात् । विभ्रयात् । अभाषीत् ।
अभरिप्यत् ।

विभृते, विभ्राते, विभ्रते । वभ्रे—विभराच्चक्रे । विभृताम् ।
अविभृत । विभ्रीत । भृषीष्ट । अभृत । अभरिप्यत् । इत्यनुदात्त
उभयतोभाष ।

६ (ओहाट् गतो)

जिहीते, जिहाते, जिहते । जिहीषे, जिहीध्वे । जिहे जिह्विबहे ।

७ (आहाक् त्यागे)

जहाति, जहिन^१—जहीत, जहति, जहासि, जहीय—जहिय,
जहीय—जहिय । जहामि, जहिय—जहीय, जहिम—जहीम । जही,
जहतु, जहु । जहाथ—जहिय, जहथु, जह । जही, जहिय । हाता ।
हास्यति ।

१—अतिविपर्योदच (७ ४ ७७) २—ऋच्छ्रयताम् (७ ४. ११)

३—वता वा (७ २ ३८) ४—उशोष्यपूर्वस्य (७ १ १०२) ५—भृवामित्

(७ ४ ७६) ६—जहातेदच (६. ४ ११६)

जहातु—जहितात्, जहीतात् जहिताम्—जहीताम्, जहतु ।
जहिहि—जहीहि-जहाहि, जहानि, जहाव । अजहात्, अजहिताम्,
अजहीताम्, अजहुः^१ । अजहाः । अजहाम् ।

जह्यात्, जह्याताम्, जह्युः । हेयात्^२, हेयास्ताम्, हयासुः ॥ अहासीत्,^३
अहासिष्टाम् । अहापीः ॥

जिहासति । जेहीयते । हाययति । अजीहयत् ॥ इत्यनुदात्त परस्मैभाषः ।

८. (डुदाञ् दाने)

ददाति, दत्तः^४, ददति^५ । ददासि, दत्थः, दत्थ । ददामि, दद्व्यः,
दद्वमः ॥ ददौ, ददतु, ददुः । ददाथ—ददिय, ददथु, दद ॥ ददौ,
ददिव, ददिम ॥ दाता । दास्यति । ददातु—दत्तात्, दत्ताम्, ददतु ।
देहि^६ दत्तात्, दत्तम्, दत्त । ददानि ॥ अददात्, अदत्ताम्, अददुः ।
अददाः, अदत्तम्, अदत्त । अददाम्, अदद्व ॥ दद्यात्, दद्याताम्,
दद्युः । देयात्, देयास्ताम्, देयासुः, अदात्^७, अदाम्, अदाव, अदाम ।
अदास्यत् ॥

दत्ते, ददाते, ददते, दत्से, ददाथे, दध्वे । ददे, दद्वहे, दद्वमहे ॥ ददे,
ददाते, ददिरे । ददिपे, ददाथे, ददिध्वे । ददे, ददिवहे, ददिमहे ॥
दातासे । दास्यते । दत्ताम्, ददाताम्, ददताम् । दत्स्व, ददाथाम्,
दध्वम् । ददै, ददावदै, ददामदै । अदत्त, अददाताम्, अददत्त ।
अदत्थाः, अददाथाम्, अदध्वम् । अददि, अदद्वहि ॥ ददीत, ददीया-
ताम्, ददीरन् । दासीष्ट ॥

अदित^८, अदिपाताम्, अदिपत् । अदिथाः, अदिपि ॥ दातुमिच्छति
दिस्सति—दिस्सते^९ । देदीयते । दादासि—दादेति । दापयति । अदीदपत् ॥
अनुदात्त उभयतोभाषः ।

९ (डुधाञ् धारणपोषणयो)

दधाति, धत्तः, दधति, दधसि, धत्थः, धत्थ, दधामि, दध्व्यः ।
दध्वमः । दधौ । धाता । धास्यति । दधातु—धत्तात्, धत्तां, दधतु । धेहि,

१—सिजम्यस्तविदिम्यश्च (४. १. १०६) २—एतिडि (६. ४. ६७)

३—यमरमनमाता सकृ च (७. २, ७३) ४—शाम्यस्तयोरानः (६. ४. ११२)

५—अदम्यस्तात् (७. १. ४) ६—ध्वसोरेद्धावम्यासलोपश्च (६. ४. ११६)

७—गातिस्पाधु० (२. ४. ७७) ८—स्थाष्पोरिच्च (१. २. १७) ९—सनि

मीमाषु० (७. ४. ५४)

दधानि । अदधात्, अधत्ताम्, अदधुः । अदधाः । अदधाम, अदध्व ।
दध्यात्, दध्याताम् दध्युः । दध्याः, दध्यातम् । धेयात्, धेयास्ताम् ।
अधात्, अधाताम्, अधुः । अधाः, अधातम्, अधात् । अधाम्, अधाव्,
अधाम ॥ धत्ते, दधाते, दधते । धाम्ने, धध्वे, दधे, धध्वहे । दधे, दधाने,
दधिरे । दधिपे, दधे । धाना । धास्यते । धत्ताम्, धत्स्व, धध्वम्, दधै,
दधावहं । अधत्त, अधत्थाः, अदधि अदध्वहि । दधीत । धापीष्ट ।
अधित, अधिपाताम्, अधिपत् । अधिधा । अधिपि । धित्सति—धि मते ।
देवोयते । दाधानि—दाधेति, धत्तः, दाधति । धापयात्—धापयते ।
इत्यनुदात्त उभयतोभाषः ।

अथ दिवादिर्गणः

१. (दिव् क्रीडा-विजिगीषा—व्यवहार-द्युति-स्तुति—मोद—
मद—स्वप्न—कान्ति—गतिपु)

लटि^१ । दिद्वेच, दिद्विबतुः, दिद्विबु । देविता, देविष्यति । दीव्यतु ।
अदीव्यत् । दीव्येत् । दीव्यात् । अदीवीत् । अदेविष्यत् ।

२. (नृती गात्रविक्षेपे)

नृत्यति । ननर्त । नर्तिता^२ । नर्तिष्यति—नन्यति । नृत्यतु । अनृ-
त्यत् । नृत्येत् । नृत्यात् । अनर्तीत् । अनर्तिष्यत्—अनत्स्यत् । इति
उदात्ताबुदात्तौ ॥

३. (पूङ् प्राणिप्रसवे)

सूयते । सुपुत्रे । माता—सविता^३ । सोष्यते—सविष्यते ।
सूयाम् । असूयत । सूयत । सोपीष्ट—सोपीषाम्नाम् । सविपीष्ट
सविषोषाम्नाम् । असोष्ट । असविष्ट । इत्युदात्त आत्मनेभाषः ।

४. (शो तनूकरणे)

शयति^४, श्यतः, श्यन्ति । शशी, शशतुः, शशु । शशाय-शशिय ।
शाता, शास्यति । श्यतु । अश्यत् । शायान् । शायाम्नाम् । अशान्^५,
अशानाम् अशुः अशा । अशामीत्^६ । अशामिष्टाम् ।

१—दिवादिभ्यः श्यत् (१. १. ६६) २—नेद्विगणः (७. २. २७) ३—
स्वरतिगूतिसूचि (७. २. ४४) ४—शो श्यति (७. १. ७१) ५—दिशान्ना
प्रापेद्विगणः (७. ४. ७७) ६—दमस्मनमातां गत् (७. २. ७३)

५. (द्यो छेदने) ६. (पोऽन्तकर्मणि)

द्यति । चच्छौ । इत्यादि सर्वं श्यतिवत् । स्यति । ससौ । इत्यादि सर्वं श्यतिवत् ।

७. (दो अवखण्डने)

द्यति । ददौ । इत्यादि सर्वं श्यतिवत् । श्यतिप्रभृतयोऽनुदात्ता-परस्मैभाषाः ।

(जनी प्रादुभावे)

जायते^१ । जज्ञे, जज्ञाते, जज्ञिषे, जज्ञिवहे । जनिता । जनिष्यते । जायताम् । अजायत । जायेत । जनिषीष्ट । लुङ्-अजनि-अजनिष्ट^२ अजनिषाताम् । दीपजन० (३ १ ६१) कर्त्तरि तशब्दे च्लेर्वा चिष् । जनिष्याश्च (७. ३. ३५) डात वृद्धिनिषेधः । जाजायते । जञ्ज-न्यते । जञ्जनीति-जञ्जन्ति . द्युदात्त अनुदात्तेत् ।

८—(पद गतौ)

पद्यते । पेदे । पत्ता । पत्यते । पद्यताम् । अपद्यत । पद्येत । पत्सीष्ट । अपादि, अपस्साताम् । चिष् ते पद..(३. १. ६०) इति कर्त्तरि तशब्दे चिष् । फिस्ते । पनीपद्यत । पनीपत्ति ।

९. (विद दैन्ये) १०. (विद सत्तायाम्)

खिद्यते । खिदिष्टे । खेत्ता । खेत्यते । खि.सीष्ट । अखित्त । लिङ् सिचौ० (१. २. ११) इति किच्चाद् गुणो न ॥ विद्यते । इत्यादि खिदिषत् ।

११. (बुध अवगमने) १२. (बुध सम्प्रहारे)

बुध्यते । बुबुधे । बोद्धा । भोक्त्यते । बुध्यताम् । अबुध्यत । बुध्येत । भुत्सीष्ट । अबोधि-अबुद्ध । अनुत्माताम् । दीपजनेति तशब्दे वा चिष् ॥ बुध्यते । इत्यादि बुधिवन् । लुङि ते तु अबुद्ध इति सिजेव । इत्यनुदात्ता अनुदात्तातः ॥

१३. (व्यध ताडने)

विध्यति^३ । विव्याध, विव्यधत्, विव्यधुः । विव्यधथ-विव्यद्ध,

१—ज्ञात्रनोर्जा (७. ३. ७९) २—इहिरेति (६. १. १९) ।

विष्यन्थुः, विष्यथ । विष्यात्—विष्यत्, विष्यधिव, विष्यधिम ।
व्यद्वा । व्यस्यति । विष्यन्तु । अविष्यन् । विष्येन् । विष्यात् । निदाशिपि
(३ ४ १०४) इति क्त्वात्प्रमाणात् । अव्यात्मीन् । अव्याद्वात् ।
अव्यात्सु । अव्यभ्यत् ।

१८ (पुप पुष्टी)

पुष्यति । पुषोप, पुषोपिथ, ऋषिनियमान्नित्यमिष्ट । भारद्वाज
नियमस्तु उददेशेऽजन्तानाम्पुषा चेडिह न प्रवर्तते । पोष्टा । पोष्टरति ।
पुष्यतु । अपुष्यत् । पुष्यन्त । पुष्यात् । अपुष्यन् ।

१७ (शुप शोपणो, तुप प्रीती, दुप वैकृत्य)

शुष्यति । तुष्यति । दुष्यति । इत्यादि पुषिपत् ।

१८ (शुप कान) १९ (शुप वृभुक्षायाम्)

कुष्यति चुक्रोथ, चुक्रोथिव । क्रोद्धा । क्रोम्यति । कुष्यति । चुनोत् ।
चोद्धा । इत्यनुदात्ता उदात्तन ।

२१ (शमु उपशमे, श्रमु तपमि म्दे च)

शाम्यति^१ । शशाम । शैमत्, शैमु । शैमिव, शमथु^२, शैम ।
शशाम—शशम, शैमिव, शैमिव । शमित्ता । शमित्प्यति । शाम्यन्तु ।
अशाम्यत् । शाम्येन् । शम्यात् । अशमन्^३ । अशमित्प्यन् । शाम्यति ।

२५ (अमु क्षाये, जितृप पिपासायाम्, हृप तुष्टी, कुप क्रोत्र)

अस्यति । आम, आमिव । असिता । असित्प्यति । अम्यन्तु ।
आम्यत् । अम्येन् । अम्यात् । आरभन्^४, आरभ्याताम् । तृप्यति ।

२६ (जिमिदा न्नहने)

मेत्ति^५ । मिमेद, मेदिथ । मेत्तिता । मेदिप्यति । मेत्तु । अमेत्तु ।
मेत्तेत् । मिन्नात् । अमिन्^६ ।

२७, (गृधु अभिवाक्षायाम्=लान्च वरने मे)

गृध्यति । जगर्थ, जगृधन्, जगर्थिव, जगृधिव । गर्तिता । गर्धि-

१—शमाम्प्राता दीप स्वनि (७ ३ ७४) २—पुषादिष्वारद (३ १ ११)
३—परस्परनिवृत्तित्वात्तन्म्याऽत् (३ १. १०) ४—मिदृष्टं (७. ३ ८०)
५—पुत्रादिशागदश्च धमिदन्, धमदिप्यति गिद्धे पुत्रादिशागताम्मेदोश्च इति निष्
स्वयं ।

प्यति । गृध्यतु । अगृध्यत् । गृध्येत । गृध्यात् । अगृधत् । अगर्धिष्यत् ।
जिगर्धिषति । जरीगृध्यते । जर्गर्ध । लङि सिपि अजर्धा^१ । इति
पुपादय । इति शमादय । उदात्ता उदाङ्गेत् ।

अथ स्वादिर्गणः

१—२ (पुञ् अभिपवे, चिज चयने)

पुञ्—लटि^२ । सुपाव, सुपुवतु, सुपुतु । सुपविथ—सुपोथ, सुपु-
वथु, सुपुव । सुपाव—सुपव, सुपुविष, सुपुविम । ऋदिनियमाङिट्, थलि
तु भारद्वाजनियमाङिट् विकल्प । उवच् अगुणवृद्धिविपये ।

सोता । सोप्यति । सुनोतु—सुनुतात् सुनुताम्, सुन्वन्तु । सुनु—^३
सुनुतात्, सुनुतम्, सुनुत । सुनवानि, सुनराव, सुनराम । आदि
पित्त्वाद्द्वित्वात् यण् बाधित्वा गुण । असुनोत्, असुनुताम्, असु-
न्वन् । असुनो, असुनुतम्, असुनन्त । असुनवम, असुन्व, असुन्म ।
लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्यो (६ ४ १०७) सुनुयात् । सूयात्, सूयास्ताम् ।
असावीत्, असाविष्टाम्, असाविष्ट । असावी असाविषम् ।

सुनुते सुन्वाते, सुन्वते । सुनुपे, सुन्वाथे, सुनुध्वे । सुन्वे, सुन्वहे—
सुनुवहे । पूर्ववद्यण् उमारलोपी । सुनुपे, सुनुविपे, सुनुविध्वे—सुनुविद्ध्वे ।
विभाषेत् (८-३-७६) सुनुपे सुनुविवहे । सोता । सोप्यते । सुनुताम्,
सुन्वाताम्, सुन्वताम् । सुनुप्न, सुन्वाथाम्, सुनुध्वम् । सुनवै, सुनरावहै,
सुनरामहै । असुनुत, असुन्वाताम् । असुन्वि, असुन्वहि असुनुवहि ।
सुन्वीत् । सोपीष्ट, सोपीयास्ताम् । सोपीद्ध्वम् (इण् पीध्वम् ८-३-७८)
अमोष्ट, असोपाताम् । अपोष्ठाः । मुसूपति—मुसूपते । सोप्यते । सोपु-
यीति सोपाति, सोपुत, सापुवति । सावयति—अमूपुवत् । चिञ्-चिनोति ।
चिक्वाय, चिक्वतु, चिक्वु । चिक्रियिथ चिक्रिथ, चिक्रियव । विभाषा थे-
(७-३-५८) अन्यथा चिक्वाय इत्यादि । चेप्यति चिनोतु । अचिनोत् ।
चिनुयात् । चोयान् । चेपीष्ट । अचेपीत् । चिनुते । चिक्रये चिक्र्ये । चेता ।
चेप्यते । चिनुताम् । अचिनुत । चिञ्चीत् । चेपीष्ट । अचेष्ट । इत्यनु-
दात्तापुमयतोभाषो ।

१—एकाच् वसो० (८. २ ३७) २—स्वादिभ्य इतु (१. १. ७१)

३—उतरश्च प्रत्यपादसंयोगपूर्वात् (६ ४ १०६)

४ (आप्त् व्याप्तौ, शक्लृ शक्तौ)

आप्नोति । आप्नुत आप्नुवन्ति । लोपश्च स्य० द्रुत्कारलोप
सयोगपूर्वत्वात् भवति । हुशुना सायवातुने इति यणपि असन्नाग
पूर्वस्यत्यागो 'अचिशुवातु० इत्युभङ्' । आप, आपनु आपु । आपिथ,
आपिथ । आप्ता । आप्स्यति । आप्नुहि । उतश्च प्रत्ययान् इति ह्रुक्
सयोगपूर्वत्वात् । आशिपि-आप्थान् । आपन् लुदित्त्वाद्भ् । शक्नाति,
शक्नुवन्ति । शक्नुहि । अशक्नान् । शक्नुयात् । अशक्न्, लादत्त्वा-
द्भ् । इत्यनुदात्तानुदात्तेर्त्तौ ।

५ (अशूट्, व्याप्तौ सघाते च)

अशुते, अशुताते, अशुतते । अशुपे, अशुध् । अशुय अशु-
वहे ॥ शान् इति वज्रगम्य रश्चु रनिषय । आनश आनशात्, आन-
शिपे आनने, आनशिपे अनङ्ङ् । आनशिपह आनश्वह आनशि
महे आनश्मह । उदित्त्वाद्भिविस्त्प । माल ज्ञचा दना पत्न, पढा क सि
पुना प्ठु इति कथपत्ने । अत आद् इति अभ्यासस्य दावत्य 'आना-
तेरच इति नुडागमे रूपाणि । अष्टा-अशिता । अशिप्यते-अद्यत् । अशु-
ताम् अशुत् । आशुन, आशुना, आशुवि । आशुनीत् । अशिपाष्ट-
अत्ताष्ट । अशिष्ट आप् । अशिशिपत् "स्मभू० (७ २-७४) आशाश्यते
सूचिम्त्रि० इति यद् । उदात्त अनुदात्तम् ।

अथ तुदादिर्गणः

(तुद व्यथने, एतुद प्रेरणे, दिश अनिसर्जन, भ्रस्ज
पाके, क्षिप प्रेरणे, कृप विलखने)

तुदति । तुतोद, तुतुदतु, तुतुदु । तुतोदिय । क्रादिनिघमादिट ।
तोत्ता । तोत्स्यति । तुदतु-तुदताम् । अतुदत्, अतुदताम्, अतुदन् । तुदे-
त् । तुयात् तुयास्ताम् । अतोत्सोन्, अतोत्ताम्, अतोत्सु । अतोत्सी
अतोत्त । अतोत्सम् । अतोत्स्य, अतोत्सम् ।

तुदते । तुतुदे । तुदताम्, तुदेताम् । तुदन्ताम् । तुदस्य ।
अतुदत् । तुदेत् । तुत्सोप्ट, तुत्सीयास्ताम् लिङ्स्तिचावारमनेपदेपु
(१-२-११) इति कित्त्वान्न गुण । अतुत्त, अतुत्साताम् । तुतुत्सति । तुतु-

सते । तोतुद्यते । तोतुदीति तोतोत्ति तोतुत्त तोतुदति । गुट नुदति
इत्यादि तुदिवत् ।

दिश—दिशति, दिशते । देष्टा, देक्ष्यति देक्ष्यते । अन्यत्सर्वं तुदिवत्
त्रिशोपस्तु लुङि शल इगुपवात्० (३१-१३५) इति कस, 'कसस्याचि'
(७.३ ७०) इत्यल्लोप अदिक्षत् अदिक्षताम् अदिक्षन् ।

दिदिक्षति । दिदिक्षते । हलन्ताच्च इति क्त्विम् । देदिश्यते । देदि-
शीति देदेष्टि । देशयति अदीदिशत् ।

भ्रञ्ज-भृञ्जति । शस्य सार्यवातुकमपित् इति ङित्वात् ग्रह्णिज्या०
इति मप्रसारणम्, पररूपत्वम् । मला जश मशि इति सभारस्य ढकार-
स्तस्य श्चुत् जकार, न च श्चुत्वे ढत्वमासद्धम् इति वाच्यम् भृञ्जतीना
मिति निर्देशाद् इति माघवीयवातुवृत्तिः । वभर्ज्ज, वभर्ज्जतु ।
वभर्ज्जु वभर्ज्जिथ-वभर्ष्ट, वभर्ज्जथु । कारिदनिभमादिङ् थलि भारद्वाज-
नियमादिङ्प्रिक्ल्प । भ्रञ्जोरापधयारमन्यतस्याम् (६-४-४७) इति रेफोप-
धयोनिवृत्तिः । रमागमश्च विकल्पेन । आगमे अकार उच्चारणार्थः ।
अन्यद्वा वभ्रञ्ज, वभ्रञ्जतु वभ्रञ्जु वभ्राञ्जथ, वभ्रष्ट, वभ्रञ्जथु, वभ्रञ्ज ।
वभ्रञ्जिव । भर्ष्टा-भ्रष्टा । रमभावे र्का० इति सकारलोप । 'व्रश्च०'
आदिनामयत्र जभारस्य पत्वे ष्टुत्वम् ।

भर्ष्यति भ्रक्ष्यति । भृञ्जतु । अमृञ्जत् । भृञ्जेत्, भृञ्ज्यात् भृञ्ज्या-
स्ताम् । यासुट् ङित्वात्सप्रसारणम् । रमागमश्चानन पूर्वविप्रातपेदेन
वाच्यते । अभार्क्षीत्, अभार्ष्टाम्, अभार्क्षु । अभार्क्षी, अभार्ष्टम्,
अभार्ष्ट । अभार्क्षम्, अभार्क्ष, अभार्क्षम् । अभ्राक्षीत्, अभ्राष्टाम्,
अभ्राक्षु इत्यादि । वद्व्रज० इति वद्धि । मलि सिचा लापे सकारस्या-
भावात् षढो क सि इति न । विभक्षति विभर्ज्जिपति, विभ्रक्षति, विभ्र-
ञ्जिपति । अनेनैव प्रकारेण आत्मनेपदे रूपाणि अभ्यस्तव्यानि ।

क्षिप—क्षिपति । क्षिप्तेप । इत्यादि तुदिवत् । कृप-कृपति । कृपते ।
चकृप । चकृपे । कृष्टा-कृष्टां कृक्षीष्ट X स्प्रशमृशकृपत्पदृषां च्ले सिञ्जा
यम्तव्य X अक्राक्षीत् अक्राक्षीत् । शल इगुपवादनित् कस इति कस ।

कसस्याचि इत्यल्लोपे अकृक्षत् । इत्यनुदात्ता स्वरित्तेत ।

१२ (ओन्नश्चू छेदने)

चृश्चति । ग्रह्णित्येति संप्रसारणे, श्चुत्वे रूपम् । व्रश्च, व्रश्चतु,

१ अनुदात्तस्यचटु पधस्य० (६ १-५८)

वप्रश्चु । वप्रश्चिथ—वप्रष्ठ । उट्टिच्चात् सर्त्रेड् विरूप । क्रादि-
नियम प्रतिपिद्धविषय इति थन्यपि विकल्प एव ।

प्रष्टा--प्रश्चिता । प्रक्षयति--प्रश्चिच्यति । वृश्चतु । अवृश्चतु ।
वृश्चेत् । वृश्च्यात् । अप्रश्चीत् । अप्रश्चिष्टाम्, अप्रश्चिष्टु, अप्रश्ची,
अप्रश्चिष्टम्, अप्रश्चिष्ट । अप्रश्चिष्टम् । नेटि (७ २ ४) इति न
वृद्धि । अनिटि तु अप्राक्षीत् ।

१३ (इप इच्छायाम्, मिल श्लेषणो, लिख अक्षरविन्यासे)
इच्छति । इक्ष्यति । इक्षु । इक्षु । इक्षु । इक्षु । इक्षु । इक्षु ।
ऐच्छत् । ऐषीत् ।

मिलति इत्यादि । लिखति । लिलेख । लेखिता । लखिष्यति ।
लिखतु । अलिखत् । लिखेत् । लिख्यात् । अलेखीत् । इत्युत्ता
उत्तात् ।

१४ (मृड् प्राणत्याग)

म्रियते (म्रियतेलुङ् लिङ्गार्थ इति (१ ३ ६१) तड् । ममार, मम्रु
मम्रु । ममर्थ । मम्रु । क्रादिनियमान्दि थलि तु अचस्तास्वत्थत्य-
निटा नित्यम् इतीण् न । मर्ता मरिष्यति । म्रियताम् । अम्रियत । म्रियत ।
मृषीष्ट । अमृत । उश्च (१ २ १२) इति लिङ्गसिचो, वित्त्वाङ्ग गुण ।
इत्यनुदात्त आत्मनभाप ।

१५ (कृ विक्रमे)

किरति । चकार, चकरत्, चकरु । चकरिथ, चकरथु, चकर ।
चकार-चकर चकरिथ, चकरिथ ।

करिता-करीता^१ । करिष्यति-करीष्यति । किरतु । अकिरत् । किरेत् ।
कीर्यात् । इत्वे हलि चेति दीर्घ । अकारोत् । अकारिष्यात् ।
चिकरिपति—सनि प्रहप्रहोश्च इति इणिनपेधे प्राप्ते, तत्पत्राद् इट् सनि
या इति विकल्पिते निरश्च पञ्चम्य इति नित्यमिट् । चेकीर्यते । चाक-
रीति—चाकर्ति, चाकृत, चाकति । कारयति । अचीकरत् । इत्युदात्त
उदात्तेत् ।

१ धम्यासस्यासवर्णे (६-४-७८) २ तीपसह० (७-२-४८) ३ इपुगमिय-
माह (७-१-७३) ४—शृङ्खल्यताम् (७ ४ ११) ५—वृत्तो वा (७ २ ३८)

१६. (प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्)

पृच्छति । पप्रच्छ, पप्रच्छतुः, पप्रच्छुः । पप्रच्छथ पप्रष्ठ, पप्रच्छथुः
पप्रच्छ । पप्रच्छ, पप्रच्छव, पप्रच्छम । क्राद्दिनियमादित् । थलि तु
भारद्वाजनियमाद् इड्विकल्पः । प्रष्टा । प्रक्षयति । पृच्छतु । अपृच्छत् ।
पृच्छेत । पृच्छयात् । अप्राक्षीत्, अप्राष्टाम्, अप्राक्षः ।

इत्यनुदात्त उदात्तेत् ।

अथ रुधादिर्गणः

१ (रुधिर् आवरणे)

अय द्विकर्मक । रुणद्धि । रूरोव, रुरुयतु, रुरोधित् । रोद्धा । रोरयति ।
रुणद्धु, रुन्धात्, रुन्धाम्, रुन्धन्तु । रुणद्धि, रुन्धम्, रुन्ध । रुणधानि,
रुणवान्, रुणधाम् । अरुणत्—अरुणद्, अरुन्वाम्, अरुन्धन् । अरु-
णत्—अरुणद्—अरुणः, अरुन्वम्, अरुन्व । अरुणधम्, अरुन्ध्व,
अरुन्धम् । ह्रड्यादिना तित्यालोऽयः । जश्चै वा चत्वञ्च । सिपि
“दश्च” इति वा रुन्धमपि । रुन्ध्यात्, रुन्ध्याताम्, रुन्धुः । रुन्ध्यात्,
रुन्ध्यास्ताम् । रुन्ध्यासुः । लुङि इरितो वा (३ १. ५७) इति अड् पठे—
अरुधत्, अरुधताम् । अन्यडा—अरौत्सीत्, अराद्धाम्, अरौत्सुः ।
अरौत्सीः, अरौद्धम्, अरौद्ध । अरौत्सम्, अरौत्सव, अरौत्सम् ।

रुन्धे, रुन्धाते, रुन्धते । रुरुधे, रुरुधिपे । रोद्धा । रोरयते । रुन्धाम् ।
अरुन्धत । रुन्धीत । रुरसीष्ट । लिङ्सिचौ० (१. २. ११) इति कित्त्वम् ।
अरुद्ध, अरुन्माताम्, अरुन्सन । अरुद्धाः, अरुत्सि, अरुत्स्वहि ॥

२. (भिदिर् विदारणे)

भिनत्ति, भिन्त, भिन्दन्ति । भिनत्सि, भिन्थः भिन्थ । भिनद्मि,
भिन्द्वः, भिन्द्मः । विभेद, विभिदतुः, विभिदुः । विभेदित् । भेत्ता ।
भेत्यति । भिनत्तु-भन्तात्, भिन्ताम्, भिन्दन्तु । भिन्थि । अभिनत्-
अभिनद्-अभिन्ताम्, अभिन्दन् । अभिनः, अभिन्तम्, अभिन्त ।
भिन्ध्यात्, भिन्ध्याताम्, भिन्धुः । भिद्यात् । भिद्यास्ताम् । लुङि—
अभदत् । अभैत्सीत्, अभैत्साम्, अभैत्सुः । भिन्ते । विभिदे, विभिपे ।

३. (खिदिर् द्वंधीकरणे)

खिनत्ति इत्यादि भिदिवत् "इति अनुदात्तास्वरितेतः ।

४. (खिद दैन्ये, विद विचारणे)

खिन्ते, खिन्दाते, खिन्दते । खिन्से, खिन्दाथे, खिन्ध्वे । खिन्दे, खिन्द्वथे, खिन्द्महे । खिन्ताम्, खिन्दाताम्, खिन्दन्ताम् खिन्स्व, खिन्दायाम्, खिन्ध्वम् । खिनदै, खिनदायहै, खिनदामहै । अखिन्त, अखिन्दाताम्, अखिन्दत । अखिन्दि । खिन्दीत । चिखिदे । खेत्ता । विन्ते इत्यादि खिदिवत् । इत्यनुदात्तावनुदात्तेतो

५. (भुज पालनाभ्यवहारयोः)

भुनक्ति, भुङ्कते, भुञ्जन्ति । भुनक्ति, भुङ्क्थः, भुङ्क्थ । भुनक्ति, भुञ्जन्, भुञ्जन् । बुभोज, बुभुजतुः, बुभुजिथ । भोक्ता । भोक्षति । भुनक्तु । अभुनक् । भुञ्ज्यात् । भुञ्ज्यात् । अभोक्षीत्, अभोक्ताम् । भुजोऽनवने (१-३-६६) इति षड् । भुङ्क्ते, भुञ्जाते । भुङ्क्ते भुञ्जथे, भुङ्ध्वे, भुञ्जे, भुञ्जहे, भुञ्जहे । बुभुजे । भोक्ता, भोक्षते । भुङ्क्ताम् । अभुङ्क्त, अभुञ्जाताम् ।

भुञ्जीत, भुञ्जीयाताम्, भुञ्जीरन् । भुञ्जीष्ट । अभुक्त, अभुञ्जाताम् । लिङ्गसचावात्मनेपदेषु (१.२.११)

६. (हिसि हिंसामाम्)

हिनस्ति, हिंस्तः, हिंसन्ति । हिनस्सि, हिनस्मि । जिर्हिस, जिर्हिसतुः, जिर्हिसिथ । हिंसिता । हिंसिष्यति । हिनस्तु, हिंस्तात्, हिंस्ताम्, हिंसन्तु । हिन्वि । सलापेऽनुस्वारपरसवर्णौ हिनसानि । अहिनत्, अहिंस्ताम्, अहिंसन् । अहिनत्-अहिनद्-अहिनः, अहिनसम्, अहिंस्व । त्रिपि-त्रिप्यनस्तेः इति सस्य षः । सिपि धा-नोरुर्वा, इति दत्वसुत्वे । हिंस्यात्, हिंस्याताम्, हिंस्युः । हिंस्यात् हिंस्याताम् । अहिंसीत्, अहिंसिष्ट । इत्युदात्त वदात्तेत् ।

अथ तनादिर्गणः

१. (तन् विस्तारे, पणुदाने)

तनोति । ततान्, तेनतुः, तेनुः । तेनिथ, तेनथुः, तेन । ततान-ततन,

तेनिव, तेनिम । तनिता । तनिष्यति । तनोतु—तनुतात्, तनुताम्, तन्वन्तु । तनु, तनवानि । उतश्च प्रत्ययात्० (६ ४.१०३) इति हेर्लुक् । अतनोत्, अतनुताम्, अतन्वन् । अतनो, अतनुतम् अतनुत । अतनवम् अतन्व—अतनुव । तनुयात्, तनुयाताम्, तनुयु । तनुया, तनु, यातम्, तनुयात । तनुयाम् । तन्यात्, तन्यास्ताम्, तन्यासु । अतनीत्—अतानीत् । तनुते, तन्वाते, तन्वते । तनुपे, तन्वाथे, तनुध्वे । तन्वे, तनुवहे, तनुमहे । तेने, तेनाते, तेनिरे । तेनिपे, तेनाथे तेनिध्वे । तनिता । तनिष्यति । तनुताम्, तन्वाताम् तन्वन्ताम् । तनुष्य, तनवै । अतनुत, अतन्वाताम्, अतन्वत । अतनुथा । तन्वीत, तन्वीयाताम्, तन्वीरन् । तनिपीष्ट, तनिपीयास्ताम्, तनिपीरन् । अतत—अतनिष्ट, अतथा—अतनिष्ठा, अतनिध्वम् । तनादिभ्यस्तथासो इति पक्षे सिचो लुक् ।

पणु दाने—सनोति—सनुते इत्यादि तनोतिवत् । इत्युदात्तौ स्वरितेतौ ।

२ (मनु अवबोधने)

मनुते, मेने इत्यादि । इत्युदात्त अनुदात्तेत् ।

३ (डुकृञ् करणे)

करोति, कुरुत कुर्वन्ति । करोपि, कुरुथ, कुरुथ । करोमि, कुर्म, कुर्म अत उत्सार्वधातुके इति उकारलोप । चकार, चक्रत्, चक्रु । चकर्थ, चक्रथु, चक्र । चकार—चकर, चकृव, चकृम ।

कर्त्ता । करिष्यति ऋद्धनो स्ये इति इट् । करोतु—कुरुतात्, कुरुताम्, कुर्वन्तु । कुरु—कुरुतात्, कुरुतम्, कुरुत । करवाणि, करवाव, करवाम ।

अकरोत्, अकुरुताम्, अकुर्वन् । प्रकरो, अकुरुतम्, अकुरुत ।

अकरवम्, अकरवाव, अकरवाम । कुर्यात्, कुर्याताम्, कुर्यु । ये चेति नित्य उपकारस्य लोप । क्रियात् क्रियास्ताम्, क्रियासु —रिङ्शयग्लिङ्ङत् (७. ४२८) अकार्पात्, अकाष्टोम्, अकाष्टु । अकार्पा अकाष्टम्, अकाष्ट । अकार्पम्, अकार्ष्य, अकार्ष्म । अकरिष्यत् ।

कुरुते, कुर्याते, कुर्वते । कुरुपे, कुर्वहे, कुर्महे । चक्रे, चक्राते, चक्रिरे । कुरुताम्, कुरुष्व, करवै । अकुरुत । कुर्यात् । कृपीष्ट । अकृत् । इत्यत्र तनादिभ्यस्तथासो इति विकल्पितो लुङ् न भवति ।

अथ क्वादिर्गणः

१-३—(डुकीञ् द्रव्यविनिमये, प्रीञ् तपंगे कान्ती च,
श्रीञ् पाके)

क्रीणाति । क्रीणीते, क्रीणाते, क्रीणते, क्रीणीपे, क्रीणाथे, क्रीणीध्वे ।
क्रीणे, क्रीणीवहे, क्रीणीमहे । क्किभ्यो परत्वात्त्रित्यत्वाद्दन्तरङ्गत्वादी
त्वात्पूर्वमन्तादेशात् श्नाभ्यस्तयोराल्लोप ॥

चिक्राय, चिक्रियतु, चिक्रियथ चिक्रेथ, चिक्रियथु चिक्रिय ।
चिक्राय चिक्रय, चिक्रियि, चिक्रियिम । चिक्रिये, चिक्रियाते, चिक्रि-
यिपे, चिक्रियाथे, चिक्रियिध्वे । क्रेता । क्रेष्यते ति ॥

क्रीणातु-क्रीणीतात्, क्रीणीताम्, क्रीणन्तु । क्रीणीहि क्रीणीतात्,
क्रीणीताम्, क्रीणीत । क्रीणानि, क्रीणाव, क्रीणाम । क्रीणीताम्,
क्रीणाताम्, । क्रीणताम् । क्रीणीष्व, क्रीणावहे । अक्रीणात्,
अक्रीणीताम्, अक्रीणा अक्रीणीतम् अक्रीणीत अक्रीणाम,
अक्रीणीव । अक्रीणीत, अक्रीणीथा, अक्रीणाथाम्, अक्रीणीध्वम् ।
अक्रीणि अक्रीणीवहि ।

क्रीणीयात्, क्रीणीयाताम्, क्रीणीया, क्रीणीयाम्, क्रीणीयाव ।
क्रीणीत क्रीणीयाताम्, क्रीणीथा, क्रीणीय, क्रीणीवहि, क्रीणीमहि ।
क्रीयात् क्रीयास्ताम् । क्रेपोष्ट क्रेपोयास्ताम् इत्यादि । अक्रेपीत्,
अक्रेप्टाम्, अक्रेपु । अक्रेपी, । अक्रेप्टम् अक्रेप्ट । अक्रेपम्, अक्रेष्व
अक्रेप्म । अक्रेप्ट, अक्रेपाताम्, अक्रेप्टा अक्रेपि ।

चिक्रीपति—चिक्रीपते । चिक्रीयते । क्रापयति^२, अचिक्रपत् ।

श्रीञ् प्रीञ् इत्यादि क्रीणातिवत् । इत्यनुदात्ता उभयतोभाषा ।

४-७ (पूञ् पवने, मूञ् बन्धने, लूञ् छदने, स्तृञ्
आच्छादने)

पुनाति, पुनीत पुनन्ति । पुनासि पुनीथ पुनीथ । पुनामि,
पुनीथ पुनीम ।

पुपाव, पुपुवतु पुपुवु । पुपविथ, पुपुवथु, पुपव । पुपाव पुपव
पुपविर, पुपविम । पविता । पविष्यति पविष्यते पुनातु - पुनीतान्,

संशोधनपत्रम्

शुद्ध	पक्ति	भगुद	शुद्ध	६८	२ हुँह हुण्ड	हुह् हुण्ड
८	१३	येषा वण्तिता	यस्य वण्णस्य	६९	७ दा लट्	दा लट्
१५	१	पप	पप	६९	७ दा दा तिप	दा दा तिप्
१७	१	वक्	वक्	७०	१ यच्चि भम् यच्चि भम् १।४।१८	
१७	६	वाक्वरूपम्	वाक्वरूपम्	७०	१२ सोमप प्रस्	सोमप् प्रस्
१७	१५	निरप्शिन	विरप्शिन	७१	५ क्रियाया	क्रियायाः
१८	१४	राजान्	राजान्	७५	२ क्रुधद्रुहो ६।१	
१८	१५	रजान्	रजान्			क्रुधद्रुहो — ६।२
२३	१७	भादेश	भादेश	७६	६ क्रियाया	क्रियाया
२५	१९	परस्य	परस्य	७७	३ क्रियाया	क्रियाया
३२	१७	वत्स्वभावात्	वत्स्वभावात्	७२	२० ग्रामम	ग्रामम
३३	३६	कण्डूतिः	कण्डूति	८०	३ हृक् (समा०)	
६५	१२	कीर् कीर्	कीर् कीर्			हकरो (इतरे०)
३६	१	रप् तत्	रप् तत्	८०	२३ प्रयुङ्क्ते	प्रयुङ्क्ते
४२	१५	दीर्घत्पुत	दीर्घत्पुत	८१	१३ दुस्	दुस्
४६	८	देवित्वा स	देवित्वा स	८२	२५ वेदितव्य	वेदितव्य
४८	४	भत्	भत्	९३	२३ धान्यार्थं	धान्यार्थः
५०	१	निर कीशाम्बी	निर कीशाम्बी	९६	१० पञ्चना	पञ्चानां
				९६	३१ १५ गोस्त्रियो०	
						ह्रस्वो० (१ २.५७)
५३	१४	मिन्न	मिन्न.	१०४	२० क्षमशी क्षिमशी	
५४	१४	कुरुचर ^१	कुरुचर ^१	११५	१२ ल ^० पट्	ल ^० पट्
५७	१३	शप्	शप्	११७	६ बुभुक्ष	बुभुक्ष्
५८	२१	भनुक्रीड	भनुक्रीड्	१२०	१७ बुवो	बुवो
५८	२१	भनुक्रीड त	भनुक्रीड् त	१२९	१४ भप्तरत्	भप्तरत्
६२	२८	भनुकर भो	भनुकर् भो	१३७	५ लीलूय	लांलूय
६५	२४	भ्रूयाम्	भ्रूयाम्	१३९	२७ प्रट्	प्रट्
६७	१३	कट् मत्	कट् मत्	१४४	४ उप् पद	उद् पद
६८				१४६	७ पच य	पच् य
				१४७	२१ तुद भ	तुद भ
				१४९	८ कट्	कट्

१४. (ज्या वयाहानी)

जिनाति, जिज्यो, जिज्यन्तुः, जिज्युः । जिज्यिथ-जिज्याथ । ज्याता ।
ज्यास्यति-अन्यत्सर्वं पूर्ववत् लुङि तु यमरमनमातां मक् च (७.१२.७३)
इति सगिटो । अज्यासोन्, अज्यामिष्टाम् । प्रहिग्येति संप्रसारणे कृते
दीयः पुनश्च प्यादीनां ह्यभ्यः इति ह्रस्वः ॥

१५. (ज्ञा अववोधने)

जानाति, जानीन्, जानन्ति । जज्ञौ, जज्ञन्तुः, जज्ञुः, जज्ञिथ—
जज्ञाय । आशिपि, ज्ञायात्-ज्ञेयात् वाऽन्यस्य मयोगादेः, इति इत्ववि-
कल्पः । अज्ञासोन् अज्ञासिष्टाम् । इति प्यादयो ल्वाट्यश्च । इत्यनुदात्तौ
उदात्तेर्त्वा ॥

(मन्य विलोडने, अश भोजने, विष विप्रयोगे, मुप स्तेये
पुप पुष्टौ)

मप्याति । मुप्याति, मुप्याति । इति उदात्ता उदात्तेः ।

१६. ग्रह उपादाने)

गृह्णाति, गृह्णीतः । प्रहिग्येति संप्रसारणम् । गृह्णीते ।

जमाह, जगृस्तुः, जगृहुः । जप्रहिथ, जप्रह्युः । जगृहे, जगृहाते,
जगृहिथे, जगृहिह्वे—जगृहिह्वे । प्रहीना—प्रहीप्यति, प्रहीप्यते । प्रहो-
ऽलिति दीर्घः । गृह्णान्, गृह्णास्ताम् । गृह्णामुः । प्रहीपीष्ट, प्रहीपीयास्ताम् ।
अप्रहीत्, अप्रहीष्टाम्-अप्रहीष्ट, अप्रहीपाताम् । ह्यन्तेति वृद्धिनिषेधः ।
इत्युदात्तः स्वरितेन ।

चुरादिगणः

पुनीताम् पुनन्तु, पुनै । अपुनात् अपुनीताम्, अपुना, अपुनाम्, अपुनीव । पुनीयात् पुनीया, पुनीयाम् । पूयात्, पूयास्ताम्, पूयासु । अपावीत् ।

पुनीते, पुनाते, पुनते । पुनीषे, पुने । पुपुवे, पुपुनाते, पुपुविरे । पुपुविषे, पुपुषे । पुनीताम् । अपुनीताम्, पुनीत । पविषीष्ट ॥ अपविष्ट
लृञ्-लुनाति इत्यादि पुनातिवत् । लिटि-तस्तार, तस्तरतु, तस्वरु
तस्तरिथ, तस्तरिव । ऋच्छत्यताम् इति गुण ।

स्तरिता स्तरीता वतो वा इत्यल्लिटौ दीर्घविकल्प । स्तरीष्यति,
स्तरिष्यति ।

स्तृणातु, स्तृणीहि, स्तृणानि, स्तृणाव । अस्तृणात्, अस्तृणीताम्,
अस्तृणा । अस्तृणाम् । स्तृणीयात्, स्तृणीयाताम्, स्तृणीयु । स्तृणीया,
स्तृणीयातम् स्तृणीयात । स्तृणाम्, स्तृणीव, स्तृणीम । स्तीर्यात्, स्तीर्या-
स्ताम्, स्तीर्यासु, अस्तारीत्, अस्तारिष्टाम्, अस्तारिषु अस्तारी, अस्ता-
रिष्टम् अस्तारिष्व । अस्तारिष्यत्—अस्तारीष्यत् ।

स्तृणीते । तस्तरे, तस्तरिषे, तस्तरिवहे । स्तृणीताम् स्तृणीष्व,
स्तृणै । अस्तृणीत अस्तृणाताम् । स्तृणीत् । स्तीर्याष्ट—स्तरिषीष्ट
लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु (७ २ ४२) इतीङ्विकल्प, उश्च इति किरवम्,
इत्पक्षे वत् इति दीर्घस्य न लिङि (७ २ ३६) इति निषेध । अस्तीर्ष-
अस्तरीर्ष अस्तरिष्ट—लिङ्सिचा इतीङ् विकल्प, इटि वत् इति वा
दीर्घ अनिटि उश्च (१ २ १२) इति किरवम् । इत्युदात्ता उभय
तोभाषा ।

१३ (श हिंसायाम्, प बालनपूरणयो, ज वयोहानौ, द
विदारणे, म हिंसायाम्, ग शब्दे)

श्रूणाति इत्यादि पुनातिवत् । लिटि असयोगाल्लिट इत्यपितो लिट
किस्वे शृद्प्रा ह्रस्वो वा (७ ४ १२) इति ह्रस्वपक्षे यगादेश । अन्यदा
ऋच्छत्यताम् (७ ४ ११) इति गुण । अपितो लिट किस्वेन श्रयुक्
किति (७ २ ११) इति प्राप्तस्येयिनपेधस्य क्वादिनियमेन बाध । शशार,
शश्रु, शश्रु, शशारत्तु शशरु । शशरिथ, शश्रथु, शश्र, शशरथु,
शशर । शशार-शशर, शश्रिव, शशरिव । अन्यत्र स्तृणातिवत् । आशिषि
शीर्यात्, शीर्यास्ताम्, शीर्यासु । अशारीत्, अशारिष्टाम् । इटो दीर्घस्य
सिचि च परस्मैपदेषु (७ २ ४०) इति निषेध । इत्युदात्ता उदात्तेत ।

१४. (ज्या वयाहानौ)

जिनाति, जिज्यौ, जिज्यतुः, जिज्युः । जिज्यिथ-जिज्याथ । ज्याता ।
ज्यास्यति-अन्यस्मर्थं पूर्ववत् लुङि तु यमरमनभातां सकृ च (७.१२.७३)
इति सगिटौ । अज्यासौन्, अज्यामिष्टाम् । प्रहिज्येति संप्रसारणे कृते
दीयः पुनरच प्यादीनां द्वयः इति ह्रस्वः ॥

१५ (ज्ञा अवबोधने)

जानाति, जानीत, जानन्ति । जज्ञौ, जज्ञतुः, जज्ञुः, जज्ञिय-
जज्ञाय । आशिपि, ज्ञायान्-ज्ञेयान् वाऽन्यस्य मयोगादेः, इति इत्वि-
कल्पः । अज्जामीन् अज्जासिष्टाम् । इति प्यादयो ह्यादचरच । इत्यनुदात्तौ
उदात्तौ ॥

(मन्य विलोडने. अग्न भोजने, विष विप्रयोगे, मुप स्तेपे
पुप पुष्टौ)

मप्याति । मुप्याति, मुप्यानि । इति उदात्ता उदात्तैः ।

१६. ग्रह उपादाने)

गृह्णाति, गृह्णीतः । प्रहिज्येति मप्रसारणम् । गृह्णीते ।

जगद्, जगृह्तुः, जगृहः । जगृह्यिथ, जगृह्युः । जगृहे, जगृहाने,
जगृह्ये. जगृह्दिद्वे—जगृह्द्विध्वे । प्रहीता—प्रहीप्यति, प्रहीप्यते । प्रहो-
ऽलिति दीर्घः । गृह्यान्, गृह्याम्नाम् । गृह्यामुः । प्रहीपीष्ट, प्रहीपीषाम्नाम् ।
अप्रहीन्, अप्रहीष्टाम्-अप्रहीष्ट, अप्रहीषाताम् । ह्यन्तेति वृद्धिनिषेधः ।
इत्युदात्तः स्वरितेन् ।

चुरादिगणः

१. (चुर स्तेपे)

चोरयति । शिचश्चेति (१. ३.७४) आत्मनेपदम् । चोरयते । चोर-
याचकार चोरयां चक्रे । चोरयिता । चोरयिष्यति-चोरयिष्यते ॥

चोर्यान्-चोरयिषीष्ट । अचूचुरन्-इत्युदात्त उदात्तौ ।

२. (कथ वाक्यप्रवचने)

कथयति । अकथयन् । कथयांचकार । अदन्तोऽयम् ॥

पुनीताम् पुनन्तु, पुनै । अपुनात् अपुनोताम्, अपुना, अपुनाम्
अपुनोव । पुनीयात् पुनीया, पुनीयाम् । पूयात्, पूयास्ताम्, पूयासु ।
अपावीत् ।

पुनीते, पुनाते, पुनते । पुनीये, पुने । पुपुवे, पुपुराते, पुपुविरे ।
पुपुविषे, पुपुप्रे । पुनीताम् । अपुनीताम्, पुनीत । पविपीष्ट ॥ अपविष्ट
लुञ्ज-लुनाति इत्यादि पुनातिवत् । लिटि तस्तार, तस्तरतु, तस्तरु
तस्तरिय, तस्तरिव । ऋच्छत्वताम् इति गुण ।

स्तरिता स्तरीता वतो वा इत्यलिटीटो दीर्घविकल्प । स्तरीप्यति,
स्तरिप्यति ।

स्तृणात्, स्तृणीहि, स्तृणानि, स्तृणाव । अस्तृणात्, अस्तृणीताम्,
अस्तृणा । अस्तृणाम् । स्तृणीयात्, स्तृणीयाताम्, स्तृणीयु । स्तृणीया,
स्तृणीयातम् स्तृणीयात् । स्तृणाम्, स्तृणीव, स्तृणीम । स्तीर्यात्, स्तीर्या-
स्ताम्, स्तीर्यासु, अस्तारीन्, अस्तारिष्टाम्, अस्तारिषु अस्तारी अस्ता
रिष्टम् अस्तारिष्व । अस्तारिप्यत्—अस्तारीप्यत् ।

स्तृणीते । तस्तरे, तस्तरिषे, तस्तरिवहे । स्तृणीताम् स्तृणीष्व,
स्तृणै । अस्तृणीत अस्तृणाताम् । स्तृणीत् । स्तीर्याष्ट—स्तरिपीष्ट
लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु (७ २ ४२) इतीङ्विकल्प, उश्च इति कित्ताम्,
इटपत्ने वत् इति दीर्घस्य न लिटि (७ २ ३६) इति निषेध । अन्तीर्ष-
अन्तरीर्ष अस्तरिष्ट—लिङ्सिचा इतीङ्व विकल्प, इटि वत् इति वा
दीर्घ, अनिटि उश्च (१ २ १२) इति कित्ताम् । इत्युदात्ता उभय
तोभाषा ।

१३ (श हिंसायाम्, प नालनपूरणयो, ज वयोहानौ, द
विदारणे, म हिंसायाम्, ग शब्दे)

शृणाति इत्यादि पुनातिवत् । लिटि असयोगाल्लिट इत्यपितो लिट
कित्ते शदृप्रा ह्रस्वो वा (७ ४ १२) इति ह्रस्वपत्ने यगादेश । अन्यदा
ऋच्छत्वताम् (७ ४ ११) इति गुण । अपितो लिट कित्त्वेन त्रयुक्त
किति (७ २ ११) इति प्राप्तस्येखिनपेधस्य क्वादिनियमेन नाध । शशार,
शशरु, शश्रु, शशरतु शशरु । शशरिय, शश्रु, शश्रु, शशरधु,
शशर । शशार-शशार, शश्रिव, शशरिव । अन्यत्र स्तृणातिवत् । आशिपि
शौर्यात्, शौर्यास्ताम्, शौर्यासु । अशारीत्, अशारिष्टाम् । इटो दीर्घस्य
सिचि च परस्मैपदेषु (७ २ ४०) इति निषेध । इत्युदात्ता उदात्ते ।

१४. (ज्या वयाहानौ)

जिनाति, जिज्यौ, जिज्यतुः, जिज्युः । जिज्यिथ-जिज्याथ । ज्याता । ज्यास्त्रति-अन्यत्सत्रं पूर्ववत् लुटि तु यमरमनमातां सकृ च (७.१०.७३) इति सगिटौ । अज्यासीत्, अज्यासिष्टाम् । प्रहिज्येति सम्प्रसारणे कृते दीवः पुनश्च प्यादीनां ह्रस्वः इति ह्रस्वः ॥

१५ (ज्ञा अवबोधने)

जानाति, जानीत, जानन्ति । जज्ञौ, जज्ञतुः, जज्ञुः, जज्ञिथ—जज्ञाय । आशिपि, क्षायत्-क्षेयात् वाऽन्यस्य संयोगादेः, इति इत्वविकल्प । अज्ञासीत् अज्ञासिष्टाम् । इति प्यादयो ल्याड्यश्च । इत्यनुदात्तौ उदात्तेर्त्वा ॥

(मन्य विलोडने, अश भोजने, विष विप्रयोगे, मुष स्तेपे पुष पुष्टौ)

मय्नाति । मुय्नाति, पुय्नाति । इति उदात्ता उदात्तेतः ।

१६. ग्रह उपादाने)

गृह्णाति, गृह्णीतः । प्रहिज्येति सम्प्रसारणम् । गृह्णीते ।

जग्राह, जगृह्तुः, जगृहुः । जग्रहिथ, जगृह्युः । जगृहे, जगृहाते, जगृह्ये, जगृह्वे—जगृह्वे । प्रहीता—प्रहीष्यति, प्रहीष्यते । प्रहो-ऽलिति दीर्घः । गृह्यान्, गृह्याम्नाम् । गृह्यामुः । प्रहीषीष्ट, प्रहीषीष्याम्नाम् । अग्रहीत्, अग्रहीष्टाम्—अग्रहीष्ट, अग्रहीषाताम् । ह्यन्तेति वृद्धिनिषेधः । इत्युदात्तः स्वरितेन ।

चुरादिगणः

१. (चुर् स्तेपे)

चोरयति । गिचश्चेति (१. ३.७४) आत्मनेपदम् । चोरयते । चोर-याचकार चोरयां चक्रे । चोरयिता । चोरयिष्यति—चोरयिष्यते ॥

चोर्यान्-चोरयिषीष्ट । अचूचुरन्-इत्युदात्त उदात्तेन ।

२. (क्य वाक्यप्रचये)

कथयति । अकथयन् । कथयांचकार । अकथोऽयम् ॥

संशोधनपत्रम्

शुद्ध पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध		६८	२	हृ'ड हृण्ड	हृड् हृण्ड
८	१३	येपा वणाना	यस्य वणैस्य	६९	७	दा लट	दा लट्
१५	१	पप	पप	६९	७	दा दा तिप्	दा दा तिप्
१७	१	वक्	वक्	७०	१	यचि भम् यचि भम्	१।४।१८
१७	६	शब्दरूपम्	शब्दरूपम्	७०	१२	सोमप् भस्	सोमप् भस्
१७	१५	विरप्तिन्	विरप्तिन्	७१	५	क्रियाया	क्रियायाः
१८	१४	राजान्	राजान्	७५	२	ऋधदुहो	६।१
१८	१५	राजान्	राजान्				ऋधदुहो.—६।१
२३	१७	आदेश	आदेश.	७६	६	क्रियाया	क्रियायाः
२५	१९	परस्य	परस्य	७७	३	क्रियाया	क्रियायाः
३२	१७	वत्वभावात्	वत्वाभावात्	७२	२०	ग्रामम्	ग्रामम्
३३	३६	कण्डूतिः	कण्डूतिः	८०	३	हृक् (समा०)	
६५	१२	कीर् कीर्	कीर् कीर्				हकरी (दतरे०)
३६	१	रघ् तस	रघ् तस्	८०	२३	प्रयुङ्ते	प्रयुङ्ते
४२	१५	दीर्घप्लुत	दीर्घप्लुत	८१	१३	दुष	दुस्
४६	८	देवित्वा स	देवित्वा स	८२	२५	वेदितव्य	वेदितव्यः
४८	४	अल्	अल्	९३	२३	धान्यार्थं.	धान्यार्थं:
५०	१	निर कौशाम्बी	निर कौशाम्बी	९६	१०	पञ्चना	पञ्चानां
				९६	३१	१५ गोस्त्रियो०	
							ह्रस्वो० (१.२.४७)
५३	१४	मिन्न.	मिन्नः	१०४	२०	रुक्मणी	रुक्मणी
५४	१४	कुरुचर्*	कुरुचर्*	११५	१२	स* पृ	स* पृ
५७	१३	शप्	शप्	११७	६	बुभुक्ष	बुभुक्ष्.
५८	२१	अनुकीड	अनुकीड्	१२०	१७	बुवो	बुवो
५८	२१	अनुकीड त	अनुकीड् त	१२९	१४	अप्सरस	अप्सरस
६२	२८	अनुकर भो	अनुकर् भो	१३७	५	लौबूय	लौबूय
६२	२४	अणाम्	अणाम्	१३९	२७	अट्	अट्
६७	१३	कर् अ त्	कर् अ त्	१४४	४	उप् पद	उद पद
६८	१	हृड	हृड्	१४६	७	पच य	पच य
६८	१	नुम् ड हृण्ड	नुम् ड् हृण्ड्	१४७	२१	तुद अ	तुद अ
				१४९	८	कर	कर्

१४६	६ उ तस । कुर	उतस् कुर	२७५	६ निदश	निदश
१५७	१५ क काक	कृ क । कृ	२७६	१२ षट	षट
१६०	७ शत	शते	२७८	अश	अश
१६०	८ शने क्रिया ।	शेत ५ । १	२७९	बहव	बहव
१७३	१४ रुघ	रुघ	२८९	३ द्राघी	दाघी
१७६	२२ सावदितान	स । वदितान्	३३०	२४ माता मु	पिता मु
१७६	२३ प्रतिभू	प्रतिभू			मातृ मु पितृ सु
१८०	११ यस्य सो	यस्य स	३४०	१४ अचि	ऋचि
१८७	१० विश	वेदा	३४७	१९ आदेशो	भादेशो
१९१	२२ आट	आट	३३७	२५ हिरण्य	हिरण्ययू
१९७	३ माग	माग	३५५	२५ कै गौ	कै ग
१९७	११ दुष्वम्	दुष्वम्	३७०	२० परत	परत
१९७	१५ सव	साधन सर्वं	३७६	४ तस्य	तस्य
१९८	२६ देवदत्त	देवदत्त	३७६	१७ ईन इय	इन् इय्
१९८	२७ देवदत्त	दवत्त	३७८	६ एम एम	राम एम
२००	१ ऋ भवेय	भि भवेय	२८३	२० अग	अग
२००	६ लिङ्गलोटो	लिङ्गलोटो	३८५	युष्मद्	युष्मद्
२०२	१३ एषावहि	एषावहै	३८६	८ प ^३ प्री।पा	प-पा ^३ प्रीपापा
२०२	१३ एषामहि	एषामहै	३८६	१६ ३-आतो	६४-वृद्धिरेचि
२१०	७ पविष्य	पविष्य	३७६	२६ ४-द्विव०	स्यानन्तरतम
२१०	११ पच ईट्	पच् ईट्	३८८	२४ मुक्त	मुक्त्
२१०	२२ वेदिम	वेदिम	३९२	१७ गतृ श्रीर	शप श्रीर
२१२	८ संहि	सेह्यं	३९३	६ परतो	परतो
२१२	२० ओ	ओ	३९४	१७ पयानो	पयानो
२१६	१३ स्वी	स्वी	३९५	१८ गो श्री	गो श्री
२२३	२६ कुमारीप	कुमारीपु	३९३	१४ सिचि	सिचि
२३३	२८ र्गणी	र्गनी	४०६	१३ वलोद	वलादे
२५७	८ अस्माकीन	आस्माकीन	५०६	हृदस	महृदच
२५७	११ अस्माकीन	आस्माकीन	५०८	११ ईत्स	ईत्स्
२५९	२७ प्राहृतनम्	प्राहृ एतनम्	५०८	१६ बभ्रज	बभ्रज्
२६२	तवर्गोपम	तवर्गोपम	५०९	६ श्री	श्री सन् ।

४११	२	स्स्यत्	स्स्यत्	४८१	४	सञ्च	स च
४१२	२०	सस्मथ	सस्मथे	४८२	१	शृष् स	शृष् स
४१३	२५	ऋ	ऋ	४८६	१८	अदस्	अद
४१३	२८	व्यधि	व्यधिथ	४६७	३१	जिह्वामल	जिह्वामूल
४१४	१	ऋथल्	ऋथल्	४६४	१३	वण	वण्
४२०	१६	सोथत्व	सोथत्व	४६८	२३	सपिस	सपिस्
४२०	१७	विभनती	विभनती	५००	२६	पुन्ना	पुन्ना
४२०	२२	अष्टन्	अष्टन्	५०५	७	बहुह्या	बहुह्या
४२३	११	वादेशो	वादेशो	५०८	२३	स्वरो न	स्वरो
४२६	१४	परतो	परतो	५१०	१७	गवः	गवः
४३०	१०	दीवार	दीवार	५११	२०	द्यौ	द्यौ
४३२	४	कृयीश्च	कृयीश्च	५१२	८	पन्था	पन्थाः
४३४	४	उक्	उक्	५१२	११	अष्टा । अष्टा	अष्टो । अष्टो
४३६	१	शुल	शुलि	५१३	२२	अम	अम्
४३६	१६	हाप्	हाप् इ लुङ्	५१३	३६	इदम्	इदम्
४४१	१२	खजणा	खजणा	५१४	१०	विद्वे	विद्वे
४४३	१४	उणुंञ्	उणुंञ्	५१५	१६	वभवे	वभूवे
४४७	५	अम्बार्थं	अम्बार्थं	५१५	१७	भय	भूय
४५३	१४	श	श	५१६	२०	स्यमेव	स्यमेव
४५३	२५	प	पृ	४१७	७	अडलुङन्तस्य	अडलुङन्तस्य
४५५	७	पत्लू	पत्लू	५१७	९	बोभमः	बोभूमः
४६४	२८	आय् थ	आय् थ	५१७	२०	अबोभताम्	अबोभूताम्
४६६	२२	इयति	इयति	५२१	१५	अत्रपि	अत्रपिष्ट
४६६	२३	पपपि	पपपि	५२३	२३	वत्ते	वत्ते
४७१	१०	चरीकर्ती	चाकर्ती				

नोट— अष्टाध्यायी-प्रकाशिका में संस्कृत होने के कारण कुछ टाइप छापने के समय दूट गये अधिकतर क, द्र, वत्ते, गम मु तम् का क, द्र, वत्ते, गम स तस रह गया । इसी प्रकार की प्रशुद्धियां रह गई थीं । हमन इनकी शुद्ध कर दिया है । और जहाँ कहीं और अशुद्धि मानूम पडे वहाँ उसके समीपवर्ती शब्दों को देखना चाहिये और तुलना करके शुद्ध कर लेना चाहिये ।

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥